1

आधुनिक संस्कृत-नाटक

(नए तथ्य : नया इतिहास)

सोलहवीं से बीसवीं शती तक

भाग १

लेखक :

रामजी उपाध्याय, एम. ए., डी. फिल्. डी. लिट्.

सीनियर प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, संस्कृतविभाग,

सागर-विश्वविद्यालय, सागर

प्रकाशक

संस्कृत-परिषद्, सागर-विश्वविद्यालय, सागर

प्रथम संस्करण
भारत सरकार के शिक्षा-विभाग से प्राप्त आर्थिक अनुदान से प्रकाशित

मूल्य

मुद्रक : विद्याविलास प्रेस,
चौखम्भा, वाराणसी।

समर्पणम्

सुरसरस्वतीशेखरेभ्यः

पुण्यपत्तनस्थेभ्यः

डॉ० श्रीपरशुरामलक्ष्मणवैद्यमहोदयेभ्यः

अपनी बात

संस्कृत नाटक के इतिहास का तीसरा और अन्तिम भाग प्रस्तुत है। इतिहास के तीन भागों में २००० पृष्ठों में पहली शती से लेकर बीसवीं शती तक के लिखे हुए नाटक मेरी आलोचना-परिधि में आये हैं। निस्सन्देह लगभग दसवीं शती तक के नाटकों को लेकर संस्कृत-साहित्य के देशी और विदेशी इतिहासकारों ने अच्छे ग्रन्थों की रचना की है, किन्तु उन्होंने परवर्ती युग की संस्कृत-रचनाओं को उपेक्षा-भाव से देखा है। उनका अभिमत है कि दसवीं शती के पश्चात् संस्कृत में कोई अच्छी रचना यदि हुई भी तो वह अपवाद स्वरूप ही हुई। इस असत्य उद्घोष से न विचलित होने वाले महातपस्वी स्वर्गीय एम० कृष्णमाचार्य ने History of Classical Sanskrit literature नामक इतिहास अंगरेजी में १९३७ ई० में लगभग ११०० पृष्ठों में प्रकाशित किया। इसमें उन्होंने आदिकाल से लेकर अपने समय तक लिखी हुई सभी संस्कृत रचनाओं का परिचय देने का अनुपम प्रयास किया है। इस मनस्वी को पदे-पदे स्मरण करते हुए तथा उनसे उत्साह और प्रेरणा ग्रहण करते हुए यह महाग्रन्थ सम्पन्न हो सका है।

प्रस्तुत इतिहास में संस्कृत नाटकों के विषय में अपनी दृष्टि से मैंने उन सभी बातों का समावेश किया है, जिनसे उनके सम्बन्ध में पाठकों की नीचे लिखी भ्रान्तियाँ अथवा पूर्वाग्रह दूर हो जायँ—

(१) दसवीं शती के बाद संस्कृत-रचनायें भाषा और भाव की दृष्टि से हीन-कोटिक और निष्प्राण हैं।

(२) परवर्ती रचनाओं में भाषा, भाव और शैली की दृष्टि से पहले के महाकवियों का थोथा अनुकरण मात्र है।

(३) आधुनिक युग में संस्कृत में कुछ लिखा ही नहीं गया।

इस प्रसंग में निवेदन है कि केवल संस्कृत-भाषा और साहित्य ही नहीं, अपितु जो कुछ प्राचीन भारतीय परम्परा में आज जीवित है, उसके प्रति विदेशियों ने दृष्टि से देखते हुए भारतवासियों ने नेय बुद्धि से उपेक्षा-भाव बनाये रखा है। सभी भारतीय विद्याओं के साथ भारतीय संस्कृति को समाप्त करने के लिए गत २०० वर्षों में इनके

विरुद्ध इतना विष-वमन किया गया है कि उनकी सात्त्विकता को परखने की दृष्टि ही प्रायशः अभिजात भारतवासी भी खो बैठे।

सबसे बड़ी विषमता तो यह है कि संस्कृत के कतिपय प्राचीन नाटकों को छोड़ कर अन्य नाटकों को कोई न तो स्वयं पढ़ना चाहता है और न पाठ्यक्रम में उनको कहीं स्थान मिलता है। इतिहासकार यदि अपने ग्रन्थों में उनकी चर्चा भी करते हैं तो उनके सम्बन्ध में सुनी-सुनाई, घिसी-पिटी बातें कह कर सन्तोष कर लेते हैं। विरल ही इतिहासकार ऐसे हैं, जो परवर्ती ग्रन्थों को पढ़कर उनकी निष्पक्ष आलोचना करते हों।

आधुनिक संस्कृत साहित्य के प्रति संस्कृत के विद्वानों की अज्ञता और तदनुसार उपेक्षा के कतिपय प्रामाणिक उल्लेख देना, असमीचीन नहीं होगा। १६१२ ई० में श्रीराम वेलणकर ने कालिदासचरितम् नामक अपना नाटक भारत के राष्ट्रपति श्री राधाकृष्णन् को समर्पित किया। उन्होंने अपना मत भेजा।

It is good to know that people are still writing original composition in Sanskrits. राष्ट्रपति ने १९६६ ई० में भी अपने इस मत को बदला नहीं कि संस्कृत में रचनायें विरल हैं। विश्वेश्वर ने उन्हें अपना चाणक्य-विजय अर्पित किया। उस पर राष्ट्रपति की सम्मति है—

I appreciate that creative work is being done now in Sanskrit language.

इस पुस्तक में आप देखेंगे कि जिस समय राधाकृष्णन् यह मत दे रहे थे, उस समय तक बीसवी शती में लिखे लगभग ३०० संस्कृत नाटक प्रकाशित हो चुके थे। राष्ट्रपति का छोड दे। जीवन भर प्रयाग विश्वविद्यालय में संस्कृत पढ़ाने व ले महामहोपाध्याय डा० उमेश मिश्र, एम० ए०, डी० लिट्० अन्त में दरभंगा में संस्कृत विश्वविद्यालय के उपकुलपति थे। उस समय १९६२ ई० में श्रीरामवेलणकर ने अपना संस्कृत-नाटक कालिदासचरित उन्हें अर्पित किया। डा० मिश्र की सम्मति है—

अस्मिन् युगे भवद्भिरीदृशी रचना सम्पाद्य संस्कृत-साहित्यस्य सेवा कृतेति महान् मे प्रहर्षः।

अब आप क्या कहेंगे? जब संस्कृत विद्या के महान् पुंगव ही शुतुर्मुर्ग की भाँति अपनी आँख को अतीत के गर्त में लगाये हुए वर्तमान को नहीं देख पाते तो अन्य संस्कृतज्ञों को क्या कहा जाय?

आधुनिक संस्कृत-रचनाओं का कोई इतिहास न होने से, उनके प्रकाशन, क्रय-विक्रय आदि की व्यवस्था न होने से और उनका कोई नामलेवा न होने से आधुनिक युग में संस्कृत-नाटक लिखने वालों को भी यह ज्ञात नहीं था कि उनके समान मौन और अज्ञात संस्कृत-नाटककार आज भी सैकड़ों हैं, जिनकी रचनाओं से भारत-भारती का कोश जगमगा रहा है। पाण्डुरंग शास्त्री ने १६६० ई० में हर्षदर्शन नामक नाटक लिखा। उसकी प्रस्तावना में सूत्रधार कहता है—

संस्कृतनवनाटक-निर्मितिरत्यल्पप्रमाणा किंबहुना, उदुम्बरकुसुमप्रायैव।

संस्कृत के भारतीय और अभारतीय विपश्चित महापण्डितों से निवेदन है कि आप लोगों में से अनेक ने अब तक परवर्ती संस्कृत-साहित्य की तुच्छता का ढोल पीटा है। भारत की सांस्कृतिक निधि को उपेक्षित रखने का श्रेय आपको मिला है। अब इस कदर्थना के समय लद गये। बहुसंख्यक संस्कृतज्ञ आपके द्वारा प्रवर्तित क्षति को समझ चुके हैं और अनवरत प्रयास से वे परवर्ती संस्कृत-साहित्य को यथोचित सम्मान के योग्य प्रतिष्ठित करते हुए आधुनिक संस्कृतज्ञों की शाश्वत उच्च मनीषिता को आदर्श रूप में अपना रहे हैं।

महान् देशों का साहित्य महासागर होता है। उसमें रत्न भी होते हैं और शंख भी। शंखों की संख्या नगण्य भी नहीं होती। उन्हीं के बीच से रत्नों को ढूंढ़ निकालना सफल आलोचक का कृतित्व है। कतिपय शंखों में कहीं कुछ विशेष गुण होता है। वे कितने चित्र-विचित्र होते हैं? पारखी उनसे भी शंखनाद करता है या अपने बैठके की सजावट करता है।

परवर्ती संस्कृत नाटकों की कतिपय विशेषताओं की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करना साम्प्रतिक होगा। सबसे बढ़कर महत्त्वपूर्ण है उनके रचयिताओं का अपने युग का अनन्य विद्वान् होना। उन्होंने केवल साहित्य-क्षेत्र को ही अपने कृतित्व से नहीं जगमगाया, अपितु समाज को सम्प्रतिष्ठित करने के लिए बहुविध योगदान दिया। अनेक नाटककार राजा, राजमन्त्री, सेनापति, दार्शनिक और सांस्कृतिक आचार्य हुए हैं। उनकी प्रतिभा से तत्कालीन समाज आलोकित था। इन उच्चकोटिक महामहिम विद्वानों ने स्वान्तःसुखाय रचना की और नागरक संस्कृति के उन्नायक राजा-महाराजाओं के रसास्वादन के लिए बहुशः लिखा, पर विशेष महत्त्वपूर्ण है उनका अपने हृदय-मन्दिर में मूर्तिमान् अधिष्ठाता देवाधिदेव के प्रीत्यर्थ नाटक रचना। लगभग ७५% नाटकों का अभिनय मन्दिरों के मण्डप में देवताओं के समक्ष किया गया। कवियों का विश्वास था कि मन्दिर में प्रतिष्ठित देव हमारे नाटकों के अभिनय से

सुप्रसन्न होगा। यहाँ यह कहना अनावश्यक है कि भारतीय कला का सर्वोच्च विलास देवताओं को अर्पित सर्जनाओं में ही होता आया है।

संस्कृत के नाटक केवल पढ़ने के लिए ही नहीं लिखे गये। आज तक के नाटकों की प्रस्तावना से विदित होता है कि उनका अनेकशः अभिनय होता आया है और इनके प्रयोग का रसास्वादन समय-समय पर भारत के राष्ट्रपति, राजा-महाराज, मन्त्री-महामन्त्री, विद्वान्, आचार्य, साधु-सन्त आदि ने किया है।

और भी, भारत के प्रत्येक भूभाग में संस्कृत नाटकों की रचना और उनके अभिनय अनवरत होते रहे हैं। शायद ही कोई जनपद हो, जो किसी संस्कृत-नाटककार के द्वारा समलंकृत न हुआ हो। इन आधुनिक संस्कृत-नाटकों में भारत के प्रायः अतीत ६०० वर्षों की आधिभौतिक, आध्यात्मिक, कलात्मक और लोकसेवात्मक सभी प्रवृत्तियों का सर्वाङ्गीण रमणीय परिचय जिस पर्याप्त मात्रा में मिलता है, उतना अन्यत्र किसी भी भाषा की किसी साहित्यिक विधा में नहीं है।

मेरा विश्वास है कि इस ग्रंथ के पाठक मुझसे सहमत होंगे कि जो संस्कृत साहित्य सैकड़ों वर्षों तक समग्र भारत के लिए मनोरंजन के साथ ही जीवन का आदर्श प्रस्तुत करता आ रहा है, उसे एकपदे हीन-कोटिक बताकर उसका त्याग कर देना प्रमादवश ही सम्भव हुआ है।

नाट्यशास्त्र को सर्वाङ्गसम्पन्न बनाने के लिए आधुनिक संस्कृत नाटकों में नई सामग्री मिलती है। नाट्याचार्य भरत और उनके अनुयायियों ने रूपकों के परिशीलन के लिए वस्तु, नेता और रस-सम्बन्धी, जिस विधान को अपनाया, उसका सर्वशः परिपालन न तो आरम्भिक और न मध्ययुगीन नाटकों में दिखलाई पड़ता है। बहु-संख्यक आधुनिक नाटककारों ने तो उस धूमिल पुराने पड़े नाट्यविधान की परतन्त्रता से अपने को आवश्यकतानुसार उन्मुक्त रखा है। इस ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर आधुनिक नाटकों में प्रकटित प्राचीन शास्त्रीय परिपाटी से भिन्नता का निर्देश किया गया है। इस प्रकार की सामग्री के आधार पर संस्कृत के अद्यावधि विरचित नाटकों की साङ्गोपाङ्ग शास्त्रीय आलोचना करने के लिए भारतीय नाट्यशास्त्र में संशोधन और परिवर्धन की आवश्यकता निर्विवाद है। भरत द्वारा निर्दिष्ट दस प्रकार के रूपकों और परवर्ती नाट्याचार्यों के द्वारा निर्दिष्ट नृत्य और उपरूपकों में से अनेक के उदाहरण प्राचीन काल के प्राप्य नाट्य-साहित्य में नहीं मिलते, अथवा विरल हैं। मध्ययुग और आधुनिक युग में उपर्युक्त कोटियों की प्रतिनिधि-रचनायें कुछ अधिक मिलती हैं। इस दृष्टि से भी इन परवर्ती रचनाओं का महत्त्व है।

आधुनिक संस्कृत-नाटक के इतिहास में नाटककारों की जीवनी, उनके व्यक्तित्व का विकास, नाटकों की कथावस्तु और उनकी नाट्यशास्त्रीय संक्षिप्त समीक्षा दी गई है। ऐसा करते हुए प्रायः ध्यान रखा गया है कि नाटककार का पाठक से साक्षात् सम्बन्ध हो और इस उद्देश्य से नाटकों से पर्याप्त उद्धरण यत्र-तत्र पिरोये गये हैं, जिसमें उनके रचयिताओं का शाब्द शरीर अमर रहे। नाटककारों की अन्य विधाओं की रचनाओं की नामावली भी दी गई है, जिससे उस युग की साहित्यिक धारा के पूर्ण स्वरूप की झाँकी पाठक को मिले।

यदि काव्य के नवरसों के साथ ही आप दशम रस चाहते हैं, जो आपके नेत्र के लिए अंजन बन कर जीवन के प्रति सात्त्विक दृष्टि प्रदान करे तो यतीन्द्र का भारत-विवेकम् विश्वविवेकम् या हृदयारविन्दम् पढ़ें, प्राचीन या मध्ययुगीन भाण और प्रहसनों से उच्चतर स्वर पर इस विधा की आदर्श कृतियाँ जीव न्यायतीर्थ ने प्रस्तुत की है।

वर्तमान नाटककारों पर कलम उठाना दुस्साहस का काम है। उनकी टीका-टिप्पणी खतरे से खाली नहीं, किन्तु 'न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्' इस लोकोक्ति को चरितार्थ करने के पक्ष में मैं कभी नहीं रहा,हूँ। वर्तमान नाटककारों में जो त्रुटियाँ दिखीं, उन्हें भी स्पष्ट लिखा है। यदि मेरी आलोचना उन्हें विषम लगे तो यह मान कर तो वे मुझे क्षमा करें कि जो कुछ मैंने किया है, वह संस्कृत-कविमार्ग को प्रशस्त बनाने के लिए किया है, परनिन्दा से आत्मतोष के लिए नहीं।

समग्र भारत ने जिस एक भाषा के द्वारा समग्र भारत की अणुशः और कणशः विभूतियों को समग्र भारत के प्रीत्यर्थ अद्यावधि पुंजीभूत किया है, उसके औदार्य और औदात्त्य से परम प्रभावित है लेखक। अन्त में आज के संस्कृत लेखकों से प्रेरणाप्रद निवेदन है कि आप अकेले नहीं है। सैकड़ों और सहस्रों की परम्परा में आप सुबद्ध हैं। आप का संस्कृत-कविमार्ग अनादि काल से चलता आ रहा है और अनन्त काल तक चले, इस कामना के साथ

वाराणसी — भवदीय

१३।१२।७७ — रामजी उपाध्याय

सोलहवीं शती के नाटक

अध्याय १

रूपगोस्वामी का नाटच-साहित्य

सोलहवीं शती के कवियों में रूपगोस्वामी अद्वितीय कहे जा सकते हैं। रूप-गोस्वामी की चारुचरितावली का युग १५ वीं और १६ वीं ई० शती है। इनका आनुवंशिक परिचय जीवगोस्वामी ने सनातन गोस्वामी द्वारा प्रणीत लघु भागवत की लघुतोषिणी व्याख्या में इस प्रकार दिया है—कर्नाटक के राजा सर्वज्ञ जगद्गुरु भारद्वाज गोत्र के थे। इनके पुत्र राजा अनिरुद्ध की दो पत्नियों से रूपेश्वर और हरिहर राजकुमार हुए। हरिहर दुष्ट स्वभाव का था। उसने रूपेश्वर को राज्य से भगा दिया। रूपेश्वर का पुत्र पद्मनाभ गङ्गा के तटपर नवहट्ट ग्राम में सुप्रतिष्ठित हुआ। उसके पाँच पुत्रों में सबसे छोटा मुकुन्द नवहट्ट ग्राम छोड़कर फतेहा-बाद में जा बसा। मुकुन्द के पुत्र श्रीकुमार थे, जिनके तीन पुत्रों—अमर, सन्तोष और वल्लभ को चैतन्य ने सनातन, रूप और अनुपम नाम से दीक्षित किया। अमर और सन्तोष गौड़राज हुसेनशाह के द्वारा उच्च राजकीय पदों पर नियुक्त थे और रामकेलि नामक ग्राम में प्रतिष्ठित थे। दीक्षा के पश्चात् रूप प्रायः गोकुल में रहे।

रूपगोस्वामी महान् लेखक थे। इनके लिखे हुए १७ ग्रन्थों के नाम जीवगोस्वामी अनुसार है–(१) हंस-सन्देश (२) उद्धव-सन्देश, (३) अष्टादश लीला छन्दः (४) उत्क-लिका-वल्लरी (५) गोविन्द-विरुदावली (६) प्रेमेन्दुसागर (७) विदग्धमाधव (८) दानकेलि-कौमुदी (९) ललितमाधव (१०) भक्तिरसामृत-सिन्धु (११) उज्ज्वल-नीलमणि (१२) मथुरामहिमा (१३) नाटकचन्द्रिका (१४) पद्यावली (१५) संक्षिप्त भागवतामृत (१६) आनन्द-महोदधि (१७) मुकुन्द-मुक्तावली।

उपर्युक्त ग्रन्थों में से दो विदग्धमाधव और ललितमाधव रूपक और दानकेलि-कौमुदी भाणिका कोटि का उपरूपक हैं।[1] कवि का अन्तिम ग्रन्थ उत्कलिकामंजरी मिलता है, जिसकी रचना १५५० ई० में हुई।[2] रूपगोस्वामी के रूपक और उपरूपक १६वी शती के पूर्वार्ध में प्रणीत हुए।

विदग्धमाधव

विदग्धमाधव नाटक की रचना गोकुल में वि० सं० १५८९ अर्थात् १५३२ ई० में हुई, जैसा इस ग्रन्थ की अधोलिखित पुष्पिका से प्रमाणित होता है—

---

१. गते मनुशते शाके चन्द्रस्वर-समन्विते।
नन्दीश्वरे निवसता भाणिकेयं विनिर्मिता॥ भाणिका की पुष्पिका से

२. चन्द्राश्वभुवने शाके पौषे गोकुलवासिना। -

नन्द-सिन्धुरबाणेन्दु-संख्ये सवत्सरे गते।
विदग्धमाधवं नाम नाटकं गोकुले कृतम् ॥

इसका प्रथम प्रयोग केशितीर्थ मे सम्भवतः खुले आकाश वाले रङ्गमच पर वृन्दावन-दर्शनार्थियों के मनोरंजन, प्रशान्ति और प्रज्ञान के लिए हुआ था। विदग्ध राधा है और माधव के साथ उसकी प्रणय-क्रीडा वर्ण्य विषय है[1]। इसके प्रथम प्रयोग का सूत्रधार स्वय कवि था, जैसा प्रस्तावना मे कहा गया है। इस नाटक मे सात अंको मे प्रमुखतः राधाविलास की चर्चा है।

कथासार

कृष्ण की बाल लीला-भूमि गोकुल की अपूर्व सुन्दरी राधा का सौन्दर्य-विलास कंस के कानों तक पहुंचा।[2] उसके कूटपाश से राधा को बचाने के लिये उसे पहले भानुतीर्थ में छिपाया गया। फिर गोकुल मे लाकर योगमाया की तदनुकूल योजना के अन्तर्गत जटिला के पुत्र अभिमन्यु से उसका दिखावटी विवाह कर दिया गया। राधा को तो कृष्ण का होना था। पर इधर अभिमन्यु राधा पर अधिकार बतलाने लगा और कृष्ण के सान्निध्य से हटाकर वह राधा को कही दूर ले जाना चाहता था।

गोकुल की उपर्युक्त विपत्तियो को देखकर महामुनि नारद के निर्देश से उज्जयिनी के महर्षि सान्दीपनि की जागतिक प्रेम प्रपञ्चो मे नदीष्ण माता पौर्णमासी और उसकी सेविका नान्दीमुखी गोकुल आ गईं कि कृष्ण और राधा को मिलाने में सहायक हों। साथ ही अपने पुत्र मधुमंगल को सान्दीपनि ने कृष्ण का सहचर बन कर गोकुल में रहने के लिये भेज दिया। पहला काम पौर्णमासी ने यह किया कि उसने अभिमन्यु को भुलावे मे रखा कि मैं राधा के लिये प्रतिभू होती हूं कि वह तुम्हारे अधिकार से बाहर नही हो। पौर्णमासी ने नान्दीमुखी को भी इस काम के लिए नियुक्त किया कि वह राधा और कृष्ण के पारस्परिक अनुराग मे वृद्धि के उपायो को कार्यान्वित करने मे योगदान करे।

इधर ललिता और विशाखा नामक अपनी सखियो की सहायता से राधा कृष्ण-मिलन के लिए भाँति-भाँति के उपक्रम करती थी, जिनमे से एक था सूर्य की आराधना करने के लिए वन मे जाना। पौर्णमासी ने विशाखा से कृष्ण का एक चित्र बनवाया, जिसे देखकर राधा वियोग के क्षणों मे धैर्य धारण करे।

कृष्ण एक दिन गौओं के साथ वन जा रहे थे। उनके मित्र बलराम, मधुमगल, श्रीदाम आदि भी साथ थे। उनके माता-पिता यशोदा और नन्द उन्हें मार्ग पर कुछ दूर तक छोड़ने के लिए जा रहे थे। उनको घर लौटाकर वन में पहुंच कर कृष्ण ने

---

१. वृन्दा ने राधा के विषय में कहा है—विदग्धवधूनां मूर्धन्यासि।

२. इस कथा के अनुसार राधा यशोदा की धाई मुखरा की नतिनी थी। उसकी प्रतिनायिका चन्द्रावली कराला की नतिनी थी।

वंशी वजाई। चराचर आनन्द-विभोर हो गया। उसे सुनने के लिए आकाश-मार्ग से ब्रह्मा, महेश तथा इन्द्रादि देवता आ पहुंचे। जंगल में मंगल मनाया जा रहा था। इस अवसर पौर्णमासी लड्डू लिये आ पहुंची। उसने बताया कि मुखरा ने अपनी नतिनी राधा का विवाह अभिमन्यु से ठहरा लिया है। इसी उत्सव में लड्डू बाँटे जा रहे हैं। कृष्ण राधा का नाम सुनते ही विलक्ष हुए। उन्होंने वार्ता का विषय परिवर्तन करने के लिये कहा कि आप भी इस वासन्तिक श्री में महोत्सव का आयोजन करें। पौर्णमासी ने कहा कि आज तो आप हरि के लिए महोत्सव है, जब गोपियाँ पुष्पावचय के लिए यहाँ एकत्र होंगी।

दोपहर के समय केवल श्रीदामा और सुवल को साथ लेकर कृष्ण यमुनातटीय कुञ्ज में वंशीवादन करने लगे। मुरलीरव सुनते ही राधा की विचित्र ही दशा हो गई। उसने समीक्षा की

अजडः कम्पसम्पादी शस्त्रादन्यो निकृन्तनः।
तापनोऽनुष्णताधारः कोऽयं वा मुरलीरवः॥ १.३५

दूसरे अङ्क के अनुसार पौर्णमासी ने कृष्ण का जो चित्र वनवाया था, उसे राधा ने देखा और उन्मत्त हो गई। उसने सखियों से अपनी मनोदशा का वर्णन किया—

एकस्य श्रुतमेव लुम्पति मतिं कृष्णेति नामाक्षरं
सान्द्रोन्मादपरम्परामुपनयत्यन्यस्य वंशीकलः।
एप स्निग्धघनद्युतिर्मनसि मे लग्नः सकृद्दीक्षणात्
कष्टं धिक् पुरुषत्रये रतिरभून्मन्ये मृतिः श्रेयसी[1]॥ १.२९

राधा की मातामही मुखरा और पौर्णमासी उसकी शोचनीय स्थिति सँभालने के लिये बुलाई गई। मुखरा ने कहा कि इसे कोई ग्रह लगा है। पौर्णमासी ने कहा कि कंस इसके फेर में है। अतएव कोई अङ्गना-ग्रह राधा में आविष्ट है। इसे बचाने के लिए कंस के शत्रु कृष्ण की दृष्टि इस पर पड़नी चाहिए। राधा ने निःसंकोच बताया कि कभी कृष्ण की प्रेम क्रीड़ाओं से मैं परितृप्त होकर अब वियुक्त हूं। पौर्णमासी के कहने पर राधा ने प्रेमपत्र कृष्ण को लिखा।

इधर कृष्ण राधा के वियोग में सन्तप्त हैं, जैसा मधुमंगल बताता है—

फुल्ल—प्रसून-पटलैस्तपनीयवर्णा—
मालोक्य चम्पकलतां किल कम्पतेऽसौ।
शङ्के निरङ्कुनवकुंकुमपंकगौरी
राधास्य चित्रफलके तिलकीबभूव॥ २.२५

कृष्ण की दृष्टि में राधा क्या है—

---

१. यह स्थिति रूप ने कुलशेखर-विरचित सुभद्राधनञ्जय के सदृश चित्रित की है।

तस्याः कान्तिद्युतिनि वदने मंजुले चाक्षियुग्मे
तत्रास्माकं यदवधि सखे दृष्टिरेषा निविष्टा।
सत्यं ब्रूमस्तदवधि भवेदिन्दुमिन्दीवरं वा
स्मारं स्मारं मुखकुटिलता-कारिणीयं हृणीया ॥ २.३२

उन्हें राधा की सखियों ने प्रेमपत्र दिया, जिसमें राधा ने लिखा था कि हे कृष्ण, तुम चित्ररूप मे मेरे मन्दिर में बसते हो। जितना ही तुम मुझे खींचते हो, उतनी ही मैं पतंग की भाँति दूर भगती जाती हूँ।

कृष्ण राधा के प्रति अपने प्रेम को छिपा रहे थे। उन्होंने उसकी सखी ललिता से स्पष्ट कह दिया कि राधा से प्रेम का कोई कारण नहीं है। विशाखा यह सब सुन कर चकरा गई। उसने राधा की गुञ्जावली कृष्ण के गले मे पहना दी। कृष्ण ने कपटपूर्वक कहा कि मुझे गुञ्जाहार नहीं चाहिए और उसे उतारने की भ्रान्ति से अपनी रगणमालिका उतार कर उन्हे दे दी। सखियों का काम बना[1]।

कृष्ण को पश्चात्ताप हुआ कि राधा की उपेक्षा का भयावह परिणाम हो सकता है। उन्होंने उसके पत्र का उत्तर राधा के पास भेजा, जिससे स्थिति बिगड़े नहीं।

इधर राधा को लगा कि कृष्ण मेरी उपेक्षा कर रहे हैं। उसने कालिय-ह्रद में डूब मरने के लिए द्वादशादित्य तीर्थ में सूर्योपस्थान की अनुमति बड़ों से ली। वह सखी के साथ यमुना में डूबने चली। मार्ग में कृष्ण और मधुमगल ने उन्हे देखा तो चुपचाप उनकी बातें छिपकर सुनने लगे। राधा ने कृष्ण की भरपूर निन्दा की—

वयं नेतुं युक्ताः कथमशरणां कामपि दशां
कथं वा न्याय्या ते प्रथयितुमुदासीन-पदवीम् ॥ २.४६

कृष्ण ने राधा के प्रेम की पराकाष्ठा अपने कानों से ही सुनकर जान ली। जब राधा ने कृष्ण का ध्यान लगाया तो वे साक्षात् उसके समक्ष प्रकट हो गये। राधा का आनन्द असीम था। पर कुछ ही क्षणों के पश्चात् वहाँ राधा की सास जटिला आ पहुंची।

राधा और कृष्ण परस्पर मिलन के लिए व्याकुल थे। ऐसे समय पौर्णमासी ने कृष्ण को कर्तव्य सुनाया कि इस मार्ग से राधा से शीघ्र मिलन सम्भव है।

पौर्णमासी इधर राधा से मिली और बोली कि कृष्ण का पाना कठिन प्रतीत होता है। तुम तो कोई और उपाय करो।[2] इसे सुनकर राधा की आँखें उत्तानित हो गईं। वह मरणासन्न हो गई। पौर्णमासी को लेने के देने पड़े। उसने राधा को तत्त्वार्थ बताया—

---

१ इस नाटक मे यह कूटघटना छाया-तत्त्वानुसारी है।

२ पौर्णमासी के द्वारा प्रस्तुत यह कूट घटना है, जैसा उसने स्वयं राधा से कहा है—भावाभिव्यक्तये प्रोत्थापितासि।

अमितविभवा यस्य प्रेक्षालवाय भवादयो
भुवन-गुरवोऽप्युत्कण्ठाभिस्तपांसि वितन्वते ।
अहह गहनादृष्टानां ते फलं किमभिष्टुवे
सुतनु स तनुर्जज्ञे कृष्णस्तवेक्षणतृष्णया ।। ३.१७

पौर्णमासी ने समझ लिया कि अब तो यथाशीघ्र राधा और कृष्ण को मिलाना ही होगा। वह कृष्ण को लाने गई। इधर रात्रि की चन्द्रिका से वनभूमि आलोकित हो गई। कृष्ण राधा की दूती के चक्कर में थे कि वह क्यों नहीं आई। तभी दूती विशाखा ने आकर उनसे परिहास किया कि तुम्हारी राधा को तो अभिमन्यु मथुरा ले गया। यह कह कर वह रोने लगी। कृष्ण इसे सुनकर मूर्च्छित हो गये। विशाखा ने परिहास-पद्धति छोडकर उनसे कहा कि मैं झूठ बोल रही थी।[1] तुम्हारे वियोग में तो राधा मर गयी होती, यदि तुम्हारी रङ्गणमालिका उसकी रक्षा के लिए न होती। कृष्ण राधा से मिलने चल देते हैं। ललिता ने राधिका को बलात् खींचकर कृष्ण के पास पहुंचाया। पर्याप्त परिहास कृष्ण के प्रेम को लेकर उसकी सखियों ने राधा से किया। कृष्ण चोर हैं, यह परीक्षा होने वाली है। पर इसकी आवश्यकता ललिता की दृष्टि में नहीं रही, क्योंकि

प्रारब्धे पुरतः परीक्षणविधौ त्रासानुविद्धस्य ते
खिन्नोऽयं करपल्लवस्तरलतां कम्पोद्गमैः पुष्यति ।
रोमाञ्चं शिखिपिच्छचूडनिविडं मूर्तिश्च धत्ते ततो
ज्ञातस्त्वं ननु पश्यतोहरपुरीसाम्राज्य-धौरेयकः ।। ३.३३

अर्थात् कृष्ण पक्के चोर ही नहीं, चोरों के साम्राज्य के सम्राट् हैं। कृष्ण ने कहा कि चोर तो बना दिया गया। अब इस अपराध से मुक्ति का उपाय क्या है? ललिता ने बताया—

गतानां राधायाः स्तन-गिरितटे योगमभितः
विविक्ते मुक्तानां त्वमिह तरलीभूय तरसा ।
विशुद्धानां मध्ये प्रविश शरणार्थी सहृदया
भजन्ते साद्गुण्यादपि पृथुलदोषं हि पुरुषम् ।। ३.३४

कृष्ण ने राधा को पकड़ा तो हाथ छुड़ाकर वह पेड़ों में छिप गई। उसने सखियों से कहा कि कृष्ण को कहीं प्रस्थान कराओ, नहीं तो कोई देख लेगा। कृष्ण ने कहा कि ऐसा नाच नाचने से रहा। अब तो राधा को छोड़कर जाना सम्भव नहीं है। सखियों ने कृष्ण का आग्रह देखा तो राधा से कहा कि प्रणयी की बात मानना उचित है। देर न करो।

---

१. वह विशाखा-वृत्त कूटघटना छाया-तत्त्वानुसारी है।

सखियों के कहने पर कृष्ण ने राधा की चापलूसी की—

अयमत्रनिसर्गशीतलः सखि राधाकुचयोरवस्थितिम् ।
नवकांचनकुम्भयोरहं स्फुरदिन्दीवरदामवद् भजे ।। ३.४१

सखियों के सुझाव से राधा की सेवा द्वारा उसे प्रसन्न करने का प्रस्ताव कृष्ण ने रखा—

किं चंदनेन कुचयो रचयामि चित्र—
मुत्तंसयामि कबरीं तव किं प्रसूनैः ।
अंगानि लगिमतरांगि करेण किं वा
संवाहयाम्यतनुखेदकरम्बितानि ।। ३.४४

कृष्ण और राधा का ऐकान्तिक समागम सम्भव न हो सका, क्योंकि तभी मुखरा आ गई। कृष्ण के द्वारा कुशल समाचार पूछने पर मुखरा बोली कि जब तक तुम्हारी वंशी बजेगी, तब तक हम लोगों को सुख कहाँ ? ज्योंही तुम्हारी वंशी की ध्वनि सुनती हैं, सभी गोकुल-बालिकायें वनाभिमुख दौड पडती हैं। कृष्ण को वह हटाना चाहती है। कृष्ण भी जाने के मिस थोडी दूर हटकर वृक्ष के बीच छिप जाते हैं। वे थोडी देर में राधा के निकट आकर उसका पटाञ्चल खीचते हैं। रात्रि का समय होने से रतौंधी से ग्रस्त बुढ़िया कुछ-कुछ देखती है कि क्या हो रहा है। उसे ललिता ने समझा दिया—

मुधा शङ्कामन्धे जरति कुरुषे यामुनतटे
समालोऽयं चामीकरकलित-मूलो निवसति ।
समीरप्रेंखोलादतिचटुल – शाखाभुजनया
वयस्याया येन स्तनवसनमास्फालितमभूत् ।।३.४५

मुखरा का सिर घूम रहा था। वह चलती बनी।

कृष्ण ने फिर तो यथावसर राधा को अपने गले का गुञ्जाहार पहनाया। राधा के बनावटी क्रोध को समाप्त करने के लिए ललिता ने उससे कहा—

हरये समर्प्य तनु कृपणासि कथं दरावलोके ।
दत्ते चिन्तारत्ने न सम्पुटे आग्रहो युक्तः ।।३.३८

ललिता और विशाखा क्यारी सींचने के मिस चलती बनी। राधा और कृष्ण चन्द्रिका-चन्द्रित चन्द्रशाला में जा विराजे।

चतुर्थ अङ्क के आरम्भ के अनुसार एक दिन कृष्ण सन्ध्या के समय गोवर्धन की ओर चले गये। वहाँ वंशी बजाई। चन्द्रावली नामक उनकी एक प्रेयसी वहाँ निकट ही रहती थी। उससे ही मिलने कृष्ण वहाँ गये थे। रंगमञ्च पर एक ओर चन्द्रावली और उसकी सखी पद्मा तथा दूसरी ओर कृष्ण और उनके सहायक सुबल हैं। चन्द्रावली ने कृष्ण की वंशी से ईर्ष्या प्रकट की—

सखि मुरलि विशालच्छिद्रजालेन पूर्णा
लघुरतिकठिना त्वं ग्रन्थिला नीरसासि।
तदपि भजसि शश्वच्चुम्बनानन्दसान्द्रं
हरिकरपरिरम्भं केन पुण्योदयेन ॥ ४.७

कृष्ण ने उसे देखा और कहा—

तदद्य निर्वापय विरहोत्तापं परिष्वंगरसेन।

कुछ काम बना नहीं। चन्द्रावली कृष्ण की मनुहार से प्रसन्न न हो सकी और अन्त में भद्रकाली का दर्शन करने चल पड़ी।

कृष्ण को चन्द्रावली से मिलने का उपाय करना पड़ा, पर उसी समय राधा की स्मृति भी उन्हें हो आई। उन्होंने सुबल से कहा कि ललिता से कहो कि राधा इस स्थान पर चली आये।

मधुमंगल और पद्मा के प्रयास से चन्द्रावली कृष्ण के समीप आ गई। उसने कृष्ण के गले मे वैजयन्ती डाल दी। कृष्ण चन्द्रावली को लेकर दूसरी ओर चले गये। पश्चात् आई ललिता के साथ राधा। उसने सकेतित कुञ्ज मे कृष्ण को न पाया तो समझा कि परिहास के लिए किसी कुञ्ज मे कृष्ण जा छिपे हैं। जब कृष्ण मिले नहीं तो राधा चलती बनी। रात बीत गई। सबेरे कृष्ण उस स्थान पर पहुंचे, जहाँ राधा उनकी प्रतीक्षा में रात बिता रही थी। राधा वहाँ लौटकर फिर आई तो कृष्ण ने झूठ ही कहा कि आज रात यहाँ राधा के वियोग में काटनी पड़ी। राधा ने उनसे स्पष्ट कह दिया कि चन्द्रावली के परिमल से तुम सुवासित हो। राधा को प्रसन्न करने के लिए अपने उत्तरीयाञ्चल में रखे पुष्पो के साथ हडबड़ी मे वंशी भी कृष्ण ने उसे दे दी। फिर भी राधा ने मान न छोड़ा, यद्यपि कृष्ण ने अनेक बहाने बनाये। अन्त मे कृष्ण ने उससे कटाक्ष-माधुरी की भिक्षा माँगी—

धूलिधूसरितचन्द्रकांचलश्चन्द्रकान्तमुखि वल्लभो जनः।
अर्पयन् मुहुरयं नमस्क्रियां भिक्षते तव कटाक्षमाधुरीम् ॥ ४४६

पर यह भी सम्भव न हो सका, क्योंकि मुखरा आ गयी।

कृष्ण ने जाना चाहा। पर वंशी कहाँ गयी? कृष्ण ने जान लिया कि राधा ने ली है। राधा और उसकी सखियों ने कहा कि आपकी वंशी का कोई ठीका हम लोगों ने थोड़े ही लिया है। राधा ने अपनी मातामही मुखरा से कहा कि यह कृष्ण हम लोगों पर वंशी चुराने का आरोप लगा रहे हैं। मुखरा कृष्ण की राधा-विषयक चपलता से व्यथित थी। उसने कृष्ण को डराया कि अब तो मथुरा जाकर कंस से प्रतिवेदन करना है कि तुमको दण्ड दे।

पंचम अङ्क के अनुसार राधा का पति अभिमन्यु यह देख चुका है कि राधा प्रेमवश कृष्ण की ही हो गई है। वह गोकुल छोडकर कंस की नगरी मथुरा में राधा

को ले जाकर बसना चाहता है। पौर्णमासी का निश्चय है कि ऐसा न होने दूंगी। इस योजना के अन्तर्गत राधा को आज कृष्ण से मिलाना है। उसने कृष्ण को समाचार भिजवाया कि अभिसारोत्सव के लिए उद्यत रहे। वह ललिता के साथ राधा से मिली। उस अवसर पर नान्दीमुखी ने राधा के वियोग में कृष्ण की दशा बताई—

> क्षणमपि न सुहृद्भिर्नर्मगोष्ठी विधत्ते
> रचयति न च चूडा चम्पकानां चयेन।
> परमिह मुरवैरी योगविन्मुक्तभोग-
> स्तव सखि मुखचन्द्रं चिन्तयन्निर्वृणोति ॥ ५.१४

राधा के पास कृष्ण की जो वंशी थी, वह एक दिन अकस्मात् वायु के प्रवेश से बज उठी। जटिला ने सुना तो वस्तु-स्थिति समझ ली और बलात् मुरली ले ली। वृन्दा और पौर्णमासी ने गम्भीर स्थिति को समझ लिया। वृन्दा ने कहा कि मुरली को शीघ्र ही चुरवा लाती हूं। सुबल ने आकर जटिला से कहा—दहिचोर बन्दरिया तुम्हारे घर में घुसी है। जटिला ने मर्कटी को भगाने के लिए वंशी फेंक कर उसे मारा। बन्दरिया वंशी लेकर कदम्ब वृक्ष पर जा बैठी। वंशी फिर राधा के पास पहुंच गई।

राधा की मातामही मुखरा ने अभिमन्यु का सन्देश राधा के लिए दिया कि उसे पूजा-सामग्री लेकर चैत्यवृक्ष के नीचे पहुंचना है, जहाँ अभिमन्यु गोमङ्गला नामक चण्डी की पूजा करेगा।

कृष्ण राधा के अभिसार की प्रतीक्षा में राधामय हो चुके हैं। उनका कहना है—

> राधा पुरः स्फुरति पश्चिमतश्च राधा
> राधाधिसव्यमिह दक्षिणतश्च राधा।
> राधा खलु क्षितितले गगने च राधा
> राधामयी मम बभव कुतस्त्रिलोकी ॥ ५.१८

कृष्ण के परिहासात्मक मनोरञ्जन के लिए सुबल ने राधा का वेश बनाया और वृन्दा ने ललिता का। इस वेश में वे दोनों कृष्ण के पास पहुचे। कृत्रिम राधा की साड़ी के भीतर कृष्ण की मुरली झलक रही थी।[1] कृष्ण ने अञ्चल से वंशी खींच कर मधुमंगल को दे दी। इसी बीच जटिला आ गई। उसने ललिता और राधा को पकड़ लिया और चलती बनी। कृष्ण ने मधुमंगल को भेजा कि देखो राधा का क्या

---

१. यह छायानाट्य की प्रवृत्ति है। शास्त्रीय परिभाषानुसार यह गर्भसन्धि का अमृताहरण नामक अङ्ग है। अमृताहरणं छद्म। साथ ही यह पताका स्थानक है। नायक सोच रहा है कि राधा का आलिंगन कर रहा हूं और वह वस्तुतः उसका मित्र सुबल है।

हुआ ? मधुमंगल ने कहा कि राधिका अवगुण्ठन हटा देने पर सुवल बन गई। जो ललिता थी, वह भी राधा के द्वारा पढ़े गये किसी मन्त्र के प्रभाव से वृन्दा बन गई।

कृष्ण ने वंशी बजाई। ललिता के संग राधा आई। कृष्ण ने समझा कि यह सुवल ही है। कृष्ण को राधा-मिलन की इतनी तीव्र इच्छा थी कि उन्होंने कहा कि राधा-रूप में सुवल ही का आलिंगन करूँ। तभी वृन्दा आ पहुँची और भण्डाफोड़ हुआ कि कैसे किसने रूप-परिवर्तन किया था।

कृष्ण ने राधा से कहा—

तवानुकारात् सुवलं दिदृक्षुणा मया त्वमाप्ता पुरतः सुदुर्लभा।
सादृश्यतः काचमिवाभिलष्यता प्रेमाग्रभूमिर्वणिजा-हरिन्मणिः ॥५.२७

राधा ने कहा—मुग्ध लोगों के प्रति भी कुटिल व्यवहार करते हुये आपको लज्जा नहीं आती। अन्त में राधा ने मान छोड़ा। राधा के संग कृष्ण के वनविहार की सज्जा होती है। कृष्ण वृन्दा के दिये हुए कोकनद से राधा को अवतंसित करते हैं। वनभूमि की उद्दीपन प्रवृत्तियों को सभी प्रशंसापूर्वक निहारते हैं। तभी वहाँ जटिला आ पहुँचती है और सारा गुड़ गोवर हुआ। ललिता, वृन्दा और राधा दूर भाग जाती हैं। कृष्ण का राधा के संग वनविहारोत्सव जहाँ का तहाँ धरा रह जाता है। छठें अङ्क के अनुसार कृष्ण और राधा का शरद्विहार होता है। पौर्णमासी के निर्देश से गोपियों का देवतायतन में रात्रि-जागरण हो रहा है। रात्रि के समय राधा भी बाहर रही है। दीपावली के महोत्सव में आबालवृद्ध गोकुल उन्मादित हो रहा है। गोपियाँ यमुना-तट पर उन्मत्त सी होकर क्या-क्या नहीं कर रहीं हैं। राधा कृष्ण के साथ रह कर स्वयं पीताम्बरा हो गई है। उसकी सास जटिला विशाखा से प्रार्थना कर रही है कि मेरी पुत्रवधू को कृष्ण के हाथ से बचा लो। इधर कृष्ण ने ललिता को गूढ़पत्र भेजा कि राधा को मेरे हाथों में करो। ललिता ने इस दिशा में सोचा और उपाय उसके हाथ में ही था कि उसने कृष्ण का पीताम्बर चुरा रखा था।

कृष्ण की वंशी बजती है। वंशी की धुन से राधिका के बुलाने का प्रयास सफल होता है[1]। राधा के मनोभाव स्वगत से व्यक्त होते हैं—

मदयति मम मेधां माधुरी माधवस्य ॥६.१६

सखियों के साथ कृष्ण का परिहास चलता है। ललिता ने कहा कि राधा को छू तक नहीं सकते। उसके उत्कोच माँगने पर कृष्ण ने कहा कि सन्ध्या को राधा को भी छोड़कर तुम्हारा ही बनकर रहूँगा।

---

१. वंशी की धुन से नीचे लिखा पद्य गाया जाता है—

अयि सुधाकरमण्डलि मण्डय त्वमटवी मृदुपादविसर्पणैः।
उदयशैलतटी-निहितेक्षणो ननु चकोर-युवा परितप्यते ॥ ६.९

कृष्ण शारद श्री के अनुरूप राधा को अलंकृत करने के लिए सामग्री संचय करने गये। इस बीच राधा ककेली-कुञ्ज मे छिप गई। ललिता ने पूछने पर कृष्ण से बताया कि वह घर चली गयी। कृष्ण को तब तो स्थल-नलिनी और वृन्दाटवी राधामय दिखाई देने लगी। विदूषक मधुमंगल ने कहा कि आपको राधा देता हूं। मुझे पारितोषिक प्रदान करें। उसने पत्ते पर राधा लिखकर कृष्ण को पकड़ा दिया। इधर-उधर झाँकने पर छिपी राधा दिखाई पड़ी। राधा से अदृश्य हुए कृष्ण तमाल-षण्ड मे है। राधा और सखियाँ उन्हें ढूढती हैं। जिस काले वातावरण मे कृष्ण छिपे है, उसके रक्षक होने के कारण वे स्तुति करते है—

रे ध्वान्तमण्डल सखे शरणागतोऽस्मि
विस्तारयस्व तरसा निजवैभवानि।
अभ्याशमभ्युपगतानि मुहुर्यथा सा
नावैति मां नवकुरंगतरंगिनेत्रा॥६.३१

अन्त मे राधा को कृष्ण मिले और सप्तपर्ण कुञ्ज मे थकावट मिटाने के लिये पहुचे। वही कुछ देर मे सखियाँ भी पहुंची, और अन्त मे वहाँ रग मे भंग करने वाली राधा की सास जटिला पहुची। पर तब तक तो राधा-कृष्ण का शरद्विहार निष्पन्न हो चुका था।

सातवें अङ्क की कथा के अनुसार वर्षा ऋतु के समारम्भ मे एक दिन प्रात काल अभिमन्यु पौर्णमासी मे अनुमति ले गया कि अपनी पत्नी राधा को कृष्ण के हाथ से बचाने के लिए अब मैं दूर मथुरा जाना चाहता हू। पौर्णमासी ने समझाया कि तुम वास्तविकता को समझो। वहाँ मथुरा में कस राधा को तुमसे छीन लेगा। अभिमन्यु ने मथुरा जाने का कार्यक्रम छोड़ दिया। उसने अपनी माता की आज्ञा के अनुसार राधा को चन्द्रावली-चण्डिका के स्थान पर दीक्षा करने का कार्यक्रम पौर्णमासी को बताया। पौर्णमासी ने कहा—यह ठीक है।

वृन्दा ने पौर्णमासी से कहा कि कृष्ण ने मुझे आदेश दिया है कि आज सौभाग्य पूर्णिमा के दिन गौरीतीर्थ पर पद्मावलम्बित-करा प्रियतमा को लाओ। इस सन्देश का अर्थ पद्मा ने लिया कि चन्द्रावली के साथ कृष्ण सौभाग्य-पूर्णिमा का विहार करेंगे और ललिता ने समझा कि राधा के साथ। इस सम्बन्ध मे परिजनो मे बडा ऊहापोह हो रहा था।

इधर सौभाग्य-पूर्णिमा के दिन कराला ने अपनी पुत्रवधू चन्द्रावली को उसके पति गोवर्धनमल्ल के पास भेजकर सौभाग्यशालिनी बनाने का उपक्रम किया। पौर्णमासी ने राधा को गौरीतीर्थ पर पहुँचाने की योजना बना ली। वृन्दा, ललिता और विशाखा सभी इस योजना को सफल बनाने में लग गईं।

चन्द्रावली को कराला गोवर्धन मल्ल के पास जिस गोवर्धन-गिरि पर भेजना

चाहती थी, वह गौरीतीर्थ के समीप ही था, जहाँ कृष्ण नायिकाओं से मिलने वाले थे। पद्मा की योजना थी–

सौभाग्य-पूर्णिमाहे गौरीतीर्थे फुल्लिते मधुना।
अद्य रममाणां हरिणा सुखेन चन्द्रावलीं पश्य ॥ ७.७

योजना पूरी हुई। संकर्षण तीर्थ के समीप सखियों के साथ चन्द्रावली और कृष्ण मिले। पद्मा ने प्रसन्नतापूर्वक कृष्ण से कहा कि आप का मनोरथ पद्मावलम्बिकरया इत्यादि सुनकर मैंने छलपूर्वक चन्द्रावली से आपको मिला दिया। गौरीतीर्थ पर इससे मिलें। कृष्ण ने समझ लिया कि ऐसी परिस्थिति में राधा से मिलना सम्भव न होगा तो चन्द्रावली के संग ही विहार हो। तभी राधा के समीप होने के लक्षण प्रतीत हुए। पहले तो ललिता और वृन्दा आईं और उन्होंने देखा कि कृष्ण चन्द्रावली-प्रसक्त हैं। वस्तुस्थिति को वे प्रतिनायिका की सखियों से बातें करके जान ही रही थीं कि चन्द्रावली की सास कराला आ गई। उसने कृष्ण और चन्द्रावली को अपशब्दात्मक सम्बोधनों की झड़ी से अभिषिक्त किया। चन्द्रावली को लेकर वह चलती बनी। उसकी सखियाँ भी तितर-बितर हुईं।

कृष्ण गौरीतीर्थ पर जाकर राधा-संगम के लिए सर्वथा उन्मुक्त हुए। राधा का उपहार चम्पकयुग्म उन्हें वृन्दा ने दिया।

कृष्ण राधा के पास पहुँचे। सखियों ने देखा—

पश्चादुपेत्य नयने किल राधिकायाः।
कम्प्रेण पाणियुगलेन हरिर्दधार ॥७३७॥

राधा ने लीलाकमल से हरि पर प्रहार किया। सखियों ने राधा और कृष्ण की केलिमाध्वीक का पान किया—

राधामाधवयोर्मध्यां केलिमाध्वीकमाधुरीम्।
धयन्नयनभृंगेण कस्तृप्तिमधिगच्छति ॥ ७.४१

केलि के पश्चात् कृष्ण ने राधा का अवतंसन किया। उनकी प्रणय-लीला चरमोत्कृष्ट रही। कृष्ण के मुँह से 'चन्द्रानने' का चन्द्रामात्र निकला कि राधा ने समझा कि चन्द्रावली पर वे आसक्त हैं। उसने मान किया। स्पष्ट वक्तव्य राधा का है कि कृष्ण के प्रेम में निष्कपटता का सर्वथा अभाव है। वह वहाँ से चलती बनी। कृष्ण ने कहा कि गौरी का वेष धारण करके राधा को प्रसन्न करूँगा। मधुमंगल ने कहा कि एतदर्थ वेष-सामग्री पद्मा ने मुझ से रखवाई है। कृष्ण ने वृन्दा को सावा कि वहाँ गौरीतीर्थ के गौरी-मन्दिर के गर्भगृह में गौरी के रूप में रहूँगा। वहाँ अपनी भगिनी के रूप में आप मुझे बतायें। इधर राधा भी सखियों के कहने से वृन्दा के पास आई कि आप ही शरण है। सभी वहाँ पहुँचीं। वहाँ उन्हें जटिला मिली। जटिला को चन्द्रावली की सखी पद्मा से समाचार मिल चुका था

कि आज राधा गौरी की अराधना करने के लिए पहुच रही है। वह जानती थी कि राधा की यह पूजा उपचारमात्र है कृष्ण-सगम के लिए। राधा बनावटी गौरी (वास्तविक कृष्ण) की आराधना कर रही है। उससे राधा का प्रेमभाव संवृद्ध हुआ। बनावटी गौरी ने पुरुषोचित प्रणयारम्भ किया। तभी जटिला आ पहुँची। उसने समझ तो लिया कि कहीं राधा-कृष्ण विलास कर रहे है। उसने गौरी-मन्दिर के द्वार के पास कान लगाकर सुना कि राधा देवी से प्रार्थना कर रही है कि आप मेरी प्रार्थना मान लें। देवी ने कहा कि मेरी पादसेविका के लिए क्या अप्राप्य है? जटिला को वृन्दा ने बताया कि राधा अभिमन्यु के प्राणों की भीख देवी से माँग रही हैं। परसो उसे कस भैरव को बलि चढाने वाला है। अब तो राधा के साथ जटिला भी देवी से भीख माँगने लगी। अन्त मे देवी (कृष्ण) ने वरदान दिया—

वशीकृतास्मि वशीन्द्रदुष्करं—
स्तवाद्य राधे नवभक्तिदामभिः।
नदिष्टसिद्धिं कृतगोकुलस्थितिः
सदा मदाराधनतस्त्वमाप्स्यसि ॥ ७ ५७

अभिमन्यु ने प्रण किया कि राधा को अब मथुरा की ओर नही ले जाना है। जटिला ने राधा का आलिगन करके कहा—

'रक्षितास्मि।'

देवी ने अभिमन्यु को डाँट लगाई कि अब राधा पर अविश्वास न करना[1]। राधा के लिए कृष्णमिलन-पथ निर्बाध और प्रशस्त हो गया।

नाट्यशिल्प

विदग्धमाधव मे प्रस्तावना के पश्चात् विष्कम्भक कतिपय पात्रो का सामाजिको को परिचय देने के लिए और नाटक के कार्य-कलाप मे उनके विशेष उद्देश्यो और विधेयो का ज्ञान कराने के लिए भी है

सवादो मे नाटकीयता और आनुषगिक अभिनय लाने का भरपूर प्रयास वाक्क्रीडा द्वारा किया गया है। यथा यशोदा कृष्ण से पूछती हैं कि प्रतिदिन अपराह्न मे तुम्हारे खाने के लिए जो मिठाइयाँ बनाती हूं, वे ठडी हो जाती हैं। उत्तर कृष्ण का सहचर मधुमगल देता है—

गोभ्यः शपे किमपि दूषणमस्य नास्ति
(इति वागुपक्रमे कृष्ण सस्नेहमेन पश्यति)
ताभिर्यदेष रभसादाकृष्यमाणः
कुञ्जं विशत्यधिककेलिकलोत्सुकाभिः
(इति वागसमाप्तौ)

---

१. यह कूटघटना है।

कृष्ण मन में सोचते हैं कि गोपियों से मेरे गोपनीय प्रसंग को छेड़ रहा है। उसे संकेत से रोकते हैं और सिर धुनते हैं।

मधुमगल कहता है कि रोकते क्यों हैं? आज तो आप की माँ के सामने सारी पोलपट्टी खोल ही दूँ। कृष्ण यह सुनकर मन में सोचते है कि आज तो इसने मुझे लज्जाजाल में गिराया ही। अन्त में मधुमंगल ने कहा--

पीताम्बरस्त्वरितमम्ब सुहृद्घटाभिः ॥१.२०

उसने मन मे रखा था कि गोपियाँ इन्हें केलि के लिए कुञ्ज मे ले जाकर विलम्ब कराती हैं, पर गोपियों के स्थान पर कहा सुहृद्वर्ग।

इसी प्रकार जब पौर्णमासी ने कृष्ण से कहा कि पुष्पाक्चय के लिए गोपियाँ इकट्ठी होंगी तो आपका महोत्सव होगा। कृष्ण को शृंगारित वृत्ति की गन्ध इसमें अवश्य मिली। दूसरे ही क्षण पौर्णमासी ने अपने अभिप्राय की दिशा दूसरी करती हुई कहा--

एवमभिप्रायास्मि। ततः तासां शून्येषु सद्मसु सखिभिस्ते सुखमपहर्तव्यानि गव्यानि[1]।

भावी कथा की प्रवृत्ति को कवि बतलाते चलता है। वह प्रथम अंक मे पौर्णमासी से कृष्ण को सूचित कराता है—

सा विष्णुपदवीथी सचारिणी राधा नृलोके केन लभ्यताम्।

अर्थात् अभिमन्यु से विवाह भले ही हो, प्रेयसी तो राधा आपकी ही होगी।

रंगमञ्च पर स्त्रियों का इतना प्रगल्भ व्यापार अन्यत्र कदाचित् ही मिले। कराला, मुखरा और जटिला तो मारपीट के लिए उतारू रहती हैं और दण्ड-प्रयोग मे निष्णात हैं।

नाटक में स्त्रियों और विदूषकादि के संवाद में पद्यभाग संस्कृत में हैं। नियमानुसार उन्हें प्राकृत में होना चाहिए था। स्त्रियों के संवाद के गद्यभाग यथानियम प्राकृत मे हैं। गीतोचित पद्यों को स्त्रियाँ कभी-कभी प्राकृत में बोलती हैं।

संवाद में शाब्दिक कौशल का प्रासंगिक विन्यास चमत्कारपूर्ण है। मधुमंगल के पूछने पर जब कृष्ण कहते हैं कि माला बिना शून्य हृदय हूं, तो मधुमंगल तत्काल कहता है 'बालं त्ति भण' अर्थात् माला के स्थान पर बाला (राधा) कहें।

नाटकीय परिस्थियों में वैपरीत्य का सन्दर्शन कवि ने कौशल पूर्वक किया है। यथा,

रसोक्तस्यान्यथा व्याख्या यत्राक्स्यन्दितं हि तत् ॥

इनको उदाहरण नामक भूषण में भी रख सकते हैं।

वाक्यं यद् गूढतुल्यार्थं तदुदाहरणं मतम् ॥

शशी वृत्तो वह्निः परमहह वह्निर्मम शशी ॥ २·३

---

१. उपर्युक्त दोनों उदाहरण अवस्यन्दित नामक वीथ्यङ्ग हैं।

अर्थात् चन्द्र आग का काम करता है और आग चन्द्र की भांति शीतल है। यह वियोग सतप्त राधा की दशा है।

छायानाट्य

चित्र को छायानाट्य का माध्यम द्वितीय अक में बनाया गया है। राधा कृष्ण के चित्र को देखकर कहती है—

हन हृदय यस्य प्रनिच्छन्ददर्शनमात्रत ईदृशी दुरूहसंगमा उपस्थिता तेऽवस्था तत्रापि पुना राग वहसि।

इस चित्र को विशाखा ने बनाया था और राधा ने उसे कर्णिकार-कुञ्ज मे बैठ कर देखा था। उसे देखकर वह उन्मत्ता सी हो गई। पचम अक मे सुबल राधा बनता है और वृन्दा बनती है ललिता और वे दोनों केवल जटिला को ही नही छकाते, कृष्ण को भी चक्कर मे डालते हैं।

नर्म

कवि ने अपनी कला द्वारा कथापुरुषो के समीचीन स्तर के अनुरूप नर्म प्रस्तुत किया है। पौर्णमासी कृष्ण से कहती है—

गोपेश्वरस्य तनयोऽसि नयोपपन्नः
ख्यातस्तथा व्रजकुले भुजयोर्बलेन।
लीलाशतैस्तदपि किं कुलयोषितस्त्व-
मुन्मादमुद्वहसि माधव राधिकायाः॥ ३५

यह बुढिया कृष्ण और राधा का मेल-मिलाप कराने के लिए नियुक्त है। उसका यह कहना है। यह परिहास कूटघटना है। रूपगोस्वामी कूटघटना-विन्यास मे नदीष्ण थे। उन्होने वारवार इसका प्रवर्तन किया है।

एकोक्ति

विदग्धमाधव मे कतिपय विशुद्ध एकोक्तियाँ हैं। चतुर्थ अक मे पन्द्रहवाँ और सोलहवाँ पद्य एकोक्ति हैं। यथा

कृष्ण —(राधा स्मरन् सोत्कण्ठम्)
प्रसरति यद्भ्रूचापे श्लथज्यमकरोत् स्मरो धनुः पौष्पम्।
मधुरिममणिमञ्जूषा भूषायै मे प्रिया सास्तु॥४.१५
(पुनः सौत्सुक्यम्।)
सा मुखसुषमा निर्जितराकाचन्द्रा वलीलसन्मध्या।
मुहुराधास्यति राधा मदुरसि रसिका किमात्मानम्॥ ४.१६

एकोक्ति के द्वारा प्रेक्षको को कुछ आवश्यक सूचना दी गई है और साथ ही मनोरंजन की सामग्री भी। यथा,

भ्रमरेऽपि गुञ्जति निकुंजकोटरे
मनुते मनस्तु मणिनूपुरध्वनिम् ।
अनिलेन चञ्चति तृणाञ्चलेऽपि तां
पुरतः प्रियामुपगतां विशंकते ॥ ४.१७

इसी अंक मे आगे चलकर अभिसार-भूमि मे कृष्ण अकेले रह गये है। प्रभात होने वाला हैं। राधा को मिलने का अवसर उन्होंने नही दिया था, फिर भी राधा के लिए चिन्ता उन्हें थी। इस एकोक्ति मे प्रातःवर्णन के पश्चात् वे राधा की विप्रलम्भावस्था का वर्णन करते हैं। यथा,

कपटी स लता कुटीमिमां सखि नागादधुनापि माधवः ।
इति जल्पपरीतया तया क्लमदीर्घा गमिता कथं तमी ।।४.२७

उन्होंने लक्षणों से जान लिया था कि राधा आई थी। अन्त में वे राधा की मूर्याराधन-वेदिका पर जा बैठे।

विदग्धमाधव के पञ्चम अंक मे मानवती राधा की एकोक्ति विशेष उल्लेखनीय हैं। कृष्ण की मनुहार ठुकराने का अनुताप उसे है। वह रसाल-मूल मे काँपती हुई गुनगुना रही हैं—

कर्णान्ते न कृता प्रियोक्तिरचना क्षिप्तं मया दूरतो
मल्लीदामनिकामपथ्यवचसे सख्यै रुषः कल्पिताः ।
क्षोणीलग्न-शिखण्डशेखरमसौ नाभ्यर्थयन्नीक्षितः
स्वान्तं हन्त ममाद्य तेन खदिरांगारेण दंदह्यते ।। ४.५

धन्यास्ता हरिणीदृशः स रमते याभिर्नवीनो युवा
स्वैरं चापलमाकलय्य ललिता मां हन्त निन्दिष्यति ।
गोविन्दं परिरब्धुमिन्दुवदनं हा चित्तमुत्कण्ठते
विश्वासं विधिमस्तु येन गरलं मानाभिधं निर्ममे ।। ५.७

(भृंगीमवेक्ष्य)

कृमिरपि नमितात्मा हन्त वृन्दावनेऽस्मिन्
कलयति निजमौलौ बर्हमौलेर्निदेशम् ।
अनुनयति मुहुर्मां नेतुकामालिनीयं
यदमलमधुरोक्तिस्तस्य दृष्टि शठस्य ।। ५.८

कधं एसो मं मोहिनं परिरद्धुं उवसण्णो कण्हो। हन्त भो वंककलाशालिन् चन्दा अलीकोऽचिरासंगभंगुरकुरंग, अवेहि। एसो तुमं परिभविस्ससि मए।

यमुनातीरकदम्बाः सम्प्रति मम हन्त साक्षिणो यूयम् ।
एप बलान्मामबलां गोकुलधूर्तः कदर्थयति ।।५.९

राधिका की उत्कण्ठा की यह पराकाष्ठा एकोक्ति के द्वारा ही व्यक्त हो सकती थी, अन्यथा नहीं। यही एकोक्ति की उपयोगिता है।

पात्रप्रवेश

पात्रों को रंगमंच पर लाने के लिए नाटककार को पूर्वसूचना सोद्देश्य देनी चाहिए कि अमुक पात्र के रंगमंच पर आने की सम्भावना है। रूप ने श्लेषालंकार के द्वारा दूसरे अर्थ में पूर्वप्रयुक्त पदों को पात्र नाम संज्ञित करके कहीं-कहीं पात्रों का प्रवेश कराने में कौशल दिखाया है। यथा सप्तम अंक में—

चन्द्रावली—अम्महे ललिता वृन्दावनलक्ष्मी ।
(ततः प्रविशति ललिता वृन्दा च ।[1])

अन्यत्र

चन्द्रावलीं मामनुरुध्यमानां रुणद्धि पद्मे भवती बलेन।
मल्लीं तमालाभिमुखं मिलन्तीं हिंस्रेव वल्ली पुरतः कराला ।।७.२८

कृष्ण के इतना कहते ही कराला आ धमकती है।

चरित्रचित्रण

रूप की चरित्र-चित्रण कला दुर्बोध है। तृतीय अंक के आरम्भ में उनकी पौर्णमासी कृष्ण को आशीर्वाद देती है—

'गोपस्तनतटीष्वलम्पटी भव ।'

यह पौर्णमासी उज्जयिनी के सान्दीपनि की माता, काषायाम्बरधारिणी श्वेत-केशा और नारद की शिष्या है। कृष्ण भी पौर्णमासी को द्वितीय अंक में धूर्त विशेषण से सम्बोधित करते हैं।

रूप ने मधुमंगल नामक कथापुरुष का सर्जन किया है, जो सान्दीपनि का पुत्र होने पर भी अर्धविदूषक बन गया है। यह कृष्ण की पोलपट्टी खोलकर मनोरंजन प्रस्तुत करता है। राधा के चक्कर में पड़े हुए कृष्ण को वह ब्रह्मचारी-शिखामणि कहता है। जब कृष्ण कहते हैं कि हमें गोपियों से क्या लेना देना तो वह समीक्षा करता है—

अस्मत्प्रियवयस्यस्य हृदयस्याद्यापि रागो युष्मद्गोपिकानामंगेषु न मया दृष्टोऽस्ति । प्रत्युत तासामंगराग एवास्य हृदये दृश्यते ।

कभी-कभी कवि एक ही विशेषण पद से पूरा चरित्र-चित्रण कर देता है। मुखरा के लिए वह विशेषण देता है—गड्डुर-विषाणकठोरे

१ यह अदृष्टाहृति का उदाहरण है। चन्द्रावली ने वृन्दावन की शोभा के लालित्य की चर्चा की और आ गईं वहाँ राधा के आगमन को बताने वाली दो सखियाँ ललिता और वृन्दा, जिनसे चन्द्रावली को चिढ थी।

कृष्ण माध्वीकपान करते थे—कवि की यह कल्पना यदि किसी पुराणवचन पर आधारित भी हो तो भी ऐसे भक्तिरसात्मक नाटक में ग्रहणीय नही होनी चाहिए थी।[1]

अन्यत्र वनलताओ का मानवीकरण है—

> स्मितं वितनु माधवि प्रथय मल्लि हासोद्गमं
> मुदा विकसपाटले प्रुटयूथि निद्रां त्यज।
> प्रसीद शतपत्रिके भज लवंगवल्लिश्रियं
> दधार सह राधया हरिरयं विहारस्पृहाम् ॥५.६४

यह वृन्दा नामक वनदेवी का आह्लाद है। यह वनदेवी पात्र बनकर रंगमञ्च पर आती है।

कवि ने कीर और सारिका को भी पात्ररूप में प्रस्तुत किया है, यद्यपि ये रंगमञ्च पर नही आते और नेपथ्य से ही बोलते हैं। सारिका कहती हैं—

> चञ्चल सन्ध्याघन इव मुहूर्तराग तनोति ते स्वामी।
> वहति स्नेहं राधा केवलं नवनीतपुत्रीव ॥ ५.३७

बीसवी शती में वर्तमान आधुनिकाओ का स्वरूप कवि की इस सोलहवी शती की रचना मे भी मिलता है। ऐसा लगता है कि आज की कामशास्त्रीय उद्दामता-विशिष्ट आधुनिकायें कुछ आगे नही बढ पाई हैं। सोलहवी शती की राधा अपनी सास के विषय मे कहती है—

> एषा कालरात्रिरिव दारुणा वृद्धा मां दृष्टवती।[2]

यह सर्वथा अशोभनीय है।

नायिकाओ के स्पर्धालु सखी-सैन्य की व्यङ्ग्योक्तियों में चोखापन कही-कही देखते बनता है। राधा की सखी ललिता चन्द्रावली की सखी पद्मा से सोल्लुण्ठ कहती है—

> रोलम्बीनिकुरम्बं चुम्बति गण्डं पिपासया तस्य।
> सरति तृषार्तः सरसीं स करीन्द्रस्तं पुनर्नहि सा ॥ ७.२१

पद्मा का उत्तर है—

> विद्योतमाना राधा प्रेक्ष्यते तावत्तारकालीभिः।
> गगने तमालश्यामे न यावच्चन्द्रावलिः स्फुरति ॥ ७.२५

---

१. कृष्ण-मिलन की प्रतीक्षा करते समय राधिका ललिता से कहती है—
उपनय शयनान्तं साधु माध्वीकपात्रीम् ॥ ४.२४

२. ऐसी ही उक्ति चन्द्रावली की भी अपनी सास के विषय में है—
अकाण्ड कर्कशाया भवितव्यं चाण्डारया चण्डिम्ना।

शैली

रूपगोस्वामी को श्लेषात्मक शब्दों के प्रयोग का चाव था। किसी वाक्य को वक्ता के अभिप्रेत अर्थ से भिन्न अर्थ में श्रोता ग्रहण करे—यह प्रेक्षकों के विशेष मनोरञ्जन के लिये होता है। जब कृष्ण 'अपराधिकासु वल्लवीषु' कहते हैं तो पौर्णमासी प्रतिवाद करती है कि अपराधिका कैसे है? गोपियों के साथ तो राधा हैं। कहीं-कहीं श्लिष्ट पदावली से अक्षरसंघात नामक भूषण की सृष्टि की गई है।[1] 'भवतैव समुल्लासितो कुसुमेषुरागो वल्लवीनाम्' में कुसुमेषु का अर्थ काम और पुष्प दोनों है।

कहीं-कहीं अन्योक्तियों के प्रयोग से भावाभिव्यक्ति की गई है। यथा,

एषा कोमलांगी कुरंगी प्रथमं जाले निपतिता।

यहाँ अन्योक्ति-द्वार से कुरङ्गी राधा है। ऐसा ही सन्दर्भ दूसरे अङ्क में है—

मृग्यमाणे वागुरासाधने कुरंगी स्वयं हस्तं गता।

अर्थात् 'अभी हरिणी को पकड़ने के लिए जाल ढूँढा जा रहा था, तब तक वह अपने-आप हाथ में आ गयी। इसमें भी हरिणी राधा अन्योक्ति-द्वार से है। इसी प्रकार का एक अनन्य पद्य है—

चन्द्रिकां चन्द्रलेखायाश्चकोरे पातुमुद्यते।
पिधानं विदधे हन्त शरदम्भोधरावली ॥२.५२

अधोलिखित अन्योक्तियाँ तृतीय अङ्क के अन्त में चमत्कारपूर्ण हैं—

१. एष सतृष्णोऽपि कीरयुवा इमां मधुरां दाडिमीं न प्रतिपद्यते।
२. हृदि ताडितोऽपि दाडिमि सुमनोरागेण ते रुचिं वहता।
   पक्विमरसासि किं वा नेति शुकः शङ्कयोदास्ते ॥२.५५
३. कौमुदीयं पौर्णमासीमनुवर्तते।
४. रोलम्बी-निकुरम्बं चुम्बति गण्डं पिपासया तस्य।
   सरति तृषार्तः सरसीं स करीन्द्रस्तं पुनर्न हि सा ॥७.२१

रूप की रूपक-परम्परा श्रेणीबद्ध है। उदाहरण है—

हित्वा दूरे पथि धवतरोरन्तिकं धर्मसेतो—
र्भंगोदग्रा गुरुशिखरिणं रंहसा लंघयन्ती।
लेभे कृष्णार्णवनवरसा राधिकावाहिनी त्वां
वाग्वीचिभिः किमिव विमुखीभावमस्याः करोषि ॥३.९

उपमानों को कवि प्रकृति की सुन्दरतम विभूतियों से चुनकर प्रस्तुत करता है। यथा, राधा कृष्ण के मुख से उपमेय है—

वदनदीप्तिविधूतविधूदया कुमुदधाममधुरामधुरस्मिता।
नखजितोडुरियं हरिणेक्षणा तृणयति क्षणदामुखमाधुरीम् ॥३.२५

[1] वाक्यमक्षरसंघातो भिन्नार्थं श्लिष्टशब्दकम्

नाटक में अभिनय की सफलता यदि अभीष्ट हो तो यमकालङ्कार की गुत्थी में प्रेक्षक को नही डालना चाहिए। वागाडम्बर के विलासी रूप को यह नियम मान्य नही था। उनका नायक स्वयं नायिका को यमक की पहेली बूझाता है। यथा,

चन्द्रावलीवदनपुष्करसंगिगण्ड-
चन्द्रावलीकतरतर्ककलंकितांगी।
शंकाकुलोऽत्र कलयन् कमलायताक्षि
शं काकुलोलहृदयः प्रविशामि नाहम् ॥४.१२

कहीं-कही पदो का मर्मविन्यास सवादो को चोखापन प्रदान करता है। यथा सप्तम अङ्क में—

एषः पलाशी न खलु तव विलासी।

समीक्षा

भक्ति की आड़ मे मर्यादापूर्ण शृङ्गार का चरम प्रकर्ष इस नाटक में दिखाई पड़ता है।[1] सम्भवतः यह कृति राधाकृष्ण की चैतन्य प्रवर्तित भक्तिधारा को सर्वजन-ग्राह्य अथवा लोकप्रिय बनाने के लिये रची गई थी। एक भक्त कवि को ऐसी रचना करनी चाहिए कि नही? यह प्रश्न तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में ही समाधेय है। ऐसा लगता है कि भागवत, गीतगोविन्द आदि की परम्परा मे प्रवर्तित शृङ्गारित भक्तिकाव्य इस युग मे कवियों ने आवश्यक माना था।

विदग्धमाधव अधिकांशतः कपट-नाटक है। इसके चरितनायक कृष्ण के विषय में नायिका राधा का कहना है कि वे कपट-परिपाटी-नाटक सूत्रधार हैं। ऐसा लगता है कि गर्भसन्धि का छद्ममय अङ्ग अभूताहरण कालान्तर मे इतना लोकप्रिय होता गया कि नाट्यकारों ने शनैः शनैः इस कपट-तत्त्व को अपनी कृतियों में सविशेष स्थान दिया।

सूक्तिसौरभ

रूप का सूक्ति-सौरभ रसिक सज्जनों के मुख को सदैव सुवासित करता रहेगा। उसका आदर्श है—

अप्रेक्ष्य कलममात्मनो विदधति प्रीत्या परेषां प्रियं
लज्जन्ते दुरितोद्यमादिव निजस्तोत्रानुबन्धादपि।
विद्यावित्तकुलादिभिश्च यदमी यान्ति क्रमान्नम्रतां
रम्या कापि सतामियं विजयते नैसर्गिकी प्रक्रिया॥

१. नाटक का चातुर्दिक् विक्षेप नीचे के पद्यों मे स्पष्ट है—
सर्वस्वं प्रथमरसस्य यः प्रथीयान् कंसारेन्दयति राधया विलासः।
वक्तुं को विरमतु तं जनः समन्तादानन्दस्तिरयति चेद्गिरां न वृत्तिम् ॥७.२
हरिरेष न चेदवातरिष्यन्मथुरायां मधुराक्षि राधिका च।
अभविष्यदियं विसृष्टिर्मकराङ्कस्तु विशेषतस्तदात्र ॥ ७.३

अथवा–संनिकृष्टस्य सुरभेः सौरभ्यमनुभूयताम् ।

सूक्तियों में कामशास्त्र की शिक्षा भी दी गई है । यथा,

प्रणयिषु　मिलितेषु　प्रेमभाजामपेक्षा
घटयति　　　कटुपाकान्युच्चकैर्दूषणानि ।
दिनमणिरनुरागी प्रोज्झ्य सन्ध्या हि रक्ता
तमसि निखिलमुग्रे मज्जयत्येष लोकम् ॥३.११

अन्यत्र—चपलप्रेमाणो बाला रमण्य ।

लोकोक्तियो के द्वारा सवाद मे प्रचुर प्रामाणिकता निर्भर है ।

यथा,

कृष्णः—(सस्मितम्) ललिते, कृतमत्र वञ्चनवागुरी प्रपञ्चेन । नहि लूतया प्रसारिततन्तवो गन्धसिन्धुरस्य बन्धाय प्रभवन्ति ।

ललितमाधव

ललितमाधव रूपगोस्वामी का दूसरा नाटक है । इसकी रचना १५३७ ई० मे हुई ।[1] विदग्धमाधव की भाँति इसमे भी कृष्ण का चन्द्रावली, राधा आदि नायिकाओं से प्रणयात्मक क्रीडाओ की कथा है । वैष्णव के मनोरजन के लिए इसका प्रथम अभिनय राधाकुण्ड के तट पर माधव-मन्दिर के सामने हुआ था । सम्भवतः खुले आकाश मे अस्थायी रगमच की व्यवस्था थी ।

कथासार

सन्ध्या के समय कृष्ण गायो के साथ वनभूमि से घर की ओर लौट रहे थे । चन्द्रोदय हो रहा था । भारुण्डा और जटिला आदि वृद्धाओ ने चन्द्रावली नामक नायिका को गर्भगृह मे डाल कर उस पर रोक लगा दी थी कि वह कृष्ण से न मिले, क्योंकि चन्द्रावली का विवाह भारुण्डा के पुत्र गोवर्धन से हुआ था । जटिला के पुत्र अभिमन्यु से राधा का विवाह हुआ था । कुन्दलता ने चन्द्रावली को अपने बुद्धिकौशल से मुक्त करके उसे कृष्ण से संगमित करा दिया । उनकी प्रेमवार्ता का समारम्भ होना ही था कि भारुण्डा आ पहुची । चन्द्रावली पद्मा नामक सखी के साथ भाग खडी हुई । कुन्दलता यशोदा से मिलने के लिए निकल गई । कृष्ण रोहिणी के पास आ गये । अपनी माँ की गोद मे सिर रख कर वे बोले—'देहि मे मणि-मण्डनम्' । इसी बीच उन्हे कुन्दलता से समाचार मिला कि अशोककुञ्ज मे विराजमान राधा को सनाथ करें । राधा से कृष्ण की भेट उसकी सखियो और दूतियो के द्वारा कराया जाता था । कृष्ण और राधा एक दूसरे के लिए अनुपम अमृतानन्द-निस्यन्द हैं । कृष्ण और राधा क्षणभर के लिए मिले ही थे कि राधा की सास जटिला उसे लेने के लिए कृष्ण को बुरा-भला कहते आ पहुँची ।

राधा का कृष्ण के बिना समय काटना कठिन हो गया । उसकी सास जटिला

१. नन्देषु वेदेन्दुमिते शाकाब्दे (१४५९ शा० स०) समापयं भद्रवने प्रबन्धम् ।

यह सब जान कर उसे छोड़ती ही नहीं थी। एक दिन उसे सूर्य की पूजा करनी थी। इसके लिए कृष्ण को विप्रवेश में पूजा करने के लिए बुला दिया गया। साथ में थे मधुमंगल आदि उनके मित्र। इस प्रकार राधा-कृष्ण का मिलन है, जिसमें कृष्ण का आह्लाद वाक्य है—

विहार-सुरदीर्घिका मम मनः करीन्द्रस्य या
विलोचनचकोरयोः शरदमन्दचन्द्रप्रभा।
उरोऽम्बरतटस्य चाभरणचारु तारावली
मयोन्नतमनोरथैरियमलम्भि सा राधिका॥२'१०

जटिला ने कृष्ण को पहचाना नहीं। उसने कहा कि यही वटु (कृष्ण) राधा से सूर्य की पूजा कराये। राधा ने उन्हें पहचान लिया। कृष्ण ने मन्त्र पढ़ा—

निभृतमरतिपुञ्जभाजि राधे
त्वदवरदर्पितचापले चलाक्षि।
चटुलय कुटिलां दृगन्तलक्ष्मीं
मयि कृपणे क्षणमोऽद्यमः सवित्रे॥२'१३

अन्त में कृष्ण की इच्छानुसार राधा को रत्नसिंहासन पर सन्ध्या समय पहुंचाया जाता है। उनकी प्रेमानुवृत्ति में बाधा बन कर कंस का भेजा शंखचूड नामक दैत्य सिंहासन सहित उड़ जाता है। कृष्ण ने उसे मार डाला। सब की रक्षा हुई।

कंस ने अक्रूर के द्वारा कृष्ण और बलराम को मथुरा आने का निमन्त्रण दिया। उनके साथ पौर्णमासी भी मथुरा गई। सारे गोकुल में विषादच्छाया आ पड़ी। राधा की स्थिति विशेष शोचनीय थी। वह कृष्ण-वियोग में मुक्तकण्ठ से रोती रही। चक्रवाकी, वायस, शारिका, हरिणी, गुञ्जावली, चन्द्रावली, जलधर, गिरिवर गोवर्धन, कदम्ब आदि को सम्बोधित करती हुई अर्धोन्मत्त राधा साभिप्राय बातें कहती है। प्रगाढ उन्माद होने पर वह सुधबुध खो बैठी। मूर्च्छित राधा के नासा-शिखर पर वनमाली कृष्ण की निर्माल्यमाला रखने पर पुनः चेतना प्राप्त हुई। वह कृष्ण से मिलने के स्थान पर यमुना के खेलातीर्थ पर जा पहुंची। विशाखा और राधा दोनों वहाँ जल में अवतीर्ण हुई। गम्भीर प्रवाह में निमग्न वे दोनों फिर नहीं उपराईं। उस समय आकाशवाणी हुई—

प्रभुर्भवति कः कृती महिमपूरमस्याः परं
निरूपयितुमुज्ज्वलं जगति गोपवामभ्रुवः।
मुनीन्द्रकुलदुर्लभा नवतडिद्विलासाद्यया
भिदां सह वयस्यया मिहिरमण्डलस्याकरोत्॥३.५५

यह सिद्धों ने सुनाया था।

ललिता से राधादि की यह जलगति नहीं देखी गई। वह गिरिशिखर से कूद पड़ी।

मथुरा मे बलराम और कृष्ण ने कंस वध किया।[1] इसके पश्चात् उनका व्रतबन्ध हुआ, जिसमे सम्मिलित होने के लिए यशोदा के साथ गार्गी आई। कृष्ण के अभिषेक के अवसर पर रोहिणी आ चुकी थी। गोपियो सहित चन्द्रावली को मथुरा लाने के लिए उद्धव गये। किन्तु उसे लेकर पहले ही रुक्मी कुण्डिन नगर चला गया था। उसे शिशुपाल से ज्ञात हो चुका था कि वह वस्तुत रुक्मिणी है। नरकासुर १६१०८ गोपकुमारियो को हर ले गया। जब वे कृष्ण के वियोग मे एकत्र होकर यमुना तट पर स्तवपाठ कर रही थी। इन सब वृत्तो से व्यग्र कृष्ण के मनोविनोद के लिए एक रूपक रचा गया, जिसका अभिनय गन्धर्वो ने किया। गर्भाङ्क मे रंगपीठ पर अभिनेता और प्रेक्षक दोनो के रूप मे थे—कृष्ण, मधुमंगल मुखरा, पौर्णमासी और उद्धव। कोरे अभिनेता के रूप मे थे राधा, ललिता, जटिला, वृन्दा, अभिमन्यु, माधव। माधव ने वेणुगीत के द्वारा सूचना देकर ललिता को बुलाने का उपक्रम किया। तदनन्तर निकट ही राधा ललिता के साथ प्रकट हुई। माधव माधवीमण्डप मे छिप गये। ललिता ने उस रम्य वातावरण मे राधिका को शीघ्र ही माधव से मिलने का सन्देश दिया। उस गर्भाङ्क के पात्र राधिका से मिलने के लिए कृष्ण उठ खड़े हुए तो उद्धव ने उनसे कहा—देव! नाट्यप्रणीतोऽयमर्थ। मुखरा तो राधिका की ओर दौड पडी। उसे पौर्णमासी ने बताया कि यह गान्धर्व है, वास्तविक नही। उसके उद्गार को सुनकर मधुमंगल ने कहा कि मुझे राधा से कुछ दूर ही होने पर तुम तो कुक्कुरी की भाँति भूँकती थी।

गर्भाङ्क की अभिनेत्री राधिका को शंका हुई कि हमे मुखरा ने देख लिया। इधर जटिला उसके पीछे लगी हुई थी। ललिता के निर्देशानुसार यमुना-तटीय सँकरे मार्ग से राधा चलती बनी। राधा को वही वृन्दा के साथ माधव दिखाई पडे। राधा-माधव को देखकर सातिशय हर्षित थी, किन्तु वह कृत्रिम रोदन करने लगी। माधव ने राधा को देखकर उसके यौवन की भूरि-भूरि प्रशंसा की। ललिता राधा को माधव-मिलन के लिए प्रोत्सत कर रही थी कि जटिला ने उसे पुकारा कि तुम मेरी बधू राधा को कहाँ लिये जा रही हो? ललिता ने बहाना बनाया कि गार्गी ने कहा था कि आज सूर्य की पूजा माधवी पुष्प से करने पर करोडो गायें प्राप्त होती है। जटिला ने कहा कि मेरी वधू तो कहती है कि तुम इधर-उधर के बहाने बनाकर मेरा अभिसार कराती हो। जटिला ने देखा कि मेरी उपस्थिति मे भी माधव राधा से प्रेमाचार प्रकट कर रहा है। उसने माधव को डाँटा कि किसको डँसने के लिए यहाँ आए हो? माधव ने कहा कि तुम्हे ही।

जटिला को अपहस्तित करने के लिए उसे झूठे समाचार देकर अपने पुत्र अभिमन्यु को ही वेष बदल कर कृष्ण-रूप मे आया हुआ समझ कर चक्कर मे डाला गया।

---

१. वरकेसरमालयाञ्चितश्चलचाणूरचमूरुमर्दन।
कृतुकोच्चलधीरदीदरद्युर्सिहः खलुमोजकुञ्जरम्॥ ४.५

अभिमन्यु को गौवों का क्रय करना था। ऐसी स्थिति में पड़ी माता को छोड़कर उसे बिना बताये ही वह पेटी से सोना लेकर चलता बना।

थोड़ी देर के पश्चात् जब माधव अभिमन्यु का वेष धारण करके आये तो जटिला ने उन्हें अभिमन्यु समझा और उनकी इच्छानुसार राधा को आज्ञा दी कि इनके साथ चैत्य-वृक्ष के नीचे होने वाले उत्सव में भाग लो।

कृष्ण इस नाटक को देख कर राधा के वियोगजनित मानसिक उद्विग्नता से अभिभूत होकर पौर्णमासी से अपनी विषादमयी स्थिति बताते हैं। पौर्णमासी राधा के अभाव में चन्द्रावली से सम्प्रति उनका मिलन कराने के लिए उद्यत हो जाती है। चन्द्रावली विदर्भ की राजधानी कुण्डिनपुर पहुंच चुकी थी।

विदर्भ-देश मे कृष्ण क्रथकैशिकों के आमन्त्रण पर आये और वहीं सर्वोच्च देवताओं ने उनका राज्याभिषेक किया। उनकी स्तुति करते हुए उनसे कहा गया कि आप रुक्मिणी को सनाथ करें। मौक्तिकचूड नामक मथुरा के वन्दी ने कृष्ण की स्तुति में राधिका का नाम लिया तो वे भावावेश में मूर्छित होने लगे। उसी समय उन्हें समाचार मिला कि पार्वती-पूजा के लिए रुक्मिणी दुर्गा मन्दिर में जा रही हैं। नट का वेश धारण करके कृष्ण वहाँ जा पहुचे। वहाँ रुक्मिणी जब अग्नि की प्रदक्षिणा कर रही थीं तो कृष्ण और सुपर्ण निकट आ गये। कृष्ण पहचान नहीं रहे थे कि यह रुक्मिणी मेरी पूर्वप्रेयसी चन्द्रावली है। पर उस वातावरण में उन्हें चन्द्रावली की स्मृति हो आई, जब सुपर्ण ने अपनी बातचीत के बीच 'चन्द्रावली' का दर्शन किया और कहा—

सेयं चन्दनपंकशीतलकरा लब्धाद्य चन्द्रावली ॥ ५.३३

कृष्ण के न मिलने पर चन्द्रावली जब अग्निकुण्ड मे गिरकर अपने प्राणों का होम करना चाहती थी, तभी कृष्ण ने उसे पकड़ लिया। जब चन्द्रावली को हस्तस्पर्श के प्रेमिल कार्कश्य से ज्ञात हुआ कि यह प्रियतम का आलिंगन है तो वह आनन्द से मूर्छित हो गई। पौर्णमासी भी वहाँ आ गई। उन्होंने रुक्मिणी को उठाया। पिता ने चन्द्रावली कृष्ण को अर्पित कर दी। कुछ राजाओं को बुरा लगा कि कृष्ण ने चन्द्रावली से परिणय किया। उन सब को कृष्ण और बलराम ने अपने शौटीर्य से ध्वस्त किया।

छठें अंक में राधा की प्रिय सखी ललिता के कृष्ण से पुनर्मिलन की कथा है। कृष्ण स्यमन्तकमणि का अन्वेषण करने के लिए अरण्य प्रदेश मे प्रविष्ट हुए। वहाँ उन्हें सत्राजित् की कन्या सत्यभामा और स्यमन्तकमणि मिलनी थी। सत्राजित् ने कृष्ण की मांग को ठुकराया था। सूर्य ने स्यमन्तक मणि और सत्यभामा नामक कुमारी को सत्राजित् को अर्पित करते हुए कहा था—

प्रणेष्यति यशःपरं जगति नारदानुज्ञया
वराय वरकीर्तये सुतनुरर्पितेयं तव।
स्यमन्तकमणिश्च ते महितमूर्तिरष्टौ महान्
प्रमोष्यति दिनं दिनं ननु हिरण्यभारानयम् ॥६.६

मणि के हस्तान्तरण की कथा है—

> मणीन्द्रं पारीन्द्रः प्रवरमहरन्निघ्नतनयं
> विनिघ्नन्नेतञ्च प्रबलमथ भल्लूकनृपतिः।
> पराभूय स्वैरी तमपि मुरवैरी तव धनं
> तदाहर्ता पापस्त्वमसि पतितस्तापजलधौ॥ ६.१६

अर्थात् सत्राजित् के पुत्र प्रसेन को मारकर सिंह मणि को लेगा। उसे मारकर जाम्बवान् उसका स्वामी बनेगा। जाम्बवान् को पराभूत करके कृष्ण उसे ग्रहण करेंगे।

नारद ने सत्राजित् को बताया था कि तुम तो यथाशीघ्र सत्यभामा को कृष्ण के लिए अर्पित करके कल्याण प्राप्त करो। नारद की सूचना के अनुसार जब कृष्ण गोकुल छोडकर चले गये तो कात्यायनी देवी ने नरकासुर से १६२०८ गोप-कुमारियों को अपनी शरण मे मँगवा लिया था।

राधा (सत्यभामा) कृष्ण के वियोग मे आत्मोपेक्षा कर रही है। उन्हे लेकर सत्राजित् की माता नारद की आज्ञानुसार कृष्ण के अन्तःपुर के पास आई है। वही चन्द्रावली आ गई। इधर राधा को सूर्य ने बताया था कि जब तक स्यमन्तकमणि कृष्ण तुम्हारे हाथ मे नही बाँध देते, तब तक तुम अपना पहला नाम राधा प्रकट न करना।

सत्राजित् की माता ने सत्यभामा को चन्द्रावली के हाथ सौंप दिया कि यह कृष्ण को भेंट है। चन्द्रावली ने उसे ग्रहण तो किया, किन्तु उसके सौन्दर्य से उसका हृदय आन्दोलित हो उठा कि कृष्ण पर कही यह सर्वाधिकार न करले। कृष्ण की अनुपस्थिति मे नववृन्दावन मे सत्यभामा के रहने की व्यवस्था चन्द्रावली ने कर दी।

कृष्ण लौटकर द्वारिका आये। उन्हे राधा की स्मृति उद्विग्न कर रही थी। उनके पास वह स्यमन्तक मणि थी, जो कभी राधा के शरीर पर विराजमान होकर उन्हे आकृष्ट करती थी। कृष्ण ने बताया कि किस प्रकार जाम्बवान् के आवास पर राधा-कृष्ण की मूर्ति बनाकर उनकी आराधना करती हुई ललिता उन्हे मिली, जिसे जाम्बवान् ने पर्वतशिखर से गिरते हुए बचा लिया था। भीष्मक ने कृष्ण से प्रतिज्ञा कराई थी कि मैं किसी अन्य स्त्री का पाणिग्रहण नही करूँगा। अतएव ललिता को कृष्ण रैवतक की किसी कन्दरा मे सुरक्षित छोड आये थे।

सातवें अङ्क मे नववृन्दा-सङ्गम की कथा है। नववृन्दा ने सत्यभामा से बताया कि विश्वास रखो कि तुम्हे प्राणेश माधव मिलेंगे। सत्यभामा ने कहा कि मुझे भी सूर्य ने बताया है कि नववृन्दावन मे तुम्हे श्याम मिलेंगे। नववृन्दा ने राधा की उत्कण्ठा देखकर उसके लिए यमुनातट पर कदम्ब-मूल के निकट नलिनी-दलों की शय्या बनवा दी। राधा शय्या पर जा विराजी। फिर तो उसने मनोविनोद के लिए वनमाली की मूर्तिपूजा का उपक्रम किया। नववृन्दा के पास विश्वकर्मा-विरचित नील-मणि की मुकुन्द-मूर्ति थी। उसे राधा ने दिव्य मालाम्बर पहनाया और यह गाया—

सोऽयं जीवितबन्धुरिन्दुवदनो भूयः समासादितः ॥७.१८

राधा ने मूर्ति को साक्षात् कृष्ण मानकर कहा—

सखि पश्य, अयुक्तमयुक्तं यन्नीलोत्पलकोमलोऽपि वनमाली कर्कशां वंशिकामेव चुम्बति। तस्मादित एनामाकृष्य ग्रहीष्यामि।

नववृन्दा ने उसे रोका। फिर राधा ने उसका माल्याम्बर, विलेपन आदि से अलंकार किया। तभी चन्द्रावली के द्वारा नियुक्त माधवी के आ जाने से सत्यभामा को अन्यत्र जाना पड़ा।

इधर कृष्ण भी मनोविनोद के लिए नववृन्दावन में उसी प्रदेश में आ पहुंचे। वे राधा के वियोग में नितरा विपन्न थे। घूमते-फिरते वे उस मूर्ति के पास आ पहुंचे, जिसका राधा ने अलंकार किया था। उधर कुछ सखियों की बातें सुनाई पड़ी तो कृष्ण ने मूर्ति को दूर हटवाकर वहीं वेदिका पर अपने विराजमान हो गये। राधा ने उन्हें देखा तो कहा कि यह मूर्ति तो

सत्यमेव माधवदर्शन-चमत्कारमुत्पादयति।

कृष्ण ने राधा को पहचान लिया। इधर राधा स्तब्ध थी—

यत् गोविन्दस्य प्रतिमामेव गोविन्दं मन्ये।[1]

मूर्तिरूपी कृष्ण से रहा नहीं गया। वे बोल उठे—

अयि मायायन्त्रमयि राधिके, सत्यमिदानीमेव कृष्णः क्षेमी, यदियं सर्वमुद्रया तं लोकोत्तरमनुकुर्वती त्वमस्य क्षेमं पृच्छसि।

राधा ने नववृन्दा से चिल्लाकर कहा कि अरे, यह मूर्ति तो बोलती भी है—

अहो गोविन्दस्य प्रकृतिमुपलब्धा प्रतिकृतिः ॥७.३५

स्वाभाविकं धर्मं गता प्रतिमा।

इसी अवसर पर चन्द्रावली के वृन्दावन में आने का समाचार मिला। सत्यभामा को वहाँ से हटना पड़ा। चन्द्रावली वहाँ सपरिवार आयीं। चन्द्रावली ने कृष्ण का वृन्दावनविहारी-रूप देखा तो समझ गयीं कि मेरी उपस्थिति इस वातावरण में अभीष्ट नहीं है। वे चलती बनीं यह कहकर कि आप अपनी हृदयेश्वरी के साथ स्वच्छन्द विहार करें।

नवम अंक में राधा और कृष्ण का विहार है। प्रेमधारा में सत्यभामा अवगाहन कर रही है। कृष्ण के आने पर सौगन्धिक-माला चन्द्रावली ने उन्हें दी। कृष्ण ने उनसे अनुमति ली कि सत्यभामा को सनाथ करें। वे नववृन्दावन में जा पहुंचे, जिसे षड्ऋतु समलंकृत कर रहे थे। बातचीत में कृष्ण ने राधा की प्रिय सखी विशाखा की चर्चा की। कृष्ण ने बताया कि खाण्डवदन में तपस्विनी बन कर विशाखा राधाभीष्ट-साधन नामक वन्य व्रत कर रही थी। उससे मैं मिला। वह तभी मिलेगी, जब स्यमन्तक मणि की प्राप्ति राधा को हो जाये। राधा और कृष्ण ने भूतकालीन

१. इसमें छायातत्त्व सविशेष है।

वृन्दावन-विहार की सभी स्थलियों को देखा। फिर वे यमुना-तट की ओर चले।

राधा के परिष्वङ्ग के कारण सौगन्धिक-माला टूट गयी, जिसे चन्द्रावली की हंसिनी चोच मे दबाकर ले उडी और चन्द्रावली को दिया। कृष्ण दूर जाकर राधा के लिए दूसरी माला बनाने के उद्देश्य से फूल चुनने लगे। चन्द्रावली सत्यभामा की वेश-भूषा मे सज्जित हुई और चल पडी वृन्दावन मे। कृष्ण ने दूर से उसे देखा तो उन्हे भ्रान्ति हुई कि यह राधा है और कहा कि तुम तो मेरे प्राणावलम्बन के लिये परमौषधि हो। नववृन्दा ने देखा कि कृष्ण बुरे फँसे। उसने केतकी-पत्र पर लिखा कि जिन्हे आप राधा समझते हैं, वे चन्द्रावली हैं। पत्र को कृष्ण के हाथ मे दिया पालतू हारीत ने। कृष्ण ने पढकर वस्तुस्थिति जानकर कहा, चन्द्रावलि, मुझे प्रीति प्रदान करे। चन्द्रावलि ने कृष्ण को सौगन्धिक-माला दिखाई। कृष्ण ने कहा कि यमुना के निर्झर प्रवाह मे मेरी माला कही गिर गयी। आप अन्यथा न सोचें। यह कहकर वे दूर चलते बने। वहाँ से चन्द्रावली सत्यभामा की ओर चली और उससे मिलते ही कहा कि अब तो कृष्ण की सगति से तुम्हारी विकलता मिटी। चन्द्रावली ने यह कहने का प्रोढोचित साहस किया—

तस्मिन् सुदृढे बलात्कारेण भुजदण्डपीडने स खलु सुवृत्तः कौस्तुभो युवयोर्मध्यस्थ आसीन्नवेति।

उलाहना सटीक था। राधा ने कहा कि आपको तो मेरी रक्षा करनी थी। फिर अपने को दोष क्यो नही देती। चन्द्रावली ने समझ लिया कि कृष्ण जैसे नायक और सत्यभामा जैसी सुन्दरी से कुछ दूसरा सम्भव नही है। वे राधा को क्षमा करके चलती बनी।

नवम अङ्क मे कृष्ण और राधा नववृन्दावन मे विहार कर रहे हैं। तभी मधु-मगल के कीर ने नेपथ्य से सुनाया—

वृन्दावने स्फुरत्येषा माधवी सुमनस्विनी ॥ ९.१५

और राधा कन्दरा मे जा छिपी। वहाँ सुकण्ठी ने उसे माधवी का भेजा प्रसाधन दिया, जिसे धारण करने के लिए वह अन्यत्र चली गयी। इधर कृष्ण को राधा की पड़ी। उन्होंने भारत, दाडिमी, शुक, आदि से पूछा। अन्त मे सुकण्ठी नामक चन्द्रावली की परिचारिका ने कृष्ण से कहा कि आप तो मेरी आराधनीय विद्याधरी को इस कन्दरे मे चलकर कौस्तुममणि के प्रकाश मे चित्रावली दिखा दें। कृष्ण गुफा मे घुसे तो कौस्तुम के प्रकाश से वहाँ दिन जैसा प्रकाश हो गया। राधा ने उस प्रकाश मे देखा कि मैंने तो रुक्मिणी जैसी दिखाई देने के लिए अभिप्रेत प्रसाधन किया है। कृष्ण और मधुमगल ने उन्हे देखा तो देवी रुक्मिणी समझा। सुकण्ठी ने उनको समझाया कि यह राधा ही हैं। उन्होंने रुक्मिणी का नेपथ्य धारण कर रखा है। अन्त मे कृष्ण ने राधा को पहचाना। फिर चित्रदर्शन आरम्भ हुआ। चित्रावली मे नन्द-महोत्सव, पूतना का स्वर्गवास, शकटभजन, तृणावर्तासुर का प्रणाश, यशोदा का दधि-

मन्थन, अर्जुन-भंजन, कृष्ण का ओखल मे बांधा जाना, अघासुर, ब्रह्मा का कृष्ण की स्तुति करना, तालासुर-वध, प्रलम्बासुर-वध, कालियदमन-लीला, वासोहरण-तीर्थ, गोवर्धनोद्धरण, राधाकृष्ण-शयन, वृन्दारण्य, रासोत्सव, अम्बिकावन, शंखचूड-वध अरिष्टासुर-वध, अक्रूर, मथुरा-प्रयाण, कुवलयापीड-वध, कंसवध आदि दृश्य आलिखित थे।

चित्रदर्शन के पश्चात् राधाकृष्ण रात्रि के दूसरे याम मे कालिन्दी-तट पर पहुंचे। वहाँ चन्द्रावली आ पहुंची। राधा आम्रवृक्ष के झुरमुट में जा छिपी। चन्द्रावली ने देखा कि कृष्ण अन्यमनस्क है और राधा की चिन्ता कर रहे हैं। वे चलती बनी। कृष्ण चल पडे राधा की खोज मे।

दसवें अङ्क में पौर्णमासी व्रज से नन्द को सकुटुम्ब लेकर द्वारका पहुंची। इधर राधा और कृष्ण का प्रणय-सम्बन्ध देखकर रुक्मिणी ने राधा को नववृन्दावन के स्वतंत्र वातावरण से हटा कर अन्तःपुर मे छिपाया। पर कृष्ण को उनके बिना रहा न गया। इस बीच रुक्मिणी ने मधुमंगल के कीर को नववृन्दा के हाथों मँगवा लिया। नववृन्दा ने कृष्ण से बताया कि अब तो प्रेम के बहाने रुक्मिणी राधा को एक क्षण के लिए भी नही छोडती। उस दिन स्यमन्तकमणि को लेकर पिंगला नामक राधा की सखी कृष्ण के पास आई और बोली कि सत्राजित् ने अपनी कन्या सत्यभामा के लिए यह स्यमन्तकमणि भेजी है। उसने मणि कृष्ण को दे दी। कृष्ण ने कहा कि अब तो सत्यभामा को भी मिलना ही है। यह कैसे—

पिंगलानुसृतः मणिसंगी संगतो युवतिवेपकलाभिः।
आदरादनुमतो निशि देव्या तामहं रमयितास्मि मृगाक्षीम् ॥१०.५

कृष्ण ने संध्या के समय नवयुवती का वेप धारण किया। नववृन्दा को काम दिया गया कि अन्तःपुर मे जा विराजो। वहाँ रुक्मिणी राधा से परिहास कर रही थी कि तुम तो कृष्ण के सहवास के स्मरण-मात्र से उद्विग्न हो। तभी नववृन्दा ने उसे कीर दिया। उस समय प्रमदावेपधारी कृष्ण पिंगला के आगे-आगे मधुमंगल के साथ वहाँ पहुंचे। मधुमंगल ने रुक्मिणी से कहा कि सत्राजित् ने सत्यभामा को देने के लिए यह स्यमन्तकमणि इन दो स्त्रियों के साथ भेजा है।

माधवी और रुक्मिणी चक्कर मे आ गई। नववृन्दा ने कहा कि यह श्यामला आप से भी लजाती है। सत्यभामा से बात करने के लिए इसे उनके साथ स्वर्णनिकेतन मे एकान्त मे भेज दें।

सखि सत्ये सुवर्णमन्दिरं गत्वालिंग्यतां रथांगी।

उसी समय नववृन्दा के द्वारा लाये हुए कीर ने सुनाया कि रुक्मिणी के द्वारा रोकी हुई राधा मेरा विनोद नहीं कर पा रही है। इसे सुनकर रुक्मिणी ने कहा कि इसे अपने पिता के पास भेजती हूँ कि वे जान लें कि कृष्ण किस प्रकार दूसरी नायिकायें बनाये हुए हैं। चलकर देखा जाय कि स्वर्णनिकेतन मे क्या हो रहा है?

वहाँ पहुंच कर उसने सत्यभामा से कहा कि तुम्हारे पिता सत्राजित् की भेजी हुई मणि को देखने आ गई हूं। नववृन्दा ने स्त्रीरूपधारिणी कृष्ण के हाथ से उतार कर उसे रुक्मिणी को दिया। रुक्मिणी ने पहचान लिया था कि श्यामला स्त्री वस्तुतः श्याम कृष्ण हैं। उसने उनसे कहा—मुझे आपके विलास मे बाधा डालने मे पाप लग रहा है। मुझे तो आज्ञा दे तो गोकुल में पल्लीवासिनी बन कर रहूं, जिससे आपका नवाभिरामिक प्रणय-पथ प्रशस्त हो।

इस बीच व्रज से यशोदा, रोहिणी, मुखरा, पौर्णमासी आदि द्वारका आ पहुंचे। कृष्ण ने यशोदा से अपने पालित पशु-पक्षियो का समाचार पूछा तो यशोदा ने कहा कि जिस माता-विहीन मृगशावक को गाय के दूध मे आपने पाला था, वह चारो दिशाओ मे रोता हुआ व्रजवासियो के हृदय विदीर्ण कर रहा है। पौर्णमासी ने बताया कि कुछ मयूर तो काले बादलो को कृष्ण मानकर अब भी ताण्डव करते रहते हैं। तुम्हारे सभी मित्र भी नन्द के साथ आये है। चन्द्रावली सभी यशोदादि व्रजवनिताओ से मिली। तभी मुखरा राधा का नाम लेकर मुक्तकण्ठ से रोदन करने लगी। चन्द्रावली भी राधा के लिए रोने लगी।

सब के मिलन का समय आ गया। कञ्चुकी के साथ ललिता और पद्मा आ पहुंची। वे सब से मिली। सभी राधा की चिन्ता मे निमग्न थे। तभी वकुला घवडाई हुई आई। उसने बताया कि सत्यभामा कालियदह मे प्रवेश कर रही है। कृष्ण भी पीछे-पीछे गये। सभी कालियह्रद पहुचे। वहाँ बकुला के मनाने पर राधा उसे कह रही थी कि अब तो मरँगी ही, क्योकि मातृवियोग दुःख सहा नही जाता। तभी उसका वामाक्षिस्पन्दन होता है। पर वह रुकी नही। कृष्ण और नववृन्दा वहा आ गये। कृष्ण भी उस ह्रद मे जा कूदे। वहाँ राधा को आश्चर्य हुआ कि कोई साँप क्यो काट नही रहा है। पीछे से कृष्ण ने उन्हे जा पकडा। उसने समझा कि किसी साँप ने पीछे से पकडा है। पर यह काट क्यों नही रहा है? फिर उसने पीछे देखा तो कृष्ण मिले। कृष्ण ने उसे स्यमन्तकमणि पहनाई और दोनों माधवी-मण्डप की ओर चल पडे। थोडी देर मे सभी व्रजवासी मिले और पहचान हुई कि यह सत्यभामा ही राधा है। सभी की आँखो से आनन्दाश्रु का प्रवाह निर्झरित हो रहा था। अन्त मे विशाखा भी आ गई। राधा और कृष्ण के विवाह का घण्टा बजा। चन्द्रावली ने स्वय राधा का हाथ कृष्ण के हाथ मे पकडा दिया। रैवतक, गोवर्धन और विन्ध्य भी द्वारका में आ गये। वसुदेव और उनके साथ वृष्णिवीर आ पहुचे। रेवती और देवकी भी। नन्द ने कृष्ण का आलिंगन किया राधा और चन्द्रावली ने नन्द को प्रणाम किया। सभी प्रधान देव और देवियाँ आ पहुची।

नाट्यशिल्प

ललितमाधव को कवि ने अपनी नाटकचन्द्रिका के अनुरूप रूपक के सन्धि, सन्ध्यङ्ग, मन्ध्यन्तर, नाटकलक्षण आदि का उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए रचा है। इसमे प्रस्तावना के पश्चात् अंकमुख है। नाटक के आरम्भ मे अंकमुख की योजना विरल है।

संस्कृत नाटकों का अंकमुख दो प्रकार का होता है। एक तो वह जिसमें अंक के अन्त मे आने वाले पात्र के द्वारा अगले अंक के कथांश की सूचना दी जाय।[1] दूसरे प्रकार के अंकमुख में प्रथम अंक के पूर्व ही सभी अंकों मे आने वाली पूरे नाटक की कथा का सार दे देते हैं।[2] इसी दूसरे प्रकार का अंकमुख ललितमाधव में प्रयुक्त है।

रूप ने प्राचीन नाट्याचार्यो की दो मान्यताओं को नही स्वीकार किया है। पहले तो नाटक का नायक धीरोदात्त होना चाहिए। इस नियम के विपरीत इसका नायक धीरललित है। दूसरे नाटक की कथावस्तु प्रख्यात होनी चाहिए। इसके विपरीत इसकी कथा मिश्र है। नारायण ने अपनी टीका मे लिखा है—

ललितनायकगुणास्यैवात्र ग्रन्थे प्रकटनात्ललितमाधवाख्यं मिश्रेतिवृत्तयुतनाटकं चिकीर्षुः इत्यादि।

गौएँ कृष्ण के प्रति अपने बछवों से बढ़कर प्रेम कर रही हैं। नायिकायें अपने पति की उपेक्षा करके नाना व्याज, माया, छल और कपट से अपने उपपति कृष्ण को ही प्राणपति बनाई हुई हैं और प्रकृति का सारा शृङ्गार-सम्भार कृष्णोपचित है।

पताकास्थानक का सुन्दर विधान है—

तिण्णाउला चओरी पंजरिआ संगदा चिरं जलइ।
पाअं वंजुलकुंजे ताराहीसप्पधारेहि॥ १.४६

नायक प्रारम्भ मे किशोर वय का है। अपनी मातादि के लिए तो वह बालक है, किन्तु गोपियों के साथ उसका ऐन्द्रियक विलास प्रवर्तित है। ऐसे नायक वाले नाटक संस्कृत मे विरल ही है।

रंगमञ्च पर नायक आता-जाता रहता है। विशुद्ध शास्त्रीय दृष्टि से नायक यदि एक बार रंगपीठ पर आया तो अङ्कान्त के पहले उसे निष्क्रान्त नही होना चाहिए। पर इसके प्रथम अंक मे कृष्ण अपने पिता से मिलने के लिए रंगपीठ से चल देते हैं और फिर राधा से मिलने के लिए रगपीठ पर आ जाते है। दूसरे अङ्क मे भी कृष्ण आते-जाते हैं। अष्टम अंक मे यही प्रवृत्ति है।

विष्कम्भक के अन्त मे नियमानुसार सभी पात्रो को निष्क्रान्त होना चाहिए, *किन्तु इस नाटक मे पहले और दूसरे अङ्क के बीच मे जो विष्कम्भक आया है,* उसके अन्त मे कुन्दलता को छोड कर केवल अन्य पात्र ही रगपीठ से निष्क्रान्त होते है।

ललितमाधव मे अदृष्टाहृति है जटिला का कृष्ण से कहना—

एकया मम वध्वा एव रक्षिता गोकुलस्य कीर्तिः।

अर्थात् अकेली मेरी बहू राधा कृष्ण के प्रेमपाश मे गिरने से बची होने के कारण गोकुल की कीर्ति की रक्षा कर रही है। प्रेक्षक जानते है कि जटिला भोलेपन के

१. अङ्कान्तपात्रैरङ्कास्यं छिन्नाङ्कस्यार्थसूचनात्। दशरूपक १.६२
२. यत्र स्यादङ्क एकस्मिन्नङ्काना सूचनाखिला।

कारण राधा की प्रवृत्तियों को नहीं जान पा रही है। पचम अङ्क मे माधवी का कृष्ण को न पहचानते हुए यह कहना—

'रे महासाहसिक धृष्टनर्तकयुवराज, मुचैना महाराजपुत्रिकाम्'

अदृष्टाहृति है। वह नहीं जानती थी कि राधा इसी नटवर के लिए प्राण दे रही थी।

प्रेक्षक नाटक के अनेक दृश्यो मे हँसते-हँसते लोट-पोट हो जायेगा। यथा, द्वितीय अक मे जटिला राधा को कृष्ण से वचाना चाहती है, किन्तु उसे भ्रम मे डालकर विप्रवेशधारी कृष्ण से राधा को सूर्योपस्थान के नाम पर प्रेममन्त्र दिया जा रहा है। स्वयं जटिला इस कार्यक्रम की अध्यक्षा है।

द्वितीय और तृतीय अङ्क के मध्यस्थ विष्कम्भक मे वर्त्तमान की आखो देखी परिस्थिति का वर्णन हैं। यथा राधा का नेपथ्य से वचन है—

व्रजनरपतिनन्दन सबन्धुं रथप्रवरे परिप्रेक्ष्य स्फुरन्तम्।
स्खलति मम वपुः कथं धरित्री भ्रमति कुतः किममी नटन्ति नीपा. ॥

यह एक प्रकार से दूसरे कथापुरुषो की वातचीत है, जो उनकी भूमिका मे न आने वाले पात्रो के द्वारा विष्कम्भक मे वर्णित है। नेपथ्य से दूसरो के प्रासगिक मनोभावो का भी वर्णन प्रस्तुत किया गया है। यथा—

कुत्र रुक्मिणी सुरूपा कुत्र दमघोषनन्दनो मन्द ॥ ५.२१

इसमे विदर्भललनाओ का रुक्मिणी की भावी पति-विषयक चिन्ता है। इसे परिभाषानुसार विशुद्ध अर्थोपक्षेपक नहीं कहा जा सकता।

भाषा की दृष्टि से कवि का एक अभिनव प्रयोग है राधा का गद्य भाग प्राकृत मे और पद्यभाग सस्कृत मे बोलना। भावावेश के निरतिशय होने पर एक ही पद्य के कुछ चरण प्राकृत मे और शेष सस्कृत मे बोले जाते हैं।

चतुर्थ अङ्क मे एक रूपक समाविष्ट है, जिसका नाम प्रबन्ध भी दिया गया है।[1] इसमे कृष्ण को रगपीठ के एक भाग मे नट और प्रेक्षक बना कर दूसरे भाग मे माधव को पात्र रूप मे प्रस्तुत किया गया है। गर्भाङ्क वाले चतुर्थ अङ्क मे दो स्थलो पर बरावर महत्त्व के अभिनय अलग-अलग हो रहे है, जिनमे से एक पूर्वकथा के पात्रो के द्वारा गन्धर्वो द्वारा प्रस्तुत दृश्य की प्रतिक्रिया-रूप अनुभावादि को लेकर प्रवर्तित है।

नाट्यभूषणो का सर्वश समावेश इस नाटक मे मिलता है। यथा, मनोरथ का उदाहरण है—

भो हसि, हसपतेः पक्षपातेन उद्धुरा एषा।
त्वामाकर्षति उर्म्याली तद्विश्रब्धा कान्तमनुसर ॥ ४.२३

१. किञ्चिदपूर्वं रूपक कारितम्।

केनापि चारुसन्धिना प्रबन्धेन जगद्वन्धोरस्य समाराधनाय कुलाचार्येण स्वर्गतः प्रेषितोऽस्मि।

इसमें व्याज से विवक्षित का निवेदन है।

यथा स्थान सन्ध्यन्तरो का समावेश किया गया है। यथा, देव, वाढमातपत्र फणापटली लघीयसः किंकरस्यास्य गरुत्मतः सकृत्पक्षविक्षेपकेलयेऽपि न, पर्याप्तिमेष्यति। दूरे विभ्राम्यतु सखा में सुदर्शनः कल्पान्तकृशानुः, यह ओजः नामक सन्ध्यन्तर है।

नाट्य-निर्देशो की विविधता और नवीनता स्थान-स्थान पर मिलती है। यथा चतुर्थ अङ्क में एक नाट्य-निर्देश है—

'इति नासया थूं थूं कुर्वती सलीलं रोदिति।'

लोकानुरञ्जन की सामग्री रूपगोस्वामी ने व्यावहारिक परिहासों के द्वारा भी दी है। यथा, चतुर्थ अङ्क में शारिका और शुक के सवाद द्वारा जटिला को यह सूचना देना कि माधव अभिमन्यु का वेश धारण करके मेरे घर के पास आयेगा। जब वास्तविक अभिमन्यु अपने घर के पास आया तो जटिला ने उसे भ्रान्तिवश माधव समझ कर मारुण्डा, कुन्दलता आदि के सामने उसका भण्डाफोड किया। वास्तविक अभिमन्यु अचकचा गया कि मेरी मां क्योंकर मुझे झटक रही है। माता जटिला ने पुत्र का हाथ पकडा और उससे कहा कि गोपियों के साथ लम्पटता करते हो, दूसरों के घर लूटते हो। वास्तविक अभिमन्यु लज्जा से गड़ गया और भाग खड़ा हुआ। उसने तारस्वर से चिल्ला कर कहा कि मेरी माँ भूतग्रस्त है। तब सबने पहचाना कि जिसे जटिला माधव समझ रही है, वह वस्तुतः उसका पुत्र अभिमन्यु है।[1] पर थोड़ी देर के बाद स्वय माधव अभिमन्यु का वेष बना कर आये तो जटिला ने उन्हे अभिमन्यु समझकर उनका स्वागत किया। जटिला ने देखा कि मेरी वधू उनसे प्रेम कर रही है, यद्यपि वह वस्तुतः माधव था। जटिला ने उससे कहा कि सन्ध्या के समय हमे धुंधला दिखाई पडता है। कृत्रिम अभिमन्यु-रूपधारी माधव ने बताया कि तुम्हें ऐसा अंजन दूँगा कि सब ठीक हो जायगा। फिर उसने कहा कि आज तुम्हारी वधू चैत्यवृक्ष के नीचे मेरे साथ नही जाना चाहती। जटिला ने राधा से कहा कि इनके साथ चली जाओ। इस प्रकार नायक-नायिका का परिहासात्मक छद्म द्वारा मिलन होता है।

छद्म कवि का अतिप्रिय सविधान है। काम के प्रभाव से बचने के लिए कृष्ण शिव के रूप में प्रतीयमान होना चाहते हैं। वे मधुमंगल से कहते हे—

ललाटे काश्मीरैः कुरु मम दृशं पावकमयी
दधीथा भोगीन्दुद्युतिमुरसि मुक्तामणिसरम।
तनोः कण्ठं मुक्त्वा जनय घनसारैर्धवलतां
हरभ्रान्त्याभीतस्तुदति न यथा मां मनसिजः॥ ६.४५

इस मानसिक स्थिति मे वे विनोद के लिए नववृन्दावन में जा पहुँचे, जहाँ सत्यभामा बनी राधा रहती थी।

१. यह अमृताहरण नामक सन्ध्यङ्ग का उदाहरण है।

आवश्यकता पड़ने पर नायकादि से भी असत्य भाषण करा देने की प्रवृत्ति भी छद्मपरायणता को ही प्रकट करता है। प्रेमानुवृत्ति में ऐसी परिस्थितियाँ आ ही जाती हैं कि आत्मरक्षा के लिए श्वेत झूठ बोलना पड़ता है। अष्टम अङ्क में कृष्ण राधा से अपना सम्पर्क छिपाने के लिए चन्द्रावली को बहका देते हैं कि सौगन्धिकमाला यमुना के निर्झरापात में विशीर्ण हो गई। वास्तव में राधा के परिष्वङ्ग से माला टूट कर गिरी थी।

छद्म का एक अन्य रूप श्लेषात्मक अर्थ लेकर निर्मित है। जब माधवी चन्द्रावली के विषय में कहती है— 'यदेषा न सत्यभामा' तो कृष्ण भाम का श्लिष्ट अर्थ कोप-लेकर समर्थन सा करते हैं—यदेषा न सत्यकोपा देवी।

अनेक कार्यव्यापार शब्दों के भ्रान्तिमय अर्थ के कारण नायकादि के द्वारा किये जाते हैं। प्रेमियों के हृदय में धुकधुकी होती है। सापत्न्य के कारण वस्तुस्थिति को समझने के पहले ही वे भीत होकर या नायक के दाक्षिण्य की कलाभा से कुछ ऐसा कर बैठते हैं, जिसमें प्रेक्षक हास्य की अनुभूति किये बिना नहीं रहता। मधुमंगल के शुक ने कहा—

वृन्दावने स्फुरत्येषा माधवी सुमनस्विनी ॥ ६.१५

बस इतना सुनना था कि राधा ने समझा कि चन्द्रावली की सखी माधवी आ रही है। वह छिप कर कन्दरा में ओझल होती है। उसे इतना सुनने का भी अवकाश नहीं था कि

भवति स्तवको यस्या जगद्भूषण-भूषणम्।

वस्तुतः माधवी-लता की बात कीर ने कही थी।

छद्म केवल शाब्दिक ही नहीं, आर्थिक भी है। दशम अंक में कृष्ण राधा को पीछे से अपनी दोनों बाहों से पकड़ते हैं जब वह कालियह्रद में प्रवेश कर रही है, पर राधा समझती है कि यह कोई साँप मेरे गले में लिपटा है।

प्रकृति-परिशीलन

नाटक के नायक कृष्ण विष्णु के अवतार हैं। उनकी मानवोचित लीला में साथ देने वाले परोक्ष में सूर्य, ब्रह्मा, शिव आदि सर्वोच्च देव हैं और प्रत्यक्ष रूप से सुपर्ण (गरुड), नारद और विश्वकर्मा हैं। इनके अतिरिक्त हैं प्रकृति रूप में शरद्, जो ऋतु की देवी है, हंसिनी, कीर, हारीत आदि पक्षी। मानवोचित कार्यकलाप में ये सभी व्यापृत दिखाये गये हैं। कौस्तुभ से कृष्ण कहते हैं।

'सखे कौस्तुभ सोऽयं विलासिनी विश्लेषणलब्धशोकः ....
विस्तारय मयूखलेखाम्।

और वह ऐसा करता है।

प्रकृति की संस्था बृहत्तम लम्बायमान कथा की पूर्ति के लिए अतिशय बड़ी ही कही जा सकती है। इतनी अधिक घटनायें और इतनी अधिक कथा-प्रकृति अपवाद

स्वरूप ही देखी जाती है। फिर भी प्रत्येक नायक अपने-अपने कार्यव्यापार की प्रातिस्विकता से सुलक्षित है।

इसमें मल्लूक-मल्ल प्रकृति-रूप में विराजमान हैं। उन्होंने विन्ध्य को समाचार दिया कि कृष्ण का राधामिलन देखने चलें। इस दृश्य को गोवर्धन, रैवतक आदि पर्वत भी देखते हैं।

रस

ललितमाधव में शृङ्गार रस की सरिता प्रवाहित की गई है, जैसा कृष्ण ने स्वयं बताया है—

> द्रवन्नवविधूपलप्रकरदत्तपाद्यः शशी
> सरलतरलोच्चलज्जलधिकल्पितार्घक्रियः।
> हरित्परिजनेरित-स्फुटतरोडुपुष्पांजलिः
> स्फुरत्तनुरुदञ्चित-स्मर-रसोर्मिभिरुन्मीलति ॥ १.३१

शृङ्गार के उपचय में सारी विश्वात्मक विभूतियां तत्पर हैं।

रूपगोस्वामी ने कहीं-कहीं शृङ्गार को शुभ्र मर्यादा के भीतर विनिवेशित भी रखा है। राधा और कृष्ण के नववृन्दावन-सङ्गम-प्रसंग में भी वे नायक-नायिका का शृङ्गारोचित रभस प्रकट नहीं करते और अपने वक्तव्य की मानों व्यंजना से ही सूचनामात्र देते हैं। यथा अष्टम अंक में—

नववृन्दा—हला, एव हारसंघर्षेण मुकुन्दवक्षसः स्खलितां सुरसौगन्धि-कल्लजं मराली चञ्चुपुटेनादाय पश्योड्डीना।

पुरुष के प्रति पुरुष का रतिभाव-वर्णन कवि की नई सूझ का द्योतक है। अपना ही प्रतिबिम्ब मणिकुड्य में देखकर कृष्ण कहते हैं—

> अपरिकलितपूर्वः कश्चमत्कारकारी
> स्फुरति मम गरीयानेप माधुर्यपूरः।
> अयमहमपि हन्त प्रेक्ष्य यं लुब्धचेताः
> सरभसमुपभोक्तुं कामये राधिकेव ॥८.३४

परिहास का बाहुल्य ललितमाधव में विशेष रोचक है। सत्य कह कर बात क्यों बिगाड़ी जाय? असत्य को ही इस प्रकार कहना कि सत्य की व्यंजना होती चले—कवि की बड़ी विशेषता है। उदाहरण है रुक्मिणी का सत्यभामा से यह कहना—

> स्तने कीरंमन्ये तव निविडया दाडिमधिया
> तथा बिम्बभ्रान्त्या क्षतमधरमध्ये कृतमिदम्
> मयूरंमन्येयं व्यदलि फणिबुद्ध्या मणिमयी
> वनान्तर्वासस्ते, भगिनि हृदयं मे व्यथयति ॥१०.१

इसमें सारी बातें उल्टी कही गई हैं। यही हास्य का स्रोत है।

शैली

रूपगोस्वामी को पूर्णरूप से शब्दाधिकार प्राप्त था। सिंह के लिए पारीन्द्र नवदल के लिए संवर्तिका, गूलर के लिए माण्डीर, उपासना के लिए वरिवसित, श्रुतम् के लिए कर्णयोः प्राङ्गणमधिरूढम्, कृष्ण के लिए दर्वीकरारिकेतु, श्रेष्ठ गौ के लिए नैचिकी शब्द का प्रयोग वे करते हैं।

श्लेष के प्रयोग द्वारा अर्थालंकारों की समञ्जसता पदे-पदे सुप्रतीत होती है। यथा,

भूयो भूयः स्वयमनुपमा क्लान्तिमासादयन्ती।
मन्दाक्रान्ता भवति जगतः क्लेशदात्री हि चित्रा ॥२.६

इसमें मन्द हैं शनि और कंस तथा चित्रा हैं नक्षत्र और राधा। यह पद्य मन्दाक्रान्ता छन्द में है।

अन्यत्र उपमेय सर्वथा निगीर्ण है। राधा के परिचय मे—

यस्याः शैवलमञ्जरी विरचितासंग रथाङ्गद्वयं
फुल्लं पङ्कजपञ्चक च विसयो युग्म च मूले ननम्।
उन्मीलत्यतिचञ्चलं सशफरीद्वन्द्वं व्रजे भ्राजते
सेयं शुद्धतरानुरागपयसा पूर्णा पुरो दीर्घिका ॥ १.५४

शब्दालंकारो का अनुराग रूपगोस्वामी मे अधिक है। यथा,

नूनं चन्द्रावली चरण-चातुरीचमत्कारोऽयम्।

प्रथम अंक से।

स च राजोपजीवी राजीवबन्धौ पूर्वपर्वतमधिरूढे सपूर्वजं पूर्वदेवारि पुरं नेष्यति।

तृतीय अंक से।

दरीद्वारं दूराद् द्रुतमिह दरोद्घाट्य दयया।
दुरन्तं दैन्योर्मि मम दमय दामोदर दशा ॥३ ४१
अतिमुक्तोऽपि विमोक्तुं वृन्दावनवासवासनानन्दम्।
क्षणमपि न खलु क्षमन्ते क्षुद्राणां कथान्येषाम् ॥८ ३३

शृङ्गारित प्रसगों मे कवि ने माधुर्यगुणोचित शब्दावली प्रायश वाग्वैदग्ध्य प्रकट करने के लिये प्रयुक्त की है। यथा,

अचण्ड-किरण-द्युतिद्रुतमृगाक-कान्ताश्वल-
स्खलत्तरलसारणी शतवितीर्ण-वृक्षोत्सवा।
विकस्वर-सरोजिनी-परिमलान्धभृङ्गावली
सन्मील-विहगैरिवाह्वयति नव्यवृन्दाटवी ॥

इस पद्य मे शृङ्गार का उद्दीपन-विभाव वर्णित है।

चन्द्रविषयक कल्पनाओ की उद्भावना मे रूपगोस्वामी श्रीहर्ष की पद्धति पर चलते

हुए प्रतीत होते हैं। राधा की मुखश्री की तुलना प्राप्त करने के लिए चन्द्रमा बेचारा तपस्वी बना दिया गया है। यथा,

समीक्ष्य तव राधिके वदनबिम्बमुद्भासुरं
त्रपाभरपरीतधीः श्रयितुमस्य तुल्यश्रियम्।
शशी किल कृशीभवन् सुरधुनीतरंगोक्षितां
तपस्यति कपर्दिनः स्फुटघटाटवीमाश्रितः ।। १.५५

तपःस्थली है शिव की जटाटवी।

कृष्ण की छाती पर विराजमान गुञ्जावली से ईर्ष्या करती हुई राधा की उद्भावना है—

कठोरांगी कामं जगति विदिता नीरसतया
निगूढान्तश्छिद्रा त्वमतिमलिना चासि वदने।
तथाप्युच्चैर्गुञ्जावलि विहरसे वक्षसि हरेः
जनानां दोषं वा न हि कमनुरागः स्थगयति ।। २.२१

नारद ने कृष्ण का यशोगान किया तो सब कुछ शुभ्र हो गया। यथा,

भीता रुद्रं त्यजति गिरिजा श्याममप्रेक्ष्य कण्ठं
शुभ्रं दृष्ट्वा क्षिपति वसनं विस्मितो नीलवासाः ।
क्षीरं मत्वा श्रपयति यमीनीरमाभीरिकोत्का
गीते दामोदर यशसि ते वीणया नारदेन ।। ५.१८

रूपगोस्वामी की वाणी में शक्ति है, जिसके द्वारा वह जटिला से कृष्ण के विषय में कहला सकते थे—

'अस्य कालकुण्डलिनः तीक्ष्णया वक्र-दंष्ट्रया स्पृष्टा व्रजप्रतिमापि जर्जरी भवति'। चतुर्थाङ्क से।

रूपगोस्वामी ने अनुकरण-काव्य का उदाहरण अपने नाटक में इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

शिशुपाल ने रुक्मिणी को पत्र भेजा—

प्रणयो दमघोपनन्दने शिशुपाले यौवनाञ्चिते।
नरदेववरे श्रुतश्रवो हृदयानन्दिगुणे विजृम्भताम् ।। ५.५

रुक्मिणी ने इसका उत्तर दिया—

प्रणयो मम घोपनन्दने पशुपाले तव यौवनाञ्चिते।
परदेववरेऽद्भुतश्रवो हृदयानन्दिगुणे विजृम्भते ।। ५.६

पद्यों में पदानुक्रम का सफल निदर्शन अनेक स्थानों पर है, जिससे प्रश्न और उत्तर एक ही वाक्य में सन्निवेशित हैं। परीक्षणीय है—

कान्ति पीतां शुक-स्फीतां बिभ्रती वीक्षिता वने।
मयाद्य मृग्यमाणा सा त्वया मृगविलोचना ।। ६.१८

प्रश्न है—हे शुक,पीतां कान्ति बिभ्रती मृगविलोचना मया मृग्यमाणा सा त्वया दृष्टा ?

उत्तर है—हे पीतांशुक त्वया मृग्यमाणा सा मया दृष्टा।

यह पृच्छा नामक नाटक-भूषण है।[1]

अन्यत्र एक ही पद्य द्वारा दो नायिकाओं की चर्चा समुपस्थित की गई है। यथा, राधा और चन्द्रावली की

उचिता हृदयार्पणाय गौरी तरलालोकमयी गुणोज्ज्वलात्मा।
नवहारलतेव रुक्मिणी मे किमियं कण्ठतटे न सन्निधत्ते॥ ६.५६

राधा के लिए अर्थ करने में रुक्मिणी उसका विशेषण है—रुक्म धारण करने वाली।

संवाद

संवादों में पर्याप्त चटपटापन है।[2] भाव केवल बुद्धिगत ही नहीं होते, अपितु पर्याप्त चोखेपन से वे हृद्गत होते हैं। इस उद्देश्य से कवि की एक योजना है नायक को शाब्दिक मृगमरीचिका में डाल देना। यथा,

मधुमंगलः—

स्फुटच्चटुलचम्पकप्रकररोचिरुल्लासिनी
मदोत्तरलकोकिलावलिकलस्वरालापिनी।
मरालगतिशालिनी कलय कृष्णसाराधिका

इत्यर्धोक्ते

कृष्णः—(ससंभ्रमौत्सुक्यम्) सखे, क्वासौ क्वासौ

मधुमंगलः—(अङ्गुल्या दर्शयन्)

पुरः स्फुरति वल्लभा तव

कृष्णः—(सवैय ग्र्यम्) वयस्य, नाहं पश्यामि। तदाशु दर्शय क्व सा मे राधिका।

मधुमंगलः— मुकुन्द वृन्दाटवी॥७.२७

फिर तो कृष्ण को निःश्वासपूर्वक कहना पड़ा—कथं नामधेयवर्णानामाकर्णनादेव सर्वानुसन्धानविधुरोऽस्मि।

नायिका चन्द्रावली को भी कृष्ण की शाब्दिक मृगमरीचिका अवास्तविक प्रणय की ओर उन्मुख करती है। यथा,

---

१. प्रश्न एवोत्तरं यत्र सा पृच्छा परिकीर्तिता।

२. एक उदाहरण है आठवें अंक में कृष्ण का माधवी को 'मलिकन्दलतुण्डमात्रसर्वस्वे तमोमयि' कहना, जब उसने सत्यभामा के विषय में कहा था—कासारे प्रसारितनिजव्रतां वकीं स्मृत्वा हसामि।

अत्र भावि निरातङ्कमारामे रमणं मम।
स्फुरत्यन्ते कुशस्थल्या यद्विदर्भाङ्गभूरियम् ।।६.५८
उचिता हृदयार्पणाय गौरी तरलालोकमयी गुणोज्ज्वलात्मा।
नवहारलतेव रुक्मिणी मे किमियं कंठतटे न सन्निधत्ते।। ६.५६

इनमें कृष्ण वस्तुतः राधा के लिए उत्सुक हैं, पर चन्द्रावली सोचती है कि वे मुझे चाहते हैं।

कीर ने जब सुनाया नवम अंकमें 'वृन्दावने स्फुरत्येषा माधवी सुमनस्विनी', बस इसे सुनते ही राधादि जा छिपी, यद्यपि माधवी से उसका तात्पर्य लता था, रुक्मिणी की सखी नहीं।

कहीं-कहीं संवाद के भीतर संवाद प्ररोचित हैं। यथा, अष्टम अङ्क में कृष्ण और राधा के संवाद के भीतर शुक और मराल का संवाद।

छायातत्त्व

कृष्ण का विप्रवेश धारण करके जटिला के आदेशानुसार सूर्योपस्थान-पूजा कराना छायानाट्य प्रवृत्ति है। तृतीय अङ्क में राधा स्फटिकशिलातल में अपनी प्रतिच्छाया देखकर उसे चन्द्रावली समझती है। वह प्रतिच्छाया से कहती है—

कर्णोत्तंसमुगन्विना निजभुजद्वन्द्वेन सन्युक्षय ।।३.३६

इसी प्रकार इन्द्रधनुष चित्रित जलधर को वह मुकुटितशिखण्डावलि समझती है।

ललितमाधव के छायातत्त्व के बाहुल्य का निर्देश इसी के चतुर्थ अङ्क में इस प्रकार मिलता है—

श्रुतं मया तातमुखतो यच्चन्द्रभानुप्रभृतीनां कन्यकाः भीष्मकप्रभृतीनां कन्यकातो एकतत्त्वापि विग्रहादिभिर्भिन्ना एवेति। तस्माद्वाढमेकविग्रहता-संविधानं माययैव प्रपञ्चितम्।

सप्तम अङ्क में कृष्ण की मूर्ति देखकर राधा—

'प्रेमावेशेन साक्षादिव कृष्णं सम्भावयन्ती' कथमेषा सत्यमेव नीलमणि-प्रतिमा। हा धिक्, हा धिक्, गाढोत्कण्ठया सर्वमेव विस्मृत्य प्रतिमामेव प्रत्यक्षं माधवं मन्ये। सास्रकम्पं कृष्णाकृति मण्डयति।

आठवें अङ्क में कृष्ण अपनी छाया मणिकुड्य में देखकर कहते हैं—

अयमहमपि हन्त प्रेक्ष्य यं लुब्धचेताः
सरभसमुपभोक्तुं कामये राधिकेव ।। ८.३४

नवमाङ्क में ललितमाधव का कृष्ण की बाललीला का चित्रदर्शन छायातत्त्व-निर्भर है। इसमे गोकुलेश्वरी का चित्र देखकर राधा कहती हैं-'अम्ब गोकुलेश्वरि वन्द्यसे' यह कहने के पश्चात् उसकी आखों से अश्रुपात होने लगा। कृष्ण ने अपने उलूखलबन्ध का चित्र देखा और रोते हुए कहने लगे—

वात्सल्यमण्डनमयेन ममोरुदाम्ना
यः कोऽपि बन्धगरिमा निरमायि मात्रा।
तन्मुक्तये परमबन्धविमोक्षणोऽपि
नाहं क्षमे सखि परस्य तु का कथात्र ॥६.२८

वासोहरण-तीर्थ के चित्र मे राधा छिपी हुई खड़ी थी। कृष्ण ने कहा—यह कौन है, जो पहचानी नही जा रही है। राधा तो पानी-पानी हो गई।

चित्र-दर्शन प्रकरण अभिनय के समान ही प्रभावशाली लग रहा था, जैसा नीचे लिखे संवाद से स्पष्ट है—

नववृन्दा—सखि, चित्रगतोऽपि रासोत्सवस्तव सत्यो बभूव।

राधा—हा धिक्, हा धिक्। कथं खलु चित्रमेवेदम्।

शंखचूड का चित्र देखकर

राधा—(सभयम्) परित्रायस्व, परित्रायस्व।

(इति कृष्णमालिंगति)

कृष्णः—(परिरम्भ सुखमभिनीय) साधु रे भ्रात शंखचूड, संरम्भादुन्मथितोऽपि मे त्वमलब्धपूर्वं प्रमोदमेव कृतवान्।

अक्रूर का चित्र देखकर राधा कहती है—

हा, हा किं करिष्ये।

कृष्ण को कहना पड़ा—कोमले मा कातरी भूः। इदं खलु चित्रम्।

अक्रूर का चित्र देखकर राधा मूर्च्छित हो गई।

चित्रदर्शन इस युग में गर्भाङ्क जैसा ही महत्वपूर्ण प्रतीत होता है।

लोकोक्ति तथा अन्योक्ति

ललितमाधव की भाषा चटपटी है। शृङ्गार की भाषा का प्रवाह ऋजु नहीं होता। उसमें व्यञ्जना की वक्रिमा और भङ्गियों का मिश्रण होना ही चाहिए। इस उद्देश्य से लोकोक्तियों का प्रयोग विशेष प्रभावशाली होता है। कुछ लोकोक्तियाँ अधोलिखित हैं—

१. अकाले प्रफुल्लं वञ्जुलं कस्मान्न श्लाघयसि।

२. लोकोत्तरस्य वस्तुनो निसर्ग. यत् खलु सर्वदोपभुज्यमानमप्यभुक्तमेव भवति।

३. पारे वारिधिगरुडो दिदृक्षवः पार्श्वतोभुजंगाः ॥५.६

४. न घटते गर्दभकण्ठे विमला नवमालिकामाला ॥ ५.२१

५. विमलहृदयः स्यातो लोके सतामुपदेशतः
गुणयति गुणश्रेणीं नाल्पो मलीमसमानसः।
मुकुलपटली सारंगाक्षीमुखार्पित शीधुभि-
र्बकुल इव किं धत्ते मूर्ध्ना हठाढढल्पक. ॥ ६.५

६. न हि कौस्तुभमणीन्द्रमरीचिमण्डली पुण्डरीकाक्षवक्षस्तटीमन्तरेणा-न्यतस्तिष्ठति । षष्ठाङ्क से
७. शरन्मुखे पश्य सरस्तटीषु खेलन्त्यकस्मात् खलु खंजरीटाः ॥ ७·५
८. धीरः प्रकृत्यापि जनः कदाचिद् धत्ते विकारं समयोनुरोधात् ।
   क्षान्ति हि मुक्त्वा वनवच्चलन्ती सर्वंसहाभूरपिभूरि दृष्टा ॥ ९·२०
९. कालभुजंगदष्टे कुलिश-प्रहार एषः ।
१०. स्थाने समये उपकारी सर्वं प्रियं भवति ।

लोकोक्तियों के साथ अन्योक्तियों का अनूठा प्रयोग प्रभावशाली है ।

यथा,

तीव्रतृष्णार्तानां मरुजांगले पानकुल्या स्वयमेवोन्मीलिता । दशमाङ्क से ।
द्रवति मनागभ्युदिताद्विधुकान्ते शिशिरभानुजालोकात् ।
पर्वणि पिधानमकरोदहह स्वर्भानुभीषणा जरती ॥ ४·३२
करोषि यस्यां नवकर्णिकारमालाभ्रमं हन्त मधुव्रतेन्द्र
प्रतीहि तां कुंकुमकर्दमेन लिप्तच्छिदां कैरवकोरिकालिम् ॥८·३७
अंजलिमात्रं सलिलं शफर्याभिलपन्त्य
उपरि स्वयं नवजलदो धारावर्षी समुल्लसति ॥ ९·१९

ग्रामरम्य

ललितमाधव की कार्यस्थली संक्षतः व्रजभूमि है । कृष्ण का गोचारण भागवतादि प्राचीन काव्यों में सुप्रसिद्ध है । उसी का क्रमिक विकास ललितमाधव में है । यथा गायों की सायंकालीन वनयात्रा है—

> गत्वा पुरस्त्रिचतुराणि जवात् पदानि
> पश्चाद्विलोकयति हन्त तिरश्चिरोचि ।
> वत्सोत्करादपि बकीमथने गरिष्ठ—
> प्रेमानुबन्धविधुरं पथि धेनुवृन्दम् ॥ १·२८

बलराम के शब्दों में व्रज है—

> विपुलोत्पालिककूटगिरिकूटविडम्बिनिविडम् ।
> ययमभजाम करीषाक्षोदपरीतं व्रजाभ्यर्णम् ॥ १·३०

उस व्रज में प्रातःकाल दही मथने का निनाद सुनें—

> रजनिविपरिणामे गर्गरीणां गरीयान्
> दधिमथनविनोदादुद्भवनन्नेष नादः । २·२

मालती का दही मथना आदर्श रूप में प्रस्तुत है—

> करोति दधिमन्थनं स्फुटवितर्पिफेनच्छटा-
> विचित्रितगृहांगणं गहनगर्गरीगर्जितम् ।

मुहुर्गुणविकर्षप्रवणताक्रमाकुञ्चित—
प्रसारितकरद्वयी क्वणितकंकणं मालती ॥ २·३

वनभूमि मे षड् ऋतुओ का समागम अष्टम अङ्क में वर्णित है। इसी प्रसंग में गोवर्धन पर मयूर-विलास दर्शनीय है—

विलसति किल सोऽयं पश्य मत्तो मयूरः
शिखरभुवि निविष्टस्तन्वि गोवर्धनस्य।
मुहुरमलशिखण्डं ताण्डवव्याजतस्ते
व्यकिरदुपहरन् यः कर्णपूरोत्सवाय ॥ ८.२८

इसमे उत्तररामचरित के तृतीय अङ्क के सीतापोषित मयूर की गन्ध है।[1]
वृन्दावन की रासस्थली का वर्णन है—

भूमौ भारतमुत्तम मधुपुरी तत्रापि तत्राप्यलं
वृन्दारण्यमिहापि हन्त पुलिनं तत्रापि रासस्थली।
गोपीकान्तपदद्वयीपरिचयप्राचुर्यपर्याचिता
यस्यां सन्ति महामुनेरपि मनोराज्यार्विना रेणवः ॥ ६·४४

ललितमाधव अनेक दृष्टियो से एक नवीन नाट्य परम्परा का उद्भावक है। इसमें कवि को असत्य बातें प्रेक्षको और पाठकों को बतानी हैं। इसमे कोई सन्देह नहीं कि अपने इस सारे वक्तव्य को वह रसमयता से ओतप्रोत रखता है। भूमिका की महामहिमशालिता और वैविध्य, कार्यक्षेत्र की भूमा और सबसे बढ़ कर घटनाओं का अद्भुत संक्रम इस नाटक के विरल वैशिष्ट्य हैं।

इस एक नाटक मे पूर्ववर्ती असत्य ग्रन्थों का सौरभ स्थान-स्थान पर संजोया हुआ मिलता है। दशकुमारचरित की भाँति इसकी नायकादि प्रकृति इतस्ततः भटकती और मरमती या मरती-जीती अन्त मे दशम अङ्क मे अपनी विचित्र-विचित्र गाथाओं के प्रसंग मे आ मिलती है। उत्तररामचरित की भाँति इसमे नवम अंक में चित्रदर्शन प्रकरण चित्ताकर्षक है। महावीरचरित और बालरामायण की भाँति इसमे छायातत्त्व और गर्भाङ्क-नाटक की विशेषता है। इसमे प्रियतम के वियोग मे प्रेयसी पशुपक्षियो से उसके विषय में पूछती हुई विक्रमोर्वशीय की स्मृति दिलाती है। अविमारक, नागानन्द और रत्नावली की भाँति नायिका नायक के वियोग मे अपने प्राणों की बलि देने के लिए समुद्यत है।

अपनी बहुविध प्रौढ़ता और सम्पन्नता के कारण ललितमाधव महानाटक प्रतीत होता है।

---

१. उत्तर राम० ३·१९। दोनों पद्य मालिनी छन्द मे विरचित हैं।

दानकेलि कौमुदी

रूपगोस्वामी ने १४७१ शक सवत्सर तदनुसार १५४९ ई० में दानकेलि-कौमुदी नामक भाणिका का प्रणयन किया।[1] यह भाणिका कोटि की रचना है। सूत्रधार ने इसको भाणिका कहा है। भाणिका नामक उपरूपक की परिभाषा करते हुए शारदातनय और रामचन्द्र-गुणचन्द्र ने बताया है कि भाणिका का उपजीव्य् हरिचरित होता है। इसमें प्रयोग की सुकुमारता होनी चाहिए।

कतिपय नाट्यशास्त्राचार्यो ने 'भाणोऽपि च भाणिका भवति' यह कह कर भाणिका को भाण के समान बताया है, जो सर्वथा निराधार है। भाण और भाणिका मे तत्त्वतः कोई समानता नही होती।

साहित्य-दर्पण के अनुसार भाणिका नामक उपरूपक में मुख और निर्वहण दो सन्धियाँ होती हैं। उसमें एक ही अङ्क होता है। इसकी नायिका उदात्त होती है और उपन्यास, विन्यास, विबोध, साध्वस, समर्पण, निवृत्ति और संहार नामक सात अङ्ग होते हैं। ये सभी अङ्ग दानकेलिकौमुदी में मिलते हैं। परिभाषा के अनुसार इसमें कैशिकी और भारती वृत्तियों का प्रयोग हुआ है। हरिचरित का गान होने से इसकी कथावस्तु भी शास्त्रीय दृष्टि से समीचीन है। इसमें विष्कम्भक का होना अशास्त्रीय है।

इसकी रचना कवि ने नन्दीश्वर में रहते हुए की थी। नन्दीश्वर-गिरि की उपत्यका में यह वसति थी। इसी उपत्यका में इसका प्रथम अभिनय हुआ था।

कथावस्तु

मधुपुर को छोड़कर आनकदुन्दुभि ने गोविन्दकुण्ड के तट पर मखमण्डप में यज्ञ का समारम्भ किया था। वहाँ मथुरा में कंस के आतंक से कोई यज्ञ नहीं कर सकता था। इस यज्ञ के द्वारा कृष्ण और बलराम नामक पुत्रों के निखिल अनिष्ट की शान्ति समीहित थी। यज्ञ का विधान था कि गोपियाँ जो मक्खन उपहार रूप में दे जायँ, उससे यज्ञ सम्पन्न हो। राधा स्वयं मक्खन लेकर आई। राधा का वर्णन है—

> शोणे मण्डितमूर्ध्नि कुण्डलतया क्लृप्ते दुकूलोत्तमे
> न्यस्तां स्वर्णघटीं वहन्त्यचटुलां हैयंगवीनोज्ज्वलाम्।
> दूरे पश्य तथाविधाभिरभितः स्मेरा सखीभिर्वृता
> राधामाधवजाह्नवी तटभुवं स्वैरं परिक्रामति॥

राधा से मिलाने के लिए कृष्ण के शुभचिन्तक उस ओर गये, जहाँ कृष्ण थे। मक्खन लाने वालियों को मार्ग कृष्ण रोकने वाले थे। यह दृश्य बड़े-बूढ़ों के लिए भी स्पृहणीय था। कृष्ण की बाँसुरी का वर्णन है—

---

१. इस नाटिका का बंगाक्षर मे प्रकाशन १९४१ ई० में ढाका से तथा १९१३ ई० में मुर्शिदाबाद से हो चुका है। देवनागराक्षर में इसका प्रकाशन १९६७ ई० में बाबूलाल शुक्ल द्वारा सम्पादित मन्दसौर से हो चुका है।

वृन्दा ने कहा कि एक कानी कौड़ी भी आपको नही दी जायेगी। यथा,

कपर्दमपि काणं तवात्र दुरवापम्।
यदुग्रतरकर्मा कुमारललितासौ॥ ४५

कृष्ण ने राधा की वात सुन कर उससे प्रार्थना की—

घट्टशुल्कप्रदानाय गुहातिथ्यग्रहाय च।
स्पृहा ते हेम गौरांगी गिरस्तां गोचरीकुरु॥ ४६
अरविन्दहृशामपश्चिमा
त्वमपूर्वा वहुरूपलीलया।
कपटोद्घटनाददक्षिणा
न कथं वा भवितास्यनुत्तारा॥ ४७

तभी नान्दीमुखी भगवती का सन्देश लेकर आई कि राधादि हमारी वालिकायें मक्खन लेकर यज्ञ में जा रही हैं। इनसे घाट का शुल्क लेने मे कोमलता का ही व्यवहार करें। यह सुनकर कृष्ण ने कहा—चार लाख स्वर्ण-टंक शुल्क हुआ। चित्रा ने कहा कि पांच गगरी तो मक्खन है। इस पर इतना शुल्क कहां से?

नान्दीमुखी ने कृष्ण से कहा कि ये कहां से इतना शुल्क देंगी? कोई सरल समाधान निकालो। कृष्ण ने बताया कि उपाय एक ही है कि इनमे से शुल्क-रूप में किसी एक को ले लें। ललिता ने टका सा उत्तर दिया—

एतत्खलु मनोरथमात्रेण, द्राक्षाभक्षणमदक्षस्य लोलुपकीरयूनः।

वृन्दा ने कहा कि इस ललिता को ही रख लें। यह आभूषण-भूषित है। राधा के पास अलंकार नहीं। तब तो कृष्ण ने राधा के अलंकार गिनाये—

सेयं मुग्धे शिखरदशना पद्मरागाधरोष्ठी
राजन्मुक्ता स्मितमधुरिमा चन्द्रकान्तस्य विम्वा।
उद्दीप्तेन्द्रोपलकचरुचिः पश्य ही राधिकेति
त्यक्तुं युक्ता न किल तरुणीरत्नमाला महिष्ठा॥ ४८

यह कहकर वे राधा को ग्रहण करने चले तो राधा साध्वसातिरेक से चिल्ला पड़ी—विशाखे, वचाओ, वचाओ। पर शीघ्र ही वह कृष्णाभिमुखी होकर परिहास करने लगी। उसने कहा कि आपको मेरी क्या आवश्यकता है? आप तो

गह्वरं गत्वा मुरलिकानागिनी चुम्बस्व।

कृष्ण ने कहा कि तत्व की वात तो यह है—

गव्यभारभरभुग्नकन्धरा त्वद्विधां विधुरगात्रि मद्विधः।
स्प्रष्टुमप्यहह लज्जते यदा दैन्यमाचर न हासदम्भतः॥ ४९

राधा ने कहा कि मैं तो आगे बढ़ी, देखें कैसे आप शुल्क लेते हैं? तब तो कृष्ण

ने उसे पकड़ना चाहा। राधा ने कहा—अरे यह क्या है ? मैं पतिव्रता हूँ। मुझे स्पर्श करते आपको डर नही लगता।

राधा को शुल्क देने के लिए उद्यत देखकर कृष्ण ने कहा—

अयि सुकलेवरमधुना शुल्कं त्वां दातुमुद्यतां प्रेक्ष्य।
परमोत्मवचटुलेयं कुरुते भ्रूनर्तकी नृत्यम्॥ ५२

कृष्ण राधा को पकडने चले तो राधा ने कहा—अपेहि, अपेहि। नान्दीमुखी ने उसे समझाया—

सखि, राधिके अलमेतेन सुष्ठुकुट्टमितेन। कियत् पलायिष्यसे।

इस बीच कृष्ण को उद्यान चक्रवर्तिसिंह का पत्र मिला कि सुन्दरियाँ वन मे घूम रही हैं। उन छलनाओ से सौगुना शुल्क लिया जाय।

विशाखा ने कहा कि शुल्करूप मे विशाखा आपको दी जाती हैं। सुबल ने उत्तर दिया—

वृन्द—पंचतये युक्तमेकवृन्दार्पणं कथम्।
संख्याविदां न नः शक्यं गोसंख्यानां प्रतारणम्॥ ६२

कृष्ण ने मधुमंगल से कहा—

तदेषा राधिकाख्यां गता भ्रमरी शुल्कार्थमादेया।

कृष्ण ने राधा से कहा—

दातुमिच्छसि न कांचनानि चेत् चातुरी मनसि काचनाश्रिता
गौरि गैरिकविचित्रतोदरी त्वं ततो प्रविश भूभृतोदरीम्॥ ७२

नान्दीमुखी ने बताया कि राधा का अभिषेक वृन्दावनराज्याधिश्वरी पद पर हो चुका है। यमुना की भगिनी राधा को सौगन्धिका माला अर्पित की गई। राधा की जन्मान्तर की कथाओ को नान्दीमुखी ने बताया। अब तो राधा का उच्चपद प्रतीत हुआ। उसने सुबल से कहा—काननकर उपनीयताम्

कृष्ण का परिहास राधा ने किया—

वक्रस्त्रिधा त्वमादौ मध्ये चान्ते च वशिकारसिक।
कलङ्कनजगतः प्रलयो वक्रेश्वर एव देवोऽसि॥ ८५

कृष्ण ने हँस कर उत्तर दिया—

वाचि वचे भुवि दृष्टौ स्मिते प्रपालेऽवगुण्ठने हृदि च।
स्दामित्यष्टवक्रामष्टावक्रायिनां वन्दे॥ ८६

चम्पकलता ने कहा कि वक्र के साथ वक्र की क्रीडा हो, हमलोग अन्यत्र जायें।

कृष्ण के शुल्क मांगने पर ललिता ने कहा कि सन्ध्या के समय हमारे द्वार पर आ जाओ, वही शुल्क ग्रहण करो। वही—सुष्ठु घन घोलं दास्यामः। अर्थात्

तुम्हारी दुर्गति करेंगे। ललिता ने कहा कि मैं अनुशासन-प्रिय हूँ। तुम राधा का स्पर्श करना चाहते हो तो मुझसे बुरा कोई न होगा। अन्त में उसने कहा कि लो, यह राधा के गले का हार। राधा से कहा कि अभिसार के लिए तैयार हो जाओ। कृष्ण ने हार पहन लिया। राधिका ने कहा—इस मौक्तिकावली का भाग्य देखो। ललिता ने कहा—

तव निपेव्य पुना राधिके स्तनसस्ता मौक्तिकावली शुद्धा।
हरेर्विहरति हृदये तव कथनीयः कथं महिमा॥६०

अन्त में पौर्णमासी आई। ललिता ने उनसे कहा कि शुल्क रूप में राधा का हार कृष्ण को दे दिया गया है। तव भी छुटकारा नहीं मिला। पौर्णमासी ने कृष्णोचित समाधान किया—

या पंचसु सरोजाक्षि परमाराधिका भवेत्।
धरा संवास्य विज्ञेया धुरीणाराधने भवेत्॥ ६४

राधा ने कहा कि मुझ कातर को इस कठोर घट्टपाल के हाथ में न सौंपें। यह तो—

भ्राम्यत्येप गिरेः कुरंगकुहरे कृष्णो भुजंगाग्रणीः
स्पृष्टा येन जनः प्रयाति विपमां कामप्रसाध्यां दशाम्।
नाभद्रं न च भद्रया कलयितुं शक्तास्मि दृष्टिच्छटा—
मात्रेणास्य हृताहमिच्छसि कुतः प्रक्षेप्तुमत्रापि माम्॥ ६५

यह कह कर वह नकली रोदन करने लगी। पैर पर गिर पड़ी। पौर्णमासी ने कहा कि सब कुछ सुखावह होगा।

उसने कृष्ण से कहा कि सन्ध्या को राधा तुमको मिल जायेगी। अभी इसे यज्ञ में जाने दो। पौर्णमासी ने कृष्ण से आशंसा की—

सहचरीकुलसंकुलया गुणैः—
रधिकया सह राधिकयानया।
तमिह नर्मसु हृन्मिलितः सदा
घटय माधव घट्टविलासिताम्॥ ६७

माणिका में प्रस्तावना के आठ पद्यों को छोडकर ६० पद्य हैं। पात्र किसी भाषा में गद्यात्मक संवाद करते हो, पर पद्य सस्कृत में ही बोलने हैं।

रूप की शैली श्लेष-निर्भर है। परिहासात्मक प्रकरणों में श्लेष उच्च स्तरीय हैं। संवादों में प्रायशः स्वाभाविकता है। लोकोक्तियों का प्रचुर प्रयोग नाट्योचित है। वंगीय शब्दों के संस्कृत रूपों का यत्र-तत्र प्रयोग मिलता है।

अध्याय २

वल्लीपरिणय

वल्लीपरिणय के रचयिता भास्कर यज्वा डिण्डम द्वितीय के जामाता शिवसूर्य नामक महाकवि के पुत्र थे।[1] शिवसूर्य अपनी विद्वत्ता के लिए प्रख्यात थे। शिवसूर्य ने कांचीपुर के कामाक्षी-दयित देव की स्तुति में कहा था--

मूले माकन्दतरो. शैलेन्द्रसुतातपः फलं जयति।
यत्परिणामपरीक्षणतत्परगौरीस्तनाङ्कितं मग्नः॥

वीरराघवभक्षी ने शिवसूर्य की विशेष प्रशंसा करके उन्हें सेवाञ्जलि अर्पित की है। चेर-चोल और पाण्डय देशों मे उनका अतिशय सम्मान था। वे पाण्डय के राजा हालर्षाट्टि के कुलगुरु थे। वे परम शैव और श्रोत्रियो मे अग्रगण्य थे। भास्कर यज्वा का रचना काल १६ वी शती के प्रथम चरण से आरम्भ हुआ।

भास्कर का चरित्र समुज्ज्वल था और वे विनय की मूर्ति थे, जैसा उनकी नाट-कान्त मे अपने विषय मे दी हुई उक्ति से प्रतीत होता है--

स्वल्पोऽपि वाग्विभव एष तनोतु मोदं
भूयासमेव विदुषां हृदये मदीयः।
बालोक्तिरादरमरात् सवनेन किं वा
कुर्यान्मुद शिथिलवर्णपदापि पित्रोः।

अनेक नाट्यमण्डलियाँ उस युग मे उत्सवो के अवसर पर एकत्र होकर स्पर्धापूर्वक नाटको का अभिनय करती थी। वल्लीपरिणय के प्रस्तावना-लेखक[2] सूत्रधार ने इस परिस्थिति मे अपनी मानसिक वृत्ति का उद्घाटन करते हुए कहा है--

इदानीमार्यमिश्राणा समक्षमस्मत्परिपन्थिनो विजयशूरस्य मस्तके निहतोऽयं मया सव्यः पादः।

इस नाटक का प्रथम अभिनय सवत्सरारम्भमे श्रीजम्बुनाथ के फाल्गुनोत्सव मे आये हुए सामाजिकों के प्रीत्यर्थ हुआ था।

कथावस्तु

विष्णु का तेज किसी मृगी में समाहित हुआ और उसने एक रमणीय कन्या रत्न को जन्म दिया। उधर से कोई शबरराज निकला और उसने उसे अपनी पुत्री बना

---

१. इस नाटक की हस्तलिखित प्रति D/2773 ओरियण्टल हस्तलिखित ग्रन्थागार, मद्रास में है।

२. सूत्रधार ने कहा है--लेखक के विषय में,
वल्लीपरिणयसंज्ञं नाटकमस्मासु निदधे तत्

लिया। बड़ी होने पर उस कन्या को शूरपद्मनामक दानव अपनी पत्नी बनाना चाहता था। उसे शिव के पुत्र कुमार भी चाहते थे।

नायक कुमार विदूषक के साथ किसी उद्यान मे पहुँचे। वहाँ मालती-मण्डप-माला में वे विराजमान हुए। वहीं निकट ही सखियों के साथ नायिका वल्ली आ गई। उनकी बातें नायक छिपकर सुनने लगा। नायक ने सखी से सुना कि उसके वर की चर्चा हो रही है तो मन मे सोचा—

अव्याजशोभनस्यास्या रूपस्य सदृशो वरः।
लोकेषु दुर्लभं नूनं कुतो वा वेधसा कृतः॥

नायक वल्ली के पास पहुँचा और वह उसे देखकर मोहित हो गई। सखी ने नायक को व्यंजना से बताया कि मेरी वल्ली को अपहरण करके प्राप्त करें। नायक ने अपनी व्यंजना भरी उक्ति में बताया कि रात्रि के समय यह कार्य सम्पन्न होगा। नायक ने नायिका का सामुद्रिक परीक्षण करने के लिए उसका हाथ देखा—

वल्ली—(सलज्जं हस्तं प्रसारयति)

नायक ने उसका हाथ पकड़ कर स्वगत कहा—

सन्तप्तं प्रसभमिदं मनो ममायं
स्पर्शोऽस्याः करकमलस्य पक्ष्मलाक्ष्याः।
संसिचन्नमृतरसैरिवातिमात्रं
किन्त्वेतन्मदयति विस्मृतान्यभावम्॥

और स्पष्ट कहा कि इस हाथ का परिग्रह किसी महाभाग के द्वारा होगा। तभी पिता के बुलाने पर वल्ली चलती बनी।

नायक ने विदूषक से कहा कि यह शबरकन्या मेरे मानस की चोरी करके चली गई है।

द्वितीय अंक के पहले के प्रवेशक में नायिका मदनातङ्क से पीडित है। नायक भी विदूषक के साथ उद्यान में आकर बातचीत में अपनी उत्कण्ठा नायिका के लिए प्रकट करता है। नायक को प्रकृति मे रमणीभाव सातिशय दृष्टिगोचर होता है। यथा,

स्मेरमुग्ध सरसीरुहानना नीलकंजकमनीयलोचना।
भाति कोकयुगलीघनस्तनी प्रेयसीव सरसी मनोहरा॥

वह उसे वल्ली का अनुकरण करती हुई सी मनोरजनकारिणी है। तभी वल्ली सखियों के साथ आ गई। सखियों ने उससे पूछना आरम्भ किया कि तुम्हारी ऐसी स्थिति कैसे होती जा रही है? शाकुनिक (नायक) ने हाथ पकड़ा था, फिर चला गया। तभी से यह सब है।

यह सुनकर विदूषक ने कहा—

श्रुतं श्रोतव्यम्

सखियों ने निर्णय लिया कि मदनलेख नायिका तैयार करे। उसे नायक के पास भेजा जाय। नायिका ने सिन्दूर से मूर्जपत्र पर लिख कर कलकण्ठिका को दिया कि इसे नायक को दो। कलकण्ठी ने उसे पढा—

तुलकिदमणोरहोअं जणो विणिद्दय वम्महकुमाल।
वाहिज्जइ वलिअन्तं सुमरन्तेणेव्व तेण किल वेरं॥

नायिका को सन्देह था कि नायक मुझे स्वीकार करेगा कि नही। तभी नायक ने उसके पास आकर कहा—

त्वामपि मनोज्ञवपुषं प्रत्याचष्टे हि द्विपादपशुः।
स सुधामयत्नलब्धां धीरस्सहसा निराकर्तुम्॥

प्रेम की बातें चल रही थी। तभी वल्ली के सरक्षक शवर के वहाँ आने की खबर मिली। विदूषक ने अपने को वृक्षरूप धारण करके अन्तर्हित कर लिया। शवर ने वल्ली को गोद मे लिया और प्यार किया। दिवस-सन्ताप से बचने के लिए नायिका आदि सभी अभ्यन्तरशाल मे चले गये।

तृतीय अङ्क मे मदनातङ्कित नायक विदूषक के साथ नायिका से मिलने के लिए यन्त्रधारा गृह मे चला गया। वहाँ नायक ने देखा कि नायिका का शरीर विरहताप से इतना उष्ण है कि

कर्पूरयुक्चन्दनवारिशीघ्रं
शुष्कं च तापाद् भवति प्रदीप्तम्॥

नायक ने कहा कि मैं भी तुमसे मिलने की आशा मे जीवित हूं। थोडी ही देर मे नायक और नायिका को अकेले छोड़कर उनके सगी-साथी चलते बने। नायिका ने जाना चाहा तो नायक ने समझाया—

जितकांचने तवास्मिन् कुचयुगले चारुदाडिमफलाभे
रचयन्तु तरुणि नखराश्शुकमुखलीलां ममाद्य ललितांगि

नायक आलिंगन पाने के लिए नायिका से प्रार्थना कर ही रहा था कि उधर से एक हाथी निकला। तब तो डर कर नायिका ने नायक का आलिंगन कर ही लिया। तभी विदूषक भी वही से आ टपका। सखियाँ भी आयी और नायिका को लेकर चलती बनी।

चतुर्थ अङ्क के पहले चूलिका द्वारा बताया गया है कि विष्णु की कन्या वल्ली शिव के पुत्र कुमार का वरण करना चाहती है, किन्तु शूरपद्म नामक दानव उसको बलपूर्वक अपनाना चाहता है। उसे तिरस्करिणी द्वारा शची के समीप पहुँचा दिया गया है। वे दोनों युद्ध को दूर से देखती हैं। कुमार समझते हैं कि दानवराज प्रेयसी को ले गया। फिर तो नारद को प्रिय लगने वाला युद्ध होने लगा।

आकाशयान से नारद, इन्द्र, चित्ररथ, वल्ली और शची युद्धस्थल की ओर चलीं। मार्ग में कैलास, विन्ध्याचल, हरिहरविलासस्थान, हालास्य क्षेत्र, रामसेतु आदि की यात्रा वर्णनपूर्वक समाप्त हुई।[१] वहीं कुमार का सैन्य सागर था।

युद्ध में सर्वप्रथम शूर का पुत्र आगे आया। युद्ध का वर्णन नारद और चित्ररथ आदि के द्वारा प्रस्तुत है।

समुद्र के उस पार से वीरबाहु ने गरुड की भाँति आकर दैत्यों की राजधानी पर चढ़ाई की—

तव चण्डभुजदण्डपिण्डीकृतकलेवरः।
एप शूरसुतो युद्धे कृतः प्राथमिकोबलि.॥

नारद की सूक्ष्मेक्षिका है—

जातः कयोरपि महाभटयोर्विवाद-
स्संग्रामसीमनि परस्परसम्प्रवृद्धः।
नूनं ममायमेव पतिर्ममेति
दिव्यांगना-वदन-संक्रमितो व्यरंसीत्॥

भानुकोप ने दानवनगरी में आग लगा दी। तब तो दानवाङ्गनायें विलाप करने लगीं—

हा तात हा तनय हा दयिते क्व भ्रातः
कल्पक्षयः किमथवा विधिदुर्विपाकः।
इत्थं मुरारिनगरे बहुधा प्रलापो
दग्धे समीरणसखेन विजृम्भतेऽयम्॥

गणेश ने अपनी शुण्डा से शत्रुओं के आने के मार्ग का अवरोध कर दिया।

शूरपद्म आत्मरक्षा के लिए कुक्कुट और मयूर का रूप धारण करके षडानन की शरण में आ गया। देव पक्ष की विजय से सर्वत्र आनन्द छा गया। देवताओं को अपनी पत्नियों के साथ साहचर्य का पूर्ववत् अवसर मिला। सभी शिव के पास वल्ली को लेकर चले।

पंचम अङ्क में नारद के साथ देवराज, वीरबाहु के साथ कुमार आदि अपनी सुखमयी अनुभूतियों का वर्णन करते हैं। तभी शिव पार्वती-सहित वहाँ आ पहुँचे। देवराज ने शिव को स्तुति-पूर्वक प्रणाम किया।

कुमार शिव और पार्वती के प्रेम भाजन हुए। इन्द्र ने शिव की अनुमति ली कि उपेन्द्रकन्या वल्ली को कुमार को देना चाहता हूं। उनकी अनुमति के पश्चात् शची

१. इस परम्परागत योजना के द्वारा समग्र भारत की एकता प्रस्फुटित हुई है।

ने अपने हाथों से मण्डित वल्ली को प्रस्तुत किया। सबने उसे सौभाग्यभाजन होने का आशीर्वाद दिया। शची ने उसे सुब्रह्मण्य के पास बैठा दिया।

शिल्प

परवर्ती युग के किरतनिया नाटकों में प्रवेश करने वाले पात्रों की रूप-रेखा प्रावेशिकी गीति के द्वारा सूचित की जाती थी।[1] उसका पूर्वरूप इस नाटक में मिलता है। प्रथम अङ्क के पूर्व आये विष्कम्भक में नारद कुमार का वर्णन करते हैं—

> कौसुम्भ सूक्ष्माम्बरवद्धकोश—
> भारोज्वलंसत्प्रचलाकिवह्निः ।
> वेत्रोल्ललत्पाणिरसौ विधत्ते
> मुदं मयाक्ष्णोश्शवरेन्द्रसूनुः ॥

नायिका का सामुद्रिक ज्ञान के लिए हाथ पकड़वा देना और इस प्रकार उनके अनुभावों के वर्णन द्वारा इस नाटक में रस की सृष्टि करना एक विरल सविधान है।

अङ्क और प्रवेशकादि के नाम उनके अन्त में ही दिये गये है, आरम्भ में नहीं। इस प्रकार अङ्क के भीतर प्रवेशकादि को दिखाने की त्रुटि इसके प्रणेता ने नहीं की है और न उसकी प्रतिलिपि बनाने वाले ने यह भूल की है।

स्त्रीपात्र और विदूषक भी द्वितीय अङ्क में महत्त्वपूर्ण बातें प्राकृत में न कह कर संस्कृत में कहते हैं।

रंगमच पर आकाशयान से विद्याधर के उतरने का यान्त्रिक अभिनय तृतीय अङ्क के पूर्व के विष्कम्भक में है।

सूरपद्म का मयूर बनकर कुमार का शरणागत होना छायातत्त्वानुसारी प्रवृत्ति है।

वल्लीपरिणय में एकोक्तियाँ अनेक हैं, पर हैं छोटी-छोटी। तृतीय अङ्क के आरम्भ में नायक अकेले ही रगमच पर है। उसकी एकोक्ति है—

> सा मे पुरतः पश्चात् पार्श्वे चान्तश्च सकलचन्द्रमुखी।
> विलसति निमेषसमये क्षणमुन्मेषे तिरोधत्ते ॥

फिर विदूषक के आ जाने पर भी एकोक्ति चलती है—

> नेत्रे नीलसरोजसुन्दरतरे माकन्दगुच्छच्छवि-
> र्गण्डस्सुन्दरि भाति दन्तवसनं चाशोकसूनोपमम्।
> गात्रं ते नवमल्लिका मृदुलसत्पाथोजकोशस्तनी
> प्रायो मानमजस्य जैत्रमधुना शस्त्रं त्वमेव प्रिये ॥

---

१ तृतीय अङ्क के पूर्व आने वाले विष्कम्भक के अन्त में प्रवेश करने वाले नायक का वर्णन है :—

'अलसतरगति' प्रकोष्ठचञ्चत्' इत्यादि।

उत्तररामचरित से उधार लेकर नायक तृतीय अंक में प्रेयसी के विषय में कहता है—

'इयं गेहे लक्ष्मीर्मम हृदयमित्रं च विपुला' इत्यादि।

अन्यत्र कालिदास के नाटकों की बहुशः छाया है।

शृङ्गाररस-निर्भरता के लिए नायक द्वारा नायिका का आलिङ्गन लेने की इच्छा करना और नायिका द्वारा इच्छा होते हुए भी परिहार करना दिखाया गया है। पर तभी उधर आने वाले हाथी के भय से डरकर नायिका का आलिंगन करना दिखाया गया है।

भास्कर ने नायक को कवि का व्यक्तित्व दिया है। वह सूर्य (भास्कर) का वर्णन अनेक स्थलों पर निपुणता से करता है। अन्यत्र भी प्रकृति-वर्णन की चारुता से नाटक पर्याप्त मण्डित है।

चतुर्थ अङ्क में नायक रंगमंच पर आकर युद्ध के लिए समुचित भूमि पर लड़ने के लिए चला जाता है—यह ठीक नहीं। रंगमंच पर आकर इसी अङ्क में नायक का रंगमंच छोड़ना अशास्त्रीय है।

भास्कर ने शृङ्गार और वीर दोनों रसों का सामंजस्य सफलतापूर्वक निभाया है।

'अद्य तावदाहूय समादिष्टोऽस्मि श्रीमद्दिल्ली-दयित-वेतनदानामात्येन महनीयचरितश्रीमहता केशवदासेन' इत्यादि ।

उपर्युक्त अंश का रचयिता भला नाटककार कवि कैसे हो सकता है ।

नाटक की रचना और भावप्रवणता उत्तर भारत की है, जैसा प्रस्तावना के नीचे लिखे पद्य से प्रतीत होता है—

सम्प्राप्तोऽनुशयं नदोविषयदं साकेतमात्रं नयन्
यातः केशवदास भावसधुना रामोऽनुगृह्णातिनः ।

धर्मविजय की रचना 'मोहराज-पराजय' के आदर्श पर मानी जा सकती है ।[1] मोहराजपराजय की रचना १२ वीं शती के अन्तिम चरण में यशःपाल ने गुजरात में की थी । सम्भवतः भूदेव भी गुजरात के थे । गुजरात में एक जम्बूसर है, जहाँ इनकी जन्मभूमि हो सकती है ।[2] कवि का मध्यदेश पर गर्व है । तभी तो इस नाटक की प्रस्तावना में वह कथासार देते हुए कहता है—

अधर्म इव धर्मेण भूभारक्षमबाहुना ।
मध्यदेशक्षितिभुजा जितो दक्षिणभूपतिः ।।

इस नाटक का प्रथम अभिनय गुर्जर में हुआ ।[3]

कथानक

धर्म ने अधर्म का सत्ययुग मे धर्षण किया था । यथा,

ज्ञानं तपो यज्ञविधिः प्रदानमेते कृतादौ सुकृतावताराः
एतैः समाक्रम्य जगन्ति धर्मः सन्तापयामास बलादधर्मम् ।।

त्रेता में ज्ञान मर मिटा, द्वापर में तप का विनाश हुआ, कलियुग में विष्णुनाम का सहारा बचा है ।

धर्मराज ने पुराण-श्रवण आदि को तीर्थ, आयतन, पुर, पत्तन, अरण्य, पर्वत आदि क्षेत्रों में विजय करने के उद्देश्य से भेज दिया ।

व्यभिचार परस्पर-प्रीति से बात करते हुए बूढ़े धनपाल की युवती वनिता का कामाचार पूछते हैं । फिर अनाचार नामक पछाईं ब्राह्मण तीर्थयात्रा करके लौटने

१. वस्तुतः सभी प्रतीक नाटक ११ वीं शती के कृष्णमिश्र के प्रबोधचन्द्रोदय का प्रायशः अनुहरण करते हैं ।

२. भूदेव ने इस नाटक के पृष्ठ २३ पर—परप्रियं गुर्जरमण्डलमावाभ्यामाश्रितम् से भी गुजरात के कवि की जन्मभूमि होने का संकेत मिलता है ।

३. पृष्ठ ३३ पर पौराणिक कहता है—'गुर्जरमंडलमावाभ्यामाश्रितम्' इससे अभिनय-स्थान की व्यञ्जना होती है । पृष्ठ २४ पर 'गुर्जराः पीतशेषं पयः सोमकल्पं कल्पयन्ति' से भी यही व्यञ्जना होती है ।

पर अपनी कामगाथा बताता है। वस्तुतः वह मध्यदेशीय स्नातक है। उसे परस्पर-प्रीति ने मुँह लगाकर पीए हुए जल का आधा पैर धोने के लिए दिया। अनाचार बताता है—

> खादन्तीज्यामन्तरेणापि मांसं
> विन्ध्यस्याद्रेरुत्तरस्यां द्विजेन्द्राः।
> आवृद्धं चाबालमास्वादयन्ति
> प्रायः प्रीत्या दाक्षिणात्याः पलाण्डुम्॥ २.२३

अनाचार परस्पर-प्रीतिका देवर निकला। देवर तो स्त्रियों के आनन्द का साधन होता है—यह उसका मत है। उसने उसे सुरापान कराया।

द्वितीय अङ्क में पौराणिक और अधर्म बात करते है, जिससे प्रतीत होता है कि किस प्रकार चारित्रिक ह्रास परिव्याप्त है।

तृतीय अङ्क मे पण्डित-सगति फासी लगा रही है। उसने परीक्षा से बताया कि विद्या का अभाव मुझे इस काम के लिए प्रेरित कर रहा है। यथा

> अन्विष्टं तदपि सदो नराधिपाना
> विद्यार्थी प्रतिमठमादरेण पृष्टः।
> भट्टानामुदवसति विविच्य दृष्टं
> विद्यायाः पदमधुनापि नोपलब्धम्॥ ३.४

फिर दोनो घर-घर घूम कर विद्या को ढूढते हुए वैद्य के पास पहुची। परीक्षा ने वैद्यराज से कहा कि मेरी सखी को ताप लगा है। वैद्य ने उपचार बताया—

> चूर्णं कषायो गुटिकावलेहः पाकश्च सन्दिग्धचिकित्सितानि।
> आरोग्यकारि ज्वरितस्य शीघ्रं तप्तायसेनाङ्कनमेकमेव॥ ३.६

अर्थात् दहकते लोहे से दागना ही उपचार है।

परीक्षा और पण्डित-सगति को गणक मिले, जिनका आत्म-परिचय एकोक्ति-द्वार से है—

> आजन्मसिद्धप्रमादपरवशतया मुहूर्तमपि न जानीमः।

गणक और वैद्य स्मार्त शुक्ल के पास पहुचे कि धर्मशास्त्र विषयक चर्चा हो। स्मार्त ने आत्मपरिचय दिया—

> विक्षेपस्यासंगसेविना मया न कोऽपि दृष्टो निबन्धः।

उन्होंने गणक को बताया कि गर्भाधान से छठे या आठवें मास मे सीमन्तोन्नयन संस्कार होता है।

स्मार्त ने गणक से पूछा कि ये दोनों कन्यायें कहाँ से तुम्हारे पीछे पडी हैं?

परीक्षा और पण्डित-संगति रोते हुए वैदिक के घर पहुचे, जिसके विषय मे स्मार्त ने कहा—

पत्न्या नितम्बमभिमृश्य शिरोभ्रमेण
किं केशपाशविकला मृतभर्तृकेयम् ।
इत्थं विषण्णहृदयः शयने निषण्णो
हा पुत्र मातरिति रोदिति वैदिकोऽयम् ॥ ३.२६

चतुर्थ अङ्क में महापातक का न्याय व्यवहार के द्वारा किया जाता है। वह अपनी पापप्रवृत्ति का कारण बताता है। व्यवहार ने कोष्टपाल से कहा कि यह दुष्ट अनुशय नही करता और प्रायश्चित्त नही करता। इसका वध करो—

प्रथमतश्छिन्नशिश्नमेनं तप्तसुरां पाययित्वा स्वर्णमुसलेन शिरसि कृतक्षतमश्वत्थकाण्ठे प्रज्वालयन्तु ।

प्रयाग में धर्म और अधर्म का युद्ध ससैन्य हुआ। हिंसा ने अहिंसा को, दया ने क्रोध को, शौचने अशौच को जीत लिया और उन्हे मार डाला। फिर धर्म महाविद्या को देखने के लिए दशाश्वमेध पर आया।

पाँचवे अङ्क में राजा, कविता और परिवार रंगपीठ पर उपस्थित हैं। कविता ने राजा को बताया कि प्रजा समुन्नत है। कोई चारित्रिक दुर्व्यवस्था नही रह गई। यथा,

हिंसा यज्ञे संस्कृतानां पशूनां
स्पर्धा विद्याकामुकानां वटूनाम् ।
क्रोधः क्रीडद्बालकानां गुरूणां
शिष्याणां चाध्यात्ममार्गे विवादः ॥५.२१

सभी दुष्प्रवृत्तियों का स्थान परिसीमित हैं। राजा ने विविध विद्याओं का सादर अभिनन्दन किया। वही शिव आ गये—

अर्धांगे कुवलयलोचनां दधानः
प्रालेयस्फटिक-धराधरोद्भटाभः ।
उद्दामद्युति-शशिखण्ड-मण्डनश्री-
श्चित्तान्तर्विलसति यः पुमान् पुराणः ॥५.५२

राजा धर्म ने उनकी पूजा की और मानसोपचार किया।

नाट्य शिल्प

द्वितीय अंक में व्यभिचार और परस्पर-प्रीति रंगपीठ पर आलिंगन करते हैं। आलिंगन करते समय व्यभिचार स्वगत कहता जाता है—

त्रुट्यत्कूर्पासहारं विदलितवलयं विश्लथं नीविबाढं
प्रौढप्रेमातितिर्यग्विचलितनयनं गाढमालिंगितायाः ।
उच्छ्वासोत्तालवक्षोभवदृढघटनादेति नव्यां महीया-
नंगप्रत्यंग-संगादनुभवपदवीं कोऽपि शर्मातिरेकः ॥२.४

(प्रकाशं दृढं परिष्वज्य) इत्यादि ।

उपर्युक्त स्वगत मे आंगिक अभिनय का निर्देशन किया गया है ।

प्रथम और द्वितीय अङ्क के मध्य का विष्कम्भक दृश्यसामग्री से युक्त होने के कारण लघु दृश्य के रूप मे प्रस्तुत है । इस विष्कम्भ में ११ पृष्ठ हैं और द्वितीय अङ्क में केवल ६ पृष्ठ । अङ्क से बडा विष्कम्भक होना विरल ही है ।

चरितनायक

इस नाटक में भावात्मक नायकों के साथ ही पुरुष पात्र भी है । उनमे से पौराणिक, वैद्य, गणक, स्मार्त, प्राड्विवाक, सदस्य, सभ्य, क्रोडपाल आदि प्रमुख हैं । भावात्मक नायक नाम मात्र के भावात्मक हैं । वस्तुत वे आचार-व्यवहारादि से पुरुष ही प्रतीत होते है । अन्यत्र एक साथ ही रंगपीठ पर ११ पात्र आकर उपस्थित होते हैं ।

कार्याभाव

रंगपीठ पर सवादमात्र प्रचुर हैं । वे चरित नायको के कार्य से युक्त नही हैं । कवि को सम्भवतः यह मान्य नही था कि कार्य-रहित कोरे सवादो से और व्याख्यानो से रूपक नही बनता ।

एकोक्ति

पण्डित-संगति की एकोक्ति तृतीय अङ्क के आरम्भ मे अतिशय मार्मिक है । यथा

कथमिह भवतीनामाननाम्भोरुहाणि
प्रसरदमृतवाणीवासनागर्भितानि ।
विविधजनसमाजेऽद्यापि नालोकयन्ती
हत विधिकलिताहं जीवितं धारयिष्ये ।।३.१

शैली

भूदेव को अख्यात शब्दो के प्रयोग मे रुचि थी । वे मध्याह्न के लिये घस्रमध्य लिखकर सन्तोष का अनुभव करते हैं । साधारणतः तो कवि सरल शब्दो का प्रयोग करता है, किन्तु अपवाद रूप से अज्ञात शब्दो के प्रति उसका झुकाव है ।

अनुप्रास की शुभ्रता गद्य भाग मे कहीं कहीं चमत्कार उत्पन्न करती है । यथा,

तरुणतरतरणिकरजनितक्लेशेव तनुतामुपैति छाया जनानाम् । त्वरिततरमुदयगिरिवरशिखरपरिसरादन्वरसरणिसमारोहणपरिश्रमादिव मिहिररथतुरगाः स्थिरतामुपयान्ति गगनमध्ये ।

पद्यो मे भी अनुप्रास भरपूर है । यथा,

पलितदलितवाल शुष्ककंजालजाल-
श्चलितगलितदंष्ट्रादन्तमालाकरालः ।

लपनतरललालाश्वासहिक्काजटालो
न भवति सुमुखीनां भोग-योग्यश्चितांगः ॥२.१०

कहीं-कहीं श्लेष के द्वारा रूपक का नियोजन सफल है। यथा,

वेदमूर्तिरपि रागमाश्रितस्तेजसां निधिरपि स्पृशंस्तमः
अम्बरं परिहरंस्त्वलत्करः काश्यपः पतति वारुणीं भजन् ॥

छोटे-छोटे पादों वाले सरल सुबोध पद्यों के द्वारा मनोभावों की अभिव्यक्ति की गई है।

लोकोक्ति

धर्मविजय नाटक में लोकव्यवहार और सदाचार-प्रवण सूक्तियों की राशि संवलित है। तत्कालीन सामाजिक प्रवृत्तियों के परिज्ञान के लिए इन लोकोक्तियों का विशेष महत्त्व है।

परिहास

प्रेक्षकों को परिहास के साथ कुछ सूझबूझ की बातें बता देना भूदेव की देन है। युधिष्ठिर को धर्मावतार कहना कैसी विडम्बना है, जब

भीष्मं गुरुं सूर्यसुतं निहत्य
वृद्धं पितृव्यं तनयैर्वियोज्य।
युधिष्ठिरः स्वानपि घातयित्वा
धर्मावतारः प्रथितः पृथिव्याम् ॥ १.२२

भविष्य की कल्पना

तुलसीदास की भाँति वाराणसी की जो दशा कवि ने लगभग ४०० वर्ष पहले कल्पित की थी, वह आज प्रत्यक्ष है। यथा,

व्यभिचार—आज्ञप्तोऽस्म्यधर्मेण—वत्स व्यभिचारप्रथमे तीर्थे पार्वतीप्राणनाथपुरे दृष्टिरागवनितया परस्परप्रीत्या सह गार्हस्थ्यमनुभूयताम्। चरितं च भवतो विलोक्य कुलीनतरुणीतरुण्योऽपि स्वेच्छाविहारिभिर्भवितव्यम्।

आज काशी की सड़कों पर ऐसे स्वेच्छाविहारी सैलानियों की संख्या अविरल है। कवि के भविष्य-दर्शन में स्पष्टता है—

काचित् कान्तं परमभिसरत्यात्मना वित्तकामा
दूती काञ्चनयति विविधैश्छद्मभिः सम्प्रलोभ्य।
काचित् कर्तुं व्रजति सफलं जारसंगाद्वयः स्वं
काचिद्वन्ध्या प्रतिमठमटत्याकुला पुत्रहेतोः ॥ २.१

एकत्रैके निवासादविदितचरिताः संश्रयन्त्यन्यकान्ता
भूत्वा मित्राणि भर्तुर्विलसितमपरे तस्य दारैर्भजन्ति ।
केचिद्वाणिज्यदम्भात् परिचरणमिषात् केऽपि धर्मोपदेश-
व्याजात् केचित् परेषां शरणमुपगताः कामिनीः कामयन्ते ॥ २.२

वाटीविभूषणमनर्घ्यमुदार-शाटी
पाटीरकुङ्कुमविलेपनमन्यदाराः ।
तीव्रा सुरा कुसुमपल्लविनी च शय्या
स्वर्गोऽयमेव नरक क्व नु केन दृष्टः ॥ २.३

समीक्षा

धर्मविजय अपनी कोटि का एक निराला ही नाटक है। इसके पाँचो अङ्क स्वतन्त्र दृश्य रूप मे है। प्रत्येक मे प्रायशः स्वतन्त्र कथ्य हैं। इसके विष्कम्भक प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ अङ्क के पहले प्रायशः स्वतन्त्र दृश्य के रूप मे प्रयुक्त हैं। इसमें कार्य की पचावस्थायें दूरतः साध्य हैं।

धर्मविजय-नाटक प्रहसन-प्रधान है, यद्यपि इसमे विदूषक नही है। वैद्य, गणक, स्मार्त आदि नायको मे अपने व्यवसाय का औदात्त्य नहीं है। पाखण्ड का भण्डाफोड़ करने की दिशा मे जो प्रवृत्ति प्रहसनो मे दिखाई देती है, वही इसमे भी है। भाण मे समाज की विकृति का निदर्शन स्थान-स्थान पर मिलता है। यह प्रवृत्ति भी धर्म-विजय मे पर्याप्त मात्रा मे मिलती है।

धर्मविजय अपनी इन विशेषताओं के कारण महत्त्वपूर्ण है।

अध्याय ४

भावना-पुरुषोत्तम

भावना-पुरुषोत्तम की रचना सोलहवीं शती के मध्य में श्रीनिवास दीक्षित ने की। तन्जौर विद्वन्मण्डल के अद्वितीय रत्नों में इनकी गणना की जाती है। श्रीनिवास का जन्म विद्वत्कुल में हुआ था, जिसकी नामावली परम्परा से अधोलिखित है:—

श्रीभवस्वामी (भाष्यकार)
श्रीकृष्णार्य (आह्निकप्रणेता)
कुमार भवस्वामी (अद्वैतचिन्तामणिकार)
श्रीकृष्णार्य
श्रीभवस्वामी भट्ट
श्रीनिवास।

श्रीनिवास का सर्वप्रथम नाटक भावनापुरुषोत्तम है।[1] इसकी प्रस्तावना में सूत्रधार ने इनका परिचय दिया है कि राजा सूरप नायक के द्वारा प्रतिष्ठापित सूर-समुद्र-अग्रहार में श्रीनिवास निवास करते थे।

सूत्रधार—अस्ति खलु कश्चित्तोण्डीरेषु[2] श्रीसूरसमुद्राभिधानो महानग्रहारः

तत्रास्ति कश्चिदरुणाग्निहोत्री
षड्दर्शनी सागरपारदृश्वा।
शतावधानीत्यपराभिधानः
श्रीश्रीनिवासाध्वरिसार्वभौमः॥

सूत्रधार ने आगे बताया है कि श्रीनिवास प्रतिदिन-प्रबन्धकर्ता हैं, इन्हें चोलराज का प्रशस्तिपत्र प्राप्त है, ये षड्भाषा सार्वभौम हैं, ये अभिनव भवभूति हैं, रत्नखेट हैं, अतिरात्रयज्वा हैं।

भावना-पुरुषोत्तम का अभिनय वेङ्कटनाथ के वासन्तिक महोत्सव के अवसर पर हुआ था। अभिनय की अध्यक्षता स्वयं नायक-वंशोत्तंस महाराज सूरप ने की थी।[3] इसकी रचना सूरभूपति की इच्छानुसार हुई थी, जैसा अन्तिम अङ्क की इसकी पुष्पिका से ज्ञात होता है—

---

१. भावना-पुरुषोत्तम की हस्तलिखित प्रति सागर-विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में है। इसकी मूल प्रति तन्जौर सरस्वती-महल-पैलेस लाइब्रेरी में है।

२. मदुरा और तन्जौर के मध्य का प्रदेश।

३. सूरप के तीन दानपत्र शक १४७२, १४१४ और १४६८ संवत्सर के मिलते हैं, जो १४६२ ई० से १५५० ई० तक पड़ते हैं।

इति श्री निवासातिरात्रयाजिनः कृतौ श्रीपोनभूपालतनय-श्रीसूरभूपति-कारिते भावनापुरुषोत्तमाभिधाने ।

श्रीनिवास के आश्रयदाता सूरप जिजी (शेञ्चीपुर) के नायकवंशी राजा थे। कुछ समय के पश्चात् वे अपने पुत्र के साथ तंजौर में चेवप्प के आश्रय में रहने लगे थे।

सूत्रधार ने प्रस्तावना में कवि का आत्मपरिचय उद्धृत किया है, जो इस प्रकार है—

भुवि कतिपयैः प्रस्तूयन्ते पदार्थचमत्क्रियाः
प्रचुरितपदाटोप. पन्थाः परैर्बहुमन्यते ।
परिचितपरानन्दास्वादप्रमोदपचेलिमैः
शिवशिवरसोऽस्माभिः श्लाघापरं परिचीयते ॥

आगे चलकर कहा है—

मदीये वाग्गुल्मे यदि कविचमत्कारकरिणी ।
न वाणी का हानिर्मम हरिकथाधौतवचसः ॥

बाल्यज्ववेदेश्वर ने श्रीनिवास की रचना-सागरी का परिचय इस प्रकार दिया है—

अद्वैतास्त्रवकौस्तुभं व्यरचयद्यो वादतारावलीं
मध्वध्वसनबौद्धतन्त्रमथने वेदान्तवादावलीम् ।
प्रख्यातं मणिदर्पणं समयसर्वस्वं विधेर्निर्णयं
तत्त्वाना परिशुद्धिबोधविमलं रत्नप्रदीपं स्मृतेः ॥

यो भावनापुरुषवर्यं मुरान्यकार्षी-
दष्टादशापि च दशाद्भुतरूपकाणि ।
भावोत्तराणि शितिकण्ठजयादिमानि
काव्यानि पश्चिमतनोदमृतायितानि ॥

ध्वन्यध्वन्यमनोविनोदनिपुणाः साहित्यसंजीवनी-
भावोद्भेदरसास्त्रवाद्रिकृतयः पारिशुद्धेः यत्कृताः ।
अन्ये क्षौद्ररसार्द्रसुन्दरगिरः क्षुद्रप्रबन्धाः शत
छन्दोज्योतिषमन्त्रतन्त्रविषया भाषाप्रबन्धास्तथा ॥

अन्याश्च यस्य कृतयो निखिलागमान्त-
सिद्धान्तितान्तरनिरन्तरसूक्तिगुम्फाः ।
षड्दर्शनीसकलमर्मविवेककर्म
कर्मक्षमाः कृकृतिनां मुदमावहन्ति ॥

कालनिर्णय

भावनापुरुषोत्तम के अन्त में नीचे लिखा पद्य मिलता है—

सर्वधारिसमे मीनमासे राकातिथाविदम्।
उत्तरर्क्षे रविदिने समाप्तं नाटकं परम्।

अर्थात् इस नाटक की समाप्ति १५८८ ई० में हुई। यह नाटक की प्रतिलिपि के समाप्त होने की मिति है न कि कवि द्वारा उसके प्रणयन की, क्योंकि कवि के आश्रयदाता सूरप के दानपत्र १४६२ ई० से १५५० ई० तक के हैं। कुप्पू स्वामी शास्त्री ने सूरप नायक का शासन काल १५४६-१५७२ ई० बतलाया है।[1] ऐसी स्थिति में श्रीनिवास को १६ वीं शती के मध्य काल में रखा जा सकता है।[2] ऐसा लगता है कि भावनापुरुषोत्तम की रचना १५५५ ई० के लगभग हुई।

कथावस्तु

भावनापुरुषोत्तम नाटक में योगविद्या नामक परिव्राजिका भावना और पुरुषोत्तम का संयोग कराती है। भावना जीवदेव की कुमारी है। उसे पुरुषोत्तम से प्रेम हो गया। इधर पुरुषोत्तम भी भावना के प्रति अनुरागाविष्ट होकर उससे मिलने के लिए मृगयाविनोद के बहाने गरुड पर बैठकर निकल पड़े। वे रमणीय हरिण को पकड़ने के लिए उसके पीछे-पीछे दौड़े। हरिण पकड़ा गया और वह अन्तःपुर में भेज दिया गया। आगे बढ़ने पर पुरुषोत्तम सिद्धाश्रम पहुँचे। वहाँ मृग वीणागान सुन रहे थे। वहीं नायिका सखी के साथ जा पहुँची। मन्दिर में भावना का गीत तुलसी की स्तुति विषयक सुनाई पड़ा—

संसारजनहितरणे तुलसि महाविप्णुवल्लहे देवि।
सिज्झउ मह वंछिअं तुज्झपसाएण मम कप्पलये॥

नायक बिना जाने ही अपनी नायिका के पास पहुँचा, क्योंकि उसके सौन्दर्य से मोहित हो चुका था। उसने नायिका को यह कहते सुना कि तुलसी देवी ने कहा है कि शीघ्र ही तुम्हें अपने प्रियतम मिलेंगे। नायक को छिपकर नायिका की सखी से उसकी बातें सुनते हुए ज्ञात हो गया कि उसके प्रियतम पुरुषोत्तम हैं। वे विदूषक के साथ देवता-दर्शन के लिए गये। नायिका ने उन्हें देखा तो उसे लगा कि पुरुषोत्तम ही हैं। उसकी सखी ने कहा कि ये तो मानव हैं। क्षणभर के लिए नायक ने सखी के बताये पुरुषोत्तम रूप को धारण किया—कालमेघ श्याम, चतुर्भुज, शंखचक्रगदापद्मधारी, कौस्तुभशाली, पीताम्बरधारी, फिर मानव हो गये। यह जादू है कि भगवान् की लीला है? यह विचार करती हुई भी भावना ने कहा कि इनमें मेरी दृष्टि अनुरागमयी है, पुरुषोत्तम को छोड़कर अन्य में मेरा अनुराग कहाँ?

1. A Short History of Tanjore Princes.
2. T. R. Chintamani, Life and Works of Rajacudamani Dikshita appended to Rukmini Kalyana Mahakavya.

नायक और नायिका का अनुराग प्रथम दर्शन में बढ़ ही रहा था कि दूर से विदूषक का 'त्राहि माम्' सुनाई पड़ा। दो पहर का समय हो चुका था। नायक उसे बचाने चला। नायक ने विदूषक से मिलने पर नायिकागत अपनी मानस-विक्रिया का वर्णन किया—

तन्मुखं स च दृगंचलक्रमः
सा च वाक्यरचना चमत्क्रिया।
तानि तानि हसितानि सुभ्रुव
स्सन्ततं मनसि संचरन्ति मे।

उसके नयनवाण से नायक का हृदय बिंध गया था। वह अपनी स्थिति का वर्णन करता है—

तदपांगबाणकृतरन्ध्रवर्त्मना
तरसा प्रविश्य विषमायुधो मनः।
विविधैर्भिनत्ति विशिखैर्विशृंखले
विधिचातुरीयमिति मन्महे वयम्॥

और भी—

मत्तस्तदा खलु मनःकलभो मदीयः
काञ्ची-कलाप-खलशृंखलया निबद्धः॥

नायिका के विषय में नायक कामना करता है—

उत्तानित कचभरग्रहणेन तस्या-
स्स्विद्यत्कपोल विलसत् पुलकप्ररोहम्।
किंचार्धकुड्मलित-दृष्टिमुखं कदा नु
स्मेर निरुद्धकिलकिंचितमापिबेयम्॥

नायिका के विषय में नायक की गहरी शृङ्गारित प्रवृत्ति देखकर विदूषक ने उसे बताया कि आज इस सिद्धाश्रम में यह बातचीत चल रही थी कि निकट आये हुए पुरुषोत्तम को यहाँ एक पखवारा रहने का निमन्त्रण दिया जाय, जिससे समाधि में बाधा डालने वालों से छुटकारा मिले।

योगविद्या ने उस आश्रम के सज्जनमानसोद्यान नामक पार्श्ववर्ती प्रदेश में भावना और पुरुषोत्तम के साहचर्य के लिए रमणीय उपादान प्रस्तुत कर दिये थे। वहाँ मदनातङ्कित नायिका आ जाती है। जितना ही उसका शीतोपचार हो रहा है, उतनी ही उसकी मदन-बाधा बढ़ रही है। नायिका ने स्वान्त सुखाय नायक का चित्र बनाया, जिसे वानर का रूप धारण करके विदूषक ने झपट्टा मार कर हथिया लिया और नायक की इच्छानुसार उसे दिया। नायक उसी चित्रफलक पर अपने को नायिका के चरणों में प्रणत चित्रित करके उस स्थान पर आ पहुँचा, जहाँ नायिका थी, पर अदृश्य। नायक ने चन्द्रकान्त-शिलातल में उसकी छाया देखी और उसे

ढूँढ़ने लगा। उसने मनोव्यथा कही—.

इयमिह विरहार्ता दृश्यते चन्द्रकान्ते
शमयितुमभितापं सर्वयान्तर्विलीना।

उसने आलिंगन के लिए हाथ फैलाया तो कुछ भी हाथ नहीं लगा। वह उसे लतामण्डप में ढूँढ़ने चला। नायिका को चन्द्रकान्त-शिला में देखते हुए नायक उसके विषय में अपने भाव प्रकट करने लगा और अदृश्य नायिका उत्तर देने लगी। नायक विचारा उद्विग्न हो गया। अन्त में उसने चतुर्भुज रूप धारण किया और नायिका उसके समक्ष प्रकट हुई। नायक नायिका का पाणिग्रहण करना चाहता था, किन्तु नियमानुसार इसके पिता कन्यादान करेंगे, जब स्वयंवर सभा में सभी प्रतिपक्षी पापण्डों का खण्डन करके विजयी होंगे।

काचीपुरी में स्वयवर सभा का आयोजन हुआ। चार्वाक सिद्धान्त सबसे पहले पहुँचे। साथ में उसका शिष्य नास्तिक था। उसने अपने शिष्य से ऐन्द्रियक भोगों के अतिशय को अपवर्ग बताया। वेद धूर्तवाद हैं, स्मृति अपस्मृति है, इतिहास परिहास है। सभी दिशाओं में चार्वाक के शिष्य दुराचार, दुर्गुण, दुर्बुद्धि, कलि आदि विजयी हो रहे हैं। वेदानुयायी भी वस्तुतः इन्हीं के वश में हैं। ये पुरोहित दम्भी हैं। उनका आशापाश वर्णनातीत है। कई तो वेशवाट का सेवन करते हैं। याजक वंचक-शिरोमणि हैं।

फले सम्पाद्यानां क्वचन शशशृंगप्रतिभटे
प्रवृत्तान् कुर्वन्तः कथमपि धनाढ्यान् क्रतुविधौ।
क्रमात् प्रायश्चित्ताव्यतिकरमिषेण प्रतिपदं
हरन्तः सर्वस्वं न च जहति पट्टं वा परिहितम्॥

चार्वाक ने क्षपणक-सिद्धान्त को देखा और बरस पड़ा कि तुम्हारे मत में देह और आत्मा भिन्न हैं, प्रत्यक्ष के अतिरिक्त भी प्रमाण हैं, परलोक भी है, वस्त्र नहीं धारण करते, केशलुंचन कराने की रीति है और ब्रह्मचर्य भी है। तो फिर क्या गड़बड़ी नहीं है? और भी—शून्यागार में रहते हुए तुम सभी स्मरकला में निष्णात हो। मैं भी कामाग्नि प्रशान्त करने के लिए तुम्हारा शिष्य बनना चाहता हूँ। जब उसका केशलुंचन होने लगा तो वह कष्ट से भाग खड़ा हुआ। उसे बुद्ध-सिद्धान्त मिला। चार्वाक की दृष्टि में—

भवान् योगाभ्यास-स्तिमित इव निध्यायसि दिवा।
निशा भुक्तान्नास्ता रहसि मठवासी मृगदृशः॥

इस लाभ के लिए वह बुद्ध-दीक्षा की याचना करने लगा। उसने बौद्धदर्शन के मूलभूत सिद्धान्तों को सुना। घबड़ा कर दूर हटा तो कापालिक सिद्धान्त से मुठभेड़ हुई। वह गोरख का नाम जप रहा था। उसने अपनी चर्या बताई—

पातव्यं मधु मत्तचन्द्र-वदना-गण्डूषितं सर्वदा
कर्तव्या सरसामिषाशनकला यस्मिन् मते देहिनाम् ।

उसने राजयोग, हठयोग, कायसिद्धि आदि का वर्णन किया ।

आगे मिला वीर-सिद्धान्त—

जंघामुखरित-घण्टा जर्जरकन्था जटागलल्लिङ्गा ।
हस्तान्दोलितशूलाः हरहर केचिद्वलन्ति भिक्षाका ॥

आगे शक्तिसिद्धान्त मिला । वह त्रिपुरसुन्दरी का उपासक है—

'मद्यं पेयं मांसमासेवनीयम्'

उसकी व्रतचर्या थी ।

फिर सामयिक सिद्धान्त, सुदर्शनाचार्य-सिद्धान्त, नीलकण्ठ-सिद्धान्त, सेश्वर-साख्य-सिद्धान्त, प्रभाकर सिद्धान्त, निरीश्वर-सांख्य-सिद्धान्त, आर्हत-सिद्धान्त, वैशेषिक सिद्धान्त, नैयायिक सिद्धान्त तथा यवन (इस्लाम मत) की भी मान्यतायें बताई गई हैं ।

तृतीय अङ्क के अन्त में रंगमञ्च पर तत्त्व-जिज्ञासा नामक योगविद्या की शिष्या आती है । सबने निर्णय लिया कि योगविद्या को दासी बनाया जाय । कापालिक ने कहा कि इसे दुर्गा या भैरव की बलि दे दी जाय । उनकी पकड़ में आने पर तत्त्वजिज्ञासा रोने लगी । तभी तत्त्वविचारणा आ पहुँची । उन्होंने बताया कि योग-विद्या तो बौद्ध, जैन, कापालिक आदि के पास भी है, किन्तु वह मायात्मक है ।

चतुर्थ अङ्क के पहले विष्कम्भक में परिव्राजिका और तत्त्वविचारणा रंगमंच पर आती हैं । वे प्रातःकाल का वर्णन करती हैं । परिव्राजिका का कहना है—

हरिद्रा क्षोदन्ति द्रविडवनितानां कुचतटे
रुचे कर्णाटीनां दधति विकसच्चम्पकरुचिम् ।
नितम्बे लाटीनां कपिशपरिधानं तु न चिरं
कराः केचिद् व्योमद्विप-कनककक्ष्या दिनमणेः ॥

वे भावना के स्वयंवर के लिए आये हुए देवों की चर्चा करती हैं । उन्होंने चरों को भेजा है कि पता लगाओ कि जीवदेव और भावना का क्या मन्तव्य है । फिर वे दोनों काञ्चीपुरी का वर्णन करती हैं ।

द्वारे द्वारे क्रमुककदलीपक्तयः पूर्णकुम्भे-
र्वेद्यां वेद्यां ललितललिता रागवल्लीमतल्लय. ।
सौधे सौधे गगनतटिनीपानधौताः पताकाः
वीथ्यां वीथ्यामपि च मधुरः श्रूयते वाद्यनाद. ॥

चतुर्थ अङ्क में माता के पिता जीवदेव को गुरुवाणी स्वयंवर में आये हुए प्रत्याशियों का वर्णन सुनाती है । सर्वप्रथम शिवपुराण-पुरुष ने स्वयं और शिव

उसके ध्यान करने से भगवती तुलसी आकाशयान से आ पहुंची। उसने भगवान् के पाद पर अर्पित कतिपय दलों को लेकर उनसे भावना के नयनों को मल दिया। उसने पुरुषोत्तम को पहचान लिया। अन्त में भावना का पुरुषोत्तम से परिणय हो गया। ब्रह्मा पुरोहित बने। लक्ष्मी ने परिणयमंगल सम्पन्न किये। जीवदेव ने वर को मधुपर्क दिया। सुरयुवतियों ने तिरस्करिणी धारण की। ब्रह्मा ने मंगलाष्टक पढ़ा।

छायातत्त्व

नाटक के नायक पुरुषोत्तम जगदीश्वर भगवान हैं। इनसे नाटक की महिमा बढ़ी है। वैचित्र्य की दृष्टि से गरुड का नाटकीय अभिनय रंगमंच पर अनोखा है। पुरुषोत्तम उसकी पीठ पर हैं। वह मनुष्य की भाषा बोलता है और साथ ही रथ की भाँति "वेग नाटयति", जिससे हरिण को पकड़वा सके। वह हरिण के समीप जाकर पुरुषोत्तम से कहता है—

स्वामिन्नतिसमीपवर्तितया करग्रहणयोग्य एवायमधुना हरिणः।

यहीं वैनतेय सिद्धाश्रम पहुँचने पर विदूषक बन गया। वहाँ पुरुषोत्तम ने मानुष रूप धारण कर लिया।[1] इन प्रसङ्गों से नाटक में छाया-तत्त्व की सृष्टि हुई है। विदूषक प्रथम अङ्क में देवतायतन के पीछे जा कर उपश्रुति का सम्पादन करता है, जिसे सुनकर नायिका समझती है कि देवता ने मुझे प्रियतम से शीघ्र मिलने की सूचना दे दी है। यह घटना भी छाया-तत्त्व से निष्पन्न है। द्वितीय अङ्क के अन्तिम भाग में नायिका नायक का चित्र बनाती है और विदूषक के वानर बन कर उसे चुरा लेने पर कहती है—"हा धिक् कुत्र गम्यते। किमिति न दीयते परीरम्भः। आगच्छ मे समीपम्'। चित्र के प्रसंग में यह सब कहना छाया-तत्त्व है।

भूमिका के नाम रमणीय हैं—नायिका और नायक के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों के नामों से सांस्कृतिक अभिरुचि व्यक्त होती है। परिव्राजिका योगविद्या है। उसकी शिष्या सत्त्वशुद्धि, और तत्त्वजिज्ञासा है। नायिका के पिता जीवदेव और माता तत्त्ववासना हैं। वेदपुरुष नायक का प्रमुख पारिषद है। भावना की चेटी का नाम मनीषा है, और दूसरी चेटी है धारणा। कुछ अन्य भूमिकायें हैं क्षपणक सिद्धान्त, बुद्धसिद्धान्त, चार्वाकसिद्धान्त आदि।

रस

श्रीनिवास की श्री शृङ्गार के उद्दाम प्रवर्तन में विशेष सफल है। नायक-नायिका-व्यापार में स्वभावतः शृङ्गार की धारा इस नाटक में पर्याप्त गम्भीर तथा अटूट

१. पुरुषोत्तम—इह वैनतेय विदूषक-वेषमवलम्ब्यतां भवान्। अहमपि चतुर्भुजादिलाञ्छनमप्राकृतमाकारं तिरोधाय मानुषनायकाकार-मवलम्बे।

है।[1] बीच-बीच में अन्य रसों का समावेश रुचिकर है। हास्य का प्रवर्तन रंगमंच पर विदूषक की बातों से एक नये ढग से किया गया है। द्वितीयअङ्क में यह मृगया के प्रति अपना विरोध प्रकट करते हुए कहता है कि मुझे तो हिंसा से बचना है। इसके लिए तो मैंने सन्ध्या-वन्दन, अर्घदान आदि पहले से ही छोड़ रखा है कि कहीं इनसे राक्षसों की हिंसा न हो जाय। यह तो महापातक है।

नये विधान

रंगमंच पर वैनतेय का विदूषक वेष बनाना और पुरुषोत्तम का मानुषवेष धारण करना भारतीय परम्परा के विरुद्ध है। रंगमंच पर परिधान धारण करने का निषेध था।

प्रतीक-तत्त्व

पूरा नाटक ही प्रतीकात्मक है। इसमें भावात्मक तत्त्वों का मानवीकरण न करके मानवों को भावात्मक रूप प्रदान किया गया है। यथा, यक्ष और राक्षस समाधि में बाधा डालते हैं। पर ये यक्ष और राक्षस हैं—अशान्ति पैदा करने वाली मानसी वृत्तियाँ—

ते समाधिविघ्नान्तकाः त्रिष्वपि भुवनेष्वालस्य-तीव्रव्याधि-प्रमादार्थानुसम्भ्रमानवस्थित-चित्तभावाविश्वासाशान्ति-दुःखभाव-दौर्मनस्य-विषयलोलभावाभिधाना दशमहाराक्षसाः।

पूर्वानुसरण

भावनापुरुषोत्तम मे श्रीनिवास ने प्राचीन युग के महान् नाटककारो की कृतियों से भव्य प्रकरण अपनाये हैं। देवतायतन मे नायक का देवताप्रीत्यर्थ वीणावादन करते समय नायिका से मिलना श्रीहर्ष के नागानन्द के आदर्श पर है। चित्रप्रकरण रत्नावली के आदर्श पर निर्मित है। कुन्दमाला के आदर्श पर भावनापुरुषोत्तम में नायिका के प्रच्छन्न रहने का उपक्रम है। यथा,

'कुलपतिनाश्रमवासिनीभिस्स्त्रीभिः प्रार्थितेन ऋषिणैवं भणितम्—अत्र पंचपदिनमात्रे मानुषशरीरधारिण आत्मनो मा नयनगोचरो भवतु स्त्रीजनः। ततो निर्भरं स्नानप्रमुखो नियमो निर्वर्त्यताम्'।

नायक मन्त्रशक्ति से प्रच्छन्न नायिका की छाया शिलातल में द्वितीय अंक मे देखता है—भावनापुरुषोत्तम का यह प्रकरण कुन्दमाला और विद्धशालभंजिका के अनुरूप पड़ता है।

---

१. 'भावना पुरुषोत्तम' नाम से ऐसा लगता है, कि इसमें शृङ्गार रंचमात्र ही हो सकता है। किन्तु वस्तुस्थिति विपरीत है। इसमें पुरुषोत्तम उच्चकोटि के मँजे हुए नागरक शृङ्गारित वृत्तियों से ओत-प्रोत हैं।

अपनी अदृश्य नायिका को ढूँढते समय पुरुषोत्तम ने देखा कि तमालवृक्ष पर लता आसक्त है। उन्होंने सोचा कि यह तो कोई राक्षस मेरी पत्नी को ही लिये जा रहा है, जैसे रावण सीता को हर ले गया था। यह प्रकरण विक्रमोर्वशीय पर आधारित है।

अङ्कों के भीतर प्रवेशक और विष्कम्भक को इस नाटक मे न लिखकर, जहाँ अङ्कान्त होता है, वहाँ अक के अन्त की सूचना और जहाँ प्रवेशक और विष्कम्भक का अन्त होता है, उनके अन्त होने की सूचना हस्तलिखित प्रति मे है। अङ्कारम्भ या अर्थोपक्षेपको का प्रारम्भ नही लिखा गया है।

दोष

भावना-पुरुषोत्तम के नाम बडे, दर्शन छोटे हैं। इसमे तो द्वितीय अङ्क मानो कामशास्त्र का परिपक्व अध्याय है, जिसमे नायक की नायिका विषयक काल्पनिक सगमती का बेजोड उजृम्भण प्रकट करने मे ही कवि ने अपनी सफलता मानी है। यह सब विदूषक के समक्ष नायक का आत्मवर्णन है जो व्यर्थ की ठूँसी हुई सामग्री लगती है। विदूषक के शब्दो मे नायक का यह सब नायिका सम्भोग-चिन्तन--'आशानदी-परिवाह' है।

प्रश्न है—क्या नाटक मे ऐसी लम्बी-चौडी वर्णना कथातन्तु का विच्छेद करती हुई भी उचित मानी जा सकती है? अथवा लम्बे-चौडे दर्शनानुवन्धावली का सवाद रूप मे तृतीय और चतुर्थ अङ्क मे प्रस्तुतीकरण क्या नाट्योचित है? कदापि नही। यदि साम्प्रदायिक शास्त्रार्थों से विरहित नाटक श्रीनिवास लिख सकते तो उनकी कल्पना-शक्ति और रचनानैपुणी उन्हे अपने युग के श्रेष्ठ नाटककारो मे प्रतिष्ठित करा पाती।

अध्याय ५

मनोनुरञ्जन

मनोनुरञ्जन अथवा हरिभक्ति नामक पाँच अंकों के नाटक के प्रणेता अनन्तदेव का प्रादुर्भाव सोलहवीं शती के उत्तरार्ध में हुआ।[1] इनके गुरु रामतीर्थ मधुसूदनसरस्वती के समकालीन थे। मधुसूदन ने तुलसीदास के सम्बन्ध में लिखा था—

आनन्दकानने कश्चिज्जङ्गमस्तुलसीतरुः।
कवितामञ्जरी यस्य रामभ्रमरभूषिता॥

उनका समय अन्य आधारों पर भी १६ वीं शती प्रमाणित होता है। मधुसूदन, रामतीर्थ और तुलसीदास के आसपास अनन्तदेव का रचनाकाल सोलहवीं शती का अन्तिम चरण सम्भाव्य है। अनन्तदेव उच्चकोटि के विद्वान् थे। प्रस्तावना में उनका परिचय है—

यः पूर्वोत्तरमीमांसापरिशीलनशीलवान्।
तदीयाध्यापनेनैव समयं खलु नीतवान्॥ ८॥

नाटक के अन्त में कवि ने पुनः अपना परिचय देते हुए कहा है—"शास्त्राणां परिशीलनैर्भृशमहो शिष्येषु चाध्यापने" इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि अनन्तदेव विष्णुभक्त थे। फिर भी उनके मानस में शृङ्गारित तत्त्व पर्याप्त मात्रा में था, जिसकी उपज सूर्य-वर्णन में नीचे लिखी पंक्ति है —

नक्षत्राणि च तेजसा विकलयन् कान्तादृढाश्लेषणं
यूनामेष शनैः शनैः शिथिलयन् सूर्यः समुन्मीलति॥२.२१

सामाजिक अनुबन्ध

सोलहवीं शती के प्रेक्षकों को दो कोटियों में विभक्त किया जा सकता था—सभ्य तथा इतरलोक। इनमें से सभ्य उच्च कोटि के नाट्यालोचक थे, जिन्हें प्रेक्षक रूप में पा लेना सूत्रधार सौभाग्य मानता था।[2] इस नाटक की प्रस्तावना से प्रमाणित होता है कि नाट्य केवल राजाओं और नागरिकों के प्रीत्यर्थ नहीं रह गया था। इस का प्रथम अभिनय सूत्रधार के प्रास्ताविक वक्तव्य के अनुसार 'श्रीनारायणेनान्तर्यामिणा प्रेरितोऽस्मि-यदुत हरिभक्तिरसप्रधानं कमपि निबन्धं सदनुबन्धिनं साधु विशदमभिनीय प्रदर्शयेति।'

---

१. इसका प्रकाशन काशी से सरस्वती-भवन-टेक्स्ट में सं० ७६ में हुआ है। इनका दूसरा नाटक हरिभक्ति-चन्द्रिका है। इसकी हस्तलिखित प्रति प्रयाग के गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत-विद्यापीठ के पुस्तकालय में है। इसकी प्रतिलिपि सागर-विश्व-विद्यालय के पुस्तकालय में है।

२. यत्नशतैरप्यलभ्याः समागता एव सभ्याः। प्रस्तावना में।

कथा

इन्द्र ने देवदूत से कहा कि नन्द के घर जाकर मेरी आज्ञा सुनाओ कि मेरे निमित्त यज्ञ करें तो उत्तम फल की प्राप्ति होगी। तदनुसार नन्द ने कार्यक्रम बना लिया। वे ब्राह्मणों और गोपालों के साथ यमुनातट पर स्थित गोवर्धन पर आ पहुँचे। गोपालों ने नाचना-गाना आरम्भ किया तो यज्ञ का आयोजन रुक गया। यह देखकर नद ने कहा—

स्वस्वव्यापृतिविरतिं दधाति गीताय पूतनारातेः।
न चलति न वदति किमपि स्मरति च नैवापि कर्तव्यम्॥ १.७०

उन्होंने कृष्ण से कहा कि यहाँ लोकपोषक इन्द्र के लिए हमे यज्ञ करना है। विवाद उठ खड़ा हुआ कि नन्दराज क्योंकर देवराज की सेवा करे? तर्क था—

वृन्दावनं नन्दनतोऽपि रम्यं गोष्ठं च नः स्वर्गपदाद्वरिष्ठम्।
किं देवराजाय च नन्दराज त्वयाल्पता स्वात्मनि कल्पितासौ॥ १.७२

एक वृद्ध ने कहा कि शङ्का है कि इन्द्र यज्ञ न करने पर हमारे गोष्ठ का विध्वंस कर डालेगा। श्रीदामा ने उत्तर दिया कि तब तो वह बकीबकधेनुक के पथ पर पहुँच जायेगा। कृष्ण ने कहा कि इन्द्र की अर्चा का कोई उपयोग नहीं—

कर्मानुसारेण च सौख्यभोक्ता किं तत्र शक्रेण समर्चितेन॥ १.७७

नन्द ने कहा फिर इस याज्ञिक सामग्री का क्या होगा? कृष्ण ने बताया कि इससे ब्राह्मण की पूजा हो। ब्राह्मण, गो और गोवर्धन—ये तीन हमारे पोषक हैं। इन्हीं की पूजा की जाय।

नन्द ने भी इसका समर्थन किया। पूजा के लिए सैकड़ो ब्राह्मण उपस्थित हुए। उनकी पूजा के पश्चात् गायों का पूजन हुआ। कृष्ण के मुरली बजाते ही गायें आ पहुँची। नन्द ने देखा—

ककुद्ग्रीवाः स्तब्धकर्णाः शुक्लवर्णाः समुत्सुकाः।
उद्वाष्पा उल्लसत्पुच्छा गावो धावन्ति माधवम्॥ १.६५

अन्त मे गोवर्धन गिरि की पूजा हुई।

कुंकुमकेसरपंकैः सिक्तः सर्वत्र सानुषु श्रीमान्।
विलसति पुष्कलपरिमलकुसुमसमूहैः समर्चितः शैलः॥ १.१०६

उस अवसर पर कृष्ण स्वयं गोवर्धन रूप हो गये। उन्होंने कहा—

शैलः स्वयं प्रसन्नोऽस्मि वरदोऽस्मीति भाषते।
नूनं गोवर्धनगिरिर्भगवान् भविता स्वयम्॥ १.११२

इन्द्र-यज्ञ के स्थान पर नन्दराज के द्वारा गो और कृष्ण की पूजा का समारम्भ सम्पन्न हुआ। यह इन्द्र को सूचित किया गया। मातलि ने उसे सुझाया कि वज्रप्रहार

से गोपों का ध्वंस करें। इन्द्र ने बताया कि गोप कृष्ण के बल पर कूद रहे हैं और गिना दिया कृष्ण के वर्तमान जीवन और भूतकालीन अवतारों के पराक्रमों को। मातलि ने पूछा कि अपमान आपका हुआ। अब क्या चुप बैठेंगे ? इन्द्र ने कहा—नहीं, खलवृत्ति से कृष्ण का पराभव करना है। यहीं से बैठे-बैठे मेघों को भेज दिया जाय कि गोकुल को वर्षा से बहा दें। मैं भी मेघों में छिपकर यह सारा दृश्य देखूँगा।

मेघों ने धुंआधार वर्षा करके गोकुल को असह्य पीड़ा पहुँचाई। कृष्ण ने कानी अंगुली से गोवर्धन धारण करके उन सबकी सुरक्षा कर ली। भयभीत होकर इन्द्र कृष्ण की शरण में आया। उसे गोकुल में कृष्ण-दर्शनार्थी कामधेनु मिली, जिसे आगे-आगे करके वह कृष्ण के समीप पहुँचा। कामधेनु ने कृष्ण की स्तुति की और कृष्ण के अपने योग्य काम पूछने पर कहा—

शरणागताय पुरुहूतायाभयं दीयताम्।
शतमप्यपराधानां सहस्रमपि वा कृतम्
शरणागतलोकस्य नालोचयति केशवः ॥४.५६

इन्द्र ने क्षमा मांगते हुए कहा—

इय तव कृपालुता यदपराधिनां मादृशा—
महो शुभदृशा मुहुः सुखमतीव संतन्यते ॥ ४.५५

कामधेनु ने कृष्ण के पुनः आज्ञा पूछने पर कहा कि मेरी कामना है कि आपका अभिषेक देखूँ। कृष्ण ने कहा—*यथा मनसि वर्तते*।

कामधेनु की आज्ञानुसार सिद्धियों ने कृष्ण का अभ्यञ्जन किया। इस अवसर पर नारद और तुम्बरु आ गये। उन्होंने कृष्ण-स्तुतिपूर्वक सेवा की। फिर गङ्गादि नदियों ने आकर स्नान की सामग्री प्रस्तुत की। उन्होंने अभिषेक कराया। गोपी वेष में आकर लक्ष्मी ने उन्हें परिधानों से अलंकृत किया। कामधेनु ने उन्हें मां की भाँति अपना दूध पिलाया।

सरस्वती आई और उन्होंने कृष्ण की स्तुति की। ब्रह्मा ने दण्डवत् की। शिव के आगमन के अवसर पर सरस्वती ने बताया—

हरिरिति हर इति भेदं गमिता स्वरूपचिन्मूर्तिः ॥४.१११

वेदों ने कहा—

अटन्तु तीर्थानि पठन्तु चास्मान् कुर्वन्तु यागान् कलयन्तु योगान्।
तमालनीले त्वयि वा सलीले रतिं विना नैव गतिं प्रतीमः ॥४.११७

पाँचवें अङ्क का समारम्भ यमुनापुलिन प्रदेश में होता है। गोपियों को स्नान करके गौरी पूजन करना था। वहीं थोड़ी दूर पर श्रीदामा-सहित कृष्ण आ पहुँचे और छिप कर गोपियों की रसमयी प्रवृत्तियों का आनन्द लेने लगे। जलक्रीड़ा में संलग्न

ने तट पर अपने वस्त्र रखे थे, जिसे इकट्ठा लेकर कृष्ण अपने मित्र के साथ पेड़ पर चढ़ गये।

गोपियों ने जलक्रीडा के अन्त में गीत गाये। अन्त में पानी में खड़े-खड़े देखा कि उनके वस्त्र नहीं है। उन्होंने परस्पर चर्चा की कि इस दुष्टचोर को यह नहीं विदित है कि हम लोगों को कृष्ण का सरक्षण प्राप्त है, जो इस चोर को अच्छी शिक्षा देंगे और हमारे वस्त्र प्राप्त करायेंगे। इसे सुनकर कृष्ण ने पेड़ से ही कहा कि तुम लोगों का वृत्तान्त जानकर मैं आ गया हूँ। बोलो चोर कहाँ है, जिसे दण्ड देकर तुम्हारे वस्त्र लाऊँ। गोपियों ने ऊपर देखा तो कृष्ण और उसके साथ एक आदमी था। कृष्ण को उन्होंने चोर समझा। कृष्ण के पूछने पर कि चोर कहाँ है? गोपियों ने कहा—

चौरस्तस्माद् भवानेव तमन्वेषयतु ॥ ५.६

कृष्ण ने श्रीदामा को चोर ढूँढने के लिए भेज दिया और गोपियों से कहा कि विवसना होकर यमुना में स्नान करने के कारण यह दुःख तुम पर पड़ा। सारी विपमताओं से मुक्त होने के लिए एक उपाय है—हाथ जोड़कर मेरे पैर पड़ो। गोपियों ने इसे अनुचित माँग समझी, पर कोई चारा नहीं था। विवश होकर उन्होंने कृष्ण से कहा—तुम तो पेड़ पर हो, तुम्हारे पैर कैसे पड़ें? वे उतरे और फिर उन्हें वस्त्रों की प्राप्ति हुई। उन्होंने सिर पर हाथ जोड़ कर पादप्रणति की। श्रीदामा के आने पर कृष्ण ने जब गोकुल लौटने की तैयारी की तो गोपियों ने उनका वसनांचल पकड़ लिया कि चोर को ढूँढ कर लाओ। कृष्ण ने उनका प्रेम देखकर रासलीला की योजना उनको बताई—

वेणुध्वनिं निशि निशम्य मनोऽभिरम्यं
वृन्दावने समभियातु ममान्तिकं तु।

उस समय तो गोपियाँ चलती बनीं। पुनः सन्ध्या की चन्द्रिका से वातावरण में चारु चन्द्रिमा का प्रसार होने पर सुनन्द के सहित विराजमान कृष्ण ने वन में मुरली बजाई तो सारी गोपियाँ भाग-भाग कर वहाँ आ पहुँची। सुनन्द को गोपियों का वह समूह पद्मिनी-वन की भाँति लगा। कैसे—

उल्लसन्मुखसरोजराजितं कुन्तलभ्रमरपुञ्जरञ्जितम्।
भाति चारुकुचकोशशोभितं कामिनीकनकपद्मिनीवनम् ॥५.४०

यह सब देखकर सुनन्द से समझ लिया कि इन प्रेमियों के बीच मुझे नहीं रहना चाहिए और कृष्ण की अनुमति लेकर वहाँ से चलता बना।

सुनन्द के जाने पर वहाँ नारद और तुम्बरु कृष्ण की वंशी का निनाद सुनकर आ गये। तुम्बरु के पूछने पर नारद ने बताया कि न केवल व्रजवनितायें, अपितु स्वर्ग लोक की ललनायें भी वंशी-वशीकृत भी यहाँ परमानन्द प्राप्त कर रही हैं। तुम्बरु ने देखा—

गोपांगनानां च सुरांगनानामसंख्यचक्षुर्भ्रमरावलीयम् ।
आनन्दमाविन्दति सावकाशमेकत्र गोविन्दमुखारविन्दे ।। ५.४८

गोपिकावृन्द के पीछे राधा आ रही थी । कृष्ण को चारों ओर से गोपियों ने घेर रखा था । राधा को ईर्ष्या हुई कि कृष्ण की इतनी प्रेमिकायें हैं । मैं लौट जाऊँ, पर ऐसा करना भी सम्भव नहीं था ।

कृष्ण ने योग दृष्टि से राधा के मन की बातें जान लीं । तभी कृष्ण राधा के समीप पहुँचे, जिससे उनकी खिन्नता जाती रही । पर उन्होंने मान किया । कृष्ण ने उन्हें समझाया—

बह्वीषु गोपकन्यासु वल्लभासि त्वमेव मे ।
सर्वास्वपि च तारासु शशाङ्कस्येव रोहिणी ।। ५.६२

फिर रासक्रीडा का समायोजन हुआ, जिसके लिए इन्द्र ने समीचीन उद्दीपन विभाव स्वर्वायु, नन्दन वन का पौष्पिक सम्भार आदि प्रस्तुत कर दिया था । कृष्ण ने देखा—

कोटिकन्दर्पलावण्यो मनोनयनरंजनः ?
पश्यत्यभिमुखो भूत्वा कृत्स्ना युगपदंगनाः ।। ५.६६

रासलीला हुई, जिसका वर्णन तुम्बरु के मुख से है—

गायन्ति गायति तथा हसिते हसन्ति
नृत्यन्ति नृत्यति हरौ सरसीरुहाक्षाः ।
जानन्त्यनेन सरहीरुहलोचनेन
तादात्म्यमेव गमिता दयिताः स्वकीयम् ।। ५.७३

गोपियों ने अशिक्षित होने पर भी यह अपूर्व गायन और नृत्य कैसे किया ? नारद का कहना—

अनुपासितगुरुचरणा असदाचरणा अपीहगोपीशाः ।
सकृदपि चित्ते धृत्वा भवन्ति भव्या गुणग्रामैः ।। ५.७

वहाँ लक्ष्मी भी आ गई थी, जो कृष्ण के किसी गोपी के चुम्बन को देख कर उन्हें आँखों से तरेर रही थी । किसी गोपी का केशपाश नाचते समय खुल गया । कृष्ण ने यत्न पूर्वक उसे बाँधा । नाचते समय किसी गोपी का कृष्ण ने पीछे से आलिंगन किया । नारद के शब्दों में अकेले कृष्ण ने सभी गोपियों के साथ यह हृदय-नर्तन कैसे किया—

सर्वाभिमुख्यमवलम्ब्य स एष मध्ये
भाति स्वयं विकचपंकजकर्णिकावत् ।
गोपीषु पत्रदलवत् परितः स्थितासु
प्रत्येकशोऽपि च परिस्फुरति प्रियासु ।। ५.८६

रास में रात बीती । प्रातः हुआ । गोपियाँ अपनी राह चली गईं । कृष्ण के

पास रह गई देवाङ्गनायें, नारद और तुम्बरु। कृष्ण ने नारद से कहा—अस्मद्गुण-कर्मनामसंकीर्तनसम्प्रदायः प्रवर्तयताम्।

नाट्यशिल्प

कवि ने केवल पात्रों को ही अभिनय में प्रवृत्ति नहीं किया हैं, अपितु सभ्यों का भी पात्रीकरण किया है। प्रस्तावना में सभ्यों की स्वगतोक्ति है—

अहो परमार्थगर्भा एवानयोर्वाच। यद्वयं संसृति-निवृत्तिकामाः सम्प्रति सर्वं यदुपत्यनुबन्धि निबन्धनं श्रोष्याम।

प्रस्तावना और प्रथम अङ्क के बीच में कवि ने विष्कम्भक रखा है। इसे विष्कम्भक कहना ठीक नहीं प्रतीत होता। विष्कम्भक में अतीत और भावी वृत्त की सूचना होनी चाहिए, जो नाटक की आधिकारिक कथा से साक्षात् सम्बद्ध हो। ऐसा इस विष्कम्भक में नहीं है। इसमें अधिकतर असम्बद्ध कृष्ण की महिमा और ब्रजलीला तथा नन्दनवन आदि का वर्णन है। विष्कम्भक में बातें संक्षेप से बताई जानी चाहिए, किन्तु इसमें तो ३० पद्य और आनुषंगिक गद्य है। स्वभावतः गद्य की प्रचुरता भी विष्कम्भक में नहीं होनी चाहिए।

नाटक के अभिनय में कतिपय दृश्य आधुनिक चलचित्रों के आदर्शभूत प्रतीत होते हैं। यथा रङ्गमञ्च पर ब्रजाङ्गनायें हैं—

करकलितं कनक भाजनावस्थितदीपावलिभिर्नीराजनाविधिं नन्दराजस्य विधाय तत्र तत्र व्याप्रियन्ते। प्रथम अङ्क में।

ऐसा ही दृश्य चतुर्थ अङ्क में एक बार और परिचय है, जिसमें

निखिलजलधिपाथः पूर्णसौवर्णकुम्भान्
शिरसि परिवहन्त्यः सिद्धयः प्रस्फुरन्ति॥ ५.६४

ऐसी सिद्धियां रंगमंच पर उतरती हैं। गोपकुमारों के द्वारा नृत्य, गीत और करताल का दृश्य प्रस्तुत किया जाता है।

श्रीदामप्रभृतयो नृत्यन्तो गायन्तश्च करतालिकाभि मिथः।

प्रथम अङ्क में

नर्तनगीत है—

इह हि नन्दनन्दनेन तनुविलुप्तचन्दनेन
भुक्तसर्वबन्धनेन जितममरसैन्यन्दनेन॥ १.६६

विष्कम्भक के केवल अन्तिम भाग में मनोविलास और वाग्विलास के संवाद में सूचना दी गई है कि इन्द्र की आज्ञानुसार नन्दराज उनके प्रीत्यर्थ यज्ञ करने वाले हैं।

सकलचित्तरञ्जनेन निखिलदुःखभञ्जनेन।
कालियस्यगञ्जनेन वस्तुनो निरञ्जनेन॥ १.६७

पूतना विशोषणेन दानवेषु रोषणेन
गोकुलैकभूषणेन जितमपास्तदूषणेन ॥ १.९६

कवि ने आगे चलकर भी गीत का रंगमंच पर आयोजन प्रस्तुत किया है। उसकी दृष्टि में 'गीतप्रियो हि भगवान्'। कृष्ण को गीत सुनाने के लिए वीणा की संगति में नारद और तुम्बरु गाते हैं—

श्रिया सेवितं सर्वदा गोपराजं तनौ कोटिकन्दर्पलावण्यभाजम्।
कृपासागरं चारुपङ्केरुहाक्षं मनोवाञ्छितार्थप्रदं कल्पवृक्षम् ॥४.१२१

जगद्बीजभूतस्फुरद्भ्रूविलासं चिदानन्दसन्दोहमुद्भावभासम्
घनश्यामलं कोमलाङ्गं भजामः श्रुतिन्यायतः संसृतिं संत्यजामः ॥४.१२२

चतुर्थ अङ्क में रंगमंच पर आये हुए पात्रों की संख्या सौ तक जा पहुँचती है। यह अभिनयोचित नहीं है।

पंचम अङ्क का आरम्भ अरुणोदय में होता है। अठारहवें पद्य तक पर्याप्त दिन निकल आता है, जब कृष्ण और गोपकुमारियों का वसनापहरण-विहार समाप्त होता है। सभी पात्र रंगमंच से निष्क्रान्त होते हैं। यहीं पर अङ्क समाप्त हो जाना चाहिए था, किन्तु कवि ने यहाँ अङ्क समाप्त न करके लिखा है—ततः सायं प्रविशति श्रीकृष्णः सुनन्दश्च—यह नाट्योचित नहीं। किसी अङ्क में एक दिन का कार्य लगातार चलना चाहिये। यहाँ लगभग १० घंटे की त्रुटि रह जाती है। यदि इसके अनन्तर छठाँ अङ्क कर दिया जाता तो यह त्रुटि नहीं रहती।

इस नाटक में कृष्ण का गोवर्धन रूप में प्रकट होना—छायानाट्य-तत्त्व है, जो नीचे के पद्य में प्रस्फुटित होता है—

यद्येष गोवर्धन एव साक्षात् कृष्णेन सादृश्यममुष्य कस्मात् ॥ १.११३

और भी—

पुत्रो भूत्वा रिपून् हत्वा रक्षित्वा गोधनानि च।
गोवर्धनगिरिर्भूत्वा नन्दमानन्दयत्यसौ ॥ १.११७

कामधेनु का पात्र बनकर चतुर्थ अङ्क में आना भी छाया-तत्त्व का सन्निवेश है।

कामधेनु का संकल्प भी मूर्तिमान् होकर चतुर्थ अङ्क में रंगमंच पर आता है। यह छायात्मक है। इसके विषय में इन्द्र कहते हैं—

अहो विदितं कामधेनोरेष संकल्पो मूर्तिमान्।

प्रथम अङ्क में वाग्विलास और मनोविलास एक ओर खड़े होकर अन्य पात्रों का अभिनय देखते हैं और अपनी प्रतिक्रिया भी व्यक्त करते चलते हैं। गर्भाङ्क-तत्त्व के प्रायः समान ही यह आयोजन है।

द्वितीय अङ्क का विभाजन कई दृश्यों में हुआ है। स्वर्ग में पहला दृश्य समाप्त

होता है मातलि और इन्द्र के जाने के पश्चात्। दूसरे दृश्य में यमुनातट पर इसके अनन्तर नन्दराज विद्याविनोद और बन्दी आते हैं। यह दृश्य व्यर्थ ही है। इसमें कोई ऐसी कथा नहीं है, जो इतिवृत्त की मुख्य धारा से समञ्जसित हो।

तृतीय अङ्क में आद्यन्त सूच्य सामग्री है, जो सारी की सारी अर्थोपक्षेपक द्वारा सूचनीय है। अङ्क में नायक, उपनायक, नायिका या प्रतिनायक में से किसी का पात्र रूप में होना आवश्यक है। यह भी इस अङ्क में नहीं दिखाई पड़ता। इस अङ्क को विष्कम्भक का स्थानीय कहा जा सकता है। इसकी सामग्री भक्त के रसास्वादन के लिए भले ही उपयुक्त है।

भारतीय नियमों के अनुसार जिन पात्रों को इस नाटक में प्राकृत बोलना चाहिए, वे भी संस्कृत में ही बोलते हैं। पूरे नाटक में एक भी वाक्य प्राकृत में नहीं है।

अभिनेय दृश्य की दृष्टि से तत्सम्बन्धी निर्देशन क्वचित् पर्याप्त विस्तार से दिये गये हैं। यथा चतुर्थ अङ्क में कृष्ण के दुग्धपान के पश्चात्--

स्वादूदकेनाम्बुधिजलेनाचमनं प्रदाय, अतिमृदुलक्रमुकफलसकलनिचय-सहितं प्रविलसदेलाफललवंगकर्पूरादिपरिमलद्रव्ययुतं केतककुसुमवासना-समन्वितखदिरसारसमेतं सौवर्णवर्णताम्बूलवल्लीदलकदम्बकं भगवते प्रदाय, आदि।

पाँचवें अङ्क का एक ऐसा ही सफल नाट्य निर्देश है--

शनैः शनैः धरणितलविनिहितचरण-कमलप्रचारमनभिव्यक्त-कनक-किंकिणीप्रमुखभूषणरणत्कारं वञ्चितकुमारिका-नयनदृष्टिसंचारं च समेत्य तत्कालमेवासां परिधानवासास्यपहृत्य ससखिनिकटवर्तितरुवरशाखामवरुह्य, आदि।

तिरस्करिणी का रंगमंच पर उपयोग होता था। तिरस्करिणी में दूसरी ओर कुछ पात्र रहते थे, जैसा चतुर्थ अङ्क में १०२ पद्य के अनन्तर कहा गया है कि कामधेनु ने तिरस्करिणीमपसार्य कहा--कः कोऽत्र भोः?

कथावस्तु के संविधान में कार्यावस्थाओं का क्रमिक विकास प्रथम तीन अंकों तक ही दिखाई पड़ता है। चौथे और पाँचवें अङ्कों की कथा को प्रथम तीन अङ्कों से अनुबद्ध नहीं किया जा सकता। प्रश्न है कि यह नाटक सफल है कि नहीं? इस सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि इसकी रस-निर्भरता के लिए उद्दीपन विभाव और अनुभावादि की जो वर्णना अपेक्षित है, वह इस नाटक में पूर्णतया सग्रन्थित है। आदि से अन्त तक पाठक और दर्शक रस की निर्झरिणी में निमग्न रहते हैं--यही कवि की कला का चूडान्त है।

समीक्षा

हरिभक्ति के इस नाटक में थोड़ा प्रयास करके भी अथवा अलङ्कार-द्वार से ही

शृङ्गार का समावेश कवि ने किया है। यथा.

अतिशयललिता कृतिरिह् विलसति नवयौवनेव स्त्री ॥१.५७
यथा रतिसमारम्भे कान्तावदन चुम्बनम् ॥ १.६

अतिशय कठिनत्वं दूषणायैव काव्ये
भवनि नु वनितानां भपणाय स्तने तत् ॥ १.३२

ऐसा लगता है कि दर्शकों को भक्तिरस से अधिक चाव शृङ्गार रस के लिए था और उन्हे आकृष्ट करने के लिए शृङ्गारित चुटकुले सन्निवेशित करने के लिए एक सफल योजना थी। इसका एक अनुपम उदाहरण नीचे का पद्य है, जिसमें कवि की अनूठी सूझ द्वारा दर्शको को कुचकाश की वदननीलिमा दिखाई गई है—

हृदयकमलपंक्तिर्लब्धुकामा भवन्तं बहिरिह कुचकाशच्छद्मना निर्गतैपा।
तव तु गतिमलभ्यामेव विज्ञाय शौरे वहति वदननैल्यं खेदखिन्नेव मन्ये ॥५.५

यत्स्पर्शमात्रेण मुरारिगात्रे संजायते वज्रशताभिघातः।
गोपीजनस्तं कठिनस्तनाभ्यां न गाढमालिंगति शंकितः सन् ॥ ४.२१

पात्रों के औदात्त्य के कारण इस नाटक की गरिमा परमोच्च है। इसमे कामधेनु, इन्द्र, सरस्वती, ब्रह्मा, शिव, वरुण, सनकादि, नारद, लक्ष्मी आदि की भूमिका मे अभिनेता आते है। ब्रह्मा का कहना है श्रीकृष्ण से—

आज्ञा तवैपा न विलघनीया शक्नुमः स्थातुमतः कथञ्चित्।
त्वत्पादसांनिध्यसुखप्रसक्ताः शक्ताश्च न स्वानि पदानि गन्तुम् ॥४.१४२

कृष्ण के प्रति भक्ति उज्जागरित करने के लिए कवि ने उनकी महिमा का वर्णन सर्वोपरि माना है, भले ही ऐसा करने मे नाटकीयता से उसे हाथ धोना पड़ा है। चतुर्थ अङ्क मे इन्द्र और कामधेनु का सवाद इसका प्रथम निदर्शन है।

कवि ने भक्तिरसामृत-पान करने के साथ ही कौटुम्बिक सौष्ठव की सर्जना के लिए उपदेश व्यंजना से दिया है। लक्ष्मी कृष्ण से कहती है—

स्त्रीणां हि भर्तुर्गृहं पितृगृहं वा ४.१५१

शैली

कवि की शैली सगीतमयी है। कही-कही स्वर और व्यञ्जनो का समञ्जसित अनुप्रास प्ररोचक है। यथा

साधुचित्त कुमुदैकरंजिका दोषचक्र-परिभोगभंजिका।
सर्वसंसृतितमोऽतिवर्तिका भाति माधवचरित्रचन्द्रिका ''

पादान्त में इसमे 'इका' की अनुवृत्ति संगीतमयी है।

कवि की प्रातिभ कल्पना वर्णनो में निखरी है। यथा,

मुखसन्ततये च सन्ततं प्रयतन्ते कृपणेषु साधवः। १.३

सतां सर्वः समुद्योगः फलेनैवावधार्यते। १.५३

स्वमानसारेण सदैव दुष्टो जगद्विजानाति हि दुष्टमेव ॥ २.१७

मध्याह्नवर्तिनि महौजसि सूर्यविम्बे
प्रादुर्भवेत् किमु तमः कलुषं कदापि ॥ ४.५२

अन्यत्र कतिपय स्थलों पर लोकोक्तियों की प्रभविष्णुता और सटीकता देखते ही बनती है। यथा, गोपियाँ कृष्ण के विषय में कहती हैं—

अयमुपदेशचतुरः। कथं हालाहलं गिलाम। अमृतं च कुर्वन् कथं कर्णं दशति।

श्रीकृष्णभक्तिचन्द्रिका

अनन्तदेव की यह पहली कृति प्रतीत होती है।[1] पण्डितों की सभा में इसका प्रथम अभिनय हुआ था। कवि ने इस नाट्यकृति को निबन्ध अनेक बार कहा है और नाटक तो कहा ही है। इसके नाम की सार्थकता प्रकट करते हुए सूत्रधार का कहना है—

श्रीकृष्णभक्तिरिह भूरि विवर्धमाना
स्पष्टं परिस्फुरति चन्द्रिकया समाना ॥

नट और सूत्रधार में कृष्णभक्ति के उत्कर्ष के विषय में विवाद प्रस्तावना में होता है। सूत्रधार को वैदिक यज्ञों की निन्दा करनी पड़ती है। यथा—

यज्ञे पश्य विशस्यमानपशुभिस्पष्टैव बीभत्सता
ग्लानिर्देहगता व्रतेन महता हानिर्धनस्यापि च ॥

सूत्रधार के तर्क प्रबल हैं। भक्ति-प्रचार-पथ में जो विरोध का सामना करना पड़ता है, उसका स्वाभाविक होना सूत्रधार के मुख से परिज्ञेय है—

नेत्रोत्सवो भवति सर्वजनस्य येन सूर्योदयेन हृतसंतमसोच्चयेन।
तेनैव दैवनिहतस्य विहगमस्य नक्तं चरस्य नयनान्ध्यमुदेति गाढम् ॥

भेददर्शी शैव शिष्य के साथ सर्वप्रथम रंगमंच पर आता है। दोनों मिल-जुलकर शिव की प्रशंसा करते हैं। साथ ही गंगा की प्रशंसा करते हैं कि वह तो शिव का सायुज्य प्राप्त करा देती है।

शिव की महिमा है—

यत्र कुत्रचन वस्तु निश्चितं यापि कापि ननु शक्तिरुच्चकैः।
व्यापिनः खलु पिनाकिनस्तु सा सन्निधानवशतो विजृम्भते ॥

१. इसकी हस्तलिखित प्रति सागर वि० वि० के पुस्तकालय में है।

गाढान्धकारमदवारणपुंगवेन ज्योतिर्जलं सकलमेव निपीतमेतत्।
तत्सीकरा वहुतराः करपुष्करेण प्रोत्सारितास्तु परितः प्रसरन्ति ताराः ॥२.२२

हरिभक्ति नाटक में प्रसादगुण-मण्डित वैदर्भी रीति का स्वारस्य है। प्रायशः इसमें पद्यों में वार्तिक गति के साथ गद्यात्मक बोधगम्यता है, जो अभिनयोचित सरणि प्रतीत होती है। यथा,

तासिरैरतिकुटभापिनिश्चपलैश्चापि कटाक्षवीक्षितैः।
सहसा कथमेष माधवो युवतीभिर्वशमेव नीयते ॥ ५.१४

अनन्त कवि कोरे पद्यात्मक नाटक की ओर बढ़ते हुए प्रतीत होते हैं। उदाहरण के लिए देखिये उनकी कामधेनु का कहना—

अद्भुता त्वद्गता शक्तिरस्मत्सु प्रतिभासते।
प्रकाशशक्तिरग्निस्था दीपादिस्थापि दृश्यते ॥ ४.६१

कहीं-कहीं गद्योचित संवाद छन्दोमण्डित हैं। यथा श्रीकृष्ण कामधेनु से कहते हैं—

देवि प्रसिद्धमेतद्धि यद्वृद्धानां मनस्विनाम्।
येषु केष्वपि तोकेषु लोके प्रेम प्रजायते ॥४.४३

कवि को पद्यात्मक रचना का चाव था।[1] जहाँ इतिवृत्ति के आख्यान में गद्योचित सरणि होनी चाहिए, वहाँ भी पद्य का माध्यम अपनाया गया है। यथा

एते गोरसकुम्भा एते रम्भा सपल्लवाः स्तम्भाः।
विलसतु यज्ञारम्भः सम्प्रति सम्भारसंचये मिलिते ॥१.५८

विलस् धातु कवि को प्रिय है। यह १.५५,५७,५८,२.१८,४.४६,४.८८ में है।

अनन्तदेव की प्रतिभा का विलास रूपकालङ्कार में सविशेष है। यथा—

एतावन्ति दिनानि कंजनयनाः क्लेशेन संवर्धितो
युष्माभिर्यमुनातटे सुविपुलः पुण्याह्वय-पादपः।
मत्सकेतवचःप्रफुल्लकुसुमं सम्पूजितः साम्प्रतं
सोऽद्य वः फलितो भविष्यति कथं तत्रापि सन्दिह्यते ॥ ५.१८

सूक्तिसौरभ

मनोनुरञ्जन नाटक में सूक्ति-निचय अतिशय प्रभविष्णु है। यथा,

लघुकर्मसमारम्भे लघुरेव समाश्रयः। १.३५

कविता लक्षणमहिता यदुपतिरहिता न शोभते वाणी। १.२०

---

१ प्रथम अङ्क में ११६, चतुर्थ में १२६ और पंचम में १०१ पद्य हैं। इनमें पद्यों का बाहुल्य प्रतीत होता है, जो नाट्योचित नहीं है। कवि ने इस नाटक को विविध पद्यन्पर्यन्वित बताया है ।४.१२६

मुखसन्ततये च सन्ततं प्रयतन्ते कृपणेषु साधवः। १.३

सतां सर्वः समुद्योगः फलेनैवावधार्यते। १.५३

स्वमानसारेण सदैव दुष्टो जगद्विजानाति हि दुष्टमेव॥ २.१७

मध्याह्नवर्तिनि महौजसि सूर्यबिम्बे
प्रादुर्भवेत् किमु तमः कलुषं कदापि॥ ४.५२

अन्यत्र कतिपय स्थलो पर लोकोक्तियों की प्रभविष्णुता और सटीकता देखते ही बनती है। यथा, गोपियाँ कृष्ण के विषय में कहती हैं—

अयमुपदेशचतुरः। कथं हालाहलं गिलाम। अमृतं च कुर्वन् कथं करुणं दगति।

श्रीकृष्णभक्तिचन्द्रिका

अनन्तदेव की यह पहली कृति प्रतीत होती है।[1] पण्डितों की सभा में इसका प्रथम अभिनय हुआ था। कवि ने इस नाट्यकृति को निबन्ध अनेक बार कहा है और नाटक तो कहा ही है। इसके नाम की सार्थकता प्रकट करते हुए सूत्रधार का कहना है—

श्रीकृष्णभक्तिरिह भूरि विवर्धमाना
स्पष्टं परिस्फुरति चन्द्रिकया समाना॥

नट और सूत्रधार में कृष्णभक्ति के उत्कर्ष के विषय में विवाद प्रस्तावना में होता है। सूत्रधार को वैदिक यज्ञों की निन्दा करनी पड़ती है। यथा—

यज्ञे पश्य विशस्यमानपशुभिस्पष्टैव बीभत्सता
ग्लानिर्देहगता व्रतेन महता हानिर्धनस्यापि च॥

सूत्रधार के तर्क प्रबल हैं। भक्ति-प्रचार-पथ में जो विरोध का सामना करना पड़ता है, उसका स्वाभाविक होना सूत्रधार के मुख से परिचेय है—

नेत्रोत्सवो भवति सर्वजनस्य येन सूर्योदयेन हतसंतमसोच्चयेन।
तेनैव दैवनिहतस्य विहंगमस्य नक्तं चरस्य नयनान्ध्यमुदेति गाढम्॥

भेददर्शी शैव शिष्य के साथ सर्वप्रथम रंगमंच पर आता है। दोनों मिल-जुलकर शिव की प्रशंसा करते हैं। साथ ही गंगा की प्रशंसा करते हैं कि वह तो शिव का सायुज्य प्राप्त करा देती है।

शिव की महिमा है—

यत्र कुत्रचन वस्तु निश्चितं यापि कापि ननु शक्तिरुच्चकैः।
व्यापिनः खलु पिनाकिनस्तु सा संनिधानवशतो विजृम्भते॥

---

1. इसकी हस्तलिखित प्रति सागर वि० वि० के पुस्तकालय में है।

विष्णु की निन्दा करने वाले शैव से वैष्णव की ठन गई। उसने शिव की भूरि-भूरि निन्दा की।

शैव ने जो कुछ शिव की प्रशसा मे कहा, उसने एक भी न सुनी। वह विष्णु की प्रशसा करता रहा। कुछ देर तक यह विवाद चला कि शिव तत्पुरुष है या कर्मधारय है। वैष्णव ने कहा कि हमारे विष्णु तो पुरुषोत्तम हैं। उनके बीच तभी एक अभेद-दर्शी महावैष्णव आ टपका। उसने शैव को फटकारा कि यदि तुम्हारा शिव जगदीश्वर है तो वह कमलापति क्यो नही है।[1] उसने वैष्णव को फटकारा कि तुम्हारा ईश्वर क्यो कर गिरिजापति नही हो सकता ?

फिर तो शैव और वैष्णव दोनो मिल गये और अभेद-दर्शी को भेद बताने लगे। शिव कपूर के समान है, विष्णु मेघ के समान काला है। शिव के सिर पर गगा है। विष्णु के पैर पर गगा है। फिर तो प्रत्यक्ष ही दोनो मे भेद ठहरा। महावैष्णव ने ने कहा कि यह सब तो लीलाविग्रह की बातें हैं।

शैव और वैष्ण दोनो महावैष्णव की युक्तियो से प्रभावित तो हुए। पर विवाद बढाते हुए उन्होने कहा कि क्या पुराण झूठे पडेगे कि शिव केशव से बढ़कर है और विष्णुपुराण कहते है कि विष्णु शिव से बढकर हैं।

महावैष्णव ने कहा कि उस शक्तिनिधि ने अनेक मूर्तियाँ धारण की। बुढिया सरस्वती ने किसी मूर्ति को कभी बडा-छोटा कह दिया तो क्या हो गया? सच तो यह है कि विष्णु सदाशिव के चरणो का ध्यान करते है और शिव सिरपर विष्णु का पादोदक धारण करते है।

अन्त में शैव और वैष्णव ने महावैष्णव का उपदेश मान लिया और कहा—
भवदनुग्रहान्मम दुराग्रहो विच्युतः। सभी चलते बने।

इसके पश्चात् द्वितीय अङ्क माना जा सकता।[1] इसमे शाब्दिक और तार्किक रग-मंच पर आ जाते हैं। शाब्दिक ने कहा—

विना चन्द्रं यथा रात्रिर्विना सूर्यं यथा वियत।
सकला विकला विद्या विना व्याकरणं तथा॥

तार्किक ने प्रतिवाद किया कि तर्क विद्या के विना पदार्थ साधन कैसे होगा? उनका विवाद देखकर वहाँ मीमांसक आ खडे हुए और बोले—

शाब्दिक पद निरूपण करता है, तार्किक पदार्थ निरूपण करता है। दोनो का प्रयोजन वाक्यार्थ निरूपण है जो हम करते हैं। हम श्रेष्ठ हैं। तुम दोनो के तुच्छ शास्त्र की प्रतिष्ठा यदि हम नही करते तो तुम लोग कहीं के न रहते।

तार्किक ने शाब्दिक से कहा कि यह तो बहुत बकबक करता है। इसे मुक्का मारमार कर ही ठीक कर दिया जाय। शाब्दिक ने कहा कि वाणी की मार ही बड़ी

---

१. हस्तलिखित प्रति मे अंकनिर्देश नही है।

होती है। तीनों लड़ने के लिए उद्यत थे। तभी श्रीकृष्ण-भक्त बीच में आ कूदा। उससे सभी प्रभावित हुए। निवेदन करने पर उसने बताया—

श्रीकृष्णे भक्तिरेव परमः पुरुषार्थः।
यस्मादेव चराचरं समभवद्यस्यैव लीलोद्भवी।
यस्मिन्नेव विलीयते च सकलं तद्ब्रह्म कृष्णाभिधम्॥

शाब्दिक और तार्किक उससे प्रभावित होकर भगवदाराधना करने के लिए चलते बने।

रंगमंच पर वेदान्ती आ पहुँचे। मीमांसक ने उससे कहा कि ये तो श्रीकृष्ण को ही परब्रह्म बता रहे हैं। वेदान्ती ने समझाया—

यत्र न धर्माधर्मौ स्वर्गो नरकश्च दूरतोऽपास्तौ।
तत्रात्मानं लभतां कुत्र श्रीकृष्णगोचरा भक्तिः॥

मीमांसक ने कहा कि ये तो नास्तिक की बातें हैं। तुम तो भक्त की बात सुनकर शान्ति प्राप्त करो। फिर तो कृष्णभक्त ने मीमांसक को गजोद्धार की कथा विस्तारपूर्वक सुनाई। वह भक्त बन कर चलता बना। वेदान्ती की समझ में भी बात आ गई कि—

धन्यास्त एव कृतिनस्पद एव विष्णोः
संसेवनेन सकलं कलयन्ति कालम्।
भक्तप्रियस्य करुणावरुणालयस्य
यच्छ्रीपतेरमृतदृष्टिपथे पतन्ति॥

श्रीकृष्णभक्त ने वेदान्ती के पूछने पर उनके विवरण दिये, जो भगवान् के द्वेषी थे, किन्तु भगवान् ने उन्हें मुक्ति दी। पूतना, शिशुपाल आदि ऐसे प्रमुख भगवद्द्वेषी हैं। भक्त ने गोवर्धन-धारण का रहस्य बताया। अन्य अवतारों में भगवान् का रौद्र रूप भी होता है। कृष्ण तो वीरावलम्बी हैं। इसमें बाललीला की अद्भुत विशेषता सर्वातिशायिनी है। भक्त ने बाललीला का मर्म बताया। रासलीला के द्वारा विश्वात्मकता बताई। कृष्ण का पूर्णावतार है। भक्त ने अभक्तों की गति बताई—

अद्य श्वो वा मरिष्यन्ति विचरिष्यन्ति रौरवे।
हरिं यदि स्मरिष्यन्ति तरिष्यन्ति भवार्णवम्॥

वेदान्ती और भक्त मथुरा में भगवान् की आराधना करने के लिए चलते बने।

सूक्तियों और लोकोक्तियों का प्रयोग इस कृति में अनेकशः मिलता है। यथा,

१. उत्तमासनसंप्राप्तो न युक्तं वक्त्रसीवनम्।
२. किं तावता ज्वरवतामरुचेर्न जातु दुग्धस्य शुद्धमधुरस्य विदूषणं स्यात्॥
३. मण्डूकेषु रटत्स्वपि मधुपः सरसिजरसं न संत्यजति।

४. मुखमस्तीति प्रलपसि यत्किञ्चन मूढ नास्ति ते शास्ता।
५. कथमावयोर्मस्तकमारोहति ?
६. एकमुत्पतितं व्यसनं परिहर्तुमुद्यतस्य ममापरं व्यसनमापतति।
७. सत्यपि पोते सुदृढे न कर्णधारं विनैति बत पारम्

समीक्षा

सोलहवी शताब्दी धार्मिक अभिनिवेश से पूर्ण थी। इस शती में धार्मिक उच्चावचता के सम्बन्ध मे गम्भीर ऊहापोह चल रही थी। इसी के परिणाम-स्वरूप भावना-पुरुषोत्तम और श्रीकृष्णभक्तिचन्द्रिका जैसे नाटक लिखे गये, जिनमे शास्त्रार्थ के द्वारा समाज को अनुरंजन और साथ ही उपदेश देने की योजना कार्यान्वित की गई है। श्रीकृष्णपूजा का प्राधान्य भी सोलहवी शती की विशेषता है।

श्रीकृष्णभक्तिचन्द्रिका को लेखक ने नाटक कहा है। इसमे नाटक की पंच सन्धियाँ, पंचावस्थायें और कम से कम पच अक आदि के नियमो का पालन सर्वथा ही नही हुआ है। आरम्भ मे सूत्रधार आदि की लम्बी प्रस्तावना के पश्चात् शिव और वैष्णव क. कृष्णभक्ति की सर्वोत्कृष्टता-विषयक सवाद आदि से अन्त तक चलता है। यह सर्वतन्त्रस्वतन्त्र अकहीन नाटक है। नाटक के अन्त मे भरतवाक्य भी नही है।

श्रीकृष्णभक्तिचन्द्रिका की सम्यक् आलोचना करने मे वे ही पाठक सफल हो सकते हैं, जिन्हें योरपीय नाट्य शैली के विकास का इतिहास ज्ञात है और जो जानतें हैं नाट्यकृति नियमो के बन्धन से जकडी नही जा सकती।

अध्याय ६

चैतन्यचन्द्रोदय

चैतन्य-चन्द्रोदय के रचयिता कर्णपूर का प्रादुर्भाव सोलहवीं शताब्दी में महाप्रभु चैतन्य के आश्रय में हुआ।[1] कर्णपूर के पिता शिवानन्दसेन बंगाल में काँचनपाड़ा के निवासी थे। वे स्वयं महाप्रभु के शिष्य थे। उन्होंने महाप्रभु की आज्ञा से अपने पुत्र का नाम आरम्भ में परमानन्द दास रखा। फिर महाप्रभु ने इनके नाम को लोकप्रिय बनाने के लिए संक्षेप में पुरीदास कर दिया। पुरीदास ने सात वर्ष की अवस्था में महाप्रभु को नीचे लिखा पद्य सुनाया—

श्रवसोः कुवलयमक्ष्णोरंजनमुरसो महेन्द्रमणिदाम।
वृन्दावनरमणीनां भूषणमखिलं हरिर्जयति॥

इसमें श्रवसोः कुवलयम् प्रथम दो पदों की प्रमुखता को ध्यान में रखकर महाप्रभु ने इनका नाम उन्हीं का पर्याय कर्णपूर रख दिया। उन्होंने कर्णपूर को कवि होने का आशीर्वाद दिया।

कर्णपूर का जन्म १५१७ ई० में हुआ। उन्होने ५५ वर्ष की अवस्था में १५७२ ई० में चैतन्य चन्द्रोदय की रचना की[2]। कर्णपूर ने अपनी रचनाओं से संस्कृत-साहित्य की अनेक कोटियों को समलंकृत किया है, जिनमें कुछ नीचे लिखे हैं—

(१) चैतन्य चन्द्रोदय (२) आर्याशतक अप्राप्त (३) चैतन्य-चरितामृत महाकाव्य (४) आनन्दवृन्दावन चम्पू (५) चमत्कारचन्द्रिका अप्राप्त (६) अलंकार कौस्तुभ (७) कृष्णलीलोद्देशदीपिका (८) गौरगणोद्देश दीपिका (९) वर्णप्रकाशकोष।

कर्णपूर के इस नाटक के प्रथम अभिनय की प्रेरणा उड़ीसा के महाराज गजपति प्रतापरुद्र से मिली। उन्होंने कहा कि चैतन्य अब नहीं रहे। गुण्डिचायात्रा में सब कुछ होते हुए भी उनका अभाव खटकता है। उसकी पूर्ति मेरे आनन्द के लिए किसी नाटक के अभिनय के द्वारा होना चाहिये।

चैतन्य-चन्द्रोदय नाटक दस अंकों में पूर्ण हुआ है। इसमें चैतन्य की आद्यन्त चरित-गाथा है। चैतन्य के दिवंगत होने पर भी भक्तों के समक्ष चैतन्य प्रत्यक्ष हो सकें—इसका सफल प्रयास इस नाटक में है।

कथासार

कलि इस युग का अधिष्ठाता अपने उपासक अधर्म से कहता है कि नवद्वीप में जगन्नाथ मिश्र और शची देवी का पुत्र मेरा अस्तित्व ही मिटाना चाहता है। वह

१. चैतन्यचन्द्रोदय का प्रकाशन १९६६ ई० में हो चुका है।

२. यह तिथि निर्विवाद नहीं। अन्यथा इसका रचना-काल १५३० ई० के लगभग प्रमाणित है।

भगवान् का अवतार है। उसके साथी अद्वैताचार्य, नित्यानन्द, श्रीकान्त, श्रीपति, श्रीवास आदि पूर्वावतारों के पार्षद हैं। चैतन्य ने पुरी में ईश्वरपुरी से मन्त्रदीक्षा ली। उन्होंने क्रोध को जीत लिया था। उन्होंने जगन्नाथ और माधव नामक दुर्वृत्त ब्राह्मणों से उनके पापों का दान लिया और देदीप्यमान होकर वे परम भागवत बन गये। श्रीवास ने चैतन्य का महाभिषेकोत्सव कराया। भगवान् ने मरते हुए श्रीवास को अपनी दिव्य शक्ति से बचाया था, जिसका पूरा वृत्तान्त श्रीवास ने सुनाया। मुरारि और मुकुन्द भक्तिरसामृत का पान न कर इधर-उधर भटकने वाले साधक थे। चैतन्य ने उन्हें अध्यात्म ज्ञान के चक्र से निकाल कर भक्त बना दिया।

चैतन्य की माता समझती थी कि मेरा पुत्र प्रशासकों के द्वारा तथाकथित भगवान् बना दिया गया है। एक बार भक्तों ने उनको सत्यान्वेषण के उद्देश्य से चैतन्य के समक्ष ला दिया। अपनी माता को भी चैतन्य ने अपनी दिव्य विभूति समझने वाली बना दिया। इस अवसर पर माता बोली—

विश्वं यदेतत्स्वतनौ निशान्ते यथावकाशं पुरुषः परो भवान्।
विभर्ति सोऽयं मम गर्भजोऽभूदहो नृलोकस्य विडम्बनं महत्॥१.५६

चैतन्य के विषय मे शची देवी का मातृभाव समाप्त हो गया।

निर्वेद सांसारिक वैषम्य और दम्भाधिक्य देखकर निर्विण्ण है। अपने को अशरण पाता है। तभी उसे अपनी भगिनी भक्ति देवी मिलती है, जो उसे बताती है कि अन्य सात्त्विक प्रवृत्तियों के मिट जाने पर चैतन्यमहाप्रभु का संरक्षण प्राप्त होने से मैं जीवित हूं। भक्ति ने बताया कि महाप्रभु अलौकिक व्यापार भी करते हैं। महाप्रभु सबको आत्मसात् करते हैं—

न जातिशीलाश्रमधर्मविद्याकुलाद्यपेक्षी हरेः प्रसादः।
यादृच्छिकोऽसौ बत नास्य पात्रापात्रव्यवस्थाप्रतिपत्तिरास्ते॥२.१६

एक दिन महाप्रभु बलराम के रूप मे हो गये। तदनन्तर सभी अवतारों के रूप मे भक्तों के समक्ष वे प्रकट हुए। कभी किसी सर्वाङ्ग-गलित ब्राह्मण का रोग दूर कर दिया, जिसके लिए उसे अद्वैताचार्य का चरणोदक पीना पडा। कभी अद्वैताचार्य को महाप्रभु का विष्णु-रूप दिखाई पडा।

अवतार-रूप मे प्रकट होने के अनन्तर दानलीला के अभिनय के लिए महाप्रभु ने अपने को वृन्दावनेश्वरी (राधा) भाव मे प्रकट किया।[1] स्त्रीरूप में उन्होंने नृत्य किया। इस आयोजन के लिए भाण का समावेश करके गर्भाङ्क निर्मित है, जिसके पात्र है—अद्वैत दैद की, महाप्रभु राधा की, हरिदास सूत्रधार की, मुकुन्द पारिपार्श्वक की, नित्यानन्द योगमाया की और श्रीवास नारद की भूमिका मे।

---

१. गृहीत्वा जरतीभावं या देव्या योगमायया।
सम्पद्यते दानलीला सैव राधामुकुन्दयोः॥३.२३

वृन्दावन मे योगमाया की अध्यक्षता में राधा और अन्य गोपियाँ कृष्ण से मिलने आ रही हैं। राधा को देखकर कृष्ण कहते हैं—

> उत्कीर्णा किमु चारुकारुपतिना कामेन किं चित्रिता
> प्रेम्णा चित्रकरेण किं लवणिमा त्वष्ट्रैव कुन्दे धृता।
> सौन्दर्याम्बुधिमन्थनात् किमुदिता माधुर्यलक्ष्मीरियं
> वैचित्र्यं जनयत्यहो अहरहर्दृष्टाप्यदृष्टेव मे ॥ ३.४६

गोपीश्वर की पूजा करने के लिए राधा, ललिता आदि ने पुष्पावचय करना प्रारम्भ किया। उधर से कही मे आकर कृष्ण ने ललिता को डाँटा कि हमारे वृन्दावन के कुसुम क्यो तोड़ती हो? योगमाया ने कहा कि बहुत झगड़ने की आवश्यकता नही। तुमको पुष्प मिलेगा। राधा कृष्ण को देखकर प्रलुब्ध हो गई।

जब योगमाया ने राधा से कहा कि चलो, गोपीश्वर (शिव) की पूजा करने चलें तो कृष्ण के मित्र ने कहा कि जाने के पहले मेरे मित्र को दान देना पड़ेगा। कृष्ण ने देखा कि राधा बिना पूजा किये लौट जाना चाहती हैं। उन्होंने कहा कि—

> अयि चतुरंमन्ये क्व यासि ?

राधा—मूलमेव दत्तं किं तस्य दानं मार्गसि।

कृष्ण ने कहा—

> एतत् स्वर्णसरोरुहं तदुपरिश्रीनीलरत्नोपले
> तत्पश्चात् कुरुविन्दकन्दलपुटे तत्रापि मुक्तावली।
> सर्वं दृश्यत एव किन्तु निभृता या हेमकुम्भद्वयी
> किं वान्यन्नयसेऽनयेति तदिदं वाले विचार्यं मम ॥ ३.५४

इन सब कलहों से बचाने के लिए योगमाया ने राधा को अन्तर्हित कर दिया और स्वयं भी अन्तर्हित हो गई, जब कृष्ण राधा का वस्त्र पकड़ने का प्रयास कर रहे थे।

चतुर्थ अंक मे श्रीवास के प्राङ्गण में भगवत्संकीर्तनमङ्गल का आयोजन हुआ। इसमें चैतन्य के साथ सभी नाच रहे हैं। रात भर सभी दर्शकों और भक्तों को परमानन्द हुआ। निशावसान की अन्तिम वेला में अकस्मात् अविदितगति चैतन्य अदृश्य हो गये और अपने गाँव में ढूँढ़े जाने पर भी न मिले। उनके साथ आचार्य और नित्यानन्द गये थे। तीन दिनों के पश्चात् अद्वैत लौट आये। उन्होंने चैतन्य का समाचार दिया कि वे संन्यासी हो गये—

> संन्यासेन तव प्रभो विरचितः सर्वस्वनाशो हि नः ॥ ४.३६

संन्यास के अनन्तर उन्होंने अपना नाम कृष्णचैतन्य रख लिया।

संन्यास लेकर चैतन्यकृष्ण वृन्दावन जाना चाहते थे, किन्तु उनके साथी नित्यानन्द ने उन्हें झूठ बोल कर अद्वैत के घर पहुँचा दिया। मार्ग में गंगा नदी पड़ी।

उसे यमुना कहकर उसकी स्तुति महाप्रभु से कराई—

चिदानन्दभानो. सदानन्द सूनोः परप्रेमपात्री द्रवब्रह्मगात्री ।
अघाना लवित्री जगत्क्षेमधात्री पवित्रीक्रियान्नो वपुर्मित्रपुत्री ॥५.१०

निकट ही अद्वैताचार्य का आश्रम था। वहाँ से नित्यानन्द ने उन्हे बुलवा लिया नित्यानन्द की प्रार्थना मानकर भगवान् उनके घर प्रथम भिक्षा ग्रहण करने पहुँचे। भोजन के अनन्तर अद्वैत ने उन्हे उपकारिका (मचान) के ऊपर आसीन कराया, जिससे सभी दर्शनार्थी उन्हे देख ले। तभी नवद्वीप के सभी लोग वहाँ आ गये। उनकी माता आगे थी। माँ ने उन्हे देखकर कहा—

वैराग्यमेव भव किं किमु वानुभूति—
र्भक्तिर्नु वा किमु रस परमस्तनभृत्।
तातस्तनघयतयैव भवन्तमीक्षे
लब्धोऽधुनापि न कदापि पुनस्त्यजामि ॥५ २७

यह कह कर सन्यासी पुत्र का माता ने आलिङ्गन कर लिया। माता को पुत्र चैतन्यकृष्ण ने आश्वस्त किया—

भगवति जगन्मातर्मान. पर फलमुत्तमं
किमपि फलितु वात्सल्याख्या लता भवति क्षमा।
भवति भवती विश्वस्यैवानुपाधिसुवत्सले-
त्यथ भगवता नून चक्रे क्षमापि शरीरिणी ॥५.२८

लोगो ने चैतन्यकृष्ण को मथुरा जाने से रोक दिया। सबसे अधिक निषेध माता के द्वारा हुआ। वे इस बात पर मान गई कि महाप्रभु जगन्नाथपुरी मे रहे, जहाँ से आने-जाने वालो के द्वारा उनका समाचार मिलता रहेगा। चैतन्यकृष्ण को जगन्नाथ-पुरी पहुँचने के लिए वन से होकर भी जाना पड़ा। उन्होने राजमार्ग से चलते हुए रेमुणा में कृष्ण की मूर्ति का दर्शन किया। कटक राजधानी मे साक्षिगोपाल का उन्होंने दर्शन किया।

जगन्नाथपुरी मे चैतन्य ने भगवान् की शयनोत्थान लीला देखी और उस समय प्राप्त प्रसाद को लेकर सार्वभौम भट्टाचार्य के घर पहुँचे। उन्होने भट्टाचार्य को सोये से जगाकर वह प्रसाद खिलाया। तब तो यह

गिलित्वा उन्मत्त इव कण्टकितसर्वांगो नयनजलस्तिमितवसनो घर्घर-कण्ठशब्दोऽपस्माररोगविवश इव भूत्वा महीतले लुठति।

तभी से सार्वभौम कर्कश वेदान्ती से परिवर्तित होकर रसमयी भक्ति के साधक हो गये।

सातवें अक मे चैतन्य के दक्षिण भारत मे तीर्थाटन का वर्णन है। ब्राह्मणो को साथ लेकर वे पहले कूर्मक्षेत्र पहुँचे। वहाँ गलत्कुष्ठ वासुदेव नामक ब्राह्मण को गले

लगाया और ऐसा करते ही उसका शरीर सुन्दर हो गया। कूर्मक्षेत्र से आगे बढ़ने पर वे नृसिंह-क्षेत्र पहुँचे। वहाँ से गोदावरी तट पर जा पहुँचे। वहाँ रामानन्दराय उनसे मिले। रामानन्द परमवैष्णव थे। चैतन्य से मिलकर उन्हें प्रतिभास हुआ—

> महारसिकशेखरः सरसनाट्य-लीलागुरुः
> स एव हृदयेश्वरस्त्वमसि मे किमु त्वां स्तुमः।
> तवैतदपि साहजं विविधभूमिका स्वीकृति-
> र्न तेन यतिभूमिका भवति नोऽतिविस्मापनी ॥७.१७

वहाँ से दक्षिण की ओर चैतन्यकृष्ण चले। एक स्थान पर पाखण्डियों ने उन्हें अपवित्र भोजन भगवत्प्रसाद के नाम पर खिलाना चाहा। चैतन्य को उसकी अपवित्रता का ज्ञान था। फिर उन्होंने ही हाथ मे लेकर हाथ उपर उठाया तो कोई पक्षी उसे ले उड़ा।

चैतन्य कृष्ण जगन्नाथपुरी लौट आये। उन्होंने भक्तों के सन्देहो को समय-समय पर दूर किया। एक दिन सार्वभौम ने उनसे कहा कि राजा आप से मिलना चाहते हैं। चैतन्य ने निषेध करते हुए कहा कि विषयी पुरुष और स्त्रियों से मिलने से अच्छा है विष खा लेना। पर राजा सत्याग्रही था। उसने कहा—

> अभून्न चेष्टा मम राज्यचेष्टा सुखस्य भोगश्च बभूव रोगः।
> अतः परं चेत् स न वीक्षते मां न धारयिष्ये बत जीवनं च ॥८.२०
> प्राणांस्त्यजामि किमु वा किमु वा करोमि
> तत्पादपंकजयुगं नयनाध्वनीनम् ॥८.२६

सार्वभौम के परामर्श से निर्णय हुआ कि राजा रथयात्रोत्सव के नृत्यश्रम से श्रान्त चैतन्य को निर्जन उद्यान में देख लें। रथयात्रा के अनन्तर यथासमय जब चैतन्य स्वानन्दावेश में आँख मूदे पड़े थे, तभी राजा ने उनके चरण पकड लिये। राजा का आलिंगन चैतन्य ने भी बिना देखे ही किया।

चैतन्य ने मथुरा के लिए पैदल प्रस्थान किया। मार्ग में भयङ्कर परिस्थितियाँ थी। चैतन्य के पास आया हुआ एक यवन उस अवसर पर उनका परम भक्त बन कर सहायक सिद्ध हुआ। पानीहाट तक नौका से जाने का उसने सुप्रबन्ध कर दिया। वहाँ से वे गङ्गा मे नाव से यात्रा करते हुए कुमारहाट में श्रीवास के घर पहुँचे। वहाँ से नाव द्वारा चैतन्य नवद्वीप पहुँचे। मार्ग मे दर्शनार्थियों की घोर भीड़ यत्र-तत्र होती थी। इससे बचने के लिए वनमार्ग से छिपकर वे मथुरा पहुँच गये। मथुरा देखने के पश्चात् चैतन्य ने वृन्दावन की शोभा का दर्शन किया। वहाँ के कुन्ज, गोवर्धन पर्वत के वन आदि मे उनका मन रमा रहा। कही-कही वे वृक्ष और लताओं का आलिंगन करते थे। अलौकिक थी चैतन्यलीला।

यथा,

कुंजसीमनि कदापि यदृच्छामूर्च्छया निपतितस्य धरण्याम् ।
आलिहन्ति हरिणा मुखफेनानापिबन्ति शकुना नयनाम्भः ॥ ६.२४

वृन्दावन मे अनुराग-विह्वल चैतन्य का अधिक दिन ठहरना निरापद नही था। यह देखकर उनके निकटतम भक्तो ने उनको वृन्दावन से हटाने मे सफलता पाई। लौटते समय प्रयाग मे उन्हें रूपगोस्वामी और अनुपम मिले। वाराणसी में सार्वजनिक अभिनन्दन हुआ। वहाँ उन्हें रूप के बड़े भाई सनातन से भेंट हुई। रूप और सनातन का प्रभु चैतन्य ने अपनी कृपा से अभिषेक किया। अन्त मे चैतन्य कृष्ण पुनः जगन्नाथपुरी पहुँचे।

दसवें अङ्क मे जगन्नाथ-यात्रा महोत्सव और उसके चार दिन पश्चात् होने वाली भगवती श्री की प्रयाण-यात्रा की कथा दृश्य है। प्रयाण-यात्रा मे लक्ष्मी का कोप-प्रयाण दिखाया जाता है।

नाट्य-शिल्प

इस नाटक का नाम चैतन्य चन्द्रोदय इसलिए पडा कि इसके नायक चैतन्य स्वयं चन्द्र की भाँति प्रकाश करते हैं।[1]

सस्कृत मे नाटको की दो विधायें बहुत प्राचीन काल से विकसित हुई है। प्रथम कोटि मे वे नाटक आते हैं, जिनमे नायक का पूरा जीवन चरित होता है। इनमे किसी एक घटना के लिए बीज और कार्य आदि अर्थ प्रकृतियाँ, आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम अवस्थायें और मुख, प्रतिमुख आदि सन्धियाँ नहीं होती। शेक्सपीयर के हेनरी चतुर्थ आदि अनेक नाटक इस कोटि मे आते हैं। बर्नार्डशा का बैकटु मेथुसला नाटक इसका ज्वलन्त उदाहरण है। इनके विपरीत द्वितीय कोटि के नाटको मे अर्थप्रकृतियाँ, अवस्थायें और सन्धियाँ सुविन्यस्त रहती हैं। यद्यपि ये दो कोटियाँ प्रत्यक्षत एक दूसरे से भिन्न हैं, तथापि ऐसे नाटको का अभाव नहीं, जिनमें इन दोनो कोटियो का थोडा-बहुत मिश्रण न हो। चैतन्यचन्द्रोदय इनमे से प्रथम कोटि मे सम्यक्तया आता है। इसमे चैतन्य का समग्र यथासम्भव अधिकाधिक विवरण सांगोपाङ्ग बनाकर दिखाया गया है।[2]

नाटक मे प्रतीकात्मकता स्थान-स्थान पर मिलती है, जिनके लिए कलि, अधर्म प्रेमभक्ति, मैत्री आदि पात्र मनुष्य रूप मे रङ्गमञ्च पर आते हैं। गङ्गा और रत्नाकर छठें अङ्क के प्रवेशक मे पात्र हैं। इनके द्वारा यह छायानाट्य-प्रबन्ध कोटि मे आता है।

---

१. आह्लादयन्नखिल जगज्जनानां प्रेमामृतस्यन्दसुपीमपादः।
उल्लासयन् कौमुदमुज्जिहीते चन्द्रश्च विश्वम्भरचन्द्रमाश्च ॥ ४.५

२. कर्णपूर ने पुष्पिका के पद्य १ में कहा है कि मैंने चैतन्य के चरित का वर्णन किया है।

अभिनय को विशेष मनोरञ्जन से सम्पृक्त करने के लिए संगीत-ध्वनि का नेपथ्य से और रंगमंच पर भी विधान किया गया है। प्रथम अङ्क में उलुलु ध्वनि और विविध वादित्र—शंख घंटा आदि की ध्वनि सुनाई जाती है। तृतीय अङ्क में नारद भागवत के एक पद्य को गाकर वीणा बजाते हैं। इसी अङ्क में नेपथ्य में मुरली बजती है और नारद उसके अनुरूप नृत्य करते हैं। चतुर्थ अङ्क में चैतन्य और वक्रेश्वर के संगीत का आयोजन नेपथ्य ने किया गया है।

अर्थोपक्षेपक को संक्षिप्त होना चाहिए—इस भारतीय विधान को इस नाटक में नहीं माना गया है। प्रथम अङ्क के पूर्व जो विष्कम्भक है, उसमें गद्यांश के अतिरिक्त ४६ पद्य हैं। यह अतिदीर्घ है।

नाट्यनिर्देश रंगमंच पर कार्य व्यापार बताने के लिए प्रयुक्त हैं। यथा,

श्रीकृष्णोऽन्तर्वर्तिनी भूत्वा राधां पृष्ठतः कृत्वा स्थितवतीं जरतीं करेण निक्षिप्य बलाद् राधापटान्तग्रहणमभिनयति। जरती बलान्मोचयित्वा राधामन्तर्वापयन्ती स्वयमप्यन्तर्दधाति। नित्यानन्दः स्वरूपेण स्थितो नृत्यति।

ऐसे नाट्यनिर्देशों के द्वारा संवाद से अतिरिक्त भी कार्यबाहुल्य अभिनय को रोचक बना देता है।

आधुनिक चलचित्र की भाँति रंगमंच पर सैकड़ों लोगों की भीड़ दिखलाना कर्णपूर ने अनुचित नहीं माना है। यथा,

तदिहैवैते सपद्येव परःसहस्रा सन्ति। कियता विलम्बेन लक्षसंख्या भविष्यन्ति। (ततः प्रविशन्ति भगवद्दर्शनोत्कण्ठिताः पुरुषाः।)

आगे चल कर पाँचवें अङ्क में—ततः प्रविशन्ति सर्वे नवद्वीपवासिनः।

इससे भी असंख्य लोगों के रंगमंच पर आने का ज्ञान होता है।

विदेशी नाटकों में भी कभी-कभी गणनातीत व्यक्ति रंगमंच पर आते थे।[1]

रंगमञ्च पर पंचम अङ्क में चैतन्य राधा बने और नित्यानन्द योगमाया की भूमिका में उतरे। यह रूपानुरूपा प्रकृति का प्रयोग था।[2]

कर्णपूर के नाटक में किसी फलागम की ओर नायक को प्रवृत्त करते रहना आवश्यक नहीं था। वे तो प्रेक्षक को सांस्कृतिक शिक्षा देते चलने में अपनी सफलता मानते हैं। यह है एक पौराणिक आख्यान का सार—

---

१. उदाहरण के लिए अमरीकी नाटक विलियम यंग-प्रणीत बेन हुर में रंगमंच पर ८० व्यक्ति कोरस गाते हैं और १८१ पुरुष अतिरिक्त हैं। सब मिलाकर २६१ पुरुष रंगमंच पर हैं।

२. नाट्यशास्त्र २६.१५

साक्षित्वेन वृतो द्विजेन स चलंस्तस्यैव पश्चाच्छनैः
श्रीमत्कोमलपादपद्मयुगलेनारान्नदन्नूपुरम् ।
दृष्टस्तेन निवृत्तकन्धरमहो माहेन्द्रदेशावधिः,
प्राप्यैव प्रतिमात्वमत्वरमनास्तत्रैव तस्थौ प्रभुः ॥ ६.१२

ततश्चिरेण गजपतिमहाराजेन पुरुषोत्तमदेवेनायमानीय स्वराजधान्या स्थापितः ।

कुछ मनोरञ्जक निर्देश, जो केवल विवरण मात्र हो सकते हैं, कवि ने नाट्य कथा की पूर्णता के लिए दे देने का उपक्रम किया है । उदाहरण के लिए, जब चैतन्य-कृष्ण कमलपुर ग्राम के देवकुल के मार्ग मे थे तो नित्यानन्द ने उनके दण्ड को अकाण्डोपप्लव-खण्ड कह कर तोडकर नदी मे बहा दिया ।

चैतन्यचन्द्रोदय मे इस भारतीय विधान को नही माना गया है कि किसी अङ्क मे केवल एक दिन का काम दिखाया जाना चाहिए । चतुर्थ अङ्क मे पूर्वाह्ण के समय के कार्य से लेकर पूरी रात और पूरे दूसरे दिन का काम तो रगमच पर दिखाया ही गया है । इकतीसवे पद्य के अनन्तर उसी अङ्क मे आचार्यरत्न द्वारा चूलिका से ज्ञात होता है कि तीन दिन के पश्चात् की कार्यावली अब रगमच पर चल रही है । इस प्रकार चतुर्थ अङ्क मे चार दिनो की घटनाओ का अभिनय किया गया है । सातवे अङ्क मे तो कई मास की कथा कह दी गई है । आठवे अङ्क मे कम से कम तीन दिन मे घटित कथा हैं । दशम अङ्क मे भी एक सप्ताह की कथा है ।[1]

अक मे दृश्य कथाश होना चाहिए, सूच्य नही—इस नियम का परिपालन कवि को अभिप्रेत नही प्रतीत होता । प्राय सभी अंको मे नायक के अलौकिक चमत्कारो के आख्यान भरे पडे हैं । प्रवेशक और विष्कम्भक द्वारा भी कहानी गूँथने का काम किया गया है । कवि का उद्देश्य है कि इस नाटक के द्वारा प्रेक्षक और पाठक चरित-नायक को अधिकाधिक जान ले ।

चरित्र-चित्रणकला

नायक का औदात्य प्रकट करने के लिए प्रतिनायक को भी उसके सद्भाव से प्रभावित बताया गया है । चैतन्य के महानुभाव को देखकर उनके सम्पर्क मे आनेवाली मृगनयनियो के विषय मे अन्यत्र कलि कहता है—

भावेनोपहृतां चेतो ह्येषां क्षोभकारकम् ।
निर्भावाणां पुनस्तेषामाकारो नापराध्यति ॥१.३९

चैतन्यकृष्ण की विशेषता कवि ने अनेक स्थलो पर चर्चित की है । उनके महानु-भाव मे उन्नयन की शक्ति का आख्यान है—

---

१. इस अक मे यात्रारथोत्सव की कथा दृश्य है और उसके चार दिन पश्चात् होने वाली भगवती श्री की प्रयाण-यात्रा की भी कथा दृश्य है

विनोपदेशेनापि 'कर्ह्येवं स्याम' इति तत्कालसमुदितवरवासनाविशेषेण जातपुलकास्रवः सर्व एव स्वस्वमतप्रच्यावेन तत्पथप्रविष्टा बभूवुः। सप्तम अङ्क से

चरितनायक का प्रकृति से सहानुभाव प्रकट करके उसके उदात्त महानुभाव को कवि प्रतिष्ठित करता है। यथा,

विलपति करुणस्वरेण देवे जलधरवीरगभीरनिःस्वनेऽपि।
चिरमनुविलपन्ति वाष्पकण्ठाः क्वचन च लास्यमपास्य नीलकण्ठाः॥६.२७

अलौकिक शक्तियों से सम्पन्न बताकर चैतन्य को दिव्य व्यक्तित्व से समुदित बताया गया है। उनके सम्पर्क में आने मात्र से गलित भी सर्वगुण-प्रपन्न हो जाता था। सारा ब्रह्माण्ड उनके कीर्तन से प्रभावित है। यथा,

क्षोभं क्षोणीमृगाक्ष्याः स्थगनमिहरवेः कम्पमाशावधूनां
स्तम्भं वातस्य कुर्वन्नमरगिरिवृहस्यास्रमक्ष्णां सहस्रे।
स्वेदं सप्तर्षिगोष्ठ्याः परमरसमयोल्लासमौत्तानपादे—
ध्यानध्वंसं विरिञ्चेः स जयति भगवत्कीर्तनानन्दनादः॥१०.३८

चैतन्य का पथ सबके लिए प्रशस्त था। यवन भी उनकी हरिबोल-धुनि को आत्मसात् करके मोक्षमार्ग पर चलने लगे थे। चाण्डाल तक उनके वैसे ही निकट हो सकते थे, जैसे कोई महाब्राह्मण।[1] एक कुत्ते की वार्ता दसवें अंक के आरम्भ में है, जो चैतन्य का प्रसाद पाकर कृष्ण-कृष्ण कहता था।

शैली

चैतन्यचन्द्रोदय की शैली यथानाम सुचन्द्रित है। इसमें भावों का लावण्य मधुर भाषा में कोमलतापूर्वक सुपुञ्जित है। कहीं-कहीं श्लेषालंकार के द्वारा हास्यात्मक वर्णना सर्जन करने में कवि को अतुलित सफलता मिली है। यथा, ललिता और कृष्ण का पादार्धगत प्रश्नोत्तरश्लिष्ट भाषा में है—

कस्त्वं भो, ननु माधवः कथमहो वैशाख आकारवान्
मुग्धे विद्धि जनार्दनोऽस्मि, तदिदं ब्रूते वनावस्थितिः।
मां गोवर्धनवारिणं न धरणी, को वेत्ति हुं वर्धनं
हिंसां हे वृषहन् बिभर्षि तदघद्वारेव गोवर्धनम्॥ ३.५५

यमक की छटा भी वक्रोक्ति-कुशल लेखक की विशेषता है। नित्यानन्द की ऐसी एक उक्ति है—

---

१. चैतन्य के शिष्य शिवानन्द चाण्डालों को भी गुण्डिचा-यात्रा में महाप्रभु का दर्शन कराने के लिए ले जाते थे। अन्यत्र है—
कुक्कुरोऽपि तेन प्रतिपाल्य नीतोऽस्ति। किं पुनर्मानुषः।

अस्य दण्डग्रहणावधि ममैव दण्डो जातः ।

अर्थात् जबसे चैतन्य ने सन्यास का दण्ड ग्रहण किया, तब से मुझे उपवास का दण्ड भोगना पड़ रहा है ।

इसी वक्रोक्ति के सहारे कविवर ने श्रीपाद का अर्थ बताया है--भगवान् को पकड़ने वाला—श्रियं पातीति श्रीपः कृष्ण. तमाददातीति ।

कर्णपूर ने चैतन्य को वागीश्वर कहा है ।[1] वास्तव मे चैतन्य की कृपा से वह स्वय वागीश्वर बन चुका था ।

कवि के रूपक कही-कही अन्योक्ति द्वार से व्यग्य हैं । यथा,

तीर्थेष्वमीषु सकलेषु तथा न तृप्ति—
र्जातास्य सत्वरमतः पुरुषोत्तमे स. ।
प्रत्याययौ कलय जगमरत्नसानू
रत्नाकरस्य सविधे सुमुखो विधिर्नः ॥७ २४

कवि के उदाहरण कही-कही अर्थान्तरन्यास के वेष्टन मे प्रेक्षको के घर से लाये हुए प्रतीत होते हैं । यथा,

तीक्ष्णो हि गौडस्य रसस्य पाक—
स्तिक्तत्वमायाति न चैति वद्धम् ॥ ८.२

कही-कही विशेषणो की विपुल राशि कवि की प्रगुणमयी दृष्टि का सकेत करती है। यथा,

हेलोद्धूलितखेदया विशदया प्रोन्मीलदामोदया
शाम्यच्छास्त्रविवादया रसदया चित्तार्पितोन्मादया ।
शश्वद्भक्तिविनोदया समदया माधुर्यमर्यादया
श्रीचैतन्यदयानिधे तव दया भूयादमन्दोदया ॥८.१०

पूरा पद्य दया-निर्भर होकर दया की निर्झरिणी ध्वनित करता है ।

कर्णपूर को चाव था कि नाटक अधिकाशतः पद्य मे लिखा जाय । गद्योचित अशो को भी छन्दोवद्ध करने की उनकी प्रवृत्ति अनेक स्थलो पर प्रकट होती है । यथा,

आयातः पुरुषोत्तमस्य गमने काले शुभोऽस्य वयं
, यामः सत्वरमेव सम्प्रति शिवानन्दस्त्वया भण्यताम् ।
प्रस्थानस्य दिनं विधाय लिखतु क्वैकत्र सर्वे वयं
गच्छन्तः सहसा भवेम मिलिता. पश्चात्पुरोभावतः ॥ १०.१

सन्देश की भाषा कितनी प्राञ्जल है ।

---

१. नाटक में पद्य ५.२१ के नीचे ।

कवि ने चरितनायक को देखा था। उसने चैतन्य के संवादों को सुना था। इस ग्रन्थ में जो संवाद उसने प्रस्तुत किये हैं, वे साक्षात् श्रीमुख से निकले प्रतीत होते हैं। इन संवादों में अनेक स्थलों पर ऐसा लगता है, मानो इनके द्वारा दो हृदय मिल रहे हैं।

कर्णपूर की उत्प्रेक्षाओं से उसकी उदात्त कल्पना का परिचय मिलता है। यथा,

अस्ताचलोदयमहीधरयोस्तटान्तं
शीतांशुचण्डकिरणावुपसेदिवांसौ।
तुल्यत्विषौ मृदुतया वहतः प्रगस्य
वर्षीयसः क्षणमिवोपरि लोचनत्वम् ॥१०.२०

इसमें सूर्य और चन्द्र महाकाल के नेत्र बन गये हैं। कहीं-कहीं उपमा द्वार से भी कवि ने चरित्र-निर्माण की योजना कार्यान्वित की है। यथा,

स्वचरितमिव निरवद्यकरं स्वहृदयमिव स्निग्धं च सर्वतश्चत्वरतलं कृत्वा।

रस

चैतन्यचन्द्रोदय में भक्तिरस अङ्गी है। भक्तिरस के साथ ही इसमें शृङ्गार का परिपोष इस उद्देश्य से विशेष रूप से किया गया है कि सामाजिकों को शृङ्गार के प्रति सर्वाधिक चाव होता है। इसमें अद्वैत प्रतीची का शृङ्गारित वर्णन करते हैं—

सायाह्नसंगसुखलिप्तधियः प्रतीच्याः
शोणाभ्रवाससि समुच्छ्वसिते नितम्बात्।
काञ्चीकलापकुरुविन्दमणीन्द्ररूपी
कालक्रमाद्दिनपतिः पतयालुरासीत् ॥ ४.४

दसवें अङ्क में लक्ष्मी को रौद्ररस का आश्रय बनाया गया है।[1] यह उचित नहीं प्रतीत होता। रौद्ररस का आश्रय बनने के लिए लक्ष्मी जैसी उत्तम व्यक्ति नहीं होना चाहिए।

लोकोक्तियाँ

चैतन्यचन्द्रोदय में लोकोक्तियों का सम्भार है। इनके प्रयोग द्वारा कवि प्रायशः अपने वक्तव्य को सुप्रमाणित बनाता है। यथा,

(१) प्रचुरधनः परमपि धनिनं करोति
(२) धट्टपाला हि विना धृष्टताप्रकटनेन स्वार्थकुशला न भवन्ति।
(३) महामत्तवन्यकुंजरो मन्त्रेणैव वशीकृतः।
(४) दिष्टे हीष्टे भवति सहसा हन्त वामोऽप्यवामः ॥ ५.११
(५) अनाहार्यं वस्तु प्रकृतिविकृतिभ्यां समरसम् ॥ ५.१८

---

१. व्यक्तं रौद्ररसोऽयमम्बुधिभुवः। १०.६०

(६) ज्ञातुं शक्नोत्यहह न पुमान् दर्शनात् स्पर्शरत्नं
यावत् स्पर्शाज्जनयतितरां लोहमात्रं न हेम. ॥ ६·३२

(७) सदैव तुंगः किलकाञ्चनाचलः
सदैव गम्भीरतमाः पयोधराः।
सदैव धीरा विनयैकभूषणा
लक्ष्मी. प्रकृत्यैव जनैः समीयते ॥ ७·१६

(८) सर्वेषां हि प्रकृतिमधुरो हन्त तुल्येन योगः ॥ १०·५

(९) वस्तूनां गुणदोषयोरपि गुणे दृष्टिर्न दोषग्रहः ॥ १०·६

(१०) प्रणयिनीना प्रकृतिरेवेयं यत्स्वायोग्यतां नेक्षन्ते।

(११) विना वारी बद्धो वनमद-करीन्द्रो भगवता ॥ ६·३१

शिक्षा

स्वभावतः ऐसे नाटक में लेखक का एक उद्देश्य है कथा के माध्यम से शिक्षा देना। कवि का मत है कि

रामनामत. कृष्णनाम श्रेयः।

विषयी पुरुष और स्त्री को देखना विष खाने से भी बढ कर हानिप्रद है, उस व्यक्ति के लिए, जो मोक्षार्थी हो—

निष्किञ्चनस्य भगवद्भजनोन्मुखस्य
पारं परं जिगमिषोर्भवसागरस्य।
सन्दर्शनं विषयिणामथ योषितां च
हा हन्त हन्त विषभक्षणतोऽप्यसाधु ॥ ८·२३

आकारादपि भेतव्यं स्त्रीणां विषयिणामपि
यथाहेर्मनस क्षोभस्तथा तस्याकृतेरपि ॥ ८·२४

पूर्ण का ग्रहण करो और अपूर्ण को छोड़ो—

पूर्णापूर्ण-परिग्रहत्यजनयोः शिक्षां व्यनानीज्जनः ॥ १०·३५

सामाजिक वैषम्य

कर्णपूर दम्भियों की पोलपट्टी खोलने का मानो बीड़ा लेकर यह नाटक लिखने चले थे। उनका प्रतीक पात्र वैराग्य ससार को खुली आँख से देखता है तो पाता है कि कलि ने सभी सात्त्विक प्रवृत्तियों का ध्वस कर दिया है। चारो वर्णों के लोग अपने शास्त्रविहित धर्म को छोड़कर ढोंग कर रहे हैं। विवाह यदि नहीं हुए तो ब्रह्मचारी बन गए। तर्क मे दूसरो को पराजित करना पाण्डित्य का परम लक्षण है। कहो मायावादी अपने को ब्रह्म मानते हुए भगवान् की मूर्ति का खण्डन करते हैं। वैदिक और वैदिकेतर दर्शन वाले भगवत्तत्त्वशून्य हैं। हठयोगी की कहीं राम मि

टूट रही है, जब वह पानी लाने के लिए आई हुई रमणी की चूड़ियों की ध्वनि सुनाता है। यह तो मात्र दम्भी है। भारत के सारे तीर्थों का पर्यटन करके लौटा हुआ यात्री कामनाभिभूत है कि मेरे पास लोग आयें। तपस्वी दम्भी और गर्वोन्नत है। इन सभी में भक्ति का अभाव है, अतएव ये निकम्मे हैं। जैसे-तैसे अपना पेट भर रहे हैं।

उत्कोच का प्रचलन उस युग में भी था। लोगों को द्वारपाल अद्वैत के घर में नहीं प्रवेश करने देते थे। उस समय लोगों को उपाय सूझा—दातव्यं किञ्चिदेभ्यः।

इस युग में यात्रियों पर लुटेरे और ठगों के कारण सङ्कट था। यथा,

ग्रामे ग्रामे पट्टकपट्टिनो घट्टपाला[1] य एते
येऽरण्यानीचरगिरिचरा वाटपाटच्चराश्च।
शङ्काकाराः पथि विचलतां तां विलोक्यैव साक्षा-
दुद्यद्बाष्पाः स्खलितवपुषः क्षोणिपृष्ठे लुठन्ति॥ ६·६

जगन्नाथपुरी में नीलाचलचन्द्र भगवान् का दर्शन राजपुरुषों की सहायता बिना सुलभ नहीं था। चैतन्यकृष्ण को देवदर्शन की सुविधा प्रस्तुत की गई। उन्होंने शयनोत्थान लीला देखी।

सामाजिक वैषम्य मिटाने का प्रयास कर्णपूर की इस रचना में कहीं-कहीं दिखाई पड़ता है। उनके चैतन्यकृष्ण कहते हैं—

हरेः स्वतन्त्रस्य कृपापि तद्वद् धत्ते न सा जातिकुलाद्यपेक्षाम्।
सुयोधनस्यान्नमपोह्य हर्षाज्जिग्राह देवो विदुरान्नमेव॥ ८·१४

चर्माम्बर ढोंग है—यह ब्रह्मानन्द के मुँह से वक्तव्य है—

दम्भैकमात्रप्रथनाय केवलं चर्माम्बरत्वादि न वस्तुसाधनम्।
चलद्भिरुर्वीमृजुनैव वर्त्मना सुखेन गम्यस्य समाप्यतेऽवधिः॥ ८·१७

कुलजाति का दम्भ भी महाप्रभु के प्रयास से मिट रहा था। उनके एक अनुयायी थे हरिदास, जिनको सार्वभौम भट्टाचार्य सम्बोधित करते हुए कहते हैं—

कुलजात्यनपेक्षाय हरिदासाय नमः। दशम अङ्क से

आर्थिक तथा राजनीतिक समता भले सम्प्रतिष्ठित न हो, किन्तु चैतन्य-समता तो सब को प्राप्त ही है। कैसे?

श्रीहस्तेन विलिप्य चन्दनरसैः प्रत्येकमेषां वपु—
र्निक्षिप्याप्यधिकन्धरं भगवतो निर्माल्यमाल्यानि च।
उल्लासद्रुममञ्जरीरिव करं संग्राहयञ्शोधनी—
र्मध्यत्तुंगमतंगजालसगतिगौरो विनिष्क्रामति॥ १०·३०

---

१. घट्टपालों के विषय में दसवें अंक में कहा गया है—पथि गच्छतामेषां वर्त्मकण्टकभूता घट्टपालाः कीदृशं व्यवहरन्ति।

और इन्हे देखकर राजा कहता है—

धिग् भपत्वम् । कदाहमेषा मध्ये य कश्चिद् भवन् भगवन्तमनुव्रजामि ।

पाणौ कृत्वा मधुरमृदुले शोधनीमुर्ध्वमूर्ध्वं
सर्वं सार्धं स्वयमयमसौ गुण्डिचामण्डपान्तः ।
लूतानन्तून् मलिनरजसः सारयन्नेव तैस्तैः—
र्व्याप्तो गौरः शशधर इव व्यक्तलक्ष्मा बभूव ॥ १०.३२

अनन्तरम्

हस्ताप्राप्ये कमपि समुपारोप्य कस्यापि चांसे
मा भैषीरित्यहह निगदन् मेघगम्भीरयोक्त्या ।
अभ्युन्नेत्रः सरजसतनुर्मार्जयित्वोर्ध्वमूर्ध्वं
भित्तीः सिंहासनमथ तलं शोधयामास देवः ॥ १०.३३

अपि च

बहिर्वासोऽञ्चल्यामवकरचयं शोधनिकया
समाहृत्यापूर्यं स्वयमथ बहिः सारयति सः ।
क्वचिद् हस्तप्राप्यावधि सरभसं मार्ष्टि च कल
सुहृद्वर्गैर्गायत्यपि स कुतुकं गापयति च ॥ १०.३४

योरप मे सोलहवी से १८ वी शताब्दी तक सोसाइटी आफ जेसस के स्कूलों में इस प्रकार के धार्मिक नाटकों का अभिनय प्रवर्तित हुआ, जो चैतन्यचन्द्रोदय के समान हैं। इस प्रकार का सबसे पहला नाटक १५५१ ई० मे प्रयुक्त हुआ था। स्पेन, फ्रान्स, इटली आदि देशो मे इसका प्रचार था। क्राइस्ट के आरम्भिक जीवन की प्रमुख घटनाओं को नेटिविटी प्ले में समाविष्ट किया गया था।[1] योरपीय नाटक के लिए तीन यूनिटी वाले नियम के अपवाद-स्वरूप जो रचनायें हुई, उनके विषय मे जान ड्राइडन का कहना है[2]—

If by these rules we should judge our modern plays, it is probable that few of them would endure the trial, that which should be the business of a day, takes up in some of them an age, instead of one action, they are the epitomes of a man's life, and for one spot of ground, we are sometimes in more countries than the map can show us.

1. The services of Christmas gave scope for a drama of the Nativity, centring on the crib with Mary. Joseph, the ox and ass, shepherds and angels.······Eriphany play began with the journey of Magi, their visit to Jerusalem and interview with Herod. The Oxford Companion to the Theatre P. 214
2. European Theories of the Drama Page 179

अध्याय ७

जगन्नाथ-वल्लभ नाटक (संगीत-नाटक)

जगन्नाथ-वल्लभ के प्रणेता रामानन्द राय का प्रतिभाविलास सोलहवीं शती के उत्कल-नरेश गजपति प्रतापरुद्र के समाश्रय में हुआ था।[1] नान्दी के अन्तिम अंश में कहा गया है—

लघुतरललितकन्दरं हसितनवसुन्दरं गजपति-प्रतापरुद्रहृदयानुगतमनुदिनं सरसं रचयति रामानन्दराय इति चारु।

सूत्रधार ने प्रस्तावना में आश्रयदाता राजा प्रतापरुद्र के विषय में लिखा है—

यन्नामापि निशम्य सन्निविशते सेकन्दरः कन्दरं
संवर्गकलवर्गभूमितिलकः सास्रं समुद्वीक्षते।
मेने गुज्जरभूपतिर्जरदिवारण्यं निजं पत्तनं
वातव्यग्रपयोविपोतगमिव स्वं वेद गौडेश्वरः॥

महाराज प्रतापरुद्र ने सूत्रधार से कहा था कि कृष्णचन्द्र के विषय में किसी प्रबन्ध का अभिनय प्रस्तुत करें—

मधुरिपुपदलीलाशालि तत्तद्गुणाढ्यं
सहृदय-हृदयानां काममामोदहेतुम्।
अभिनवकृतिमन्यच्छायया नो निबद्धं
समभिनयनटानां वर्यं किंचित् प्रबन्धम्॥ १४

रामानन्द के पिता का नाम भवानन्द राय था। वे राजमन्त्री थे। रामानन्द का यह नाटक गजपति प्रतापरुद्र को प्रिय था।

सूत्रधार ने इसे संगीतनाटक कहा है। यथा,

रामानन्द-संगीतनाटकं निर्माय समर्पितमभिनेष्यामि।[2]

रामानन्द स्वभावतः विनयी वैष्णव भक्त थे, जैसा उनके अधोलिखित वक्तव्य से प्रतीत होता है—

---

१. जगन्नाथ-वल्लभ का प्रकाशन अनेक बार हो चुका है। बंगाक्षर में इसके प्रकाशन से परितुष्ट न होकर श्री नित्यस्वरूप ब्रह्मचारी ने इसका सम्पादन करके १९०१ ई० में देवनागरी में वृन्दावन के देवकी-नन्दन प्रेस से छपवाया। इसकी प्रति काशी में विश्वनाथ-पुस्तकालय में प्राप्तव्य है।

२. प्रस्तावना के इस वचन से प्रतीत होता है कि प्रस्तावना का लेखक सूत्रधार है।

स्वपिति कमलकोषे निश्चलांगः प्रदोषे॥ २०

न भवतु गुणगन्धोऽप्यत्र नामप्रबन्धे
मधुरिपु पदपद्मोत्कीर्तन नस्तथापि।
सहृदयहृदयस्यानन्दसन्दोहहेतु—
र्नियतमिदमतोऽयं निष्फलो न प्रयासः॥

इसमे पात्रों के नेपथ्य-विधान का पर्याय वर्णिका-परिग्रह प्रयुक्त है।

जगन्नाथ-वल्लभ का प्रथम अभिनय प्रदोष-वेला मे आरम्भ हुआ, जिसका वर्णन नटी ने संस्कृत मे इस प्रकार किया है—

'मृदुलमलयवाताचान्तवीचि-प्रचारे
सरसि नवपरागैः पिंजरोऽयं क्लमेन।
प्रतिकमलमधूनां पानमत्तो द्विरेफः'

कथासार

विदूषक के साथ कृष्ण वृन्दावन के विहारकुञ्ज मे आनन्दोत्सव के लिए जा पहुँचे। वहाँ गोपियो ने अशोक-पल्लवो को निर्दयता से तोड़ रखा था। विदूषक ने स्पष्ट कह दिया कि ये ही वे गोपियाँ हैं, जिनमे आपका मन अटका है और आप यहाँ से प्रस्थान नही कर रहे हैं। तभी राधा ने प्रवेश किया—

कलयति नयन दिशि वलितम्
पकजमिव मृदुमारुतचलितम्।
केलिविपिन प्रविशति राधा।
प्रतिपदसमुदितमनसिजबाधा॥
विनिदधती मृदुमन्थरपादम्।
रचयति कुञ्जरगतिमनुवादम्॥

राधा ने कृष्ण को वेणु बजाते सुनकर उन्हे देखने का उपक्रम किया था। कृष्ण ने राधा के निरूपम रूपमाधुर्य को देखा।

दुपहरी हो गई। प्रथम अक के अन्त तक नायक-नायिका का दूरदर्शन मात्र हुआ और वे चलते बने।

द्वितीय अक मे राधा कृष्ण के प्रेम मे निष्णात होकर उनके विरह की अग्नि को पद्मदल-शय्या पर शान्त करने के लिए समुद्यत है। कृष्ण को राधा का प्रेमपत्र मिला, जिससे कृष्ण को प्रतीत हुआ कि राधा मदन-सन्तप्त हैं। कृष्ण ने सोचा कि उसके हृदय की स्थिरता की परीक्षा करनी है। उन्होने दूती से कहा—

अथैनं भुजयुग्ममात्रशरणः सम्मर्द्य बालामिमामव्यग्रां रचयामि। किं मयि सति त्रासो व्रजस्त्रीजने।

कृष्ण ने दूसरो को सुनाने के लिए कहा कि यह राधा मेरे पीछे क्यों पडी है? मैं ऐसे उचक्के प्रेम के कुचक्र में नही पड़ता। कृष्ण ने राधा की दूती से बनावटी बात

कही कि तुम राधा को इस अयोग्य प्रवृत्ति से विरत करो। वे सदाचार का ध्यान भले न रखें, हम सदाचार नहीं छोड़ सकते।

तृतीय अंक में मदनिका, वनदेवता और शशिमुखी के साथ राधा की रहस्यात्मक बात चल रही है। राधा को कृष्ण का सन्देश मिला है, जिसके अनुसार राधा की प्रणय-याचना का कृष्ण ने तिरस्कार किया है। तब तो राधा संस्कृत बोलती हुई प्रणयोद्‌गार प्रकट करती है—

श्रावं श्रावं सुसामश्रुतिसमितपरब्रह्मवंशीप्रसूतम्।
दर्शं दर्शं त्रिलोकीवरतरुणकलाकेलिलावण्यसारम्।
ध्यायं ध्यायं समुद्यद्द्युमणिकुमुदिनीबन्धुरोचिः सरोचि-
श्चायं श्रीकान्तसंगं दहति मम मनो मां कुकूलाग्निदाहम्॥

शशिमुखी ने समझाया कि कृष्ण को छोड़ो। और भी

हीनं पतिमपि भजते रमणी
केशरिणं किं मुकुलयति हरिणी।
राधिके परिहर माधव-रागमये
क्षीणे शशिनि च कुमुदवनीयं।
भजति न भावं किमु रमणीयम्॥

राधा ने कहा—प्रणय-पथ में लौटना नहीं होता। शशिमुखी ने कहा कि भ्रमरी केतकी-प्रसून को रसहीन देखकर छोड़ देती है। राधा ने कहा—अच्छा कृष्ण को छोड़ दिया। उसी समय कृष्ण का चित्र लिए हुए माधवी राधा के पास आई। उस चित्र के नीचे लिखा था कि मैंने वाणी से तुम्हारा प्रत्याख्यान किया है, किन्तु मन तुम में ही रम रहा है। सन्ध्या के समय सभी चलते बने।

चतुर्थ अङ्क में वकुलवृक्ष के नीचे बैठे कृष्ण और विदूषक की बातचीत छिप कर मदनिका सुन रही है। कृष्ण राधा के तिरस्कार से दुःखी हो रहे हैं। वह सामने आ गई। विदूषक ने उससे कहा कि काम सन्तप्त मेरे मित्र की रक्षा के लिए गोपियों को ले आना। कृष्ण ने अपनी वियोगस्थिति का परिचय दिया—

तवास्थादेतस्या वदनरुचमाकर्ण्य शशिनः
कृतावज्ञा यस्मादयमपि रुजं तद्वितनुताम्।
तदंगेनासंगं भजत इति यो मे वहुमतः
कथं सोऽपि प्राणैर्मम मलयवातो विहरति॥ ४·२२

मदनिका ने राधा की स्थिति बताई—

शिलापट्टे हैमे तुहिनकिरणे चन्दनरसै—
रियं तन्वी पिष्ट्वा तनुमनु विलेपं मृगयते।

क्षणं स्थित्वा हा हा सरस विसनीपत्रशयने
समुत्तस्थौ यावज्ज्वलति न चिरान्मर्मरमिदम् ॥ ४.२४
हरि हरि कथमपि जीवति राधा

मदनिका कृष्ण की इच्छानुसार केसर-कुञ्ज मे राधिका को अभिसारिणी बना कर ले आई यह कह कर कि

तत् कुंजोदरतल्पकल्पनपरं राधे तमाराधय।

इधर कृष्ण मनाने लगे कि चन्द्रमा शीघ्र ऊँचा हो जाय, जिससे मेरी प्रेयसी का निर्बाध आगमन हो सके। तभी उन्हे राधा के आने की नूपुर की रनझुन सुनाई पड़ी। दोनो को मिलाकर साथी चलते बने।

पञ्चम अङ्क मे मदनिका शशिमुखी से बताती है कि रात्रि मे राधा-माधव की निकुञ्ज मे प्रणयक्रीडा हुई। आरम्भ मे राधा ने मान किया। कृष्ण ने उसका हाथ पकड़कर उसे मना लिया। फिर सम्भोग-विहार का आनन्द दम्पती ने प्राप्त किया।

इस अङ्क मे वृषासुर के मदमर्दन की घटना है। नेपथ्य से अरिष्ट नामक वृष के वध का वर्णन है—

यत्रोन्मीलति मीलित त्रिभुवन यत्रोन्नमत्यानत
यस्मिन् भ्राम्यति न भ्रमन्ति वियति प्रायेण वाता अपि
क्षिप्त्या कटुकलीलया तमधुना वृन्दावनाद्दूरतो
हत्वा रिष्टमरिष्टमेतदकरोत् श्रीमान् मुकुन्दो जगत् ॥ ५.४७

राधा ने इस पराक्रम के पश्चात् कृष्ण को वस्त्राञ्चल से पवन किया।

समीक्षा

मिथिला के किरतनिया नाटो मे जिस प्रकार मैथिल गीतो का प्रयोग प्रचुर मात्रा मे मिलता है, वैसे ही इस सगीत-नाटक मे विविध रागों मे प्रायः समान उद्देश्यो की पूर्ति के लिये गीतो का प्रचुर प्रयोग किया गया है। पात्रो के रगमच पर आने के पूर्व उनके रूप और वेषभूषादि के साथ अनुभावो की भी चर्चा ऐसे गीतो में कभी-कभी नेपथ्य से और कभी-कभी किसी अन्य पात्र के द्वारा की गई है। यथा, कृष्ण के प्रवेश के पूर्व—

मृदुतरमारुतवेल्लितपल्लववल्लीवलितशिखण्डम्
तिलकविडम्बित-मरकतमणितल-विम्बितशशधरखंडम्
युवतिमनोहर वेशंम्।
कलयकलानिधिमिव धरणीमनु परिणतरूपविशेषम्।

राधा के प्रवेश के पूर्व भी उसके रूप और अनुभावो का वर्णन करते हुए कवि ने गोड किरी राग मे नेपथ्य मे गीत प्रस्तुत किया है। इन्हे प्रावेशिकी कहा जा सकता है।

ऐसे गीतों में पुनः पुनः आश्रयदाता राजा गजपति का नाम किसी न किसी प्रकार प्रायशः कवि के नाम के साथ लिया गया है। यथा,

गजपतिरुद्रनराधिप-चेतसि जनयति मुदमनुवारम्।
रामानन्दराय-कविभणितं मधुरिपुरूपमुदारम्॥ २२

नेपथ्य से यह पाठ करने वाला सूत्रधार का भाई है।

पात्रों के मुख से इन गीतों में कवि और उनके आश्रयदाता की चर्चा विडम्बना है। यथा, प्रथम अङ्क में कृष्ण कहते हैं—

सुखयतु गजपतिरुद्र-मनोहरमनुदिनमिदमभिधानम्।
रामानन्दरायकविरचितं रसिकजनं सुविधानम्॥ २८

सुसंस्कृत शृंगार-रस की अनुपम खान है यह नाटक। साथ ही विदूषक के हास्य उत्पन्न करने का एक विरल विधान इस नाटक में मिलता है। वह कृष्ण के वंशी-वादन के पश्चात् उनकी स्पर्धा में अपने कण्ठरव के द्वारा परुष नाद करता है। वह अपने रव की प्रसंशा में कहता है कि तुम्हारे वंशीनाद के समय कोकिल चुप थे, पर मेरे कण्ठरव के आरम्भ होते ही सब भाग खड़े हुए। अतएव मैं जीता। वह अन्यत्र कृष्ण की खिल्ली उड़ाते हुए दूती से कहता है—

अस्माकं प्रियवयस्यो धर्मशरणः। तदपसरतु भवती॥

जगन्नाथ-वल्लभ में विष्कम्भकों में केवल सूचना ही नहीं है। उनमें रमणीक गीतों के सन्निवेश होने से उन्हें छोटा अङ्क ही कहा जा सकता है।

कवि ने आकाश-भाषित को शुकभाषित का रूप दे रखा है। द्वितीय अङ्क के पूर्व विष्कम्भक में मदनिका शुकों से आकाशभाषित करती है—

मदनिका—(परिक्रम्य अवकाशे लक्ष्यं बद्ध्वा) भो शुका जानीत कुत्रायं द्रष्टव्यो मुकुन्दः। किं ब्रूवत भाण्डीरतरुमूले शशिमुखी द्वितीयः प्रतिवसति। इत्यादि।

दृश्य को कलात्मक विधि से सँजोया गया है। माधवी को कृष्ण का चित्र राधा को दिखाना है। वह—

मनाग्दर्शयित्वाञ्चलेनाच्छादयति।

तब तो शशिमुखी ने बलात् उसे ले लिया।

चतुर्थ अंक में रंगमंच दो भागों में बँटा है। इसमें एक भाग में कृष्ण और विदूषक बातें करते हैं और दूसरे में किसी दूर स्थल पर वर्तमान राधा और मदनिका की बातें हो रही हैं। दोनों स्थानों में पर्याप्त दूरी है। कृष्ण ने कहा है—

विदूरे कुंजोऽयम्।

पुण्यात्मक प्रवृत्ति

रामानन्दराय ने भरतवाक्य में अपनी रचना के पुण्यात्मक तत्त्वका प्ररोचन इस प्रकार किया है—

श्रद्धाबद्धमतिर्मम प्रतिदिन गोपाललीनस्य यः
ससेवेत रहस्यभेदमतुल लीलामृत लोलधीः।
तस्मिन् मद्गतमानसे किल कृपादृष्ट्या भवत्या सदा
भाव्यं येन निजेप्सता व्रजवने सिद्धि समाप्नोति सः ॥५'६३

शैली

रामानन्द की शैली सर्वथा सुबोध अतएव अभिनयोचित है। इनके गीतो मे सर्वत्र जयदेव के गीतगोविन्द का रस, समान-पद-योजना-नर्तन और कोमलकान्त-विन्यास के द्वारा छलकता सा है।

जगन्नाथ-वल्लभ नाटक मे सगीतानुसारी केदार, वसन्त, गोडकिरी, गान्धार, तोडीवराडी, सामगुज्जरी, मल्लार, सुहयी, देश, कर्णाट, मालव, दु:खीवडारी, साम-तोडी, मालवश्री, सुसिन्धुडा, आहिर, मगलगुज्जरी आदि रागो का विविध गीतो मे प्रयोग हुआ है।

लोकोक्ति

तदेव नपावर्म बालानां हृदये स्थिरम्।
यावद्विपमबाणस्य न पतन्ति शिलीमुखा. ॥ २'१५

द्वित्राण्येव दिनानि यौवनमिद
हा हा विधेः का गतिः॥ ३'६

अनुमितमम्बुपयोदे तनुपरिकलिता दावानलज्वाला।
वपुरतिललितं बाला शिव शिव भविता कथं हरिणी॥

शुक्तिधिया महामणिरभूत् त्यक्त।

अध्याय ८

कंसवध

कंसवध के रचयिता महाकवि शेषकृष्ण भारत के उस विद्वत्कुल में हुए जिसने काशी को अपने ज्ञान के प्रकाश से अनेक शताब्दियों तक समुज्ज्वल रखा है।[1] शेषकृष्ण के पिता नरसिंह गोदावरी तट छोड़ कर सोलहवीं शती के पूर्वार्ध में काशी में आ बसे थे। वहाँ उन्हें तण्डनवंशी राजा गोविन्दचन्द्र का आश्रय प्राप्त हुआ, जिसके नाम पर उन्होंने गोविन्दार्णव नामक धर्मशास्त्र का ग्रन्थ लिखा। नरसिंह व्याकरण के असाधारण विद्वान् थे। उन्होंने काशी में जिस वैयाकरण-परम्परा की स्थापना की, उसमें आगे चल कर भट्टोजी और नागोजी आदि विद्वान् हुए।

नरसिंह के बड़े पुत्र चिन्तामणि ने रुक्मिणीहरण नामक रूपक का प्रणयन किया।[2] इनका दूसरा ग्रन्थ रसमञ्जरी-परिमल है। शेषकृष्ण नरसिंह के दूसरे पुत्र थे। शेषकृष्ण के पुत्र वीरेश्वर ने पण्डितराज जगन्नाथ, भट्टोजी तथा अन्नंभट्ट को शास्त्रीय ज्ञान में दीक्षा दी थी

शेषकृष्ण ने तत्कालीन काशिराज[3] गोवर्धनधारी के आश्रय में अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया। गोवर्धनधारी का वर्णन करते हुए कवि ने कंसवध में लिखा है—

> अस्ति क्ष्मापालमौलिज्वलदमलमणिश्रेणिनिःश्रेणिरोह-
> द्रोचिर्वीचिप्रपञ्चच्छुरितपदनखप्रेङ्खदुद्यन्मयूखैः।
> येनाकालेऽपि बालारुणकरनिकरो जागरोजृम्भमाण—
> ज्योत्स्नाजालंजटालं स्फुटमजनि हरिच्चक्रवालान्तरालम् ॥ १·११

गोवर्धनधारी की साहित्यिक अभिरुचि की चर्चा करते हुए शेषकृष्ण ने कंसवध में कहा है—

> नानाकलाकुलगृहं स विदग्धगोष्ठी—
> मेकोऽधितिष्ठति गुरुर्गिरिधारिनामा ॥१.१३

गिरिधारी की एक विद्वद्गोष्ठी थी, जिसके अन्यतम सदस्य शेषकृष्ण थे। कवि ने अपने यौवन के दिनों में यशस्काम होकर यह ग्रन्थ लिखा था, जैसा उसके नीचे लिखे वक्तव्य से कल्पना होती है—

> त्वरयति नृपगोष्ठीसंस्तव-ख्यातिलिप्सा
> जडयति च विदग्धाराधना-साहसिक्यम् ॥१.१५

---

१. कंसवध का प्रकाशन काव्यमाला ६ में हुआ है।

२. रुक्मिणीहरण का उल्लेख कैटेलागस कैटेलोगोरम भाग १ में ५२७ संख्या पर है।

३. गोवर्धनधारी १५८६ ई० में टोडर की मृत्यु होने पर राजा हुआ। विलसन के अनुसार कंसवध की रचना १७ वीं शती के आरम्भ में हुई। हिन्दू थियेटर पृष्ठ १४७।

उस युग मे कवि नाटक लिखकर सूत्रधार को प्रयोग करने के लिए सौंप देते थे, जैसा सूत्रधार के नीचे लिखे वक्तव्य से प्रतीत होता है[१]—

पृथ्वीमण्डलमौलिमण्डनमणिः श्रीमन्नृसिंहात्मजः
कृत्वा कृष्णकविः कुतूहलवशादस्मासु यन्न्यक्षिपत् ।
नाट्यं कंसवधाभिधानमधुना तस्य प्रयोगोद्यमं
विद्वद्राजसमाजमानसमहानन्दाय विन्दामहे ॥१·१६

इस नाटक का प्रथम अभिनय प्रातःकाल के समय हुआ था।

शेषकृष्ण कोरे कवि ही नही थे[२]। उनका परिचय इस नाटक मे इस प्रकार है—

चतुर्दशसु विद्यासु परिकर्मितचेतसः

वे मूलत वैयाकरण थे। उनका कहना था—

भूषणमेतन्न दूषणं कवीनां व्याकरणकोविदता।

उन्होने मुरारिविजय, मुक्ताचरित, सत्यभामा-परिणय आदि रूपक, पारिजात हरण, उषापरिणय तथा सत्यभामा-विलास नामक चम्पू तथा क्रियागोपन-रामायण की रचना की है। इनके कंसवध की रचना १६ वी शती के प्राय. अन्त मे हुई।

शेषकृष्ण ने आलोचको की असाधु कोटि का परिचय इस प्रकार दिया है—

अमृतं किरति हिमांशुर्विषमेव फणी समुद्गिरति।
गुणमेव वक्ति साधुर्दोषमसाधुः प्रकाशयति ॥१ २५

इस नाटक का प्रावेशिक संगीतक नटी ने गाया है—

पणमह जलहरसमअ विज्जुज्जलसोम्मसामसुहअसिरिं
जं दट्ठूण दिसाणं कदम्बमउलेहिं होन्ति पुलआइं ॥१.२७

कंसवध का प्रथम प्रयोग विश्वनाथ (शिव) की अध्यक्षता मे प्रात उनके मन्दिर में हुआ था, जैसा सूत्रधार ने बताया है, जब नटी उससे पूछती है—

नटी—को उण एदाणं सामाजिआणं मज्झे णिग्गहाणुग्गहसमत्थो अज्झक्खो जस्स पुरदो णच्चामो।

सूत्रधारः—आर्ये, अयमेव तावदखिल-ब्रह्माण्डमण्डपमहानटः सृष्टि-स्थितिप्रलयनाटिकासूत्रधारः सूत्रात्मा विश्वसाक्षी, भगवानिन्दुशेखरः।

कंसवध की कथा का आरम्भ कंस की नीचे लिखी आकाशवाणी सुनने से होता है—

यस्ते मर्दं दमयिता दनुजेन्द्रकालो
बालः स कोऽपि भगवान् क्वचिदप्रमेयः।

---

१. इससे स्पष्ट प्रमाणित होता है कि भूमिका लेखक सूत्रधार है, कवि नही।

२. शेषकृष्ण उच्चकोटि के दैवज्ञ थे—यह कंसवध के ४·७ पद्य से सुप्रमाणित है।

संवर्धते गिरिगभीरगुहाविहार—
तन्द्रालु केसरिकिशोर इवाविभाव्यः ॥१.३३

उसे पीड़ित देवताओं का स्मरण हो आता है कि वे विष्णु का पुनः अवतार करायेंगे और साथ ही स्मरण हो आता है कि वसुदेव के विवाह के अवसर पर पहले भी आकाशवाणी हुई थी कि उसकी पत्नी देवकी के गर्भ से उत्पन्न अष्टम सन्तान मेरा नाश करेगी।[1] उसने महामात्य से अभिनद आकाशवाणी की बात बताई। महामात्य ने कहा कि इतनी निपुण और बलिष्ठ सेना तथा मेरे रहते हुए भय का कारण कुछ हो ही नहीं सकता। फिर भी शत्रु की उपेक्षा क्यों की जाय ? शत्रु हैं देवता। उनको नष्ट करने का उपाय है—

यज्ञायत्तं जीवितं देवताना यज्ञा सांगा ब्राह्मणेष्वायतन्ते।
ते चाप्येते धर्मकर्मैकमूला मूले छिन्नेऽस्तैव वार्तमिराणाम् ॥१.४६

कंस ने आज्ञा प्रचारित की—

हन्यन्तां द्विजदेवसेवनपराः सर्वेऽपि वर्णाश्रमा
ध्वंस्यन्तां दमदानसत्यनियमस्वाध्याययज्ञादयः।
पीड्यन्तां च तपोवनानि परितस्तीर्थानि पुण्याश्रमा
वध्यन्तामचिरात् मुरा हरिहरब्रह्मादयः सानुगाः ॥१.४८

दूसरे अङ्क के आरम्भ मे एकोक्ति द्वारा तालजङ्घ नामक कंस का चर बताता है कि मैं विष्णु के अवतार का समाचार प्राप्त करने के लिए नियुक्त हूँ। किंवदन्ती है कि—

यशोदया लाल्यमानो नन्दगोपस्य गोकुले
विडम्बयन् बाललीलां वासुदेवोऽभिवर्धते ॥२.३

वह एकोक्ति में ही बताता है कि वासुदेव ने शकट, धेनुक और पूतना को मार डाला है। उसे गोकुल के परिसर मे घूमते हुए गोपों के पुरोहित गर्ग से भेंट होती है। गर्ग ने बताया कि किस प्रकार कृष्ण ने पूतना, शकटासुर आदि का ध्वंस किया है और अपने मामा कस के धनुर्यज्ञोत्सव को देखने के लिए अक्रूर उन्हें निमंत्रण देने आये हैं। गर्ग से अनुमति लेकर तालजंघ वृन्दावन को देखने लगा, जहाँ केशी नामक राक्षस घोड़े का मायात्मक वेश बनाकर उत्पात करने पहुँचा। उसका वर्णन है—

कोपाटोपातिवल्गद्विकटखुरपुट-प्रस्फुटद्भूमिपृष्ठा—
दुत्तिष्ठद्भिर्गरिष्ठैर्व्रजजननयनान्यन्वयन्धूलिजालैः।

---

१. बाइबिल की एक कहानी के अनुसार फ्रांसीसी भाषा मे १६९१ ई० मे जीन रेसीन ने पाँच अंको का एक नाटक एथलिए लिखा, जिसमे रानी एथालिया ने एक स्वप्न देखा कि मुझे अमुक बालक मार डालेगा। जोअश नाम के उस बालक को अपने मार्ग से दूर करने के लिए उसने प्रयत्न किया।

कुर्वन् धामेष ह्रेषारवशतबधिरां वालधिप्रोद्धनान-
श्चूडावालान्तरालप्रणिहित-कपिलक्रूरतारस्तुरंगः ॥२.१६

तालजघ सोचता था कि केशी कृष्ण को मारेगा। यथा,

कंसस्य भृत्यनिवहैरिह यद्विपक्ष—
पक्षक्षय-क्षमतयाद्य विभावितोऽसि ॥

किन्तु वह कृष्ण के द्वारा मारा गया। तालजघ देखता है[1]—

वमति रुधिरधारा नासिकानालरन्ध्रा-
ल्लुठति धरणिपीठे क्ष्मा खुराग्रैः क्षुणाति
धुरति किमपि घोरं केसराण्युद्धुनीते
तदणुमपि विलम्बं न क्षमन्तेऽसवोऽस्य ॥२.२४

तीसरे अक मे रथ पर सूत के साथ अक्रूर आता है। वह सूत से कस की दुर्नीति की चर्चा करता है कि वह हम सबको लडा कर मार डालना चाहता है। गोकुल आने पर उसे कृष्ण की मुरली का सगीत सुनाई पडता है। अक्रूर भावविभोर हो जाता है।

चतुर्थ अक मे कृष्ण और बलराम कस के पास जाने के लिए प्रातःकाल मे यशोदा और नन्द की पादप्रणतिपूर्वक अनुमति प्राप्त करने के लिए आते हैं। वे रोते हुए माता-पिता से प्रतिज्ञा करते है कि कस की आज्ञा पूरी करके हम शीघ्र आप का दर्शन करेंगे। वे प्रस्थान करते हैं। नन्द उनके जाने पर मूर्छित हो जाते हैं। उनके वियोग मे घोषप्रदेश की स्थिति है—

नार्यो रुदन्ति न रुवन्ति पतगसघा
गावस्तृणानि न चरन्ति न वान्ति वाताः।
भृङ्गाः पिबन्ति न मधूनि हरौ प्रयाते
निर्जीविता इव दिशः प्रतिभान्ति शून्याः ॥४.२०

यात्रापथ मे यमुना का वर्णन है—

पश्यन्नेतां चपलशफरी-लोचनां पङ्कजास्यां
कोकद्वन्द्वस्तनभरनतां बालशैवालकेशीम्।
भृंगश्रेणीमधुरवचनां राजहंसप्रचारां
व्यासक्तोऽपि क्षणमिह पुनः प्रेयसीं स्मारितोऽस्मि ॥४.३०

दोपहर हो गया। कृष्ण सुदामा के साथ विश्रम्भालाप के द्वारा मनोरजन कर रहे हैं। दूती वहाँ आकर राधा की बात कहती है—

अनन्यशरणामेतां त्वदेकायत्तजीविताम्।
विरहार्तिवलवद्बाधां राधां कथमुपेक्षसे ॥४.३६

---

१. यह एकोक्ति अर्थोपक्षेपक के प्रयोजन सिद्ध करती है। अर्थोपक्षेपक की भाँति एकोक्ति द्वारा घटनाओ की सूचना देने की रीति पहले से ही रही है।

वियोगिनी राधा मरणासन्न है। कृष्ण को राधा के प्रणयासंग की तीव्रतम स्मृति हो आती है। सुदामा के सुझाव से वहीं निकटवर्ती वृन्दावन में रासमहोत्सव का आयोजन रात में होता है। सभी वृन्दावन पहुचते हैं। अक्रूर उनके आने का समाचार पहले से ही सूचित करने के लिए मथुरा चले जाते हैं।

पचम अंक मे सूचना मिलती है कि नन्द गोप अपने मित्रों के साथ बड़ा सम्भार गौवें, गोप, गोपी आदि लेकर वृन्दावन और मथुरा के बीच में शिविर मे पड़े हुए हैं। वे स्वयं राजकर देने के लिए नगर मे पहुँच चुके हैं। वे उद्यत हैं कि यदि सामादि उपायों से कंस नही मानता तो हमें उससे युद्ध करना है। नन्द गोप ने दूत द्वारा बलराम और कृष्ण को सन्देश भेजा था कि आप राजधानी मथुरा मे प्रवेश न करें। सन्देश मिलने के पहले ही वे दोनों यमुना-तट का मार्ग पकड़कर मथुरा की ओर मित्रों के साथ चले गये थे।

मार्ग में उन्हें कंस का धोबी मिला, जिसे बलराम के भृत्य के द्वारा अपने स्वामी के लिए वस्त्र माँगने पर क्रोध हो आया था। उसने बताया कि मेरे स्वामी कंस ने किस प्रकार कृष्ण के सम्बन्धियों को विनष्ट-प्राय कर दिया है और अब उन्होंने बलराम और कृष्ण को क्षेत्रपाल-बलि के लिए बुलाया है। कृष्ण ने उस धोबी से कहा कि हम लोग मामा के घर जा रहे है। धोबी ने टका सा उत्तर दिया—

> ईदृश्येव वनेचरा निवसते वासांसि वां पूर्वजा—
> स्तद्योग्यानि तु दुर्लभान्यविकुलेष्वन्विष्यमाणान्यपि।
> येन प्राघुर्णिकीकृतौ नरपतिः सोऽद्यैव वां दास्यति
> त्यक्त्वा बालिशतां निलीय निभृतं किंचित्क्षणं जीवतम् ॥ ५.२०

धोबी कृष्ण के आदेश से मार डाला गया। किसी पुरुष ने आकर उनके लिए विश्वकर्मा का बनाया हुआ सुयोग्य वस्त्र दिया, जिसे उन्होंने पहन लिया। पश्चात् प्रसाधन सामग्री की आवश्यकता पड़ी। उस समय कस का अनुचर सुदामा नामक मालाकार वहाँ आया। वह सुविदित कृष्ण-भक्त था। उसकी प्रार्थना सुनकर उसके घर बलराम और कृष्ण जा पहुँचे। उसने राजोचित प्रसाधन सामग्री देते हुए रहस्योद्घाटन किया—

> भूमेर्भारावताराय चरन्तौ बाललीलया।
> अनादिनिधनौ पूर्णौ मूर्तिभेदमुपाश्रितौ ॥ ५.२७

उनके समक्ष एक कुबड़ी, किन्तु अन्यथा सुन्दरी रमणी आई। वह कुब्जा कंस की सैरन्ध्री उसके लिए दिव्याङ्ग रागादि ले जा रही थी, जिसे उसने बलराम और कृष्ण को अर्पित कर दिया और उन दोनों का अपने हाथों से अङ्गरागानुलेपन किया। तत्काल कृष्णानुग्रह से उसका कूबड़ अदृश्य हो गया। कृष्ण ने जैसे-तैसे प्रेमाचारपूर्वक उससे छुट्टी ली।

राजभवन के निकट नगर-सेठो ने बहुमूल्य उपायनों से उन बलराम और कृष्ण का स्वागत किया। रथ्या की रमणीयता का दर्शन करते हुए उन दोनों ने राजकुल में प्रवेश किया।

छठें अंक के पहले प्रवेशक मे कंस का विज्ञापन सुनाया जाता है कि सभी सामन्त जान लें कि अब तक अपना सम्बन्धी और बालक समझकर कृष्ण को उपेक्षा के कारण छोड दिया गया, यद्यपि वह असुर-कुल घातक बन रहा है। वह मथुरापुरी को ही ध्वस्त कर रहा है। तभी सूचना मिलती है कि कुवलयापीड मारा जा रहा है।

छठें अंक मे कृष्ण और बलराम के रंगवाट देखने के मार्ग मे चाणूर और मुष्टिक आते है। वे लडने के लिए उतावले थे। कृष्ण ने कहा—

बालौ च वालिशौ चावां न विद्मो युद्धकौशलम्।
किन्तु भवच्चेष्टानुकरण करिष्याम कियच्चिरम्॥ ६.२०

द्वन्द्व युद्ध हुआ। वे दोनो युद्ध मे मारे गये। इसके पश्चात् बलराम और कृष्ण रङ्गशाला मे जा पहुँचे। वहाँ कंस सप्तभूमि-प्रासाद मे बलराम को दिखा। दोनो भाई सीढी से चढकर मामा कंस से मिलने जा रहे थे। कंस उन्हे दूर से देखकर चिल्लाने लगा—

निस्सार्यतामिमौ पापौ कुलांगारौ मदोद्धतौ
मच्चक्षुः सन्निपाताग्नौ यावन्न शलभायितौ॥ ६.३३

सभ्यो ने उन्हे देखा—

राका सुधाकरसुधाकरचारुवक्त्र—
मिन्दीवरोदरसहोदरमेदुरागम्।
कृष्णं बलं च घनसारपरागगौरं
दृष्ट्वा सुधाम्बुधिनिमज्जनमेति चेतः॥ ६.३५

उनका मत था कि कंस कूट युद्ध द्वारा इन बालकों को मारने का जो उपक्रम कर रहा है, उसके दर्शक होने के नाते सभी सभ्य भी पाप के भागी हैं। इधर कंस ने आज्ञा दी—

वध्यन्तां व्रजवासिनः सतनया नन्दादयः सत्वरं
हन्तव्यः प्रतिपक्षतामनुसरन् किं चोग्रसेनः पिता।
बन्धव्यौ निगडैर्दृढैश्च भगिनीभामौ निकारोचितौ
निग्राह्यौ नितरां चिराय विविधैर्दण्डाभिघातोद्यमैः॥ ६.३६

कंस स्वयं उनसे भिडने के लिए उठ पडा। कृष्ण मामा को मारना नहीं चाहते थे। पर बलराम ने आदेश दिया—

विश्वद्रुहः किल खलानखिलान्निहन्तुं
विश्वाश्रयस्य भवतो भवतोऽवतारः॥ ६.४२

तब तो कृष्ण ने उसे भूतल पर पटक कर मार डाला।

कृष्ण ने कंस को मार कर अपने माता-पिता को कारागार से मुक्त किया। कृष्ण ने अपनी माता देवकी को बताया कि मैंने आपके भाई कंस को मार डाला है। उन्होंने उन दोनों से अनुमति ली कि मातामह उग्रसेन को राजा बना दिया जाय। उनकी अनुमति लेकर कृष्ण ने उग्रसेन को राजा अभिषिक्त किया। अन्त में रंगमंच पर उग्रसेन और बलराम-कृष्ण आते हैं। वसुदेव-देवकी भी वहीं आ जाते हैं।

समीक्षा

प्रथम अंक में सूच्यांश का बाहुल्य है। आरम्भ में ही कंस वह पूरी कथा कह डालता है कि कैसे आकाशवाणी के द्वारा उत्पन्न भय के कारण उसने वसुदेव को कारागार में डाल रखा है। योगमाया ने कैसे वही पहले की आकाशवाणी दुहराई और नारद ने उससे बताया है कि वसुधाभार को दूर करने के लिए विष्णु मानवरूप धारण करके गोकुल में विहार कर रहे हैं।

द्वितीय अंक में गर्ग और तालजंघ के संलाप में गर्ग कृष्ण के पराक्रमों की सूचना दे रहे हैं। नाट्यशास्त्र के नियमानुसार अङ्क में नायक होना ही चाहिए था। यहाँ इस नियम का पालन नहीं किया गया है।

कवि ने कथावस्तु में सदुपदेशों को कुशलता-पूर्वक पिरोया है। यथा,

असारे संसारे विषविषमपाके नृपसुखे
कृतान्तेनाक्रान्ते प्रकृतिचपले जीवितबले।
ध्रुवापाये काये विषयमृगतृष्णा हतहृदः
परप्राणैः प्राणानहह परिपुष्णन्ति कुधियः॥ ३.१

इसमें ब्रह्मसार का परिचय है—

कुवलयदलदामश्यामकान्तिः कलावा-
न्नयनचुलुकनीयः कोऽपि पीयूषराशिः।
व्रजपरिसरधूलीकेलिलोलः किशोरा-
कृतिकृतिपरिचेयो द्रक्ष्यते ब्रह्मसारः॥ ३.७

कहीं-कहीं ग्रामवर्णन से नाटक में प्राकृतिक वातावरण समुपस्थित है। यथा,

अधितरणितनूजा तीरवानीरपाली—
परिसरमतिकाली भाति तालीवनाली।
विलसति तददूरेऽतुच्छतापिच्छगुच्छा-
वलिवलयितवल्लीवेल्लिता नन्दपल्ली॥ ३.१४

ऐसा ही है गायों का हुंकार-वर्णन—

स्नेहप्रस्नुतपीवरस्तनभरप्राग्भारभूरिक्षरत्
क्षीरक्षालनपिच्छिलैः प्रतिपदं मार्गे निषिद्धत्वराः।

हर्षोत्पुच्छयमानतर्णकरवोत्कर्णा व्रजायोत्सुका
गोसघाः प्रतिहुकृतैरिह मुहुः श्रोत्रोत्सवं कुर्वते ॥ ३·२०

यहाँ प्रकृति मानव का अङ्गभूत है—

विहगविहृतवेगव्यग्रशाखाकराग्रै-
स्त्वरयति परिरब्धुं नन्दघोषः किमस्मान् ॥ ३·१५

वृद्धावस्था ने बाल्य की छटा ला दी है—यह दर्शन कवि के शब्दों में है—

गलति वदने लाला वाचः स्खलन्त्यपरिस्फुटा
स्रवति सततं चक्षुर्नासि न सवरतः पदे।
मुखमदशन दृष्टिः शून्या वृथा च विचेष्टितं
शिव शिव जरा बाल्य भूयः प्रसौति नवं नवम् ॥ ४·५

उपर्युक्त वर्णन एकोक्ति द्वारा कचुकी के मुख से प्रस्तुत किया गया है। इसी क्रम मे वह पहले ही प्रभात का दो पद्यो में वर्णन कर चुका है। शेषकृष्ण को वर्णनो का चाव था। रमणीयतम वस्तुओ के चमत्कारिक वर्णन से उन्होंने अपने नाटक को समृद्ध किया है।

नाटक की चारुता के लिए कवि केवल कथावस्तु को ही सर्वस्व नही मानता। कथासन्धि मे वह प्रेक्षको को जीवन के सत्यो के प्रति जागरुक बना देने मे तत्पर है। इसके लिए वह कथासूत्र से ईषत् अनाबद्ध होकर पात्रो से अपनी मानसी वृत्ति का परिचय कराते चलता है। रत्नापीड नामक अन्त पुर-प्रतिहार दैवज्ञ से अपने काम की चर्चा पीछे करता है। पहले वह बता देता है कि परसेवा दारुण है। यथा,

श्रान्तोऽपि हन्त रजनीगुरुजागरेण
कार्यातिपातचकितो न शये क्षणार्धम्।
भ्रूभंग-वीक्षणवितर्कित-चितवृत्ति-
र्नित्यानुवृत्तिनिरतः प्रभुवृत्तिमीक्षे ॥ ४·८

अन्यत्र भी

क्षमां सत्यं दया धर्मं घृणा लोकभयं दमम्।
विस्मृत्य केवल राजन् जन पर्युपासते ॥ ४·१०

चतुर्थ अंक मे नायक कृष्ण एक बार निष्क्रान्त होता है और कुछ समय के पश्चात् माता-पिता के निष्क्रान्त हो जाने पर पुनः रगमच पर प्रवेश करता है—यह शास्त्रीय दृष्टि से त्रुटि है। नायक को अक के बीच मे निष्क्रान्त नही होना चाहिए।

प्रातः से साय तक बलराम और कृष्ण की यात्रा रचमच पर दिखाना अभारतीय है।[1] ऐसा ही अभारतीय है अक्रूर का गोकुल की ओर यात्रा का लम्बा दृश्य। इसी

१. दूराध्वयानं पूरोधः राज्यदेशादिविप्लवः।
रतं मृत्युः समीकादि वर्ण्यं विष्कम्भकादिभिः ॥ ना० द० १.२२

रामचन्द्र के अनुसार अधिक से अधिक ४ मुहूर्त या तीन घंटे तक की यात्रा अंक मे दिखाई जा सकती है।

अंक में रहस्यविश्रम्भालाप द्वारा दुपहरी बिताना या स्वजनकथालापलीला करना अंकोचित सामग्री नहीं है।

शेपकृष्ण कहीं-कहीं भूल जाते हैं कि नाटक की भाषा नाट्योचित होनी चाहिये। वे चतुर्थ अंक में सुदामा के मुँह में वृन्दावन का गौडी रीति में १४ पंक्तियों के एक वाक्य में वर्णन करते हैं और फिर दूसरी सांस में रास-महोत्सव का लम्बे वर्णन द्वारा सुझाव देते हैं।

नाटक की दृष्टि से यह भी अनुचित लगता है कि कृष्ण रंगमंच पर अनुपस्थित अक्रूर को कुछ समाचार सुदामा से भेजें और दूसरे ही क्षण अक्रूर वहाँ आकर कृष्ण से बात करें।

उस युग में नाटक में अनपेक्षित प्रासंगिक इतिवृत्त भी जोड़ने का प्रचलन विशेष था। ऐसे इतिवृत्तों से मनोरञ्जन की विशेष सम्भावना होती थी। इस नाटक में धोबी, मालाकार और सैरन्ध्री कुब्जा के प्रसंग कुछ ऐसे ही हैं। भावी कथा की सूचना कवि कराते चलता है। पंचम अंक में कृष्ण बताते हैं—

> हत्वा कंसं निहत्याखिलदितिजकुलं तद्भटानुद्भटांश्च
> प्रोन्मथ्याथोग्रसेनं निगडनियमितं तत्पदे चाभिषिच्य।
> कारागारे निबद्धौ निरतरमचिरान्मोचयित्वा स्वतातौ
> प्रत्यावृत्तः कृतार्थः किल तव भवनं यातियित्वं विधास्ये ॥५.३८

शेपकृष्ण को प्राकृत भाषा की गीतात्मकता में निगूढ आस्था थी।[1] वे कृष्ण से प्राकृत गान कराते हैं, जो किरतनिया नाटक का पूर्वकल्प है। यथा,

> सो वि क्खणो हुविस्सदि जस्सि तादस्स पाअकमलम्मि।
> भम्मंतभमरविब्भमपडिलम्भो भोदि मह मत्थस्स ॥

प्रवेशक के द्वारा केवल वृत्त और वर्तिप्यमाण की ही नहीं, अपितु वर्तमान घटना की भी सूचना कवि देता है। यह अभारतीय है। अंक के पहले वेत्रहस्त और कोष्ट-पालक द्वारा प्रस्तुत प्रवेशक में उनकी आँखों देखा कुवलयापीड के साथ युद्ध का आख्यान है। यथा—

> हन्तुं दन्तैरभीष्टः प्रविशति पदयोः शुण्डयाकृष्यमाणः
> पश्चाद्वान्निष्प्रपद्य भ्रमयति कलयन् पुच्छमेन कराभ्याम्।
> उत्प्लुत्यारुह्य कुम्भं दलयति सृणिना वंचयित्वास्य दृष्टिं
> मुष्टिभ्यां सम्पिनष्टि द्रुतमभिचलतोऽस्थीनि सव्यापसव्यम् ॥६.१२

इस प्रवेशक को कवि ने लघु दृश्य की भाँति अङ्कोचित सामग्री से निर्भर किया है।

---

१. अन्यत्र ऐसे अधम पात्रों से भी वे संस्कृत में संवाद प्रस्तुत कराते हैं, जिन्हें प्राकृत बोलना चाहिये। पंचम अंक के पश्चात् के प्रवेशक में वेत्रहस्त और कोष्ठपाल संस्कृत में बोलते हैं, यद्यपि उन्हें प्राकृत में बोलना चाहिये।

कवि का संकेत है कि एक बड़ी शक्ति युवकों, बालको और गाँव के लोगों मे भी होती है। भले ही उनके पास तोप न हो, किन्तु राजकीय दुराचार और भ्रष्टाचार को दूर करने के लिए उनकी लाठी पर्याप्त हो सकती है। यथा,

> वृद्धस्तातः ममजवसतिर्गोपबालाः सहाया
> यष्टिः शस्त्रं शयनमवनिः पाशुपाल्यं च वृत्तिः ।
> सत्येतस्मिस्त्रिभुवनमिलद्वीरवशावतंसे
> कंसे राजन्ययमविनयश्चेत्तयोर्हा प्रमाद. ॥ ६.८

इन्ही गाय चराने बालो के विद्रोह ने कस का ध्वस कर डाला।

रगमच पर कृष्ण और बलराम का चाणूर और मुष्टिक से छठें अक मे युद्ध करा देना यद्यपि अभारतीय है, किन्तु प्रेक्षको को ऐसे युद्धो का साक्षात् दर्शन अभिप्रेत होने से इस युग मे शास्त्रीय नियम की उपेक्षा सी की गई।

कवि ने जाने-अनजाने हनुमन्नाटक की सरणि पर निवेदक का कार्य भी नाटक मे रखा है। नीचे का पद्य कहने वाला निवेदक को छोडकर और कोई हो ही नही सकता—

> असेनांसं मुष्टिना मुष्टिमूरू हत्वोरूभ्यां वक्षसा चापि वक्षः ।
> शीर्षं शीर्ष्णा चाथ पादौ पदाभ्यां दोर्भ्यां दोर्भ्यां जघ्नतुस्तौ यथेष्टम् ॥

कभी-कभी दो पात्र रगमच पर साथ ही एक बात कहते हैं या श्लोक पाठ करते हैं। बलराम और कृष्ण तथा वसुदेव और देवकी के ऐसे युग्म प्रायश आये है।[1]

कसवध छठे अक तक नाट्यशिल्प की दृष्टि से समाप्त हो जाना चाहिए। सातवें अक मे इतिवृत्त-रहित कोरा सवाद मात्र है।

केशी असुर का अश्व बनकर आना इस नाटक मे छायातत्त्व का समावेश प्रकट करता है। अनेक पात्र अपने मन्तव्य और मनोवृत्ति को अन्यथा प्रकट करते हुए छायातत्त्व-परायण है।

मनोरम सूक्तिराशि प्रभावशालिनी और औदात्योचित है। यथा,

१. प्रायः परोपकृतये कृतिनोऽनपेक्ष्य
 स्वार्थं विपत्कवलिता अपि संघटन्ते ॥ ३.१०

२. न खलु रसिकानामाकृतिष्वादरः, अपितु गुणेषु।

३. अनतिलंघनीयः खलु खलाना दुर्वृत्तदुर्विपाको न चिरादेव परिपच्यते।

४. किं सम्प्रति प्रतिविधेयमिह प्रतीपे
 दैवे प्रयुक्तमखिलं खिलतां प्रयाति ॥ १.३६

५. जलधररसितं प्रकोपहेतुर्भवति हि बृंहितशङ्कया मृगारेः ।१.३८

१. सप्तम अंक मे विशेषतः ये युग्म मिलते हैं।

शेषकृष्ण की संगीतमयी शैली सानुप्रासिक ध्वनियों के अनुरंजन से रमणीय प्रतीत होती है। यथा,

चम्पे चन्दनि चन्द्रिके चमरिके चन्द्रावलि श्यामले
गंगे गोमति, गौरि गीतरसिके गायत्रि गोदावरि।
धीरे धीवरि धूसरे धवलिके कालाक्षि कालीति च
व्याहाराः परितो हरन्ति हृदयं हम्भारवाश्राविणः॥ ३.२२

कवि के क्रिया-सम्बन्धी व्याकरणिक औचित्य की छटा है—

त्वं क्षीराम्बुनिधिं ममन्थिथ जगत्त्रातुं जगन्नायासुरा-
न्द्रंष्ट्राग्रेण समुज्जहर्थ धरणिं मुप्वप्थ शेषे सदा।
दूरे तस्थिथ किं च वाङ्मनसयोः किं त्वेष नः प्राक्तनैः
पुण्यैरद्य पचेलिमैः किल वलात् पुंभावमालम्बसे॥ ३.३१

यमकालंकृत काव्यच्छटा का उदाहरण है—

न वारणो यस्य निवारणाय न वारणो दोर्मदवारणाय।
बलं बभूवास्य निरोधनाय कथं भवेमाद्य विरोधनाय॥ ६.३८

कृष्णकवि की रससाधना अभावग्रस्त प्रतीत होती है। कृष्ण के द्वारा मारे हुए कंस को पैर से रौंदवाना यह रौद्ररसोचित है, जिसकी कल्पना कृष्ण जैसे उत्तम प्रकृति के नायक के लिए अभारतीय है।[1]

१. व्यमुमपि गुरुवैराद् हन्त मृद्नाति पद्भ्याम्। ६.४४

अध्याय ६

राजचूडामणि के रूपक

सोलहवी शती मे विख्यात श्रीनिवास दीक्षित रत्नखेट की द्वितीय पत्नी कामाक्षी से यज्ञनारायण दीक्षित का जन्म हुआ। यज्ञनारायण के अग्रगण्य प्रतिभाविलास से प्रभावित होकर इनको राजचूडामणि की उपाधि दी गई। कमलिनी-कलहंस के प्रणेता राजचूडामणि ने समकालीन आचार्य वेंकटेश मखी और अपने बड़े भाई अर्धनारीश्वर की गुरुगरिमा से मण्डित होकर सोलहवी शती के अन्तिम चरण मे काव्य रचना आरम्भ की थी।

राजचूडामणि ने कम से कम २७ ग्रन्थ लिखे, जिनकी नामावली उन्होने काव्य-दर्पण मे दी है। इनमे से कमलिनी-कलहसनाटिका, आनन्दराघवनाटक, युद्धकाण्डचम्पू, रुक्मिणीकल्याण महाकाव्य, शकराभ्युदय, राघवकृष्णपाण्डवीय, रत्नखेट-विजय, भारत-चम्पू, कंसध्वंसन शकराचार्यतारावली, कान्तिमती-परिणय, रघुनाथ-भूप-विजय, राम-कथा आदि काव्य-रस निर्भर हैं। उनकी उपनिषदों की टीका मौलिक दार्शनिक व्याख्या है। कवि की अन्य रचनायें शास्त्रीय हैं। राजचूडामणि का शृङ्गारसर्वस्व भाण नही मिला है।

इन रचनाओं से राजचूडामणि का असाधारण कृतित्व तथा बहुक्षेत्रीयशक्ति प्रमाणित होती है। कमलिनी-कलहस की प्रस्तावना के अनुसार वे षड्-भाषा विदग्ध थे।

कमलिनी-कलहंस

कमलिनी-कलहस नाटिका[1] के सभी नेता प्रकृतिपरक है, किन्तु उनकी वृत्तियाँ और प्रवृत्तियाँ मानवोचित हैं। इसका प्रथम अभिनय चोल के शासक महाराज रघुनाथ के शासन-काल में हुआ था। नाटिका की भूमिका मे सूत्रधार ने लिखा है कि पुराने नाटक तो देखे ही जा चुके हैं। अब तो कोई नया रूपक ही अभिनेय है। इससे प्रतीत होता है कि नये रूपको के प्रति लोगो की अभिरुचि थी।

राजचूडामणि ने इस नाटिका की रचना सूत्रधार के अधोलेखानुसार छः वर्ष की अवस्था मे की—

'ते हि गर्भसप्तम एव हायने विरचय्य सबहुमानमस्माकं हस्ते दत्ता।

क्या छः या सात वर्ष का बालक इतनी काम-शास्त्रोचित शृंगार की बात कहेगा? उपर्युक्त प्रस्तावनाश से सूत्रधार का प्रस्तावना लिखना और साथ ही कवि के द्वारा अपनी कृति को अभिनय के लिए नाट्यमंडली को अर्पित करना स्पष्ट है। ऐसे बहुत से रूपको का सम्भार सूत्रधार के पास सगृहीत रहता था, जिनमे से वह समय-समय पर चुनकर अभिनय के लिए रखता था। सूत्रधार ने लेखक की वाणी की प्रशसा करते हुए कहा है—

---

१. इसका प्रकाशन श्रीवाणीविलास प्रेस श्रीरंग से १६१७ मे हुआ है।

वाणी तस्य दरीदरीति च मुधा-लज्जाकरीं माधुरीम् ॥

नाटिका का प्रणयन यद्यपि १६ वीं शती में हुआ, पर इसका उपर्युक्त प्रयोग रघुनाथ नायक की अध्यक्षता में १६१४ ई० के पश्चात् हुआ। राजचूडामणि १६वीं के अन्तिम भाग से १७वी शती के पूर्वार्ध तक लिखते रहे।

कथावस्तु

नायक कलहंस के मामा कमलाकर को परास्त करके उसकी कन्या कमलिनी और धात्रेयी को वकोट उठा ले गया। नायक ने वकोट को दण्ड देने के लिए अपने अन्तपाल को नियुक्त किया।

कलहंस का कमलजा से नया प्रेम खिलने लगा। कमलजा देशान्तर से कारण्डव द्वारा लाये हुए पुण्डरीक-मुकुल से निकली थी। एक दूसरे मुकुल से उसकी सखी मृणालिका निकली थी। पुण्डरीक-युगल को कारण्डविका ने देवी सारसिका को दिया था। सारसिका ने कमलजा को भरतनाट्य सीखने के लिए लगा दिया।

कारण्डव विदेश से किसी मनोरमा कुमारी का चित्र लाया था। विदूषक चित्र को नायक को दिखाने के लिए ले गया

कलहंस ने एक रात सपना देखा—एक अतीव सुन्दरी है, जिसे मैं अपनी शय्या पर ले गया। वह तब—

आश्रितापि शयनं कथंचन व्रीडया विवलिताननाजनि
सम्मुख-स्थितिमपीक्षिता मया साहसं परममन्यताबला ॥

उसने उसी स्वप्नभोगानुरंजिता को दूसरे दिन संगीतशाला में देखा—

अभूत निभृतोल्लासो हासोऽधरे परभागता—
मपि च कुचयोः श्वासो वासो व्यवत्त परिश्लथम्।
अजनि च दृशोस्तुङ्गा शृंगारभंगिरभंगुरा
किमपरमभूच्चिल्लीवल्ली तरंगितविभ्रमा ॥

अर्थात् वह नायिका मेरे प्रति आसक्त थी। उसने नायक को प्रणाम किया। तब तो नायक को सारा जगत् नायिकामय प्रतीत होने लगा। विदूषक ने कारण्डव के दिये चित्र को नायक को दिया। राजा ने पहचान लिया कि यह वही है। वह चित्रगत नायिका को सशरीर मान कर कहने लगा—

अयि सुन्दरि मामनंगबाणप्रसभापातचिरप्रवृद्धतापम्।
अवलोक-सुधारसाभिषेकैः सकृदानन्दय सन्दितोऽञ्जलिस्ते ॥

यह कह कर उसके पैर पर गिरने लगा। तब तो विदूषक को बताना पड़ा कि यह तो चित्रमात्र है। नायक को विदूषक से ज्ञात हुआ कि अच्छोद सर में किसी पुण्डरीक में अपनी सखी के साथ यह रहती है। सन्ध्या के समय पुण्डरीक में बन्द

उनको कारण्डव ने आपकी महारानी को दिया। राजा नायक ने अपने प्रणय को श्लोक में सम्पुटित करके विदूषक को दिया, साथ ही नायिका का चित्र दिया।

वकोट की दुष्प्रवृत्तियों का समाचार महारानी को मिला था कि वह हमारे मौसा और राजा के मामा कमलाकर को ध्वस्त कर रहा है। राजा ने इस सम्बन्ध में एक पत्र अपने साले सारस को भेजा था। सारस ने शीघ्र वकोट को मार कर कमलाकर को पुनः प्रतिष्ठापित किया। बकोट ने कमलाकर की कन्या कमलिनी को कहीं छिपा दिया है। उसको प्रणयियों से ढुढ़वाया जा रहा है। राजा को विश्वास हो गया कि कमलिनी ही मेरे घर आई हुई कमलजा है।

द्वितीय अङ्क में विदूषक ने कमलजा का मदनलेख राजा को दिया। राजा पत्र के स्पर्श से विवश हो गया। वह पत्र न पढ़ सका और विदूषक को पढना पड़ा—

सदृशी तवेति गर्वस्त्वयि मन इत्यसाक्षिक वचनम्।
किमिह बहुनेत्युपेक्षा त्वमेव जानासि करणीयम्॥ २.७

पत्र से राजा को उससे मिलने की उत्कण्ठा बढी। वह विदूषक के साथ नायिका से मिलने के लिए मन्मथोद्यान में जा पहुँचा, जहाँ प्रतिदिन नायिका नाट्यशिक्षाभ्यासजनित श्रम को दूर करने के लिए मृणालिका के साथ अकेले अपराह्ण बिताती थी। उसे सारी प्रकृति दाम्पत्य-प्रणय में लवलीन प्रतीत हुई। यथा,

उद्दामस्तबकस्तनामनिरवव्याजेन सलापिनी
निश्च्योतन्मकरन्दबिन्दुनिरवहस्वेदाम्बुसिक्ताङ्गकाम्।
रज्यत्कोमलपल्लवाधरदलामालिग्य वरलीवधू—
माधत्ते मुकुलच्छलेन पुलकं माकन्दशाखी युवा॥ २.१७

राजा विक्रमोर्वशीय के नायक की भाँति उन्मत्त होकर प्रलाप करने लगा। नायिका की कोरी कल्पना करते हुए वह कहता है—

आपादचूडमसितांशुकपल्लवेन
हन्तावकुण्ठ्य परिशोषयितुं मनो मे।
सौरभ्यसम्पदनुमेयतनु पुरस्तात्—
सखीकरोदधिरिद मम सन्निधत्ते॥ २.१९

विदूषक ने पूछा कि यहाँ कहाँ तुम्हारी प्रियतमा है?

उधर नायिका की भी कुछ ऐसी ही दशा थी। राजा ने उसे दूर से देखा। उसे देखते ही लगा—

सांनिध्य समुपैति सम्प्रति दृशोरस्माकमाद्योरसः।

नायिका मृणालिका के साथ लतागृह में आ बैठी। मृणालिका ने उसके मदनताप को न्यून करने के लिए राजा का चित्र दिखाया। नायिका ने देखा कि चित्र में

राजा मेरे चरण में प्रणिपात कर रहा है। फिर तो नायिका का और लतान्तरित राजा का भावविनिमय हुआ—

कमलजा—(चित्रफल के निजचरणपनितं राजानमालोक्य) महाभाग्र, उच्चिट्ट, उच्चिट्ट। अगुइदं एदं।

राजा—अयि मुग्धे, किमत्रानौचित्यम्। इदमेव हि जन्मसाफल्यम्।

विदूषकः—वग्रस्स, एसा चित्तगग्रं भवन्तं सच्चं मण्णइ।

कमलजा—हला, ण सुणोदि एसो मह वग्रणम्। ता तुमं एव्व णं उट्ठावेहि।

मृणालिका—सहि चित्तफलग्रं खु एदं।

कमलजा—(स्वगतम्) हन्त मुद्धम्हि (पुनर्निरूप्य प्रकाशम्) ग्रह अ एत्थ ग्रक्खराइ।

इति चित्राक्षराणि वाचयति

अयि सदिशानि न किमपि सोऽहं त्वयि वर्तते हि मे चेतः।
पृच्छतु तदेव भवती वाचां मे त्वत्कृते स्मरेण कृताम्॥ २.२६

नायिका ने मृणालिका से कह दिया कि यह सब कपट-नाटक तुम कर रही हो और मुझे लज्जित कर रही हो। यह सुनकर नायक प्रत्यक्ष हुआ और बोला कि यह कपट-नाटक नहीं, सत्य है।

पश्चात् क्षणिक योग के पश्चात् वियोग का समय आया। रानी ने नायिका को सीता और राम के विवाह का नाटकाभिनय करने के लिए बुला लिया। चित्र को लेकर मृणालिका चलती बनी।

राजा के वियोग सन्ताप को दूर करने के लिए विदूषक ने कारण्डव से एक मायामय कमलजा बनवाई, जिसे देखकर विदूषक ने कहा—

यतत्त्ववेदिनोऽपि मम साक्षात् कमलजाबुद्धिर्न चलति।

इसे देखकर मृणालिका ने वास्तविक कमलजा समझ कर पूछा कि क्या तुम आचार्य के पास गई थी? विदूषक ने उसे बताया कि यह मायामय है और इसके सहारे तुम्हारी सहायता से हम लोगों को तबतक राजा का विनोद करना है। राजा को भरमाकर भ्रान्तिवशात् उसका आलिंगन करने तक के लिए उद्युक्त किया। फिर वह मूर्ति राजा के विलास-भवन में पहुँचा दी गई।

सीतारामपरिणयात्मक नाटक में मृणालिका को राम और कमलजा को सीता बनाना था। इसकी सज्जा हो ही रही थी कि मधुकरिका नामक रानी की सखी को वह चित्रफलक मिला, जिसमें राजा कमलजा का पादप्रणयी हो रहा था। राजा को कहना पड़ा कि कुमारी का चित्र कारण्डव ने बनाया है और विदूषक जी ने परिहास के लिए मेरी ऐसी स्थिति चित्र में कर दी है। रानी मानी नहीं तो राजा उसके पैर भी पड़ने लगा। रानी के जाने के पश्चात् मृणालिका ने राजा को वह

योजना कान में बताई कि किस प्रकार नाट्याभिनय करती हुई कमलजा से उसी रंगपीठ पर आपका साहचर्य हो। तदनुसार मृणालिका के स्थान पर राजा राम की भूमिका मे रंगपीठ पर उतरने के लिए भूमिकापरिग्रह-प्रदेश-मार्ग पर चल पड़े।

सीताकल्याणनाटक में रानी की इच्छानुसार मृणालिका को राम बनना था। उसने धूर्तता से कलहंस को राम की भूमिका मे रंगपीठ पर प्रस्तुत करा दिया। कलहंस को जानकी बनी हुई कमलजा का पाणिस्पर्श करते समय ज्ञात विकारों से रानी ने पहचान लिया। फिर तो कमलजा बन्दी बनाई गई।

रानी ने राजा को छकाने के लिए एक और योजना बनाई, जिसके अनुसार राजा का कमलजा से कापटिक विवाह होने वाला था, पर वस्तुत भ्रमरक को कमलजा बनाकर उससे राजा का विवाह कर देना था। विदूषक ने इस छल का प्रतिविधान कर दिया। उसने भ्रमरक को देवी का पत्र लेकर कमलालया के पास भेज दिया और उसके स्थान पर कमलजा को रंगपीठ पर ला दिया। इसके लिए वन्दिनी कमलजा के स्थान पर राजा के विलास-भवन से माया-कमलजा को लाकर प्रतिष्ठापित कर दिया गया। अब रंगपीठ पर विवाहोत्सुक कलहंस और भ्रमरकवेषधारिणी कमलजा है। रानी इनका विवाह करा रही है। रानी समझती थी कि भ्रमरक वधू बना हुआ ठीक कमलजा जैसा लग रहा है। रानी ने कहा—

आर्यपुत्र, इमामपि कमलजामित परं मन्निर्विशेषां पश्यतु।

(इति कमलजाहस्त राज्ञो हस्ते समर्पयति)

विदूषक ने कहा—मित्र डरें नहीं, चिरकाङ्क्षित प्रियतमा से पाणिग्रहण के महोत्सव का आनन्द भोगें।

राजा ने मन मे सोचा—

अद्य प्रसन्नो भगवान् मनोभू—
रद्यैव मे जन्म न निष्फल च।
अद्य स्वयं मे फलित तपोभि—
र्गृह्णामि पाणौ यदिमा मृगाक्षीम्॥ ४.८

(इति कमलजां पाणौ गृह्णाति।)

कमलजा ने कहा—अद्य चरितार्थास्मि।

विदूषक ने कहा—वयस्य, अद्य फलितं मम नीतिकरपलतया।

रानी ने कहा—आर्यपुत्र, वर्धसेऽभिमतवधूलाभेन।

विदूषक नाचने लगा।

कुछ क्षणों मे ही रानी को रहस्य उद्घाटित हुआ कि जिसे वह भ्रमरक समझती थी, वह कमलजा है। तभी कमलजा की माता का पत्र रानी को मिला कि मेरी कन्या को किसी चक्रवर्ती की पत्नी बना दो। रानी को सन्तोष करना पड़ा कि यह कमलजा मेरी भगिनी ही लगेगी।

नाट्यशिल्प

कमलिनीकलहंस नाटिका अपने अद्‌भुत संविधानों के कारण असाधारण रचना है। इसमें छायातत्त्व अपने नाना रूपों में प्रकट हुआ है। द्वितीय अंक में नायिका के पैर पर प्रणिपात करते हुए राजा का चित्र देखकर नायिका उसे वास्तविक मानकर अपने उद्‌गार प्रकट करती है।[1] यथा,

महाभाग, उत्तिष्ठ, उत्तिष्ठ। अनुचितमेतद्।

उस चित्र के नीचे नायक का नायिका के लिए सन्देश भी लिखा था। प्रथम अंक में इसी नायिका के चित्र को वास्तविक मानकर राजा उस चित्र के पाद भाग पर शिरसा प्रणत हुआ था।

तीसरे अंक में छायातत्त्व का अनूठा प्रयोग हुआ है। इसमे कारण्डव मायामय कमलजा का निर्माण करता है और वह सखी मृणालिका के इङ्गितानुसार नायक से प्रणयाभिमुख व्यापार करती है। यथा,

विदूषक ने प्रणयाभिभूत राजा से कहा कि तुम्हारी प्रेयसी ही लाया हूँ।

(ततः प्रविशति मायाकमलजां संचारयन्ती मृणालिका)

मृणालिका—इदो इदो पिअ सही।

राजा—(सानन्दम्)

अवलम्ब्य सम्प्रति सखीकराम्बुजं
शनकैः पदानि सरसानि तन्वती।
कुचकुम्भभारपरिखिन्नमध्यमा
कुतुकेन मामभिसरत्यनिन्दिता॥ ३-६

(इति स्वयमुपसर्पति)

मृणालिका—जेदु महाराओ।

राजा—अपि कुशलं तव सख्याः।

(कमलजा सख्याः कर्णे कथयतीव।)

राजा—किं वचः मुरभयति मधुरवाणी।

मृणालिका—महाराअ, विण्णवेदि मह पिअसही अज्ज कुसलं सारसिआ देवीदइददंसणेणेत्ति।

राजा—कमलजादयितेति वक्तव्यम्।

(कमलजा लज्जानाटितकेनावनतमुखी तिष्ठति।)

राजा—(निर्वर्ण्य स्वगतम्)

---

१. इस चित्र में कारण्डव ने कमलजा की प्रतिकृति अंकित की थी और विदूषक ने राजा को उसके पैर पर प्रणाम करते हुए दिखा दिया।

आलोललोचनमरीचिपरम्पराभि—
नीलोत्पलस्रजमिवादधती स्वहारम् ।
अद्या अपाभरदरानतकन्धरेयं
मुग्धेन्दुसुन्दरमुखी मुहुरुत्सवं नः ॥ ३.८

राजा उस मायामयी नायिका से कहता है-

उत्तुङ्गस्तन-जनितश्रमा ममास्मि—
न्नुत्सगे त्वमुपविश क्षणं मृगाक्षि ।
उत्ताम्यद्विपुलनितम्बबिम्बभारा-
दुल्लाघं भवतु तदेतदूरुयुग्मम् ॥ ३.९

चरणपरिचरणलीलादासः प्रभवामि तव कथं सुमुखि ।
कुचमणिमंगलकलशद्वयघटनादपि तु कलय घटदासम् ॥

राजा यह कहकर उसका आलिंगन करना चाहता है। तभी विदूषक और मृणालिका हँस पड़ते हैं, जिससे राजा वस्तुस्थिति समझकर कहने लगता है—

हन्त, प्रियतमा-प्रतिमादर्शनेन वंचितोऽस्मि। सखे किमियं कारण्डव-मायाचातुरी ।

अन्त मे राजा ने आदेश दिया कि यह प्रियतमा की प्रतिमा मेरे विनोद के लिए विलास-भवन मे पहुँचा दी जाय ।

चतुर्थ अंक में विदूषक का ताल देकर नाचना मनोरञ्जक है ।

एकोक्ति

कमलिनी-कलहंस के प्रथम अंक का आरम्भ कलहंस की प्रेमिका-विषयक वियोग की गाथा से होता है। वह कामासक्त है। इसके द्वारा कलहंस अपने हृदय की बात बताता है कि कैसे नायिका मेरे हृदय को नही छोड रही है। वह कामदेव को खोटी-खरी सुनाता है। द्वितीय अंक के आरम्भ मे रंगमञ्च पर अकेले विदूषक की एकोक्ति है। इसमे कुछ दुर्घट घटनाओ की सूचना दी गई है कि कैसे उसके सो जाने पर उसके सिरहाने रखा नायिका का चित्र कोई उठा ले गया। उसके सिरहाने कमलजा का प्रणय-पत्र था। वहाँ पत्र रखने वाली मृणालिका ही वह चित्र ले गई हो—ऐसी सम्भावना उसे हुई। यह एकोक्ति प्रवेशक का काम करती है।

शैली

राजचूडामणि की सरल सुबोध शैली की सानुप्रासिक संगीतमयी स्वर-लहरी मनोमोहिनी है। यथा,

हारा वज्रप्रहारा भवनशुकवधू चाटुपाठा विपाठा
धारागाराणि कारागृहगहनगुहाः शीतभानुः कृशानुः ।

सख्यालिंगः स्फुलिंगः सरसिजकलिका धूलिरंगारपालि-
र्नर्मालापाः प्रलापाः शिव शिव सुतनोर्माल्यमत्युग्रशल्यम् ॥

इस प्रकार की योजना से भावततिमा की वास्तविकता प्रतीत होती है।

आनन्दराघव

राम की कथा आरम्भ से ही कवियों को रुचिकर रही है। कथा को अधिकाधिक नाटकीयता प्रदान करने के लिए भास से लेकर अद्यावधि कवियों ने इसमें जोड़-तोड़ करने में हिचक नहीं की है, यद्यपि नाट्यशास्त्र के अनुसार ऐसे नायकों की कथा से खिलवाड़ नहीं करना चाहिए था। आनन्दराघव की एक विशेषता है—संस्कृत नाटक की पद्यात्मकता की ओर चरम वृद्धि।[1]

कथावस्तु

कथा का आरम्भ जनकपुरी से होता है। मुनि विश्वामित्र ने अपने शिष्य देवरात को भेजा कि राम और लक्ष्मण को लाओ, जिनके साथ हम लोग जनक की यज्ञशाला में चलेंगे। वे दोनों देवरात को मिथिला के बाहर उपवन में मिलते हैं। राम ने सीता को विश्वामित्र का दर्शन करती हुई देखा था और वे उसके प्रेम में निमग्न थे। वे सीता के लिए उद्विग्न होकर विनोद चाहते थे, जब सीता उस उपवन में दुपहरी बिताने आ गयी। सीता योगविद्या के साथ वहाँ आयी। वे भी राम के लिए सन्तप्त थीं। उन्होंने योगविद्या के आदेशानुसार राम का चित्र बनाया। राम ने यह सब देखा-सुना। योगविद्या की योजना से राम और सीता मिले। सन्ध्या के समय दोनों अपने-अपने आवास पर गये।

राम के द्वारा प्रत्यञ्चित करने के लिए जनक ने धनुष मँगवाया। उसी समय लंकाधिप रावण के दूत सारण ने आकर कहा कि सीता रावण को दें। जनक ने रावण-प्रशंसा सुनकर भी पुनः उसकी प्रार्थना ठुकराई। अन्त में सारण ने रावण की प्रतिज्ञा बताई कि मैं सीता को लेकर रहूँगा।[2] राम ने धनुष तोड़ा और जनक उनके विवाह की सज्जा करने लगे।

रामादि चार भाइयों का विवाह सीतादि चार बहनों से हो गया। सारण ने गूढवेदी के द्वारा शिव के भक्त विनायक, कुमार, बाणासुर और लवणासुर को उकसाया कि शिव के धनुष को तोड़कर राम ने आपके उपास्य देव का अनादर किया है। नारद ने इस विद्वेषाग्नि में स्वभावतः आहुति डाली। युद्ध में राम ने कुमार को, भरत ने विनायक को, लक्ष्मण ने बाणासुर को और शत्रुघ्न ने लवणासुर को मार भगाया। लवणासुर तो मार ही डाला गया। नारद ने सारण को उत्साहित किया कि आगे शिवभक्त परशुराम को राम से लड़वा दो और राम बचें तो उनको सीता

---

१. इसका प्रकाशन १९७१ में सरस्वती महल लाइब्रेरी, तञ्जौर से हुआ है।

२. सम्प्रत्यज्ञ, बलादवधारय सुतां सीतां च नीता बलात्। २.१२२

सहित दक्षिण में अगस्त्य के द्वादश वर्षीय यज्ञ की राक्षसों से रक्षा करने के लिए वनवास करवा दो।

सिन्धुतीर पर भरत को गन्धर्वों का उत्पीडन समाप्त करने के लिए दशरथ ने भेज दिया। शत्रुघ्न लवणासुर से मुक्त कालिन्दी-तटीय प्रदेश का शासन करने चलते बने। कुछ दिन दशरथ-सहित रामादि के मिथिला में सानन्द रह लेने पर जब वे अयोध्या लौटने को हुए तो एक दिन परशुराम राम से युद्ध करने आ धमके। उनपर अनुनय-विनय का जब कोई प्रभाव नही पड़ा तो उनका लक्ष्मण से वाग्युद्ध हुआ। अन्त मे परशुराम इस बात पर माने कि राम विष्णु का धनुष प्रत्यञ्चित कर दें। राम ने ऐसा किया। परशुराम हारकर चलते बने। दशरथ वहीं मिथिला में राम का अभिषेक तभी करना चाहते थे, पर जनक ने कहा कि यथास्थान और यथासमय अभिषेक हो। तभी अगस्त्य के शिष्य पिप्पलाद के द्वारा ऋषि का सवाद पाकर यज्ञ की रक्षा करने के लिए १२ वर्ष के लिए और कैकेयी को दिये वर की पूर्ति के लिए और दो वर्ष के लिए सीता और लक्ष्मण-सहित वन की ओर राम चलते बने। विश्वामित्र भी साथ ही अगस्त्य का यज्ञ देखने के लिए चले गये।

पञ्चम अङ्क में भरत गन्धर्वो को जीतकर अयोध्या आये तो सुमन्त्र ने उनसे बताया कि राम का वनवास, उनका गंगापार करना, काकासुर को दण्ड देना, शर-भङ्ग और सुतीक्ष्ण से राम का मिलना, अगस्त्य के यज्ञ की रक्षा आदि कैसे हुए और कहा कि अब वे वनवास के दो वर्ष कैकेयी की इच्छापूर्ति के लिए वन मे बिता रहे हैं। राम ने दशरथ की मृत्यु होने पर अयोध्या का शासन करने के लिए भरत को नियुक्त किया था और एतदर्थ अपनी पादुकायें दी थीं। भरत ने उनका अभिषेक कर दिया। इस बीच सीता का हरण होने पर राम ने हनुमान के माध्यम से सुग्रीव से सख्य करके रावण पर चढाई कर दी। उसी समय हनुमान् संजीवनी लेकर उत्तर की ओर से उडते हुए अयोध्या के ऊपर आये तो उन्हे भ्रान्तिवश भरत ही राम प्रतीत हुए। वे उतर पडे। हनुमान् ने भ्रम दूर होने पर रावण के सीताहरण-वृत्तान्त को बताया। उस समय हनुमान् को ढूँढते हुए वहाँ सम्पाति आया। उसने बताया कि कैसे नील के द्वारा प्रदत्त संजीवनी से लक्ष्मण जी उठे और रावण मारा गया। हनुमान् सीता को यह समाचार देने के लिए उड पडे। सम्पाति ने भरत को बताया कि कैसे राम ने सेतु बनाया, विभीषण को शरण दी और युद्ध मे रावण को मारा।

राम अयोध्यापुरी विमान द्वारा आ पहुँचे। भरत ने उनका अभिषेक सम्पन्न किया। भरत युवराज पद पर अभिषिक्त हुए। यही आनन्द का क्षण आनन्दराघव का प्रमुख सविधान है।

राजचूडामणि ने रामकथा को एक नया रूप दिया है। कथा का अधिकांश दृश्य न रहकर श्रव्य मात्र रह गया है। प्रतिनायक रावण रगमंच पर आता ही नहीं है। यही सब देखकर आलोचकों का मत है कि आनन्दराघव ज्ञान के लिए भले ही हो, रंगमंचीय अभिनय की योग्यता इसमें न्यून है।

योगविद्या तो आधुनिका से भी बढकर कुमारी-स्वातन्त्र्य का समर्थन कर रही है। यथा,

पतिव्रताना प्रथमाप्यहल्या जाता यदाज्ञा वशगा वताहो।
तदीयदोरूष्मतरंगितत्व कन्या-जनानां कथमस्तु दोषः ॥ १४६

राजचूडामणि ने राम और सीता को साधारण गान्धर्व-विवाह के प्रणयिजनो के स्तर पर ला दिया है। विवाह के पहले ही राम सीता का आलिंगन करने को उद्यत हैं। उनका प्रेममय वनविहार देखते ही बनता है। विवाह के पश्चात् चतुर्थ अंक में उनका दाम्पत्यानुशीलन कुछ-कुछ वैष्णवी कृष्ण-परम्परा पर विकसित किया गया है। ऐसा लगता है कि रामचरित के इस प्रकरण से कवि कामशास्त्र की शिक्षा देना चाहता है।

संवाद

कवि सवादो मे गद्याश परिस्पर्श मात्र के लिए देता हे और तत्वांश के लिए पद्यो की भरमार करता है। अनेक स्थलो पर सवाद पद्यों मे ही चलते हैं। गद्य नाम के लिए भी नही हैं।

वर्णना

राजचूडामणि वर्णना के विशेष प्रेमी हैं। तीसरे अक के आरम्भ मे सारण की एकोक्ति के प्रथम चार पद्यो मे अन्धकार का वर्णन है। ऐसे वर्णनो के द्वारा काव्य की विशेष प्रतिष्ठा होती है, नाटकीयता की कम। कही-कही वर्णनो के द्वारा कवि ने कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्यो का उद्घाटन किया है। यथा सारण का कथन है—

कार्याकार्यविचारदूरमतय. प्रायेण राजाधमाः
प्राज्ञमन्यतया स्वय प्रथमत. कुर्वन्ति यत्किञ्चन।
तच्चेन्मन्त्रिजनैर्भवेन् सुघटितं स्वायत्तमाचक्षते
दिष्ट्या चेद्वितथीकृतं प्रकृतयस्तत्रापराधास्पदम् ॥ ३.१५४

प्रणय-व्यापार दर्णन की सीमा का उल्लंघन राजचूडामणि ने शास्त्रीय मर्यादा को तोड़ते हुए किया है। यथा,

राम —(कुचपरिसरे कर व्याजेन निपातयन्)

कुचाभोगे पत्रावलिभृति कुलक्ष्माधरधिया
निजं शस्त्रं वज्री नियतममुचन्नीरजमुखि।
तदेतत्काठिन्यादहह शकलीभूय शतधा
स्फुरत्याकल्पान्तं स्फुटममलवज्रोपलनिभात् ॥ ४.२१६

शैली

अनुप्रास तो मानो कवि ने माँ के दूध के साथ ही पिया था। छेक, वृत्ति, श्रुति

और अन्त्य—चारों प्रकार के अनुप्रासों से इनके पद्य सुमण्डित हैं। गद्यांश भी पदों के सांगीतिक चरण से मनोहारी हैं। यथा,

सारणः—यतो लोकातिशायितमहिमातिशयशालितैव काष्ठा प्रतिष्ठायाः।

द्वितीय अंक में—

जनकः—सारण, साधु भवता साधितं दौत्यसमुचितं कृत्यम्। अतिपतति कालः। साध्यतामन्यत्र साधनीयान्तरम्।

द्वितीय अंक में गद्यांशों में प्रायः भारी भरकम समासों से सांवादिक नाटकीयता क्षुण्ण है। यथा,

सारण-अद्य किल निखिलभुवनविजयघाटिका परिवाटिका समाटीकन—साटोपपाठीनकेतुपद्रुतरघोटिकाटोपोट्टंककोटीपाटवपरिपाटित—हरितटविसृमररजच्छटापाटिमपाटच्चरं रोदोरन्ध्रं नीरन्ध्रयति जनहृगन्धङ्करणमन्धतमसम्।

रंगपीठ पर पात्रों के मुख से भारती नाचती है, जब पर्णाद की भूमिका में पढ़ा जाता है—

वेलोल्लंघनकेलिजांघिकमहाकल्लोलहल्लो हलं
कल्लोलीनिविवल्लमं चुलकितं कुर्वन् करे दक्षिणे।
चंचद्वामकरांगुलीनखमुखेनादाय मोदादहो
दिव्यौ कूर्मझषौ कमण्डलुजलक्रीडापरौ निर्ममे ॥ ४.१६६

कवि श्रवणानुमारी शब्दों का प्रयोग यथायोग्य करता है। यथा,

घटघटायते मे हृदयम्, ठारकृतम् (२.१३०), चटचटध्वान (२.१३३), हल्लोहृतम् ४.१६६, दन्दुरीकृत आदि।

नाट्यशिल्प

रंगपीठ पर एक ही अङ्क में अनेक स्थानों के कार्यक्रम दिखाये जाने का विधान इस नाटक मे मिलता है। तृतीयाङ्क में पहले तो रंगपीठ पर गूढवेदी और सिंहमुख की विष्कम्भक में बातचीत होती है। उनके चले जाने पर सारण और फिर गूढवेदी की बातचीत होती है। बातचीत के बीच सारण कहता है—

तदावामपि मिथिलापुरमेव गच्छावः। ('इतिपरिक्रामित-नाटितकेन) हन्त, मिथिलोपवनसमीपमनुप्राप्तौ स्वः। इसी बीच पूरी रात भी बीत जाती है। सारण के अनुसार इसी क्रम मे (दिशोऽवलोक्य) हन्त प्रभातप्राया रजनी।

कवि ने कुछ रमणीय योजनायें प्रस्तुत की हैं। यथा,

परशुराम राम से लड़ने के लिए उद्यत हैं। सीता वहीं राम को रोकने के लिए दौड़ पड़ती हैं। राम को कहना पड़ता है—

क्रूरां वाचं कथयति मुनावेकतः कोपनेऽस्मिन्
प्रेम्णान्यत्र त्वयि च सरसं पाणिमापीडयन्त्याम्।
माध्यस्थ्यं मां चिरमुपनयन् वीरशृंगारभूम्नोः
गात्रे गात्रे ग्रथितपुलको जायते कोऽपि भावः ॥ ४.२५६

इस नाटक मे 'पत्र' अर्थोपक्षेपक के रूप मे चतुर्थ अंक में आता है। वैसे ही अर्थोपक्षेपक पिप्पलाद के दौत्य-द्वार से भी इसी अंक मे साथ ही प्रस्तुत है। विश्वामित्र का भूतपूर्व कैकेयी के लिए इसी अंक में वरदान का उद्धरण भी अर्थोपक्षेपक है। पारम्परिक अर्थोपक्षेपक कोटि मे ये भले नहीं आते, किन्तु अर्थोपक्षेपण इनमें सुतरां होता ही है।

छन्द

आनन्दराघव मे कवि ने १८७ पद्यों में शार्दूलविक्रीडित छन्द का प्रयोग करके तत्सम्बन्धी अपना नैपुण्य प्रकट किया है। उसका दूसरा प्रिय छन्द वसन्ततिलका ५२ पद्यो मे प्रयुक्त है, स्रग्धरा और शिखरिणी में क्रमशः २८ और २१ पद्य हैं। राजचूडामणि की छन्दोविचिति वैचित्र्यपूर्ण है। किसी अन्य कवि ने शार्दूल और वसन्ततिलका का इतना बहुल प्रयोग इस युग में नहीं किया।

०

अध्याय १०

सुभद्राहरण

सुभद्राहरण के लेखक माधव भट्ट ने अपना परिचय नाटक की पुष्पिका में इस प्रकार दिया है[1]—

> जननीन्दुमती यस्य जनको मण्डलेश्वरः।
> भ्राता हरिहरो यस्य स ख्यातो माधवः कविः॥

इसका प्रथम अभिनय श्रीपर्वत पर श्रीकण्ठ के प्रीत्यर्थ हुआ था। माधव ने इसकी रचना करके सूत्रधार को समर्पित किया था। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि श्रीपर्वत के समीप रहता था। माधव की उक्तियों की चारुता उनके जीवनकाल मे ही प्रसिद्ध थी, जैसा सूत्रधार ने कहा है—

> जनताघनतापौघ-लोपकार्योपकारिकाः।
> महिता न हिताः कस्य साधवो माधवोक्तयः॥२

कवि की अपने विषय में विनयोक्ति है—

> ततिरिव फणिवल्ल्याः केवलानां दलानां
> यदपि रुचिनिदानं गुम्फना मे न वाचाम्।
> तदपि रसगुणानामार्द्रपूगीफलाना—
> मिव मुहुरनुषंगाद्रञ्जनाय क्षमेव॥

माधव भट्ट कब हुए—यह प्रश्न सर्वथा समाधेय नहीं है, किन्तु उनकी इस कृति की एक प्रतिलिपि १६६७ वि० सं० तदनुसार १६१० ई० शती में हुई। इसकी रचना सोलहवी ईसवी शती में हुई होगी।

सुभद्राहरण का महत्त्व आधुनिक आलोचकों की दृष्टि में कुछ कम नही है। कीथ और कोनो ने अपने नाटकेतिहास में इसकी अनेक प्रसंगों में चर्चा की है। सर्व-सम्मति से यही श्रीगदित कोटि का अकेला उपरूपक है, जो प्राप्त है।[2] कीथ ने इसका विवरण देते हुए लिखा है—

The presence of a narrative verse has suggested comparison with a shadow drama but for this there is inadequate evidence.[3]

---

१. इसका प्रकाशन का काव्यमाला में १८८८ ई० में तथा चौखम्भा-विद्याभवन से १६६२ ई० में हुआ है।

२. मध्यकालीन संस्कृत-नाटक' में धर्माभ्युदय का विश्लेषण करते हुए लेखक ने बताया है कि यह श्रीगदित कोटि का उपरूपक है। पृष्ठ २२६

३. *Sanskrit Drama* पृष्ठ २६८।

जैसे आख्यानात्मक पद्य की चर्चा कीथ ने की है, वैसा अनेक रूपको मे मिलता है। गगाप्रताप--विलास मे गंगाधर ने इसका प्रयोग किया है। इस प्रसग मे यह भी ध्यान रखने योग्य है कि छायानाटक का परछाई वाले रूपको से मध्ययुग मे कम से कम भारत में कोई सम्बन्ध नही है।[1]

कथावस्तु

अर्जुन सन्यासी का वेश बनाकर मधुकरी वृत्ति करते हुए बलराम के घर पहुँचा, जहाँ कादम्बरी के गन्ध से घबडा कर वह भागना ही चाहता था कि किसी ने कहा कि रुकें, बलभद्र की बहन सुभद्रा भिक्षा लाती होगी। सुभद्रा और अर्जुन एक दूसरे को देखते ही परमाकृष्ट हुए। भिक्षा देकर सुभद्रा ने तो थोड़े असमंजस के बाद कह दिया 'मया एतस्मै आत्मापि समर्पितः, यद्येष परिग्रहेण प्रसादं करोति'। अर्थात् मैने तो इसे अपने आप को दे दिया। पूछने पर अर्जुन ने अपना नाम बताया, कि मैं ककुभ का पर्याय हूँ। सुभद्रा ने उन्हे अपने मनोनीत प्रियतम के रूप मे पहचाना, जिसे चित्राङ्कित रूप में वह पहले देख चुकी थी। अर्जुन ने बताया कि इसी सुभद्रा के लिए मैंने यह कूटवेष धारण किया है। प्रेम की पराकाष्ठा का अनुभव करके वे दोनो चलते बने।

वसन्तोत्सव मनाने के लिए कन्याओ के झुण्ड मे सुभद्रा उपवन मे गई। वहाँ अर्जुन उसे अपहरण करने के लिए व्यग्र सा था। उसके इच्छा करते ही दारुक कृष्ण का रथ लिए आ पहुचा। अर्जुन ने सन्यासी का वेष छोड़ा और वास्तविक रूप मे रथ पर जा बैठा। धनुष की टंकार कर के वह क्रीडा करने वाले झुण्ड मे सुभद्रा को हाथ से पकड़ कर रथ पर बैठाया और ले उडा। साथ की कन्याओ ने हल्ला किया। सारा समाचार राजा उग्रसेन को मिला। उन्होने आदेश दिया कि सभी यदुवीर अर्जुन पर आक्रमण करें। बलदेव ने कहा कि रुकें, जरा कृष्ण से पूछ लें। नही तो अकेले ही मै इन सबको पीस देता—

इन्द्रप्रस्थं कौरवैः सार्धमूर्ध्वं
कालिन्दीये प्रक्षिपामि प्रवाहे।
क्षेत्रोत्खात-स्थूललोष्टायितं वा
सीताशीर्णं लांगलाग्रेण कुर्वे ॥३६

अर्थात् हल के फाल से जोत कर मिट्टी मे मिला दूँ।

कृष्ण ने पूछने पर कहा कि यह तो यथायोग्य ही हुआ है। अकेले अर्जुन हमे हरा दे तो नाक कटी और हम सभी उसे मार डाले तो कितनी हानि होगी। तब तो—

तेनात्र सप्रणयमेव विसर्जनीय. ॥ ३८

---

१. मध्यकालीन संस्कृत-नाटक मे लेखक के द्वारा पृष्ठ ३०२–३०८ पर दूतांगद का विवरण देते हुए छायानाटक का मर्म विस्तार से बताया गया है।

बलराम ने कहा—जो आप को ठीक लगे। आकाश से पुष्प वर्षा हुई। इन्द्र के दिव्य पुरुष द्वारा भेजे मोती के हारद्वय उन दोनों को मिले। इन्द्र को सन्तोष हुआ कि यह उचित हुआ।

छायातत्त्व

सुभद्राहरण का छायातत्त्व विकसित है। इसमें अर्जुन संन्यासी बनकर सुभद्रा का हरण करता है। वह कहता है—

> धन्यश्चतुर्थाश्रमवेष एष छलाद्यदंगीकरणेन वाढम्।
> पूज्यत्वमीदृग्विधराजपुत्र्या गतोऽस्म्यहं दीर्घविलोचनायाः ॥

वह कपट-कोप प्रकट करता है। यह भावात्मक छाया है।

निवेदक

सुभद्राहरण में निवेदक के द्वारा अर्थोपक्षेपक का काम लिया गया है।[1] निवेदक का वक्तव्य है—

> स्तम्भारम्भणनिश्चलौ तदनु च प्रोद्भिन्नरोमोद्गमौ
> वाष्पाम्बुस्थगितेक्षणौ करपुटखिन्नौ सकम्पौ ततः।
> कण्ठे गर्भितगद्गदावनुपदं वर्णान्तरेणाश्रितौ
> लीनावेकरसे परस्परभयौ स्वस्थानगौ तौ ततः ॥१५

नाट्यशिल्प

इस श्रीगदित में अङ्क तो एक ही है, किन्तु १५ वें पद्य के पश्चात् रंगमंच से सभी पात्र चलते बनते हैं। फिर नेपथ्य से वानर का उत्पात सुनाई पड़ता है। इसके पश्चात् बलदेव रंगमंच पर आते हैं। इस प्रकार रंगमंच कुछ देर तक रिक्त रहता है।

वानर के उत्पात की कथा सर्वथा अनावश्यक है। पूर्वापर कथा से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। इसके द्वारा बलराम का शराब पीकर तुतलाना हास्य रस की सृष्टि भले करता है।

कथा के उत्तरार्ध मे वसन्तागम में क्रीडा के लिए वन में सुभद्रा के जाने का वर्णन है। इसके पहले रंगमंच रिक्त होता है, नया दृश्य है वन भूमि का। उपवन में वहीं निकट ही कहीं अर्जुन है।

रस

श्रीगदित में शृङ्गार तो प्रधान रस है। उसके साथ हास्य और वीर अङ्गरस हैं। पीये हुए बलराम का अधोलिखित पद्य सुनाना हास्य के लिये है—

> किं कृष्ट्वा हहलेन हन्मि भुभुजेनाक्षिप्य मृद्नामि वा
> किं वा तं चचुचूर्णयामि मुसलाघातेन चूर्णघनम्।
> किं वोच्चैर्ववरातले ससकलं संपातये दुद्रुतम्
> किं वा तेन सिसीधु पूरय पपापात्रे पिबामि क्षणम् ॥१७

---

१. अङ्किया रूपक में इस प्रकार के पात्र-विषयक परिचयात्यक गीत मैथिली में देने की रीति इस युग में प्रायशः मिलती है।

अध्याय ११

रत्नेश्वर-प्रसादन

रत्नेश्वर-प्रसादन के रचयिता गुरुराम उत्तर अर्काट जिले मे मूलन्द्र ग्राम के निवासी थे।[1] उनके पिता का नाम स्वयम्भू दीक्षित था। उनकी माता राजनाथ की कन्या थी। गुरुराम अप्पय दीक्षित और उनके भाई अच्चा दीक्षित के समकालीन थे। गुरुराम का कुल पाण्डित्य-मण्डित था। उन्होंने अपने पिता के विषय मे लिखा है– 'प्राचामाचार्यपादानामनूचान–वंशावतंसस्य त्यागराजाचार्यसुकृतपरिणामस्य पवित्रकीर्तेस्तत्रभवतः स्वयम्भूनाथदेशिकस्य' और अपने नाना के विषय में कहा है–

साहित्यविषयसाम्राज्यपट्टाभिषिक्तस्य राजनाथकवेः

गुरुराम ने अपने हरिश्चन्द्रचरित-चम्पू की रचना का समय १६०७ ई० दिया है। रत्नेश्वर प्रसादन १६०० ई० मे लिखा गया प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त उनके अन्य ग्रन्थ—सुभद्राधनञ्जय नाटक, मदनगोपालविलास भाण, विभागरत्नमालिका आदि हैं।[2]

रत्नेश्वरप्रसादन नाटक के पाचवें अङ्क मे शिव के वर्णन-बाहुल्य से प्रतीत होता है कि कवि शैव था।

प्रस्तावना–लेखक

रत्नेश्वर-प्रसादन की प्रस्तावना मे सूत्रधार के वक्तव्य से नि-सन्देह प्रमाणित होता है कि प्रस्तावना लेखक स्वय सूत्रधार है, कवि नही। यथा,

सूत्रधारः—तदेव किलैनमुपश्लोकयन्त्यार्यमिश्राः

संसद्विद्यां कनकनिकषः सद्विनीतः प्रबन्धा।
वाराणस्याः पशुपतियशोवासितं चेतिवृत्तम्॥
न स्यात् कस्या सदसि यशसे नाट्यविद्या मदीया।
प्रायः सेयं गुणगणनिका भाग्यनिश्रेणिका नः॥

प्रस्तावना पद्य १०

तत्प्रस्तावोचितं पात्रवर्गमादिशामि।

---

१. रत्नेश्वर-प्रसादन का प्रकाशन १९३९ ई० मे मद्रास गवर्नमेण्ट ओरियण्टल मैनुस्क्रिप्ट सीरीज सख्या ५ मे हो चुका है।

२. इन ग्रन्थो की हस्तलिखित प्रतियाँ तजौर की पैलेस लाइब्रेरी तथा अडयार लाइब्रेरी मे हैं। सुभद्राधनजय मे पाँच अङ्को मे सुभद्रा के विवाह की कथा है। मदनगोपाल-विलास भाण में कृष्ण और राधा के प्रेम की कथा है।

नटी के वक्तव्य से भी यही सिद्ध होता है कि नाटक का कवि प्रस्तावना-लेखक नहीं है। यथा—

नटी—तदेवं मन्ये। त्रिभुवनगुरोर्देवदेवस्य सन्निधाने जीवनोपायेन वा दिवानिशं प्रवृत्तासंगीतानामस्माकं जन्मलाभोऽमोघो भविष्यति।

कथावस्तु

रत्नेश्वर-प्रसादन नाटक की कथा संक्षेप में सूत्रधार के शब्दों में है—

योजनं रत्नचूडेन गीतविद्याप्रसादितः।
देवो रत्नेश्वरश्चक्रे भक्तिवित्तस्य निष्क्रयम्॥

सुवर्णपुर के वसुभूति नामक गन्धर्वराज की कन्या रत्नावली ने सरस्वती को गुरु बनाकर उच्च शिक्षा ली। समावर्तन के अवसर पर सरस्वती ने कलावती (शारिका) को आदेश दिया कि तुम रत्नावली का चित्त-विनोद किया करो। सरस्वती ने एक बार अपनी सखी सावित्री को रत्नावली का समाचार जानने को भेजा। मार्ग में उसे पार्वती की सखी विजया से भेंट हो गई, जिसने रत्नावली का समाचार बताते हुए कहा कि शिव और पार्वती की बातचीत से मुझे विदित हुआ है कि शिव के सर्वाधिक प्रिय स्थान वाराणसी में रत्नेश्वर नामक दिव्यलिङ्ग की स्थापना हिमालय ने की थी। उस लिङ्ग की निरन्तर आराधना रत्नावली कर रही है। उसका व्रत है—

प्राग्देवदर्शनान्नान्यं पश्यामि न वदामि च।
इति लब्धप्रतिज्ञाया यस्याः सुप्रातमन्वहम्॥

इस उपासना के कारण शिव रत्नावली से अतिशय प्रसन्न हैं। शिव ने अपने भक्त रत्नचूड को रत्नावली का वर चुन दिया है। रत्नचूड भोगवती का राजकुमार है।

रत्नचूड परिक्रमा करते हुए एक दिन वाराणसी पहुँचा। रत्नेश्वर-मन्दिर में पूजा करने के अनन्तर वह शिवार्चन-संगीत गायन करने वाली रमणीय बाला की पदपंक्ति का अनुसरण करते हुए बालोद्यान में पहुँचा। रत्नचूड ने रत्नावली को वहाँ देखा—

अस्या रूपमनञ्जनं किमु दृगोराह्लादसिद्धौषधं,
तारुण्यस्य तपःफलं किमथवा कामस्य संजीवनम्।
शृंगारस्य विभूषणं किमुत वा सौभाग्यसङ्केतभू-
राहोस्विद्वरवर्णिनी-विरचनापर्याप्तिमुद्राविधेः॥ १.२६

रत्नावली के विषय में अन्य सूचनायें प्राप्त करने के लिए नायक और विदूषक ने उसकी सखियों की बातें छिप कर सुनने की योजना कार्यान्वित की। रत्नावली ने सखियों से बताया कि आज मैं रत्नेश्वर की आराधना का गीत वीणा पर गा रही थी। उस समय ज्योतिर्मयलिंग से देववाणी सुनाई पड़ी, जिसे लज्जावश कहने में असमर्थ रत्नावली ने भूर्जपत्र पर लिख दिया—[1]

---

१. कवि के अनुसार यही रत्नेश्वर-प्रसादन है।

यस्त्वया रमते रात्रावद्य गन्धर्वकन्यके
तव नाम समानाख्य. स ते भर्ता भविष्यति ।। १.३०

सखियो ने कहा कि वह कौन बडभागी देव है, जिसके लिए शिव ने आपको निर्णीत कर दिया ? विदूषक और रत्नचूड ने उनकी बाते सुनकर जान लिया कि वह सुन्दरी अपनी ही होने वाली है।

दोपहर होने पर रत्नावली सखियो के साथ आकाश-मार्ग से सुवर्णपुर चली गई रत्नचूड उसके वियोग मे पर्युत्सुक था। वह भी अपने विदूषक के साथ अपनी नगरी भोगवती मे चलता बना। वहाँ उसकी दशा है—

किमपि वदन्निव किमपि ध्यायन्निव किमपि सन्दिहान इव।
किमपि हसन्निव किमपि स्पृहयन्निव सोऽयमुद्भ्रमति ।। २.२

उसने अपने मनोविनोद के लिए ऐन्द्रजालिक नटो को आदेश दिया कि सुवर्णपुर मे अनुभूत किसी अद्भुत वृत्त का प्रदर्शन करें। इसके द्वारा नायक रत्नावली की प्रवृत्ति का परिचय प्राप्त करना चाहता था। उसका कहना है—

अस्या दर्शनमास्ता सकल्पसमागमः प्रसंगो वा।
सुमुखी निवसति यस्मिन् सुखयति देशस्य तस्य वार्तापि ।।२.१०

ऐन्द्रजालिक नटो ने गर्भाङ्क नाटक प्रस्तुत किया, जिसमे रगमञ्च पर एक ओर रत्नचूड और विदूषक प्रेक्षक हैं और दूसरी ओर रत्नावली और उसकी सखियो के द्वारा अभिनय प्रस्तुत किया जाता है। रत्नेश्वर-प्रसादन नाटक के प्रेक्षक रत्नचूड और विदूषक का प्रतिक्रियात्मक अभिनय देखते हैं और रत्नावली और सखियो का अभिनय गर्भाङ्क-द्वार से देखते है।

रत्नावली गर्भाङ्क मे स्वप्नवृत्त को स्मरण कर कहना आरम्भ करती है—सोई हुई मुझको छोडकर हृदय चुराने वाले कहाँ छिपे हो ? रत्नचूड देखता है कि रत्नावली के शरीर पर उपभोग चिह्न अङ्कित हैं। यथा,

अंगेषु लुलितललितेष्वस्या विश्रान्तिमयति नाद्यापि।
अविरलता पुलकानामनुगतकम्प श्रमाम्बुपूरोऽपि ।। २.१२

रत्नावली की उत्कण्ठा दूर करने के लिए कलावती ने एक उपाय किया। उसने त्रिलोक के सभी युवको के चित्र बनाकर दिखाना आरम्भ किया, जिनमे से वह स्वप्न-दृष्ट युवक पहचाना जाय। रत्नचूड का चित्र देखते ही नायिका ने स्वप्न के समागमविशिष्ट व्यक्ति को पहचाना। उसे अब आज चिन्ता हुई कि नायक की मेरी ओर कैसी प्रवृत्ति है ? उसे मेरा सन्देश कैसे पहुँचाया जाय। कलावती ने कहा कि यह सब दूती के द्वारा होगा। गर्भाङ्क समाप्त हुआ।

नागलोक मे रत्नचूड से सम्पर्क करने के लिए रत्नावली की ओर से कलावती गई। उसने रत्नचूड को सुवर्णपुरी आकर रत्नावली से तुरन्त मिलने की योजना

कार्यान्वित कराई। वह सिद्धवापी में प्रवेश करके विदूषक के साथ नायिका के नगर में आ पहुँचा। वहाँ नायिका को खोजते हुए हिमगृह में उसे नायिका के द्वारा अंकित नायक का भित्तिचित्र मिला। नायक ने उसके पास नीचे लिखा पद्य अङ्कित किया—

तपतु मनसिजस्तनुं मदीयां
तव पुनराद्रियतां शरीररत्नम्।
त्वदुपगमफलाः कलाविनोदा
मम हृदयं मदिराक्षि जीवितं च ॥ ३.७

नायिका चन्द्रमा की पूजा करने के लिए वहाँ आई। उसकी सखी कलावती ने बताया कि नायक आपको रत्नेश्वर के उद्यान में देख चुका है और आपने भी उसे स्वप्न में देखा है। नायिका और उसकी सखी की बातचीत नायक और विदूषक छिपकर सुनने लगे। नायिका नायक का भित्तिचित्र देखने आ गई। वहाँ उसने नायक का लिखा पद्य पढ़ा। इससे ज्ञात हुआ कि रत्नचूड आ पहुँचा है। नायिका ने चन्द्रमा के सामने हाथ जोड़कर उसे सम्बोधित किया—

भुवनालोकविभावन तपन, तपनविभक्ताधिकारव्यापार।
रत्नदिशावलयानां भगवन् सारंगलाञ्छन नमस्ते ॥ ३.१५

नायिका के अतिशय उत्कंठित होने पर नायक वहीं उसके पास आ गया। थोड़ी देर तक उनका प्रेमालाप गूढ़ानुराग-सूचक हुआ। तभी रत्नावली की माता उसे ढूँढ़ने निकट आ गई और वे दोनों अलग हुए। नायक को छोड़कर सभी किसी न किसी काम से चलते बने। थोड़ी देर पश्चात् रत्नावली और चेटी चित्रलेखा आरक्षिका का वेष धारण करके रत्नचूड के समीप आ पहुँची। वह चन्द्रिकाचत्वर पर बैठा एकोक्ति परायण था। रत्नावली और चेटी उसकी बातें छिपकर सुनने लगीं। अन्त में जब नायक अपने हृदय में स्थित नायिका की अभ्यर्थना इन शब्दों में करता है—

गूढासि किं नयनगोचरतां भजेथा
गौरांगि मां परिरभस्व कुचोपपीडम्।
स्वप्नापराद्ध इति कुप्यसि किं नु मह्यं
त्वत्पादयोरुपहरामि नतिं प्रसीद ॥ ३.२७

नायक की यह बात सुनकर नायिका उसके पास प्रकट हो गई। रत्नचूड ने अभ्यर्थना की—

प्राणाः प्रयाणाभिमुखाः पञ्चबाणाकुलीकृताः।
स्तनभारार्पणादेते धार्यन्तां प्राणवल्लभे ॥ ३.२६

तभी उधर से आरक्षक आ निकले और उनके वहाँ पहुँचने से पहले ही नायक और नायिका पुनः एक दूसरे से अलग हो गये। नायक उसके लिए विचारा बना रहा। विदूषक और नायक भोगवती लौट गये।

देवर्षि नारद ने पद्मावती के दानव सुबाहु को बताया कि रत्नावली तुम्हारे योग्य है। नारद के शिष्य ने जब यह सुना तो पूछा कि रत्नचूड का क्या होगा ? क्या रत्नावती को सुबाहु पा सकेगा ? नारद ने बताया कि मायावी दानवों के लिए क्या असम्भव है ? मुझे तो कपिल के शिष्य रत्नचूड और वाण के शिष्य सुबाहु का युद्ध देखना है।

चित्राङ्गद नामक एक दानव ने रत्नावली के पिता वसुभूति के सारसक नामक कचुकी का वेष धारण किया और रत्नावली को सुबाहु के कुचक्र में फँसाने के लिए उड़ कर काशी आया—

काशी नृणां कच्चरदेहकार्चं कैवल्यरत्नक्रयभूमिरेषा।
अन्यत् किमस्यामवगाहमात्रादुरसार्यमात्सर्यमुपैमि शान्तिम् ॥ ४.७
केषामुपरि न काशी क्षेत्राणां नित्यपरिवहद्गगा
ज्योत्स्नास्नपितशिरांसि ज्योतींषि यतो मुहु प्ररोहन्ति ॥ ४ ८

काशी में वह वहाँ पहुचा, जहाँ रत्नावली रत्नेश्वर की पूजा करके आ रही थी। उसके पिता कुबेर के घर गये थे। माया कचुकी ने रत्नावली से कहा कि आपके पिता आपसे तत्काल मिलना चाहते हैं। रत्नावली ने उस दानव को अपने पिता का कंचुकी सारसक समझा और उससे पूछने पर उसे विदित हुआ कि वसुभूति नारायण-यात्रा के लिए बदरीतपोवन में पड़े हुए है। माया-कचुकी के साथ रत्नावली के पिता से मिलने के लिए उड़ पडी। वहाँ उसे अपने पिता वसुभूति का रूप धारण किये हुए एक दानव मिला। उसने रत्नावली से वात्सल्योचित बातें करके चित्रागद से कहा—

आरूढयौवनदशामवलोक्य वत्सां
श्रेयान् स्वयंवरमहोत्सव इत्यवैमि।
दैवादयोग्यघटना यदि कन्यकानां
कौलीनभाजनतया गुरवो भवन्ति ॥ ४.१०

माया-वसुभूति ने अपने माया-कचुकी का समर्थन पाकर निर्णय लिया कि आज ही स्वयंवर हो। उसी समय बाणासुर का दूत वसुभूति के लिए यह सन्देश लेकर वहाँ आया—

स्वस्रीयाय सुबाहवे तव सुता बाणः स्वय याचते ॥ ४.१४

अर्थात् बहन के पुत्र सुबाहु से रत्नावली का विवाह कर दे। माया वसुभूति ने कहा—बहुत ठीक, परन्तु कन्या की आयु स्वयवरोचित है। इसमे तो कन्या को ही वर चुनने का अधिकार होना चाहिए। दूत ने कहा कि सुबाहु की बलशालिता, रूप और उदारता सर्वोपरि हैं। स्वयवर से क्या लाभ ? मायावसुभूति उसकी बात मान गया, पर कुछ चिन्तित सा लगा। रत्नावली ने कहा कि देव और दानवों का यह अपूर्व सम्बन्ध कैसे होगा ? उसकी कुछ भी चिन्ता न करके मायावसुभूति ने आदेश दिया—

तत्सम्पाद्यन्तां कौतुकमंगलानि। आनीयतां तत्रभवान् सुबाहुः।

रत्नावली अपनी दुर्भाग्यपूर्ण विपत्ति से आशङ्कित होकर निर्विण्ण हो उठी। उसी समय नेपथ्य में किसी ने दूर से सुबाहु को ललकारा—

नरहरिनखरकराला यमदंष्ट्रा निष्ठुरा ममाद्य शराः।
न पतंति यावदेते तावत्तव भीरुवञ्चनोपायः॥ ४.१८

अज्ञात रत्नचूड की यह ललकार सुनकर रत्नावली ने विचार किया—

किं नु खल्वेतत्। सजलजलधरस्तनितगम्भीर आर्यपुत्रस्येव स्वरसंयोगः श्रूयते। एष खलु घर्मोपतापितां कलापिनीमिव मां सुखयति।[1]

ऐसी परिस्थिति में भयभीत होकर माया-वसुभूति भाग चला।

उस स्थान पर नारद और उनके शिष्य आ गये। शिष्य ने उनसे कहा कि गुरु, आग आपने लगाई थी, आप ही बुझाइये। नारद ने रत्नावली से बताया कि तुम दानवों की माया में फँसी हो। मैंने अभी-अभी रत्नाचूड को सूचित कर दिया है। यह सब तुम्हारे पिता की अनुपस्थिति में सुबाहु के परिजनों ने किया है। अब रत्नचूड सुबाहु से लड़ेगा। घनघोर युद्ध हुआ, जिसमें नायक ने प्रतिनायक को मार गिराया। ऋषियों ने नेपथ्य से हर्षध्वनि की—

प्रवर्त्यन्तां प्रत्युटजमाभ्युदयिकानि मंगलानि, यदिदानीमस्माकं निर्विघ्नानि नित्यनैमित्तिकानि नियमतन्त्राणि।

नारद ने रत्नावली को सूचना दी कि सुबाहु मारा गया और रत्नचूड विजयी हुआ। बदरिकाश्रम के सभी तपस्वी आनन्द-पूर्वक अपने धार्मिक कार्य सम्पन्न करेंगे। नारद वहाँ से नायिका को लेकर रत्नचूड के पास पहुँचे। बदरिकाश्रम में सुबाहु के मरने के अनन्तर तपस्वियों ने महोत्सव किया। यह समाचार वसुभूति को चारणों के द्वारा सुनने को मिला। उसने बदरिकाश्रम से उन्हें लाने के लिए पुष्पक-विमान चित्राङ्गद के साथ भेजा। वसुभूति ने रत्नचूड को सन्देश भेजा कि आपका रत्नावली के साथ विवाह हम रत्नेश्वर के समक्ष देखना चाहते हैं। वह विमान से काशी की ओर उड़ पड़ा। विमान के उड़ने की कल्पना है—

चित्रेव सिद्धविद्या परिवृत्तिकलेव कालचक्रस्य।
दवयति यन्नेदीयो यदपि दवीयस्तदेव नेदयति॥ ५.१४

विमान चन्द्रलोक जा पहुँचा। चन्द्र का वर्णन है—

अयमविरत—क्लिश्यत्तृष्यद्रथांगचकोरकः
सततविकसन्मीलन्नीलोत्पलाम्बुरुहाकरः।

---

१. नायिका का इस प्रकार का उद्घोष कुन्दमाला और उत्तररामचरित में प्रायः इन्हीं शब्दों में है।

तुहिनमहसो लोकस्तारावरोधशिरोगृह--
प्रणिहितसुधाकुम्भः प्रस्तौति नेत्ररसायनम् ॥ ५.१५

वहाँ से हिमगिरि में शिवाधिष्ठान देखते हुए वे विमान द्वारा प्रयाग पहुँचे। रत्नचूड ने प्रयाग की प्रशंसा की है—

अत्राप्लुता सुकृतिनो दिवमुत्पतन्तो
वैमानिकाः सपदि दिव्यविलोकनेषु।
स्वप्नः किमेष इति यामनिमेषमुद्रां
कौतूहलाद्दधति तान्न पुनस्त्यजन्ति ॥ ५.३३

वहाँ से निकट ही वाराणसी की ओर विमान उड़ा। काशी की शोभा, पावनता और मोक्षप्रवणता से सभी प्रभावित हैं। यथा, कथं कथ्यते क्रोडीकृतपञ्चक्रोश प्रमाणेन सगृहीतसर्वतीर्थसारपरमाणुना आपन्नजनानुकम्पिना भगवता विश्वेश्वरेण सम्पादिता खल्वेषा। इसमें कन्दुकेश्वर, मणिकर्णिका, अविमुक्त-महेश्वर, रत्नेश्वरायन आदि हैं। विमान उतरा। परिवार के सभी लोग मिले। विदूषक ने भोजनप्राप्ति के लिए प्रशस्ति की—

अद्य प्रसादसुमुखो विधिरस्य सार्थाः
सर्वाशिषः सफलमीप्सितमद्य जातम्।
रत्नावली—हृदयसस्य हरिष्यतेऽसौ
संचारिणीव गृहमंगलदीपरेखा ॥[1] ५.४८

वसुभूति ने गोद में बिठा कर कन्या का दान रत्नचूड के लिए किया और कहा—

चतुर्वर्गोपयोगाय छायेव सहचारिणी।
आनन्दयतु वत्सेयमनुकूला तवाशयम् ॥ ५.५२

नाट्यशिल्प

रत्नेश्वर-प्रसादन में पाँच अंक हैं। इसमें कार्यावस्थाओं और सन्धियों का विन्यास सुव्यवस्थित है। रंगमंच पर एक अभ्यन्तर मण्डप है, जिसमें प्रवेश करके काशी में रत्नचूड आराधना करता है। बाहर निकलने पर उसकी दाहिनी भुजा फड़कती है। उसने एक सुन्दरी को वहाँ शिवार्चन गीत गाते सुना था। उनकी पदपंक्ति के संकेत से चलकर वह बालोद्यान में पहुँचा, जहाँ वासन्ती-बकुलाभिसार-भवन केलीवन के रूप में था—

क्रीडत्कोकिलदष्टचूतलतिका-बालप्रवालाधरं
पालीभोग-सुगन्धि-मन्दपवन-स्पर्शोल्लसन्मल्लिकम्

१. इस सन्दर्भ में कालिदास का प्रभाव है।

एतन्नूतनयूथिकानुसरणप्रेयान्य-पुष्पंधयं
वासंतीव कुलाभिसारभवनं केलीवनं वर्तते ॥ १.२४

नाटक के अभिनय में रंगमंच पर वीणा संगीत-गायन का आयोजन रमणीक संविधान है। रत्नावली वीणा लेकर गाती है—

समिद्धीओ घडिदा देवाणं जेण तेण भुवणगुरो
पूरेहि वंछिदं मह करुणा परिवाहिणा कडक्खेण ॥१.३३

इस गायन की समीक्षा विशेषज्ञ नायक के मुख से है—

सुव्यक्तश्रुतिभिः स्वरैरविकलं व्यक्तीकृता मूर्च्छना
हृद्योमध्यविलम्बितद्रुतमयस्त्रेधा लयोदर्शितः ।
रागाश्चाव्यतिकीर्णवर्णगमका रम्योऽपि तानक्रमः
सन्दर्भोऽपि गिरां प्रगल्भमधुरः शब्दार्थसौभाग्यभूः ॥ १.३४

इन्द्राजाल-विज्ञान पर आधारित गर्भाङ्क नाटक का समावेश इस रूपक में विशेष सफल है।[1] इसमे आङ्गिक अभिनय का सङ्केत अभिनेताओं के लिए और प्रेक्षकों को प्रबोधित करने के लिए विरल संविधान है। नायक के मुँह से शयनोत्थित नायिका का आखों देखा वर्णन है—

वारंवारमपोढनीविशिथिलं वासोऽनुसन्धीयते
स्वेदार्द्रात् प्रतिधार्यते निटिलतः श्लिष्टालकानां ततिः ।
धार्यन्ते च कथंचिदंसविगलद्धम्मिलभारालसा—
न्यन्यानीव रतावमर्दसुरभीण्यङ्गानि तन्व्यानया ॥ २.१३

शृङ्गार रस के विरल अनुभव और संचारी भाव इस पद्य में प्ररोचित है।

इसी प्रकार के पाँच पद्य एक से एक-एक बढ़कर आगे नायक के मुख से सुनाये गये हैं। इस प्रकार के गर्भाङ्कायोजन द्वारा ही नायक और नायिका के एकपदे ऐसे मनोभाव सुनने को मिलते हैं—

नायिका—अविज्ञातभावं जनमुद्दिश्य विधिना विप्रलब्धाया मे एतावन्मात्रेण किं पर्याप्तम्।

नायकः—

उत्कण्ठितासि यस्मिन् सोऽपि तथात्वत्कृते कृतो विधिना ।
सदृशप्रणयविनिमयात् सम्प्रति नौ सोऽयमवचनीयपदम् ॥ २.२६

द्वितीत अङ्क में चित्रपट पर त्रिलोक के युवकों के चित्र प्रस्तुत किये जाते हैं, जिन्हें एकैकश- देखकर रत्नावली अपने मनोभाव व्यक्त करती है। वह अन्त में रत्नचूड का चित्र देखकर कहती है—

१. गुरुराम ने इसका नाम तीसरे अङ्क में स्वप्नविप्रलम्भ-नाटक दिया है।

किमेतदेनान्यक्षराणि श्रुतमात्रेणैव सुखयन्ति ।·········अनेन रत्नेश्वर-प्रसादितेन स्वप्नवल्लभेन भवितव्यम्। यतोऽस्य दर्शनमात्रेण परवशास्मि सवृता

रत्नचूड के चित्र को देखकर रत्नावली की जो दशा हुई, उसका वर्णन अनङ्गलेखा नामक उसकी सखी ने चित्रलेखा से इस प्रकार किया—

अलसमलिनतारकास्या दृष्टिरनुरागस्य सुप्रभातं निवेदयति। कंटकितं पुनः कपोलतलम्।

चित्रो के इस प्रकार पुरुषस्थानीय होने से यहा छायानाट्य-प्रवन्ध है। तीसरे अङ्क में नायिका के द्वारा अङ्कित अपने चित्र को देखकर नायक कहता है—

अद्य प्रसन्नो भगवान् मनोभूरद्योपपन्नं फलमीप्सितानाम्।
पश्यामि तस्याः प्रणयाग्रचिह्नमालेख्य-सम्भावितमात्मरूपम् ॥३.४

नायक ने भी पार्श्व में नायिका का चित्र बनाना चाहा, पर समयाभाव और प्रणयातिरेक से विवश होकर ऐसा न कर सका। इन सब प्रसगों मे छायानाट्य प्रवन्ध है, जो गुरुराम का प्रिय सविधान प्रतीत होता है।

कवि कहीं-कहीं कथा की भावी प्रगति की सूचना देते चलता है। तीसरे अंक में माता के आ जाने पर नायिका के अलग हो जाने पर नायक कहता है—

प्रथमजलदवृष्टिं पातमाह्लादयित्रीं
प्रतिचलितमुखेन प्रस्तुतं चातकेन।
सरभसमपनीता सा च वातूलगत्या
फलति किमभिलाषः प्रातिकूल्ये विधातुः ॥ ३.२१

इससे चतुर्थ अंक की सुवाहु द्वारा प्रचारित नायिकापहरणादि की प्रवृत्ति का पूर्वज्ञान होता है।

नायिका पहचाने जाने के भय से अनेक रूपकों मे रूप-परिवर्तन करके नायक के समीप आती है। इस नाटक में कवि ने वस्तु-वक्रोक्ति के द्वारा नायिका को आरक्षिका रूप मे अभिसार करने की योजना कार्यान्वित कराई है। यह छाया-नाट्य प्रवन्ध है। आरक्षिका बन जाने से नायिका का रगमच पर एक विशेष ढंग से चलना प्रेक्षकों को मनोरञ्जक होगा—यह कवि का अभिप्रेत है। कही अभिनय के निर्देशक आरक्षिका नायिका को राजपुरुषोचित गति से चलाना भूल न जायें, वह अपनी ओर से सवाद में ही इसकी व्यवस्था इस प्रकार करा देता है—

चेटी—इदानी पुनर्वेषानुगुणं धीरं परिक्राम।

(इति नाट्येनावस्थासदृशं परिक्रामति)

चतुर्थ अंक में सुबाहु के द्वारा कूट घटना का प्रपंच किया गया है, जिसमें वसुभूति, उसके कञ्चुकी आदि मायात्मक हैं। नाट्यशिल्प की दृष्टि से यह घटना उस युग में विशेष रोचक थी।[1]

चतुर्थ और पञ्चम अंक के बीच में जो प्रवेशक है, वह चक्रवाक और चक्रवाकी पक्षी के संवाद के रूप में प्रस्तुत है। चक्रवाक संस्कृत बोलता है और चक्रवाकी प्राकृत। यह अलौकिक नाट्य-धर्मी व्यापार कहाँ तक नाट्योचित है—यह भारतीय रूढ़ियों के आधार पर परीक्षणीय है। रंगमंच पर चक्रवाक और चक्रवाकी का वेष बनाकर उपस्थित पुरुष-पात्रों की परस्पर परिचर्चा परम अरोचक होगी। सम्भवतः इसीलिए ऐसे पात्रों को समाविष्ट किया गया है।

विमान के द्वारा समग्र भारत की प्राकृतिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक महिमा को सभी प्रेक्षकों के समक्ष लाने का कवि का प्रयास भास, कालिदास, राजशेखर आदि की पुरानी प्रथा के अनुसार देश की राष्ट्रीय एकता विभावित करने के लिए नितान्त सफल है। इससे नाट्यशरीर में उदात्त चमत्कार निर्भर हो जाता है।

संवाद

संवाद में कहीं-कहीं अन्योक्ति का सौरभ है। यथा,

विदूषकः—एषा वकुलमालिका हृदयहारिणी नाम। किंतु न ज्ञायते परिगृहीतपूर्वा वा न वेति।

इस प्रसंग में वकुलमालिका रत्नावली नामक नायिका के लिए अन्योक्ति द्वार से प्रयुक्त है।

लोकोक्तियों के प्रचुर प्रयोग से सावादिक प्रभविष्णुता सविशेष है। यथा,

१. फलति किमभिलाषः प्रातिकूल्ये विधातुः
२. किमेतदहष्टचंद्रमण्डला चंद्रिका
३. चंद्रिकाभिमुखश्चकोरः
४. कथं सहकारमुज्झित्वा मधुरत्सवः प्रवर्तते।
५. पर्जन्यानां परस्परसंघर्षेण सर्वेषां परितोषो भवति। केवलं कमलिन्याः पुनरातंकः।

रत्नेश्वर-प्रसादन-नाटक में एकोक्ति की चारुता प्रकट होती है। तृतीय अंक में २१ वें पद्य के पश्चात् नायक अकेले ही रंगमंच पर है। वह अपनी मनोदशा का वर्णन करता है—

रत्नचूडः—(परितः पश्यन्) सद्वस्त्वधीनमेव सौभाग्यं भावानाम् यतः।

---

१. चतुर्थ अंकारम्भ से १६ वें पद्य के पहले तक कूट-घटना-प्रयोग है।

चद्राननविरहित चत्वर प्रतिभाति मे ।
अपि चंद्रातपाक्रांतमनालोकमिवापरम् ॥३-२२

(पुनः सवैक्लव्यम्)

प्रविकसदसितोत्पलेक्षणा परिणतचंद्रपरिस्फुरन्मुखीम् ।
अथमहमनुपास्य कामिनी कथमधुना गमयामि यामिनीम् ॥३-२३

अथवा प्रियाधिष्ठितपूर्वं प्रदेशं निगामयन्नेव निर्विशामि ।

इतना बोल चुकने के पश्चात् उसकी नायिका रंग-पीठ पर आ जाती है और वह और उसकी चेटी अन्तरित रहकर उसकी एकोक्ति सुनती रहती हैं, जिसमे वह नायिका का स्मरण करता है, चन्द्र को गाली देता है, और अन्त मे अपनी हृदयस्थ प्रेयसी की अभ्यर्थना करता है—

गूढासि किं नयनगोचरतां भजेथाः
गौरागि मा परिरभस्व कुचोपपीडम् ।
स्वप्नापराद्ध इति कुप्यसि किं नु मह्यं
त्वत्पादयोरुपहरामि नतिं प्रसीद ॥ ३-२७

किसी सम्बद्ध प्रमुख व्यक्ति को अन्तरित रखकर एकोक्ति की गूढ व्यथा को सुनाने का उपक्रम सफल है ।

संवाद के द्वारा इतिवृत्तात्मक विवरणो के अतिरिक्त इहलौकिक और पारलौकिक परमैश्वर्यशालिनी विभूतियों का परिचय कराना कहीं-कहीं परिहास के लिए भी है । यथा,

गोत्रे पृष्ठे कुलशिखरिणा दानकाले सुतायाः
देव. सोऽपि स्तिमितवचनो वन्दमानेऽथ तस्मिन् ।
आशास्योक्तिप्रथनविधुरः सोऽपि वेधाः पुरोधाः
सांतर्हासं सदसि विबुधैस्तावुभावत्र दृष्टौ ॥ ५.१८

कवि संवादों मे वक्रोक्ति द्वारा ऐसे वाक्यो के लिए अवसर निकालता है, जो अविस्मरणीय है । यथा,

चद्रशेखरोऽमृतशीकरानुषंगशीतले मन्दरेऽपि निवसन् वाराणसीविरहेण सन्तपति ।

शैली

गुरुराम की भाषाशैली नाट्योचित है । वे सरल भाषा का प्रयोग करते हैं। फिर भी रसोचित भाषा समीचीन अक्षर-संयोग द्वारा युद्ध-प्रकरणों में उत्साहात्मक वातावरण का सर्जन करने के लिए सुसदृब्ध है । यथा,

प्रत्युद्यातमिव प्रसादितमिवोपालब्धवद्दानव–
प्रत्यस्त्रैः पथि रत्नचूडविशिखप्रक्षिप्तमस्त्रं विधेः ।
निर्भिद्य प्रसभं सुबाहु-हृदयं निर्गत्य वेगात्ततः
पाताले वसतां प्रियंवदमिव क्षोण्या विशत्यन्तरम् ॥ ५.३०

रत्नेश्वर-प्रसादन के सम्पादक पी॰ पी॰ शास्त्री ने इस रचना की समीक्षा करते हुए कहा—

Of his works, the Ratnes'varaprasādana is easily the best from the point of view of literary merit. The easy flow of style, the graceful delineation of characters and the delightful imitation of the words, phrases and moods standard authors like Kalidasa and Bhavabhuti which sometimes make us wonder whether the imitator or the imitated is the greater poet—all these combine to make Gururama a poet and dramatist of the first magnitude.

अध्याय १२

सोलहवीं शती के अन्य नाटक

जाम्बती-कल्याण

जाम्बती-कल्याण के प्रणेता विजयनगर के राजा कृष्णदेव राय आन्ध्रभोज कहे जाते हैं। इनका प्रादुर्भाव विजयनगर के तुलवराजवंश मे हुआ था। इनके पिता नरस और भाई वीरनरसिंह प्रसिद्ध राजा और विजेता थे। कृष्णदेव ने १५०९ से १५३० ई० तक पूरे दक्षिण भारत को अपनी राज्य सीमा मे सुशासित किया। आदिलशाह को युद्ध में पराजित करने का श्रेय उन्हें प्राप्त है। कृष्णदेव की कलात्मक अभिव्यक्ति उच्च कोटि की थी। कृष्णदेव ने तेलगु और संस्कृत में अनेक रचनायें की।[1]

कृष्णदेव के दो रूपक मिलते है—उषापरिणय और जाम्बती-कल्याण।[2] इसका सर्वप्रथम अभिनय चैत्रमास मे विजयनगर के राजकुल के देवता विरूपाक्ष के महोत्सव के अवसर पर हुआ था। इसमे कृष्ण के द्वारा स्यमन्तक मणि की प्राप्ति और जाम्ववती से उनके विवाह की कथा पाँच अकों में निबद्ध है। इस नाटक पर अभिज्ञानशाकुन्तल का प्रभाव अनेक स्थलो पर दिखाई देता है। मृग और जाम्बती के वर्णन प्रमाण रूप मे प्रस्तुत हैं—

उल्लोलेक्षणमुन्नमय्य वदनं निष्पन्दकर्णाद्वयं
देहस्यार्धमुदस्य पूर्वमपरं चानम्य गाढान्तरम्।
वेगादेकवशादलक्ष्यचरणन्यासः क्षितौ भूयसा,
वल्गन् व्योमनि धावति प्रतिपदं व्यावृत्तकण्ठ मृगः।

आलक्ष्य चारुकुचकुड्मलसंनिवेशा—
मारोपितौ निटिलमजरितायताक्ष्याः
लावण्यशालिवदनद्युतिवारिपूर—
संजायमानसरसीरुहकोरकश्रीः॥

वीरभद्रविजय

अरुणगिरि नाथ द्वितीय ने वीरभद्रविजय की रचना की। इनके अनेक नाम कुमार-डिण्डिम और डिण्डिम चतुर्थ आदि भी मिलते हैं। इनके पिता का नाम

१. कृष्णदेव राय के तेलगु ग्रन्थ मदालसाचरित, सत्यावधूसान्त्वन, सकलकथा-सारसग्रह, ज्ञान-चिन्तामणि उल्लिखित हैं। उनकी रसमजरी की रचना सम्भवतः किसी अन्य राज्याश्रित कवि के द्वारा की गई।

२. उषापरिणय की हस्तलिखित प्रति हैदराबाद मे वनपर्ती के ग्रन्थागार मे बताई जाती है। जाम्वती-कल्याण तजौर के भाण्डागार मे ४३६६—'७ हस्तलिखित है। इसका प्रकाशन भी सम्भवतः हो चुका है।

राजनाथ द्वितीय था। अरुण के आश्रयदाता विद्यानगर के राजा वीरनरसिंह (१५०५-१५०६ ई०) तथा कृष्णदेव राय (१५०६-१५३० ई०) थे। अरुण पारेन्द्र अग्रहार मे रहते थे।

अरुण का अनेक भाषाओं पर समान अधिकार था। उन्हें डिण्डिमकविसार्वभौम और कविराज की उपाधियां समलङ्कृत करती थी। अरुण ने कृष्णदेव राय की विजयों का वर्णन अपनी तेलगु रचना कृष्णरायविजयम् में किया है।

वीरभद्र का पाठ राजा के समक्ष हुआ था। वीरभद्रविजय में पुराण की सुप्रसिद्ध कथा दक्षयज्ञ विषयक है। वीरभद्र की सृष्टि करके उससे दक्ष के यज्ञ का विनाश कराया गया था। यह डिम कोटि का रूपक है। इसमे चार अंक हैं। इसका प्रथम अभिनय भूपतिरायपुरम् में राजनाथ के महोत्सव में किया गया था।[1]

महिषमंगल भाण

महिष-मंगल-भाण के रचयिता नारायण का प्रादुर्भाव केरल में १६ वी शती के मध्यकाल मे हुआ। इनके पिता शंकर उच्च कोटि के गणितज्ञ और ज्योतिषी थे। शंकर का जन्म १४६४ ई० में हुआ था। इन्हें बृहस्पति का अवतार विद्वत्ता के कारण माना गया। शंकर के समान नारायण ने भी गणित का अभ्यास किया। नारायण को कोचीन के किसी राजा राजराज का समाश्रय प्राप्त था, जिसकी इच्छा'नुसार उन्होंने इस भाण का प्रणयन किया।

नारायण की अन्य कृति भाषानैषधचम्पू मलयालम् मे मिलती है। इसमें संस्कृत में निबद्ध पद्य उच्च कोटि के हैं, जिन्हें देखने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि इनकी रचना महिषमंगल के लेखक द्वारा ही हुई होगी। यह मलयालम् के सर्वोत्तम चम्पुओं में से है। नारायण की दूसरी रचना रासक्रीडा मानी जाती है। इसमे मन्दाक्रान्ता छन्द में ६१२ पद्य हैं। यथा नाम इसमे कृष्ण की गोपियों के संग रासलीला का वर्णन है। उत्तररामचरितचम्पू का श्रेय भी नारायण को दिया जाता है। दोनों की कुछ समानतायें संकेत करती हैं कि इनका रचयिता एक ही व्यक्ति है।

महिषमंगलभाण में अनंगकेतु और अनंगपताका का प्रणय वर्णित है। इसकी कथावस्तु तो साधारण भाणों के प्रायः समान ही है, किन्तु इसमें काव्योन्मेष और वर्णना की छटा उच्च कोटि की है। केरल में इसके पद्य अब भी लोकोक्ति रूप में लोगों की जिह्वा पर विराजमान हैं। यथा नायिका का वर्णन है।

---

१. यह नाटक Trennial Cat. of Skt. Mss. in Oriental Library मद्रास मे III. २८३२ पर हस्तलिखित मिलता है।

२. महिषमंगलभाण का प्रकाशन पालघाट से १८८० ई० में और त्रिचूर से भी हुआ है।

कुटिलमसितमेघच्छायमाभोगभारं
चिकुरमधिकदीर्घं लम्बमानं वहन्ती।
परिलघयति पश्चाद्भागकान्त्यापि धैर्यं
न हि गुलगुलिकायाः क्वापि माधुर्यभेदः ॥

सरसी की ओर स्नान के लिए जाती हुई लावण्यवती कन्या का वर्णन है--

अर्धालक्ष्यमनोहरोरुयुगलं नात्यायतं बिभ्रती
वासः प्रोषितभूषणैरवयवैः कान्ति किरन्ती पराम्
तैलाभ्यक्त-तनुर्निबद्धचिकुरा ताम्बूलगर्भानना
वापीं स्नातुमितो निजान्निलयनान्निर्याति शातोदरी ।

भाण के अन्त मे कवि ने अपने आश्रयदाता का परिचय देते हुए लिखा है--

राजत्कीर्तिविभूषितत्रिभुवनः श्रीराजराजाह्वयः
राजेन्दुः क्षितिमायुगान्तसमयं पायादपेतापदम् ।
वामार्धार्जितपुण्यपूरलहरी सोमार्धचूडामणेः
कामाक्षीकुलदेवता मम च सा कामप्रसूः कल्पताम् ।

कामाक्षी की पुनः स्तुति करते हुए नारायण कहते हैं---

अद्याहं''''''माटमहाराजस्य'''' 'राजराजस्य निदेशात् कल्पितवलयालय' विहारायाः'''' 'शिवकामसुन्दर्याः श्रीकामाक्ष्याः कटाक्षनालविगलदविरल-दयामृत सदासेक-प्रफुल्लकवित्वपादपेन केनापि निबद्ध कमपि भाणम् ।

सत्यभामापरिणय

सत्यभामापरिणय सोलहवीं शती के कवियों की अतिशय प्रिय कथा रही है। लक्ष्मण के पुत्र महाकवि स्फुलिंग ने पाँच अङ्कों का नाटक इस कथा का आश्रय लेकर प्रणीत किया।[1] इसका प्रथम अभिनय मुलन्द के उत्सव में हुआ था।

स्फुलिंग का दूसरा नाम मल्लिकार्जुन था। वे कुमारडिण्डिम के जामाता थे। कुमार डिण्डिम का रचना काल १५०० से लेकर १५३० ई० के लगभग है। ऐसी स्थिति मे सत्यभामा परिणय की रचना १५५० ई० के लगभग हुई होगी।

नन्दिघोष-विजय

नन्दिघोष-विजय के रचयिता शिवनारायण दास ने पाँच अङ्कों मे कमला और पुरुषोत्तम की पारस्परिक चर्या का वर्णन किया है। इसीलिए इस नाटक का अपर

१. सत्यभामापरिणय का उल्लेख Trennial Cat. of Sanskrit Mss. in Oriental lib, Madras III, 2953 मे मिलता है।

नाम कमलाविलास भी है।[1] इसमें पुरी की रथयात्रा महोत्सव के कतिपय दृश्य भी हैं। इसमें कवि के आश्रयदाता गजपति-नरसिंह-देव की भूमिका है। वे १६ वीं शती के मध्य भाग में हुए। नरसिंह-देव उड़ीसा के राजा थे।[2]

रुक्मिणीहरण

सोलहवीं शती में दक्षिण में गोदावरी के परिसर से शेषनरसिंह नामक विद्वान् आकर काशी में प्रतिष्ठित हुए। उन्हें वहां के राजा गोविन्दचन्द्र का आश्रय प्राप्त हुआ। उनकी धर्मशास्त्र और व्याकरण की प्रतिभा से तत्कालीन काशीमण्डल आलोकित हो उठा। उनकी शिष्य-मण्डली में भट्टोजी और नागोजी उदीयमान व्याकरणाचार्य हुए। इन्हीं नरसिंह के पुत्र चिन्तामणि ने रुक्मिणीहरण नामक नाटक लिखा।[3] इनकी दूसरी रचना रसमंजरी-परिमल है।[4] चिन्तामणि का रचनाकाल सोलहवीं शती का अन्तिम चरण है। इनके भाई शेषकृष्ण ने तीन नाटक लिखे *कंसवध, मुक्ताचरित, सत्यभामा-परिणय तथा मुरारि-विजय।*

ज्ञानचन्द्रोदय

ज्ञानचन्द्रोदय नामक नाटक के रचयिता पद्मसुन्दर हैं, जिन्हें मुगल सम्राट् अकबर का आश्रय प्राप्त था। पद्मसुन्दर नागौर के तपागच्छ के सर्वश्रेष्ठ विद्वान् थे। वे अकबर के सभासद् थे। जोधपुर के राजा मालदेव (१५३२-१५७३ ई०) ने भी पद्मसुन्दर को सम्मानित किया था।

इस नाटक के अतिरिक्त पद्मसुन्दर की अन्य रचनायें हैं—सुन्दरप्रकाश-शब्दार्णव (कोष), शृङ्गारदर्पण, हायनसुन्दर (ज्योतिष), भविष्यदत्तचरित, रायमल्लाभ्युदय, पार्श्वनाथ काव्य, प्रमाणसुन्दर। पद्मसुन्दर का रचनाकाल १५८२ ई० तक है। ज्ञानचन्द्रोदय की रचना १५७० ई० के लगभग हुई होगी।

वासन्तिकापरिणय

वासन्तिका-परिणय के प्रणेता शठकोप यति सोलहवीं शती में दक्षिण भारत के अहोबिल मठ के सातवें आचार्य थे।[5] इनके पहले छठे आचार्य पराङ्कुश हुए, जो

---

१. इसकी हस्तलिखित प्रति लन्दन में इण्डिया आफिस के पुस्तकालय में ४१९० संख्यक है।

२. De : Hist of Skt, Lit P. 511

३. रुक्मिणीहरण का गुजराती पद्यानुवाद बम्बई से १८७३ ई० प्रकाशित हुआ। ब्रिटिश म्यूजियम मे इसकी प्रति २६३५६ संख्यक हैं।

४. चिन्तामणि तथा रसमंजरी का उल्लेख Aufrecht's Cat. Cat. Pt. I. 527 तथा 77 में हैं।

५. मैसूर से १८९२ ई० में वासन्तिका-परिणय का प्रकाशन हो चुका है।

विजयनगर के रामराज (१५४२-१५६५ ई०) के समकालीन थे। शठकोप के समकालीन विजयनगर में रङ्गराज (१५७५–१५९८) हुए। इनका मूल नाम तिरुमल था और इन्होंने कवितार्किक-कण्ठीरव की उपाधि ग्रहण की थी। कहते हैं कि वे १०० लेखकों को साथ ही कविता लिखा सकते थे। वाहिनीपति नामक कवि ने उनकी प्रशंसा की है।

वासन्तिकापरिणय में पाँच अंक हैं। इसमें वासन्तिका नामक वनदेवी से अहोबिल नरसिंह का विवाह वर्णित है।

कौतुकरत्नाकर

कौतुकरत्नाकर के रचयिता वाणीनाथ के पुत्र कवितार्किक थे[१]। वे नोआखाली में मुलुया के राजा लक्ष्मण-माणिक्य के पुरोहित थे। उन्होंने १६ वीं शती के अन्तिम चरण में कौतुकरत्नाकर नामक प्रहसन का प्रणयन किया। इसके नायक राजा दुरितार्णव बुद्धिहीन और अशक्त थे। उनकी राजधानी पुण्यवर्जित नगरी थी। एक बार उनकी दुःशीला पत्नी का अपहरण हो गया। उन्होंने अपने धूर्त सेवकों को उसे ढूँढ निकालने के लिए नियुक्त किया। उनमें से एक सुशीलान्तक नामक नगर-रक्षक था, जिसके भुजपाश में आबद्ध होकर वह रानी जब वन्दिनी बनी थी, तभी अपहृत हुई। वसन्तोत्सव होने वाला था। बिना रानी के राजा इसमें कैसे सम्मिलित हों? राजा के परामर्शदाता मन्त्री थे कुमतिपुञ्ज, आचारकालकूट, वैद्य व्याधिवर्धक, ज्योतिषी अशुभचिन्तक, सेनापति समरकातर तथा गुरु अजितेन्द्रिय। इन सबकी सम्मति से अनङ्गतरङ्गिणी नामक वेश्या पत्नी के स्थान पर रख ली गई। तभी कपट-वेशधारी नामक ब्राह्मण के विषय में सूचना दी गई कि इसने रानी का अपहरण किया है। इस ब्राह्मण ने अनङ्गतरङ्गिणी से प्रेम करना आरम्भ किया था, पर वेश्या ने उसे उठा कर ऐसा पटका की नाक से रक्तधारा प्रवाहित होने लगी। न्याय-चक्र से वह अपराधी तो घोषित हुआ, किन्तु वसन्तोत्सव में उनका अपराध घुल गया।

लक्ष्मणमाणिक्यदेव के नाटक

लक्ष्मणमाणिक्य देव नोआखाली के राजा अकबर के समकालीन थे। उन्होंने सोलहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में दो नाटक कुवलयाश्वचरित और विख्यात-विजय लिखे।[२] कुवलयाश्वचरित में कुवलयाश्व और मदालसा के प्रणय की कथा है और विख्यातविजय के छः अङ्कों में नकुल के कौरवों से युद्ध की कथा है। इसमें कर्ण-संहार तक की घटनायें चर्चित हैं।

---

१. इसकी प्रति लन्दन में इण्डिया-आफिस लाइब्रेरी खण्ड ७ में १६१८ तथा ४१९७ संख्यक है।

२. कुवलयाश्वचरित तथा विख्यातविजय की चर्चा Aufrecht के Catalogus Catalogorum III. 25 तथा III. 120 में क्रमशः है। हरप्रसाद की रिपोर्ट में पृष्ठ १८ पर इसका विवरण है।

कुवलय-विलास

कुवलय-विलास के प्रणेता रयस अहोवलमन्त्री के पिता नृसिहामत्य और पितामह चन्नय मन्त्री थे। इस नाटक के पाँच अङ्कों में कुवलयाश्व और मदालसा की कथा वर्णित है। उसकी रचना विजयनगर के राजा श्रीरंगराज (१५७१-१५८५ ई०) के इच्छानुसार हुई।[1]

ज्ञानसूर्योदय

वादिचन्द्रसूरि द्वारा विरचित ज्ञानसूर्योदय नाटक कृष्णमिश्र के प्रबोधचन्द्रोदय और वेङ्कटनाथ के संकल्पसूर्योदय की परम्परा की परवर्ती श्रेष्ठ कड़ी है।[2] कवि ने नाटक के अन्त में अपना परिचय दिया है, जिसके अनुसार वे मूलसंघी ज्ञानभूषण-भट्टारक के प्रशिष्य और प्रभाचन्द्र के शिष्य थे। इस नाटक की रचना कवि ने मधूक नगर में १५९२ ई० मे की।[3] मधूक नगर गुजरात में था। वादिचन्द्र ने सम्भवतः उसी प्रदेश को समलंकृत किया था।

वादिचन्द्र ने काव्यात्मक और धार्मिक अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया। इनके पवनदूत में १०१ पद्य और पार्श्वपुराण में १५०० पद्य हैं।[4] इसकी रचना १५८३ ई० में हुई थी। इनके लिखे ग्रन्थ पाण्डव-पुराण, होलिका-चरित्र और सुभग-सुलोचना-चरित, यशोधर-चरित आदि संस्कृत भाषात्मक हैं। यशोधरचरित की रचना १६५७ वि०सं० अर्थात् १६०० ई० में हुई। वादिचन्द्र का रचनाकाल प्राय: सोलहवीं शती का उत्तरार्ध है।

ज्ञानसूर्योदय पर प्रबोधचन्द्रोदय का विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है। इसकी कथावस्तु और असंख्य पद्यों पर प्रबोधचन्द्रोदय की गहरी छाप है। बहुत से पद्य तो प्रबोधचन्द्रोदय के अनुकरण पर ही अनुरणन करते हैं। दोनों में नायकादि प्रकृति के नाम और चारित्रिक वैशिष्ट्य समान हैं।

डा० गुलाब चौधुरी के अनुसार 'यह (ज्ञानसूर्योदय) भी श्रीकृष्ण मिश्र के प्रबोध-चन्द्रोदय के उत्तर में लिखी कृति है।......दोनो रचनाओं में बहुत कुछ साम्य है। पात्रों के नामों में प्रायः साम्य है। इसके साथ ही एक ही आशय वाले बीसों पद्य और गद्य-वाक्य थोड़े से शब्दों के हेरफेर के साथ मिलते हैं।......ज्ञानसूर्योदय के कर्ता ने प्रबोधचन्द्रोदय के समान ही बौद्धों का उपहास किया है और क्षपणक के

१. इसकी हस्तलिखित प्रति तंजौर में २३१९ संख्यक है।

२. ज्ञानसूर्योदय का हिन्दी मे अनुवाद १९०९ ई० में जैनग्रन्थरत्नाकर-कार्यालय, बम्बई से हो चुका है।

३. 'वसुवेदरसाब्जाङ्के वर्षे माघे सिताष्टमी-दिवसे' ग्रन्थ समाप्ति का काल निर्दिष्ट है।

४. पवनदूत काव्यमाला के १३ वें गुच्छक में प्रकाशित है।

स्थान में सितपट को खड़ा कर श्वेताम्बर वर्ग की कटु आलोचना की है।[१]

ज्ञानसूर्योदय मे प्रस्तावना के स्थान पर उत्थानिका है, जिसमें कमलसागर और कीर्तिसागर नामक ब्रह्मचारी सूत्रधार से इस नाटक का प्रयोग करने के लिए कहते है।

अभिराममणि

सात अङ्कों के नाटक अभिराममणि के प्रणेता सुन्दर मिश्र का प्रादुर्भाव सोलहवी शताब्दी मे हुआ। इसकी रचना, जैसा ग्रन्थ मे लिखा है, १५२१ शक-संवत्सर अर्थात् १५९९ ई० मे हुई। इसमे रामकथा महावीरचरित और अनर्घराघव के अनुरूप विकसित की गई है। इसका प्रथम अभिनय जगन्नाथपुरी मे पुरुषोत्तम विष्णु के महोत्सव में हुआ था।[२]

बालकवि के नाटक

बालकवि की प्रतिभा का विकास केरल मे हुआ। इनके आश्रयदाता कोचीन के राजा रामवर्मा थे, जिनको नायक मानकर कवि ने रामवर्मविलास नाटक की रचना की। बालकवि उत्तर अर्काट मे मुल्लन्डूम् के निवासी थे और आश्रयदाता की खोज मे केरल आये थे। इनके पिता कालहस्ती और पितामह मल्लिकार्जुन थे।[३] इनके गुरु कृष्ण केरल के प्रकाण्ड पण्डितो में से थे। बालकवि के कुल में काव्य-रचना आनुवशिक प्रतीत होती है। इनके प्रपितामह यौवनभारती भी कवि थे।

रामवर्म-विलास

बालकवि के लिखे दो नाटक मिलते हैं—रामवर्मविलास और रत्नकेतूदय।[४] रामवर्मविलास के पाचो अङ्कों मे राजा रामवर्मा के प्रणय और विजय की कथा है, जिसके अनुसार नायक रामवर्मा कोचीन के राज्य का भार अपने भाई गोदावर्मा (१५३७-१५६१ ई०) पर डालकर तुलाक-कावेरी मे रहने लगे और वहाँ मन्दार-माला नामक नायिका के प्रणयपाश मे आबद्ध होकर उससे विवाह करके कुछ समय

---

१. जैनसाहित्य का बृहदितिहास भाग ६ पृ० ६०१ जैन साहित्य और इतिहास पृ० २६७-२७१ लेखक नाथूराम प्रेमी।

२. विल्सन कृत थियेटर आफ दी हिन्दूज के पृष्ठ १४३ पर। विल्सन ने इसकी दो प्रतियो का अवलोकन किया था। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलोगोरम १·२६ में है।

३. कवि ने अपनी वंश परम्परा का वर्णन करते हुए रत्नकेतूदय में कहा है—
एनमुपश्लोकितवान् केरलगुरुर्जिताशेषशेमुषी-विशेषः कृष्णमनीषी।

४. रामवर्मविलास-नाटक मद्रास के राजकीय संस्कृत-हस्तलिखित ग्रन्थागार में ३८७३ संख्यक है। रत्नकेतूदय का प्रकाशन श्रीविद्याप्रेस, कुम्भकोणम् से हो चुका है।

बिताया। इस बीच कोचीन पर शत्रुओं के आक्रमण हुए और गोदावर्मा की सूचना पाकर उन्होंने पुनः कोचीन आकर राज्य का भार सँभाला और शत्रुओं को परास्त किया। राज्यभार छोड़ कर रामवर्मा ने वाराणसी की तीर्थयात्रा भी की थी।

रामवर्मा ने १६०१ ई० तक शासन किया। इनके पहले १५६१ से १५६५ ई० तक कोचीन पर वीर केरलवर्मा का शासन था। गोदावर्मा १५३७ से १५६१ ई० तक कोचीन के राजा रहे। चिदम्बरम् के मन्दिर में रामवर्मा का एक उत्कीर्ण लेख १५७५ ई० का मिलता है।

> योऽभूद्यौवनभारतीकविवराच्छ्रीसोमनाथात्मजः—
> च्छन्दोगः स हि मल्लिकार्जुनकविर्वन्यः पिता यत्पितुः।
> सोऽयं बालकविः सुवार्द्रकविताभाक्कालहस्त्यात्मजः
> प्रख्यातो भुवि कस्य न श्रुतिपथं श्रेयोनिधिर्गाहते॥

बालकवि के रत्नकेतूदय की रचना भी कोचीन के राजा रामवर्मा की इच्छानुसार हुई। इसमें रामवर्म नायक हैं और उनके राज्य छोड़ने के पूर्व की कथा है।

उपर्युक्त दोनों नाटकों का ऐतिहासिक महत्त्व है। इसके अतिरिक्त जीवनचरितात्मक नाटकीय कथावस्तु का विकास इन नाटकों की विशेषता है। ऐसे नाटकों में कार्यावस्थायें नहीं मिलतीं।

●

सत्रहवीं शती के नाटक

अध्याय १३

मृगांकलेखा

मृगाङ्कलेखा नाटिका के प्रणेता विश्वनाथ-देव गोदावरी के परिसर में धारासुर नगर से काशी में आ बसे थे।[1] उनके पिता त्रिमल्लदेव थे। काशी ने कवि को आकर्षित किया था, क्योंकि सारे भारत से कवि-प्रतिभा सिमट कर काशी को गौरवान्वित कर रही थी। कवि के शब्दों में उनके नाटक के सामाजिक थे—

एते वंगकलिंगसिंहलवलत्तैलंगभूलिंगगा—
च्चंचद्द्राविडगौडचोलविलसत्काश्मीरसौवीरजाः।
अन्ये लाटवराटभोटतटगाः कर्णाटचेद्युद्भवाः
केऽप्यन्ये कविवाक्यकौशलकलाविज्ञा महाराष्ट्रजाः॥ १.४

विश्वनाथ ने १६०७ ई० में इस नाटिका को रचा था। अठारहवीं शती के माधवदेव न्यायसार के प्रणेता हैं। वे भी इसी धारासुर के निवासी थे। सम्भवतः वे विश्वनाथ के वंश के थे। नाटिका में शिव की स्तुति से और नाटिका के काशी-विश्वनाथ के महोत्सव में प्रयुक्त होने से कवि का शैव होना स्पष्ट है।

कवि का विश्वास है कि संस्कृत के पुराने महाकवियों से पर्याप्त विनोद सम्भव नहीं है। अतएव नये काव्यों का संस्कृत में प्रणयन होना साभिप्राय है—

अतिपरिचयदोषात् प्रौढवालेव वाणी
न रचयति विनोदं प्राक्तनानां कवीनाम्।
अभिनवकविवाचा कापि प्रीतिर्नवीना
युवतिरिव विधत्ते प्रौढमानन्दमन्तः॥ १.१३

इस नाटिका का प्रथम अभिनय सूर्योदय के समय आरम्भ हुआ था, जैसा सूत्रधार ने कहा है—

अये कथमुदयाचलान्तरित एव भगवानम्भोजिनीवल्लभः इत्यादि। अन्त में कवि की आशंसा है—

यावत् कल्पांतवातो न चलति भुवने संतु तावत् समस्ताः।
विस्फूर्जत्क्षीरधाराद्रवमधुरतराः सत्कवीनां प्रबंधाः॥ ४.२४

कथावस्तु

कलिङ्ग के राजा कर्पूरतिलक ने कामरूप की राजकुमारी मृगाङ्कलेखा को मृगया करते समय देखा और अपनी महारानी विलासवती से बढ़कर उसके प्रति

१. इसका प्रकाशन सरस्वती-भवन-प्रकाशन-माला में २६ संख्यक हो चुका है।

आकृष्ट हुआ। वह चन्द्र को सूर्य की भाँति सन्तापक मानने लगा। नायक प्रेयसी के लिए नितान्त प्रदग्ध था।

दानव शंखपाल तिरस्करिणी विद्या से नायिका को हरने ही वाला था कि भगवती सिद्ध योगिनी के द्वारा नायक ने उसे अपने अन्तःपुर में मँगवा लिया। वह विलासवती की सखी बनाकर रख दी गई। वसन्तोत्सव के अवसर पर विदूषक के साथ राजा ने मृगाङ्कलेखा को मदनोद्यान में अपनी सखियों—कलहंसिका और लवंगिका के साथ देखा और उससे सम्पर्क स्थापित किया ही था कि सिद्धयोगिनी की आज्ञानुसार उससे मिलने के लिए चल देना पड़ा।

नायक और नायिका एक दूसरे के वियोग में नितरां सन्तप्त थे। नायक के मनोविनोद के लिए विदूषक ने नायिका का चित्र बनाया, जिसे देखकर नायक ने कहा—

हरति हृदयमेषा चित्रभूमौ गतापि॥ २.१४

अन्त में नायक नायिका के निकटवर्ती प्रदेश में जाकर सखियों से उसका वार्तालाप सुनता है। वह उनके पास आकर उसे सप्रणय पकड़ना चाहता है और अन्त में उसका आलिंगन करता है। तभी महारानी की आज्ञानुसार उन्हें मृगाङ्क-पूजा के लिए चल देना पड़ा।

शंखपाल ने मृगांकिका का पिण्ड न छोड़ा। एक दिन वह अपहरण करके श्मशान में कालीमन्दिर में उसे रखकर पूजा करके विवाह करने का उपक्रम कर रहा था। नायक उसे ढूँढते हुए वहाँ आ पहुँचा। उसने विक्रमोर्वशीय के पुरुरवा की भाँति मयूर, हाथी, हरिण आदि को सम्बोधन करके उन्हें अपनी प्रेयसी का ठिकाना बताने को कहा। अन्त में श्मशान में पहुँचा, जहाँ राक्षस-लीला देखने के पश्चात् काली के मन्दिर में गया। वहाँ उसने दूर से ही शंखपाल को मृगांकलेखा से यह कहते सुना—

> किं प्राणेश्वरि खेदमत्र कुरुषे यत्प्राणनाथे मयि
> त्रासं मुञ्च मनस्विनि त्यज रुषं किं लोचने साश्रुणी।
> त्वत्प्राप्त्यै यदवोचियं पुररिपो कांतामिदानीमहं
> तत्कृत्वार्चनमिंदुसुंदरमुखि त्वां चुम्बयिष्याम्यहम्॥

उसकी बातों से राजा को विदित हुआ कि यह शंखपाल है और मृगांकलेखा से प्रणय निवेदन कर रहा है। राजा और शंखपाल दोनों क्रोधान्ध होकर आमने-सामने हुए। शङ्खपाल दौड़कर तलवार लेने गया और फिर लौटा नहीं। नायक ने नायिका का वहीं आलिंगन किया और उसे लेकर अन्यत्र चला गया।

नायक और नायिका के विवाहोत्सव का उपक्रम हुआ। मृगांकलेखा के पिता को सन्देश भेजा गया। वे आ पहुँचे। नायक ने उन्हें देखा तो कहा—

ईदृशी रूपसम्पत्तिरितरस्मात्कथं भवेत् ।[1]
नोदेति कैरवानंददायिनी चंद्रिका रवे. ॥ ४.७

कामरूपेश्वर समझता था कि मेरी कन्या मिलेगी नहीं। फिर तो उसके विवाह का समाचार सुनकर वह अतिशय हर्षित हुआ। प्रेमपूर्वक नायक कर्पूरतिलक से मिला। सिद्ध योगिनी नायिका को लेकर उपस्थित हुई। मृगाङ्कलेखा ने आलिंगन-पूर्वक सबका अभिनन्दन किया।

तभी राजा का एक उन्मत्त गजेन्द्र अपने वाहक को मारकर राजमार्ग पर आया। नायक गजेन्द्र को सँभालने के लिए निकलने वाला ही था। पर उसे शंखपाल का भाई मुठभेड के लिए राजमार्ग पर गरजता सुनाई पड़ा। उस दानव को गजेन्द्र ने ही मार डाला। राजा का बाण व्यर्थ ही रह गया।

स्वप्नवासवदत्त के यौगन्धरायण के अनुरूप राजमन्त्री रत्नचूड अन्त में कहता है—

सर्वोर्वीरमणं विधातुमधुना देवं मया निर्मिता
माया कापि यया नवीनतरुणीलाभः प्रभोः स्यादयम् ।
देवी स्वावरजामनेकसुकृतैरासाद्य संतोषिता
यत्सत्यं च तथापि किं नु हृदयं साशंकमास्ते मम ॥ ४.१८

तिग्मप्रताप नामक सेनापति ने बताया कि दिग्विजय सम्पन्न हुआ। रत्नचूड ने बताया कि मृगाङ्कलेखा का पति सार्वभौम सम्राट् होगा। इसीलिए सिद्धयोगिनी से उसे आपके अन्तःपुर में रखवाया गया।

शैली

विश्वनाथ संज्ञाओं से बनी क्रियाओं के प्रयोग में विशेष रुचि लेते हैं। यथा,

कर्पूरो दहनायते कुमुदिनीनाथोऽपि सूर्यायते
हारोऽस्या भुजगायते मलयजो वातः कृतान्तायते।
गानं कर्णविषायते मृगमदालेपोऽपि भस्मायते।
तस्या एव विघूर्णये प्रतिदिनं दृक् चन्द्रकान्तायते ॥ २.५

अन्यत्र भी तूणीरयति, चुलुकित, वागुरायते आदि प्रयोग हैं।

शृङ्गारोचित वैदर्भी रीति के द्वारा प्रसादपूर्णता प्राप्त करने में विश्वनाथ को विशेष लाघव प्राप्त है। उनकी पदशय्या नितरा मधुमयी है।

अनुप्रास के द्वारा पदों का सांगीतिक विलास प्रायशः निर्मित है। यथा

चटुलमिह चरन्तश्चन्द्रमश्चन्द्रिकाम्भः
समदमकरकण्ठक्वाणमुच्चारयन्तः ।

---

१. यह पद्य अभिज्ञान शाकुन्तल के 'मानुषीषु कथं वा स्यात्' १.२४ के समान है।

भ्रमितरलितपक्षं कुर्वतेऽमी रतेच्छ-
मविरतमिह चञ्चूमञ्चयन्तश्चकोराः ॥ २·३८

कहीं-कहीं अन्योक्ति-विलास देखते ही बनता है। यथा, मृगांकलेखा के विषय में उसकी सखी लवंगिका कहती है—

अस्माकं पंजरस्थिता चकोरी चन्द्रिकासलिलं पातुं मुक्तबन्धना कर्तव्या।

इसमें व्यंजना नाट्योचित ही है।

रस

शृङ्गार की अजस्र धारा का आलम्बन विभाव नायिका है—

नीलेन्दीवरमेव लोचनयुगं बन्धूकतुल्योऽधरः
कालिन्दीजलचारु कुन्तललता बाहूमृणालोपमौ।
रम्भागर्भसमानमूरुयुगलं किं वा बहु ब्रूमहे।
सेयं कापि नवीनमीननयना सर्वोपमानिर्मिता ॥ १·२१

शृङ्गार का उद्दीपन है वसन्तानिल[1]—

कावेरीजलसंगशीतलशिलापृष्ठे लुठन्तः क्रमाद्
आन्ध्रीपीन पयोधरोच्चशिखरप्राग्भारसंचूर्णिताः।
चोलीलोचनलालिताः कुचतटे लाटीभिरालिंगिता
दूता एव मनोभवस्य भुवने चंचन्ति चैत्रानिलाः ॥१·२७

तृतीय अंक में नायक की शखपाल से मुठभेड होने पर रौद्ररसोचित विभावानुभाव और सचारी भाव, ओजोगुणोन्वित पदावली में निबद्ध हैं।

नाटिका में शृङ्गार को अंगी बनाकर उसे वीर और रौद्र से संगमित कराने में कवि को सफलता मिली है।

नाट्यशिल्प

प्रथम अंक के आरम्भ होने के पूर्व विष्कम्भक के द्वारा नाटिका की कथा की भूमिका रत्नचूड नामक राजमन्त्री की एकोक्ति के रूप में प्रस्तुत है। द्वितीय अंक के पहले के प्रवेशक को काव्यपूर रसात्मकता से निर्भर करना अशास्त्रीय है।

उद्यानपाल से शृङ्गारित और लच्छेदार तीन पद्य कहलवाना अस्वाभाविक है। उसे तो प्राकृत बोलना चाहिए। वह कहता है—

सिंहलीघनकुचाचलपाताच्चूर्णितश्चपलरीतिमुदस्य ।
वाति मालववधूसुरतान्तोद्भासिशीकरहरोऽत्र समीरः। १·३२

द्वितीयाङ्कान्त में रङ्गमञ्च पर नायक आलिंगन करता है। यह अभारतीय होने पर भी परम्परागत विधान है।

१· इस वर्णन पर कर्पूरमञ्जरी के चैत्रानिल वर्णन की छाया है।

मृगांकलेखा विशेष रूप से रत्नावली, मालतीमाधव कर्पूरमञ्जरी आदि रूपकों के अनुरूप निर्मित है। इसमें भास, कालिदास, भवभूति, राजशेखर आदि महाकवियों के संविधान, वाग्वैचित्र्य और वर्णना का एकत्र रसास्वादन होता है।

दोष

कामियों की प्रणय-प्रवृत्ति का निदर्शन करने के लिए मृगाकलेखा के कटाक्ष को पवित्र गंगा की तरंगों के सदृश बताना गंगा का अपमान है। कवि का यह कहना अनुचित है—

अन्तःस्मितसुधासारोल्लसदाननपंकजा
अपांगरंगना गांगैस्तरंगैरिव सिंचति ॥ १.३७

छन्द

विश्वनाथ के प्रिय छन्द शार्दूलविक्रीडित और स्रग्धरा क्रमशः ४१ और २५ पद्यों में प्रयुक्त हैं। इनके पश्चात् उसने १७ पद्यों में वसन्ततिलका और १५ में मालिनी का प्रयोग किया है।

अध्याय १४

मदनमंजरी-महोत्सव

मदनमंजरी-महोत्सव नाटक के रचयिता विलिनाथ का जन्म चोल प्रदेश के विष्णुपुर नामक अग्रहार के महापण्डित यज्ञनारायण के कुल में हुआ था। यज्ञनारायण को अच्युतराय ने मणिभूषण नामक ग्राम पारितोषिकरूप मे प्रदान किया था और विद्यावल्लभ की उपाधि दी थी। यज्ञनारायण अच्युत की राजसभा में आये। विद्वानो के साथ अच्युत ने उनकी परीक्षा ऋग्वेद-सामवेद के पाठ मे ली और उनकी विशेषता देखकर सम्मान प्रदान किया। यज्ञनारायण के पौत्र कनक-सभापति हुए। कनक-सभापति के पुत्र विलिनाथ हुए।

अच्युतराय विजयनगर के राजा १५३० से १५४१ ई० तक थे। उन्होने वैदिक ब्राह्मणो को मद्रास के आसपास अग्रहारादि दिये थे।[1] उनके सामन्तो द्वारा और स्वयं राजा के द्वारा दिये हुए अग्रहार-विषयक उत्कीर्ण लेख मिलते हैं। अच्युतराय से लगभग ६० वर्ष के पश्चात् विलिनाथ की प्रतिभा का विलास मान लेने पर ऐसा प्रतीत होता है कि मदनमंजरी की रचना १७ वी शती के प्रथम चरण मे हुई।[2]

मदनमंजरी नाटक का प्रथम अभिनय भगवान् तेजनीवनेश्वर के चैत्र यात्रा-महोत्सव के अवसर पर हुआ था। चैत्र मास में नाटको का विशेष रूप से प्रयोग होता था। सूत्रधार ने इसकी उत्कृष्टता के विषय में प्रस्तावना में लिखा है—

शृंगारविभवशेवधि सरसपदसन्दर्भमणिदामहाटकपेटकं नाटकम्।

कापटिक संविधानो की अतिशयता के आधार पर संस्कृत के उत्तम कपट नाटको में इसे प्रतिष्ठापित किया जा सकता है। पंचम अङ्क में इसे कपटनाटिका कहा गया है।

कथावस्तु

पाटलपुर के राजा चन्द्रवर्मा ने शिव के प्रीत्यर्थ तपस्या करते हुए पचाल के राजा पराक्रम भास्कर को बन्दी बना लिया और उसके राज्य पर अधिकार कर लिया। वही तपस्या करती हुई प्रभावती नामक तपस्विनी प्रव्राजिका को चन्द्रवर्मा ने दासी-कर्म मे लगा दिया। शिव को यह सब सह्य न हुआ। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि मुझे चन्द्रवर्मा को दण्ड देना है। चन्द्रवर्मा अत्यन्त कुरूप था।

---

१. Epigraphia Indica III, 147 पर छपे शिला लेख के अनुसार Achyuta gave a grant of a village not far from Madras to the Brahmins learned in the Vedas, Robert Sewell : A Forgotten Empire P. 172

२. इसकी हस्तलिखित प्रति १७०० ई० के लगभग की है। सागर विश्वविद्यालय में इसकी हस्तलिखित प्रति है।

उसी समय पुष्करपुर के राजा तपस्वी राजर्षि धर्मध्वज की कन्या कामरूप में हैमवती अवतरित हुई। उसे पत्नी रूप में बलात् प्राप्त करने के लिए चण्डवर्मा चल पड़ा। उसे बचाने के लिए शिवराज शिखामणि बने, कुबेर विदूषक बने तथा महाकाल आदि गणाधिपति मन्त्री बने। सभी चल पड़े रथ पर बैठकर पुष्करपुर की ओर। शिखामणि मार्ग में कात्यायन के आश्रम में केवल विदूषक को साथ लेकर गये। भीतर जाने पर जो संगीत सुनाई पड़ा, उससे शिव मन्त्रमुग्ध हो गये। उस वीणागीति का उन्होंने वर्णन किया—

तुम्बीफलं यदि भवेत्तु हिमांशुबिम्बं
तन्त्रीगुणा यदि च तत् किरणा भवेयुः।
इक्षुर्भवेत् परिणतो यदि च प्रवालो
गायन्त्यपीह यदि कापि सुरांगना स्यात्॥

गाने वाली कन्या पर राजा मोहित हो गया। विदूषक ने स्पष्ट कह दिया—कन्यकारत्नं नर्वांगभूषणं भविष्यति। वहीं राजशिखामणि का स्कन्धावार बना।

राजा के लिए नायिका है—

अंगेषु चन्दनासक्तिरक्ष्णोरमृतवर्तिका।
आनन्दपरिवाहेण हृदये चाभिषेचनम्॥

नायिका को बड़ी देर तक निहारते हुए उसका वर्णन कर चुकने पर नायक उसकी दो सखियों से उनकी बातचीत सुनने का उपक्रम करता है। गाने के बाद मदनमंजरी ने कन्दुकक्रीडा करना आरम्भ किया। गेंद खेलती हुई मदनमंजरी का प्रतिमात आंगिक सौष्ठव देखकर नायक का मन विशेष आसक्त हो गया। उसने अपने को नायिका के समक्ष किया। नायिका तब भी खेलती तो रही, पर अन्यमनस्क होने से उसका मेल बिगड़ता गया। वह पसीने-पसीने हो गई। उसने नायक की ओर कटाक्षपात किया। विदूषक को अवसर मिला। उसने नायक से कहा—

अवलम्बस्व सपदि एतां नितम्बवतीं।

सखियों ने समझा कि यह बहुत थक चुकी है और उससे घर लौट चलने को कहा। नायिका ने कहा कि यहाँ तो देखने के लिए नायक उपस्थित हैं। नायक और नायिका अपने मित्रादि के साथ नर्मालाप के लिए बैठ गये। राजा ने उनके संगीत की प्रशंसा की—

सौवर्णे यदि कुसुमे सौरभसम्पत्समागमोऽपि स्यात्।
अस्यामभिरूपायां सांप्रतमेतत्तदा हि संगीतम्॥

सखियों ने मदनमंजरी के पिता का नाम धर्मध्वज बताया और कहा कि एक बार कन्याभिलाषी धर्मध्वज ने पुष्करिणी के तीर पर तपस्या की। वहाँ कात्यायन

मुनि ने किसी कोकनद के पत्र पर यह कन्या देखी और उसे धर्मध्वज को दे दिया। उन्होंने इसे अपनी पत्नी चित्रलेखा को उसे सौंपा। आज वही यह मदनमंजरी है। पिता चाहते हैं कि जिसे यह चाहे, उससे ही विवाह कर ले।

मदनमंजरी को नीराजना के लिए उसकी माता ने सन्ध्या के समय जब बुलाया तो कुछ घबरा कर सभी चलने के लिए उठ पड़े। नायक को नायिका ने प्रणाम किया। नायक ने कहा कि मेरे पुण्योदय से पुनः आपका दर्शन होगा।

अधीर नायक को विदूषक ने धीरज बँधाया कि जल्दी ही नायिका आपको मिलेगी। इधर नायक कातर था। वह सन्ध्या होने पर अपने सेना-सन्निवेश मे जा पहुंचा।

द्वितीय अङ्क के पहले प्रवेशक मे चन्द्रवर्मा के आतङ्क से अभिभूत धर्मध्वज के उसके प्रस्ताव को मानकर मदनमंजरी को उसके लिए देने की सम्भावना विदूषक बताता है। इधर चन्द्रवर्मा की दासी बनी हुई प्रज्ञावती मदनमंजरी को उसके वियोग मे सन्तप्त राजशिखामणि नायक से मिलाने का प्रयास कर रही है। चन्द्रवर्मा के कोश-गृह मे सिद्धमणि नामक तलवार थी, जिसके उसके पास रहते वह अवध्य था। चन्द्र-वर्मा की गणिका चन्द्ररेखा मदनमंजरी के रूप-सौन्दर्य से घबरा कर उसको मदन-मंजरी के लिए प्रेरित करती थी। शूरमर्दन नामक सेनापति भी उसे मदनमंजरी से विवाह कर लेने के लिए जल्दियाता था। कोशगृह की रक्षा मित्रगुप्त करता था। प्रज्ञावती की योजनानुसार शिखामणि ने अपने सचिव कृतमुख को भेजा कि सिद्धमणि को प्राप्त करो और शूरमर्दन को समाप्त करो।

राजा स्वप्न मे ही नायिका का दर्शन करते हुए उसके आलिंगन का सुख भोग रहा था। जगने पर उसने कहा कि इस जागने से स्वप्न ही अच्छा रहता। उसने छिपे हुए विदूषक के वस्त्राचल को देखा तो समझा कि यही स्वप्नदृष्ट नायिका छिपी है। इस भ्रम मे पड़े नायक ने उससे कुछ प्रेम की बातें कही। उसकी व्यग्रता देखकर विदूषक प्रकट हुआ। नायक उसके विषय मे सोचते हुए रोने लगा। राजा के विदूषक से बात करते दो पहर हो गया। नायक दुपहरी बिताने के लिए मदनमंजरी के लीलावन मे जा पहुंचा। विदूषक उसे बालोद्यान मे ले गया। उस उपवन में नायक के लिए उद्यान अग्निपवन था, किसलय छुरिका थे, मकरन्द क्षाररस था, पुष्परज स्फुलिंग थे। वे दोनों मरकत की चौकी पर बैठे। नायक की आँखों से नायिका के लिए आँसू झर रहे थे। उसे सर्वत्र नायिका ही दिखाई दे रही थी। अन्त में वह मूर्छित हो गया। वह फिर सहसा प्रसन्न हो गया।

कृतमुख नामक सचिव ऐसी स्थिति में राजा से मिला। उसने मदनमंजरी के मिलने की बात बताई कि कल सन्ध्या के समय मैं प्रज्ञावती से मिली। उसने कहा कि सुरंग बनाकर सिद्धमणि को तुम प्राप्त करो। प्रज्ञावती के साथ उसकी योजना-नुसार मैं उस स्थान पर जा पहुँचा। मेरे सुरंग बनाने के उपक्रम में पहले से बना

सुरंगद्वार मिल गया। भीतर पहुँचने पर सोया हुआ मित्रगुप्त मिला। वहीं राज-कोश था। तभी मित्रगुप्त जग गया। पर उत्तर ओर जाकर मैंने मणिपेटिका उठा ली और सुरंग से बाहर निकल आया। उधर मित्रगुप्त बहुत सा धन सुरंगद्वार से लेकर चन्द्रलेखा नामक चन्द्रवर्मा की गणिका को दे आया। उसके हट जाने पर मैंने यह कह कर उस गणिका की नाक और कान काट दिये कि मैं शूरमर्दन हूँ। मेरे जीते जी तुम चन्द्रवर्मा के द्वारा परिगृहीत होने पर भी मित्रगुप्त की हो गई हो। फिर मैंने आकर प्रज्ञावती को सब कुछ बताया। प्रज्ञावती के शोर मचाने पर अन्धकार में इधर-उधर आरक्षक दौड़े और उनका अध्यक्ष भी दिखाई पड़ा। मैंने भी पुराने मन्दिर में पेटिका रखी और जोर से भाग चला। प्रज्ञावती ने शोर मचाया कि भूतग्रस्त मेरा पुत्र भागा जा रहा है। उसे पकड़ो, पकड़ो। इस प्रकार मैं बचा। दूसरे दिन प्रज्ञावती ने मुझे बताया कि चन्द्रलेखा की दुर्गति जान कर चन्द्रवर्मा ने उससे पूछा तो उसने बताया कि मेरी छोटी बहन कनकलेखा के पास मित्रगुप्त को देखकर शूरमर्दन ने उसे मार डाला और मेरी यह गति कर दी। चन्द्रवर्मा ने अपनी प्राणप्रिया गणिका की दुर्गति करने वाले शूरमर्दन का चित्रवध करने का निश्चय किया। ऐसी स्थिति में मदनमंजरी के प्रति उसका उत्साह कम हो गया है। उसने फिर मदनमंजरी की स्थिति बताई कि आज प्रज्ञावती ने मदनमंजरी को महेश्वर वन में भेजा है और हममे आपको सन्देश दिया है कि आप उसके निकट रहें। महेश्वर वन में नायक और नायिका का मिलन प्रज्ञावती की उपस्थिति में हुआ। केवल नायक और नायिका को एकान्त में रहने की सुविधा देकर जब सब चलते बने तो राजा ने गान्धर्व विवाह का प्रस्ताव किया। तभी नेपथ्य से सुनाई पड़ा—

'अये राजहंस मुंच मुंचेदानीं पद्मिनीम्। तस्या मुखसरसीरुहप्रसादा-पनरणाय समागता सायन्तनी सन्ध्या।'

इस प्रकार नायिका की पितामही विद्यावती के आने की सूचना दी गई थी। तब तो राजा लतावलय में जा छिपा। विद्यावती से नायिका ने बताया कि अब तो शरीर-सन्ताप शान्त है। विद्यावती ने फिर बताया कि भगवती ने मेधावती को किसी काम से पाटलिपुत्र भेजा है। मदनमंजरी ने जाने के पहले नायक को साकूत सन्देश दिया—'नव संगेन लतागृहविहितः खल्वद्य सन्तापः। यथा स पुनरपि न भवेत्तथा यतनीयम्। त्वं हि मे शरणम्'

चतुर्थ अङ्क के पूर्व विष्कम्भक में कंचुकी मदनमंजरी के मदनातङ्क से चिन्तित है। उसे मेधावती दिखाई पड़ी। उसने बताया कि बन्दीकृत पराक्रमभास्कर को यह समाचार पाटलपुर में दिया जा चुका है कि चन्द्रवर्मा का पराभव हो चुका है। उसने आगे की घटना बताई कि एक दिन धर्मध्वज की दासी सारणी ने राजा शिखामणि का वह चित्र चन्द्रवर्मा को देखने के लिए भूल से दे दिया, जो मदनमंजरी ने बनाया था।

भगवती प्रज्ञावती ने चन्द्रवर्मा को बताया कि अतिथि बनकर सत्यवर्मा नामक सौराष्ट्र देश का राजा आपका सम्बन्धी आया है। उसके पास एक तलवार है, जिसके बल पर उसका अधिकारी भूर्भुवः स्वः का स्वामी बन जाता है, वह अवश्य हो जाता है, सभी कामनायें पूरी हो जाती है। ऐसी लोकधारणा है। उसकी तलवार से आप अपनी तलवार विनिमय कर लें। फिर आप तीनो लोकों के राजा बन जायेंगे।

इधर प्रज्ञावती के सन्देशानुसार राजा शिखामणि ने विदूषक कौशिक को सत्य-वर्मा नामक राजा बनाया। प्रज्ञावती ने उसे शिक्षा दी कि किस प्रकार तलवार मिलते ही उसे हम लोगो के पास भेज दे।

चन्द्रवर्मा नकली राजा सत्यवर्मा से मिले। दोनों ने अपनी तलवारों की प्रशसा की। चन्द्रवर्मा ने खड्ग विनिमय का प्रस्ताव किया। पहले तो सत्यवर्मा ने अनिच्छा प्रकट की। इधर चन्द्रवर्मा ने अपनी तलवार उसके चरण पर रखकर चरणवन्दन किया। फिर तो तलवारो का विनिमय हो ही गया। चन्द्रवर्मा प्रसन्नतापूर्वक चलता बना।

विदूषक ने वह तलवार राजशिखामणि के चरणो पर रखी और अपनी पत्नी को अपना राजवेश दिखाने दौड गया।

चतुर्थ अङ्क के अन्त में धर्मध्वज नगर से स्कन्धावार मे कृतमुख का भेजा दूत पत्र लेकर आया। उसने शिखामणि को पत्र और अगूठी दी, जिसके अनुसार कृतमुख दैवज्ञ बन कर चन्द्रवर्मा के पास पहुँचा और पूछने पर बताया कि आपको किसी चित्रगत श्रेष्ठ पुरुष के रूप के प्रति प्रीति हो गई है। वैसा ही रूप आपका बना दूँगा। बस, विमुक्तेश्वर नामक देवायतन में होमकुण्ड बनाता हूँ। उसमे कल प्रातः होम करूँगा और आपका रूप वैसा ही हो जायेगा। कल इसी अंगूठी को सिर पर रखे हुए आप (शिखामणि) इस मन्दिर में अदृश्य भाव से आ जायें।

शिखामणि ने ऐसा किया। चन्द्रवर्मा वहाँ कृतमुख के साथ पहुँचा। वहाँ प्रज्वलित होमकुड मे चन्द्रवर्मा का सिर काट कर शिखामणि ने जला दिया। फिर तो उसने चन्द्रवर्मा ही राजशिखामणि है—यह लोकधारणा उत्पन्न करा कर उसके अन्तः-पुर मे राजशिखामणि को प्रतिष्ठित करा दिया। वही सत्यवर्मा बना हुआ विदूषक भी आकर रहने लगा। इस महोत्सव मे सभी बन्दी छोड़ दिये जायें—इस योजना के अनुसार पुष्करपुर मे लाए हुए पराक्रम-भास्कर स्वतन्त्र कर दिये गये। प्रज्ञावती ने यह सारी बात धर्मध्वज को बताई।

पंचम अक में मदनमंजरी का राजशिखामणि से विवाह आयोजित होता है। धर्मध्वज कात्यायनादि महर्षियो के साथ हैं। प्रज्ञावती के साथ राजशिखामणि आये। उनके साथ पराक्रम-भास्कर, सत्यवर्मा, कृतमुख आदि भी थे। सारे सम्भार में अलौकिकता थी। यथा—

'केकी नृत्यति किं प्रतीत्य पटहस्वानं पयोदस्वनम्' इत्यादि।

ऋषि जानते थे कि शिखामणि शिव हैं। धर्मध्वज को यह ज्ञात नहीं था। उन्होंने शिखामणि को आशीर्वाद दिया कि 'आयुष्मान् भव'। तब तो ऋषि मुसकराये—

अव्ययस्य हि भगवतस्तदेतदागास्यम्।

विवाह के लिए मदनमंजरी सपरिवार आई। उसके प्रणाम करने पर ऋषियों ने आशीर्वाद दिया—

अस्य जगदीश्वरस्य भर्तुर्बहुमता भव।

कात्यायन और धर्मध्वज दोनों ने मदनमंजरी का हाथ राजशिखामणि को पकड़ा दिया। कात्यायन ने जामाता का परिचय दिया—

जामाता ते किमपि परमं जायते ज्योतिराद्यम्।

धर्मध्वज ने कहा—फलमिदमभवदाराधनस्य।

नाट्यशिल्प

अङ्कीय कथा आरम्भ होने के पहले एक बहुत बड़े शुद्ध विष्कम्भक के द्वारा कथा की भूमिका प्रस्तुत की गई है, जिसमें नायक, नायिकादि का और उनकी प्रवृत्तियों का परिचय दिया गया है। द्वितीय अङ्क के पहले के प्रवेशक में विदूषक अकेला पात्र है, जो एकोक्ति द्वारा अपनी बातें कह लेने के पश्चात् रंगपीठ से चला नहीं जाता, अपितु जहाँ का तहाँ बना रहता है और वहाँ नायक राजा उससे आ मिलता है। नियम तो यह है कि प्रवेशकादि अर्थोपक्षेपक के पश्चात् पात्र को रंगपीठ से चल देना चाहिए, वैसे ही जैसे अङ्कान्त में पात्र चले जाते हैं, वस्तुतः इसे प्रवेशक न रख कर द्वितीय अङ्क में रखा जाय तो एकोक्ति का यह अच्छा उदाहरण रहेगा।

द्वितीय अंक में विदूषक की एकोक्ति के पश्चात् राजा की एकोक्ति एक दृष्टि से अनूठी ही है। राजा स्वप्न देख रहा है, जिसमें वह अपनी प्रेयसी से बातें कर रहा है कि मुझे काम के बाणों से बचाओ। तृतीय अंक में नायिका से सद्यःवियुक्त नायक की एकोक्ति मार्मिक है।

द्वितीय अंक के आरम्भ में राजा जो कुछ स्वप्न में कह रहा है। उसे विदूषक सुन रहा है और इस माध्यम से एकाकी प्रणयालाप के दुर्लभ रहस्य दर्शकों को मोह ही लेते हैं। यथा, राजा का स्वप्न में नायिका के प्रति कहना—

सा कार्या चरणाहतिर्मयि दृढं नैतावता मे व्यथा
गात्रं मामकमाघ्नतस्तव पदस्यैव व्यथा स्यादिति॥

ऐसे प्रसंगों में शृङ्गार की अविरल गम्भीर धारा प्रवाहित की गई है।

इस नाटक में तिलस्मी कथा का रस अनेक स्थलों पर मिलता है। द्वितीय अङ्क में कृतमुख के द्वारा राजकोष से सिद्धमणि के चुराने और चन्द्रलेखा गणिका के कान-

नाक काटने और शूरमर्दन के मरवाने की योजना ऐसी है, जो नाटकों मे विरल है।

छायातत्त्व तथा कूट घटना

नाटक मे विदूषक का सत्यवर्मा नामक राजा बनना छाया-तत्त्व का चूडान्त निदर्शन है। वह कपट वृत्त द्वारा चन्द्रवर्मा की तलवार हथिया लेता है। यह सारा व्यापार कुछ तिलस्मी मनोरंजन प्रस्तुत करता है। नाटक के कापटिक संविधानों के कारण पंचम अङ्क के पहले के विष्कम्भ के अन्त मे इसे कपटनाटक कहा गया है।[1]

संवाद

अनेक स्थलों पर संवाद कलात्मक होने के कारण विशेष रोचक हैं। यथा,

राजा—(दैन्यंगद्गदम्) निर्विण्णोऽस्मि तृषा।
मदनमञ्जरी—विद्यते जलं वापीषु।
राजा—न स्वादु तत्
मदनमञ्जरी—स्वादिष्ठं जलमत्र निष्ठति सरसीषु
राजा—सौरभ्यगर्भं न तत्।
मदनमंजरी—पद्मैः सुरभि
राजा—स्थित न कमले
मदनमंजरी—सपानीयो मधु
राजा—नैवाह्न मधुपस्सुधाकरसुधाकांक्षी
मदनमंजरी—न सा मे वशे।

रस

नाटक मे आलम्बन विभाव का स्रोत कवि ने कहीं सूखने नहीं दिया है और न उद्दीपन का चमत्कार कहीं क्षीण हो पाया है। इन दोनों के लिए वर्णनों का भरपूर सहारा लिया गया है। नख-शिख वर्णन अभिप्रेत है।

हास्य रस की किंचित् नई दिशा विदूषक की उक्तियों मे है। उसने सिर पर एक बार राजमुकुट रखा तो हाथ से सिर छूते हुए कहने लगा—यह कितना बड़ा भार है। इससे कण्ठ झुका जा रहा है और आँखें बाहर की ओर आ रही है। कोई बलवान् किसान ही इसका भार ढो सकता है।[2]

वर्णन

कवि को संवादों के माध्यम से रमणीय वर्णन पिरोने का अतिशय चाव है। हिमालय से पुष्करपुर आने के मार्ग मे प्राकृतिक सौन्दर्य का निदर्शन करते हुए शिव कहते हैं—

१. 'अहो भगवत्याः कपटनाटककला-प्रावीण्यम्।'
२. चतुर्थ अङ्क मे

कर्पूराणां मृदुलकदली निर्गतानां परागै-
र्मूले लग्नैरपि मृगमदैर्मुग्धवासन्तिकानाम्।
कीर्णैरत्नैरपि च फणिनां किन्नराः सन्नताङ्गी
कोणे वन्याः कुहचन परिष्कुर्वते कौतुकेन॥

आगे कात्यायन मुनि का आश्रम है—

शृंगाग्रे होमधेनोर्मुकुलितनयनं संविशन्त्याः कपोलं
व्याघ्री कण्डूयमाना वितरति सदयं स्तन्यमेणार्भकाणाम्।
जिह्वाग्रेणांगमेषां स्पृशति मृगपतिः केसरानस्य शश्वत्
कर्षं कर्षं कराग्रैरिह करिशिशवः कल्पयन्ते विहारान्॥

वर्णन में विचित्रता भी है, जहाँ

स्त्रीणां गीत्या प्रवालो विकसति।

उस गीत का वर्णन है—

आस्ये हन्त जिघत्सितान्यपि तृणान्याबिभ्रतः केवलं
पश्यन्तोऽपि न भीरवो जनमिमं प्राग्दर्शनागोचरम्।
अर्धामीलितलोचनाः पुनरमी वातप्रमीशावकाः
संघीभूय वितन्वते श्रवणयोः साकूतभंगीमिमाः॥

कन्दुक-क्रीडा का वर्णन विशेष सांगोपांग है और उसकी पृष्ठभूमि स्वभावतः शृङ्गारित है।

प्रस्विन्नं वदनं प्रकीर्णमलकं पारिप्लवं लोचनं
नीवी विश्लथितां वपुर्विलुलितं निश्वासमत्यायतम्।
विश्लिष्टां कुचकंचुकीं विगलितं कर्णोत्पलं मध्यमम्
क्लान्तं हारमपि च्युतं विरचयन् कान्तो न किं कन्दुकः॥

चतुर्थ अंक के अन्त में राजशिखामणि की एकोक्ति में सन्ध्या का भावुकतापूर्ण वर्णन है। इसमें चन्द्रवर्णन नैषधीय-चरित के आदर्श पर पल्लवित है। फिर मलयानिल की चर्चा है।

शैली

विलिनाथ की शैली समलंकृत है। अनुप्रासों की सांगीतिक लड़ी गूँथने में कविवर निपुण हैं। यथा,

रणत्कनकमेखलं रभसनिःस्वननूपुरं
परिस्फुरितकंकणं रयपरम्परामेदुरम्।
पुरस्कृतकरं मुहुर्नमितपूर्वकायं दृशोः
कृतार्थयति सुभ्रुवः किमपि कन्दुकक्रीडितम्॥

रूपक के द्वारा मूर्तिवत् वर्णना सम्भव की गई है। नायिका है पंचायुधमणि-पंचालिका।

लोकोक्तियों के द्वारा शैली मे बलशालिता भरी गई है। यथा,

१. को वा विमुंचति रत्नम्।

२. गतानामिव निम्नगालहरीणां कामिनीनामपि न सुलभैव प्रत्यावृत्तिः।

३. प्रेयसीवशीकरणफलो हि परिष्कृतिविशेषो लोकस्य। चतुर्थ अङ्क मे।

अध्याय १५

रघुनाथविलास

रघुनाथविलास नाटक के प्रणेता यज्ञनारायण दीक्षित के पिता गोविन्ददीक्षित तंजौर राजवंश के प्रधानामात्य थे।[1] यज्ञनारायण के छोटे भाई वेंकटेश्वर भी उच्च-कोटि के साहित्यकार थे। यज्ञनारायण के मूल गुरु उनके पिता तथा आश्रयदाता रघुनाथ नायक थे। कवि को अपने युग में सम्मान प्राप्त था, जैसा कृष्णयज्वा और सोमनाथादि समकालिक कवियों के द्वारा की हुई इनकी प्रशस्ति से विदित होता है। यज्ञनारायण साहित्य विद्या के अतिरिक्त व्याकरण और दर्शन में पारङ्गत थे।

यज्ञनारायण की साहित्यिक रचनायें इस नाटक के अतिरिक्त रघुनाथभूप-विजय, साहित्यरत्नाकर, अलंकाररत्नाकर आदि हैं।[2]

रघुनाथ-विलास नाटक का सर्वप्रथम अभिनय इसके नायक और कवि के आश्रय-दाता रघुनाथ के समक्ष हुआ था। कवि के पिता गोविन्द ने भी इस अभिनय को देखा था। इस उपस्थिति से नाटक के शोभनीय स्तर पर प्रकाश पड़ता है। कवि को रघुनाथ से पुरस्कार में बहुशः रत्न मिले थे।

यज्ञनारायण ने अपनी कृतियों में आत्मपरिचय दिया है। यथा,

पातञ्जलं भाट्टमतं च तर्कमद्वैतराद्धान्तमवैमि किं तैः
प्रबन्धसन्दर्भभरैः कवित्वविद्यामिदानीं प्रकटीकरोमि ॥

प्रौढश्रीरघुनाथभूपतिकृपास्फारीभवत्साहिती—
साम्राज्यो निगमागमार्थनिपुणः श्रीयज्ञनारायणः।
गोविन्दाध्वरिसूनुरग्रिममिमं सर्गं मखिग्रामणीः
काव्ये पूरयतिस्म विस्मयकरे साहित्यरत्नाकरे ॥

साहित्यरत्नाकर १.५१, ६२

काव्यालंकृतिनाटकादिकलनापाण्डित्यमत्यद्भुतं
सर्वज्ञो रघुनाथभूशतमखो यस्योपदिश्य स्वयम्।
आदातुं गुरुदक्षिणामभिमतार्होप्यहो दत्तवान्
कर्णालङ्करणं निजं च पतगं पादांगदं कंकणम् ॥

रघुनाथविलास नाटक के आरम्भ मे प्रस्तावना में ही सूत्रधार का अपने प्रति-द्वन्दी नटकेसरी से विवाद उठ खड़ा हुआ। नटकेसरी ने कहा—

---

१. इसका प्रकाशन सरस्वती-महल-तंजौर से हुआ है।

२. इनमें से रघुनाथभूपविजय अभी तक उपलब्ध नहीं है। साहित्यरत्नाकर महा-काव्य १६ सर्गों तक मिला है।

सति मयि सकलनटानां करिणामिह निग्रहाय केसरिणि।
नाट्याचार्याभिख्या नट एष प्राकृतः कथं वहते॥ १३

प्रस्तावना के इस विवाद मे नायक रघुनाथ भूप भी आ जाता है। इसमे नाट्य नृत्य और नृत्त का शास्त्रीय विवेचन किया गया है।

प्रस्तावना के उपर्युक्त अश से स्पष्ट है कि प्रस्तावना का लेखक कवि यज्ञनारायण नही है, अपितु सूत्रधार है।

कथावस्तु

नायक तजौर के राजा रघुनाथ ने तीर्थयात्रा करते हुए किसी ब्राह्मण को स्नान करते समय मकर से ग्रस्त होने पर बचा लिया। उसने मकर का पेट तलवार से चीर दिया था। उसके पेट से एक रत्न समुद्गक निकला, जिसमे अतिशय कान्तिमती नासा-मणि थी, जिसके सौगन्धिक सुवास से राजा ने जान लिया कि रत्नधारिणी अभी-अभी ही इस मणि से समलकृत रही होगी। उसका सौन्दर्य-सौरभ पान करने के लिए वह समुद्र की लहरें चीरता हुआ जलयान से लका पहुँचा। वहाँ इरावती के मुहाने के निकट वन मे वही राजकन्या मिली। वह लंकाधिप विजयकेतु की पुत्री चन्द्रकला थी, जिसका रत्न समुद्रतट से मकर ने चुरा लिया था।

नायिका उपवन में सखियो से यह कहती मिली कि नासामणि देने वाले शिव के वरदान के अनुसार मेरा विवाह रत्नसमुद्गक-वाहक रघुनाथ नायक से होगा। नायक उस अवसर पर उसके समक्ष प्रकट हुआ, किन्तु शीघ्र ही रघुनायक का परिचय प्राप्त करने के पश्चात् उसे अन्तःपुर मे जाना पड़ा, क्योकि वहाँ राजकीय जनो के समागम से बडी भीड़ हो गयी थी। नायक भी अन्यत्र जाकर नायिका का चित्र बनाकर मनो-विनोद कर रहा था। इधर कापालिकी प्रतिभावती ने अपनी शिष्या योगविद्या के साथ वियोग-सन्तप्त नायक को बताया कि चन्द्रकला के पिता पारसीको से आक्रान्त होने पर आपके पिता की सहायता से शत्रुओ को परास्त करके प्रतिज्ञा कर चुके हैं कि आप उनके जामाता होंगे। उसने विरह-सन्तप्त नायिका का मार्मिक वर्णन किया और रघुनाथ से उसे मिलाने का वचन दिया।[1] नायक ने उसकी योगसिद्धि-प्रदायिनी मणि-पादुकायें और वेत्रलता प्राप्त कर ली, जिनकी सहायता से वह आकाश-मार्ग से उस उद्यान मे पहुँचा, जहाँ उसे वियोगिनी नायिका दिखाई पडी, जिसे डराकर अपनी शरण मे आने के लिए उसने माया हस्ती वेत्रलता से बनाया। नायिका उसके डर से उस कुञ्ज में आ गई, जहाँ नायक था। क्षणिक मिलन के पश्चात नायक को पुनः

१. क्षामक्षामतनुर्मलोदयन पुरा कामप्यवस्थां गता
तन्वाना निजमगुलीयकमियं तन्वी महत्कंकणम्।
शान्तं पापमितः करोति तदिदं सा किं च बाहांगदं
तन्मत्वा रघुनाथभूप कृपया तस्याः प्रसीदाधुना॥ २.४

वहीं लौट आना पड़ा, जहाँ प्रतिमावती ने उसे पादुकादि सौंपे थे। गान्धर्व विवाह हो चुका था।

इस बीच चंद्रकला के माता-पिता उसका विवाह रघुनायक से करना चाहते थे। प्रमावती ने नायिका को सपरिवार तजौर ला दिया। नायक उसके वियोग में सन्तप्त था ही। वह विक्रमोर्वशीय के पुरुरवा की भाँति चराचर से बातें उन्मत्त की भाँति करने लगा। नायिका उसकी आज्ञा से इन्दिरा-भवन में पहुँचाई गयी। नायक और नायिका का आजीवन मिलन संस्कार वहीं हो गया।

कथा-शिल्प

कवि ने ऐतिहासिक नायक की वैवाहिक कथा को कल्पनारंजित विवरणों से मण्डित किया है। नाटक की कथा विवरणों के कारण शिथिल गति से आगे बढ़ती है। मकर के पेट से नासारत्न क्या मिला—उस पर ऊहापोह में विदूषक के साथ बड़ी देर तक माथापच्ची करने पर यह निर्णय हुआ कि–

> द्वीपे क्वापि पयोधिना परिवृते दीव्यत्यहो नायिका।
> नासारत्नमिहैव तत्परिसरे नाकर्पयेत् किं स माम् ॥१.५४

दूर से ही नायक को नायिका दीख पडी तो वह उसका नख-शिख वर्णन करने लगा। आठ पद्यों में नायिका निरूपित हुई। अनेक स्थलों पर कवि ने भूतपूर्व कथांश प्रेक्षकों को सुनवाया है। पंचम अंक के आरम्भ में विदूषक आद्यन्त कथा सुनाता है।

अभिनय के लिए एक ही रंगमंच पर अनेक भाग हैं। प्रथम अङ्क में नायक और नायिका एकही रंगमंच पर अलग-अलग स्थलों पर अभिनय करते हैं। नायक तो नायिका वर्ग को देखता है, किन्तु नायिका नायक को नहीं देखती। वहीं एक तीसरे स्थल पर विदूषक मधु के छाते के नीचे मुंह बाये सोया है। वह भी दूसरे पात्रों से अनदेखा रह कर कुछ बडबड़ाता है। तीसरे अंक में नायक रंगपीठ पर अपने मनोभाव व्यक्त करता है और दूसरी ओर नायिका और उसकी सखियों का संवाद चलता है।

एकोक्ति

द्वितीय अंक के आरम्भ में नायक की एकोक्ति (Soliloquy) अतिशय मार्मिक और हृद्य है। इसके ८ पद्यों और गद्यांशों में नायिका के प्रति नायक का मोहोदय, मन्मथ की अभ्यर्थना, मदनतापविनोदनोपाय, मनोविनोदोपाय, दक्षिणाक्षिस्पन्द की व्यञ्जना, भावी कार्यक्रम की योजना आदि चर्चित हैं। मन्मथ की अभ्यर्थना है—

> तानेव स्वदमानचाप भगवन् सच्चोदयास्मिञ्जने,
> ये पूर्वं प्रहितास्त्वया दृढमुरस्येणीदृशः सायकाः।
> एवं चेदुभयोर्व्यथा न भविता यस्मादिदं वर्मितं,
> वक्षोजाद्रियुगेन तत्प्रहितेस्ते चादिशताग्रा यतः ॥२.६

तृतीय अक के आरम्भ मे भी नायक की लम्बी एकोक्ति है, जिसके द्वारा वह मणिपादुका का लङ्का आने में अद्भुत उपयोग, प्रातः काल का कामुक वर्णन, चक्रवाकों की अवस्था, प्रमदवन-वर्णन, रति की मूर्ति का वर्णन, और अन्त मे नायिकागम की सम्भावना १८ पद्यों और कतिपय गद्यांशो मे प्रस्तुत करता है।

समीक्षा

विदूषक के बुभुक्षित होने की बात पचीसो बार कह कर कवि क्या हास्य उत्पन्न करता है—यह समझना कठिन है। नाटककारो की यह रीति अपने आप मे तुच्छ है।

लम्बे-लम्बे समस्त पदो से यज्ञनारायण का पाण्डित्य प्रसिद्ध हुआ है, किन्तु साथ ही इस कृति की नाटकीयता और अभिनयार्हता विनष्ट हुई है।

कवि का अपना ज्ञानातिशय-प्रदर्शनमात्र के लिए सगीत के रागादिक की लम्बायमान चर्चा नायक के मुख से कराना अशाश्वत रुचि का उद्भावक है। इस सन्दर्भ मे औडव, षाडव, नाटराग आदि आज के साधारण पाठको के लिए नाममात्र हैं।

यज्ञनारायण ने कालिदास का स्थान-स्थान पर अनुसरण किया है। यथा इनका पद्य—

गाहन्ते सरयं सरासि विपिने गन्धद्विपेन्द्राः करैः ॥१·११४

अभिज्ञानशाकुन्तल के पद्य—

गाहन्तां महिषा निपानसलिलं शृङ्गैर्मुहुस्ताडितम् ॥२·६

से भाव और छन्द की दृष्टि से सर्वथा समान है। नायिका की भ्रमर से रक्षा करने के लिए नायक का आगम अभिज्ञानशाकुन्तल मे है तो यज्ञनारायण ने हाथी से नायिका को डराकर नायक का सामीप्य प्राप्त करा दिया।

पाँचवें अङ्क मे वियोगी नायक सहकार, केसर तरु, पवन कुमार, राजहंस, मेघ आदि से प्रिया-विषयक चर्चा करता है।

आलिङ्गितोऽहमनया त्रासविलोलाक्षितारका तन्व्या ॥३·३६

कहीं-कहीं कवि अनुचित बातें भी प्रस्तुत करता है। यथा, नायिका का पिता कहता है—

अपि नाम कुशल मदनाशुगविह्वलायै चन्द्रकलायै ?

क्या कोई पिता अपनी कन्या के विषय मे ऐसा कहेगा ? वैसे ही कापालिको का नायिका के पिता से कहना है—

एतान्येव विभूषणानि वनितामेता प्रसादाद्दिवे—
रक्षायैव विभूषयन्तु रुचिराण्यन्यादृशानि क्रमात्।
कान्तर्यं नयनद्वयस्य वपुषः कार्श्यं च वक्षोजयोः,
स्थौल्य चूचुकयोश्च नैल्यमपि च श्वैत्य तथा गण्डयोः ॥४·२२

क्या कोई पिता अपनी कन्या के विषय मे ऐसा सुनना चाहेगा ?

नित्य नई-नवेलियों को अन्तःपुर मे लाकर रखने वाले राजाओं की भर्त्सना होनी चाहिए थी, न कि सौन्दर्यालोचन-विज्ञान की दुहाई देकर इस प्रथा को स्वाभाविक

बताना चाहिए। यज्ञनारायण का इस प्रसंग में यह कहना चिन्त्य है—

उचिते वस्तुनि दृढमुदेति यदि न स्पृहा।
विशेषदर्शिता का वा विषये विदुषस्तदा ॥५·२३

समाज और विशेषतः मनचले लोगों को कवियों की ऐसी तर्कणा ले डूबी है।

वर्णना

यज्ञनारायण दीक्षित वर्णना को लम्बायमान करने में बाणभट्ट से प्रभावित प्रतीत होते हैं। प्रथम अंक में उनका तंजौर का वर्णन कादम्बरी मे उज्जयिनी-वर्णन से वासित लगता है। नायिकान्वेषण-परायण नायक का कई पृष्ठों तक इधर-उधर चक्कर लगाने का वर्णन कर लेने के पश्चात् कवि बताता है—

पद्मेक्षणायाः पथि दक्षिणासमं, तस्याः प्रयान्त्याः पदमेनदेकम्।
हस्तावलम्बावनतार्धविग्रह-स्फीतेन भारेण भृशं यदर्पितम् ॥१६१

चतुर्थ अंक में रघुनाथ के वर्णनों की आवश्यकता इस नाटक में नहीं है। कवि अपने आश्रयदाता और गुरु का वैभव वर्णन करने मे बेजोड़ हैं, किन्तु ऐसा करने में नाटकीयता की अतिशय हानि हुई है—यह असन्दिग्ध है।

वर्णनाद्वार से कवि ने सहकार का पात्रीकरण किया है। नायक उससे पूछता है—

आयाति किं पथि वधूरघुनाथरीपा-
दाचक्ष्व मे त्वमवलीढनभोविभागः।
प्रांशुत्वमाशु सफलं भवतोऽपि भूयात्,
सोऽय जनोऽपि भजनात् सुखमद्वितीयम् ॥५.८

(पुनर्विभाव्य सहर्षं) सेयमायातीति प्रचलितपल्लवांगुलिभिरेष संज्ञापयति।

रस

हास्य की कुछ नई योजनायें इस नाटक में मिलती हैं। प्रथम अंक में विदूषक नायक की तलवार अपने हाथ से न ढोकर अपने सिर पर रख कर ढोता है और पूछने पर कहता है—

महाराजकरग्रहयोग्यं खड्गमहं ब्राह्मणोऽपि कथं हस्ते वहामीति, उत्तमांगेन वहामि।

अन्यत्र विदूषक मधु पाने के लिए—

कावेष्टितमुत्तरीयमुपवर्हयन्नुत्तानशयस्तत्रैवासक्तदृष्टिर्मधुच्छत्रं पश्यति।

श्रृङ्गार की विविध सरणि को प्रोन्नत करने में कवि को सफलता मिली है। वह नायक की पूर्वराग की स्थिति वर्णन करता है, नायिका का ध्यान करते हुए उसे वन-वन भ्रमण कराता है, उसमे नायिका का नख-शिख चित्र बनवाता है, प्रतिमावती से वह नायिका की वियोगावस्था को सुनता है और चन्द्रमा को उपालम्भ देता है—

मन्थ्यानर्तनसत्वरभ्रमिकृतोन्मर्दात् कपर्दान्तरात्
देवस्य स्मरदेहघस्मरमहाकीले निटालानले।
क्ष्माधीश भवान् प्रमादवशतो यत्प्रच्युतो न स्वतः
तत्तादृग्विधदुर्विधेर्विरहिणा शङ्के फल केवलम् ॥२.५१

नायक को वियोगिनी नायिका मिलती है—

क्षामक्षाममिदं वपुः प्रतिकल कामेन मुक्तैः शरैः
स्थूलस्थूलमुरोजयोर्युगमिदं दुर्वारमुज्जृम्भते।
स्विन्नस्विन्नमिद पदद्वयमहो स्थाने कृतं वेपते
वार वारमिद मनश्च विहृतौ बद्धादरं जायते ॥३.१९

शैली

यज्ञनारायण की शैली समास-ग्रहिल कही जा सकती है। छः पंक्तियों तक दौड़ते हुए समास अनुप्रासालंकारो की सांगीतिक लहरी मे अनुस्नात होकर पाठक को पाण्डित्य-प्रकर्षदान करने मे बहुश. सफल हैं।

जिस किसी वस्तु का यज्ञनारायण ने दर्शन कराया है, उसको प्रायश सारे सम्भार के साथ रखकर सम्पूर्णता प्रदान की है। कवि की मरकत चतुष्किका है—

सन्निहितनर-महिलबालकर्पूर-मदनकाननपरिणतिविदलितदलविगलित-कर्पूरपूरकरीषस्वच्छन्दकन्दलितचन्दनविटपिविटपच्छटागाढावलीढाधिकतमैलालवगलताविताननप्रच्छायशीतले मरकतचतुष्किकातले।

इस नाटक के कुछ गीत आधुनिकता के प्रागुद्भावक हैं। यथा,

वदने मुकुरो मुकुरे वदन, प्रतिबिम्बमुपेत्य सम बलवत्।
प्रभयेव रयेण परस्परमप्यधुना विदधाति समाक्रमणम् ॥४.३१

कहीं-कहीं अन्योक्तिद्वार से भावुकता का प्रगमन कराया गया है। यथा,

स्रोतः शतेन सुमनस्सरितो धृताया
क्षोण्या वसन्ततितृपा क्षुभितान्तरंगः।
तन्वीन किं मरुमरीचिरतरंगलेखा—
मालोकयञ्जगति हन्त जनः प्रमोदम् ॥५.४

कवि ने कुछ शब्दों का प्रयोग देशी भाषाओं से अपनाया है। चीटी शब्द का प्रयोग पत्र के अर्थ में इस प्रकार किया गया है।

छन्दः

नाटक में काव्यात्मक पद्यों की अनिवार्यता है। संवाद का पद्यों में होना अस्वाभाविक है, किन्तु काव्य का उत्कर्ष संगीतात्मक छन्दों के द्वारा द्विगुणित होता है। रघुनाथ विलास में छन्द कवि ने शार्दूलविक्रीडित में ५३ और वसन्ततिलका में ३१ पद्यों की रचना करके तद्विषयक अपनी प्रौढ़ता का परिचय दिया है।

अध्याय १६

पारिजातहरण

पारिजातहरण[1] के रचयिता कुमार ताताचार्य के पितामह श्रीनिवास गुरु और पिता वेङ्कटगुरु थे। इनकी जन्मभूमि और निवास-स्थान उत्तर अर्काटमण्डल में वन्दवासी जनपद में हुआ था। इनकी जन्मभूमि आज का गाँव नावल्पाक्का नामक है। इनका और इनके पूर्वजों और वंशजों का श्रीपदपुरी (तिरुप्पदी) से विशेष लगाव था। इनके भक्त शिष्य ने इनकी प्रशंसा में कहा है—

> कुमारताताचार्यं सदाचारपरं सदा,
> वेदान्ताचार्यसिद्धान्तविजयध्वजमाश्रये ।
> वेदान्तद्वयसिद्धान्तविमलीकृतमानसम्
> तारकं भवभीतानां ताताचार्यमहं भजे ॥

तंजौर के राजा अच्युत नायक ताताचार्य के आश्रम में एक वर्ष रह कर उनके शिष्य बने थे। जब वे राजा हुए तो उन्होंने ताताचार्य को तन्जौर बुलवाया और उन्हें नगर में रखना चाहा। वे नगर में नहीं रहना चाहते थे। अतएव अच्युत ने उनके लिए कावेरी के तीर पर नीलमेघ भगवान् के मन्दिर के निकट भवन बनवा दिया। ताताचार्य कुछ समय तक वहाँ सकुटुम्ब रहे। वहाँ असंख्य-विध यज्ञों के सम्पादन के कारण इन्हें लोग चतुर्वेदशतक्रतु कहते थे। उन्होंने राजा को सर्वथा सुवृत्त और विद्वद्गुणग्राहक बनाया। इनके आशीर्वाद से नायकवंशी राजाओं का काव्यानुराग अमर हुआ। वे अच्युतनायक (१५७२–१६१४ ई०) रघुनाथ नायक (१६१४–१६३३ ई०) तथा विजयराघवनायक (१६३३–१६७३ ई०) के राजगुरु रहे। इन्हीं ताताचार्य के रचे या प्रतिलिपि बनाये हुए ग्रन्थों के संरक्षण के लिए जो ग्रन्थालय बनाया गया, वह आज का सरस्वती महल है।

ताताचार्य को परम पद की प्राप्ति कुम्भघोण क्षेत्र में हुई। वहीं कोमलाम्बा के स्वप्नादेशानुसार इनकी शिलाधातु की मूर्ति बनी हुई आज भी देखी जा सकती है। ताताचार्य ने इस नाटक की प्रस्तावना में अपना परिचय इस प्रकार दिया है—

> सुनुरस्य कुमारताताचार्यगुरुः सूरीन्द्रचूडामणिः
> प्रत्युद्यत्प्रतिवादिकुञ्जरघटापंचाननप्रक्रमः ।
> व्याख्याता फणिराट्कणादकपिलश्रीभाष्यकारादिम-
> ग्रन्थानां पुनरीदृशां च करणे ख्यातः कृतीनामसौ ॥१२

नटी प्रस्तावना में नाटक की कथा को सूत्ररूप में यों प्रस्तुत करती है—

---

१. इसका प्रकाशन सरस्वती महल पुस्तकालय तंजौर से १९५८ ई० में हुआ है।

मन्दाकिनीमृणालं मन्दं गृहीत्वा वलति पवमानः ।
बहुवल्लभस्य दातुं कलहकृते एव राजहंसस्य ॥१८

पारिजातहरण की कथावस्तु शिशुपालवध के अनुरूप विकसित है। शिशुपालवध में जिस प्रकार युधिष्ठिर के यज्ञ और शिशुपाल के वध के दो काम कृष्ण के सामने हैं, वैसे ही इसमे भी नारद के द्वारा पारिजातोपहार से उद्भावित सत्यभामा के लिए पारिजातापहार और ऋषियो की इच्छा की पूर्ति के लिए नरकासुर का वध—ये दो कार्य हैं, जिनके लिए वे बलराम और उद्धव से परामर्श शिशुपालवध की भाँति ही लेते हैं। तभी राजहंस नामक दूत ने १६००० बन्दिनियों की पत्रिका माधव को दी। पारिजातहरण की कथा-समाप्ति पाँच अङ्कों में हुई है।

कथावस्तु

परिजातहरण की कथा हरिवंश, विष्णुपुराण और भागवत में मिलती है। इसके अनुसार नारद को कृष्ण और इन्द्र का युद्ध देखना था। बस उन्होंने पारिजात का एक पुष्प कृष्ण के हाथ मे उस समय दिया, जब वे द्यूतक्रीडा में रुक्मिणी से हारे थे। कृष्ण ने वह पुष्प रुक्मिणी को देकर अपने को पणबन्ध-मुक्त किया। नारद जी ने काम बनाया और सत्यभामा से कहा कि कृष्ण ने रुक्मिणी को पारिजात पुष्प दिया है। सत्यभामा ने पुष्प के लिए मान किया। कृष्ण ने कहा कि पुष्प आपको भी दूँगा। उस समय तपस्वियों ने आकर कृष्ण से कहा कि नरकासुर के अत्याचार से त्रिलोकी को मुक्त करें। नरकासुर के द्वारा बन्दी बनाई हुई सोलह सहस्र कुमारियों का प्रेमपत्र और चित्र राजहंस दूत ने दिया। कृष्ण ने समुद्रमार्ग से प्राग्ज्योतिषपुर जाकर नरकासुर को मारकर कुमारियो को बलदेव के साथ द्वारिका भेजा। वही से वे सत्यभामा और प्रद्युम्न के साथ इन्द्रपुरी पर आक्रमण करके उसे परास्त कर पारिजात सत्यभामा को देते हैं। द्वारका लौटने के मार्ग में कृष्ण सत्यभामा को आकाश-मार्ग से मेरु, मन्दर, ताम्रपर्णी, चोल, श्रीरंग, कावेरी, काची, गंगा, सरयू, हिमालय, कैलास आदि की रमणीयता दिखाते हैं। अन्त में नरकासुर से मुक्त कुमारियों से कृष्ण का विवाह होता है।

इस नाटक का नाम यद्यपि पारिजातहरण है, किन्तु इसमें पारिजात की प्राप्ति के विषय में केवल इतना ही कहा गया है—

अङ्के नादाय भामामविरलपुलकामण्डजेन्द्राधिरूढः
प्रद्युम्नेनानुयातः प्रधनविजयिना प्राप्नमायारयेन।
देवो दृड्मोददायी भमितिसुरगणे निर्जिते निर्जरेन्द्रे
प्राप्तस्तं पारिजातद्रुमगरवनीभूपण कसजेता ॥

यह भी नेपथ्योक्ति है।

रंगमंच की भारतीय मर्यादा लुप्त प्राय सी मिलती है। द्वितीयार्द्ध में तभी तो नाट्यनिर्देश है—

सरभस गाढमालिंग्य मुखमाघ्राय वक्षसि कृत्वा

यह माधव और सत्यभामा के बीच मानविनोदन की प्रक्रिया है। रंगमंच पर यह नहीं दिखाना चाहिए।

इस नाटक में अर्थोपक्षेपक का काम पत्र से लिया गया है। नरकासुर के द्वारा वन्दिनी बनाई हुई १६००० गोपियों का समाचार था—

विरहिजनविपाणामाकरो मारुतानां
मलयगिरिमुष्मात् प्रापिता दक्षिणाणाम्।
सुचिरमनशना यज्जानकी राक्षसेन
प्रियमपि पुनरागाज्जीवितं धारयन्ती॥ ३.२१

पारिजातनाटक में छायातत्त्व विशेष रमणीय है। राजहंस नामक दूत ने नरकासुर के द्वारा वन्दिनी बनाई हुई १६००० कुमारियों के हावभाव विलासादि से समृद्ध कामिनियों की चित्रपटी अर्पित की, जिनको देखकर कृष्ण का भाव हुआ—

शरीरं सौन्दर्यप्रसवखनिरेका न वनिता
मनो मे तन्वेतत्तरलतरलं लेखनपदम्।
अनालोकं रंतन्निबिडतरमोहान्धगहनं
स्वयं येनानङ्गोप्युपकरणहीनोऽयमलिखत्॥ ३.३२

गरुड को पात्र बनाकर रंगमंच पर उससे संवाद कराना भी छायात्मक है।

रङ्गमञ्च पर नौका-चालन का दृश्य दिखाया गया है। नौका के ऊपर वातनिरोध पट्टी बाँधी गई थी। नौका-चालन और समुद्रयात्रा का दृश्य संस्कृत-नाट्यसाहित्य में विरल है। माधव का सत्यभामा से कहना है—

करटिकिटीन्द्रसान्द्रविकटाग्रतटीविटपि—
त्रुटितघनाघनस्तनितसंक्षुभिताग्रपयः।
सुतनु पुरावराहरदनाग्रसमुद्धृतभू—
रिव कूलमूल एष धुरि भाति वराहगिरिः॥

वीरों को साक्षात् युद्धभूमि में लड़ते हुए न दिखाकर पर्वत और नारद के मुख से उन वीरों के संवादों और कार्यकलापों को प्रस्तुत किया गया है। पर्वत माधव के उत्तर को नारद को सुना रहा है—

भोजात्मजामभिलषन् दमघोषसूनु-
र्यस्ते सुहृत्सवनसंसदि धर्मसूनोः।
आशाभिपूरणमगादमुनैव युक्तं
सर्वं सहात्मय-साप्तपदीनमेतत्॥ ४.५५

मुहावरेदार भाषा का प्रयोग कहीं-कहीं प्ररोचक है। यथा विदूषक का कथन—
पारिजातप्रसंगताण्डवितस्य कोपग्रहस्य अग्रतो मां बलिं करिष्यसि।
कवि ने कहावतों का प्रभावपूर्ण प्रयोग किया है। यथा,

'वृश्चिकभयात् पलायमानस्याशीविषमुखपतनम्'

ताताचार्य की शैली सरलतम वैदर्भी का अद्वितीय आदर्श है। छोटे-छोटे वाक्य, सन्धियों का निर्गम्य और सावादिकता इस नाटक मे विशेष रूप से स्वाभाविक है। यथा नारद का कथन है–

पारिजातप्रसूनेन देवि देदीप्यसेतराम्।
माधवप्रतिबद्धेन यथा माधवनी वनी॥ १·३०

उपर्युक्त श्लोक से कवि की सानुप्रासित गीतात्मकता प्रत्यक्ष है।

कवि ने सर्वत्र प्रकृति का मधुर और सौहार्दपूर्ण रूप व्यक्त किया है। यथा,

पत्राणामधुना कठोरतपनग्लानेरधोलम्बिनां
प्रान्तेषून्नतिशालिना परिचितच्छायान्तरालाश्रिता।
हंसाः पद्मवनीषु निश्चलवपुस्संकोचपिण्डीकृता
मीलन्नेत्रपुटा मिलन्ति विशदाम्भोजातकोशश्रिया॥ १·३२

चापलूसी करने की रीति इसमें अच्छी निखरी है। कृष्ण सत्यभामा का क्रोध शान्त करने के लिए कहते हैं—

त्वत्कैकर्ये त्वरितहृदयं षोडशस्त्रीसहस्र
देवास्सर्वे शतमखमुखास्त्वत्कटाक्षप्रतीक्षाः।
त्वत्प्रेयस्यस्त्रिदशवनिताः पर्वतापत्यमुख्या—
नाथस्सोऽयं सकलजगतां नाथति त्वत्प्रसादम्॥ २·१६

माधव की सत्यभामा के प्रति व्याजस्तुति है—

वक्त्रं चेदयि वचिनेन्दुवलयं मायामयं मध्यमं
वक्षोजौ वनजाक्षि किं च हरतोलक्ष्मी कुलक्ष्माभृतोः।
पादश्चोरयते पयोजमुपमा पाणिः प्रवालश्रियं
मुष्णाति स्वयमेष वृष्णितिलको हन्त त्वया चोरितः॥ २·२०

परिजातहरण पर अभिज्ञानशाकुन्तल का पदे-पदे प्रभाव परिलक्षित होता है। दूसरे अंक के आरम्भ मे विदूषक अभिज्ञानशाकुन्तल के विदूषक सा आचरण भी करता है। अन्यत्र भी––

सहजरमणीयस्य वस्तुनस्सर्वमप्यलङ्करणाय।

यह उस समय की विदूषक से नायक द्वारा चर्चा की जाती है, जब वे दोनों सत्यभामा से सखियों की बातचीत सुन रहे हैं।

अन्योक्ति के सौरभ से परिजातहरण सुवासित है। यथा, सत्यभामा कृष्ण से कहती है—

मधुरमधुरभणितयः यावत् स्वकार्ये साधका भवन्ति।
निष्ठन्ति मुग्धसविधे एषा प्रकृतिः खल्वन्यपुष्टानाम्॥ ३·३४

शिल्पवैशिष्ट्य

पंचम अंक का आरम्भ चूलिका से होता है। ऐसा करना विरल है। यहाँ चूलिका से विष्कम्भक का काम लिया गया है। ऐसा लगता है कि लगभग ३५ पात्रों की संख्या अधिक होने के कारण कवि ने बिना पात्रों की चूलिका को उपादेय माना।

विमान द्वारा सारे भारत का चक्कर नायक से कराने की रीति सम्भवतः राष्ट्रीय एकता को प्रतिफलित करने के लिए मुरारी ने नाटक साहित्य में आरम्भ किया, जिसे परवर्ती अनेक कवियों ने अपनाया। परिजातहरण में कृष्ण विमान द्वारा भारत का पर्यटन करते दिखाये गये हैं।[1] कवि ने रुचि पूर्वक पूरा पंचम अंक इसी वर्णन के लिये रखा है। प्राग्ज्योतिपपुर नरकासुर की राजधानी थी। यह प्राग्ज्योतिष-पुर कहाँ है? इस प्रश्न को लेकर इसके सम्पादक देवनाथाचार्य ने सुझाव दिया है कि प्राग्ज्योतिषपुर चीन देश में आज चूङ्कि है। चीनी भाषा में चू का अर्थ प्राक् और किङ का अर्थ ज्योतिष है। चूकिंग हिमालय से निकलने वाली यागटिसीक्यांग नदी के तट पर है। नरकासुर के मारने के पश्चात् कृष्ण ने इस दिन इस विजय के उपलक्ष में जो दीपावली का महोत्सव प्रवर्तित किया, वह आज भी चूँकिंग में मनाया जाता है।[2]

छन्द

ताताचार्य ने युगानुरूप शार्दूल विक्रीडित में ६० पद्यों की अपनी छन्दःप्रौढि को प्रमाणित किया है। इसके पश्चात् वसन्ततिलका में २२ और गीति में १६ पद्यों का सन्निवेश है।

---

१. इस पर्यटन में माधव सत्यभामा के साथ हैं। लोकालोक पर्वत, चन्द्रमार्ग, आकाश-गंगा, रत्नशिखरी (मेरु), उस पर बैठे हनुमान्, लङ्का, कांची, गंगा, यमुना, हिमालय, द्वारका आदि का वर्णन वे सत्यभामा को सुनाते हैं।

२. इस का विस्तृत विवेचन The Journal of The Tanjore Saraswati Mahal library भाग १२'१ में है।

अध्याय १७

प्रभावती-परिणय

प्रभावती-परिणय नामक नाटक के रचयिता हरिहरोपाध्याय का प्रादुर्भाव सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में मिथिला में हुआ।[1] मिथिला में महाकवियों की परिषद् थी, जिसके लिए समय-समय पर नवीन नाट्यकृतियों का अभिनय नाट्यमण्डली करती थी। इसकी प्रस्तावना में ऐतिहासिक महत्त्व की कुछ सूचनायें मिलती हैं। यथा,

(१) शङ्कर मिश्र नामक कोई श्रेष्ठ नाटककार सुदूर प्राचीन काल में हुए, जिनकी रचनाओं का सर्वाधिक सम्मान उस प्रदेश में था। उनके पश्चात् रुचिपति नामक महाकवि की नाट्यकृतियों का मिथिला में सम्मान रहा है। सोलहवी शती में तीसरे नाट्यकार रामेश्वर मिश्र ने मिथिला-भूमि को समलंकृत किया। रामेश्वर मिश्रा हरिहर उपाध्याय के नाना थे।

(२) प्रभावती परिणय की रचना किसी राजादि आश्रयदाता के प्रीत्यर्थ धनागम के लिए नही हुई, अपितु कवि ने अपने छोटे भाई नीलकण्ठ के पढ़ने के लिए इसका प्रणयन किया।

(३) नाट्य-मण्डलियों को कवि अपनी कृतियाँ अभिनय करने के लिए दे जाते थे, जैसा सूत्रधार के नीचे लिखे वक्तव्य से निःसन्देह प्रमाणित है—

'अभिनयाय चास्मासु भरतेषु समर्पिता।'

इस सूत्रधार के वचन से प्रतीत होता है कि प्रस्तावना-लेखक सूत्रधार है, न कि नाट्यकार।

(४) अभिनय की ओर चित्त को प्रसक्त करने के लिए सगीत का उपयोग किया जाता था। सूत्रधार का कहना है—

सांसारिकेऽस्मिन् व्यापारे धावतोऽहर्निशहृदः।
संगीतभित्तिस्थगनान्न स्थिरीकरणं परम्॥

हरिहर के माता-पिता का नाम लक्ष्मी और राघव था। उनके पितामह हृषीकेश प्रख्यात पण्डित थे। हरिहर का निवास-स्थान बिट्ठो नामक गाँव था। इनकी अन्य रचना हरिहर-सुभाषित अथवा सूक्ति-मुक्तावली मिलती है।

कथावस्तु

वज्रनाभ की कन्या प्रभावती के सौन्दर्य से प्रभावित होकर प्रद्युम्न उससे मिलने के लिए वज्रनाभ-पुरी में छिपकर आ पहुँचा है। उसका चित्र हाथ में लेकर प्रद्युम्न कहता है—

---

१. इसका प्रकाशन हरिदास-संस्कृत-ग्रन्थमाला २८५ में चौखम्भा-संस्कृत-सीरीज आफिस, वाराणसी से १९६६ ई० में हुआ है।

चैत्रीं चन्द्रद्युतिमतितरां दूरतः कारयित्वा
जित्वा जाम्बूनदकणसारसम्भारशोभाम् ।
चित्रोन्नीता मदयति मनः कान्तिरम्भोरुहाक्ष्याः
साक्षादस्यान्नयनमिलने स्यान्न यत्तन्न विद्मः ॥ १.४१

इधर नायिका भी नायक के ऊपर प्रणयासक्त है। एक दिन नायिका मदनातङ्क से व्यथित है। उसे अपनी नई सखी शुचिमुखी नामक हंसिनी मिलती है। वह बताती है कि मैंने तुम्हारा चित्र नायक को दिया है और वह तुम्हारा बन चुका है। नायिका के माँगने पर वह नायक का चित्र बनाकर उसे देती है। नायिका उसके प्रति विशेष अनुराग प्रकट करती है।

तृतीय अङ्क में नायक का नायिका के लिए मदनातङ्कित होने की चर्चा है। उसको शुचिमुखी और भद्र की योजनानुसार नाट्यमण्डली में नायक की भूमिका में प्रस्तुत करके वज्रनामपुर में पहुँचाया जाता है। उसे अभिनय करते हुए नायिका देखती है और अधिक मदनातंकित होती है। एक दिन नायक का प्रेम-पत्र नायिका को शुचिमुखी देती है। नायक भ्रमर का रूप धारण करके नायिका के प्रेमी सा व्यवहार करता है। अन्त में प्रद्युम्नरूप में प्रकट होता है, किन्तु शरीरतः किसी को दिखाई नहीं पड़ता। ऐसी स्थिति में स्फटिकशिलावेदिका में उसका चित्र दिखाई दे रहा था। नायक का पहले से ही एक चित्र विराजमान था। दूसरा प्रतिबिम्बित चित्र नायिका के लिए पहेली बन गया कि यह कहाँ से क्या है? शुचिमुखी ने वास्तविक चित्र को छिपा दिया।

अन्त में नायक प्रकट हुआ। नायिका शनैः शनैः उसके निकट सम्पर्क में आई और वे दोनों पर्यङ्किका-मन्दिर में रात बिताने के लिए जा पहुँचे। सखियों के संविधान से नायक के मित्र गद और साम्ब कन्यान्तःपुर में प्रच्छन्न होकर प्रवेश करने की योजना कार्यान्वित करने का उपक्रम करते हैं।

षष्ठ अङ्क के पहले विष्कम्भक में कंचुकी और कुब्जक के संवाद से प्रतीत होता है कि प्रच्छन्न नायकों के साथ प्रभावती, आदि नायिकाओं का गान्धर्व विवाह सम्पन्न हो गया। पश्चात् नायिका प्रभावती स्वप्न देखती है कि उसका नायक उसके पिता को यमलोक ले जाता है। नायक छिपे-छिपे इस स्वप्न को सुन लेता है, जब नायिका उसे अपनी सखी को बता रही है।

दानवों को ज्ञात हुआ कि यादवों ने अन्तःपुर को दूषित किया है। इसमें इन्द्र और शेषनाग ने भरपूर सहायता की। प्रद्युम्न ने मायात्मक युद्ध किया। वज्रनाभ उससे स्वयं लड़ने के लिए सन्नद्ध था। इन्द्र की सेना प्रद्युम्न की सहायता करने के लिए आ पहुँची। अन्त में कृष्ण भी द्वारका से युद्ध में भाग लेने के लिए आ पहुँचे। गरुड ने असंख्य दानवों को मृत्यु के घाट उतारा। कृष्ण से प्राप्त चक्र से प्रद्युम्न ने वज्रनाभ का सिर काट डाला। अन्य महादानव भी मारे गये।

कथावस्तु में संविधानों के द्वारा उच्चावचता का समावेश किया गया है। यथा,

त्रिभुवनजययात्रा सम्भ्रमः क्वायमद्य क्व च निजनगरेऽपि द्रोहिणो दुर्निवाराः।
क्व तदमरवधूटी लुण्ठनोद्युक्तमन्तः क्व पुनरुपनिपातोऽन्तःपुरे दुर्नयस्य ॥७.१३

इसके अनुसार कहाँ वज्रनाभ की त्रिभुवन जय-यात्रा होने वाली थी और कहाँ उसी के नगर पर शत्रु चढ बैठे।

नाट्य-संविधान

हरिहर के नाट्याभिनय-सम्बन्धी कतिपय संविधान उसकी नवनवोन्मेष शालिनी कला-प्रवणता प्रमाणित करते हैं। रंगमंच पर नायिका के अंग-प्रत्यङ्ग का प्रेक्षकों को प्रत्यक्ष दर्शन करा देना उसकी विरल योजना है, जो लोकरंजक तो विशेष है, यद्यपि शिष्ट नहीं कही जा सकती। षष्ठ अंक में इसके लिए कवि ने पहले तो वायु की प्रखर गति से नायिका के वस्त्रादि के अस्त-व्यस्त होने की बात कही है। उससे बचने के लिए जब वह क्रीडाशैल-शिखर-प्रसाद की ओर वेग से जा रही है, तब नायक को नायिका का अनावृत अंग-सौष्ठव देखने को मिलता है। उसे देखकर वह कहता है—

यान्याभिरेव सुरतावसरे कदाचिदगानि यानि कथमप्यवलोकितानि।
सन्दर्शितानि सुदृशो ललितानि तानि व्यस्ताम्बरं मुहुरनेन समीरणेन ॥६.२७

क्यों न मनचले प्रेक्षक इस अभिनय को पुन: पुन: देखने के लिए इस नाटक का प्रयोग करायें।

इसी प्रकरण में पानी से भीग जाने के कारण फिसलन हो जाने से क्रीडाप्रासाद की सीढी पर चढते हुए नायक आलिंगन करते हुए उसे लेकर तो नहीं चढ़ता। केवल हाथ में हाथ धरे चलने का प्रस्ताव करता है। इस प्रकार नायक के शब्दों में—

प्रगुणय जगतीयौवराज्यं स्मरस्य ॥६.३३

वह नायिका की अनुमति चाहता है कि मैं तुम्हारे केश सँवार दूँ।

रंगमंच पर नायक नायिका का आलिंगन करता है और कहता है—

मदुत्सगासंगस्फुरितरचिमालोच्य भवती
हसन्ती हारिद्रद्रवनवनदीमंजनगिरेः।
धनक्रोडक्रीडातरलमियमात्मीयमफलं
वपुर्विद्युद्वल्ली विघटयति भूयो घटयति ॥६.४६

यह है रुचि, जिसका अनुवर्तन करते हुए कवि को यह सब विशेष संविधानों के द्वारा लाना पडता है।

प्रभावती-परिणय के प्रथम अंक में भद्र और सारण के संवाद द्वारा जो नाट्य कथा की भूमिका प्रस्तुत की गई है, वह विष्कम्भ के द्वारा होनी चाहिए थी। कवि को यह नियम मान्य नहीं लगता कि पिछली घटनाओं की सूचना अर्थोपक्षेपक से ही देनी चाहिए।

छायातत्त्व

प्रभावतीहरण में छाया-तत्त्व की प्रचुरता है। यथा, प्रथम अंक में नायिका का चित्र लेकर नायक का भाव विभोर होना, जिसे देखकर भद्रमुख कहता है—

अहो चित्रार्पितायामपि मनोरथ-प्रियायामयमभिनिवेशः।
चित्रमेतदनुचिन्तयन्नयं चित्रतामतितमां किमागतः।
यद्विचिन्तनघनो मनोलयस्तन्मयत्वमथवा किमद्भुतम्॥

द्वितीय अङ्क में नायिका नायक का चित्र देखकर विह्वल होती है।

शुचिमुखी के कार्य-कलाप में छायातत्त्व अनूठा ही है। एक ओर तो वह मृणाल-खण्ड खाती है और दूसरी ओर वह नायिका से मानवोचित वाणी में बातचीत करते हुए बताती है कि तुम्हारा चित्र नायक के हाथों में पहुंच चुका है। वह नायक की नायिका-विषयक रति उसे बताती है। वह नायक का चित्र बनाकर नायिका को देती है। रंगमंच यह सारा दृश्य कितना अनोखा और रंजक होगा—इसकी कल्पना दर्शक करें।[१] यही छायातत्त्व की उपयोगिता है।

नायक शरीरतः अदृश्य रहकर नायिका के समीप आ जाता है और उसकी बातें सुनता है।

प्रतिशीर्षक

छायातत्त्व की विरचना के लिए बहुविध प्रतिशीर्षकों का उपयोग होता था। इस नाटक के तृतीय अङ्क में भद्र ने कुछ ऐसे प्रतिशीर्षकों के नाम गिनाये हैं—ऋक्ष, हस, महिष, गृध्र, मकर आदि।

एकोक्ति

नायक की एकोक्ति द्वारा उसकी शृङ्गारित मनोवृत्ति का परिचय प्रथम अङ्क में दिया गया है। यद्यपि रङ्गमच पर नायक के अतिरिक्त भद्र नामक सखा है, पर भाव-निमग्न नायक उसे देखता तक नहीं और न उसकी बात सुनता है। उसकी एकोक्ति है—

लीलादोलद्भुजविसलतालोलवेलाञ्चलान्त-
श्चञ्चद्दक्षश्चपलकुररीशिक्षितानीक्षितानि।
आस्यं हास्यामृतसमुदयस्निग्धदन्ताधरान्तं
को जानीते कुवलय-दृशः कस्य नेत्रातिथिः स्यात्।'

तृतीय अङ्क के आरम्भ में प्रद्युम्न की नायिका के लिए मार्मिक एकोक्ति है।

षष्ठ अङ्क के आरम्भ में रंगमंच पर अकेले नायक की एकोक्ति में प्रातःकाल के वर्णन की प्रचुरता है। केवल एकोक्ति भाग के अन्त में वह अपनी बात कहता है

---

१. तृतीय अङ्क में शुचिमुखी रंगमंच पर है—चंचुपुटोद्ग्राहितपत्रिका अर्थात् चोंच में प्रेमपत्र ली हुई। वह अपने पंख से हवा करती है।

और प्रभावती की चर्चा करता है कि वह यहाँ नही है, उसे चित्रशालिका मे ढूढ़ूँ। अन्त मे उसकी मनोवृत्ति की चर्चा करके बताता है कि वह तो सामने दिखाई देती है।

द्वितीय अङ्क की नायक के शम्बरासुर द्वारा समुद्र मे फेंके जाने और उसके मछली के पेट में जाकर बच निकलने और युद्ध में शम्बरासुर को मारने की लम्बी कथा अर्थोपक्षेपक में होनी चाहिए थी।

उन्मादोक्ति

रस की चारुता की दृष्टि से उन्मादोक्ति का विशेष महत्त्व है। इसमे नायक की उन्मादोक्ति है—

> भ्रमसि नयनालोके लग्ना निषीदसि सन्निधौ
> स्वपिषि शयानोपान्ते स्वान्ते विलासिनि लीयसे
> तदिति यदि मां सान्द्रस्नेहा जहासि न हा प्रिये
> किमिति न मनागालापोऽपि प्रसादरसादरः ॥

लोकोक्ति

नाटक के सवाद लोकोक्तियो से प्रायश· मण्डित हैं। यथा,

(१) प्रणयं के विपदि प्रमाणयन्ति ॥५·२६
(२) किमिव धैर्यनियन्त्रणमन्तरा सुमनसामवसादनमापदः ॥५·२७
(३) सम्पन्मूले श्रयति विपद को न सकोचमेति ॥५.२८

वर्णन

हरिहर ने वर्णनो से अपने प्रबन्ध की चारुता मे चार चाँद लगा दिये हैं। यथा, प्रथम अङ्क के अन्त मे शरद् ऋतु के मध्याह्न का रमणीय वर्णन है—

> नीरार्वविहगैस्तिरोहितगिरो निर्वातनिस्पन्दना
> मध्याह्ने मिहिरातपेन तरवस्तप्ता इवोन्मूर्च्छिताः।
> शोकोन्मादभरेण पादपनितास्तेषां तु जाया इव
> च्छाया. सकुचितोपतप्ततनव. क्रोशन्ति झिल्लीरवैः ॥१.५८

इसमें छाया का मानवीकरण प्रतिभासापेक्ष है।

कही-कही वर्णनो के द्वारा कवि ने चरित-नायको का प्रतिरूप वर्ण्य प्रकृति मे समारोपित किया है। यथा, पचम अङ्क के आरम्भ मे वसन्तलक्ष्मी का वर्णन करते हुए वह वृक्ष और लता मे नायक और नायिका के प्रणय-व्यापार की चर्चा करता है—

> इतः पीतः स्मेरः स्फुरति बकुलः केसरभरैः—
> इतः मूले कर्णज्वरमभिनवः कोकिलरवः।
> इतोऽपि श्रीखण्डोपवनपवनान्दोलितलता-
> कृताश्लेषाः केषां मनसि निविशन्ते न तरवः ॥५.६

चारित्रिक वैषम्य

प्रभावती-परिणय मे नारद का चरित्र विषम कहा जा सकता है। वे कहते हैं—

तं विद्मो विषयं विवदते वीरद्वयी यत्कृते।
तद्राज्यं बहुमन्महे यदुदयद्द्वैराज्यदोलायितम्॥
एतन्नः मुदिन मवाहवरवो यत्र श्रवो मुद्गणः।
सा दिक् साहसिनामपायमसिना पश्यामि यस्यामहम् ॥५.१६

नारद का ऐसा चरित्र लोकरंजक ही कहा जा सकता है। हरिहर को ऐसी सृष्टि के लिए साधुवाद देना योग्य है।

रस

कवि ने इस नाटक में वीर और शृङ्गार की संगमित धारा प्रवाहित की है, जैसा उसने स्वयं कहा है—

एकत्र रम्यरमणीरमणानुरक्तं दैवद्विषामपरतो दलनोद्यतन्नः।
चेतः प्रयातुमिह वज्रपुरानुरोधं शृंगारवीररसवलत्वमलंकरोति ॥५.२४

अध्याय १८

पाखण्ड-धर्मखण्डन

पाखण्ड-धर्मखण्डन नाटक के रचयिता दामोदर संन्यासी थे।[1] इसका प्रणयन संवत् १६९३ वि० तदनुसार १६३६ ई० में हुआ।[2] कवि का प्रादुर्भाव गुर्जरभूमि में हुआ था। दामोदर ने विविध विद्याओं का गहन ज्ञान प्राप्त किया था। उन्होंने कलि के प्रभाव से धर्म की प्रवृत्तियों को दूषित देख कर घृणा-परवश होकर इस नाटक की रचना की। कवि ने प्रथम अंक की पुष्पिका में कहा है कि यह चतुर भक्त का तारक और चित्त का चमत्कारक है। कवि स्वयं सदा शिवशंकर का और वेदों का उपासक है।

कथासार

चारित्रिक भ्रष्टाचार का बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन करना दामोदर का अभीष्ट है। ऐसे पाखण्डियों का रूप है—

> कण्ठिकाम्बरधरीविराजिता योनिसाम्यतिलकाङ्कललाटाः।
> पापरूपवपुषः कलिपूरा वेदधर्मसरणीपरिभ्रष्टाः॥

दिगम्बर-सिद्धान्त (जैनमतावलम्बी) कहता है कि शरीर की शुद्धि का प्रश्न ही कहाँ उठता है, जब शरीर मलभरित है? आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति हो सकती है, यदि नीचे लिखी स्थिति प्राप्त हो—

> दूरात् पादतले नतिं भुविविना सत्कारतो भोजनं
> मिष्टं स्वादुतरान्नमेव मधुरं पानं ततः सेवनम्।
> ईर्ष्या स्वल्पतरापि नैव कुलिनैर्दारैः समं क्रीडनं
> कार्यं स्वच्छमनः प्रमोदबहुलं त्वेतद्दर्पीणां मतम्॥१.२०

तभी सौगत आया, जिसे देखकर दिगम्बर चलता बना। उसने व्याख्यान दिया—

हमारा यह सौगत धर्म ही अच्छा है, जिसमें सौख्य के साथ-साथ मोक्ष है। क्या ही अच्छा जीवन है—

> आवासो निलयं मनोहरमभिप्रायानुकूला वणिड्-
> नार्यो वाञ्छितकालमिष्टमशनं शय्या मृदुप्रस्तराः।

---

१. इसका प्रकाशन १९३१ ई० में ब्रह्मर्षि हरेराम सुन्दरराम पण्डित ने ऋषिआश्रम तलीआनी पोल, सारंगपुर, अहमदाबाद से किया। इसकी प्रति संस्कृत-विश्व-विद्यालय, वाराणसी से प्राप्त हुई।

२. वह्न्यङ्कयुक्ते च रसेन्दुयुक्ते संवत्सरे कार्त्तिकमासि शुक्ले।
पक्षे त्रयोदश्यतिमाजि सोमे दामोदरो वै लिखतिस्म ग्रन्थम्॥

श्रद्धापूर्वमुपासते युवतयः क्लृप्ताङ्गरागोत्सवैः
क्रीडानन्दभरं व्रजन्ति यमिनां ज्योत्स्नोत्सवा रात्रयः ॥२४

उसने सुगत (गौतम बुद्ध) की वाणी पुस्तक से पढ़ दी—

क्षणिकाः सर्वे संस्काराः । नायमात्मा स्थायी । तस्माद् भिक्षुषु दारानाक्रमत्सु नेर्ष्यितव्यम् ।

फिर तो एक वैष्णवनामधारी पुरुष रंगमंच पर आया । उसने वैष्णव मत की प्रशंसा की—

आलिंगनं भुजनिबन्धनमायताक्ष्याः, स्वच्छन्दपानमशनं न परस्वभेदः ।
स्वात्मार्पणं युवतिभिर्गुरुषु प्रयुक्तं, धन्यं च वैष्णवमतं भुवि मुक्तिहेतु ॥१.२६

वैष्णवों को नहाने की आवश्यकता नहीं, श्राद्ध व्यर्थ है उनकी दृष्टि में यह संसार नहीं था, न रहेगा और न है । और भी—

नास्ति परलोको देहे भग्ने मुक्तिः, देहे सुखिनि स्वर्गो दुःखिते नरकश्च ॥

वल्लभ वैष्णव कहता है—

धर्म, वेद, यज्ञ, गया, शम्भु, गणेश, दुर्गा, सूर्य, इन्द्र, सरस्वती, ब्राह्मण आदि गणनामात्र हैं । हम लोगों के लिए तो गुरुचरण की पादुका और रमणियां चाहिए । अपनी प्रेयसी श्रद्धा से उसने कहा—

परस्परं भोज्यमहर्निशं रतिः स्त्रीभिः समं पानमनन्तसौहृदम् ।
श्रीगोकुलेशार्पितचेतसां नृणां रीतिः परा सुन्दरि सारवेदिनाम् ॥

उसको भगा कर श्रुति धर्म रंगमंच पर पहुँचता है । उसने वेद, हरि आदि की प्रशंसा की ही थी कि कलि उसका सामना करने के लिए अपनी प्रिया श्रद्धा के साथ आ पहुँचा । फिर आये महामोह-रूपधारी मध्वाचार्य । उन्होंने कलि से अपना कृतित्व वर्णन किया—

मोहिताः सकलवर्महापिताः, प्रापिता हरिपदादधोगतिम् ।
वर्णभेदरहिताः कृता मया, शूद्रधर्मनिरताः स्वयं स्थिताः ॥१.५५

फिर तो महामोह के सचिव वल्लभ रंगमंच पर आगये । उन्होंने कलि से अपने कृतित्व की वर्णना की सभी वर्णों में, पूरे देश में, पूरे धरातल पर मैंने श्रौतागम को विरल कर डाला है ।

फिर कलि का राजदूत विट्ठल रंगमंच पर आता है और बताता है कि मैंने सारे लोक को धर्म-विमुख कर दिया है ।

कलि ने उन सबसे कहा—वाराणसी में वैदिक श्रौताचार का प्रगमन है । आप लोग उन्हें विपथगामी बनायें । वैदिक ब्राह्मणों को अपना अनुयायी बनायें । तभी अनृत, दम्भ, काम, क्रोध आदि भी आ गये और मोहादि दिग्विजय के लिये चल पड़े ।

द्वितीय अङ्क के आरम्भ में निरंजन-मार्गी विटावतंस नामक व्यास अपनी प्रेयसी बालाओं के साथ रंगमंच पर उपस्थित होता है। फिर आई सर्वाङ्गोच्छिष्टा नामक रजकी। उसने अपने कृतित्व की वर्णना विटोपदेशा ने की कि बहुत से साधुओं को विट बनाया है। रजकी ने कहा कि निरंजन की कृपा से व्यास भी सुन्दर है और उसकी पाँच-छः शिष्यायें युवतियाँ भी सुन्दरी हैं। एक ब्राह्मणी को निरंजन मार्ग में खींच लाया गया था। उसका परिचय दिया गया—

वैधव्यदुःखे परिदह्यमाना शोकातुरा ब्राह्मणवंशजाता।
व्रतोपवासैर्बहुखिन्नदेहा स्थूलाम्बरैर्वेष्टितपुष्पवल्या ॥२.८

ब्राह्मणी को रजकी का चरणवन्दन करना था। ब्राह्मणी ने ऐसा करने में असमर्थता प्रकट की तो रजकी ने कहा कि मेरा गुरु चाण्डालाचार्य है। मैं नित्य उसके चरण दाबती हूं। ब्राह्मणी टस से मस न हुई। तब उसे व्यास नामधारी विट के पास पहुंचाया गया। व्यास ने स्वच्छन्द प्रणय-पथ पर चला कर विधवा को भी सुख देने वाले निरंजन मार्ग की प्रशंसा की तो उसने डाँट लगाई —

निरंजनालम्बित-मार्गसक्ताः कथं भवेयुः परदाररक्ताः।
ये विष्णुधर्मा अपि ते कथं स्युः स्वकीयपुत्रीयमनोद्यतेहा ॥

ब्राह्मणी की निम्नोक्ति आजकल के कुछ पाखण्डियों के पूर्वरूपों का परिचय देती है —

ये वल्लभीकंचुकिकुम्भमध्ये निधाय हस्तं प्रहसन्ति मत्ताः।
गायन्ति नृत्यन्ति पतन्ति भूमौ भजन्ति रण्डाः किल कीर्तनान्ते ॥२.१५

शिल्प

सूत्रधार ने इस नाटक को अनभिनेतव्य बताया है। इससे प्रतीत होता है कि अनेक नाटक ऐसे भी लिखे जाते थे जो अभिनयोचित नहीं होते थे। नाटक में प्रायशः पद्यात्मक संवाद है।

प्रस्तावना में नाटक के प्रति अभिरुचि उत्पन्न करने के लिए समसामयिक पाखण्डों की छीछालेदर की गई है। यथा,

वेदाः क्वापि पलायिताः प्रियतमे वार्तापि न श्रूयते।
सांख्यं योगपुराणवर्मनिचयः क्ष्मान्तर्गतो दृश्यते।
श्रीमद्वल्लभविट्ठलेशप्रमुखैः श्रुत्यर्थबाधोद्यतैः
प्रोक्तं स्वात्मनिवेदनं युवतिभिः सन्दृश्यते सान्त्वनम् ॥ ८

लोग श्रुति-स्मृति-पुराणोक्त धर्मवार्ता को छोड़कर मध्व-वल्लभ-विट्ठलादि के बताये कुमार्ग पर चलते हुए नारीसंग में परानन्द की अनुभूति करते हैं। [illegible] क्या है—

अन्तस्तमो बहीरागो लोकमध्ये तु मान्विकः।
कलौ नाम हरेः श्रित्वा पाखण्डः प्रकटीकृतम् ॥ १६

इसमे प्रतीक तत्त्व है—महामोह, काम, क्रोध आदि का रंगमंच पर आना। ऐसी प्रतीकता छायातत्त्वानुसारी है।[1]

रगमंच पर आने वाले पात्र का परिचय नेपथ्य से आवेदक करता है। यथा वैष्णव का परिचय-श्लोक है—

> कण्ठे कर्णे च हस्ते कटितटविषये मस्तके काष्ठमालां
> वृन्दाया: सन्दधानो मृगपदसदृशं चन्दन वै ललाटे।
> राधाकृष्णेति जल्पन् श्रुतिपथविमुखो वैदिकान् भर्त्समान:
> स्त्रीवृन्दे कामपूरे प्रतिपदमिलितैर्वैष्णवी चुम्बमान: ॥ २५

नेपथ्य से वल्लभ-वैष्णव का परिचय दिया जाता है—

> सकलाधर्ममूलो वल्लभो वैष्णवनामधारी प्रविशति।

इसी प्रकार रगमच पर आने के पहले अन्य पात्रो का वर्णन है।

बीच-बीच मे भी पात्रो का वर्णन नेपथ्य से किया गया है। द्वितीय अङ्क मे नेपथ्य से नवम पद्य व्यास-विषयक सुनाया गया है—

> उरसि कुसुममाला स्वच्छवस्त्र वहन्तं, तिलकमधुरभाले कुंकुमस्यापि विन्दुम्।
> मुखगतवरपत्र नागवल्ल्या: सपूग, विटयुवति समेतं व्यासमेन ददर्श ॥२.६

द्वितीय अङ्क मे निरजन मतावलम्बियो का नग्न चित्र रगमच से बहिर्गत नेपथ्य से ब्राह्मणी के मुख से १३ पद्यो मे सुनाया गया है। इसके आगे भी १० पद्यो मे नेपथ्य से चारित्रिक दुष्प्रवृत्तियो के प्रवर्तको का पर्दाफाश किया गया है। यथा,

> विप्रा: केऽपि च गानताननिरता: शूद्राग्रतो नर्तने
> तृष्णा मोहमदाभिमानमनसा वेद द्विषन्तीश्वरम्।
> भुञ्जन्ते रजकालयेऽपि मुदिता: पक्वान्नक सारक
> कामासक्तविचेतसो मदयुता उन्मत्तभूता: शठा: ॥ २.२४

तृतीयाङ्क मे कविपरिचय और उसका सद्धर्म-विषयक उपदेश है।

---

१. कलि कहता है—भो भो महामोहकामक्रोधादयो भवद्भि: शरीरिभिर्भवितव्यम्।

अध्याय १६

नलचरित

नलचरित-नाटक के रचयिता नीलकण्ठ दीक्षित का जन्म १६१३ ई० के लगभग हुआ था। उनके पिता का नाम नारायण दीक्षित था। इनके पितामह के भाई अप्पय्य दीक्षित के कृतित्व का घोष दक्षिण भारत में परिव्याप्त रहा है। उनके पूर्वजों और वंशजो के सारस्वत माहात्म्य से सैकड़ों वर्षों तक भारत जाज्वल्यमान रहा है। उनके चाचा अप्पय दीक्षित ने रुक्मिणी-परिणय नाटक का प्रणयन किया था। नीलकण्ठ के गुरु सुप्रसिद्ध विद्वान् वेङ्कटेश्वर थे। नीलकण्ठ के पिता और गुरु नारायण महान् विद्वान् थे। नीलकण्ठ ने उन्हें सरस्वती का अवतार बताया है। अप्पय दीक्षित ने उन्हे व्याकरण का अध्यापन कराया था। नीलकण्ठ के धर्मशास्त्रज्ञ होने का प्रमाण उनके अघविवेक नामक ग्रन्थ से मिलता है, जिसकी प्रस्तावना में उन्होंने लिखा है—

सर्वाः स्मृतीः समालोच्य संग्रहांश्च तथाखिलान्।
विवेकः क्रियतेऽघानां नीलकण्ठेन यज्वना॥

उनकी कैयट-व्याख्या से व्याकरण का उच्चकोटिक ज्ञान प्रमाणित होता है।

नीलकण्ठ को अपने ब्राह्मणत्व पर अभिमान था। वे अपने को क्षितिसुर कहते थे।[1] कलिविडम्बन में कवि का व्यक्तित्व स्फुरित हुआ है। इसके अनुसार धन के लिए कविता करना निकृष्ट है। वे मानवतावादी और सुधारवादी थे।[2] नीलकण्ठ के शिव-तत्त्व रहस्य से प्रतीत होता है कि श्रीकण्ठ दर्शन में उन्हें परम पाण्डित्य प्राप्त था।

नीलकण्ठ महान् लेखक थे। उनकी कतिपय रचनायें इस प्रकार हैं—

महाकाव्य—शिवलीलार्णव तथा गंगावतरण।

लघुकाव्य—कलिविडम्बन, सभारञ्जन, शान्तिविलास अन्यापदेशशतक, वैराग्यशतक।

भक्तिकाव्य—आनन्दसागर-स्तव, शिवोत्कर्षमञ्जरी, चण्डीरहस्य, रामायण-सार-संग्रह, रघुवीरस्तव।

नाटक—नलचरित

चम्पू—नीलकण्ठविजय

इनका मुकुन्दविलास अभी तक अप्रकाशित है।

वैराग्यशतक से प्रतीत होता है कि नीलकण्ठ पर भर्तृहरि की छाप थी।

---

१. शिवलीलार्णव ६.५७

२. अन्यापदेशशतक ८२ है—

भुङ्क्ते भोज्यमुपस्थितं समुपोह्य व स्वयं बान्धवान्।
यः सीदन् क्षुधया विचिन्तय ततो धन्यश्च पुण्यश्च कः॥

कवि की दृष्टि पैनी थी। उसने कलिविडम्बन के सन्दर्भ में देखा था कि किस व्यवसाय में कौन सा नीच व्यवहार प्रच्छन्न है। नीलकण्ठ ने तिरुमल नायक आदि मदुरा के राजाओं की सेवा में ३५ वर्ष रहकर उनके प्रधान मन्त्री पद से १६५९ ई० में छुट्टी ली। उन्होंने ताम्रपर्णी के तट पर राजा की ओर से अग्रहाररूप में प्राप्त पालामडई ग्राम में अपने जीवन का अन्तिम आश्रम संन्यासी रह कर यापन किया। वहीं के मन्दिर में उनकी समाधि अभी विद्यमान है।

नीलकण्ठ के छोटे भाई अतिरात्र याजी के नाटक कुशकुमुद्वतीय के प्रथम अभिनय के अवसर पर सभापति-पद पर विराजमान नीलकण्ठ के विषय में कहा गया है—

विद्वद्वादविवादकालयुगपद्विस्फूर्त्यहंपूर्विका
निर्यद्युक्तिसहस्रदर्शितनिजाहीन्द्रावताराकृतिः।
कर्तुं कारयितुं तथा रसयितुं काव्यानि नव्यान्यलं
भूम्नाभाति सभासभाजितमतिः श्रीनीलकण्ठाध्वरी॥

यह था नीलकण्ठ का भव्योदार व्यक्तित्व।

नलचरितनाटक का प्रथम अभिनय काञ्ची में कामाक्षीपरिणय के अवसर पर इकट्ठे हुए यात्रियों के मनोरञ्जनार्थ हुआ था। सत्रहवीं शती के कतिपय आलोचकों का मत था कि इस युग में मधुर नाटकों का अभाव सा है।

इस युग में नाटक लिखना बहुत प्रतिष्ठास्पद काम नहीं माना जाता था। इसकी रचना के प्रसङ्ग में प्रस्तावना में यह भाव व्यक्त किया गया है—

पारिपार्श्वक—कथमय कविरन्तर्मुखस्त्र्यम्यन्तविचारप्रवृत्तोऽपि करोति-स्म नाटकेऽप्यभिरुचिम्।

सूत्रधारः—यतोऽयमीदृशस्तत एवोक्तमत्रापि विषये तेनैव।
कालं जेतुमुपाययौ द्वौ कलिकल्मषसम्प्लुतम्।
कथा वा निषधेशस्य काशी वा विश्वपावनी॥ ११

नलचरित की कथा षष्ठ अङ्क के आरम्भ तक ही मिलती है। इसके आगे जो भाग नहीं मिलता, उसमें सम्भवतः कवि ने कुछ ऐसा संविधान रखा हो, जिससे यह कृति काशी के समान विश्वपावनी कही गई।

कथावस्तु

नल ने प्रातः स्वप्न में किसी अपूर्व सुन्दरी को देखा और विदूषक को बताया—

हर्तुं विवेकमवधीरयितुं च धैर्यमन्ये नमस्यपि निमज्जयितुं मनो मे।
मायैव काचन वधूरिति दर्शिताभूत् स्वप्ने निवृत्तकरुणा मकरध्वजेन॥ १.१९

इसके पहले एक दिन वन-विहार करते हुए नल ने स्वर्ण-हंस पकड़ा था, जिसे दयार्द्र होकर जब उसने छोड़ा तो हंस ने कहा कि मैं आपको अद्भुताभरण-रत्न मिलाऊँगा। विदूषक ने कहा कि स्वप्न में उषा ने अनिरुद्ध को देखा था और वह उसे

मिला। तुम्हें भी वह नायिका मिलेगी। उसका चित्र बना डालो, जिसे देखकर सामुद्रिक दैवज्ञ सत्याचार्य बताएगा—

एषा ईदृशस्य कन्यका, ईदृग्देशीया, ईदृशस्य वधूर्भविष्यतीति।

नल ने चित्र फलक पर स्वप्नदृष्ट नायिका का चित्राङ्कन किया। इसे देखकर सामुद्रिक सत्याचार्य ने कहा—इसका वरयिता कोई श्रेष्ठ महाराज विदर्भ या विराट का होना चाहिए।

सप्तद्वीपपतेस्तु कस्यचिदिय राज्ञोऽवरोधोचिता ॥१ ३४

इसके विवाह के सम्बन्ध में पहले और पीछे भी बड़े विघ्न पड़ेंगे। वहाँ से उद्यानमण्डप में जाने पर हंस दूत बनकर नल से पुनः मिला। उसने बताया कि विदर्भ से सरस्वती का भेजा हुआ मैं दमयन्ती की बातें कहने आया हूँ। नल को उसने सरस्वती का पत्र दिया, जिसमें लिखा था—

निर्माय रत्नं किमपि त्रिलोकी लावण्यसारेण पितामहो वः
निर्माणवैफल्यभियादिशन्मां भोक्तारमस्यानुगुणं वरीतुम्।

अर्थात् ब्रह्मा ने दमयन्ती को रत्नरूप में निर्मित करके मुझे आदेश दिया कि कहीं यह निर्माण विफल न रहे। इसके लिए योग्य वर चुनो। उसकी योजना थी कि कुलदेवता के आराधन के बहाने दमयन्ती के उद्यान में आने पर वहीं उसका नल से विवाह सम्पन्न हो जाय।

प्रतिनायक इन्द्र दमयन्ती को पाने के लिए उतावला था। उसकी कामाग्नि में नारद ने आहुति डाली कि दमयन्ती तुम्हारे ही योग्य है। मन्त्री वाचस्पति इन्द्र और नारद की दुर्बुद्धि से सहमत नहीं थे। विश्वावसु नामक इन्द्र के दूत ने विदर्भ से आकर वाचस्पति का नल विषयक समाचार दिया—

नलासक्ता भैमी स्वयमनुमतं तच्च विधिना
त्रिलोकीनाथस्तामभिलपति शक्रोऽप्यतिबली ॥२.११

दमयन्ती के लिए स्वयंवर होने वाला था। वाचस्पति ने निर्णय लिया कि नल को इन्द्र के लिए दूत बनवाया जाय। नल इन्द्र के प्रार्थना करने पर यह काम अंगीकार कर लेगा, क्योंकि उसकी प्रतिज्ञा है—

अपि दद्यामिदं राज्यमपि दद्यां च जीवितम्।
अर्थिनो न तु पश्येयम सम्पूर्णमनोरथान् ॥ २.१४

प्रश्न था इन्द्र का नल से प्रार्थना करने का कि आप मेरे लिए दमयन्ती के पास दूत का काम करें। नल इस याचना के लिए तैयार नहीं था। विश्वावसु ने समझाया कि आप सकललोकनाथ हैं। नल मध्यलोकपाल हैं। याचना न करें। उन्हें आज्ञा दें कि वे दूत के काम का निर्वाह करें।

सारंगिका ने दमयन्ती को सूचना दी कि नल निकट ही आ पहुँचे हैं, जैसा मुझे उनके साथी भद्रमुख से ज्ञात हुआ है। दमयन्ती की सखी चन्द्रकला ने सारङ्गिका से विवरण पूछने पर जान लिया कि जिसे वह भद्रमुख बता रही थी, वह वस्तुतः कोई देवता था। दमयन्ती ने जान लिया कि इन्द्र के साथ आया विश्वावसु उसका अनुचर है, भद्रमुख नहीं। इन्द्र का ध्यान आते ही दमयन्ती दुःखी हो गई। इतने में नल विदूषक के साथ आ ही पहुँचा। उसने दूर से दमयन्ती को देखा और विदूषक से बताया कि यह तो स्वप्न-दृष्ट रमणी की छायानुकारिणी है। वे दोनों दमयन्ती की बातें सुनने लगे। उसने चन्द्रकला नामक सखी से बताया कि इन्द्र मुझे पाना चाहता है। इससे मुझे कष्ट है। वह अन्त में मनोरथ की सिद्धि कठिन मानकर रोई।

दमयन्ती के लिए और कौन प्रतिनायक बना है-यह बात नल के मानस में प्रतिफलित हुई कि सत्याचार्य ने कहा था कि दमयन्ती के मिलन में बडी बाधायें आयेंगी। देवता इसके लिए प्रार्थना करेंगे।

दमयन्ती का मदनातङ्कोपचार हो रहा था। उसकी साँस बन्द सी होने लगी। नल ने यह देखकर कहा—

यामेतां दधती दशामपि शिला शक्नोति नालोकितु
यां विघ्यन् मदनोऽपि सास्रनयनं व्यावर्तयेदाननम्।
तामेकस्त्वहमेव वज्रहृदयश्शक्तश्चिरं वीक्षितुं
क्रूरोऽसाविति जानतैव विधिना नन्वस्मि सन्दर्शितः॥३·१६

तभी सावित्री और सरस्वती के आने से भावधारा बदली। सरस्वती ने दमयन्ती के प्रणाम का उत्तर दिया—

अचिरादेव त्वमभिमततरं भर्तारं लभस्व।

सरस्वती ने दमयन्ती की दयनीय स्थिति देखकर निर्णय लिया कि मैं पार्वती के चरणारविन्द की वन्दना करके इसके खेद को दूर करूँगी। वह उधर गई और तभी चरितनायक भी वहाँ देवीमन्दिर में पहुँचे। सरस्वती ने वहाँ भगवती की वन्दना की—

सत्यानन्दचिदात्मकं समयिभिर्ब्रह्मेति या गीयते
कौलैराहृतविग्रहा परशिवाङ्कस्थेति या स्तूयते।
नित्यैका जगतां प्रसूरिति च या तैरुत्तरैर्घुष्यते
प्रत्यक्षं परिदृश्यते भगवती सैवात्र धन्यैर्जनैः॥३·२३

क्व नु ध्यानं मानः क्व नु तव सपर्यापरिचयः
क्व वा नाना होमः क्व नु विविधमुद्राविरचना।

क्व नु न्यासव्यूहः क्व नु समाम्रेडनमिति
प्रपद्ये ; त्वामेकां भुवनजननीं भक्तिसुलभाम् ॥३.२४

दमयन्ती ने भुवनजननी की दया की याचना की। दूर से नल ने भुवनजननी के दयासाम्राज्य-सिंहासन की कामना की। सरस्वती आदि वहाँ से हटकर साल की छाया में जा बैठीं। नल के सैनिकों को वहाँ आने से रोकने के लिए विदूषक चलता बना। सरस्वती की इच्छा के अनुसार सावित्री नल का पता लगाने के लिए चलती बनी। तभी नल सरस्वती के समक्ष आ गया। सबने नल के दर्शन से अपने को परितृप्त किया। सरस्वती ने दमयन्ती का हाथ नल के हाथ में पकड़वा दिया।

इस बीच विदूषक समाचार लाया कि इन्द्र आप से मिलने के लिए पधारे हैं। नल इन्द्र से मिलने के लिए चलते बने। इन्द्र ने उन्हें काम सौंपा कि आप दमयन्ती को मेरी बनाइये।

नल की चिन्ता का कारण उसका दायाद पुष्कर बन चला था। उसे नल के मन्त्री कामन्तक ने विफल कर रखा था। उसकी चिन्ता का दूसरा कारण इन्द्र हो गया था। इन्द्र ने नल को बुलाकर समादर किया और विश्वावसु के माध्यम से उसके शौर्यपराक्रम की प्रशंसा करवा कर अन्त में प्रार्थना करवाई—

त्वदधीना भीमसुता त्वमसि च हृदयं द्वितीयममरपतेः।
तदिह सखे घटनीया तरुणी दूतेन सा त्वयास्येति ॥४.११

नल ने स्वीकार किया—

दूतो भवानि कथयानि च तानि तानि
वाक्यानि यानि किल संवननोचितानि।
आवर्जयानि सुमुखीमपि शक्तितस्तां
वक्तुं बिभेमि तु परं घटयेत वेति ॥

इन्द्र ने तिरस्करिणी-विद्या के योग से अदृश्य रहकर नल को दमयन्ती से मिलने के लिए अन्तःपुर में लाने की व्यवस्था भी कर दी। नल अदृश्य बनकर अन्तःपुर-द्वार तक पहुँचे, पर सावित्री ने उन्हें वहाँ देख लिया।

इधर नल और इन्द्र की जो बातचीत हुई थी, उसे गुप्तचर से सरस्वती ने जानकर दमयन्ती को बताया। दमयन्ती उसे सुनकर अतिशय आतङ्कित हुई। समाचार देने के लिए सावित्री आ ही रही थी कि द्वार पर उसे नल मिले थे। सावित्री ने सरस्वती का दमयन्ती-विषयक सन्देश सुनाया कि—

सन्देश पाकर दमयन्ती की जो प्रतिक्रिया हुई, उसे इन्द्र को बताने के लिए विदूषक की बात से इन्द्र बहुत चिढा। उसने मौखिक सन्देश तो नल के पास भेजा ही, साथ ही बताया कि नल के लिए पत्र भी भेज रहा हूँ। पत्र पढकर नल बहुत क्रुद्ध हुआ। इसी प्रसङ्ग मे विदूषक से उसे ज्ञात हुआ कि विदर्भराज ने दमयन्ती की नल के प्रति एकनिष्ठा का परिचय सरस्वती से पाकर और यह जानकर कि नल आ चुके हैं, कल प्रात आपसे दमयन्ती का पाणिग्रहण करने वाले हैं। उन्होंने स्वयंवर का विचार छोड़ दिया है। उन्होने स्वयंवरार्थ आये हुए इन्द्र आदि की अवहेलना कर दी है।

दमयन्ती पतिगृह में आ गई। सरस्वती अब अपने देवलोक मे जाना चाहती थी, किन्तु नल के प्रार्थना करने पर उसके पुत्रो के चूडासस्कार तक रुक गई। दमयन्ती की खिन्नता दूर करने के लिए नल उसे उद्यान-मण्डप मे ले गये। वहाँ थक कर दमयन्ती नल की गोद मे सो गई। नल उसे निहारते हुए कहता है—

> आजिघ्रन् मुखमापिबन् रदपटौ कुंचन् सुजातौ कुचा-
> वालिगन्नपि चांगमगमधुना नालक्षये निर्वृतिम्।
> एनामेव पुरानुपेत्य सुमुखीमेवंविधान् विभ्रमान्
> चेतस्येव समुल्लिखश्चिरतरं कालं कथं प्राणिषम्॥५'८

तभी दमयन्ती स्वप्न मे चिल्ला पड़ी कि आप मुझे और बच्चों को अकेला छोड़ कर कहाँ गये ?

षष्ठ अङ्क के आरम्भ मे मन्त्री चिन्ता व्यक्त करता है कि इन्द्र और पुष्कर की मैत्री नल की हानि करने के लिए हुई है। नगर मे गड़बड़ियाँ होने की सूचना नल ने राजपुरुष से भेजी—

> वेदेष्वप्यधुना वुधा विगसनाद्यंशेषु संरेरते
> स्पृश्यन्ते किमपि द्विजाश्च शनकैः कोपेन लोभेन च।
> लक्ष्यन्ते समुपेक्षिता इव पुनर्वीराश्च वीरश्रिया
> जाने किं बहुना जगच्च निखिलं मालिन्यमालम्बते॥६.७

कामन्तक ने नगरपाल को आदेश दिया कि राजधानी और राज्य में—

> यददृष्टचरं भूत यच्च वा किंचिदद्भुतम्
> शंकितं वापि यत् किंचित् सर्वं तदुपलभ्यताम्॥६.६

यहाँ से आगे का नाटकांश अभी तक अप्राप्त है।

शिल्प

नीसपृष्ठ मे प्रस्तावना मे बताया है कि इस नाटक में कथोद्घात चित्र-विचित्र है। इसका आरम्भ नल की अधोलिखित एकोक्ति से होता है—

अस्थाने विनिपात्य शान्तविषयव्याक्षेप सुस्यं मनो
दूरे बिम्बमिव प्रदर्श्य मुकुरे दुष्प्रापमर्थं पुनः।
स्वामिन् मन्मथ यत्त्वया खलु जनो मुग्धोऽयमायास्यते
किं ते शौर्यमिदं किमंग हसितं किं नाम वा कौशलम् ॥१.१

कहीं-कहीं बनावटी बातों का रगढंग निराला ही है। नल ने विदूषक से कहा कि चित्र बनाने की सामग्री लाओ और वह सामग्री उसकी महादेवी की चेटी कलावती लाई तो नल ने समझ लिया कि यह तो मेरे अभिनव प्रणय का भण्डाफोड़ हुआ चाहता है। उसने उसे डाँट लगाई—

'बालिश रे समानय चित्रवस्तूनि' इति..................आनीतवानसि किमालेख्यसामग्रीम्।

चित्रगत छायातत्त्व की विशेपता नलचरित में परिस्फुरित हुई है। यथा नल स्वप्नसृष्ट नायिका के चित्र को देखकर उसे सम्बोधित करते हुए अपने मनोभाव व्यक्त करता है—

पश्येयं भवती दृशा न तु तया ग्लायन्ति गात्राणि ते
त्वामालिंगितुमर्थये न हि महानंगेष्वनंगज्वरः।
त्वामन्तःकरणे वहे न हि न हि क्वेदं ममेदृङ्मन.
पुष्पादप्यति कोमला क्व भवती मन्तुर्नवः क्षम्यताम् ॥१ २६

नलचरित के प्रथम अङ्क में हंस का दौत्य छायातत्त्व का परिचायक है।

कथा की भावी गति अङ्कों के सवादो मे व्यक्त की गयी है। स्वप्न में जो देखा-सुना उससे जो कथा अज्ञात रह गई, वह आगे की कथा सूत्ररूप मे सत्याचार्य बता देता है। दूसरे अङ्क मे वाचस्पति इन्द्र की कामुकता का भावी परिणाम अपनी एकोक्ति में स्पष्ट कर देते हैं। यथा,

हन्त. कथमनुभूतफलोऽपि गोतमदारेषु न प्रतिपद्यते कर्तव्यमकर्तव्यं च। अथवा किमेतेन। सा हि दुर्लंघ्य-प्रपाता भगवती मदनहस्तिपंचशरी

नाट्यशिल्प

रंगपीठ को आहार्य-वस्तुओं के द्वारा वास्तविकता की सज्जा प्रदान की गई है। तिरस्करणिका के प्रयोग से रंगपीठ पर उपस्थित पात्रों को अन्य पात्रों के लिए अदृश्य किया गया है। द्वितीय अङ्क मे इन्द्र तिरस्करणिका-निगूढ रह कर विश्वावसु और दमयन्ती की चेटी की बातें सुनता रहता है।

द्वितीय अङ्क मे अपने को भद्रमुख बताते हुए विश्वावसु छायापात्र बना है। चेटी के द्वारा भद्रमुख समझा जाता हुआ वह भद्रमुख जैसा आचरण करता है। ऐसा छायापात्र मिथ्या बातें करता है।

रंगपीठ पर तीन पात्र हैं। उनमें से प्रथम दो की बातचीत तीसरा न

रंगपीठ का नाट्यधर्मी तत्त्व है। तृतीय अङ्क में रंगपीठ के तीन भागों में पात्रों के तीन वर्ग अलग-अलग रहकर अलग-अलग समय पर काम करते हैं। इसमें दोष यह है कि ऐसी स्थिति में जिस समय एक भाग के पात्र काम करते हैं उस समय दूसरे भाग के लोगों को बिना काम करते हुए रहना पड़ता है।

नाट्य-कला की दृष्टि से इन्द्र का हीनदशापन्न होकर यह कहना सविशेष कौशल पूर्ण है कि

> तपस्यन्त्यो यस्मै शतमपि सहस्र युवतयो
> न विन्दन्त्येता मा ननु मनुजगीर्वाणफणिनाम्।
> स एवाहं याचे स्वयमपगतव्रीडमपि या
> उदास्ते सा भैमी न परमथ शोचत्यपि कथाम्॥३·२४

नायक की उच्चता से प्रतिनायक प्रभावित हो—यह इस नाटक में विरल तत्त्व विभावित है। यथा प्रतिनायक इन्द्र नायक नल के विषय में कहता है—

> पुण्यश्लोकस्त्रिभुवनजयी भूभुजामग्रगण्यो
> दाता प्राणानपि यदि भजन्त्यर्थिनः कर्णमूलम्॥२·३६

नाटक की उत्तमता मानी जाती है कि उसमें सीमातिग उत्थान-पतन की स्थिति नायकादि के समक्ष आये। इसमें स्वयं लेखक ने नायक के मुख से इस स्थिति का समाकलन कराया है—

> हन्त कथममृतेनैव सिञ्चन् विधिरग्नौ निपातयति।

अर्थात् अमृत से सींचते हुए भाग्य ने अग्नि में पटक दिया। पंचम अङ्क के अन्त में इस स्थिति का व्यावहारिक निदर्शन है नल का दमयन्ती को गोद में रखकर सुलाना और दमयन्ती का स्वप्न में चिल्ला पड़ना कि हमें और बच्चों को अकेले छोड़ कर कहाँ चले गये?

यह सब कैसे हो रहा है कि नल दमयन्ती-विषयक स्वप्न देख रहा है और उसे उपवन में हंस मिलता है। ऐसी ऊहापोह लिए पाठक की जिज्ञासा तृतीय अङ्क के अन्त में शमन करती हुई सरस्वती नाटक की कलात्मकता का संवर्धन करती है कि मैंने यह सब भगवान् ब्रह्मा की इच्छापूर्ति के लिए आयोजित किया है।

एकोक्ति

नलचरित में एकोक्ति की चारुता उच्चकोटिक है। चतुर्थ अङ्क के आरम्भ में रंगपीठ पर अकेले नल है। वह दमयन्ती के सबीटिक कर-किसलय के प्रथम स्पर्श का ध्यान करते हुए सोचता है। फिर वसन्त के नवावतार से मदनातुर संसार के प्रति सहानुभूति प्रकट करता है, विभिन्न जनों पर मलयपवन आदि के प्रभाव का अनुशीलन करता है और अन्त में अपनी ही स्थिति को कारण बनाता है कि क्योंकर आज ये सभी मेरे लिए विषम बन गये हैं—

किं नासीदयमुत्सवाय सुरभिः किं नाभवन्मन्मथः
शृंगारेषु गुरुः किमेष पवनो मित्रं न मे प्रागभूत्।
अद्यैव मधुरेऽपि वस्तुनि रसानास्वादयन्नन्यथा
रोगीवाहमनेन दार्घविधिना नीतो दशामीदृशीम् ॥४.६

चतुर्थ अङ्क के प्रायः अन्त में रगपीठ पर नायक का कोई काम करने के लिए जब अन्य पात्र चले जाते हैं और वह अकेला ही रह जाता है तो एकोक्ति द्वारा प्रकृति-वर्णन में निमग्न हो जाता है।

पचम अङ्क के आरम्भ में एकोक्ति में कामान्तक नामक अमात्य नल की सुरक्षा विषयक चिन्तना कर रहा है कि अब क्या होगा, जब इन्द्र और पुष्कर ने नल को परामूत करने के लिए मैत्री स्थापित कर ली है।

वर्णन

नाटकों में यात्रावर्णन का चाव कालिदास के युग से ही रहा है। नलचरित में स्वर्गलोक से विदर्भ तक इन्द्र का रथ पर विश्वावसु के साथ यात्रा करना अतिशय रुचिपूर्वक नीलकण्ठ ने दिखाया है। यात्रा करते हुए काशी दिखाई पड़ती है।

यत्रैकं श्रुतमक्षरं पशुपतेर्हेतुश्श्रुतीनां कृतौ
सद्यो रोहति चाष्टधा तनुभृतां यत्रैकमूर्त्तं वपुः।
यत्रैकाभ्रनदीकणोऽपि विधृते सर्वैव सा धार्यते
सा दिव्याद्भुतवैभवा कविगिरां पारे हि वाराणसी ॥२.२२

अस्मत्पुरे दिविषदां शतशोऽपि यस्याम् अद्यापि विश्रमफलान्यवगाहनानि।
आब्रह्मकीटमवगाहजुषामिहैषा कैवल्यहेतुरिति काशि तव प्रभावः ॥२.२३

यही काशी सारे भारत की एकता निबद्ध करती थी। आगे प्रयाग है—

सस्पर्धोपनिरुध्यमानयमुनाकल्लोलमूलस्थली—
मग्नोन्मग्नविसारिपाण्डरवलत्स्वर्गापगाम्भः प्लवः।
प्रत्यासीदति नः पचेलिमतपः सम्भारसम्भावित—
प्रत्यासंगकृतार्थसार्थ-निबिडाभोगः प्रयागः पुरः ॥२·२५

नीलकण्ठ ने वर्णन-चातुरी का निदर्शन भी इस नाटक को बनाया है। इसमें नायक वसन्त से बातचीत कर रहा है—

कामो वल्गतु नाम दग्धवपुषः कस्तस्य दण्डो नवः।
चन्द्रो गर्वयतां सुधामयतया नित्योऽहमस्मीति वा।
भ्रातः शंस वसन्त कस्त्वमनयोर्मासद्वयीमात्रकम्
अप्यायुः सम्प्रति जानतस्तव कथं पान्थेषु रूक्षं मनः ॥४.३

चतुर्थ अङ्क के अन्त में सन्ध्या, आराम, केलिकासार, अन्धकार, चारुचन्द्रिका, चन्द्रमा आदि की रमणीय वर्णना है।

स्वच्छन्दप्रचरन्मदान्धमहिषव्यावृतशृंगाहति--
क्षुभ्यत्पङ्ककलंकपल्वलपयोलुण्टाकचण्डातपाः।
दृश्यन्ते परिपाकपाण्डरदलव्याकीर्णजीर्णाटवी--
रिखद्दावशिखाचटच्चटरवोन्मिश्रा गिरिश्रेणयः ॥१.४७

वालाभिः परिशीलितः पवन इत्याचार इत्यादृतः
मुग्धाभिर्मलयाद्रिमारुत इति प्रौढाभिरासेवितः।
दग्धैरध्वगयौवतैरनल इत्याकृष्यमानः पुनः
शृंगारप्रथमास्पदं प्रचलति श्रीखण्डशैलानिलः ॥४.४

नीलकण्ठ की लेखनी वलशालिनी है। यथा, चारायण का तृतीय अंक में नल को विश्वास दिलाना कि जिसे आप देख रहे हैं, वह वस्तुतः स्वप्नदृष्ट रमणी ही है—

यथोद्यानमेतत् कुण्डिनसमीपे, यथापर्युत्सुका एवा, यथा च स्वयंवभणितं सन्दिष्टं शारदयंवमिति, यथा चेदानीं सज्जति ते दृष्टिः तथा मन्ये सैवेपेति।

भाषा के विषय में नीलकण्ठ कुछ स्वतन्त्रता देते हुए दिखाई देते हैं। उनकी चन्द्रकला संस्कृत भी बोलती है। नायिका भी संस्कृत में पद्य के द्वारा अपने विरहगान को विभावित करती है। ऐसा लगता है कि आवेश के प्रोन्नत क्षणों में जो भावोर्मि उठती थी, वह प्राकृत का बन्धन तोड़ देती थी। ऐसे उद्गार संस्कृत में व्यक्त किये जाते थे।

सूक्तिसौरभ

जीवन की बहुक्षेत्रीय सूक्तियों के द्वारा सप्रमाण संवाद को कवि ने सौरभ प्रदान किया है। कतिपय सूक्तियां हैं —

१. अयमसौ कण्टकमुद्धृत्य शल्यप्रक्षेपः
२. करतले दर्पणं गृहीत्वा कीदृशं मे मुखमिति पृच्छसि।
३. कः खलु मन्दधीरपि नाम करस्थं रत्नमुत्सृज्य काचं गवेषयते।
४. कः खलु कर्कोटकफणामणये करं प्रसारयति।
५. अवःपतितस्सकृदधोऽधः पतति जनः।
६. उपेक्षितश्शत्रुरल्प इत्युन्मिपति कालेन स्फुलिंगः।
७. कथमङ्गारः कर्णयोरस्या वर्णनीयः।
८. शौर्यं व्यनक्ति पटुतां विदधाति मन्त्रे
सख्यं महद्भिरपि राजभिरातनोति।
विस्तारयत्यपि यशो विशदं दिगन्ते
किं नाम नाकलयते गुणवद्विरोधः॥

नीलकण्ठ के नाटक में अश्लील शृङ्गार की धारा नहीं बहाई गई। भाव और

रस

नीलकण्ठ ने शृङ्गार रस की सूक्ष्म सरिता अतिशय विशद रूप मे प्रवाहित की है। यथा मदनातङ्कोपचार-समलङ्कृत नायिका को विवश नायक टुकुर-टुकुर देखते हुए अपने मनोभाव व्यक्त करता है—

या कान्तिः करयोर्मृणालवलयैर्नेय. मणीकंकणैः
यद्रूपं नलिनीदलेन कुचयोर्नेदं धृते कञ्चुके।
यद्बाष्पोद्गमरेखया नयनयोस्तन्नाञ्जने सौभगं
यत्सत्यं स्वदतेऽधुना परिचिता स्वप्नादपि प्रेयसी ॥३.१३

नायिका के श्वास भारी पड़ने लगे। उसने मदन से प्रार्थना की कि मुझे मारना चाहो तो मार डालो, पर एक बार मुझे प्रियतम का मुख दिखलाकर। ऐसे प्रसग नितान्त रोचक हैं।

शैली

नीलकण्ठ ने आलोचना का व्यावहारिक स्वरूप प्रस्तुत किया है, जो उस युग की रचनाओं पर प्राय सटीक बैठता है। नलचरित की प्रस्तावना मे सूत्रधार की स्पष्टोक्ति है—

स्वादूनेव रसान् कटून् विदधता कर्पन्तु मा मेति च।
मन्दन्त्येव पदानि वा कवयता कुर्वन्तु लज्जां च वा।
कुत्रैको मधुरो रसः क्व मधुरा वाणीति नो जीवतां
कर्णौ निष्करुणं दहन्ति कवयः यस्मादिदानीतनाः ॥

नीलकण्ठ ने अपनी वैदर्भी की सर्वोत्कृष्टता का परिचय देते हुए कहा है—

आदिः स्वादुषु या परा कवयतां काष्ठा यदारोहणे
या ते नि श्वसितं नवापि च रसा यत्र स्वदन्तेतराम्।
पांचालीति परम्परापरिचितो वाद. कवीना परं
वैदर्भी यदि सैव वाचि किमितः स्वर्गोऽपवर्गोऽपि वा ॥३.१८

नीलकण्ठ के अनुसार तत्कालीन नाटक के दर्शको की मानो मृत्यु हो जाती है। उनको जीवन प्रदान करने के लिए नलचरित की रचना उन्होंने की।[1]

नीलकण्ठ पूर्ववर्ती कवियों की वाणी को अपनाने में चूकते नहीं। उनका दैवज्ञ नायिका का चित्र देखकर कहता है—

कथमीदृशस्य रूपस्य मानुषीषु सम्भव.।

इसमें कालिदास प्रतिध्वनित है। नीचे लिखा पद्य भी कालिदास के 'गाहन्तां महिषा निपानसलिले' में अवगाहन कर रहा है—

१. तदर्हति भवानभिनवरूपकदर्शनव्यापन्नानामायुष्यमापादयितुम्।

स्वच्छन्दप्रचरन्मदान्धमहिषव्यावृतश्रृंगाहति--
क्षुम्यत्पङ्ककलंकपल्वलपयोलुण्टाकचण्डातपाः।
दृश्यन्ते परिपाकपाण्डरदलव्याकीर्णजीर्णाटवी--
रिखद्दावशिखाचटच्चटरवोन्मिश्रा गिरिश्रेणयः ॥१.४७

वालाभिः परिशीलितः पवन इत्याचार इत्यादृतः
मुग्धाभिर्मलयाद्रिमारुत इति प्रौढाभिरासेवितः।
दग्धैरध्वगयौवतैरनल इत्याकृश्यमानः पुनः
शृंगारप्रथमास्पदं प्रचलति श्रीखण्डशैलानिलः ॥४.४

नीलकण्ठ की लेखनी वलशालिनी है। यथा, चारायण का तृतीय अंक में नल को विश्वास दिलाना कि जिसे आप देख रहे हैं, वह वस्तुतः स्वप्नदृष्ट रमणी ही है—

यथोद्यानमेतत् कुण्डिनसमीपे, यथापर्युत्सुका एषा, यथा च त्वयैवभणितं सन्दिष्टं शारदयैवमिति, यथा चेदानीं सज्जति ते दृष्टिः तथा मन्ये सैवेयेति।

भाषा के विषय में नीलकण्ठ कुछ स्वतन्त्रता देते हुए दिखाई देते हैं। उनकी चन्द्रकला संस्कृत भी वोलती है। नायिका भी संस्कृत में पद्य के द्वारा अपने विरहगान को विभावित करती है। ऐसा लगता है कि आवेश के प्रोन्नत क्षणों में जो भावोर्मि उठती थी, वह प्राकृत का बन्धन तोड़ देती थी। ऐसे उद्‌गार संस्कृत में व्यक्त किये जाते थे।

सूक्तिसौरभ

जीवन की बहुक्षेत्रीय सूक्तियों के द्वारा सप्रमाण संवाद को कवि ने सौरभ प्रदान किया है। कतिपय सूक्तियां हैं—

१. अयमसौ कण्टकमुद्‌धृत्य शल्यप्रक्षेपः
२. करतले दर्पणं गृहीत्वा कीदृशं मे मुखमिति पृच्छसि।
३. कः खलु मन्दधीरपि नाम करस्थं रत्नमुत्सृज्य काचं गवेषयते।
४. कः खलु कर्कोटकफणामणये करं प्रसारयति।
५. अधःपतितस्सकृदवोऽधः पतति जनः।
६. उपेक्षितश्शत्रुरल्प इत्युन्मिपति कालेन स्फुलिंगः।
७. कथमङ्गारः कर्णयोरस्या वर्षणीयः।
८. शौर्यं व्यनक्ति पटुतां विदधाति मन्त्रे
सख्यं महद्भिरपि राजभिरातनोति।
विस्तारयत्यपि यशो विशदं दिगन्ते
किं नाम नाकलयते गुणवद्विरोधः॥

नीलकण्ठ के नाटक मे अश्लील शृङ्गार की धारा नहीं बहाई गई। भाव और

भाषा की दृष्टि से इसकी पेशलता अनुकरणीय है। न तो बड़े समास हैं और न लम्बे चौड़े व्याख्यान हैं, जिनसे प्रेक्षक ऊबे। व्यर्थ की बातो का भी इसमे प्रायः सर्वथा अभाव है। नायकों के व्यवहार मे प्राय नैष्ठिक गरिमा है, उछलापन नही।

नलचरित की सरलता और सरसता की मञ्जुल छाया परवर्ती कतिपय नाटको पर पड़ी और कवियों ने समझ लिया कि भाषा और भाव की दृष्टि से दूर की कौड़ी लाना नाट्योचित नही है।

अध्याय २०

कुशकुमुद्वतीय

कुशकुमुद्वतीय नाटक के प्रणेता अतिरात्रयाजी सुप्रसिद्ध नीलकण्ठ दीक्षित के छोटे भाई थे, जिनके नलचरित-नाटक की चर्चा हो चुकी है।[1] अतिरात्र की प्रतिभा का विलास १७ वीं शती के मध्य भाग में हुआ था। अपने पितामह के भाई अप्पय दीक्षित के वंशानुक्रम में जो दर्शन और काव्य की सरस्वती प्रवाहित हुई थी, उसमें अतिरात्र ने सम्यग् अवगाहन किया था और अपने बड़े भाई नीलकण्ठ से सरल काव्य-संस्कार पाया था। वे तन्त्र, ऋतु और शैव सिद्धान्त के मर्मज्ञ थे और विशेष रूप से अम्बिका की उपासना करने के बल पर स्वयं अपने लिए अम्बिकादास की उपाधि कालिदास के समान ग्रहण की थी। उनका कहना था कि मेरा श्वास भी अम्बिका की कृपा पर अवलम्बित है।

कौन नाटक रंगपीठ पर सफल होगा और कौन असफल—इस सम्बन्ध में अतिरात्र ने तत्कालीन स्थिति का पर्यालोचन किया है कि भगवान् की कृपा से ही कोई नाटक सफल होगा—

नार्थसन्दर्भसौन्दर्यात् न कवीन्द्रगुणादपि।
विद्वद्भ्यः स्वदते काव्यं कटाक्षेण विना विधेः॥

कुशकुमुद्वतीय का प्रथम अभिनय हालास्य-चैत्रोत्सव यात्रा के अवसर पर हुआ था। तत्कालीन रीति के अनुसार लेखक ने अपनी कृति सूत्रधार को अभिनय के लिए अर्पित की थी और दुर्वृत्त समालोचकों के डर से सूत्रधार से कहा था—

विभावादिस्वाद्कृतनवरसास्वादचतुरा
यदि स्युः श्रोतारस्सुकृतपरिपाकेन मिलिताः।
तदा तेषामेव प्रकटय पुरस्तान्मम कृति
न चेदास्तां गूढा चिरमियमनिष्पन्नसदृगी॥

कवि की मान्यतानुसार इसका प्रणयन अम्बिका के प्रसाद से हुआ है।

कथावस्तु

अयोध्या-नगरी राम के पश्चात् किसी राजा की राजधानी न रहने के कारण उजड़ सी रही थी। एक दिन उसकी अधिदेवी नागरिका ने सरयू नदी की अधिदेवी सागरिका से चर्चा की कि राम के पुत्र महाराज कुश हमारी उपेक्षा कर रहे हैं। कोई उपाय नहीं दिखाई देता। अन्त में वे दोनों तिरस्करिणी-विद्या से प्रच्छन्न होकर नागलोक से आई हुई कलावती और फणावती नामक दो कन्याओं की बातचीत सुनने के लिए चल पड़ीं, जिससे उन्हें ज्ञात हुआ कि उनकी स्वामिनी कुमुद्वती अपने

१. कुशकुमुद्वतीय की हस्तलिखित प्रति सागर-विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में है।

पिता कुमुद की अनुमति से नागलोक में दुर्लभ ज्योत्सना-विहार के लिए जनहीन अयोध्या में सहस्रों सखियों के साथ आती है। कुमुद्वती ने सरयू मे स्नान करते हुए एक दिन हार पुलिन पर छोड़ दिया और नागलोक चली गई। उसने समझ लिया कि हार को सागरिका ने प्राप्त किया होगा, जिसे वह अपने स्वामी कुश को अर्पित कर देगी। उसका मन्तव्य जानकर सागरिका ने निर्णय लिया कि अब कुश को वश में करने का उपाय हाथ लगा कि वे नागलोक की अपूर्व सुन्दरी कुमुद्वती से मिलने अयोध्या आ जायें। कुशावती मे रहते हुए कुश को दिव्य चक्षु देकर कुमुद्वती का दर्शन कराया जाय। वह नागरिका के साथ कुश से कुशावती मे मिलने गई।

वसिष्ठ के शिष्य शार्ङ्गरव ने कुश को गुरु का सन्देश बताया कि आज अधि-देवियों की आप से भेंट होगी, जिसका परिणाम सुखद होगा। इसी बीच विदूषक ने आकर कहा कि आपकी महादेवी मुझे सामान्य जनों के समान ही मोदक देती हैं। मैं तो आज ही आपकी नयी दुल्हन देखना चाहता हू। राजा की दाहिनी आँख तभी फड़की तो उसने समझ लिया कि विदूषक की वाणी सत्य होकर रहेगी।

सागरिका और नागरिका ने कुशावती आकर कुश को दिव्य चक्षु प्रदान किया, जिससे कुश ने उजड़ी अरण्यग्रस्त अयोध्या मे राजप्रासाद देखा। वहाँ नागकन्या कुमुद्वती गौरी की आराधना करने के लिए आई हुई कन्दुक-क्रीडा कर रही थी। नायक ने देखा—

इन्दीवरप्रतिममक्षियुगं मुखं तु राकेन्दुकान्तमनयो रुचितो हि योगः।
वक्षोरुहौ मदनपूर्णसुवर्णकुम्भौ रम्भापि सा कथमुपैष्यति साम्यमस्याः॥

वह उस पर नितरां मुग्ध हो गया। इससे अधिदेवियों को विश्वास हो गया कि काम बना। नायक ने देखा कि नागकन्यायें प्रासादभित्ति-चित्र देख रही हैं और कुमुद्वती उसका चित्र प्रेमपूर्वक देख रही है। विदूषक ने स्पष्ट ही कह दिया कि वह तुम्हारी पटरानी बनेगी। नागरिका ने समर्थन किया। राजा ने अधिदेवियों को आश्वस्त करते हुए बताया—

अयोध्यापुरीमहं नवीकृत्य प्रवेदयामि, द्रक्ष्यामि सरयूमपि।

अधिदेवियाँ चलती बनीं। कुश के लिए प्रश्न हो गया—कुमुद्वती के बिना कैसे जीवन धारण करूँ?

अयोध्या का नवीकरण करके कुश वहाँ रहने लगा। सागरिका कुमुद्वती की मूर्धन्या सखी बन गई। उसे सागरिका ने कुश का चित्र दिया। दोनों का प्रेम बढ़ा।

अयोध्या को पुनः जनसम्मर्दित सुन कर कुमुद ने नायिका का वहाँ आना-जाना रोक दिया। सागरिका ने योजना बनाई कि तिरस्करिणी-विद्या से नायक-नायिका समागम हो।

अपवाद-रूप से नायिका को एक दिन और अयोध्या में आकर गौरी-आराधन के लिए पिता की अनुमति मिल गई। सागरिका से कुमुद्वती ने प्रार्थना की कि एक

वार नायक का दर्शन करा दो नही तो मर जाऊँगी। नागरिका ने कुश और सागरिका ने कुमुद्वती को इस व्यापार मे नियोजित करने का काम लिया। राजा को मृगया करते हुए सरयू तट पर वहाँ नागरिका ने स्थापित किया, जहाँ नायिका उससे मिलने के लिए आने वाली थी।

तिरस्करिणी के द्वारा ऐसा प्रबन्ध किया गया, कि राजा को कोई न देख सके, केवल कुमुद्वती ही देखे। राजा ने क्षण भर के लिए उसके कुचयुग के दर्शन से अपने को परितृप्त किया, जब स्नान करने के पूर्व उसका उत्तरीय कटि में बाँध कर कंचुक हटाया गया। इसके पश्चात् सागरिका की योजना से नायिका का नायक से एकान्त मिलन हुआ और राजा ने उसे अपना सर्वस्व समर्पित करते हुए—

दुर्गाणि राष्ट्रमियमर्णवनेमिरुर्वी मौल वलं रथगजव्वजवाजिपूर्णम्।
दारा गृहा मम वसून्यसवोप्यहं च जानीहि तन्वि निखिल त्वदधीनमेव॥

कुश और कुमुद्वती का प्रणय व्यापार यद्यपि रहस्यमय ढंग से प्रवर्तित हो रहा था, किन्तु कंचुकी के द्वारा यह नागलोक मे विदित हो गया कि कुमुद्वती का कुश से प्रेम चल रहा है। उसके पिता ने शंखपाल से उसका विवाह करने की योजना बनाई और शंख के घर मे उसे रख दिया। उसका सागरिकादि से मिलना बन्द कर दिया गया। विदूषक ने नायक के विवाह में बाधा देखकर लव की सहायता से उसे दूर करना चाहा। उसने सर्पयज्ञ करके नागों का दर्पभंग करने की ठानी।

वन्दीभूत कुमुद्वती का नखलेख नायक को मिला कि विश्वास रखे, हम लोग जीयेंगे तो मिल कर रहेंगे। नागरिका ने राजा को आश्वस्त किया कि परसो तक आपका विवाह कुमुद्वती से सम्पन्न ही हो जायेगा। राजा ने कुमुद्वती को आश्वस्त करने के लिए अपना अङ्गद दिया, जिसे फणावती जाकर नायिका को दे और उसकी मूर्च्छा दूर करे।

चतुर्थ अङ्क मे सागरिका के नियोजन से नायिका ने मानस-सन्ताप से उन्मत्त होने का नाटक रचा। इस रोग को दूर करने के उपाय करती हुई सागरिका नायक को लाकर नायिका से मिला सकेगी—यह उसने नायिका को बता दिया था। नायिका से ऐसी स्थिति में शंखपाल, कुमुद आदि ने चिकित्सक, मान्त्रिक, मौहूर्तिक आदि को उसका निदान करने के लिए बुलाया। सागरिका से भी उन्होने पूछा कि कुमुद्वती को ठीक करने का क्या उपाय है? उसने कहा कि एक सिद्धयोगिनी को जानती हूँ। उसके हाथ मे सर्वज्ञ नामक तोता रहता है। वह इसे ठीक करेगी। कुमुद ने सागरिका से कहा कि उनको शीघ्र बुलायें। इस प्रसग मे नागरिका सिद्धयोगिनी और कुश दिव्य शुक बना।

कुमुद्वती वैद्य, मान्त्रिक, मौहूर्तिक आदि के प्रयासों से अच्छी न हुई तो सागरिका, सिद्धयोगिनी और शुक राजा के आज्ञानुसार आये। शुक ने पुरुषवत् नायिका से प्रणय व्यवहार करते हुए अन्त मे अ

ठीक कर दिया और अपने मदनातङ्क को भी दूर भगाया। वह तो जीवन भर कुमुद्वती का तोता बनकर ही रहने को उद्यत हो गया था। उसका सोचना है—

राज्य रक्षतु मे लव स चतुरः संरक्षणे शिक्षितः
देवी कान्तिमतीत्पश्चरतु मामुद्दिश्यकालान् बहून्।
नाहं यामि पुनः पुर ध्रुवमिद तिर्यग्वपुश्चास्तु मे
कान्ता स्पर्श-सुखादतोपि भविता किं वान्यदेतादृशम्॥

सिद्धयोगिनी ने उसे कुश का वह अंगद दिया, जिसे फणावती के द्वारा नायक ने उसके लिए भेजा था। शुक की नायिका से सरस बातें हुई, जिसे सुनकर शख भांप गया कि कुमुद्वती कही अन्यत्र ही प्रेमप्रवणा है। उसने कुमुद को यह बताना चाहा तो कुमुद ने उसे उलटे ही डाँटा। दूसरे दिन पुनः आने के लिए शुकादि विसर्जित हुए।

पूर्वयोजनानुसार विदूषक ने लव को भड़काया कि बड़े भाई की कामना पूरी करें। कुमुद लाख समझाने पर भी अपनी कन्या शख को देने से विरत नही होना चाहता था। लव ने कुमुदादि को डराकर सत्पथ पर लाने का आयोजन किया, जिसमे सर्पयाग की माया द्वारा विदूषक ने योगदान किया।

नागह्रद मे लव शरवृष्टि से नागो को उत्पीडित करने लगा। उसके तट पर विदूषक ने सर्पयज्ञ ठाना। गरुड ने असख्य नागो को अपनी चोच से नोच-खसोट लिया। अन्त मे अपनी प्राणरक्षा के लिए कुमुद ने सागरिका से प्रार्थना की। ऐसी स्थिति में नायक और नायिका का विवाह हुआ। लव को शान्त करने के लिए कुमुद्वती की बहिन कमलिनी उसे दे दी गई। विदूषक को फणावती मिली।

कथाशिल्प

इस नाटक में विदूषक के विवाह की योजना भी नायक के विवाह की योजना के साथ चलती है। सूक्ष्मदर्शिनी नामक ब्राह्मण कात्यायनी उसे अपनी कन्या देने का प्रस्ताव रखती है। उसके साथ कन्या को देखने का अवसर विदूषक को मिला और वह उस पर मोहित हो गया।

रंगमंच को नये सविधानों से शृंगारित करने मे कवि ने रुचि ली है। द्वितीयाङ्क मे नायिका की कटि मे उत्तरीय बाँधकर उसके कचुक को खोलना सम्भवतः छैले दर्शकों के प्रीत्यर्थ था। नायक ऐसी स्थिति मे नागरिका को उपालम्भ देते हुए कहने लगता है, जब नायिका क्षण भर के पश्चात् कुचमण्डल छिपा लेती है—

इदानीं हि मामग्रे पश्यन्ती कुमुद्वती लज्जते।

एक नायिका को प्राय अर्धनग्न अवस्था मे स्नान की प्रक्रिया मे दिखलाना प्रेक्षको के लिए अतिशय रुचिकर था। द्वितीय अङ्क मे ऐसी नायिका को देखकर नायक के नीचे लिखे वक्तव्य द्वारा प्रेक्षकों को मासलित किया गया है—

'अस्या नितम्बजघनादिषु यादृगयलग्नः पटो निरवशेषमदृश्यभेद.' इत्यादि

अतिरात्र ने भरत के इस नियम का उल्लंघन किया है कि जलक्रीडादि रंगपीठ पर न दिखाये जायें।[1] द्वितीय अङ्क में—

फणावती-कलावत्योः करौ गृहीत्वा सरय्वामवतीर्य कुमुदवती नाभिदघ्ने जले तिष्ठति'। फणावती-कलावत्यौ कुमुद्वत्या उत्तरीयं कट्यां निबध्य स्तनकंचुकं मुञ्चतः यह और इसके आगे के व्यापार (नायिका) लज्जमाना पाणिभ्यां स्तनौ पिदधाति' आधुनिक चलचित्रों के पूर्वगामी दृश्य प्रस्तुत करते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह अशालीनता मनचले लोगों के प्रीत्यर्थ थी। ऐसे ही लोगों के लिए उत्सुक नायिका को सागरिका के मुख से कहलवाया गया है—

प्राप्य प्रियं निकटकुञ्जगृहं नयन्ती स्वैरं रमस्व परिरभ्य चिराय धन्या ॥

यह प्रकरण भाण की पद्धति पर विकसित है, जहाँ विटों को ऐसी बातें कहने-सुनने का एकाधिकार होता है। अभिनय के स्थान-स्थान पर निर्देश कवि की अभिनय चातुरी को प्रकट करते हैं। यथा, नायिका के लिए—

कथंचिदपि धैर्येण किंचिद्विगलितत्रपा मुखमीषत् स्वमुन्नमय्य सस्मितं प्रियमैक्षत।

प्रणय-पद्धति में झूठी बातें बनाने का विक्रम इस नाटक में विशेष रूप से अपनाया गया है। यथा, द्वितीय अङ्क में सागरिका के नियोजन में नायिका नायक के साहचर्य-सुख का आनन्द ले रही थी। इसे छिपाने के लिए सागरिका कंचुकी को उल्लू बनाती है यह कहते हुए—

अद्य पूजासमापनाय कुमुद्वत्यैव पुष्पाण्यवचितानि। पश्येति। तस्मै स्वकरस्थपुष्पाणि प्रदर्श्य एतदर्थमियं क्षणमन्यतो नीता।

गीतात्मकता के सौरभ से स्थान-स्थान पर यह नाटक सुवासित है, विशेषतः एकोक्तियों में। नायक की एकोक्ति है—

कर्पूरसान्द्रहरिचन्दनलेपनं वा यन्त्रस्थचन्द्रगलिता मृतसेवनं वा।
हेमन्तहैमवतनिर्झरमज्जनं वा तस्याः स्तनाग्रघटनेन मयानुभूतम् ॥

द्वितीयाङ्क से—

अर्थोपक्षेपक के समान चीटिका का उपयोग तृतीयाङ्क में मिलता है। विदूषक नागरिका से प्राप्त चिट्ठी राजा को देता है, जिसमें लिखा है—

'कुमुद्वती निरुद्वेति' इत्यादि।

नाट्यशिल्प

एक ही रंगमंच पर एक ही समय सागरिका, नागरिका, राजा आदि एक ओर हैं। वे किसी व्यापार में नहीं लगे हैं। दूसरी ओर कुछ दूरी पर विदूषक का सूक्ष्म-

१. नाट्यशास्त्र २३.२९६-२९९।

दर्शिनी की कन्या के साथ विवाह का प्रस्ताव पारित हो रहा है। रंगमंच पर बिना किसी काम के पात्रों को दिखाना उचित नहीं है।

अनेकश. रगमच पर पात्र बिना बोले हुए देर तक ऐसे काम करते रहते हैं, जो प्रेक्षकों को रुचिकर प्रतीत हो। यथा, चतुर्थ अङ्क में—कुमुद्वती तथा निष्ठति। कुमुद· हस्ते फलान्यादाय सर्वज्ञराजशुकाय तवायं फलोपहार इति प्रदर्शयति। इसी अङ्क मे आगे चलकर—

शुक.—सानन्दमुड्डीय कुमुद्वत्या अंसमारुह्य प्रत्यङ्गमभिमृशन्निव मुख मुखेन सयोज्य चक्षुरधरादीनि स्वतुण्डेन जिघ्रन्।

नाटक मे कतिपय स्थलों पर अदृष्टाहृति (Dramatic Irony) है। यथा,

शंखपाल.—शुकराज, श्व: पाणिग्रहणमस्या यथा न विच्छिद्येत तथा क्रियताम्।

वह बिचारा कहाँ जानता था कि कुमुद्वती का विवाह तो कल होने ही जा रहा है, किन्तु उसके साथ नही, शुक के साथ।

नाटक में तोते का मानव-वाणी सम्पन्न होकर नायिका से प्रेमोपचार करना, कर्णपत्रिका पर नखलेखन द्वारा सन्देश अङ्कित करके नायिका को देना, तिरस्करिणी द्वारा नायक को अदृश्य रख कर केवल नायिका के लिए दृश्य रखना, चित्रदर्शन, आदि महत्त्वपूर्ण और रुचिकर सविधान हैं।

शैली

भाषा की सरलता और सवादो की स्वाभाविकता को कवि ने अपने बड़े भाई नीलकण्ठ से ही मानो उधार ले रखा था। इस दृष्टि से यह नाटक नलचरित के समान है।

अतिरात्र ने रूपको के द्वारा अपनी लेखनी को स्पष्टता प्रदान की है। यथा,

इदमगाघे मदनातङ्कमहोदधौ मज्जतो मम काशकुशावलम्बनम्।

हास्यरस की अभिनव निर्झरिणी अतिरात्र ने प्रवर्तित की है। कुमुद्वती के उन्माद का दृश्य है। उसका पिता पूछता है कि मैं कौन हूँ? वह उत्तर देती है—

त्वं भूतलनाथो भूपालः।······अथवा भवति द्युलोकनाथो महेन्द्रः।

शखपाल ने पूछा—मैं कौन हूँ? वह उत्तर देती है—

त्वं दक्षिणदिङ्नाथो धर्मराजः।

सकेतित अर्थ है—आप मेरे प्राण लेने वाले यम ही हैं।

वैद्य बुलाये जाते हैं। उन्होंने बताया कि वात-प्रधान रोग है। पाँच-छ दिन में ठीक होगा। वे भगाये गये। फिर मान्त्रिक आये। पिता ने पूछा कि इसे ग्रहशंका है कि नहीं? कुमुद्वती ने स्वगत सुनाया—मुझे शंखपाल के साथ पाणिग्रहण की शंका

है। उसने कुमुद्वती के सारे अंग पर भस्म लगाया और कहा कि मेरे अनुष्ठान से इसे सर्वस्व लाभ होगा। फिर गोलाचार्य आये। उसने कहा कि इसे मुहूर्तानुसार गणना करने से देख रहा हूँ कि अभीष्ट वर लाभ होगा। उसने शंखपाल के पूछने पर बताया कि तुम्हारा चाहा हुआ विवाह कल नहीं होगा।

सूक्तिसौरभ

१. विधिना विपरीतेन चरतां विषमे पथि।
मैत्र्यामित्रेण दृष्टानामाविराशु विनश्यति ॥
२. अनुरूपाङ्गनारूप – सकृदालोकनादपि।
हृदयं विद्रवेत् पुंसां नवनीतमिवानलात् ॥
३. प्रकृत्यैव मुग्धा निरंकुशवचना च स्त्रीजातिः।
४. विविक्तप्रिया हि देवाः।
५. अतिप्रीतिरनर्थाय प्रीत्यभावे कुतः सुखम्
तस्मान्मध्यमरीत्यैव सेव्यो राजा मनीषिभिः।
६. उपकर्तुरुपकारः कर्तव्यः।
७. राजकार्याणि गूहनीयानि।
८. सुरूपास्तु विरूपा वा यस्य यस्यां मनोगतिः।
सैव तस्योर्वशी सैव रम्भा सैव तिलोत्तमा ॥
९. न हि पत्न्यसन्निधाने परस्त्रियः सम्भाष्याः।
१०. निसर्गमुग्धा हि स्त्रीजातिः।

इस नाटक की प्रगुणता असन्दिग्ध है। इसका सबसे बड़ा दोष है प्रकरणों और चर्चाओं को अनावश्यक रूप से लम्बायमान करना। ऐसा करने में कवि सापवाद या व्यर्थ की बातें भी कहने लगता है। भला पंचम अंक में कुश को अपनी प्रिया नायिका के विषय में ऐसा कहना चाहिए—

तडित्तुलितचांचल्या स्त्रीणां प्रेमप्रवृत्तयः।
वश्या भवन्ति ताः पुंसां भूषाम्बरधनादिभिः ॥

वह नायिका तो नायक के लिए प्राण दे रही थी। पंचम अंक में राजा का नागरिका से संवाद सर्वथा त्याज्य है, क्योंकि इससे कोई बात नहीं बनती।

नाटक का नायक कठपुतली है। वह स्वयं कुछ करता नहीं। दूसरों के संकेत पर चलता-फिरता है। कवि को चाहिए था कि नायक से कुछ अपनी ओर से भी कराता।

छायातत्त्व

राजा कुश का चित्र देखकर नायिका का मुग्ध होना छायातत्त्व का परिचायक है। विदूषक का इस प्रकरण में प्रश्न है—

सा किमचेतन एव चित्रेऽनुरक्ता। न पुनस्तादृशरूपवति पुरुषे।

यह प्रश्न ही उत्तर था नायक के नीचे लिखे प्रश्न का—

किं मत्प्रतिच्छन्दकानुराग एव मय्यनुरागः।

सागरिका ने कुश को जो चित्र दिया, उसे नायक ही मानकर नायिका ने व्यवहार किया। यथा,

मुखे मुखं निदधतीव। इत्यादि।

इस नाटक में चतुर्थ अंक में यहीं तक राजा नायक का शुकरूप धारण करना छायातत्त्व है। वह मानवोचित वाणी से प्रपन्न है।

नागरिका का सिद्धयोगिनी बनना छायातत्त्व है। वह कहती है—(अभिमन्त्र यन्तीव क्षणमधरकम्पं कुर्वाणा कुमुद्वती वीक्ष्य शुकमंसादवरोप्य) भो भो सर्वज्ञ महात्मन्, मयि सौहार्दात् क्षणमेनामधिगम्य तत्तदवयवानामृश्य दोषानुत्सारयन् प्रज्ञाम् त्याद्य त्वरितम् ल्लाघय।

अध्याय २१

अद्भुतदर्पण

अद्भुतदर्पण[१] के रचयिता महादेव के गुरु सुप्रसिद्ध बालकृष्ण थे, जिनके अपने गुरु होने की चर्चा कवि ने इन शब्दों मे की है—

> दिक्चक्रं कियदण्टभित्तिभिरिदं नन्वावृतं सर्वतो
> ऽप्यण्डं नाम कियत्त्रिविक्रमपदैराक्रान्तमेतत्त्रिभिः।
> तन्निर्यन्त्रणबालकृष्णभगवत्पादप्रसादोन्मिषत्-
> प्राचण्ड्यः कविमण्डलेश्वरयशोगुम्फः क्व वा जृम्भताम् ॥

यही बालकृष्ण रामभद्र दीक्षित के गुरु थे, जैसा उन्होंने नीचे लिखे पद में कहा है—

> यस्यानुग्रहदृष्टिमर्पयति च श्रीबालकृष्णो गुरुः।

इस प्रकार महादेव और रामभद्र दोनों सतीर्थ थे। दोनो को शाहराज के द्वारा १६९३ ई० मे प्रदत्त अग्रहार में भाग मिला था। महादेव को रामभद्र से तिगुना भाग मिला था। इससे महादेव की उस समय तक सर्वोपरि ज्ञानवृद्धि प्रमाणित होती है।

महादेव के पिता कृष्णसूरि कौण्डिन्य-गोत्रीय थे। वे तञ्जौर के निकट कावेरी के तट पर पलमारनेरी के निवासी थे। उन्होंने अद्भुत-दर्पण की रचना अपनी युवावस्था मे लगभग १६६० ई० में की होगी। नाटक की प्रस्तावना में इसके लेखक सूत्रधार ने लेखक की नई अवस्था की चर्चा करते हुए कहा है—

> अस्ति तस्य किल सूनुरायुष्मानस्माकं गर्भरूपो वत्समहादेवः।

कौण्डिन्यवंश के उदार चारित्रिक योगदान के विषय में सूत्रधार का प्रस्तावना में कहना है—

> आ प्राभाकरयज्वनः स्वयमभिव्यक्तीभवद्ब्रह्मणा-
> माचारैश्चरितार्थितश्रुतिगिरामाजानशुद्धात्मनाम्।
> कौण्डिन्यव्यपदेशपूतयशसा यद्ब्राह्मणानां चिरात्
> संघोऽयं सफलीकरोति नयनं तन्नः परं मंगलम् ॥ ३

प्रसंगत नाटको के अभिनय के उपयोगों की चर्चा करते हुए सूत्रधार का कहना है—

> सन्दर्भे परिशोधनं कवयितुः सत्प्रीणनं मादृशाम्।
> कीर्तिर्नाटकनायकस्य सदसः सद्यः परा निर्वृतिः॥

---

१. अद्भुतदर्पण का प्रकाशन काव्यमाला सं० ५५ में हुआ है।

नाटक का अभिनय यज्ञ-सम्पादन के अवसर पर अध्वरशोभा के लिए हुआ था।[1] लेखक का उद्देश्य था कि इस नाटक का परिशोधन अभिनय के प्रेक्षकों के द्वारा किया जाय।[2]

संविधान

इस नाटक का सर्वप्रथम संविधान एक ऐसे दर्पण की योजना है, जिसे रावण के श्वशुर मय ने उपहार में उसे दिया था। इस अद्भुत दर्पण की विशेषता थी—

प्रतिफलति यत्र सर्वं वस्तु यदा योजनत्रितयात्।
सन्त् क्रियाश्च सर्वा विना पुनर्मानसीं वृत्तिम्॥ १.२३

अर्थात् तीन योजन के घेरे में जो कुछ होता था, उन क्रियाओं को इसमें प्रतिबिम्बित देखा जा सकता था।

कथावस्तु

राम ने लंका पहुँचने पर रावण के पास अंगद द्वारा सन्धि-प्रस्ताव भेजा। यह रामपक्ष के वीरों को अच्छा नहीं लगा। इधर उन्हें समाचार मिला कि विभीषण के सकुटुम्ब आवास को मेघनाद जलाने का काम पूरा करने ही वाला था कि सम्पाति ने गुप्त रूप से कुटुम्ब को मैनाक पर्वत पर ले जाकर छिपा दिया। इधर लंका में *'मायाप्रायं योद्धव्यम्'* इस योजना के अनुसार मय, शम्बर, विद्युज्जिह्व आदि मायावियों का आदिकुल रावण की ओर से लंका में बुला लिया गया था।

शम्बर ने वानर का वेश रावण के मनोविनोद के लिए बनाया था, जिसकी सूचना जाम्बवान् ने राम को दे दी थी कि सभी वानरों को यह बता दिया जाय। विभीषण को यह काम दिया गया कि असली और नकली वानरों को वे जानकर समझाते-समझाते रहे। अनल ने राम से बताया कि अंगद को फोड़ने का प्रयास लंका में हो रहा है। उसी समय वानर वेशधारी शम्बर ने लक्ष्मण के कान में कहा कि अंगद राक्षसों में जा मिला है। जाम्बवान् को सन्देह हो गया कि अंगदविषयक समाचार देने वाला वानर छायात्मक है, वह वस्तुतः राक्षस है। उसने राम की इच्छानुसार शम्बर को पकड़ लिया। पर शम्बर ने अपने को झट अदृश्य कर लिया जब जाम्बवान् के समीप दधिमुख नामक वानर था और जाम्बवान् ने राम का पत्र पढ़ने के लिए उसका हाथ छोड़ रखा था। जाम्बवान् ने दधिमुख (प्रकृत) को (विकृत वानर शम्बर) समझकर विभीषण के पास उसकी पहचान कराकर दण्ड देना चाहा। इधर मुक्त हुए शम्बर ने निर्णय लिया कि बीच में विभीषण बन कर मैं दधिमुख को मरवा दूँगा।

---

१. सूत्रधार—(सस्मितम्।) अध्वरशोभायै वयमाहूताः।
२. सूत्रधार—तदद्य कर्मान्तरेषु युष्माभिः प्रयुज्यमानमार्या यावत् परिशोधयन्ति।

द्वितीय अङ्क में शम्बर ने दधिमुख का रूप धारण करके राम और लक्ष्मण को भरमाया कि अङ्गद रावण से जा मिला है, सुग्रीव मार डाला गया और अंगद वानरों पर उत्पात कर रहा है। इधर वानर लंका के प्राकार का मर्दन कर रहे थे। राम और लक्ष्मण वानरों की सहायता के लिए चल पड़े।

तृतीय अङ्क में शम्बर ने अङ्गद का रूप धारण करके सुग्रीव के कृत्रिम सिर को राम लक्ष्मण के आगे लाकर पटक दिया। उसने राम से कहा कि मैंने सुग्रीव से बदला ले लिया। राम ने छाया अङ्गद का अपूर्व व्यवहार देखा तो मन में सोचा—

अभ्यस्त एष बहुशोऽतिविनीतवृत्तिरद्य त्वपूर्व इव हन्त विचेष्टते यत्।
तज्जोपमेव सकलं हृदि मर्षयन्तः कार्यार्थिनो हि समये मनि विक्रियन्ते ॥३.१३

लक्ष्मण को सन्देह हुआ कि यह अङ्गद नहीं है। उन्होंने उसे मारना चाहा।

इस बीच वहाँ सुग्रीव आ पहुँचे। उसकी वाणी सुनते ही राम स्वस्थ हो गये। लक्ष्मण ने राम से कहा कि यह वास्तविक सुग्रीव है कि नहीं—यह जान लें। इधर रावण के सेनापति प्रहस्त ने शम्बर को बन्दी बना लिया था, क्योंकि उसने अंगद का वेश धारण किया था। इधर दधिमुख और जाम्बवान् ने समझ लिया कि पररूप-धारी राक्षस ने किस प्रकार जाम्बवान् को झटका देकर, अपने स्थान पर दधिमुख को पकड़वा दिया और फिर विभीषण बनकर दधिमुख को मरवाने की चेष्टा कर रहा था। वे भी उत्तरगोपुर की ओर राम से मिलने चल पड़े, जहाँ लड़ाई हो रही थी।

प्रहस्त अंगदरूपधारी शम्बर को मार ही डालने वाला था, जब शम्बर ने उससे कहा कि मैं अंगद नहीं, शम्बर हूँ। तभी जाम्बवान् वहाँ आया और उसने पुनरपि शम्बर को पकड़ लिया।

युद्ध में इन्द्रजित ने नागास्त्र का प्रयोग किया। उसने सुग्रीव को निश्चेतन कर दिया। राम ने गारुडास्त्र के प्रयोग से उसको विदलित किया। प्रहस्त मारा गया। रावण स्वयं युद्धभूमि की ओर चला। राम को विभीषण ने अद्भुत दर्पण नामक रावण की मणि अर्पित की।

शूर्पणखा ने राम का कृत्रिम सिर सीता को दिखाकर उसे रावण से विवाह करने के लिए विवश करना चाहा। सीता उसे देखकर मूर्च्छित हो गई। त्रिजटा राम की विजय देखकर आई थी। यह बात सीता के कानों में ज्योंही पड़ी कि वह सचेत हो गई।

सातवें और आठवें अङ्क में मायानाटिका की योजना करके त्रिजटा ने सीता को दिखाया कि किस प्रकार रामादि ने रावणादि को नीचा दिखाया है। रावण तिरोहित होकर यह सब देख रहा था। उसने खड्ग चला कर मारने का उपक्रम किया तभी रावण को नेपथ्य से सुनाई पड़ा कि कुम्भकर्ण मार डाला गया। थोड़ी देर पश्चात् उसने सुना कि इन्द्रजित मार डाला गया।

नवम अङ्क में लङ्का और निकुम्भिला की बातचीत से ज्ञात होता है कि किस प्रकार हनुमान् ने लङ्का का छेद, भेद और दाह किया। लङ्का से ब्रह्मा ने बताया कि शीघ्र ही राम विभीषण को लङ्केश्वर बनायेंगे। हम लोगो को यज्ञपरायण होना है, व्यभिचार परायण नही।

रावण ने माया से अपने को असख्य बना लिया और एक-एक वानर पर कई रावण पिल पडे। फिर तो एक-एक रावण पर असख्य राघव पिल पडे। रावण मारा गया और लङ्का मे पुन: शान्ति स्थापित हुई। लङ्का और निकुम्भिला सीता की शरण मे पहुँची। तब भी शूर्पणखा को पड़ी थी कि सीता के कारण सब हुआ है। उसी को उद्विग्न किया जाय। सीता को राम से अलग करना है। उसके परगृहवास-दूषण से राम खिन्न थे। मय ने योजना बनाई—

> अहं रामो भूत्वा जनसदसि सीतामुपगतां
> परित्यक्ष्याम्येनां परभवनवासं प्रकटयन्।
> ततः सा रोषान्धा नवमसहमाना परिभवं
> प्रवेक्ष्यत्यम्भोधिं दहनमथवा शोकविवशा॥ १०.८

सीता ने अग्नि प्रवेश किया तो अग्नि ने उन्हें पुन: राम को दे दिया। ऋषियो ने नेपथ्य से घोषणा की कि आप विष्णु ने अवतार के लिए लक्ष्मी-रूपी सीता पुन: अवतरित हुई है। राम के सभी वानरादि सैनिक जी उठे। देवताओ के साथ दशरथ ने राम को सीता सहित आशीर्वाद दिया। राम, सीता और लक्ष्मण विमान मे बैठे। राम के अभिषेक की सज्जा होने लगी।

भरत वाक्य है—

> तापं तमश्च जगतां सरसं हरन्ती। चन्द्रप्रभेव कविता जनतां धिनोतु॥

नाट्यशिल्प

रूपक मे समयाभाव को दृष्टि मे रखकर रगपीठ पर दृश्य कथा को छोटा बनाने के उद्देश्य से प्रस्तावना मे, अर्थोपक्षेपको मे और पताका स्थानको मे अनेक ऐसी घटनाओ की सूचना-मात्र दे देते हैं, जो कथा को पूर्णतया समझने के लिए आवश्यक होती है, किन्तु उनका अभिनय नही होता। प्रस्तावना या आमुख को प्रस्तुताक्षेपी होना चाहिए। इस प्रकार रगपीठ पर अङ्क अभिनीत होने वाली कथा का प्रसङ्ग समक्ष मे आ जाता है। अद्भुतदर्पण मे प्रस्तावना के अन्तिम भाग मे हनुमान् का लङ्का-विषयक समाचार देना, समुद्र पार करने के लिए सेतु बनाना, वानर सेना का समुद्र पार करना, राम का त्रिकूट पर स्कन्धावार बनाना और अगद का रावण के पास जाना—यह सब एक वाक्य मे बता दिया गया है। यह सब एक प्रकार से आरम्भिक विष्कम्भक का रूप है।

कथा का आरम्भ वेणीसहार के समान होता है। वेणीसंहार के भीम के समान अद्भुतदर्पण का लक्ष्मण कहता है—

मानी संधिकथां करोति हृदि कस्तद्वैरमूलं स्मरन् । १.१०

विष्कम्भक में रंगपीठ पर दृश्य का अभिनय भी होता है, केवल सूचना ही नहीं दी जाती । दूसरे अङ्क के पहले जो विष्कम्भक है, उसमें दृश्य का निर्देश है—

ततः प्रविशति दधिमुखं हस्ते गृहीत्वा जाम्बवान् । तथा—शम्बरः (सहस्ततालं विहस्य) ।

पचम अङ्क के पहले विष्कम्भक मे २७ पद्य हैं । विष्कम्भक पद्य के लिए मूलतः नही बनाया गया था । फिर इतने पद्यों की भरमार तो विचित्र ही है । यह तो किसी अर्थ में अङ्क से भिन्न नही रह गया है । इसमे भूत और भावी घटनाओं की सूचना स्वल्प ही है ।

महादेव को नाटक लम्वायमान करने में व्यर्थ की निपुणता है । पूरे षष्ठ अङ्क में कोई काम की बात नही है, जो एक-दो पक्तियों मे कह देने पर कथा को आगे बढने में कोर-कसर आने देती ।

अङ्क के प्रायः अन्त में जो बात कोई कहता है, उसी बात को कहते हुए वह अगले अङ्क के आरम्भ में रंगमच पर आ जाता है । छठें अङ्क के अन्त मे और सातवें के आरम्भ में और सातवें अङ्क के अन्त में तथा आठवें अङ्क के आरम्भ में इस प्रकार लक्ष्मण जाते-आते हैं । अन्यत्र भी वे ही श्लोक पुनः पुनः आते हैं । यथा, 'विज्जुज्जीह सदेएवि' परावष्टम्भेन घलितवति और अनेन सौजन्येनायमर्थी । 'तदुपायेन सरमा' पद्य की पुनारावृत्ति चार बार हुई है ।

अदृष्टाहृति

अदृष्टाहृति (Irony) के कतिपय अनुत्तम उदाहरण मिलते हैं । रावण त्रिजटा को अपना हितैषी समझ कर आशा करता है कि मायारूपक दिखाकर वह सीता को मेरे पक्ष में ला रही है । वह महोदर से सप्तम अङ्क में कहता है—

वयस्य, पर्यवस्थापयेति वचनादभयानकरसप्रायेण मच्चरित्रवस्तुकेन मायाविहारेण मया सीतामावर्जयितुमनया समारब्धेन भवितव्यमिति तर्कयामि ।

आगे चल कर इसके ठीक विपरीत स्थिति उसके समक्ष आती है ।

सप्तम अंक मे एक बार और नीचे लिखी अदृष्टाहृति है—

रावण—वयस्य, नन्वस्मद्विजयमहोत्सवं दर्शयति सीतायै त्रिजटेत्यति कुतूहलस्थानमेतदस्माकम् ।

वास्तव में त्रिजटा राम की विजय दिखा रही थी ।

मायानाटिका

महादेव की मायानाटिका नाट्यशिल्प की एक विशेष उपलब्धि है ।[1] एक तो

१. मायानाटिका की सूत्रधारिणी त्रिजटा है, जो राक्षसी होने के नाते मायापात्रों का सर्जन करके इस मायानाटिका की व्यवस्था सीता के मनोरंजन के लिए करती है ।

यह छायानाटक का प्रतिरूप है, जिसमे रंगपीठ पर सभी पात्र मायात्मक हैं और रंगपीठ पर ही वे ही पात्र दर्शक बन कर अपनी प्रतिक्रिया भी व्यक्त करते हैं और दूसरे यह गर्भाङ्क अपनी कोटि का निराला ही है, जिसमें रंगपीठ चार भागों मे नीचे लिखे अनुसार विभक्त है—

प्रथम भाग पर मायात्मक पात्र राम, रावणादि अभिनय करते है। इस मायात्मक अभिनय के कारण इसका नाम मायानाटिका है।

द्वितीय भाग पर आसीन सीता और सरमा प्रथम भाग को देखती हैं और अभिनयात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त करती हैं। तृतीय भाग पर उपर्युक्त दोनो भागो को तिरोहित रह कर प्रकृत रावण और महोदर देखते है और अपनी अभिनयात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं।

चतुर्थ भाग पर उपर्युक्त सभी भागो के अभिनयो को प्रकृत राम और लक्ष्मण अद्भुत दर्पण मे देखते हैं और अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं।

प्रेक्षक इन चारो भागो के अभिनयों को देखता है। संस्कृत के नाट्य-साहित्य मे ऐसा वैचित्र्यपूर्ण चतुस्स्थलीय अभिनय प्रेक्षकों को दिखलाने का उपक्रम अन्यत्र विरल ही है। इसका उपजीव्य वस्तुत बालरामायण मे रावण के मनोविनोद के लिए प्रदर्शित सीता के स्वयंवर का रूपक है।[1]

एकोक्ति

अद्भुत-दर्पण का आरम्भ लक्ष्मण की एकोक्ति से होता है। इसमे राम के अङ्गद द्वारा रावण के पास सन्धि प्रस्ताव भेजने पर लक्ष्मण अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। वे इस एकोक्ति मे व्यक्त करते है कि जाम्बवान् की भी प्रति क्रिया मेरी ही जैसी है। उसी समय रंगपीठ पर एक ओर राम भी उपर्युक्त संवाद-प्रेषण के प्रति अपनी प्रतिक्रिया एकोक्ति द्वारा व्यक्त करते है। प्रथम अङ्क मे शम्बर रंगपीठ पर दूसरो के होते हुए भी आकर एक भाग मे अपनी एकोक्ति सुनाता है।

चरित्र-चित्रण

कवि ने राम के चरित्र को इतना उदात्त बनाया है कि प्रतिनायक रावण भी उनकी प्रशसा मे कहता है—

अनेन सौजन्येनायमर्थी यद्युपतिष्ठते।
सीतां विनान्यदखिल दत्तमेव मया भवेत् ॥२०॥

इसमे प्रकृति-वैविध्य रोचक है। मानव, राक्षस, भल्लूक, वानर आदि के साथ ही लङ्का और निकुम्भिला को रंगमञ्च पर लाया गया है। इनमे से लङ्का नगर की अधिदेवी है और निकुम्भिला राजोद्यान की अधिदेवी है। इनके अतिरिक्त

१. बालरामायण तृतीय अङ्क मे सन्निवेशित प्रेक्षणक।

माया पात्रों का वैचित्र्य है। महोदर और माल्यवान् के चरित्र में वैविध्य है। वे अकेले में कुछ और सोचते हैं और रावण के समक्ष ठीक विपरीत बन जाते हैं।

छायातत्त्व

अद्‌भुत-दर्पण में मायावी राक्षसों और शम्बर, मय और विद्युज्जिह्व नामक असुरों के मायात्मक कार्यकलाप में छायातत्त्व का विशेष चमत्कार स्वाभाविक है। प्रथम अंक में शम्बर वानर बन कर रामादि को भरमाता है कि अंगद रावण से जा मिला है।

छायातत्त्व के द्वारा नाटक में मनोरञ्जक मायात्मक व्यापार प्रस्तुत किये गये हैं। यथा, जाम्बवान् ने वानर बने हुए शम्बर को हाथों से पकड़ रखा था, जब उसने राम से बताया था कि अङ्गद रावण से मिल गया है। इस बीच सुग्रीव-सेवक दधिमुख नामक वानर उसके पास आया, जब शम्बर का हाथ छोड़कर जाम्बवान राम से प्राप्त पत्र पढ़ रहा था। फिर तो शम्बर अदृश्य हो गया और जाम्बवान ने दधिमुख वानर को पकड़ लिया। उसे सन्देह होने लगा कि यह वास्तविक दधिमुख ही है क्या अथवा वानर बना हुआ राक्षस? उसकी पहचान कराने के लिए वे उसे विभीषण के पास ले चले। मार्ग में उसने जाम्बवान् से कहा कि मुझे सुग्रीव ने भेजा है कि मैं राम से कह दूँ कि रावण ने अङ्गद को बन्दी बना लिया है। जाम्बवान् दधिमुख से पूछ बैठा—

ब्रूषे सद्यो यस्त्वमस्मत्पुरस्तात् तारेयस्यारातिपक्षप्रवेशम्।
स त्वं नयस्तद्विरुद्धप्रकारं किंचिच्चेदं जल्पसीत्यद्‌भुतं नः॥

इसे सुन कर दधिमुख ने कहा कि मेरा रूप धारण करने वाले किसी राक्षस ने आपको ठग लिया। जाम्बवान् ने कहा—वह राक्षस तो तुम्हीं हो। तुम्हें विभीषण से पहचनवायेंगे। फिर तो शम्बर बीच में विभीषण बन बैठा।

रस

अद्‌भुतदर्पण नाटक में अद्‌भुत रस अङ्गी होना स्वाभाविक है। राम ने स्वयं कहा है—

यत् सत्यमभितः स्वव्यैरिन्द्रियैरिन्द्रजालवत्।
अद्‌भुतैकरसावृतिरन्तर्मीलयतीव माम्॥ ४.८

शैली

अद्‌भुत दर्पण की शैली सर्वथा नाट्योचित है। कवि का प्रयास है सरल भाषा में अपने भावों को व्यक्त करना। इसमें उसे सफलता मिली है।

कहीं-कहीं कवि ने पौराणिक कथाओं का प्रसङ्ग देते हुए अपनी बातों को स्पष्ट किया है। यथा, लक्ष्मण रावण के द्वारा अपनी भुजाओं के पराक्रम की प्रशंसा करने पर सप्तम अङ्क में कहते हैं—

द्रष्टा एव ते नन्वार्गस्य चिरादेकबाणलक्ष्येण वालिना वानरेन्द्रेण बाहवः।

अध्याय २२

शृंगारकोशभाण

शृङ्गारकोशभाण के प्रणेता नीलकण्ठ दीक्षित के तृतीय पुत्र गीर्वाणेन्द्र दीक्षित हैं। पिता से गीर्वाण ने शिक्षा पाई। भाण के अन्त मे कवि ने 'काशीविश्वनाथाय नमः' लिखा है। इससे सम्भावना होती है कि इसकी रचना काशी मे हुई हो। कृष्णमाचार्य के अनुसार कवि ने अन्यापदेश-शतक की रचना की थी।[1] कवि का वाग्वैभव सत्रहवीं शती के उत्तरार्ध मे स्फुरित हुआ।

शृङ्गारकोशभाण का प्रथम अभिनय वरदराज के वसन्तोत्सव-यात्रा के अवसर पर हुआ था। इसमे विट शृङ्गारशेखर अपने पूरे दिन की वैशिक चर्या का परिचय प्रस्तुत करता है। वेश्याओ के परिचय के साथ ही आनुषंगिक रूप से वेश से सम्बद्ध विविध प्रकार के विनोदात्मक युद्ध और वेशप्रेमियों की पतनोन्मुख प्रवृत्तियो का प्रदर्शन प्रमुख है। स्वभावत गीतितत्त्व का उच्चकोटिक उन्मेष भाण मे निर्भर है।

नृद् रूपकेण दरपीडितपार्वणेन्दुनिष्यन्दिनूतनसुधारससोदरेण।
नृत्तप्रयोगविशदाधरसोत्तरेण, त्व नो विकासय मनासि विना विलम्बम्।

रंगकेतु नामक पात्र ने भाण के नायक शृङ्गारशेखर की भूमिका निष्पन्न की थी। रंगकेतु इसके पहले मदुरापुर मे नाट्याभिनय कर चुका था।

विट को सर्वप्रथम प्रातःकाल की रमणीय छटा मे निमग्न पाते हैं। उसे पहले वसन्तक से भेंट होती है। वह सारंगिका का वियोग होने से व्यथित होकर गाता है—

आगुल्फायतवेणिकां स्मितमुखीमाकर्णपूर्णेक्षणां
भारात् किंचिदुरोजयोरवनतां सन्दिग्धमध्योज्ज्वलाम्।
तन्वीमुन्मदमल्लिकाक्षगमनां संत्यज्य सारंगिकां
वर्ते जीवनमात्मनो विफलयन् दीनो विधे व्यत्ययात्॥

उसके साथ वेशवाट के प्राभातिक रामणीयक के अवलोकन के द्वारा मनोविनोद करना था। वहां से दाहिनी ओर कमल वन खिलखिला रहा था। उस जलाशय मे चक्रवाक, हंस, भ्रमर आदि प्रातःकाल मे उन्निद्र हो रहे थे। एक ओर वृक्षवाटिका थी। विट का कहना है कि ब्रह्मा ने आँख बनाई। ब्रह्मा के इस श्रम को सफल करने की विधि है कि आप वेशवाट मे वाराङ्गनाओ का कम से कम दर्शन तो करे। वे शय्यागृह से अभी निकल रही हैं। सर्वप्रथम शृङ्गारशेखर को अपनी भोग्या चन्द्रकला

---

१. शृङ्गारकोशभाण की हस्तलिखित प्रति सागर वि० वि० के पुस्तकालय मे तथा तजौर के सरस्वती-महल-लाइब्रेरी मे ४६११ सख्यक है। अन्यापदेशशतक Descriptive Catalogue of Sanskrit Mss in Oriental Ms. Library Madras मे XX.8019 सख्यक है।

मिली, जिसकी कामक्रीडा का वर्णन करके चन्द्रशेखर ने आगे बढ़ने पर मधुकरिका को देखा। उसे किसी विदेशी विट ने ठग लिया। उसके साथ पाच पैसे में रात भर आनन्द मनाकर जब सवेरे के लगभग वह सोई तो विदेशी सारंग द्वारा प्रदत्त उसके हार को चुराकर चम्पत हो गया, जिसका मूल्य २०० स्वर्णनिष्क था। फिर उसे वैजयन्तिका अपनी बहिन चन्दनलता के साथ दिखी। चन्दनलता वेशकर्म के समारम्भ के लिए सारंग को कौमारहर रूप में प्राप्त कर चुकी थी। सारंग सर्वोत्तम विट है—

आकारसम्पदि विलासगतौ चटूक्तौ वित्ते कलासु सकलासु वदान्यतायाम्।
पंचेषुविक्रमपदे च दयाविशेषे पश्यामि नास्य विमृशन्नपि तुल्यमन्यम्॥

इसे शृङ्गारशेखर ब्रह्मा की सृष्टि-विधान का साफल्य मानता है कि चन्दनलता को सारंग मिला।

वसन्तक शृङ्गारशेखर के साथ-साथ घूम रहा था। उसे सारग का नाम सुनकर सारंगिका का स्मरण हो आया कि मुझे सारंगिका कैसे मिलेगी। तभी शृङ्गारशेखर को सारंगिका दिखी। उसने उसे उपदेश दिया—

मंजीरनाद-मधुरं चरणप्रहारः काञ्चीलताकलितकोमलवन्धनं च।
भ्रूभंगसामि विपमञ्च कटाक्षभेदः स्वामिष्वनंगनिगमाहृत एप दण्डः॥

तुम वसन्तक को छोड़ो मत। वह धनी जो है। शृङ्गारशेखर ने दोनों का हाथ मिलवाया। इसके पश्चात् काममंजरी मिली। उसके हाथ में प्रेमी मधुकर के द्वारा प्रदत्त विदेशी शुकशावक था। वह बहुविद् था।

शृङ्गारशेखर को इसके पश्चात् बन्धन से छूटा मतंगज दिखाई पड़ा। डर से मार्ग छोड़ देने पर उसे वासन्तिका नामक कुलवधू मिली, जिसने अभिसार-पथ पर अभी-अभी चलना आरम्भ किया था। शृङ्गारशेखर को उसका जो समागम सुख प्राप्त था, उसका संस्मरण उसने वसन्तक को सुनाया।

दोपहर होने पर मधुकर, विहंग, वारागनायें आदि किस प्रकार उष्णता का परिहार कर रहे हैं—इसका वर्णन विट ने किया। वे धूप से बचने के लिए बाल-बकुलोद्यान में जा पहुंचे। वहाँ वसन्त ऋतु की मस्ती मे प्रमत्त कोकिल, हरिणीप्रियन, सहकार, अशोक, बकुल आदि से सुशोभित उद्यान से उनका मन प्रसन्न हुआ। यथा,

विकस्वरपिकस्वरं विवलमानमन्दानिलं
विवृद्धनवचम्पकं विकचमल्लिकाकोरकम्।
विनिद्रनवमालिकामधुमदान्ध — पुष्पंधयं
समे हरति योगिनां मनो मनोज्ञं वनम्॥

वहाँ वाराङ्गनायें कहीं अंग सौष्ठव दिखलाती हुई द्यूत खेल रही थीं। हार-जीत में पाद-प्रहार और आलिंगन का सुख बदा था। वहीं कहीं लतामण्डप मे चित्रलेखा

वीणा बजा रही थी। वहीं पद्मावती मूर्छित पड़ी थी। उसका शृङ्गारशेखर से प्रणयासार अतिशय था। किस विट के कारण वह इस दुःस्थिति में पड़ी थी—यह प्रश्न था। ज्ञात हुआ कि कुसुमपुर चले गये हुए मकरन्द के वियोग में उसकी यह दुर्दशा है। शृङ्गारशेखर ने उसे समझाया—

नातिमात्रमरविन्दलोचने खेदमावहतु तावकं मनः।
नन्वसौ कुसुमबाणशासनाद् आगमिष्यति पतिस्तवाचिरात्॥

तभी मकरन्द आ गया। उसे भी शृङ्गारशेखर ने तत्काल प्रणयोपचार का उपदेश दिया।

आगे कन्दुकक्रीडा करती हुई नायिका मिली और उसके निर्देशानुसार अभीष्ट वाराङ्गना से मिलने के लिए विट वहाँ पहुँचा, जहाँ कुक्कुट युद्ध हो रहा था। यथा,

पक्षौ वितत्य ममृदस्य च कण्ठकाण्डावन्योन्यवक्त्रविनिवेशितदृष्टिपातौ।
एतौ स्वनाथकथितस्तुति-सम्प्रहृष्टौ सन्नह्यतो रणकृते घुरिताग्रचूडौ॥

इस युद्ध का सविस्तार वर्णन शृङ्गारशेखर ने किया। फिर मल्लशेखर से वह प्रेक्षकों को मिलाता है। उसे वीरसेन से लड़ना है। शृङ्गारशेखर को शृङ्गार के आगे वीर कुछ जँचा नहीं। वह कहता है—

अलमनेन परव्यसनावलोकनकुतूहलेन। साधयावस्तावत्।

ग्रामीणों के लिए सस्ती वारजरतियों पर भी शृङ्गारशेखर की दृष्टि पड़ी—

कृत्वान्तर्हित-मज्जनैः कचगतं पालित्यमत्युन्नतौ
वक्षोजौ विरचय्य कञ्चुलिकया क्षौमाह्वनाकुण्ठना।
भाले कुंकुममाकलय्य तिलकं श्यामोचितैश्चेष्टितैः
ग्रामीणानिह कापि वारजरती वश्यान् विधत्ते जनान्॥

आगे उसे रुद्रभट्ट मिले। उन्हें किसी वाराङ्गना ने देय धन के लिए पकड़ रखा था। फटे चीथड़ों में दुर्दशाग्रस्त ब्राह्मण वेशवाट के मदनव्रतचर्या का फल भोग रहा था।

सन्ध्या के समय वारागनायें अपने ग्राहकों के प्रीत्यर्थं प्रसाधन कर्म में पुनः व्यापृत हो गईं। शृङ्गारशेखर चन्द्रकला के सदन में रात बिताने घुसा। उसका साथी वसन्तक सारंगिका को सनाथ करने चला गया। कवि ने भरतवाक्य प्रस्तुत किया है—

भयादस्खलितक्रमा रतिपतेराज्ञा कुले कामिना
भक्तिः कामदुघा जनस्य सुदृढा भूयाद् भवानीपतौ।
एधन्तां चतुराननेन्दुवदना पादारविन्दक्वणन्
मञ्जीरध्वनि मञ्जुलाश्च जगदुत्सगे कवीना गिरः॥

लेखक ने अन्त में अपने आभिजात्य का परिचय दिया है—

श्रीमद्भरद्वाजकुलजलधिकौस्तुभश्रीकण्ठमते प्रतिष्ठपनाचार्य-चतुरधिकशतप्रबन्धनिर्वाहक-श्रीमहाव्रतयाजि-श्रीमदप्पयदीक्षितसोदर्य — श्रीमदच्चादीक्षितपौत्रस्यश्रीनारायणदीक्षितात्मजस्य-कैयटव्याख्यान-शिवतत्त्वरहस्याद्यनेकप्रबन्धनिर्मातुः श्रीनीलकण्ठदीक्षितस्य तृतीयनन्दनेन गीर्वाणेन्द्र-दीक्षितेन विरचितः।

क्या इस उच्च कुल के गीर्वाणेन्द्र को भाण लिखना चाहिए था? मेरी समझ में यह कवि की प्रतिभा का दुर्विलास है कि उसकी लेखनी वारांगनाओं की वृत्ति का आहरण करे।

अध्याय २३

हरिजीवनमिश्र के प्रहसन

हरिजीवन मिश्र ने आमेर के राजा रामसिंह (१६६७–१६७५ ई०) के समाश्रय में राजोचित प्रहसनों की रचना की।[1] इनके पिता और पितामह क्रमश- लालमिश्र और वैद्यनाथ मिश्र थे। कवि की प्रतिभा-विलास का स्फुरण सत्रहवी शती के उत्तरार्ध मे हुआ। अद्भुततरग नामक प्रहसन के अन्त मे उन्होंने अपने को सकल विद्या विशारद कहा है।

हरिजीवन के प्रहसन हैं—अद्भुततरग, प्रासगिक, पलाण्डुमण्डन, विबुधमोहन, सहृदयानन्द, घृतकुल्यावली। इनके अतिरिक्त उन्होने विजयपारिजात नाटक का प्रणयन किया।[2]

अद्भुततरंग

राजा मदनाङ्कविक्रम गौढरसमिश्र नामक वैष्णव से क्रुद्ध हुए और उन्होंने विधवाविध्वसक नामक धर्मशास्त्राचार्य से उसे दण्ड दिलवाया कि आत्मशोध के लिए कामाग्निकुण्ड मे परितप्त होना है। यही दण्ड विध्वसक ने यमानुज नामक राजवैद्य को भी दिलवाया। कुण्डदहन के लिए वेश्या बुलाई गई और साथ ही विध्वंसक की पत्नी। पत्नी क्या थी—विदूषक स्त्रीवेश मे, जो अन्त मे प्रकट होता है।

प्रासंगिक प्रहसन

प्रासगिक प्रहसन प्र की शाब्दिक क्रीडा के द्वारा हास्यनिर्झरिणी प्रवाहित करने के उद्देश्य से प्रणीत है।

महाराज प्रताप पंक्ति का मन्त्री प्रकृष्ट देव 'प्र' का प्रचारक है। 'प्र' का विरोधी केरलीय भट्ट उससे लड पडता है। सभा मे योनिमजरी नामक वेश्या के आने पर उन दोनो का विवाद तो समाप्त हुआ, पर योनिमजरी के साथ का लड़का व्यङ्गमुख नामक उसके तथाकथित पति का है या वेशवाटी मट्टमार का है—यह निर्णय पितृत्व के अधिकारी राजा पर छोड़ते हैं। यह विवाद निर्णय-पथ पर चला ही था कि कोई वानर आकर प्रकृष्ट देव की पत्नी प्रकृतप्रिया का धर्षण करता है। भगाने पर वह अन्त.पुर मे जा घुसता है और राजा वानर के पीछे चल देता है।

पलाण्डुमण्डन

इसमे लिङ्गोजी भट्ट और उनकी दूसरी पत्नी चिञ्चा के गर्भाधान सस्कार के

१. इनके नाटको की हस्तलिखित प्रतियाँ अनूप-लाइब्रेरी वीकानेर मे है।

२. Krisnamachariar : History of Classical Sanskrit Literature R. 701.

अवसर पर भारत के विविध भागों के अशास्त्रीय भोजी पलाण्डुमण्डन, लशुनपन्त आदि का भोजनानन्द कटाक्ष का विषय है।

सहृदयानन्द प्रहसन

इस प्रहसन मे शब्दशक्ति, नायिका-भेद, गुण-दोष आदि का विवेचन हास्य उत्पन्न करने की दृष्टि से किया गया है। स्वभावतः अश्लील प्रकरणों के निरूपण से उदाहरणों को मण्डित करके रसप्रतिबन्धक, वाक्य-स्फोटिका आदि कथानायक प्रकृति को चमत्कार प्रदान किया गया है।

विबुधमोहन

हरिजीवनमिश्र प्रहसन के प्रणयन में विशेष रुचि लेते थे। उनके विबुधमोहन नामक प्रहसन का आरम्भ पुष्पकलिका नामक कवयित्री के एक नये प्रकार के नान्दी से होता है।[1] वही नान्दी पाठ भी करती है। उसकी एकोक्ति-रूप में प्रस्तावना के पूर्व १५ पद्यो और अनेक गद्यांशों से संवलित पाठ मे विष्णु की स्तुति प्रमुख है। विष्णु-मूर्ति की तीन बार प्रदक्षिणा करते हुए वह कहती है—

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्याशतानि च
तानि सर्वाणि नश्यन्तु प्रदक्षिणपदे पदे ॥ ७

यहाँ तक पूजा हुई। इसके पश्चात् दक्षिणा देने के विषय मे पुष्पकलिका कहती है कि मेरी परीक्षा ही दक्षिणा है। वह इसके पश्चात् सदालोचको और सत्पुरुषों की प्रशंसा करती है।

कथावस्तु

सकलागमाचार्य की कन्या साहित्य-माला अर्थालङ्कार के लिए समुत्सुक है, क्योंकि उसका विवाह अखण्डानन्द नामक विद्वान् से होना निश्चित हुआ है। साहित्यमाला के भाई पिता की आज्ञानुसार प्रतापमार्तण्ड नामक राजा की सभा मे उपस्थित होते हैं। राजा पण्डितो की चर्चा मे रुचि लेता था। वहाँ तर्ककर्कश, ज्ञानेन्द्र, भट्टमीमासक, सांख्यानन्द, पातञ्जलनाथ, वैशेषिक भट्टाचार्य, पाशुपत, पाञ्चरात्रिक, और अखण्डानन्द ने सृष्टिकर्ता के अनुसन्धानविषयक शास्त्रार्थ में अपने मत का समर्थन और दूसरो के मत का खण्डन किया। जगत् का कारण कौन है—इस प्रश्न का सबका उत्तर भिन्न-भिन्न था। अखण्डानन्द ने समझाया कि वेदान्ती का ब्रह्मानन्द रस-सर्वोपरि तो है, पर उसे प्राप्त करने के लिए श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदि की आवश्यकता है और काव्य रसानुभवस्तु श्रवणसमनन्तरमेव विगलितवेद्यान्तरः प्रकाशते।

अखण्डानन्द का काव्यरसवाद सबसे ऊपर रहा। उन्होंने नेता बन कर राजा को आशीर्वाद दिया—

1. इसका प्रकाशन मलयमारुत के प्रथमस्पन्द में १९६६ ई० में हुआ है।

वक्त्राणि पचकुचयो प्रतिबिम्बितानि दृष्ट्वा दशाननसमागमनभ्रमेण ।
भयोऽपि शैलपरिवृत्तिभयेन गाढमालिंगतो गिरिजया गिरिशोऽवतादव. ॥

राजा ने मत दिया—अहो साहित्यरसानुभवो ब्रह्मरसादप्यधिक एव नात्र सन्देह ।

काव्य रस मे भी रसराज शृङ्गार को अखण्डानन्द ने उच्चतर बताया। इसे सिद्ध करने के लिए अखण्डानन्द ने नीचे का पद्य पढ़ा—

मुग्धे मुग्धतयैव नेतुमखिलः कालः किमारभ्यते
मानं धत्स्व धृतिं बधान ऋजुतां दूरे कुरु प्रेयसि ।
सख्यैव प्रतिबोधिता प्रतिवचः तामाह भीतानना
नीचैः शंस हृदि स्थितो हि ननु मे प्राणेश्वरः श्रोष्यति ॥

इसे सुनकर राजा मुग्ध हो गया, पर अन्य पण्डितो ने इसे दोषयुक्त बताया। अनेक सरस पद्यों को सुनाकर राजा को अखण्डानन्द ने मोह लिया। उसने कहा 'किमदेयं साहित्य-रसिकाय'। अखण्डानन्द ने साहित्यमाला के लिए निवेदन किया। साहित्य-माला के भाई पण्डितो ने देखा कि राजा ने अखण्डानन्द को धन दिया। उन्होंने कहा कि दीनहीन रहकर कैसे हम अखण्डानन्द का वर रूप में स्वागत कर सकेंगे। राजा ने उन्हें भी यथेष्ट धन दिया। साहित्यमाला के विवाह का उत्सव आरम्भ हुआ, जिसे राजा ने भी छत पर चढकर देखा।

हरिजीवन का यह प्रहसन सरल भाषा मे संयत भावो को लेकर विकसित है। इसमे अश्लीलता और नग्न परिहासों का अभाव है।

अध्याय २४

वसुमतीचित्रसेनीय

वसुमतीचित्रसेनीय[1] के रचयिता अप्पयदीक्षित तृतीय का परिचय सूत्रधार ने इस नाटक की प्रस्तावना में दिया है, जिसके अनुसार वे अप्पयदीक्षित प्रथम के पौत्र और नीलकण्ठ के भाई थे। दुष्यन्तचरित, रुक्मिणी-परिणय, अलङ्कार-तिलक आदि के प्रणेता अप्पयदीक्षित द्वितीय ने उन्हें गोद ले लिया था। वस्तुतः कवि के पिता नारायण दीक्षित थे। कवि ने मीमांसा की तन्त्रसिद्धान्त-दीपिका-दुरुह शिक्षा और प्राकृतमणिदीप की भी रचना की थी। अप्पयदीक्षित तृतीय को मदुरा के सामन्त चित्रबोम्म (१६५६-१६८२ ई०) का समाश्रय सम्भवतः प्राप्त था।

वसुमतीचित्रसेनीय संस्कृत के उन विरल नाटकों में से है, जिनकी कथावस्तु उत्पाद्य है।[2] इसकी प्रस्तावना में पात्रवलृप्ति का विशद विवरण है, जिसके अनुसार स्त्रियाँ रंगमंच पर स्त्रियों और पुरुषों की भी भूमिका का अभिनय करती थीं।[3] इससे स्पष्ट है कि प्रस्तावना का रचयिता सूत्रधार है।

वसुमतीचित्रसेनीय का प्रथम अभिनय हालास्यपति की सेवा में आये हुए सामाजिकों की प्रार्थना से हुआ था। इसके रंगमंच पर आरम्भ में ही सेना लेकर निषाद उपस्थित होता है। सेना में पैदल और घुड़सवार थे।

कथावस्तु

कलिंगराज शान्तिमान् अपनी कन्या वसुमती के कल्याणार्थ प्रयाग में तप कर रहा था। इस बीच निषादराज ने उसकी राजधानी को आक्रमण करके लूटा और अन्तःपुर के सदस्यों को बन्दी बनाकर ले चला। इसकी मुठभेड़ हुई मृगया करते हुए कथानायक महाराज चित्रसेन से, जिसने उन्हें मुक्त किया। शान्तिमान् चित्रसेन की पत्नी पद्मावती की बहिन ज्वालावती का पुत्र था।

निषादराज जब लूट की सब वस्तुओं को लौटा रहा था, तो चित्रसेन की दाहनी बाँह फड़की। उसे अपहृत राजमहिलाओं में सौन्दर्यराशि वसुमती दिखाई पड़ी,

१. इसका प्रकाशन केरल विश्वविश्वविद्यालय से संस्कृत सीरीज २१७ में हो चुका है।

२. पारिपार्श्विक ने प्रस्तावना में बताया है—
किन्तु अप्रयुक्तपूर्वमुत्पाद्यवस्तुकं च रूपकमिदम्।
केरल के नीलकण्ठ ने कमलिनी कलहंस नाटक की कथावस्तु उत्पाद्य रखा है।

३. इसमें सूत्रधार कहता है—इसमें कृत्रिम वस्तु है।
भगिनी पुनरङ्गलता कलिङ्गपतेः शान्तिमतो राजस्तत्प्रसूतेर्वसुमत्याश्च कथा नायिकाया भूमिकां सम्पादयिष्यति।

जिससे उसका मन एक हो गया। ज्वालावती ने उसका परिचय नायक को दिया। उसने वसुमती विषयक नायक की उत्सुकता देखकर मन मे सोचा—

नायक ने मन मे सोचा कि यदि बुढिया धूर्त न होती तो,

कथमिदमेवभस्यामभि निविष्टो धूर्त.पृच्छति।

अंके निवेश्य सुदृढ परिरभ्य चेय-मुन्नाम्य चाननमथोत्पुलके कपोले।
आघ्राय चुम्बितनरी ननुचाभविष्य-ज्ज्वालावतीह जरतीयदि नागमिष्यत्।। १.२२

वह चाहता था राजमहिलायें मेरी नगरी मे चलें, पर ज्वालावती ने कहा कि इस स्थिति मे हम अपनी नगरी मे ही जायें।

शान्तिमान् का मन्त्री रैवतक चाहता था कि वसुमती का विवाह चित्रसेन से हो जाय। उसकी योजनानुसार चित्रसेन ने भस्म, व्याघ्रचर्म आदि धारण करके योगी का वेष बनाया। वह कलिंग के नन्दन नामक बहिरुद्यान मे ध्यान लगा कर बैठा, जहाँ वसुमती भी आ गई। उसे भूत लगा था, जिसे छुड़ाने के लिए वसुमती नन्दन वन के योगी के पास जाय—यह मन्त्री रैवतक ने ज्वालावती से अनुमत करा लिया था। नन्दनवन मे योगी उसे विभूतिदान, यन्त्र-बन्धन आदि के बहाने अपनी संगति का अवसर देने लगा। योगी ने भूर्जपत्र पर यन्त्र बनाने के स्थान पर अभ्यासवशात् नायिका का चित्र बना डाला। विदूषक की इच्छानुसार यन्त्र बनाने के समय सभी लोगो को बाहर जाना पडा। जब यन्त्र बांधने का समय आया तो विदूषक और चतुरिका (नायिका की सखी) भी बाहर चले गये। बच रहे नायक और नायिका। फिर उनका गान्धर्व विवाह हो गया। नायक ने नायिका से कहा—

अधरदलमेतदबले करतलपरिमिष्टमृष्टविद्रुमदलाभम्।
आस्वादये बलादपि किंचित्त्वनुमन्यतां देवी।। २.१८

उसी समय पद्मावती के पत्रानुसार ज्वालावती ने घोषणा कराई कि अन्तःपुर की कन्या वसुमती किसी से बात न करे। नगर में कोई तेजस्वी पुरुष प्रवेश न करे।

तृतीय अङ्क के अनुसार नायिका को नायक से मिलाने के लिए चित्रसेन के मन्त्री सुनीति ने मलयकेतु नामक डाकू से एक गुहामार्ग कलिंग से अपने नगर के बकुलोद्यान तक बनवाया। रात के समय सोती हुई नायिका और उसकी सखी को बकुलोद्यान मे पहुँचा दिया, जहाँ कुछ दूरी पर विरही नायक रम्भा-मन्दिर में विदूषक के साथ आ बैठा। थोडी देर के पश्चात् उसी उपवन मे उनसे दूर नायक की महारानी देवी पद्मावती अपनी सखी सूक्ष्मदर्शिनी के साथ आ विराजी। पद्मावती को पश्चात्ताप हो रहा था कि मैंने क्यो कर राजा की प्रार्थना ठुकराई। उसे विश्वास नही हो रहा था कि मेरा पति एक बार भले ही किसी सुन्दरी के प्रेमपाश मे पडे, वह सदा के लिए दूसरे का नही हो सकता।

बीच मे नायक, उसके एक ओर वसुमती नई नायिका और दूसरी ओर पुरानी नायिका पद्मावती—यह विषम स्थिति थी। जब नायक ने वसुमती और चतुरिका

की बातों की आहट दूर से पाई तो निकट जाकर लताविटप से छिप कर उनकी बातें सुनने लगे। मदनातङ्कित नायिका जब अपनी वियोग-गाथा का वर्णन करते-करते मूर्छित हो गई तो नायक उसके पास पहुँचा। इस विषम स्थिति में नायक और नायिका के परस्पर प्रणयानुबन्धी आलाप को सुनकर सूक्ष्मदर्शिनी के साथ पद्मावती वहाँ निकट पहुंची। नायक ने नायिका का आलिंगन किया और प्रेम-गीत गाया—

प्रत्याशापि न संगमं प्रति पुनर्यस्मिन्नभूदावयो—
र्यस्मिन्नद्य मम स्मृतेऽपि हा वह्निना सिच्यते।
तस्मिन्नप्यपरिक्षतेन विरहे यावन्मयैवास्ति मे
न ह्येतावदतर्कितोपतनया सत्यं त्वयाद्भुतम् ॥३.१६

पद्मावती के पास आते ही नायक और नायिका कहीं दूर जा छिपे। पद्मावती ने चतुरिका को वसुमती समझकर उसके साथ विदूषक को वन्दी बना लिया।

पद्मावती और उसकी सखी सूक्ष्मदर्शिनी ने तथाकथित वसुमती को सकल साधारण सौन्दर्य वाली स्त्री देखकर निर्णय लिया कि यदि चित्रसेन को इससे विवाह की अनुमति दे दी जाय तो इससे दो लाभ हैं—प्रथम तो यह कि राजा शान्तिमान् से बन्धुता बढ़ेगी और दूसरे यह कि नायक का प्रेम पद्मावती के प्रति बढ़ेगा ही घटेगा नहीं। सूक्ष्मदर्शिनी की इच्छानुसार तथाकथित वसुमती से उन्होंने सम्बन्ध बढ़ाया। रानी ने अपने भूषण उसे दिये और उसके भूषण अपने लिये। उसने विदूषक और नकली वसुमती को स्वतन्त्र कर दिया।

नायक चित्रसेन को वसुमती के मिलने से अतिशय हर्ष था। उससे एक दिन विदूषक मिला। उसने बताया कि चतुरिका भी शीघ्र ही मिलेगी। तभी चतुरिका का वेष-धारण की हुई पद्मावती नायक से मिलने आई। नायक ने उसे जब चतुरिका सम्बोधित किया तो पद्मावती को प्रतीत हुआ कि मैं जिसे वसुमती समझती थी, वह वस्तुतः चतुरिका है और मैं ठगी गई। उसने चतुरिका सी बनी रहकर कहा कि मैं वसुमती से मिल आऊँ। नायक ने उसे बता दिया कि बकुलवन के शय्या-गृह में वह है। उसने वसुमती-विषयक राजा की प्रवृत्तियों को जानने की इच्छा से पूछा—

अपि न मे सखी मया विना म्लायति।

विदूषक ने उत्तर दिया—

सा कथं म्लायतु या महाराजपरिग्रहेण प्रतिदिनं स्वचरित्रवायनं खादति।

नायक ने कहा—

ननु च सा मया त्वद्विरहखेदविस्रंसनाय सर्वदा सन्निधीयते।

और भी—

प्रेयान् प्राणा बन्धुता वा सखी वा धात्री चेटी वामनः कुब्जको वा।
यस्मिन् काले यद्यदादिष्टं तदानीं तत्तत् सर्वं सैव मेऽहं च तस्याः ॥४.७

चतुरिका बनी पद्मावती को अपने पति से यह भी सुनना पड़ा—

दृष्टा दृष्टा नवनवमियं विस्मयं निर्मिमाणा
स्पर्शे स्पर्शे भवति शिशिरा कापि काप्यङ्गकेषु।
कालेनास्याः प्रणयवचनैर्मद्गतं वीक्ष्य रागं
मन्ये देवी प्रणयरहितां त्वद्वयस्यामपेक्ष्य ॥४.८

नायक ने दाक्षिण्य प्रकट किया कि पद्मावती से भी प्रेम बराबर है—

यथा यथा स्यामुपचार कल्पने विधिर्मयाभूद्विहितः पुरा चिरात्
तथा ततो वाधिकमद्य रज्यते मया मयीयं च ततोऽपि रज्यति ॥४.९

पद्मावती ने निर्णय लिया कि अब तो वसुमती को चिञ्चावन में बन्दी बनाती हूँ। वह चलती बनी। तभी पद्मावती की कूट भूमिका में वहाँ चतुरिका आ पहुँची। नायक ने उसे पद्मावती समझा। चतुरिका ने उसे समझाया कि मुझे पद्मावती न समझें, मैं चतुरिका हूँ। नायक को अपनी भ्रान्ति प्रतीत हुई कि मैंने अभी-अभी पद्मावती को चतुरिका समझ कर यह सब क्या-क्या कह डाला था। तभी प्रतिहारी ने समाचार दिया कि आपकी वसुमती का अपहरण हो गया।

वसुमती की विपत्ति का नया समाचार कलिंग से आये कञ्चुकी ने दिया कि ज्वालावती अब कृत्या प्रयोग से वसुमती की हत्या करना चाहती है। नायक की विपत्तियाँ असह्य बढ़ती गईं।

दिष्ट्या दानवविजयिना कुमारवीरसेनेन विजयते देवः।

इस अवसर पर अमात्य सुनीति के आने पर परिस्थिति बदली। उसने समाचार दिया कि इन्द्र प्रसन्न है कि दैत्यों का नाश हुआ।

नायक को पुन विदित हुआ कि सुनीति ने ही मलयकेतु द्वारा वसुमती को राजा के लिए हस्तगत कराया है। नायक ने उसे पुन वसुमती विषयक विपत्ति सुना दी। सुनीति ने बताया कि इन्द्र ने यह सब जान लिया है और कृत्या का नाश करने के लिए प्रत्यङ्गिरस को नियोजित कर दिया है।

पुत्र-विजय से प्रसन्न पद्मावती ने निर्णय लिया कि राजा का मन रख देना है। उसके इस निर्णय को चतुरिका ने नायक को बता दिया।

इधर ज्वालावती-प्रवर्तित कृत्या आकाश मार्ग से उतर रही थी। इसी समय आकाश से सुनाई पडा—

पापे, नन्वद्य मया हतासि। तत्क्षणमात्रसुलभजीवना लुण्ठ तावत्।

यह सब क्या है? क्या वसुमती कृत्या के द्वारा मार डाली गई? ढूँढ़ने पर चिंचावन में वसुमती नहीं मिली तो लोगों की व्याकुलता बढ़ी। उसके लिए राजा, पद्मावती, चतुरिका, परिजन आदि लम्बा विलाप करने लगे। तभी एक स्त्री कटी-पीटी मरणासन्न सी दिख पड़ी। यह वसुमती है—यह सोचकर राजा ने उसके चरण को

उठा लिया। मर जाने पर भी राजा ने उसका आलिंगन किया। पर उसी क्षण उसका रूप बदला और वह कृत्या हो गई। विदूषक ने उसे पहचाना और बोला—

किमपि भूतमालिङ्गति वयस्यः।

यह तो पिशाची है।

वीरसेन ने आकर उस समय बताया कि इन्द्रनियोजित प्रत्यङ्गिरस ने उस पिशाची को मारा है। वह मरते समय तक वसुमती बनी हुई आप लोगों को रुलाती रही। उसी समय दिव्य विमान में वसुमती ज्वालावती और शान्तिमान् के साथ वहाँ आ गई। शान्तिमान् ने बताया कि प्रयाग में कराली नामक पिशाची ने मेरे तप में बाधा डालने के लिए ज्वालावती में आवेश करके यह सब करवाया है। अपने मन्त्री रैवतक से वसुमती के गुम होने का समाचार जानकर आकर्ष-विद्या से उसने उसे अपने पास बुला लिया।

वसुमतीचित्रसेनीय की कथावस्तु पहले के सर्वोत्तम नाटकों से संविधानादि को ग्रहण करके निर्मित की गई है। यथा,

वसुमती चित्रसेनीय की घटना	समानता
१. चित्रसेन मृगया करते हुए नायिका से मिलता है।	अभिज्ञान शाकुन्तल में
२. नायिका से मिलने का आभास नायक के दक्षिण-बाहु स्पन्दन से होता है।	,,
३. द्वितीय अङ्क में नायिका का भूत उतारने के लिए नायक का वेष-परिवर्तन करना।	कुशकुमुद्वतीय में
४. तृतीय अङ्क में पद्मावती के द्वारा विदूषक और चतुरिका को बन्दी बनाना।	मालविकाग्निमित्र, रत्नावली, कर्पूरमंजरी आदि में
५. पद्मावती का चतुरिका के वेश में नायक के पास आना और नायक की भ्रान्ति।	रत्नावली में
६. नायिका की हत्या की चर्चा	मृच्छकटिक में

नाट्यशिल्प

नाटक में गीतितत्त्व के उन्मेष से इसकी सजीवता द्विगुणित हो उठी है। नायक पवन से मानो बात कर रहा है—

निष्प्रत्यूहगतिः किलास्युपसरन् वातायनेन प्रियां
किं तस्याः सुकुमारमुग्धमधुराण्यङ्गानि नालिंगसि।
यद्यस्त्येव परोपकारघटने कौतूहलं मारुत
स्पृष्ट्वा मन्दममूं ममापि सकृदप्यङ्गानि सम्भावय॥३.१२

नाटकीय संविधान की सरसता भावों की उत्थान-पतनिका में प्रगुणित है।[1] पंचम अङ्क में ज्यों ही राजा को ज्ञात होता है कि पद्मावती ने वसुमती को मुझे देने का निर्णय लिया है, त्योंही उसे कृत्योत्पात दिखाई देता है। तृतीय अङ्क में नायिका सोचती है कि ज्वालावती ने मेरी हत्या करने के लिए इस वकुलोद्यान में पहुँचाया है। उसी उद्यान में थोड़ी देर पश्चात् ही उसे अपने अभीष्ट प्रियतम से भेंट होती है। इसी अङ्क में पद्मावती सोचती है कि अब चित्रसेन से मेलमिलाप होगा। तभी उसे ज्ञात होता है कि वह तो वसुमती से अभी-अभी मिला है।

तृतीय अङ्क में रंगपीठ के तीन भागों में अलग-अलग कार्य हो रहे, पर पात्रों को केवल अपने भाग का ही कार्य दिखाई देता है।

छद्म या कूट पात्रों का कार्य उपराया गया है। पद्मावती का चतुरिका के वेष में आना और भ्रान्तिवश नायक से यह सुनना कि अब तो दिनरात तुम्हारी सपत्नी बनने वाली नायिका के साथ बिता रहा हूँ—एक लम्बायमान गाथा है, जो अन्यत्र इतना स्पष्ट नहीं है। अन्य रूपकों में छद्म-वेश में यदि कोई नायिका आई भी तो कुछ नोक-झोंक करके नायक से लड़-झगड़ कर चलती बनी, पर इसमें तो कूट पद्मावती ने जमकर नायक के नये प्रेम की पूरी पोलपट्टी उसी के मुँह से सुनी।

रङ्गपीठ पर कृत्या की मृत्यु दिखाई गई है। परवर्ती नाट्यशास्त्र-विधायक इसे अनुचित मानते हैं।

शैली

सूक्तियों और अन्योक्तियों के बहुल प्रयोग से इस नाटक के संवाद में प्रभविष्णुता और विभावना की अतिशयता उल्लेखनीय है। यथा,

१ किमिति सुखप्रसुप्तस्य मृगराजस्य प्रबोधनं करोषि।
२. प्रसुप्तः खलु बोध्यते, न पुनःप्रबुद्धः।
३. बद्धफलप्रसूनापि कुष्माण्डी न हि शोभना।
   निष्फला पङ्कदिग्धापि बिसिन्येव शोभना॥
४. शारिकां वर्धयित्वा मार्जाराय दत्तवानेषः।
५. एष नवनीतोद्भेदकाले योक्त्रविच्छेदः।
६. घर्मतप्तस्य वनस्पतेरयमशनिपातः।
७. किमिदानीमरण्यरुदितेन।

कवि की भाषा सर्वथा सरल, सुबोध और नाट्योचित वैदर्भी-मण्डित है, जैसा इसके बहुशः उदाहरणों से स्पष्ट प्रतीयमान है।

प्राकृत भाषा के शब्दों से श्लेषार्थ उत्पन्न करके गण्ड का उदाहरण प्रस्तुत है।

---

१. कवि ने सुनीति के द्वारा अपने इस कलात्मक विन्यास का परिचय दिया है—
को वेद दैवमवरोत्तरमातनोति।।५.२५

यथा,

प्रतिहारी-भट्ट, हदा ।

चतुरिका-काए का ।

प्रतिहारी-देवीए वसुमई ।

राजा-(सभयम्) हन्त किं मारिता वदसि ।

प्रतिहारी-अवणीदत्ति विण्णवेमि ।

रस

शृङ्गार रस के इस नाटक में सारा वातावरण शृङ्गारित है । यथा,

राजा—कथमत्र पवनस्यापि रसिकता परोपकारव्यसनिता च । तथाहि—

आकर्षन्नलिवेणिकां लवलिकामालिंग्य तस्याः स्वयं
मन्दं मन्दमपाकरोति पवनः पत्रावलीकंचुकम् ।
किंचाय लघुचालितान्यविटपस्थायिप्रियाकस्मिक-
स्पर्शत्याजितकेलिकोपविरहातङ्कान् विवर्त्ते शुकान् ॥ ३.११

कवि ने अनेक अगरसों का साधु विनिवेश इस नाटक में किया है । कृत्या का प्रकरण करुण, रौद्र और भयानक रसों की निष्पत्ति के लिए प्रयोजित है ।

करुण से कवि का विशेष लगाव है । नायक नायिका की वेणी देखकर कहता है—

एवं गतेऽप्यतृप्तनयनैरिव मे मधुव्रतैः पिहिता ।
कुसुमानि वासयन्ती प्रिया प्रियाया इयं वेणी ॥ ५.१२

मरती हुई नायिका के लिए करुणा का अतिशय उद्रेक इस नाटक की विशेषता है । राजा उसके प्राणग्रहण का प्रतिपालन कर रहा हैं । वह कहता है—

आच्छिद्य प्रसभं प्रियां हृदयमप्युद्घाट्य यस्याः पपा-
वास्रं तत्र न नाम किंचन कृतं येन स्वयं धन्विना ।
सोऽहं पापमतिर्निकामकृपणः पश्यन्निति प्रेयसीं
संदष्टासि पिपीलिकाभिरिति तु क्रूरो दधानो दयाम् ॥ ५.१२

संवाद के छोटे-छोटे वाक्य स्वाभाविक लगते हैं । यथा,

सुनीतिः—अवस्कन्द्य प्रतिनिवर्तमाना इत्येव ।

निषादराजः—णं वुत्तो खु चोलिआ किरादाणं ।

सुनीतिः—तर्हि जात्यैव निरोधनीयाः ।

निषादराजः—णत्थि ण तुम्हाणं विशयेसु ।

सुनीतिः—क्वान्यत्र ।

निषादराजः—कलिंगलाअस्स शांतिमन्तस्स णयरम्मि ।

संवाद की भाषा कहीं-कहीं पात्र की मानसिक स्थिति के अनुकूल बन पड़ी है । जब नायक घबड़ाया है कि मेरी वसुमती पर अनेक विपत्तियाँ हैं तो वह दौवारिक से

सुनीति के प्रतिहार पर उपस्थित होने का सन्देश देने पर झल्लाता है—

जाल्म, किमस्यामहमनुपगम्यः कदाचित् ।

वैषम्य

वसुमती-चित्रसेनीय का वैषम्य है नायक का अपनी पत्नी की बड़ी वहिन की पौत्री से विवाह करने की योजना कार्यान्वित करना। नायक के पुत्र ने दानवों पर विजय प्राप्त की थी। ऐसी स्थिति मे उसकी अवस्था ४० वर्ष से अधिक ही होगी और नायिका १५ वर्ष की थी। कालिदास ने विक्रमोर्वशीय मे ठीक ऐसी ही भूल की है।

अध्याय २५

रामभद्रदीक्षित के रूपक

रामभद्र ने शृङ्गारतिलक भाण में आत्मपरिचय दिया है—

गिरिक्षुभितनिःस्वनत्कलशसिन्धुगर्भस्थली-
निरर्गलविनिर्गलन्नव – सुधारसस्रोतसा ।
भुजाभुजिरणक्षमो भवति यस्य सूक्तिक्रमः
स एष सरसः कविर्जयति रामभद्रः सुधीः ।। ५

इनको अपने जीवन-काल में परम प्रसिद्धि प्राप्त हो चुकी थी, जैसा इन्होंने बताया है—

यश्चतुर्वेदयज्वेन्द्र— वंशवारिधिकौस्तुभः ।
यस्य कण्डरमाणिक्यग्रामो भवति जन्मभूः ।।६

इसके अनुसार रामभद्र का जन्म कण्डरमाणिक्य नामक ग्राम में चतुर्वेदयज्वेन्द्रवंश में हुआ था।[1] यह ग्राम कुम्भकोन से सात कोस दूर था। इनके पिता का नाम यज्ञराम दीक्षित था, जो वैयाकरण थे। इन्होने सुप्रसिद्ध आचार्य नीलकण्ठ से साहित्य-विद्या में प्रावीण्य प्राप्त किया था। चोक्कनाथ ने इन्हें व्याकरण पढ़ाया था। बालकृष्ण भगवत्पाद से उन्होंने दर्शन का अभ्यास किया। अद्‌भुत-दर्पण नामक नाटक के लेखक महादेव इनके सहपाठी थे। तंजौर के राजा शहजि ने कावेरी के तटपर कुम्भकोन से दो कोश दूर अपने नाम से एक शहजिपुर-अग्रहार बनाया, जिसमें प्रतिष्ठित प्रतिग्रहीताओं में रामभद्र अन्यतम थे। इस प्रकार के कवियों के इस अग्रहार में रामभद्र के साथ भास्करयज्वा, वेङ्कटकृष्ण यज्वा, महादेव, तिप्पाध्वरी आदि का काव्यप्रकाश समुज्ज्वल हुआ। रामभद्र के भाई रामचन्द्र हास्यरस-प्रवण कवि थे।

रामभद्र के द्वारा प्रणीत अनेक ग्रन्थों में से अष्टप्रास, चापस्तव, जानकी-परिणय, पतञ्जलिचरित, पर्यायोक्तिनिष्यन्द, प्रसादस्तव, बाणस्तव, विश्वगर्भस्तव और शृङ्गारतिलक मिलते हैं। इन्होंने व्याकरण-विषयक परिभाषावृत्ति-व्याख्यान, उणादि मणिदीपिका और शब्द-भेद-निरूपण लिखा। दर्शन-विषयक इनकी रचना षड्दर्शन-सिद्धान्त-संग्रह है।

भाण का प्रणयन कोई अच्छी प्रवृत्ति नहीं और रामभद्र को स्वयं यह अपने व्यक्तित्व से हीन स्तर की बात लगी कि मैं भाण लिखूँ। इसकी चर्चा करते हुए उन्होंने कहा है—क्वयमस्य रघुवीर-चरणारविन्दस्मरणनिरन्तर-प्रवणचेतसो भाणनिर्माणे प्रवृत्तिः' इत्यादि। इसका कारण है—

---

१. इस गाँव को विद्वद्वरत्नों की जन्मभूमि होने का श्रेय है। इण्डियन ऐण्टीक्वेरी भाग ३३ पृष्ठ १२६-१४२

प्रार्थितो निजशिष्येण रघुनाथेन धीमता।
शृंगारतिलकं नाम भाणं विरचयाम्यहम् ॥७

जानकी–परिणय

रामभद्र राम के भक्त थे। जानकीपरिणय उनकी मानसिक वृत्ति के अनुकूल रचना है।[1] इसकी रचना १६८० ई० के लगभग हुई होगी। इसमे सात अङ्क हैं। कथा का आरम्भ राम के मिथिला-प्रस्थान से होता है। जनकपुर मे पहुँचने पर राक्षसी माया उनके मार्ग मे विघ्न बन कर आती है, जिसके द्वारा जनक के सामने रावण, सारण तथा विद्युज्जिह्व क्रमशः राम, लक्ष्मण और विश्वामित्र बनकर आते हैं। ताडका सीता बन जाती है। ये मायात्मक और वास्तविक पात्र रंगपीठ पर परस्पर मिलते हैं। फिर तो कौन वास्तविक है और कौन कृत्रिम—यह सिद्ध करने के लिए उनके विवाद का अन्त इस बात से होता है कि वास्तविक राम ने शिवधनुष को प्रत्यञ्चित किया। राम और सीता का विवाह जनकपुर मे न होकर विश्वामित्र के आश्रम मे होता है। तृतीय अङ्क मे विश्वामित्र का शिष्य काश्यप और राम का वयस्य पिङ्गल रंगपीठ पर आते हैं और उनके साथ ही उनके मायात्मक प्रतिरूप बनकर क्रमशः मारीच और कराल नामक राक्षस उपस्थित होते हैं। विवाह के पहले एक अत्यन्त हास्यप्रद घटना है रङ्गपीठ पर शूर्पणखा का सीता का रूप धारण करके राम से प्रणय करने का अभिप्राय पूर्ण करना। उसी समय सीता को हथियाने के लिए विराध राम का प्रतिरूप बनकर उपस्थित होता है। शूर्पणखा विराध को वास्तविक राम तथा विराध शूर्पणखा को वास्तविक सीता समझने की भूल करते हैं। वे परस्पर मुग्ध हैं। प्रणयालाप के अनन्तर शूर्पणखा (सीता) की इच्छानुसार विराध (राम) अपने कन्धे पर खड़ा करके पुष्पचयन कराते हुए ले उड़ता है। शूर्पणखा न गिरने के लिए पैरों से उसके कण्ठनाल का परिग्रहण करती है।

जानकीपरिणय के तृतीय अङ्क मे सीता की सखी का मायात्मक प्रतिरूप बनाकर मारीच उसके द्वारा राम को समाचार दिलाता है कि रावण ने जनक की हत्या कर दी है। परिणामतः सीता अग्नि मे कूदकर भस्मसात् हो गई। शोकवश राम भी अग्नि में कूदना चाहते हैं। जिस शिला पर खडे होकर कूदने का वे उपक्रम करते हैं, वह उनका पादस्पर्श होते ही अहल्या बन जाती है और राम को बताती है कि आप राक्षसी माया के चक्कर मे हैं। चतुर्थ अङ्क मे सीता का विवाह होना है। रावण माया द्वारा राम बनकर जनक को धोखा देने का उपक्रम करता है। पंचम अङ्क में रावण के निर्देशानुसार शूर्पणखा, विद्युज्जिह्व और सारण क्रमशः मन्थरा, कैकेयी और

१. इसका प्रकाशन १६०६ ई० मे तञ्जौर मे हो चुका है। १८६६ ई० मे बम्बई मे मराठी-अनुवाद-सहित इसका प्रकाशन हुआ। १८८१ ई० मे मद्रास मे इसका अनुवाद हुआ। वहीं से १८८३ तथा १८६२ ई० मे भी इसका प्रकाशन हुआ। इन प्रकाशनों से इसकी अतिशय लोकप्रियता व्यक्त होती है।

दशरथ में अपने को अभिनिविष्ट करके राम का वनवास कराने में सफल हो जाते हैं। इसमें खरादिका का वध होता है। षष्ठ अङ्क का गर्भाङ्क रावण के विनोद के लिए है। इसके अनुसार सीता का अपहरण हो जाने पर विलाप करते हुए राम सीता को ढूँढ रहे हैं और उन्हे सुग्रीव का साह्य प्राप्त करने के लिए वालि को युद्ध में मारना पड़ता है। इसमें घायल जटायु राम को बताता है कि रावण ने सीता का अपहरण किया है। उसने रावण से युद्ध किया था।

जानकीपरिणय के सप्तम अङ्क मे शूर्पणखा तापसी बनकर भरत को सवाद देती है कि राम मारे गये। भरत शोकवश अग्निदाह द्वारा मरना चाहते हैं, पर उसी समय उन्हें रामविजय और उनके पुनरागमन का घोष सुनाई देता है। अन्त मे राम के राज्याभिषेक से नाटक समाप्त होता है।

जानकीपरिणय की छाया-प्रकृति विशेष उल्लेखनीय है। रामायण से ही राम-कथा मे मायामय पात्रों का समारम्भ महत्त्वपूर्ण रहा है। परवर्ती युग मे लोकरंजन और अद्‌भुत संविधानों के अभिनिवेश के लिए माया-प्रकृति की सख्या बढ़ती गई। मध्ययुग में शक्तिभद्र ने आश्चर्य-चूड़ामणि मे मायामय प्रकृति की सातिशय योजना की। उसी परम्परा मे रामभद्र लगभग ८०० वर्षों के पश्चात् उनसे भी आगे है, जहाँ तक मायामय प्रकृति की योजना का सम्बन्ध है। इस युग में अद्‌भुतपजर आदि नाटकों में भी छाया-भूमिका विशेष रुचिकर और प्रौढ है।

हास्य-योजना

मायामय प्रकृति के द्वारा कवि ने बारंबार दर्शक को चमत्कृत करने में सफलता पाई है। चतुर्थ अङ्क मे जब रावण, सारण और विद्युद्जिह्व क्रमशः राम, लक्ष्मण और विश्वामित्र बनकर रंगपीठ पर आते है तो मायामय रावण और सारण जनकको प्रणाम करते हैं। विश्वामित्र बने हुए विद्युद्जिह्व से शतानन्द की बातचीत इस प्रसग में हास्य-निष्पत्ति के लिए इस प्रकार है—

शतानन्द—भगवन् गाधिसूनो

> परस्परसमावेतौ प्रमाणेङ्गितचेष्टितैः।
> अनयोः कतरो रामो लक्ष्मणः कतरोऽनयोः॥

विद्युद्जिह्व—(स्वगतम्) न कोऽपि

इसी अङ्क में एक और परिहास है। जनक माया-राम को सीता देना चाहते हैं। शतानन्द उनसे कहते हैं कि आप लक्ष्मण (नकली सारण) को दे दें। फिर तो विद्युद्जिह्व सारण से उदास होकर कहता है कि मेरा तो आना व्यर्थ हुआ। सारण कहता है—

> मा मैवम्।
> कौशिकस्य सुतैः शिष्यैर्घटोघ्नीभिश्च धेनुभिः।
> सहैव गृहिणी यज्ञे गृहिणी ते भविष्यति॥

विद्युद्जिह्व ने उसके परिहास से आहत होकर कहा कि मेरे लिए तो वह बुढ़िया ही रही न ।[1]

रामभद्र की भाषा सर्वथा नाट्योचित है । सरल भाषा सुबोध अलङ्कारो से मण्डित है । नीचे लिखे पद्य मे प्रतीप के द्वारा विषय-वैषम्य प्रत्यक्ष है—

> सगीत क्व मृगीदृशा मधुलिहामग्रे कल कूजता-
> माकर्ण्य द्विपकर्णतालनिनदैरातोद्यमुत्सार्यते ।
> नातिक्रामति हंसतूलशयन कि पल्लवैरास्तरो
> वृत्त्या वन्यफलैर्विपाकमधुरैः पौरी च विस्मार्यते ॥५.११

अनुप्रासो की सगीतमयी लहरी मे भ्रान्तिमान् नीचे लिखे पद्य मे सामिप्राय है—

> स्नानार्द्रा करयोर्युगेन चिकुरा सशोषणार्थ मुहु-
> र्धूयन्ते कुचकुम्भनुन्नसिचय यावत्तरुण्या तया ।
> तावत्ताण्डवयत्ययं वलयतोदंचत्कलापोच्चयं
> केकागर्भितकन्धर च कुतुकात् केलीमयूरोऽन्तिके ॥६.१२

गर्भाङ्क

जानकीपरिणय के षष्ठ अङ्क मे गर्भाङ्क अर्थोपक्षेपक के रूप मे प्रस्तुत माना जा सकता है । इसके द्वारा रावण का मनोरजन अभिप्रेत है, जब वह सीता-विरह की अग्नि मे जल रहा था । गर्भाङ्क मे सीतापहरण के कारण राम के विलाप से लेकर बालिवध तक की कथा दिखाई गई है ।

जानकीपरिणय नाम नाटककारों को प्रिय रहा है । दरभगा के बूहंन के पुत्र मधुसूदन ने १८९१ ई० में जानकीपरिणय की रचना की ।[2] भट्टनारायण के नाम पर एक जानकीपरिणय नाटक मिलता है । सीताराम ने भी जानकीपरिणय नामक नाटक लिखा है ।

शृंगारतिलक भाण

शृङ्गारतिलक का प्रथम अभिनय मधुरापुर मे मीनाक्षी-परिणय-महोत्सव के अवसर पर अनेक प्रान्तों से दूर-दूर से समागत यात्रियो के मनोविनोद के लिए हुआ था ।[3] इस युग मे भी कुछ आलोचको की धारणा थी कि 'न सन्तिदानीं निबद्धार नरस कवय' । पर सूत्रधार आलोचको को फटकारते थे यह कह कर—

---

१. मारुत, कुतो जरठजानीकरणेन मामरहमसि ।

२. इसका प्रकाशन १८९८ ई० मे दरभगा से हुआ है ।

३. तीर्थयात्रियों को इस प्रकार के भाण दिखाने वाले कवि और नाट्याचार्यों ने भारत के पतन की पूरी सामग्री प्रस्तुत की थी । इसका प्रकाशन काव्यमाला ४८ मे हुआ है ।

स एप सरसः कविर्जयति श्रीरामभद्रः सुधी ॥५

कवि के व्याकरण-पाटव ने उसके हृदय की पेशलता को क्षीण नहीं किया था। उसने वासन्तिक वातावरण में शृङ्गार को तिलकित करते हुए इस माण की रचना कर डाली थी। अभिनय करने के लिए जो एकाकी पात्र रंगपीठ पर आया, उसके स्वरूप की कल्पना करें—

सामिस्रस्तं प्रवालारुणमपि शिरसा बिभ्रदुष्णीपभेदं
कस्तूरीचित्रिताङ्गं दधदलिकतलं ,कारितश्मश्रुरेखः।
कक्ष्यावद्धावलग्नः कनकमयतुलाकोटिरम्यैकपादो
निद्राभङ्गारुणाक्षः प्रलपति किमपि ग्रामणीः कामुकानाम् ॥

भुजङ्गशेखर नामक विट पांड्यराज का मित्र था। प्रेयसी (किसी अन्य की पुत्री) ने प्रातः होने के थोड़ा पहले ही उन्हें निष्कुट वन में रात्रिकालिक विहार से विरहित किया तो वह रुआँसा सा होकर बोला—

यातैव हन्त तरुणी किमितः करोमि ॥१

ताम्रचूड के कूजन से यह वियोग हुआ था। उस पर बरस पड़ा—

पश्यन्नरमकूजत् पातकी ताम्रचूडः ॥१५

अब उससे मिलने की आशा न रही, क्योंकि

यदद्य देवरो बालां बाभ्रव्यः पतिमन्दिरम्।
व्याघ्रो निवासकान्तारं हरणीमिव नेष्यति ॥१८

अपनी रात्रिकालीन मञ्जुल प्रणयविष्टि से निकलने पर उसे भय से भागता हुआ अपना मित्र दिखाई दिया, जिसका नाम मन्दारक था। उसने बताया कि मुझे राजन्य चित्रसेन मारने के लिए ढूँढ़ रहा है। भुजंगशेखर ने कहा कि अब क्या डर? मैं चित्रसेन और हजारों योद्धाओं को मार भगाऊँगा। तब तो आश्वस्त होकर मकरन्द ने बताया कि मुझे चित्रसेन की प्रेयसी पत्नी वासन्ती से प्रेम हो गया है। उसमें प्रेम प्रकर्ष-पथ पर समुन्नत ही था कि मनोरथ भग्न हो गया। बिम्बाधरास्वादन-विरहित मन्दारक के पीछे पड़ा था चित्रसेन क्षत्रिय। रात में उसके घर में घुसते ही मन्दारक भागा और पीछा किया गया था। भुजंगशेखर ने गतरात्रि आप बीती सुनाई। मन्दारक ने कहा कि आज सन्ध्या होते ही तुमको पुनः प्रेयसी से मिलवाऊँगा।

दोनों किसी गली से चले ही थे कि उन्हें मनोहारिणी रथ्याविलासिनियों का झुण्ड मनोनीत विहार-भवन से लौटता हुआ मिला। उनकी चर्चा के पश्चात् उन्हें नारायण भट्ट नामक पौराणिक मिला, जिसका वर्णन है—

ताम्बूलं कुसुमस्रजो मृगमदोन्मिश्रं च गन्धद्रवं
भक्त्यास्मै ददते पुराणपठनं शृण्वन्ति ये मानवाः।
किंचायं विधवाः प्रलोभ्य युवतीर्ग्रन्थावसाने रहः
क्रीडामेव हि दक्षिणां विरचयन् गृह्णाति चेलाञ्चलम् ॥३६

वसुदेवगुप्त की गृहिणी मालती वसन्तक की ऊढा नायिका दिखाई पड़ी।

भुजंगशेखर से ज्ञात हुआ कि चन्द्रकला-मन्दिर के द्वार पर वेशवाट में अद्भुत प्रदर्शन कोई ऐन्द्रजालिक करने वाला है। वह उधर जाने के मार्ग में ब्रह्मचारी को देखता है, जिसे उसके गुरु ने विरूप किया था। गुरु की विधवा सुन्दरी कन्या से शिष्य का प्रेमोपचार चलता था। आचार्य ने देख लिया और शिष्य की चोटी और यज्ञोपवीत काट दिया। शिष्य को आचार्य से प्रतिशोध लेना था। उसे धनमित्र को बताना था कि कैसे तुम्हारी पत्नी पुष्पिणी होने पर तीन दिन मेरे आचार्य के संग विहार-सुख की प्राप्ति करती है। शिष्य ने अर्धरात्र के समय गुरु का पीछा करते हुए यह देखा था।

स्त्रीजाति के छद्म-रूप का अनावरण भुजगशेखर ने किया है—

नान्यं किञ्चिदवेक्षते न सकृदप्येषा बहिर्गच्छति।
स्वामालीमभिभाषते न कुलटा दृष्ट्वा परं वेपते॥
स्निह्यत्येव सनीष्विति प्रणयिनो विस्रम्भमातन्वती
निद्राणेषु जनेषु नक्तमबला निर्याति रन्तुं विटैः॥५२

उस देवरात नामक ब्रह्मचारी को भुजगशेखर ने उपदेश दिया कि पढना-लिखना व्यर्थ है, विट बनो। इसके लिए तुम्हारा धनी होना आवश्यक नहीं। चोरी करो। बातचीत करते वह पहुचा मधुरापुर की वेशवीथिका में, जिसका विशेषण है—

वारविलासिनीवर्गेण सौवर्गमपि सुखं लघुकुर्वती सर्वरसिकजनहृदयनिरोधिका मधुरापुरवेशवीथिका।

इस वेशवाट में देश-विदेश के युवकों को वेश्यायें उल्लू बना कर अपने गान्धर्व और हाव-भाव से वश में रखती हैं। वेश्या मातायें युवजनों को फुसला कर लाती हैं। लीलावती नामक वेश्या को देख कर भुजगशेखर ने कहा—

भवति विरक्तरागः पल्लवो निःसहेन
स्तबकयुगमनेन स्पन्दते मारुतेन।
मधुकरनिकरोऽपि व्याकुलो दृश्यतेऽयं
वद तदियमवस्था वल्लिकायाः कुतोऽभूत्॥६४

कलकण्ठी, कमलावति, पद्मावती, कमलिनी, रत्नावली, मधुरवाणी, कलभाषिणी, इन्दुवन्दना, तमालिका, सुकुन्तला, नवमालिका, काञ्चनलता आदि वेश्यायें अपनी-अपनी उपलब्धियों और विलासमय विशेषताओं से भुजंगशेखर के द्वारा कभी अपनाई जा चुकी थी।

विट के विषय में कहा गया है—

बहिस्तु मधुराकारमन्तस्तिक्तरसं पुनः।
विटस्य हृदयं मन्ये विषद्रुमफलोपमम्॥१०१

मन्दारिका नामक जरती का वर्णन है—

पादौ दुष्प्रचलौ पृथूदरभरादेषोऽप्यलावूफल-
प्राघीयान् हृदि लम्बते कुचभरः श्वेता वलन्ते कचाः।
दृश्यन्ते च मुखान्तरे त्रिचतुरा दन्ताः शलाकोपमाः
किं वक्ष्ये विधिनैव कापि रचिता कृत्या जरत्याननां ॥१.३

साथ ही विट के लिए जरती की गालियाँ है—दुराचार, धूर्तजनाधम, कपटैकनिकेतन, निर्लज्ज, दुरात्मन्। अनेन जीर्णशूर्पेण प्रहरिष्यामि। उसको गाली सुननी पड़ती थी—दुष्टाचरणे, कष्टजीवने, जरठमर्कटिके।

वेशवाट में कन्दुक भी वेशपरायण हो गया है।[1] यथा,

पाणिस्पर्शात्तव शशिमुखि प्राप्य रागातिरेकं
रन्तुं याचन्निव निपतति प्रायशः पादमूले।
लब्ध्वा पश्चादनुमतमिव त्वत्कटाक्षावलोकं
भूयः पातुं मुखमिव समुज्जृम्भते कन्दुकोऽयम् ॥९४
विस्रस्तालकया कपोलयुगलव्यालोलताटङ्कया
स्वेदाम्भःपरिमृष्टपत्रलतया सम्भ्रान्तनेत्रान्तया।
व्यावल्गत्कुचकुम्भभारवहनक्लान्तोच्चलन्मध्यया
नम्रोन्नम्रनितम्बया विहरते कान्ते त्वया कन्दुकः ॥९५

वहाँ मदनाचार्य हैं—

उत्तालालकमधुरा विलेपतैल-श्यामार्धोरुकपरिमण्डितोरुकाण्डाः।
तोंत्तित्ति तिमिति वदन् सहस्रतालं वारस्त्रीर्नरयति मित्रविन्द एषः ॥१०६

मदनाचार्य का भुजंगशेखर से प्रश्नों मे एक था—

कच्चिदनुकूलयसि चतुरदूतीजनेन कुलनारीः।

इनके द्वारा विट और वेश्याओं के विवादों का निर्णय किया जाता था। इनके कलत्रपत्रिका को लेकर विवाद उठ खड़े होते थे।

छोटी-बड़ी वेश्याओं के एक ही विट के ग्राहक होने पर विट को बातें बनानी पड़ती हैं। यथा, अनङ्गलता और चम्पकलता नामक दो बहनों से साथ ही प्रेम करने का ढोंग रचने वाले इन्दुचूड के बचाव में भुजङ्गशेखर को कहना पड़ा—

तच्चन्द्रार्धसमानरूपमलिकं सा चम्पकस्पर्धिनी
नासा ते मदनायुधे च नयने सा कान्तिरेखाभ्रुवोः।
तद्रम्यं चिबुकं स चाधरदले रागस्तदेव स्मितं
तत्केलीगमनं किमन्यदुभयोर्नाम्नैव भेदग्रहः ॥१३२

---

१. वामनभट्ट के शृंगार-भाण में भी कन्दुक की यही गति बताई गई है।

निपुणिका नामक दासी को भुजंगशेखर ने भर्तृहरि से एकतान करके वर्णन किया है—

> दिवा वा नक्तं वा दिवसविरतौ वाप्युषसि वा
> गिरौ वा गेहे वा वनतरुतले वा सरसि वा।
> जडं वा धीरं वा तरुणमपि वा वृद्धमपि वा
> विलज्जा लीलाभिर्ननु रमयसि त्वं निपुणिके॥१४३

चन्द्रकला नामक वेश्या कुक्कुट-समर से मनोरंजन करती है, फिर अन्यत्र घोर मुष्टि और वज्रमुष्टि का मल्लयुद्ध हो रहा था। एक स्थान पर जांगलिक वानर और सर्प का खेल दिखा रहा था। अन्त मे भुजंगशेखर अपने मित्र पाण्ड्याधिप की पत्नी चन्द्रकला के साथ ऐन्द्रजालिक का खेल देखने के लिए पहुँचा। ऐन्द्रजालिक के करतब से सभी पर्वत चल पड़े, सभी समुद्र इकट्ठे आ गये, ऐरावत पर बैठा इन्द्र प्रकट हो गया, अर्जुन दिखाई पड़ा, हंस के रथ पर बैठा ब्रह्मा समक्षित हुआ, गरुड पर बैठा विष्णु प्रकट हुआ, शिव नहीं लाये गये, क्योंकि उनके लाने में घोर अपराध का भय था। तभी पागल हाथी के आ धमकने से भगदड़ मच गई। दोपहर का समय हो गया। विट भुजंगशेखर वेगवती नदी के तट पर उद्यान में कुछ समय बिताने के लिए जा घुसा। वहाँ सब कुछ वासन्तिक सौरभ से समन्वित था।

विट को मनोज का प्रभाव सताने लगा। तभी कलहंस आता दिखाई पड़ा। उसने उससे आलिंगन करने पर स्वयं ज्वरित होने की सूचना पाने पर कहा कि हेमाङ्गी का विरह ही कारण है। हेमाङ्गी मथुरा की कन्या थी और उसका विवाह रङ्गनगर मे हुआ था। वह अपनी माता के घर आई हुई थी। एक रात भुजंगशेखर के वेशवाट की ओर जाते समय मार्ग मे राजपालित चीते के पजर से भागने के कारण भगदड होने पर वह हेमाङ्गी के पिता कामान्तक के निष्कुट मे जा घुसा। वहाँ दूर से ही हेमाङ्गी का गायन सुना और देखा कि वह अपनी माता के पास घोर निद्रा मे सो गई है। उसने उसे गोद मे उठाया और उस निष्कुटवन मे लाकर कदम्ब-वृक्ष के नीचे उसके सोते हुए और जागने पर प्रणयारम्भ किया। हेमाङ्गी को उसी दिन देवर के साथ पतिगृह जाना था। इस प्रयाण को रोकने का काम मन्दारक को वह दे चुका था। मन्दारक ने ज्योतिषी को घूस देकर उसकी माता से कहलवाया कि तीन मास तक यात्रा का मुहूर्त नहीं है। इन तीन मासों में हेमाङ्गी और भुजङ्गशेखर के समागम से जो हेमाङ्गी का परपुरुष-प्रणय का रहस्य खुलेगा तो वह पतिकुल से परित्यक्त होने पर भुजङ्गशेखर के द्वारा वेशवाट में रखवा दी जायेगी और सदा के लिए उसी की हो जायेगी। यह संवाद सन्ध्या के समय मन्दारक ने उसे दिया और कहा कि आज रात भी यहीं उससे मिलन होगा। और हेमाङ्गी धूर्ततापूर्वक आ पहुँची—

पतिगृह में रहती हुई हेमाङ्गी के प्रति भुजङ्गशेखर का प्रणय कैसे हुआ—यह कथा उसने अपने मित्र मन्दारक से बताई कि मैं कभी कावेरी-सेवित रंगपुर गया था। वहीं महोत्सव देखकर लौटती हुई अखिल युवलोक वशीकरण-विद्या की भाँति हेमाङ्गी को देखा। वह मुझे देखती हुई अपने घर में चली गई। अपने घर के पास मँडराते हुए मुझे देखकर एक दिन उसने अपनी दासी से एक पत्र मेरे पास भेजा—

लब्धव्या रसिकेन चन्दनलता सा चेन्न लब्धुं क्षमा
द्वीपे भीमभुजंगमावृततया किं तस्य हीनं ततः।
सारङ्गैरुपलालनीयमनघं सौरभ्यमभ्येयुषी
मोघा दुर्विधिना कृता परिणतौ सा केवलं निन्द्यते ॥२१३

भुजंगशेखर ने उत्तर दिया कि तुम्हारे माता के पास आ जाने पर दास भुजंगशेखर साथी बन सकेगा।

कलहंस की प्रेयसी मरालिका उसके विरह में सन्तप्त थी। कलहंस को भुजंगशेखर ने आदेश दिया—

यावन्नास्या वियोगाग्निः प्रशांतिमुपगच्छति
पीताधरदला तावदियमालिग्यतां त्वया ॥२१७

रात आई और अभिसारिका बनकर आ पहुँची भुजंगशेखर के पास हेमाङ्गी, जो

अज्ञातविविधचुम्बनमनभिज्ञातोपगूहनविशेषम्
अविदितनखार्पणं पतिमवाप्य हि रतेषु खिन्नेयम् ॥२२२

भुजंगशेखर के लिए यह 'अनुगुणमुपभोक्तव्या' बनी।

ऐसा लगता है कि शृंगारित समाज के विनोद के लिए सुकवि भी अपनी कलम को कलंकित करने से बाज नहीं आये। यह एक प्रकार से दैव दुर्विलसित ही कहा जा सकता है कि पूरे प्रबन्ध में कवि ने कहीं नहीं कहा कि वेशवाट नरककुण्ड है, सर्वापहारी है और सर्वाधिक भ्रंश का परम स्थान है। इस भाण में विट की प्रणय-प्रवृत्तियों को वेश की मर्यादा से बाहर करके कुलाङ्गनाओं को फसाने की दिशा में प्रवर्तित किया गया है। यह नवीनता दुःखद है।

निपुणिका नामक दासी को भुजंगशेखर ने भर्तृहरि से एकतान करके वर्णन किया है—

> दिवा वा नक्तं वा दिवसविरतौ वाप्युषसि वा
> गिरौ वा गेहे वा वनतरुतले वा सरसि वा ।
> जडं वा धीरं वा तरुणमपि वा वृद्धमपि वा
> विलज्जा लीलाभिर्ननु रमयसि त्वं निपुणिके ॥१४३

चन्द्रकला नामक वेश्या कुक्कुट-समर से मनोरंजन करती है, फिर अन्यत्र घोर मुष्टि और वज्रमुष्टि का मल्लयुद्ध हो रहा था। एक स्थान पर जांगलिक वानर और सर्प का खेल दिखा रहा था। अन्त मे भुजंगशेखर अपने मित्र पाण्ड्याधिप की पत्नी चन्द्रकला के साथ ऐन्द्रजालिक का खेल देखने के लिए पहुँचा। ऐन्द्रजालिक के करतब से सभी पर्वत चल पडे, सभी समुद्र इकट्ठे आ गये, ऐरावत पर बैठा इन्द्र प्रकट हो गया, अर्जुन दिखाई पडा, हंस के रथ पर बैठा ब्रह्मा समक्षित हुआ, गरुड पर बैठा विष्णु प्रकट हुआ, शिव नही लाये गये, क्योंकि उनके लाने में घोर अपराध का भय था। तभी पागल हाथी के आ धमकने से भगदड़ मच गई। दोपहर का समय हो गया। विट भुजगशेखर वेगवती नदी के तट पर उद्यान मे कुछ समय बिताने के लिए जा घुसा। वहाँ सब कुछ वासन्तिक सौरभ से समन्वित था।

विट को मनोज का प्रभाव सताने लगा। तभी कलहंस आता दिखाई पडा। उसने उससे आलिंगन करने पर स्वयं ज्वरित होने की सूचना पाने पर कहा कि हेमाङ्गी का विरह ही कारण है। हेमाङ्गी मथुरा की कन्या थी और उसका विवाह रङ्गनगर मे हुआ था। वह अपनी माता के घर आई हुई थी। एक रात भुजंगशेखर के वेशवाट की ओर जाते समय मार्ग मे राजपालित चीते के पंजर से भागने के कारण भगदड होने पर वह हेमाङ्गी के पिता कामान्तक के निष्कुट मे जा घुसा। वहा दूर से ही हेमाङ्गी का गायन सुना और देखा कि वह अपनी माता के पास घोर निद्रा में सो गई है। उसने उसे गोद मे उठाया. और उस निष्कुटवन मे लाकर कदम्ब-वृक्ष के नीचे उसके सोते हुए और जागने पर प्रणयारम्भ किया। हेमाङ्गी को उसी दिन देवर के साथ पतिगृह जाना था। इस प्रयाण को रोकने का काम मन्दारक को वह दे चुका था। मन्दारक ने ज्योतिषी को घूस देकर उसकी माता से कहलवाया कि तीन मास तक यात्रा का मुहूर्त नही है। इन तीन मासो मे हेमाङ्गी और भुजङ्गशेखर के समागम से जो हेमाङ्गी का परपुरुष-प्रणय का रहस्य खुलेगा तो वह पतिकुल से परित्यक्त होने पर भुजङ्गशेखर के द्वारा वेशवाट मे रखवा दी जायेगी और सदा के लिए उसी की हो जायेगी। यह संवाद सन्ध्या के समय मन्दारक ने उसे दिया और कहा कि आज रात भी यही उससे मिलन होगा। और हेमाङ्गी धूर्ततापूर्वक आ पहुँची—

> अथ पतिगृहदासी सेयमुद्दिश्य किंचिन्नगरमिदमवाप्ता मामपि ज्ञातपूर्वा।
> अगमदिति तदानीं वंचयित्वा स्वबन्धून् भवनवननिकुंजं प्राप सार्धं तयैव ॥२०७

पतिगृह में रहती हुई हेमाङ्गी के प्रति भुजङ्गशेखर का प्रणय कैसे हुआ—यह कथा उसने अपने मित्र मन्दारक से बताई कि मैं कभी कावेरी-सेवित रंगपुर गया था। वहाँ महोत्सव देखकर लौटती हुई अखिल युवलोक वशीकरण-विद्या की भाँति हेमाङ्गी को देखा। वह मुझे देखती हुई अपने घर में चली गई। अपने घर के पास मँडराते हुए मुझे देखकर एक दिन उसने अपनी दासी से एक पत्र मेरे पास भेजा—

लब्धव्या रसिकेन चन्दनलता सा चेन्न लब्धुं क्षमा
द्वीपे भीमभुजंगमावृनतया किं तस्य हीनं ततः।
सारङ्गैरुपलालनीयमनघं सौरभ्यमभ्येयुषी
मोघा दुर्विधिना कृता परिणतौ सा केवलं निन्द्यते ॥२१३

भुजंगशेखर ने उत्तर दिया कि तुम्हारे माता के पास आ जाने पर दास भुजंगशेखर साथी बन सकेगा।

कलहंस की प्रेयसी मरालिका उसके विरह में सन्तप्त थी। कलहंस को भुजंगशेखर ने आदेश दिया—

यावन्नास्या वियोगाग्निः प्रशांतिमुपगच्छति
पीताधरदला तावदियमालिंग्यतां त्वया ॥२१७

रात आई और अभिसारिका बनकर आ पहुँची भुजंगशेखर के पास हेमाङ्गी, जो

अज्ञातविविधचुम्बनमनभिज्ञातोपगूहनविशेषम्
अविदितनखार्पणं पतिमवाप्य हिरतेषु खिन्नेयम् ॥२३२

भुजंगशेखर के लिए यह 'अनुगुणमुपभोक्तव्या' बनी।

ऐसा लगता है कि शृंगारित समाज के विनोद के लिए सुकवि भी अपनी कलम को कलंकित करने से बाज नहीं आये। यह एक प्रकार से दैव दुर्विलसित ही कहा जा सकता है कि पूरे प्रबन्ध में कवि ने कहीं नहीं कहा कि वेशवाट नरककुण्ड है, सर्वापहारी है और सर्वाधिक भ्रंश का परम स्थान है। इस भाण में विट की प्रणय-प्रवृत्तियों को वेश की मर्यादा से बाहर करके कुलाङ्गनाओं को फंसाने की दिशा में प्रवर्तित किया गया है। यह नवीनता दुःखद है।

अध्याय २६

सामराजदीक्षित का नाट्यसाहित्य

नरहरिविन्दुपुरन्दर दामोदर के पुत्र मथुरा निवासी सामराजदीक्षित ने १६८१ ई० मे श्रीदामचरित का प्रणयन किया। इनके प्रतिमा-विलास का युग सत्रहवी शती का तृतीय और अठारहवी शती का प्रथम चरण है। कवि ने बुढापे मे रतिकल्लोलिनी नामक एक अन्य कामशास्त्रीय ग्रन्थ का प्रणयन १७१६ ई० मे किया। इनकी तीसरी रचना शृङ्गारामृत-लहरी है। श्रीदामचरित के अतिरिक्त उनका एक और रूपक धूर्तनर्तक-प्रहसन मिलता है। उनकी भक्तिरसात्मक रचना त्रिपुरसुन्दरी-मानस-पूजनस्तोत्र है। काव्येन्दुप्रकाश उनकी काव्यशास्त्रीय रचना है।[1]

सामराज ने अपनी काव्यलहरी से व्रजभूमि को तरङ्गित किया था। वे बुन्देलखण्ड के आनन्दराय के समाश्रय मे बहुत दिनो तक रहे। उनकी विद्वत्ता आनुवंशिक रही। उनके पुत्र कामराज ने शृङ्गार-कलिका लिखी। उनके पौत्र व्रजराज ने रसमजरी की टीका लिखी और प्रपौत्र जीवराज ने रसतरगिणी की टीका लिखी।

श्रीदामचरित

श्रीदामचरित का नायक सरस्वती-परायण सुप्रसिद्ध सुदामा है।[2] कवि ने अपनी ओर से भावात्मक प्रकृति और उनके कार्यकलाप की योजना की है। प्रमुख पात्र दारिद्र्य है, जो अपनी पत्नी दुर्मति के साथ अतिथियज्ञ करने वाले श्रीदामा का आतिथ्य-लाभ करता है। श्रीदामा ब्राह्मणोचित दरिद्रता से भी प्रसन्न हैं, किन्तु उनकी पत्नी वसुमती उन्हें दारिद्र्य को दूर भगाने के लिए चिउड़ा लेकर कृष्ण के पास जाने के लिए बाध्य करती हैं। कृष्ण ने श्रीदामा का रुक्मिणी और सत्यभामा के साथ चरण धोये। फिर विद्यार्थी-जीवन की चर्चा हुई और अन्तमें प्रमदोद्यान में उद्यानपाल, विदूषकादि के साथ कालोचित काव्यपाठ किया गया। रात्रि मे कृष्ण ने उन्हे अपनी प्रेयसियो के साथ रासक्रीडा दिखाई।

श्रीदामा लौटकर घर आये तो उनकी कुटिया, पत्नी और दरिद्रता के स्थान पर राजोचित प्रासाद, समलकृत रमणी और लक्ष्मी मिली। कृष्ण ने श्रीदामपुरी की रचना सुदामा के लिए करा दी थी।

अन्तिम अङ्क में कृष्ण सत्यभामा और विदूषक के साथ श्रीदामपुरी मे आये।

१. सामराज की अन्य रचनायें अक्षरगुम्फ और शृंगारामृत-लहरी हैं।

२. यह नाटक चार अंकों तक अपूर्ण भण्डारकर ओरियण्टल इंस्टिट्यूट पूना मे मिलता है। विलसन ने इसके पाँचवें अङ्क को भी देखा था और अन्तिम अंक की कथा The Theatre of the Hindus के पृष्ठ १४६ पर दिया है।

सामराज ने श्रीदामा के चरित को उदात्त बनाया है। वे ऐन्द्रियक भोग-विलासों को सर्वहारा मानते हैं। वे पत्नी के कहने पर भी कृष्ण के पास इसलिए जाते हैं कि मुझे पुराण पुरुष का दर्शन मिले। वहां कृष्ण से कुछ भी नहीं मांगते। कृष्ण को कवि ने मर्यादा-पुरुषोत्तम रूप में चित्रित किया है। वे श्रीदामा को देखते ही अपने पलंग से उतर कर उनके चरणों मे प्रणत होते हैं और आलिंगन करके उन्हें अपने आसन पर बिठा कर फिर अपने बैठते हैं।

नाटक में पवन को प्रणयी रूप में चित्रित किया गया है—

वने लतानां कुसुमाभिवर्षैः कृत्वाम्बुकेलिं सह पद्मिनीभिः।
भृंगीभिरंगीकृतगीतिरेति कामीव कामं शनकैः समीरः॥

चतुर्थ अङ्क में कृष्ण राधा का अधरपान करते हुए उन्हें बाहों मे लेकर रंगपीठ पर आते हैं। इसके प्रथम अङ्क में दारिद्र्य दुर्मति का आलिंगन करता है।

प्रस्तुत नाटक उस परम्परा मे है, जिसमे प्रतीक पात्र मानव पात्रो के साथ-साथ हैं।

श्रीदाम चरित की कुछ सूक्तियाँ अधोलिखित हैं—

१. कलहो नाम स्त्रीणां कुलधनम्
२. प्रायो वयोऽवस्थाभेदेन विषया अपि भिद्यन्ते
३. प्रायः स्नेहवता क्लृप्तमानन्त्याय प्रकल्पते।
प्रसरत्यतिमात्रेण विन्दुः पयसि सर्पिषः॥३.११
४. लाघवकारणं हि स्त्रियः

श्रीदामचरित की शैली नाट्योचित है। इसमे अलंकारो का उपयोग भावों को सुबोध और प्रतिमूर्त करने के लिए हुआ है। अनुप्रासालङ्कारों से संगीतमय सांवादिकता की सृष्टि की गई है। कवि का आदर्श रूपक है—

रविरथ-हलावकृष्टे तिमिरौघसमीकृते नभःक्षेत्रे।
वापयति कालहलिकः क्रमशो नक्षत्रबीजानि॥ ३.२६

कवि कहीं-कहीं अपनी उपमागर्भित पदावली से विविध पक्षों का ग्रहण कराते हुए चित्र सा बना देता है। यथा,

"अंजनाद्रित इव गिरिकंदराभ्य इवाविर्भवन्, कलुषमय इव, मोहमय इव, अज्ञानमय इव शक्रमणिमय इव, नीलोत्पलमालामय इव"

यह अन्धकार का चित्रण है। इस प्रकार की सुदीर्घ पदावली तृतीय अंक में प्रमदोद्यान के वर्णन में है। रात्रि का वर्णन रूपकों के द्वारा निरूपित है—

अपहाय रागिणीमपि सन्ध्यां मामेति तिमिरांशुः।
इति मुदितेव तमिस्रा तारापुलकान् समुद्वहति॥ ३.३५

कहीं-कहीं पदावली बाण की अनुकृति सी कर रही है। यथा,

यत्र च अपर्णात्वं गिरिजायाम् अवकेशत्वं विधवादिषु, भिन्नपत्रत्वमाजिपराजितसादिषु, गतपुष्पत्वं जरठयोषित्सु, स्थाणुत्व शंकरे न लताद्रुमेषु।

तृतीय अङ्क में।

सामराज की कल्पना - परिधि निरवधि है। यथा,

क्रामत्पाठीनपुच्छक्षुभिततिमिकुलाकाण्डसंघट्टलोलत्-
पानीयानीकवेल्लनमणिगणकिरणाकीर्णप्रीतिरिताम्भः।
एनामन्वर्थसंज्ञां जलनिधिवसना चित्रसाटीयघाटी-
मालम्बन् बालवीचिनिचयकुहकतो बद्धनीविः करोति ॥ ३६

एक शाश्वत सत्य का मार्मिक रहस्योद्घाटन इस नाटक मे किया गया है। यथा,

गृहीतो हृदये धर्मः कंठे बद्धा सरस्वती।
एतैरितीव विप्रेभ्यः स्वैरं श्रीरपसर्पति ॥ १.१८

धूर्तनर्तक प्रहसन

भगवान् नरकेसरी की यात्रा के अवसर पर इसका पहला अभिनय हुआ था। कथानायक मूढेश्वर और उनकी नायिका वसन्ततिलका का चरित धूर्तनर्तक प्रहसन को समलंकृत करता है।[1] मूढेश्वर अपने शिष्य जगद्वञ्चक और मुखर को साथ लेकर वसन्ततिलका से मिलने चले। जगद्वञ्चक आगे-आगे चलकर वसन्ततिलका के पास गुरु के आगमन का समाचार देने पहुँचा तो उसीके प्रणय में समासक्त हो गया। लौटा नहीं। गुरु के वहाँ पहुँचने पर शिष्य-द्वय वहाँ से भाग खड़े हुए और पुलिस को लेकर वहाँ जब पुनः आये तो गुरु रगे हाथों पकड़े गये वसन्ततिलका के प्रणयपाश में। उन दोनों के केशपाश को साथ ही सम्बद्ध करके उन्हें पुलिस ने पापाचार नामक राजा के समक्ष पहुँचाया। राजा ने वसन्ततिलका को देखा तो दण्ड देने की सुध-बुध खो बैठे। इधर विदूषक से मूढेश्वर बताता है कि मेरी सिद्धियाँ इससे बढ़-चढ़ कर हैं। वह राजा को देवताओं का साक्षात् दर्शन कराने के लिए उद्यत था। तभी श्री मंगलकुमार मिश्र नामक धूर्त ने कहा कि गुरु सत्य कहते हैं। राजा को मूर्ख बनाकर ठगने के लिए सप्तर्षियों का दर्शन कराया गया। वसन्ततिलका तो गुरु की हो ही गई।

इस प्रहसन की प्रस्तावना में सुगन्धित वायु का वर्णन किया गया है। समाज में धूर्तों की चलती है। यथा,

अजानन्तः शास्त्रं श्रुतिषु नितरां मूढमतयो
न जाताः कामारेः पदयुगलपाथोजरसिकाः।
प्रगल्भन्ते नित्यं करयुगशिरःकम्पनविधौ
नरास्ते विद्वांसः शिव शिव कलेरेव महिमा ॥ ६६

---

१. इसकी हस्तलिखित प्रति बनारस की सरस्वती भवन लाइब्रेरी में ३७६६५ संख्यक है। इसका सम्पादन १८२८ ई० मे कलकत्ते से रामचन्द्र तर्कांचार्य ने किया है।

शृङ्गारशेखर को सर्वप्रथम अनङ्गशेखर नामक विट की प्रेयसी चित्रलेखा दिखी। फिर उसकी भूतपूर्व प्रेयसी तारावली दिखी। तारावली की धूर्तता और उसकी जरती की गालियों को दुहराया है। गालियाँ विट के लिए कर्णामृत हैं। आगे शूरसेन और वीरसेन मुर्गा लड़ाते मिले।

विट को आगे वीणावती मिली। उसके साथ एक नई वेश्या वसन्तकलिका मिली, जो अपने ब्राह्मण पति को विट होते देख स्वयं उसका अनुसरण करती हुई वेशवाट मे रहने लगी। शृङ्गारशेखर वसन्तकलिका की संगति चाहता था, पर वह पुष्पिणी थी तो क्या हुआ? विट का तर्क था—

पण्यस्त्रीषु परस्त्रीषु पुष्पदोषो न विद्यते।

आगे उसे आहितुण्डिक मिला। उसके सांपों का खेल देख-सुनकर विट हारावली के पास पहुँचा, जो कन्दुकक्रीडा में व्यापृत थी। उससे विट का पहले कभी सम्बन्ध था। गेंद खेलती हुई उसने विट से कहा कि विघ्न न डालें।

विट को आगे दाक्षिणात्य ब्राह्मण देवराज भट्ट वेशवाट मे घुसते मिले। उनकी पत्नी घर मे रहती हुई भी व्यभिचारिणी बन गई थी। गन्धहस्ती आगे मार्ग में स्वतन्त्र होकर नगर में भगदड़ मचाये था। हारिणी नामक वेश्या ने दोपहर की धूप से उस विट को बचने को कहा तो उसने उत्तर दिया—

त्वदर्थमनुभूतकामानलस्य मे कोऽयमातपो नाम।

आगे चन्द्रशाला में अध्यापन करते हुए कामशास्त्र के उपाध्याय मिले। विट ने उनको नमस्ते ठोका। उनसे आशीर्वाद मिला—अनङ्गविद्यापारगतो भूयाः। पूछने पर उन्होंने कामशास्त्रीय भाषा मे बताया कि जाति-भेद, अर्धचन्द्रविधि, बिन्दुमाल-अन्तर, उत्तानकरण, क्षीरनीर और तिलतण्डुल-विवेक—आठ प्रकार के औपरिष्टक आदि पढ़ा चुका हूँ। उपाध्याय को वासन्तिका-नृत्य देखने का निमन्त्रण विट ने दिया।

आगे शृङ्गारशेखर ने देखा कि गणिका के लिए दो वीरों में तलवार खिंच गई थी। विट के अनुसार पतिगृह व्यभिचारिणियों के लिए कारागार है। जैसे—

कार्येणापि विडम्बनं परगृहे श्वश्रूर्न सम्मन्यते
गङ्गामारचयन्ति यूनि भवनं प्राप्ते मिथो यातरः।
वीथीनिर्गमनेऽपि तर्जयति न श्वश्रूर्ननान्दा पुनः
यष्टं हन्त मृगीदृशां पतिगृहं प्रायेण कारागृहम्॥

यहाँ द्वन्द्व देखने के लिए आये हुए रणशेखर नामक विट ने अपनी कथा सुनाई कि रत्ननगरी की वेश्यावीथी मे मैं पहुँचा, जब पायों में पिता से झगड़ा हो गया। वहाँ

भाति पद्मनाभमूर्तिः कनकशलाकेव कामिनी दृष्टा।

फिर उसके लिए मैं अपमरा हो गया। एक दिन एक चालाकिनी ने मेरी दशा सुनकर मुझसे कहा—यह रत्न तुम्हारी प्रेयसी ने तुम्हारे लिए यह कहकर भेजा है

कि यह 'युष्मद्गुणगणक्रीतमस्मच्चेतः' है। उसने उस प्रेयसी बाला की स्थिति बताई—

न क्रीडासु कुतूहलं वितनुते नालंकृतौ सादरा
नाहारेऽपि च सस्पृहा न गणयत्यालापलोलां सखीम्।
बाला केवलमङ्गकैरनुकलक्षामैर्विविक्तस्थले
ध्यायन्ती किल किंचिदन्तरधुना निस्पन्दमास्ते मुधा॥

उसके मदनताप का अनुरणन कापालिकी के मुख से जान लें—

सन्तापस्फुटितोत्थितैस्तनतटान्मुक्ताफलैरन्वितं
भस्मीभूतनवप्रवालशयनं पर्याकुलैरङ्गकैः।
निश्वासग्लपितप्रसूनकलिकानिर्विण्णभृंगीकुलं
तस्यास्तापमनक्षरं कथयते तन्व्या लतामण्डपम्॥

उस प्रेमसी की आत्मकथा है कि मैंने एक विलासी को देखा—

नवयौवनकुञ्जरस्य मन्ये मदलेखेव मदालसस्य यूनः।
चरणं रगमत् कथं कथंचिद्विरहैर्विस्मितमार्गसंनिवेशैः॥

रङ्गशेखर ने उससे मिलने का उपाय बताया कि वह अपने को भूताविष्ट कहकर उन्मादिनी बने और मैं उसका उपचार करने के लिए मान्त्रिक बनकर उसका समागम प्राप्त करूँ। उस कामिनी का पिता लक्षाधीश था। उसने अपनी आधी सम्पत्ति उस व्यक्ति को देने की घोषणा की, जो उस कन्या के महाभूत को दूर भगा दे।[1] रङ्गनाथ ने मन्त्र-तन्त्र से उसे ठीक कर देने का ढोंग रचा और एक दिन यक्षबलि के लिए पिता की अनुमति से उसके अकेले जाने का कार्यक्रम बनाया। वहाँ से वह संकेतित मातृगृह में पहुँची, जहाँ सर्वथा एकान्त था और वहीं मैं था। फिर तो

तन्मयः किमयं बाला मन्मयी किमुभावपि।
किमानन्दमयौ वेति न विज्ञातं तया मया॥

रङ्गशेखर और शृङ्गारशेखर ने परवधूरमण की निरतिशयानन्दिता की चर्चा की वीरवरों के द्वन्द्व-युद्ध का वर्णन करके शृङ्गारशेखर मेषयुद्ध का वर्णन करता है। फिर उसे नेपाली, चोली, आदि वारांगनायें मिलीं और मन्दारमालिका से मिलने का कार्यक्रम बना—

मत्यमागच्छामि, प्रणमामि ते पादपंकजेन।

अन्त में शृङ्गारशेखर रंगोत्सव में पहुँचा। वहाँ मंगलतूर्यनाद हो रहा था। वहाँ विलासवीर का विलासवती से द्यूत सोत्साह चल रहा था। अन्यत्र आँखमिचौनी चल रही थी युवा और उसकी प्रेयसी की। उस रंगस्थली में चोल, केरल, नेपाल, मालव, मगध, कलिंग, कर्णाट आदि देशों के विट थे।

---

१. भूतावेश के बहाने प्रियतम से मिलने का यह संविधान १७ वीं शती के कुमुद्वतीय तथा वसुमती चित्रसेनीय में भी मिलता है।

वासन्तिका के नृत्य के रङ्गमण्डप में पहुँचने पर शृङ्गारशेखर को अनेक देशों से आई हुई विलासिनियाँ दिखाई पडीं, जिनमें आन्ध्र, कर्णाट, पाण्ड्य, लाट, नेपाल आदि के रमणीरत्न विशेष उल्लेखनीय प्रतीत हुए। वहाँ विलासपुर से आई हुई चन्द्ररेखा सकललोकलोचनानन्द घोषित हुई।

विट ने वासन्तिका के सौभाग्य की आशंसा करते हुए आशीर्वाद दिया—

न परं रूपलावण्यैस्त्वया मूर्ध्नि मृगीदृशाम्।
विद्ययापि विशालाक्षि, विन्यस्ता वामपादुका॥

शृङ्गारशेखर ने वासन्तिकोपभोग के एकाधिकार के लिए कलत्रपत्र दिया—

मासान् सप्त ममेयमस्तु दयिता दास्यामि चास्यै शतं
दीनारान् प्रतिमासमम्बरयुगं नित्यं शतं वीटिकाः।
आमोदं कुसुमं च वाञ्छितमसौ मध्येऽन्यमीक्षेत चेद्
दत्त्वा तद्द्विगुणं कलत्र तु पुनर्मासानियं सप्त च॥

रतिवल्लभ, रागवर्धन और कुसुमसौरभ इसके साक्षी बने। जनान्तिक में शृङ्गारशेखर ने कहा कि मैं चोरी तथा द्यूत में निरतिशय निपुण हूँ। दो-एक मास में तुम्हारा घर स्वर्ण-राशि से भर दूँगा।

भाण में कवि आनुप्रासिक संगीत प्रस्तुत करता है। यथा

शशिपदमणिमालं चन्द्ररेखाभिरामं ललितपुलकजालं लक्ष्यबिन्दुप्रवालं।

इसकी सरल सुबोध भाषा भाणोचित है। पद्यों के उदाहरणों से इसकी गीति-प्रवणता परिचेय है।

कहीं-कहीं लोकोक्तियों का प्रखर प्रवाह है। यथा,

१. मातङ्ग इवागत्य मार्जार इव निर्गतोऽभूत्।
२. कुबेरमपि कौपीनं परिधापयितुं कुशलासि।
३. क इव करतललग्नं मुञ्चेत माणिक्यम्।

कवि ने विट के मुख से ही वेश्याओं की धूर्तता का रहस्योद्घाटन किया है। यथा,

कपटानुरागकौसीदिकः खलु वेश्या जन.।

आलापैर्मधुरैश्च कांश्चिदपरानालोकितैः सस्मितै-
रन्यान् विभ्रमकल्पनाभिरितरानङ्गैरनङ्गोज्ज्वलैः।
आचारैश्चतुरैः परानभिनवैरन्यान् भ्रुवः कम्पनै-
रित्थं कांश्चन रंजयन्ति सुदृशो मन्ये मनस्त्वन्यथा॥

वृद्धजरती को विट कुट्टनी बतलाता है। उसकी गाली का उदाहरण है—

रे रे धूर्तजनधौरेय दरिद्रचूडामणे कृपणजन······जीर्ण। शूर्पेण निहत्य निष्कासितोऽपि शकाहीनः पुनरपि समागतोऽसि।

अध्याय २८
वेदान्तविलास

वेदान्तविलास का अपर नाम यतिराज-विजय भी है।[1] इसके छः अङ्कों में रामानुज का जीवनचरित कथावस्तु-रूप में लिया गया है और उसके प्रसङ्ग में रामानुज-वेदान्त का परिचय है। कथावस्तु मोहराज-पराजय की कथावस्तु के कुछ-कुछ समान विकसित है।

कथावस्तु के अनुसार नायक वेदान्त राजा मायावाद के चमत्कार से सत्पथ से भ्रान्त हुआ था। उसने अपनी पत्नी सुमति का तिरस्कार करके भ्रष्टाचार-परायण मिथ्या-दृष्टि का पाणिग्रहण किया। इस काम में उसके मन्त्री थे बौद्ध और चार्वाक आदि। अन्धकार की यह स्थिति अन्त में समाप्त हुई, जब नायक यतिराज के ज्ञान-प्रकाश से अपनी विकृति का संज्ञान लाभ करता है। वह सुमति को पुनः अपनी प्रतिष्ठित महिषी के स्थान पर समादृत करता है। इस प्रकार उसका उद्धार होता है।

वेदान्त-विलास मे सब मिलाकर ३८ पात्र हैं। इनमें से लगभग १५ प्रतीकात्मक हैं और शेष ऋषि, मुनि, मानवादि हैं। इसमें वेदमौलि (वेदान्त) नायक है, यतिराज रामानुज मन्त्री है और धर्म अनुचर है। शङ्कर, भास्कर, यादव, चार्वाक आदि अन्य चरित-नायक हैं। जनक, नारद, भरत आदि प्रमुख पात्र हैं, जो अन्य नाटकों से भी सुपरिचित हैं। नाटक का प्रथम अभिनय श्रीरंग में विष्णु की चैत्रोत्सव यात्रा में हुआ था।

नाटक की कथावस्तु संक्षेप में इस प्रकार बताई गई है—

सर्वैर्विनुप्तविषयः सचिवैः पुरस्तात्
सम्यग्विचिन्त्य सचिवेन यतीश्वरेण।
सम्प्रापितः स्वपदवैभवमद्वितीयं
सम्राडसौ खलु भविष्यति वेदमौलिः॥

नारद के शब्दों में

निरस्य तिमिरं भानुर्निवत्ते जगति श्रियम्।
एवमेनं यतीन्द्रोऽपि स्वपदे स्थापयिष्यति॥

मानवपात्र और प्रतीकपात्र दोनों रंगमंच पर बात करते हैं। यह छायातत्त्व का उदाहरण है, जो प्रायः पूरी पुस्तक में वर्तमान है। यथा,

धर्मः–(उपसृत्य) अयमहमुपनतोऽस्मि।
यतिः–(सादरम्) धर्म, इदमासनमुपविश्यताम्।

---

१. इसका प्रकाशन १९५९ ई० में तिरुमल-तिरुपति-देवस्थान तिरुपति से हुआ है।

धर्मः–भगवन्, अलमत्यादरेण। (इति भूमावुपविशति)।
यतिः–अपि दृष्टो राजा वत्सेन।
धर्मः–(सविषादम्) राहुगृहीतो रजनीकरः कथं दृश्यते।

वेदान्त-विलास का महत्त्व नाटक की दृष्टि से भले सम्प्रदाय वालो तक सीमित है और सच भी है कि इस नाटक का महत्त्व परखने के लिए इसकी साम्प्रदायिक महिमा को दृष्टि-पथ से ओझल नही किया जा सकता। इसके साथ ही अन्य सम्प्रदायो की स्वल्प-ज्ञात प्रवृत्तियों की जानकारी के लिए इसका महत्त्व कुछ कम नही है। चार्वाक मत की बातो को जानने के लिए इसमे अनूठी बातें है। इसके अतिरिक्त बौद्ध मत के विविध सम्प्रदाय, जैन, पाशुपत मायावादी, भास्करीय, यादवीय द्वैती आदि सम्प्रदायो की प्रमुख मान्यताओ की झलक इसमे मिलती है।

एकोक्ति

इस नाटक की बहुशः एकोक्तियाँ विशेष प्रभावशालिनी हैं। प्रथम अङ्क के आरम्भ मे रंगमच पर अकेला नायक कहता है—

भेदोपजीव्यपि भिनत्ति तमेव भेदं
मानं प्रतिक्षिपति मासपरायणोऽपि।
सोऽयं प्रमाणपुरुषैः स्वकरोपनीतान्
मिथ्येति वक्ति मिषतोऽपि हरन् महार्थान् ॥१.३०

नायक राजा के चले जाने के पश्चात् रामानुज रगमच पर आते हैं और वे अकेले हैं। वे अपनी मानसिक स्थिति का वर्णन एकोक्ति रूप मे करते हैं—

वासो भुक्तपटच्चराणि वसतिर्मूले तरोर्भोजन
भिक्षास्सप्त नवा जलं तु सुलभं त्यक्तास्समस्तैषणाः।
वर्गेषु त्रिषु निस्स्पृहो भगवति न्यस्तात्मभारोऽपि सन्
चिन्तादन्तुर मानसोऽपि सचिवश्श्रीवेदमौलेरहम् ॥१.३२

और भी—

मदन्तस्सन्तापं शमयितुमल रगनगरी—
समीरा कावेरीशिशिरलहरीशीकरमुचः।
समुत्पुष्यल्लक्ष्मीस्तनतटपटीरद्रवमिलन्
मुकुन्दोरःक्रीडारसिकतुलसीसौरभमुषः ॥१.३३

शैली

सूत्रधार के शब्दों मे वेदान्त-विलास की शैली

'कर्णामृतानि च भवन्ति कवीन्द्रवाचः।'

अर्थात् मधुर-मधु पदावली से सरस है। यह नितान्त सत्य है।

नाटक की भाषा अति सरल है। भाव तो सम्प्रदाय के लोगो के लिए सरल होना स्वाभाविक ही है। संवाद मे व्याख्यान नही है, अपितु शास्त्रार्थ या शिक्षण की योग्यता प्रतीत होती है।

यद्यपि यह दार्शनिक नाटक है, फिर भी लोकरुचि के अनुरोधानुसार इसमें शृंगारित तत्त्व की निर्झरिणी स्थान-स्थान पर प्रवाहित है।

राजा वेदमौलि को छोड़कर मिथ्या भाग गई तो वह अकेले कलपने लगा—

मा त्वं प्रयाहि मदिराक्षि मया कृतं ते
पश्यामि नाल्पमपि दोषमथापि किं माम्।
काष्ठागतप्रणयकन्दलितं जहासि
का वा गतिर्मम भविष्यति कांक्षतस्तव ॥२.२३

फिर तो इतिहास को देखकर वह फूट पड़ता है—

सौदामिनीव मेघं मां त्यक्त्वा मायाविलासिनी।
गताहं किं करिष्यामि विरहानलविह्वलः ॥२.२४

वेदमौलि का अपनी रानी रागिणी देवी के प्रति प्रेम कुछ शिथिल सा है। उसका शृङ्गारित परिताप है—

सन्तापस्फुटितोज्झितस्तनतटंस्संछादितं मौक्तिकैः
भस्मीभूत — नवप्रकाशशयनं पर्याकुलैरंगकैः।
विश्वासग्लपितप्रसूनकलिकानिर्विण्णभृंगीकुलं
तस्यास्तापमनक्षरं कथयते तन्व्या लतामंडपम् ॥३.१

भूमिका

नाटक की भूमिका धर्म आदि भावात्मक सत्ताओं की है–इन्हें क्या समझा जाय? जैसे ईश्वर रूप ग्रहण करके रामादि बनता है, वैसे ही धर्म आदि मानव रूप धारण करके रंगपीठ पर आते हैं। दूसरी दृष्टि यह है कि धर्म नामक भूमिका या चरित-नायक धर्ममय पुरुष है।

वेदान्तविलास की प्रस्तावना के नीचे लिखे अंश से इस नाटक के रचयिता के समय का ज्ञान होता है—

अस्ति खलु भगवद्रामानुजमुनेः पूर्वाश्रमभागिनेयः श्रीवत्सकुलचूडामणिः अखिलपरदर्शनमदकर्शनः सुदर्शनो नाम।

तस्य वेदान्तकूटस्थः पौत्रोऽभूद्वरदो गुरुः
श्रुतप्रकाशिकाद्याश्च ग्रन्था यच्छिष्यसम्पदः॥

तस्य पंचमः प्रपञ्चविदितवैदुष्यः कांचीपुरीवास्तव्यः श्रीघटिकाशत-सुदर्शनाचार्यसुनुः श्रीवेदान्ताचार्य--रामानुजाचार्ययोः दर्शनस्थापनाचार्ययोः प्रसादभूमिर्वरदाचार्यो नामकविः।

इस सूचना के अनुसार रामानुजाचार्य से आठवीं पीढ़ी में वरदाचार्य का प्रादुर्भाव प्रतीत होता है। ऐसी स्थिति मे १२वी शती के रामानुजाचार्य से लगभग २५० वर्ष पश्चात् वरदाचार्य को चौदहवी और पन्द्रहवीं शती मे ही रख सकते हैं। इस प्रकार वरदाचार्य का समय विवादास्पद है।

अध्याय २६

चोक्कनाथ का नाट्यसाहित्य

तिप्पाध्वरी के पचम पुत्र चोक्कनाथ अपने पिता के अग्रहार शाहजीपुरम् के निवासी हो गये थे। मूलत वे तेलुगु थे। तजौर के शाहजी उनके आश्रयदाता थे। कुछ समय तक वे दक्षिण कर्णाट देश मे वसव-भूपाल की राजसभा को समलंकृत करते रहे।

चोक्कनाथ के द्वारा प्रणीत तीन रूपक ज्ञात हैं—

१ सेवन्तिकापरिणय

२ कान्तिमती-शाहराजीय-नाटक

३. रसविलास-भाण

इनमे से कान्तिमती-शाहराजीय के नायक शाहजी १६८४–१७११ ई० तक और सेवन्तिकापरिणय के नायक वसवभूपाल १६५८–१७१४ ई० तक राजा थे। कवि ने सबसे पहले रसविलासभाण की रचना की थी। इसकी चर्चा कान्तिशाहराजीय की प्रस्तावना मे है।

चोक्कनाथ को सूत्रधार ने महात्मा बताया है। उनके पिता तिप्पाध्वरीन्दु का परिचय सूत्रधार ने इन शब्दो मे दिया है—

> तस्य जगदाचार्यस्य तिप्पाध्वरीन्दोरयं पुत्र इति महदिदमुत्कर्षस्थानम्। तथा हि—
>
> भाष्यादिग्रन्थजातं सकलमपि सदा पाठयन्तो महान्तो
> भूपालश्लाघ्यमाना विनिहितविजयस्तम्भजालादिगन्ते
> प्राप्ते वादे बुधेन्द्रैरहमहमिकया पूर्वमेवाभियान्तो
> देशेदेशे वसन्ति प्रसृमरयशसो यस्य शिष्या. प्रशिष्याः॥

चोक्कनाथ के बडे भाई कुप्पाध्वरी और तिरुमलशास्त्री थे। इनके गुरु स्वामी शास्त्री और सीताराम शास्त्री थे।

कान्तिमती–शाहराजीय

कान्तिमती-शाहराजीय[1] का प्रथम अभिनय तजौर मे मध्यार्जुनेश के चैत्रोत्सव के अवसर पर हुआ था। इसमे नृपति के चरित का अभिनय अभीष्ट था। यह उच्चकोटि का गीतिप्रवण नाटक है।

कथावस्तु

भागनगर के राजा चित्रवर्मा का राज्य एक वार यवनो के द्वारा छीन लिया

१. इसकी हस्तलिखित प्रति सरस्वती महल तजौर में ४३३६–४१ संख्यक है।

गया। तंजौर के महाराज शाहजी ने उसे राज्य पर पुनः प्रतिष्ठापित किया था। चित्रवर्मा महाराज से मिलने कुम्भकोनम् आया था।

चित्रवर्मा के पुरोहित कौषीतकि से शाहजी के विदूषक कविराक्षस की बहिन सुलोचना का विवाह हुआ था। उसने विदूषक को सूचना भेजी कि एक मास पूर्व चित्रवर्मा की कन्या कान्तिमती तंजौर में आनन्दवल्ली नामक देवी की पूजा करने गई थी, जिससे उसने सुयोग्य वरलाभ की प्रार्थना की थी। तंजौर में उसने तुम्हारे महाराज शाहजी को देखा और मदनातङ्कित हो गई है। तुम तो अब शाहजी को कुम्भकोनम् ले आओ, जिससे कान्तिमती से उनका मिलना हो। इस बीच शाहजी चित्रवर्मा से मिलने कुम्भकोण चले। महाराज के विवाह की अवश्यंभाविता की चर्चा नागज्योतिपक ने की।

राजा रथोत्सव देखने के लिए सौध पर जा विराजे। विदूषक के परामर्शानुसार कान्तिमती को सुलोचना ने सामने के सौध पर खड़ा करा दिया। वहाँ से विदूषक ने सामने के सौध पर खड़ी कान्तिमती को दिखाया। राजा का उससे प्रेम देखकर विदूषक ने कहा कि मैं सब कुछ ठीक कर दूँगा।

राजा और विदूषक की कान्तिमती-विषयक वार्ता को महारानी सखियों के साथ आकर खम्भे के पीछे से सुनने लगी। रानी ने जान लिया कि राजा किसी अन्य नायिका के चक्कर में है। वह वहाँ से राजा की ओर बढ़ी। विदूषक ने राजा की स्थिति सभाली, यह कहकर कि राजा के ये उद्गार आपका चित्र देखकर निकले थे। रानी ने कान्तिमती का नाम राजा के मुँह से सुना था। उसने कहा कि अब मैं कान्तिमती नाम वाली हो गई हूँ।

कुम्भकोण में चित्रवर्मा ने शाहजी का भव्य स्वागत किया। उसे ऐश्वर्यशालिनी भेंट दी और कहा—

> देवता नित्यतृप्तापि यद्भक्त्येन निवेदितम्।
> अत्यल्पमपि तद्वस्तु बहुकृत्य प्रसीदति ॥२·२
> अत्यापदं प्रपन्नं मां रक्षितुं मम देवता।
> अवतीर्णेति मन्येऽहं भवद्रूपेण भूतले ॥२·३

इन भेंटों में एक हार था, जिसकी मणि से पहनने वाला व्यक्ति अदृश्य हो जाता था। इसके पश्चात् राजा चित्रवर्मा अपने मन्त्रियों से आवश्यक परामर्श करने गया और शाहजी उसके अन्तःपुर में उसकी प्रतीक्षा में पड़े रहे। पश्चात् विदूषक के निर्देशानुसार शाहजी चित्रशाला में गये, जहाँ कान्तिमती उनसे मिलने वाली थी। राजा ने वहाँ कान्तिमती को देखा—

> उन्नमकन्धरेयं कटितटविन्यस्तवलितहस्ताग्रा
> चित्रं विलोकयन्ती जीवितमेवात्र तिष्ठति पुरो मे ॥२.२०

खम्भे से छिपकर राजा और विदूषक कान्तिमती की बातें सुनने लगे। राजा ने कहा—

ममनयनयोरेषा योषा करोति कुतूहलम् ।२·२२

कान्तिमती को नायक से मिलने के लिए उत्कण्ठित सुनकर विदूषक ने राजा को उसके पास ला दिया। नायक-नायिका के सान्निध्य मे शृङ्गाररस की वाग्धारा प्रवाहित हुई। शीघ्र ही चेटी ने आकर उन सबको बताया कि भागानगर छोडे बहुत दिन हुए। शत्रुओ से वहाँ भय उत्पन्न हो गया है। आज ही सबको यहाँ से चल देना है।

विदूषक और शाहजी को यह स्थिति अटपटी लगी। भाग्य से स्थिति मे परिवर्तन हुआ। भागानगर की रक्षा के लिए रणधीर नामक अन्तपाल को चित्रवर्मा ने नियुक्त किया और अपने कुटुम्ब के साथ कमलालय के राजा की कन्या प्रभावती के विवाह को देखने के लिए निमन्त्रित होकर चल पडे।

प्रभावती चित्रवर्मा की पत्नी के भाई चित्रसेन की कन्या थी। इसके विवाह मे शाहजी भी तजोर से सकुटुम्ब कमलालय पहुँचे। प्रभावती के विवाह मे वही कान्तिमती अपने माता-पिता के साथ उपस्थित हुई। वहाँ चित्रसेन के गृहाराम मे मदनाःतङ्कित नायक और नायिका दोनो पहुँचे। नायिका अपनी सखी की गोद मे सिर रख कर सोई हुई उत्स्वप्नायित करने लगी। नायक उसके सामने प्रकट हुआ। थोडी देर मे उनके मित्र उन्हे अकेले छोडकर चलते बने। उन्होने प्रेमालाप के साथ आलिंगन किया। उनके प्रणयव्यापार के बीच विदूषक कही वृक्ष से गिरा। सभी लोग उसके पास दौड पडे, जिनमे चित्रवर्मा भी था। ऐसी स्थिति मे कान्तिमती को कोई देख न ले—नायक ने उसे वह हार पहना दिया, जिसका पहनने वाला अदृश्य हो जाता था। इस प्रकार नायिका की रक्षा हुई।

कान्तिमती की माता ने जान लिया कि उसकी कन्या का प्रणय-सम्बन्ध पर्याप्त सीमा तक बढ चुका है। उसका परिचय जानकर यह चिन्ता हुई कि उसकी तो पहली पत्नी है। उस पत्नी की अनुमति मिलने से ही विवाह की सम्भावना रही। इसके लिए प्रयास आरम्भ हुआ।

शाहजी की पत्नी को वह पत्र मिला, जिसे कान्तिमती ने नायक के कमलालय आने पर विदूषक के माध्यम से भेजा था। रानी का माथा ठनका। नायिका को प्रतीत हुआ कि उसकी सिद्धि मे बाधायें आ पडी।

इधर राजा विरहाग्नि मे जलने लगा। वह जब विदूषक से बात कर रहा था तो रानी आ गई और छिप कर उनकी बातें सुनने लगी। तभी चित्रवर्मा का मन्त्री राजा का सन्देश लेकर आया कि कान्तिमती से आप विवाह कर लें। राजा ने स्पष्ट कह दिया कि रानी की अनुमति बिना यह नहीं होगा। उसी समय ज्योतिषी ने आकर कहा कि कान्तिमती से अवश्य विवाह कर लें। अन्त मे रानी प्रत्यक्ष हुई। सबने सारा

दोष विदूषक पर मढ़ा। इसी बीच शोभावती कमलाम्बिका से आविष्ट होकर रानी से बोली—

> शाहेन्द्रकान्तिमत्योः पाणिग्रहणभद्रेण प्रथितयशसो भवत्यास्तनया वोढवो जनिष्यन्ते। ··· ··· तदद्य सत्वरं प्रवर्त्यतां कल्याणम्।

उन दोनों का विवाह हो गया।

नाट्यशिल्प

सूत्रधार के शब्दों में यह नाटक है—

चित्रसंविधानपदम्।

नाटक के कुछ संविधान कोरे हास्य-निष्पादन के लिए हैं। प्रथम अंक में भले ही फलप्राप्ति की दिशा में उपयोग रहित है विदूषक का घोड़े पर चढ़ना और उसकी पीठ से उचक कर अपनी टाँग तुड़वाना, किन्तु हास्य के लिए इसकी उपयोगिता निर्विवाद है। तृतीय अङ्क में आरम्भ में वर्धन का अपने साहस की कथा बताना केवल विनोद के लिए ही है।

शृङ्गार रस की धारा प्रवाहित करने के लिए कवि ने द्वितीय अङ्क के उत्तरार्ध में कथा प्रवाह को रोक कर नायिका और नायक का विविध देशों में मिलन वर्णन करते हुए उनके मनोभावों का चित्रण किया है।

इस नाटक का विदूषक कविराक्षस विदूषक होने के साथ उच्चकोटि की प्रत्युत्पन्न बुद्धि से युक्त है। वह अपने कवि नाम को सार्थक करता है। वह केवल एक टाइप नहीं है। उसका अपना कवित्वपूर्ण व्यक्तित्व है। राजा ने उसकी प्रशंसा में कहा है—

अपि शक्नोषि पुरस्थमप्यर्थं शशविषाणीकर्तुम्।

कवि ने प्रथम और तृतीय अङ्क के पहले के क्रमशः विष्कम्भक और प्रवेशक में उनके पश्चात् आने वाले अङ्कों की कार्यस्थली से भिन्न स्थली की घटनाओं की चर्चा की है।

खम्भे और वृक्षों से अन्तर्हित रहकर दूसरे चरितनायकों के कार्यकलापों को देखते-सुनते हुए अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते रहने का कार्यक्रम गर्भाङ्क के समान ही विशेष रसवती योजना है।[1] यह योजना सभी अङ्कों में सफलता-पूर्वक विन्यस्त है।

कान्तिमती की वृत्तियों को इसमें मनोरथ-नाटक की संज्ञा दो बार दी गई है।

१. गर्भाङ्क से इसका यही अन्तर है कि गर्भाङ्क में नाटक के भीतर जो नाटक होता है, उसमें भूतकालिक घटना प्रत्यक्ष की जाती है और इसमें वर्त्तमान घटना ही प्रस्तुत होती है।

नायिका के मनोरथ की पूर्ति की योजना की विशेषता जिस कथा मे होती है, उसे मनोरथ-नाटक कहते है। चारुदत्त मे इसी प्रकार का अमृताङ्क-नाटक है।

नाटक के प्रेक्षक सदा से ही केवल कथावस्तु के प्रपञ्च मे ही अभिरुचि नही लेते रहे, अपितु स्थान-स्थान पर देश और काल का प्रसङ्ग आने पर प्रकृति और नगर की ऐश्वर्यशालिनी और सुमनोहरा विभूतियों की चारुता का प्रायश: गीति-शैली मे निबन्धन करते रहे। प्रस्तुत नाटक मे अनेक वर्णनो का समावेश हुआ है। यथा प्रथम अङ्क के पूर्व मिश्रविष्कम्भक के अन्त मे सन्ध्या का वर्णन, प्रथम अक के आरम्भ मे प्रात काल का, कुम्भघोण नगर की वारविलासिनियों का, राजवीथि पर नृत्य, सौध की ऊँचाई से देवालय, कावेरी, आदि. रथ का चलना, और तृतीय अङ्क में वर्षा, आराम-रामणीयक आदि वर्णन रसो के उद्दीपन के लिए प्रयुक्त हैं।

इनमें से अनेक वर्णन नायक-नायिका की भावी परिस्थिति के द्योतक हैं।[1] द्वितीय अङ्क मे नायक और नायिका के प्रथम मिलन के मनोभावो का साङ्गोपाङ्ग वर्णन कथावस्तु के प्रवाह को रोक कर प्रवर्तित है।

महाराज रंगमच पर घोडे पर सवार होकर आता है। प्राचीनकाल मे यह दृश्य नाटको में शास्त्रानुसार साकेतिक विधानों से अभिनीत होता रहा है। किन्तु इसमे कोई सन्देह नही कि रगमञ्च पर घटनाक्रम को प्रत्यक्ष और वास्तविक बनाने का महत्त्व समझने वाले सशक्त व्यवस्थापक योरप के समान ही भारत मे घोडे और रथ आदि को रगमच पर लाते रहे हैं।

प्रायश पात्र का रचमंच पर आना तब होता है, जब उसकी चर्चा कोई अन्य पात्र किसी प्रसग मे पहले कर लेता है। इस प्रकार पात्रो का आना स्वाभाविक हो जाता है, आकस्मिक नही।

छायातत्त्व

द्वितीय अंक मे नायिका नायक का चित्र देखकर हर्षोद्रेक प्रकट करती है। यह छायातत्त्व सफलता पूर्वक विनिवेशित है। राजा का हारमणि के प्रभाव से अदृश्य रहना भी छायातत्त्व है।

एकोक्ति

कवि की एकोक्तिनिष्ठा परिचेय है। तृतीय अक में वर्धन के विवाहोत्सव के लिए जाने पर नायक अकेले अपनी नायिका की चिन्तना मे उधेड-बुन करते हुए कहता है—

---

१. उदाहरण के लिए है—

> नदन् भ्रयो भृङ्ग. प्रतिकुसुममादाय मधुरम्।
> मरन्द प्रेयस्यै वितरति ततोऽयं तु पिबति॥

इसके पश्चात् नायक-नायिका के समागम की सुखानुभूति करता है—

इन्दीवराम्बुरुहतुङ्गकुलप्रवाल — रम्भाद्रुमस्तवकचाम्पकवीक्षणेन।
तस्या उदग्रप्रकृतिकोमलमङ्गमंगं स्मृत्वा मनोविकृतिमेतितरां कठोराम्॥

शैली

वैदर्भी रीति में सरलता के साथ सरसता का सफल मिश्रण चोक्कनाथ की विशेषता है। नाटक के पद्यों में अद्भुत गीतिमयता का सन्निवेश कवि ने किया है। सानुप्रास गीतिमयता का उदाहरण है—

सौन्दर्यसारसदनं दाडिमफलबीजपरिलसद्रदनं।
राकेन्दौ कृतकदनं जयतितरां वारसुभ्रुवां वदनम्॥ १·२३

अलिकुललसदलकान्ता कुवलयदलनीलमसृणनयनान्ता।
कंपा कुचभरतान्ता कांचनलतिकेव दृश्यते कान्ता॥ १·३०

राकेन्दुबिम्बवदनां कनकोज्ज्वलांगीमानीलकुन्तलभरान्तरलायताक्षीम्।
एनां विलोक्य हृदयं मम हृष्यतीव संमुह्यतीव सजतीव विषीदतीव॥१.३६

नायिका कान्तिमती नायक का चित्र देखकर कहती है—

ग्लपयति मम गात्रं सर्वतश्चन्द्रिकेयं
दलयति बत कर्णौ कोकिलानां निनादः।
मलयजपवनो सन्दीपयत्यङ्गमङ्गं
प्रहरति च पुनर्मां पातकी पंचबाणः॥ २·२५

नायक नायिका के विषय में कहता है।

गृहे वा सौधे वा पुनरपि स तु दृष्टिपदवी—
उपेयादेपेति प्रमदभरितं मे ननु मनः।
इदानीं तु प्रायः प्रशिथिलितमूलं विधिवशात्
समुत्कण्ठाभूम्नाभृशतरलमुद्वेगमयते ॥ २·२४

मन्दं गच्छति तिष्ठति क्षणमथ व्यावर्तयत्याननं
दीना पश्यति लोचनान्तरगतं बाष्पं निरुन्धे ततः।
तामेनां बत सुन्दरी मम कृते प्राप्तामिमां दुर्दशां।
पश्याम्येष कथं कठोरहृदयः किं कर्तुमीशेऽथवा॥ २·२५

विकसितकुवलयनयनां पुष्करशरदिन्दुबिम्बशोभिमुखीम्।
सततं हृदि निवसन्तीं पश्यन् कमलाक्षि विस्मरामि कथम्॥ २ २६

रस

कान्तिमतीशाहराजीय में अङ्गीरस शृङ्गार है। शृङ्गार को पुनः पुनः प्रोत्तेजित रूप में प्रायः सभी अंकों में सम्पूरित किया गया है। नायिका के नखशिख-वर्णन, उसके हावभाव, विलास और वियोग या पूर्वराग के संचारी भावों का समुदित चित्रण करने की गहरी अभिरुचि चोक्कनाथ की विशेषता है।

नायिका के मनोरथ की पूर्ति की योजना की विशेषता जिस कथा मे होती है, उसे मनोरथ-नाटक कहते हैं। चारुदत्त मे इसी प्रकार का अमृताङ्क-नाटक है।

नाटक के प्रेक्षक सदा से ही केवल कथावस्तु के प्रपञ्च मे ही अभिरुचि नही लेते रहे, अपितु स्थान-स्थान पर देश और काल का प्रसङ्ग आने पर प्रकृति और नगर की ऐश्वर्यशालिनी और सुमनोहरा विभूतियों की चारुता का प्रायशः गीति-शैली मे निबन्धन करते रहे। प्रस्तुत नाटक मे अनेक वर्णनो का समावेश हुआ है। यथा प्रथम अङ्क के पूर्व मिश्रविष्कम्भक के अन्त मे सन्ध्या का वर्णन, प्रथम अंक के आरम्भ मे प्रातःकाल का, कुम्भघोण नगर की वारविलासिनियो का, राजवीथि पर नृत्य, सौध की ऊँचाई से देवालय, कावेरी, आदि, रथ का चलना, और तृतीय अङ्क में वर्षा, आराम-रामणीयक आदि वर्णन रसो के उद्दीपन के लिए प्रयुक्त हैं।

इनमें से अनेक वर्णन नायक-नायिका की भावी परिस्थिति के द्योतक हैं।[1] द्वितीय अङ्क मे नायक और नायिका के प्रथम मिलन के मनोभावों का साङ्गोपाङ्ग वर्णन कथावस्तु के प्रवाह को रोक कर प्रवर्तित है।

महाराज रगमच पर घोड़े पर सवार होकर आता है। प्राचीनकाल मे यह दृश्य नाटकों मे शास्त्रानुसार साकेतिक विधानो से अभिनीत होता रहा है। किन्तु इसमे कोई सन्देह नही कि रंगमञ्च पर घटनाक्रम को प्रत्यक्ष और वास्तविक बनाने का महत्त्व समझने वाले सशक्त व्यवस्थापक योरप के समान ही भारत मे घोडे और रथ आदि को रगमच पर लाते रहे हैं।

प्रायश पात्र का रगमच पर आना तब होता है, जब उसकी चर्चा कोई अन्य पात्र किसी प्रसग मे पहले कर लेता है। इस प्रकार पात्रों का आना स्वाभाविक हो जाता है, आकस्मिक नही।

छायातत्त्व

द्वितीय अंक मे नायिका नायक का चित्र देखकर हर्षोद्रेक प्रकट करती है। यह छायातत्त्व सफलता पूर्वक विनिवेशित है। राजा का हारमणि के प्रभाव से अदृश्य रहना भी छायातत्त्व है।

एकोक्ति

कवि की एकोक्तिनिष्ठा परिचेय है। तृतीय अक में वर्धन के विवाहोत्सव के लिए जाने पर नायक अकेले अपनी नायिका की चिन्तना मे उधेड़-बुन करते हुए कहता है—

---

१. उदाहरण के लिए है—

नदन् भ्रमो भृङ्गः प्रतिकुसुममादाय मधुरम्।
मरन्द प्रेयस्यै वितरति ततोऽयं तु पिबति॥

इसके पश्चात् नायक-नायिका के समागम की सुखानुभूति करता है—

इन्दीवराम्बुरुहतुङ्गकुलप्रवाल — रम्भाद्रुमस्तवकचाम्पकवीक्षणेन।
तस्या उदग्रप्रकृतिकोमलमङ्गमंगं स्मृत्वा मनोविकृतिमेतितरां कठोराम्॥

शैली

वैदर्भी रीति में सरलता के साथ सरसता का सफल मिश्रण चोक्कनाथ की विशेषता है। नाटक के पद्यों में अद्भुत गीतिमयता का सन्निवेश कवि ने किया है। सानुप्रास गीतिमयता का उदाहरण है—

सौन्दर्यसारसदनं दाडिमफलबीजपरिलसद्रदनं।
राकेन्दौ कृतकदनं जयतितरां वारसुभ्रुवां वदनम्॥ १·२३

अलिकुलसदलकान्ता कुवलयदलनीलमसृणनयनान्ता।
कंपा कुचभरतान्ता कांचनलतिकेव दृश्यते कान्ता॥ १·३०

राकेन्दुबिम्बवदनां कनकोज्ज्वलांगीमानीलकुन्तलभरान्तरलायताक्षीम्।
एनां विलोक्य हृदयं मम हृप्यतीव संमुह्यतीव सजतीव विषीदतीव॥१.३६

नायिका कान्तिमती नायक का चित्र देखकर कहती है—

ग्लपयति मम गात्रं सर्वतश्चन्द्रिकेय
दलयति वत कर्णौ कोकिलानां निनादः।
मलयजपवनो सन्दीपयत्यङ्गमङ्गं
प्रहरति च पुनर्मां पातकी पंचबाणः॥ २·२५

नायक नायिका के विषय में कहता है।

गृहे वा सौधे वा पुनरपि स तु दृष्टिपदवी—
उपेयादेपेति प्रमदभरितं मे ननु मनः।
इदानीं तु प्रायः प्रशिथिलितमूलं विधिवशात्
समुत्कण्ठाभून्नाभृशतरलमुद्वेगमयते ॥ २·२४

मन्दं गच्छति तिष्ठति क्षणमथ व्यावर्तयत्याननं
दीना पश्यति लोचनान्तरगतं बाष्पं निरुन्धे ततः।
तामेनां वत सुन्दरी मम कृते प्राप्तामिमां दुर्दशां
पश्याम्येप कथं कठोरहृदयः किं कर्तुमीशेऽथवा॥ २·२५

विकसितकुवलयनयनां पुष्करशरदिन्दुबिम्बशोभिमुखीम्।
सततं हृदि निवसन्तीं पश्यन् कमलाक्षि विस्मरामि कथम्॥ २ २६

रस

कान्तिमतीशाहराजीय में अङ्गीरस शृङ्गार है। शृङ्गार को पुनः पुनः प्रोत्तेजित रूप में प्रायः सभी अंकों में सम्पूरित किया गया है। नायिका के नखशिख-वर्णन, उसके हावभाव, विलास और वियोग या पूर्वराग के संचारी भावों का समुदित चित्रण करने की गहरी अभिरुचि चोक्कनाथ की विशेषता है।

रस-निर्भरता के लिए चोक्कनाथ ने नायिका के उत्स्वप्नायित का प्रकरण समाविष्ट किया है। नायिका कहती है—

महाराअ, भुअजुअलेन मां परिस्सजेहि।

भाषा

नायकों की भाषा नियमानुसार संस्कृत और प्राकृत होने पर भी वे अपने गम्भीर वक्तव्यों को कहीं-कहीं संस्कृत में व्यक्त करते हैं। यथा, द्वितीय अङ्क में नायिका नायक से वियुक्त होने के पहले कहती है—

शशाङ्कः स्वच्छन्दं ग्लपयतु करव्याजदहनै-
रसकोचं क्रूरो मलयपवनोऽपि व्यथयतु।
शरौघं कन्दर्पः सपदि विकिरन् मां प्रहरतां
मया नूनं धैर्यं दृढतरमवष्टब्धमधुना॥ २.२०

कहीं-कहीं कवि ने अनुकरणात्मक शब्दों का प्रयोग किया है। यथा, तृतीय अङ्क के वर्षा-वर्णन में झलझल, चटचट आदि। इस वर्णन की ध्वनिलता इस प्रकार प्रतानित है कि उससे वर्षा का रूप प्रत्यक्ष होता है, मानो अक्षर ही बूँद हों।

नाटक में एक विरल प्रयोग है कि चतुर्थ अङ्क में आद्यन्त प्राकृत भाषा में संवाद है।[1] अपवाद रूप से नायिका के द्वारा लिखा हुआ संस्कृत भाषा में पत्र है, जिसमें दो पद्य हैं। इनके अतिरिक्त दो संस्कृत के पद्य नायिका द्वारा कमलाम्बिका की स्तुति हैं।

दोष

यौवन के प्रमाद में लेखक को यह लिखना अच्छा लगा कि—

तत्कालस्पृहणीयपार्श्वनखविन्यासैर्यथावत्स्थिता— ।
मालिंगन् जनकात्मजां रघुपतिः पुष्णातु वः कौतुकम्॥

यह नान्दी है, जिसका लेखक सम्भवतः नाटक का कवि नहीं होता था, अपितु सूत्रधार स्वयं उसका प्रणयन करता था। रघुपति का यह शृङ्गारी रूप प्रस्तुत करना शैलूषोचित ही कहा जा सकता है। नान्दी के दूसरे पद्य शिव की स्तुति में भी सूत्रधार पार्वती के शृङ्गारी रूप की ओर ध्यान आकर्षित करता है। वह मध्यार्जुनेश के रूप को शृङ्गारित देखता है—

बृहत्कुचनायिकावल्लभस्य भगवतो मध्यार्जुनेशस्य। इत्यादि।

रंगमंच पर किसी को सोते हुए दिखाना वर्जित है। इस नाटक के तृतीय अङ्क में कहा गया है—

ततः प्रविशत्युत्स्वप्नायमाना सुलोचनोत्सगे शयाना कान्तिमती।

१. भास के स्वप्नवासवदत्त का द्वितीय और तृतीय अङ्क सर्वथा प्राकृत भाषा में हैं।

इसी प्रकार रंगपीठ पर आलिंगन का शास्त्रीय निषेध कवियों को अमान्य था। इसके तीसरे अङ्क में नायक नायिका का आलिंगन करता है। नायिका इसके पश्चात् कहती है—

जलमध्यगतमिवात्मानं मन्ये।

प्रस्तावना-लेखक

इस नाटक की प्रस्तावना में स्पष्ट प्रतीत होता है कि नाटकों की प्रस्तावना का अधिकांश सूत्रधार की लेखिनी से प्रसूत होता था। यथा, सूत्रधार का कहना है—
कुम्भकोणनगरवासिने चित्रवेषाय पत्रिकां प्राहिणवं—सखे, कान्तिमतीशाहराजीयं नाम नाटकमभिनेतुं त्वमायाहि शीघ्रं परिजनैः सहेति।

पारिपार्श्विक चित्रवेष की प्रशंसा करता है—

अत्यल्पेन च रूपकेण जनयत्याश्चर्यमन्यादृशं
नानावेषपरिष्कृतैरभिनयैः सोऽयं नटाग्रेसरः।
सप्रत्यद्भुतसंविधान मधुरेणानेन सामाजिकान्
एतान् रंजयतीति भाव भणितव्यं तावदस्त्यत्र किम्॥

सूत्रधार फिर आगे कहता है—

उत्तरमपि तेन प्रेषितम्। स्यादेतदेव सन्ध्यासमये सहपरिजनैः समागच्छामि, किन्तु विदूषककविराक्षसस्य दैवज्ञनागज्योतिषिकस्य च वेषपरिग्रहाय सज्जोभवतु भवानिति।

उपर्युक्त बातचीत से यह असन्दिग्ध है कि इस नाटक की प्रस्तावना चोक्कनाथ-प्रणीत नही है, अपितु सूत्रधार के द्वारा लिखी गई है।

कान्तिमतीशाहराजीय उच्चकोटि का गीति-प्रधान (Lyrical) नाटक है। अनेक दृष्टियों से इसमें राजशेखर की कर्पूरमञ्जरी की विशेषतायें चमत्कारपूर्ण सीमा तक प्रतिफलित हुई हैं।

सेवन्तिकापरिणय

सेवन्तिकापरिणय[1] की प्रस्तावना से प्रतीत होता है कि १७ वीं शताब्दी का प्रेक्षक नवरूपकों में विशेष रुचि रखता था। नाना देशों से सुब्रह्मण्य तीर्थदर्शन के लिए आये हुए लोगों ने सूत्रधार से कहा—

तेन त्वं नवरूपकेण बहुधा विस्मापयान्मादृशान्

साधारण नवीन कवियों की उपलब्धियों के विषय में लोगों को सन्देह था। लोकोक्ति बन चुकी थी नीलकण्ठ की यह आलोचना—

---

१. इसका प्रकाशन ओ० रि० इ० संस्कृत सीरीज विश्वविद्यालय, मैसूर से १९५८ ई० में हो चुका है।

करणौं निष्करुणां दहन्ति कवयोऽकस्मादिदानींतनाः

यह कहने वाले पारिपार्श्विक को सूत्रधार ने समझाया कि एक अद्‌भुतनाटक मुझे मिला है। राजा वसव को यह नाटक उसके लेखक चोक्कनाथ ने दिया। राजा ने उसे पुरस्कार दिया और सूत्रधार से कहा—

पञ्चषदिवसैरेतद्रूपकमभ्यस्य सानुबन्धिजनः।
अभिनीयभरतदेशिक नन्दय नानाकवीन्द्रसन्दोहम्॥ ८

इस प्रस्तावना से स्पष्ट प्रतीत होता है कि (१) इसका लेखक सूत्रधार था। (२) इसकी प्रति लेखक ने वसव भूपाल को उपायन रूप मे समर्पित की थी। (३) नाटक-मण्डली पाँच दिनो मे ही अभिनय के लिए सज्जा कर लेती थी। नीचे लिखे पद्य से प्रतीत होता है कि पुरुष स्त्रियो की भूमिका मे रंगपीठ पर आते थे—

गृह्णाति पुत्रो मम नेतृभूमिकां सेवन्तिकायाश्च पितृव्यनन्दन.।
तस्याः सखीनां गृहिणी सहोदराः कौषीतकस्य त्वमहं महामतेः॥१०.

कथावस्तु

युद्ध में गोदवर्मा ने केरलराज मित्रवर्मा को बन्दी बना लिया। उनके परिवार के स्त्री और लडको को मूकाम्बिका नगर मे लाकर सुरक्षित किया गया। मूकाम्बिका नगर केलदि के राजा वसवभूपाल के अधीन था। वह स्वय मूकाम्बिका नगर गया और उन लोगो के लिए भवनादि की व्यवस्था उसने की। मूकाम्बिका नगर मे राज-प्रासाद के सामने एक नया भवन ही उनके लिए बनाया गया। राजा ने देखा कि एक कुमारी-सौंदर्यराशि सामने के भवन पर विराज रही है। उसने कहा—

प्रतिसौधाग्रमारुह्य प्रत्यङ्ग हरिणीदृशः।
भूयो भूयः समुद्वीक्ष्य चक्षुष्मत्तां कृतार्थये॥

नायक विदूषक से सेवन्तिका नामक इस केरल-राजकुमारी के प्रति अपनी आसक्ति का वर्णन कर ही रहा था कि उसे कन्या की माता की मूकाम्बिका से प्रार्थना सुनाई पडी—

मूकाम्बिके मम सुतां तव चरणप्रान्तनिपतितामेताम्।
अनुरूपवल्लभेन क्षिप्र घटयस्व सार्वभौमेन॥ १·५२

वसव की पत्नी इस बीच महाराज से मिलने आई। उसने सुना की राजा विदूषक से नीचे लिखे पद्य के द्वारा अपनी नई प्रेयसी की वर्णना कर रहा है—

कुम्भोन्नतस्तनभरा नतमध्यभागा राकानिशाकरनिराकरणोद्यतास्या।
दृष्टैव मे नयनयोर्मुदमातनोति सेवन्तिका कुसुमवेष्टितवेणिकेयम्॥ १·५६

देवी का माथा ठनका कि यह कौन सेवन्तिका सपत्नी पदारोहण के लिए आ गई। विदूषक ने कहा कि सेवन्तिका पुष्प है, नायिका नही।

सेवन्तिका वसव को पतिरूप मे पाने के लिए वन में प्रकट हुई। कालिका देवी से

प्रार्थना करने के लिए पैदल ही प्रतिदिन जाने लगी। एक दिन पानी बरसने के कारण अपनी सखी सारङ्गिका और मन्दारिका के साथ उसे रात में काली के मन्दिर में ही रह जाना पड़ा। थोड़ी रात बीतने पर निषाद उसका अपहरण कर ले गये। देवालय के पुजारी ने जाकर यह सब प्रणयी राजा को बताया। राजा प्रजवी घोड़े पर वहाँ गया। राजा ने उसे बचा लिया। इस स्थिति में उन दोनों का प्रेम और बढ़ा। राजा ने अपना विचार व्यक्त किया—

मयीयमनुरक्ताहमस्या वश्यस्तथापि तु।
सस्यपाक इवात्रापि समयः कोऽपि साधकः॥२·१६

नायिका उसकी अनुमति लेकर चलती बनी। उसे वन्य प्रकृति में अन्य नायिकादि प्रणय-प्रवृत्त दिखाई पड़े। यथा,

छायां विधाय सपदि स्तवकैरनेकैराच्छिद्यनूतनरसालतरुप्रवालम्।
चंचूपुटे परभृतो विनिधाय निद्रा-भङ्गं प्रतीक्ष्य निकटे वसति प्रियायाः॥२·२२

उसे सारा वन सेवन्तिकामय दिखाई देने लगा—

पश्यामि तां प्रतिमहीरुहमानतांगीमत्युन्नतस्तनभरावनतावलग्नाम्।
मन्ये तदद्य मदनो विदधेऽनुतापात् सेवन्तिकामयमिमं विपिनान्तदेशम्॥२.२४

नायक का मन दूसरी ओर करने के लिए एक अद्भुत घटना घटी। सेनापति ने निषादाक्रमण में एक स्थपति को पकड़ा, जो अदृश्य होकर घोड़े पर भाग रहा था। पकड़े जाने पर उसने एक मूलिका नायक को दी, जिसको हाथ में रखने वाला व्यक्ति अदृश्य हो जाता था। उसने बताया कि गोदवर्मा ने मित्रवर्मा से कन्या की याचना की थी। गोदवर्मा का उसने तिरस्कार किया। फिर तो गोदवर्मा ने युद्ध में उसे बन्दी बनाया और हम लोगों को नियुक्त किया कि राजकन्या को आपके आश्रय में पकड़ लायें।

विदूषक ने नायक को उपाय बताया कि सेनापति को भेजकर नायिका के पिता मित्रवर्मा को मुक्त करायें। वे उपकृत होकर और अपनी कन्या का आप के प्रति प्रेम देखकर उसे आपको पत्नी बनने के लिए दे देंगे। ज्योतिषी ने ग्रहगणना की कि केरल-राजकन्या आपकी होकर रहेगी।

नायिका ने नायक से मिलने का एक दूसरा अवसर पाया। उसने कालिका-मन्दिर में सहस्र ब्राह्मणों को भोजन कराने के पश्चात् काली का आशीर्वाद पाने की योजना बनाई। राजा भी उस दिन मृगया के बहाने जंगल में चला गया। विदूषक को सहेजा गया कि आशीर्वाद पाने के अवसर पर मृगया से लौटते हुए नायक को वहाँ लेकर पहुँचो। विदूषक के साथ यथासमय वहाँ पहुँचकर लतान्तरित होकर सखियों सहित नायिका की प्रवृत्ति देखने लगे। उसने सपने में कहा—

महाभाग, दृढ मा परिष्वजस्व।

नायिका की उत्सुकता देखकर नायक विदूषक के साथ उसके निकट पहुंचा। थोडी देर मे नायक और नायिका को अकेला छोडकर सभी चलते बने। नायक ने नायिका से कहा--

ममान्तिके सम्प्रति याचितं त्वया पयोधरालिंगनमङ्गनामणे।
अवश्यदेयं खलु तत्समागतं भवेत्प्रतिज्ञा विफला ममान्यथा ॥३.३१

नायिका ने कहा कि यह तो उत्स्वप्नायित था। उसने अंकापतित नायिका की इच्छा यह कहते हुए पूरी की—

लज्जासरसि निमग्नं वदनाम्बुजमेतदुन्नमय का ते
श्रमजलदूषितमलके मृगमदतिलकं समीकरोम्यधुना ॥३.३३

(इति चिबुकमुन्नमय्याधरचुम्बनमभिनयति)

कामक्रीडा के समारम्भ मे निमज्जित नायक को विदूषक की नई विपत्ति उकड़ा देती है। विदूषक पेड से गिर कर मूर्छित है—यह सुनकर सैकड़ो लोग वहाँ पहुंच गये। नायिका की स्थिति लज्जास्पद थी। नायक ने निषाद-स्थपति की दी हुई मूलिका से उसे शरीरतः अदृश्य बना कर उसकी रक्षा कर ली। उसी समय मित्रवर्मा का पत्र मिला कि मुझे चित्रवर्मा नामक सामन्त ने छुडा दिया है। मै पुनः राजा बन गया हूँ। आप मेरा कुटुम्ब मेरे पास भेज दें।

नायिका की एक सखी ने उसका चित्र राजा के पास विदूषक के हाथों भेजने के लिए दिया और उससे राजा का चित्र नायिका के लिए प्राप्त कराने के लिए कहा।

नायिका अपनी सखी के साथ अपने भवन के माधवी-मण्डप मे पहुंच गई। वहाँ कथावती के द्वारा उसे नायक का चित्र मिला, जिसे देखकर प्रेमपरिताप से उसके आँसू झरने लगे। अन्त मे पिता की इच्छा के अनुसार नायिका केरल चली गई।

नायिका नायक से मिलने के लिए उत्कण्ठित थी, तभी उसे मन्दारिका नामक सखी से विदित हुआ कि मेरा विवाह मेरे पिता को बन्दीगृह से छुड़ाने वाले चित्रवर्मा से कल ही सम्पन्न कराने की योजना मेरे पिता कार्यान्वित करना चाहते हैं। नायिका ने निर्णय लिया—

निराशाहं प्राणानहह विजहाम्यद्य नियतम् ॥ ४.५

अपने पिता का विचार जानने के लिए नायिका ने मूलिका देकर मन्दारिका को भेजा, जहाँ उसके प्रभाव से अदृश्य रहकर वह सब कुछ सुनकर बताये। नायिका ने नायक को पत्र भेजा कि इन विषम परिस्थितियो मे मर ही जाऊँगी। नायिका को समाचार मिला कि चित्रवर्मा कल ही बलात् विवाह कर लेना चाहता है। नायिका आत्महत्या ही अगला काम निश्चय करके विलाप करने लगी। उसे सहारा था, उन शुभ शकुनो का, जिनसे संकेत मिलता था कि भविष्य उज्ज्वल है और अभीष्ट की प्राप्ति होने वाली है।

नायिका से प्रेक्षावती नामक ईक्षणिका ने पूछने पर बताया ।

वसवेन्द्रमहीपालो भर्ता ते नात्र संशयः ॥ ४·१४

आपने जो चित्र नायक के लिए भिजवाया, उसे लेकर विदूषक जा रहा था तो मार्ग में प्रमत्त हाथी से डर कर चित्र को फेंक कर निकटवर्ती घर में जा घुसा । चित्र को हाथी ने सूंड में पकड़ा और राजप्रासाद पर फेंक दिया । वसव राजा की पत्नी ने उसे पा लिया । उन्होंने राजा की पूरी भर्त्सना की । इससे और तुम्हारे वियोग से वसवराज तुम्हारा नायक अधमरा पड़ा है । मूलिका-चूर्ण के प्रभाव से नायिका को प्रेक्षावती ने कालिकोद्यान के लतामन्दिर मे पड़े हुए नायक का दर्शन समीपस्थ सा कराकर समाश्वस्त किया कि 'भविष्यति ने मनोरथः' ।

अन्तिम अङ्क में नायिका को दूरस्थ प्रियतम से मिलने का संविधान है, जिसके द्वारा वह पिता के उपकारी चित्रवर्मा के चङ्गुल से बच निकली ।

मित्रवर्मा वसवभूपाल के उपकारों से कृतज्ञ होकर अपने कोश से भूषण-वसन-चित्रवस्तु-भरित मंजूषायें भेज रहा था । एक मंजूषा में नायिका ने अपनी सखी सारंगिका के साथ अपने को बन्द करा लिया और वसवभूपाल के पास जा पहुंची । भेद खुला और मित्रवर्मा को ज्ञात हो गया कि नायिका अपने अभीष्ट प्रियतम के पास जा पहुंची है । उसने चित्रवर्मा को वस्तुस्थिति लिख भेजी कि अब तो पाँच-छः दिनों में स्वयं वसव के पास जाकर उसे अपनी कन्या दे दूँगा । चित्रवर्मा अपनी राजधानी लौट गया ।

हाथी ने नायिका का जो चित्र फेंका और महारानी को मिला, उसे उन्होंने कोशगृह में रखवाया पर विदूषक जी उसे धूर्ततापूर्वक उठा ले गये । राजा के पास महारानी पहुंची और थोडी दूर से ही राजा को बड़बड़ाते सुना—

नीता सरोजवदना नियतेऽतिदूरं

उसने अपने पति के सेवन्तिका के वियोग के कारण उत्पन्न घोर मदनातङ्क को समझ लिया । राजा को विदूषक ने सेवन्तिका नायिका का चित्र दिया तो राजा ने अपना मनोभाव व्यक्त किया—

मन्दस्मिताङ्कुरमनोहरगण्डभागा वक्षोजभारवहनासहनम्रमध्या ।
तत्तादृशेन कुटिलेन दृगञ्चलेन चित्रस्थितापि सुदती हरते मनो मे ॥५·६

विदूषक ने कहा कि रानी आती ही होगी । चित्र को कहीं छिपा आऊँ ।

इसी अवसर पर केरल महाराज मित्रवर्मा की भेजी हुई मंजूषायें आईं । रानी भी क्या-क्या मंजूषा मे है—यह लतान्तरित रहकर ही देखती रही । उससे अन्य वस्तुओं के साथ निकली उसकी सपत्नी बनने वाली नायिका और उसकी सखी सारंगिका । राजा प्रसन्न हुआ रानी विषण्ण हुई । तभी मित्रवर्मा का पत्र आया कि वस्तुस्थिति जानकर मुझे प्रसन्नता हुई है कि सेवन्तिका ने आपको वरण किया है । उसने लिखा था—

नायिका की उत्सुकता देखकर नायक विदूषक के साथ उसके निकट पहुँचा। थोड़ी देर में नायक और नायिका को अकेला छोड़कर सभी चलते बने। नायक ने नायिका से कहा--

ममान्तिके सम्प्रति याचितं त्वया पयोधरालिंगनमङ्गनामणे।
अवश्यदेयं खलु तत्समागतं भवेत्प्रतिज्ञा विफला ममान्यथा ॥३·३१

नायिका ने कहा कि यह तो उत्स्वप्नायित था। उसने अंकापतित नायिका की इच्छा यह कहते हुए पूरी की—

लज्जासरसि निमग्नं वदनाम्बुजमेतदुन्नमय का ते
श्रमजलदूषितमलके मृगमदतिलकं समीकरोम्यधुना ॥३·३३

(इति चिबुकमुन्नमयन्नधरचुम्बनमभिनयति)

कामक्रीडा के समारम्भ में निमज्जित नायक को विदूषक की नई विपत्ति उकसा देती है। विदूषक पेड़ से गिर कर मूर्छित है—यह सुनकर सैकड़ों लोग वहाँ पहुंच गये। नायिका की स्थिति लज्जास्पद थी। नायक ने निषाद-स्थपति की दी हुई मूलिका से उसे शरीरतः अदृश्य बना कर उसकी रक्षा कर ली। उसी समय मित्रवर्मा का पत्र मिला कि मुझे चित्रवर्मा नामक सामन्त ने छुड़ा दिया है। मैं पुनः राजा बन गया हूँ। आप मेरा कुटुम्ब मेरे पास भेज दें।

नायिका की एक सखी ने उसका चित्र राजा के पास विदूषक के हाथों भेजने के लिए दिया और उससे राजा का चित्र नायिका के लिए प्राप्त कराने के लिए कहा।

नायिका अपनी सखी के साथ अपने भवन के माधवी-मण्डप में पहुँच गई। वहाँ कथावती के द्वारा उसे नायक का चित्र मिला, जिसे देखकर प्रेमपरिताप से उसके आँसू झरने लगे। अन्त में पिता की इच्छा के अनुसार नायिका केरल चली गई।

नायिका नायक से मिलने के लिए उत्कण्ठित थी, तभी उसे मन्दारिका नामक सखी से विदित हुआ कि मेरा विवाह मेरे पिता को वन्दीगृह से छुड़ाने वाले चित्रवर्मा से बल ही सम्पन्न कराने की योजना मेरे पिता कार्यान्वित करना चाहते हैं। नायिका ने निर्णय लिया—

निराशाह प्राणानहह विजहाम्यद्य नियतम् ॥ ४·५

अपने पिता का विचार जानने के लिए नायिका ने मूलिका देकर मन्दारिका को भेजा, जहाँ उसके प्रभाव से अदृश्य रहकर वह सब कुछ सुनकर बताये। नायिका ने नायक को पत्र भेजा कि इन विषम परिस्थितियों में मर ही जाऊँगी। नायिका को समाचार मिला कि चित्रवर्मा बल ही बलात् विवाह कर लेना चाहता है। नायिका आत्महत्या ही अगला काम निश्चय करके विलाप करने लगी। उसे सहारा था, उन शुभ शकुनों का, जिनसे संकेत मिलता था कि भविष्य उज्ज्वल है और अभीष्ट की प्राप्ति होने वाली है।

नायिका से प्रेक्षावती नामक ईक्षणिका ने पूछने पर बताया।

वसवेन्द्रमहीपालो भर्ता ते नात्र संशयः॥ ४·१४

आपने जो चित्र नायक के लिए भिजवाया, उसे लेकर विदूषक जा रहा था तो मार्ग में प्रमत्त हाथी से डर कर चित्र को फेंक कर निकटवर्ती घर में जा घुसा। चित्र को हाथी ने सूंड में पकड़ा और राजप्रासाद पर फेंक दिया। वसव राजा की पत्नी ने उसे पा लिया। उन्होंने राजा की पूरी भर्त्सना की। इससे और तुम्हारे वियोग से वसवराज तुम्हारा नायक अधमरा पड़ा है। मूलिका-चूर्ण के प्रभाव से नायिका को प्रेक्षावती ने कान्तिकोद्यान के लतामन्दिर में पड़े हुए नायक का दर्शन समीपस्थ सा कराकर समाश्वस्त किया कि 'भविष्यति ते मनोरथः'।

अन्तिम अङ्क में नायिका को दूरस्थ प्रियतम से मिलने का संविधान है, जिसके द्वारा वह पिता के उपकारी चित्रवर्मा के चङ्गुल से बच निकली।

मित्रवर्मा वसवभूपाल के उपकारों से कृतज्ञ होकर अपने कोश से भूषण-वसन-चित्रवस्तु-भरित मंजूषायें भेज रहा था। एक मंजूषा में नायिका ने अपनी सखी सारंगिका के साथ अपने को बन्द करा लिया और वसवभूपाल के पास जा पहुँची। भेद खुला और मित्रवर्मा को ज्ञात हो गया कि नायिका अपने अभीष्ट प्रियतम के पास जा पहुँची है। उसने चित्रवर्मा को वस्तुस्थिति लिख भेजी कि अब तो पाँच-छः दिनों में स्वयं वसव के पास जाकर उसे अपनी कन्या दे दूँगा। चित्रवर्मा अपनी राजधानी लौट गया।

हाथी ने नायिका का जो चित्र फेंका और महारानी को मिला, उसे उन्होंने कोशगृह में रखवाया पर विदूषक जी उसे धूर्ततापूर्वक उठा ले गये। राजा के पास महारानी पहुँची और थोड़ी दूर से ही राजा को बड़बड़ाते सुना—

नीता सरोजवदना नियतेऽतिदूरं

उसने अपने पति के सेवन्तिका के वियोग के कारण उत्पन्न घोर मदनातङ्क को समझ लिया। राजा को विदूषक ने सेवन्तिका नायिका का चित्र दिया तो राजा ने अपना मनोभाव व्यक्त किया—

मन्दस्मिताङ्कुरमनोहरगण्डभागा वक्षोजभारवहनासहनम्रमध्या।
तत्तादृशेन कुटिलेन दृगञ्चलेन चित्रस्थितापि सुदती हरते मनो मे॥५·६

विदूषक ने कहा कि रानी आती ही होगी। चित्र को कहीं छिपा आऊँ।

इसी अवसर पर केरल महाराज मित्रवर्मा की भेजी हुई मंजूषायें आईं। रानी भी क्या-क्या मंजूषा में है—यह लतान्तरित रहकर ही देखती रही। उससे अन्य वस्तुओं के साथ निकली उसकी सपत्नी बनने वाली नायिका और उसकी सखी सारंगिका। राजा प्रसन्न हुआ रानी विषण्ण हुई। तभी मित्रवर्मा का पत्र आया कि वस्तुस्थिति जानकर मुझे प्रसन्नता हुई है कि सेवन्तिका ने आपको वरण किया है। उसने लिखा था—

निजकन्यकानुरागं जानन्नपि नैवमन्यथाकरवम् ।
मन्दारिकामुखेन ज्ञात्वा सकलं ततोऽभिनन्दयमहम् ॥

महारानी आवेश वश लतान्तरित न रह सकी । वह आ झपटी उसे देखकर बनी सकपका गये । वह बन्दी सेवन्तिका को लेकर चलती बनी ।

मित्रवर्मा यथासमय आ पहुँचा । आशातीत ही था कि हर्षपूर्वक महारानी स्वयं वैवाहिक भूषण-भूषित सेवन्तिका को लेकर अपनी सपत्नी बनाने के लिए आई । तब राजा ने कहा—

सेवन्तिकामिदानीं प्रेमातिशयेन लालयन्तीयम् ।
नलिनीं विकासयन्ती ज्योत्स्नेव विभाति मे देवी ।

स्वागतं देव्यै ।

वाल्मीकि की पद्धति पर चोक्क ने उनका विवाह नीचे के मन्त्र द्वारा करा दिया—

वसवेन्द्र महीपाल भवद्वंशाभिवृद्धये ।
प्रतीच्छ चैनां भद्रं ते पाणिं गृह्णीष्व पाणिना ॥

सेवन्तिका परिणय का कथा प्रपञ्च अनेक संविधानों की समानता के कारण शाहजीकान्तिमतीय नाटक के समान है, किन्तु अनेक नई उत्कर्षमयी प्रवृत्तियों के कारण यह नाटक कान्तिमती-शाहराजीय से उच्चतर प्रतीत होता है ।

नाट्यशिल्प

रंगमञ्च पर कुछ काम होते ही रहना चाहिए । ऐसा काम हास्योत्पादन के लिए यदि हो तो घटनाक्रम से असम्बद्ध भी रखा जा सकता है—यह चोक्कनाथ की रीति है । प्रथम अङ्क में इसी उद्देश्य से विदूषक की टाँग में मोच होना दिखाकर उसे रंगमंच पर चलाया जा रहा है लाठी का सहारा लिए हुए—

सञ्जातभंगचरणो गाढाघातोपघूर्णितकपोलः ।
प्रथिकोच्छूनपिचण्डो यष्टिं परिगृह्य विशटमायाति ॥ १·२८

अङ्कों के भीतर ही कोरे सूच्य वृत्त सफलता-पूर्वक निरोये गये हैं । द्वितीय अङ्क में सेनापति के द्वारा स्वर्पाज का वृत्तान्त सुनाना इस प्रकार सूच्य है ।

आलिंगन और अधर-चुम्बन अभिनय नहीं है—इस परवर्ती नियम का पालन इस नाटक में नहीं मिलता । तीसरे अङ्क में नायिका को गोद में लेकर नायक उसका अधर-चुम्बन रंगपीठ पर करता है । उस समय नायिका साह्लाद गाती है—

तुहिनद्युतिपर्यङ्के जनयरपतरे सुधारसाह्लादे ।
कर्पूरद्रवलिप्ता शयितेदानीमहमस्मि मन्ये ॥ ३·३६

नाटकों में विशिष्ट संविधानों का महत्त्व होता है । चोक्कनाथ ने अपनी दोनों

कृतियों में मनोरथ-नाटक नाम देकर प्रणयानुसन्धानात्मक संविधान को रखा है।[1] इसमें मनोरथ नाटक के अतिरिक्त अनर्थ-नाटक की भी चर्चा है।[2]

इस नाटक में सेवन्तिका का राजा के नाम पत्र एकोक्ति (Soliloquy) के रूप में प्रस्तुत है। यथा,

> अतिसुकृतशालिनीनां समागमस्ते घटते प्रमदानाम्।
> मम मन्द भागिन्या वल्लभ सोऽद्य दुर्लभो जातः॥
> मदनशर निकरदहनज्वालाहुतिजनितव्रणकिणस्थगितम्।
> विकृतं मुक्त्वा गात्रम् अन्यं गृह्णामि कीर्तिमयम्॥४.८

पंचम अङ्क का आरम्भ वसव की एकोक्ति से होता है, जब वह निष्कुट में अकेले रह कर गाता है।

छायातत्त्व

नायक का चित्र देखकर नायिका कहती है—

> लोकान्तरगतां मां वल्लभ श्रुत्वा दुर्लभसमीहाम्।
> मा भवतु तव विषादो जगति शतं सन्ति मादृशाः प्रमदाः॥४.१०

नायिका उस चित्र के पैर पर गिर पड़ी।

इसमें चित्रगत नायक सशरीर नायक ही प्रतीयमान है। यही छायातत्त्व है। पाँचवें अङ्क में नायिका का चित्र ऐसा ही प्रभाव उत्पन्न करता है।

छायातत्त्व का अद्भुत निदर्शन है नायिका का दूरस्थ नायक को मूलिका-चूर्ण के प्रभाव से देखना और कहना—

'अतिभूमि गताम् उत्कण्ठामपनेतुं महाराजं दृढं परिष्वजिष्ये'

(इति बाहू प्रसारयति)

तब तो सभी हँसने लगे। इसके द्वारा तिलस्मी कार्यकलाप सम्भावित है। नायिका ने इस प्रकरण को यथार्थ समझा था।[3]

नाट्यधर्मी

नाट्यधर्मी तत्त्वों का इस नाटक में उत्कर्ष है। सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है प्रेक्षावती का नीचे लिखा कार्य कलाप—

> प्रदर्शयामि प्रतिभामहिम्ना चित्रं चरित्रं चिरकाललब्धम्।
> विलोक्य मोदस्व विलासिनि त्वं विश्वासमस्यां विदधासि येन॥ ४.१७

---

१. अस्माकं मनोरथनाटकस्येदानीमेव निर्वहणं जातम्। चतुर्थ अंक में।

२. हन्त किमप्यनर्थनाटकमभिनेतुमुपक्रमते।
प्रस्तावना खल्वेषा अनर्थनाटकस्य। चतुर्थ अंक में।

३. नायिका ने इस दृश्य के विषय में कहा है—
महाराजमुखचन्द्रसंदर्शनपरवशाया मम यथार्थमेतदिति स्फुरितम्।

उसने तैल-मिश्रित चूर्ण से नायिका की हथेली मल दी। फिर तो चलिनी जैसी सछिद्र हथेली से उसने गणेश को देखा। थोडी देर में उसे सुब्रह्मण्यपुर दिखाई दिया और अन्त में दूरस्थ नायक समीपस्थ सा हो गया।

शैली

सरलतम पदावली से विभूषित चोक्क की शैली छन्दोवैचित्र्य के द्वारा नर्तनमयी कही जा सकती है। यथा,

कुप्यतु दृप्यतु वा सा कुवलयदलदीर्घनयनायाः।
अस्यास्तनगिरिदुर्गे चेतोहस्ती स्थितो वशं नैति ॥२.२७

और भी—

वेष्टितांगुलिकराम्बुजमेषा विस्मिता निदधती चिबुकाग्रे।
निश्चलभ्रूवदनं च दधाना भाति चित्रलिखितेव नतांगी॥ ३.१८

कहीं-कहीं लोकोक्तियों का प्रभविष्णु प्रयोग है। यथा,

वृक्षमूलाश्रयेण वृष्टिपरिहारं मन्यसे। पंचम अङ्क में।

रस

हास्यरस उत्पन्न करने की उदरंभर भोंडी विधि के अतिरिक्त विदूषक बातें बनाता है। यथा,

सेवन्तिका निषादा रजनीमध्ये गृहीत्वा गता इति।
श्रुत्वा तान् विनिर्जित्य समागतोऽहमिमां निवर्तयितुम् ॥२.६

उसने हाथ में टूटी-फूटी लाठी ले रखी थी, जिसकी ओर लक्ष्य करके सारङ्गिका ने कहा—

प्रत्यर्थि विजयसाधनं प्रहरणं गृहीतं भवता।

भले ही महामति ज्योतिषी को रगपीठ पर लाकर भावी सूचनायें देकर कार्यदृष्टि समुत्पन्न की गई है, पर उसका वास्तविक उपयोग है हास्य उत्पन्न कराने में। यथा विदूषक का उससे कहना कि तुम्हारी भविष्यवाणी ठीक हुई तो तुम्हारा कनकाभिषेक होगा, अन्यथा जीभ काट ली जायेगी। उसने स्पष्टीकरण दिया—

एते ज्यौतिषकाः किमपि कार्यमुद्दिश्य पृष्टाः किंचित्कालमंगुलीगणनं कृत्वा तात्कालिकलग्ने सत्कारिपुस्तिष्ठति। सप्तमस्थानस्थितः शनिः तं प्रेक्षते। अतो विलम्बात् कार्यसिद्धिर्भविष्यति, प्रथमं सन्दिग्धमिव भणन्ति। ...आयु प्रश्ने यदि चिरं जीविष्यति ततो मां बहु मानिष्यति, अन्यथा मृत एष कं वा किं प्रक्ष्यति, इति चिन्तयित्वा सर्वमपि जनं शतायुस्त्वमिति भणन्ति। अपि च गर्भप्रश्ने तनयो जनेष्यतीति जनकसविधे प्रतिजानन्ति, जननीसविधे कन्यकेति। एतादृशं सहस्रं वर्तते। वृथाकण्ठशोषेण किम्।

अद्‌भुत रस का विनिवेश स्थपति की घटना द्वारा किया गया है। यथा,

खलीनाधीनसंचारो दृश्यते तुरगो यथा।
विनैव पुरुषं तद्वत् दृष्टः कोऽपि तुरंगमः ॥२.३१

शृङ्गार रस अंगी है, जिसकी निष्पत्ति के लिए आलम्बन-विभाव और आश्रय की विभावनाओं का समाकलन करने में कवि को पूरी सफलता मिली है।

गीतात्मकता

कवि के अनुप्रास, विशेषत पादान्तानुप्रास नर्तनमयी गीति की रचना करते हैं। यथा,

अलिकुललसदलकान्ता कुवलयदलनीलमसृणनयनान्ता।
कंपा कुचभरतान्ता काञ्चनलतिकेव दृश्यते कान्ता॥

भावुकता से सम्भ्रान्ति उत्पन्न करना गीति-प्रचय के लिए होता है। यथा नायक की उक्ति है—

कूजत्कोकिलसंकुले वनतले नावैमि तस्या वचः।
तन्मञ्जीररवोऽपि हंसनिनदाक्रान्ते न च ज्ञायते॥
तद्वक्त्राब्जपरीमलो न सुलभो ज्ञातं सरोजावृते
कान्तां चन्द्रमुखीं ततः कथमिवेदानीं विचेयामहे॥३.३

वह कोकिला के कूजन को नायिका का आलाप समझता है। मल्लिकाक्ष-वधू के निनाद को नायिका की मञ्जीरध्वनि समझता है। ऐसा गीतात्मक वातावरण है।

नायक को शिलातल पर नायिका का पादचिह्न दिखाई पड़ा तो शिलातल से भिक्षा माँगी—

सुकृतेन येन भवता सुदतीपदपद्मतलहतिरवाप्ता।
तन्मे देहि शिलातल सुकृतवितरणे न सुकृतमाप्नोपि॥ ३.११

भावों की उत्थान-पतनिका में चोक्क का नैपुण्य सातिशय है। यथा, मित्रवर्मा का अमात्य वसव भूपाल नायक से कहता है कि मैं आपको समाचार देने आया हूँ कि सेवन्तिका चित्रवर्मा को देने का निर्णय हमारे राजा ने लिया है। इसे सुनकर राजा वसव ने कहा—

इतो दूरं याता सरसिजमुखीति प्रथमतः
कृशासीत् प्रत्याशा शरदि तटिनीवाम्बुजदृशी
इदानीं धर्मादौ खरतरविदस्त्वद्द्युतितति-
प्रपीतान्तस्तोया कृतकसरसीव प्रतिहता॥६.५

रानी ने यह सब सुना तो कहा—

स्वस्थहृदयास्मीदानीम्।

तभी मित्रवर्मा की भेजी हुई मजूषायें खोली गईं और उनसे निकली सेवन्तिका नायिका। तब तो राजा का भाव था—

(निपुणं निरूप्य सहर्षरोमाञ्चम्)

तद्वक्त्रं शशिबिम्बडम्बरहरं ते चायते लोचने
वक्षोजौ तपनीयशैलममताधिक्षेपदक्षौ च तौ।
वेणी सैव मरन्दतृप्तमधुपश्रेणीमदोत्सारिणी
विद्युत्पुंजनिभं वपुश्च तदिदं पश्यामि नैवान्यथा ॥५.१५

और रानी का स्वास्थ्य बिगड़ गया। वह कहने लगी—

दिनमात्रेण क्षीणिष्यत्यार्यपुत्रम् ।

वर्णन

कवि वर्णनों को नाटक का महत्त्वपूर्ण अङ्ग बनाये हुए है। प्रथम अङ्क के पूर्व विष्कम्भक मे सन्ध्या, प्रथम अङ्क मे तुरगवेग, प्रभात, नगराभ्यन्तर, स्वागतकारिणी नगरी, वाराङ्गनाओं की मुखशोभा, उनका नृत्याभिनय, चन्द्रास्त, सूर्योदय, मध्याह्न, द्वितीय अङ्क मे कालीपूजा, वीणावादन, तृतीय अङ्क मे नायिका-सौन्दर्य, नायिका-प्रसाधन, नायिका की दृष्टि मे नायक की रूपराशि, नायिका का मदनातङ्क, चतुर्थ अङ्क मे हस्तिसम्भ्रम, नायिका का नायक से वियोग, सुब्रह्मण्यपुर, विघ्नेश, तुंगभद्रा और मूकाम्बिका का वर्णन रसानुकूल प्रस्तुत है।

चोक्कनाथ के इस नाटक से अनेक स्थलो पर सामाजिक संस्थान की महत्त्वपूर्ण चर्चा मिलती है। यथा, रानियो का जीवन सपत्नी-प्रवर्तन से कैसा होता था—यह महारानी के मुख से सपत्नी-विषयक विषाद सुनिये—

स्वतन्त्रचित्तानां राज्ञां मनः को नियच्छति। बालिका चापूर्वेति दिनयुगल सादरं प्रेक्षते एनाम्। ततः परमहमिवैपापि।

अप्पादीक्षित का नाट्य साहित्य

तजौर-नरेश शाहजी (१६८४–१७११ ई०) के आश्रय में विकसित कवियों में अप्पादीक्षित अन्यतम हैं। इनको अप्पाशास्त्री और पेरिया अप्पाशास्त्री भी कहते हैं। इनके पिता उच्चकोटि के विद्वान् चिदम्बरेश्वर दीक्षित थे।[1] अप्पा तंजौर के निकट किलयूर के अग्रहार के निवासी थे। उनकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर गुरुओं ने उन्हें कवितार्किक सार्वभौम की उपाधि से मण्डित किया था। उनके गुरु थे कृष्णानन्द देशिक, पिल्लेशास्त्री और उदय मूर्ति। मदनभूषण की रचना कवि ने गौरीमायूर ग्राम में रहते हुए की।

अप्पादीक्षित की अनेक रचनाओं में से नीचे लिखी कृतियाँ मिलती हैं—

१. शृङ्गारमंजरीशाहराजीय[2]
२. मदनभूषण-भाण
३. गौरीमायूरचम्पू
४. आचार नवनीत

इनमें से प्रथम दो रूपक हैं।

शृङ्गारमञ्जरीशाहराजीय

शृङ्गारमंजरीशाहराजीय का प्रथम अभिनय तिरुवैयर (तिरुवाडी) में भगवान् पंचनदीश्वर के चैत्रमहोत्सव के अवसर पर हुआ था। नायिका शृङ्गारमंजरी को नायक शाह जी ने स्वप्न में देखा और उसका चित्र बनाया, जिसे देखकर ज्योतिषी ने बताया कि यह सिंहल की राजकुमारी है। महारानी के द्वारा बुलाये जाने पर कांख में चित्र छिपाये हुए विदूषक और राजा अन्तपुर में पहुँचे। वहाँ महारानी की चेटी ने विदूषक की कांख से बलात् वह चित्र निकाल कर महारानी के समक्ष रखा। महारानी विमनस्क हुई।

इधर सिंहलराज पर सिन्धु-द्वीपेश ने आक्रमण कर दिया। सिंहलराज से सहायता का पत्र पाकर शाह जी की सेना वहाँ पहुँची। शृङ्गारमंजरी शाहजी के गुणों को सुनकर आत्मविभोर थी। वह योगिनी की सहायता से आकाशमार्ग से तंजौर

१. चिदम्बर ने कामदेव नामक विद्वान् को शास्त्रार्थ में परास्त किया था। इस विजय से प्रसन्न होकर तंजौर नरेश ने उन्हें स्वर्णशिविका और एरकरण का अग्रहार देकर पुरस्कृत किया था।

२. इसकी हस्तलिखित प्रति मद्रास में ग० ओरि० मैं० लाइब्रेरी में डी० १५२६६ संख्यक है। वहीं भाग ३ संख्या २५७५ वाली इसकी दूसरी प्रति है।

आती-जाती है और नायक-नायिका का प्रणय प्ररूढ होता है, किन्तु महारानी को यह ज्ञात हो जाता है और वह उपस्थित होकर रग मे भंग करती है।

राजा ने महारानी से इस अभिनव प्रणय के लिए अनुमति देने की अभ्यर्थना की और उसे प्रसन्न कर लिया। नायिका के वियोग मे नायक चराचर से उसके विषय मे पूछता है। नाटक मे छठें अक तक कथा यही समाप्त हो जाती है।

इस नाटक मे नायक द्वारा शृङ्गारमंजरी का विस्तृत वर्णन कराया गया है।[1] इतने से कवि सन्तुष्ट नही है। उसने नायिका के लिए लगभग ५० विशेषण पद प्रथम अक के एक ही वाक्य मे प्रयुक्त किये हैं। ऐसे प्रयोगो से काव्योत्कर्ष भले ही सिद्ध हो, नाटकीयता प्रहीण होती है।

अप्पा को शिखरिणी छन्द प्रिय है। इस नाटक मे उन्होने ३४ पद्य शिखरिणी मे लिखे, जो सत्रहवी शती के किसी एक नाटक के लिए सर्वाधिक हैं। इनके बाद राजचूडामणि का आनन्दराघव आता है, जिसमे २१ पद्य शिखरिणी मे हैं। उनके अन्य प्रिय छन्द, क्रमशः आर्या, गीति और अनुष्टुप् हैं। शार्दूलविक्रीडित छन्द में उन्होने शाहराजीय मे १८ ही पद्य लिखे, किन्तु मदनभूषणभाण मे ४४ पद्य लिखे हैं।

अप्पा पर कही-कही भवभूति की छाप है। यथा,

विलिप्ता कर्पूरैर्निबिडमनुलिप्तो मलयजैः
प्रसिक्तः प्रालेयैः प्रचुरमभिषिक्तश्च कलशैः।
परिक्लिन्नः स्फायत्तुहिनकरकान्तोपलजलै-
रपि स्नातः स्फारैरमृतपरिवाहैरभिनवैः॥३·३५

मदनभूषणभाण

मदनभूषणभाण यथानाम मदनभूषण नामक विट की चरितगाथा का अनुरणन है। इसका प्रथम अभिनय कावेरी तटपर भगवान् गौरीमायूरनाथ के मन्दिर की नाट्यशाला मे वसन्तोत्सव के अवसर पर हुआ था। सारा नगर वासन्तिक सौरभ और अलङ्करण से खिल उठा था। शृङ्गार-सिद्ध कवि सभा करके वसन्त का अभिनन्दन करते थे। इसका अभिनेता रगनाथ सूत्रधार का साला था। उसका वर्णन कवि ने किया है—

मध्यावद्धदुकूलदृश्यविरणत् सौवर्णसूत्रस्फुरत्
मुक्तादामविभूषणः श्रवणयोर्निक्षिप्तनीलोत्पलः।
आलिप्तो हरिचन्दनैर्मृगमदैः पिष्टातकैर्घूर्णयन्
नेत्रे स्कन्धतलावलम्बिवसनः साक्षादनीशोऽपरः॥

इस पर भवभूति के उत्तर रामचरित के 'आश्च्योतन तु हरिचन्दनपल्लवानाम्' ३·११ की छाया है।

---

१. प्रथम अंक मे ४२–६६ पद्य

वह साक्षात् शृङ्गार रस मूर्तिमान् लगता था।

कथास्थली का परिचय कवि ने दिया है—

श्रीशाहक्षितिपालरक्षणकृतक्षेमं सदा शाम्भवं
तच्चोलावनिमण्डनं खलु महत् मायूरनामास्पदम् ॥

उस नगर में मदनमंजरी नामक गणिका की पुत्री वकुलमंजरी के प्रथम विट-संगम के लिए मदनभूषण को निमन्त्रण मिला कि कल चन्द्रोदय होने पर पधारें। अपूर्व सुन्दरी थी नायिका। नायक उस दिन प्रातःकाल उठा। उस समय उसे सारी प्रकृति में नायक-नायिका का विकास मनोज्ञ प्रतीत हुआ। उसका कार्यक्रम बना नगर की शृङ्गारित प्रवृत्तियों को देखते हुए दिनभर घूमते-फिरते संध्या तक वकुल-मंजरी के पास पहुँचना।

सर्वप्रथम नायक को कनकवल्ली की बहिन चम्पकमाला मिली। उसका भोग शुल्क अतिशय था। इस बात को लेकर उनमें संवाद हुआ। अन्त में मदनभूषण उसे अमर सौन्दर्य का आशीर्वाद देकर आगे बढ़ा। उसे आगे मालती मिली, जिसके साथ अपने बीते प्रणय का विट ने इस प्रकार वर्णन किया—

स्मरसि गुरुजनेभ्यो भीतया यत् त्वयाहं
प्रथमवयसि किंचिद्दन्तुरोरस्कयापि
चकितचकितमाशावीक्षमाणस्समन्तात्
झटिति निबिडमेवालिंगितश्चुम्बितश्च ॥

उसे विट ने आशीर्वाद दिया—तुम्हारा सम्मान लोक में बढ़ता रहे। फिर तो एक बूढ़ा विट विश्वनाथ भट्ट नवयुवती वाराङ्गना वसन्तमालिका का प्रणयी दिखाई पड़ा। मदनभूषण ने उससे पूछा कि अब तो यह कर्म बुढ़ापे में छोड़ो। भट्ट ने कहा—जब तक शरीर तब तक नायिका-वीर रहना है। यही पुरुषार्थ है। वसन्तमालिका से इस वृद्धप्रणय के विषय में उसने पूछा—

भवतु मथिता पद्मिन्येषा मतंगजसंगमात्
वहतु च यशो लोके स्यातं गजेन्द्र गतेति च।
जरठमहिषाक्रान्ता सेयं भवेद्यदि कर्शिता
किमिति ननु देत् कर्णावितत् कथा महतामपि ॥

वसन्तमालिका ने पूछने पर उत्तर दिया—

स्त्रीणां जन्मैव कष्टं जगति पुनरियं वारनारीषु सूतिः
तत्राप्यत्यन्तदुःखं वसति जरतिका यद्गृहे दीर्घकालम्।
खेदस्तत्रापि घोरः स्मरनिगममहातन्त्रसारार्थवित्त्वे
यत् स्वेच्छाधीनभोगे भवति बहुविधा प्रायशो विघ्नपंक्तिः ॥

पश्चात् विट उपवन में मध्याह्न बिताने पहुँचा। वहाँ उसे चन्द्रकला नामक नवोदित वाराङ्गना कन्दुक क्रीडा करती हुई रसिकों का चित्त मथ रही

विट को मदनपाल मिला, जिसने चन्द्रकला के कौमार्य-काल मे ही अपना सर्वस्व उसे देकर अपनी बना चुका था। उसके बाप को यह धन सूर्यग्रहण के समय तुलादान मे प्राप्त हुआ था। कितना और कैसे देता था—यह जानलें—

प्रत्यग्रं वसनद्वयं प्रतिदिनं सूक्ष्मं दुकूलद्वयं
कालेयेन्दुविमिश्रितो मलयजः कस्तूरिकामोदितः।
ताम्बूलानि यथेप्सितान्यभिनवाल्पस्य दानं शतं
निष्कारणा पुरुषायुषेऽन्यवनिता नालोकितं चाश्रुतम्॥

विट का कहना है कि ठीक ही तो किया मदनपाल ने। करोडो का व्यय करके जो यज्ञ किये जाते हैं, उनसे स्वर्ग मिले या न मिले। मदनपाल ने तो चन्द्रकला-संगम का स्वर्गसुख साक्षात् पा ही लिया। यह वास्तविक पुरुषार्थ है।

उपवन से उत्तर की ओर देखने पर विट का यज्ञवाट दिखाई पडा। यज्ञ करके यजमान रम्भा नामक अप्सरा को मरने के पश्चात् पाना चाहता है। क्या यज्ञ समारम्भ मे पत्नी इसीलिए सहयोग करती थी कि सुरसुन्दरी प्राप्त कर लेने पर उसका पति उसे छोड दे। उपवन से उत्तर की ओर देखने पर विट को अस्पृष्ट नवोदित चन्द्रलेखा दिखी। पश्चात् वासन्तिका के द्वार पर रत्नमालिका नामक वाराङ्गना की बुढिया जरठा माता दिखी, जिसका वर्णन है—

अस्थिप्रायशरीरा लालाजालप्रवाहि दुर्वार्ता
व्यत्यस्तदन्तपङ्क्तिः कम्पितमूर्धा चकास्ति धृतयष्टिः॥

उसका भूतकालीन इतिहास है—कभी वह अपूर्व सुन्दरी पाण्ड्य राज की गृहीतदासी थी, जो असख्य युवको को लालायित कर चुकी थी। वही है—

अद्येयं जरती पुनर्युवजनप्राणापहन्त्रीपणा-
ग्राहित्वेन हिनस्ति तान् मनसिजप्रत्यर्थिभूता सती॥

आत्मसुखानुभूति प्राप्त कराने मे समर्थ पद्मिनी के दर्शनमात्र से विट परितृप्त हो गया। उसे भानु नामक धनकुबेर अपना चुका था। पश्चात् हस्तिनी नामक वाराङ्गना दिखी। उसे देखकर विट ने लक्षणो से जान लिया कि यह मदनसमरप्रवृत्ता है। विट को आगे मनोरंजन प्रस्तुत करने वाले दीनूप मिले, जो एक गाँव से दूसरे गाँव मे नित्य भ्रमण करते थे। उनमे ज्योतिषी, विषहर, वैद्य, नटनर्तक आदि थे, जो सभी ठग-विद्या मे निष्णात थे। उसने फिर देखा अहितुण्डिक को, जिसके पास वानर था और काले साँप थे। वह उनका खेल दिखाता था।

विट ने आगे देखा ब्रह्मचारियो को और उनका पक्ष—

अतिकष्ट एव धर्मपत्नोपभोग एतेषाम्। तथा हि—

मत्यनन्त्रास्वतन्त्रासु मन्मथाश्रियास्वपि।
पत्नीभिरभिहन्यन्ते निर्दयं ब्रह्मचारिणः॥

फिर विट को वासन्तिक नामक मित्र विट मिला। उसने अपनी कहानी बताई— अपनी चहेती के घर में घुसकर अभी आलिंगन और अधरपान किया ही था कि उसका पति जग पड़ा। उसे एक पेटी में अपने को छिपाना पड़ा, जिसे सेंध लगा कर चोर ले भागे। तब तो मेरी मुक्ति हुई।

विट मनोरंजन-घाट में पहुँचा। वहाँ एक ओर कामियों और कामिनियों के संग जुआ हो रहा था। कावेरी-तट पर ऐन्द्रजालिकों का खेल हो रहा था, जिनमें से एक था—

आदायाम्रस्य बीजं वपति भुवि ततस्तत्क्षणे रूढमेतत्
भूयः पत्राङ्कुराढ्यं कुसुमितमयते सर्वथा भ्राजमानम्
फलेन कृत्वा मायाविरूढान् सदसिनिवसच्चेन्द्रजालेन चित्रं
तेभ्यो गृह्णाति वित्तं सफलयतिच नम्चाक्षुदी—सूत्रधारः॥

अन्यत्र शिल्पी अपना खेल दिखा रहे थे। यथा,

कृत्वा दारुमयं लिंगं स्थापयन्ति भुवस्स्थले।
मुखं व्यादाय तत्पिण्डान् समुद्गिरति चाश्मनाम्॥

आगे युवा कुक्कुटों का युद्ध हो रहा था। विट ने फिर अपने को नाट्यशाला में पाया, जहां मोहक वीणागायन हो रहा था। वहां भरताचार्य वेश्याओं को शिक्षा दे रहा था।

विट को आगे दिखाई पड़ा मेषों का युद्ध और मल्लों का युद्ध। मल्ल का परिचय है—

मुण्डस्वल्पशिखाट्टहासुवलिनः कापायवासोसृतः
चूर्णैः पाटलमृत्तिकाविरचितैरालिप्तदेहान्तराः।
कान्तासंगविवर्जिता गललसत्सौवर्णसूत्रोज्ज्वला
मल्लाः केचन बाहुयुद्धकुशलास्संग्राममातन्वते॥

मल्ल युद्ध को देखकर विट के मुँह से निकल पड़ा—

युद्धे स्वात्मबलेन मानसमहो सन्तोषयन्तीह नः।

विट ने कावेरी के तटीय उपवन में शीतल वायु का आनन्द लिया। उसे दिखाई पड़ा कि चोल देश में लोगों ने कलाविलास प्रकृति से ग्रहण किया है।

विट को पुनः एक अनुत्तम किन्तु विरहिणी वाराङ्गना कष्ट में पड़ी दिखाई दे गई। उसके मानस में प्रश्न उठे, यह सन्ताप क्यों?

लोके सन्ति न किं विटा नयनयोरानन्दसन्दायिनः
पंचेषोरिषवोऽपि किं युवजनप्राणापहारालसाः।
षण्डत्वं विधिनाप्ययायि किमयो पुंसां जगद्वर्तिनां
शेते किं विरहाग्निना विधुरिता शीर्णेव वल्ली वने॥

निकट आने पर विट को ज्ञात हुआ कि वह कंचुकिनी की कन्या मंजीरणी-

मध्यार्जुन की रहने वाली यहाँ आई है । कैसे ? उसे उसका प्रियतम वहाँ पुनः मिला और विट आगे बढा । उसे धार्मिक दिखाई पडे, जो निम्न प्रकार के थे—

१. पौराणिक जो वाणी से वैराग्य का उपदेश देते थे और सुनने वालो का शरीर, धन और प्राण भी अर्पण करा लेने के लिए समुत्सुक थे । श्रद्धालु अङ्गार्पण करें । उनके अनुसार गोपियो का आदर्श ग्राह्य है । यथा, पति की सेवा बाधक है । गुरुचरण-सेवा ही सुख का वास्तविक मार्ग है । पौराणिकों ने ने असंख्य रमणियों को कृतार्थ करके सघुनी बना दिया है ।
२. मान्यविद्वान्, जो अपनी निस्पृह जीवनचर्या से उच्चादर्श प्रस्तुत करते हैं । वे अध्ययन रत हैं और स्त्रियो से कोई सम्बन्ध नही रखते ।
३. वैष्णव मन्दिर के भक्त ।
४. रामानुजीय भक्त, जो विलासिनियो के द्वैत मत का अनुष्ठान करते थे ।

पश्चात् शिखामणि नामक विट ने आपबीती चरितनायक विट को सुनाई कि दोपहर को जलाशय तट पर अपूर्व सुन्दरी दिखी, जिसके संकेत पर उसके पीछे-पीछे उसके घर पहुँचा । वहा कई लोग पहले से ही थे, जिन्हें देखकर मैं भागना चाहता था । वह सुन्दरी इस बीच घडा उतार कर मुझे घर में देखते ही हर्ष प्रकट करती हुई कहने लगी कि ये तो मेरे मामा केरल से आ गये और मुझसे लिपट गई । फिर उसके साथ रहने का अवसर मिला ।

उत्तर मायूर नामक शम्भु-स्थान की पौराणिक कथा बताई गई है । पश्चात् मदनपाल की पत्नी की चरित गाथा है । उसके सपुत्रा होने पर सौन्दर्य क्षीण हुआ तो मदनपाल नवोदित वाराङ्गनाओं के चक्कर मे पड़ा । विट ने काचनलता को उपदेश देते सुना कि स्त्रियां एक पति से ही सम्बन्ध रखें । उसने कावेरी पार की । वहा गौरीमायूर मन्दिर मे सायकालिक शख ध्वनि सुनाई पडी । मन्दिर का वह पूरा वर्णन करता है । वहा से नृत्तमण्डप मे आता है । वहा लीलावती के नृत्त की प्रशसा करता है ।

मन्दिर में पूजन के लिए सामग्री लेकर आती हुई चन्द्रकान्त की स्वैरिणी भार्या को वह देखता है । उसके साथ अपने कामयोग की कथा कहता है कि जब मैं इसके बुलाने पर इसके घर पहुँचा तो वह किसी जार से बात कर रही थी । उसने उसे किसी कोठरी मे बन्द किया और मेरा स्वागत करने लगी । तभी उसका पति आ गया । उसी कोठरी मे उसने मुझे भी बन्द किया और अपने पति की सेवा मे लग गई । आधी रात के समय द्वार तोड कर कोठरी से मैं निकल पडा और बाहर आकर चोर का वेष बनाकर उसे बाधकर, चुप रहना—यह आदेश देकर बाहर कहीं छोड आया । फिर उस रात उसके साथ सानन्द रहा ।

अन्त मे वह विट वेशवाटिका में पहुँचा । वहा से बकुलमजरी के पास पहुँचा । वह उसका सौन्दर्य देखकर चकित रह गया । अन्त में उसने कहा—

चक्षुष्मत्ता सफला जन्म च नः सफलमेव संजातम्।
अभिमतसिद्धया चेतः तुष्यति पीत्वा सुधामिवात्यन्तम्॥

नाट्यशिल्प

शृंगारित वर्णनों को परवर्ती भाणों में विशेष स्थान मिला। कुमारी वाराङ्गनायें कन्दुक-क्रीडा करते समय जो हाव-भाव प्रस्तुत करती थीं, उसकी सरसता से पाठक को आप्यायित करने का लोभ लेखक संवरण नहीं कर पाते थे। इसमें कन्दुक प्रायशः नायक के रूप में चित्रित किया जाता था। यथा,

अहो कार्तार्थ्यं कन्दुकस्य। तथा हि—आकुलयन्नलकालिम्, अक्ष्णोर्द्वन्द्वं विघूर्णयन्, नीवीं श्लथयन् हृदयं मदयन् कान्त इवाचरति कन्दुकोऽप्यस्या अचेतनोऽप्ययं सचेतन इव विचेष्टते।

वर्णन-परम्परा में विट को देवयजन दिखाई पड़ता है। इन सबमें विट को 'मनोभवमहाराजस्य महिमा' दिखाई पड़ती है।

अप्पा ने भाण की परिधि में कुछ नये वर्ण्य विषयों को समाहित किया है। यथा, ब्रह्मचारियों का पीटा जाना। विट ने द्यूत की निन्दा की है—

नलो नष्टः श्रीकः सपदि स पुनर्धर्मतनयो
वियुक्तः स्त्रीपुत्रैरपि च सहजैर्बन्धुनिकरैः।
कले रक्षास्थानं कमलभवनेनैव विहितं
ततो निन्द्यं सद्भिर्विटजनविलासास्पदमिदम्॥

प्रकृति में कवि ने शृंगार-विलास का दर्शन कराया है। यथा,

प्राप्याप्यन्या यौवनं नाप्नुवन्ति प्रायः कान्ता नात्मनस्तुल्यरूपान्।
पुष्पिण्येषा पूर्वकैः पुष्पपुञ्जैः मल्लीवल्ली पल्लवैरेव पूर्णा॥

उसके अनुसार सूर्य भी परदारासक्त है। वह पूर्व और पश्चिम दोनों दिशाओं से अनुराग करता है।

रस

भाण स्वभावतः शृंगार-रसभूयिष्ठ होता है।[1] वसन्तोत्सव के योग्य शृंगार होता है। इसमें साथ ही हास्य-रस का गम्भीर मिश्रण है। कवि ने स्वयं कहा है—

कालो वसन्तः प्रथमो रसानां हास्येन यस्मिन् प्रथतेऽभिनेयः॥

आरम्भिक युग से ही जो भाण मिलते हैं, उनमें प्रायशः हास्य की धारा अविरल रही है। अप्पा ने अपने भाण में इस वास्तविकता का स्पष्टतः प्रकाशन किया है।

१. दशरूपक के अनुसार भाण में वीर और शृंगार रस की प्रधानता होती है। यथा, सूचयेद् वीरशृंगारौ शौर्यसौभाग्यसंस्तवैः। जो भाण मिलते हैं, उनमें शृंगाराभास तो मिलता है, किन्तु उनमें वीर की धारा प्रायः नहीं है। यदि है भी, तो युद्धादि के वर्णन में विरलप्राय है।

समाज-सुधार

भाण के द्वारा कवि ने समाज को कुछ सीख भी दी है। अपनी पत्नी की अवहेलना करके वेश्याओं से प्रेम करने का सीधा सा परिणाम यह है कि पत्नी भी अन्य पुरुषों से परितृप्ति का उपाय कर लेती है। आँख खोले समाज। कवि ने बताया है—

केचन वृद्धिहीनाः प्रसूता इति भार्यामवमन्यते, सेवन्ते च कलत्रान्तरम्। तास्तु तेनैव व्याजेन गतभया गलितयौवना इति गुरुजनरक्षिता परित्यक्त-लज्जा मुग्धभावाः प्रगल्भासंगरसिकैः सहानुभवन्ति सम्भोग-सौख्यम्।

काञ्चनलतिका के मुख से कवि ने स्त्रियों को उपदेश दिया है—

सर्वासामेक एव नियतः पतिरंगीकरणीयो न सर्वः।

अध्याय ३१

अद्भुतपञ्जर

मुद्राराक्षस की पद्धति पर कथावस्तु का कुछ-कुछ विकास लेकर चलने वाले अद्भुत-पञ्जर नाटक के रचयिता नारायण दीक्षित शाहजी की राजसभा को समलंकृत करते थे।[1] सूत्रधार ने कवि का परिचय देते हुए तत्कालीन रीति के अनुसार सर्वप्रथम उनके गुरु तिप्पाध्वरी की यशोगाथा प्रस्तावना में इस प्रकार प्रस्तुत की है—

शिष्या दिक्षु विदिक्षु यस्य विजयस्तम्भा इवोच्छ्रायिणः
पुत्रा यस्य महोन्नता विनयिनः षड्दर्शनी-पण्डिताः।
यस्मिन्नेव कृतास्पदं च निखिल-व्यावृत्तमाचार्यकं
श्रीतिप्पाध्वरिदेशिकः श्रुतिपथं किं ते स नारोहति॥

नारायण के दूसरे गुरु थे रामभद्र दीक्षित, जिनकी कवि के द्वारा की हुई प्रशंसा को सूत्रधार ने प्रस्तावना में निविष्ट किया है—

विलोलमलयानिलस्फुटितमल्लिकामञ्जरी-
निरर्गल- विनिर्गलन्मधुझरीगलग्राहिणः।
जयन्ति मधुरोज्ज्वला जगति यस्य वाचां क्रमा-
श्चकास्ति मम देशिकः स किल रामभद्राध्वरी॥

नटी के शब्दों में 'महत् खल्वेतदुत्कर्षस्थानं यद् रामभद्रदीक्षितानां प्रधान-शिष्यत्वं नाम।

अद्भुतपंजर नाटक की कथा नारायण के पिता रंगशायी ने संक्षेप में १५० पद्यों में लिखी है। इसका उपयोग प्रेक्षकों के लिए नाट्यारम्भ के पहले उसकी कथा समझाना था। अद्भुत-पंजर की रचना १६६५ से १७०४ ई० के बीच कभी हुई होगी, सम्भवतः १६६५ ई० में।

अद्भुतपञ्जर का एक अभिनय १७०५ ई० में महामघोत्सव में हुआ था।[2] सम्पादक

---

१. अद्भुत-पञ्जर का प्रकाशन केरल विश्वविद्यालय की संस्कृत सीरीज में २१० संख्या में १९६३ ई० में हुआ है।

२. सूत्रधार ने कहा है—आदिष्टोऽस्मि...कुम्भीश्वरस्य महामघोत्सवप्रसगेन संगतैर्महानुभावैः सहजिराजविद्वत्पुरोगमैः सामाजिकैः—

घीरो दात्तमहाराजव्यापारपरिमेदुरम्।
वस्तु यत्रादिमरसं रूपकं तत् प्रयुज्यताम्॥५

शाहजी के शासनकाल में १६६३ ई० तथा १७०५ ई० मे दो बार महामघोत्सव पड़े। इनमें से पहले को १६६३ ई० में देखने के लिए काशिराज-कन्या लीलावती आई थी। वह सारिका बन कर शाहजी की देवी उमा के साथ सात-आठ रही और राजा से प्रणय बढ़ने पर उसको राजवधू बनने का सौभाग्य

राघवन् पिल्लई का कहना है कि यह अभिनय १६६३ ई० मे हुआ था। उनका मत डा० वी. राघवन् के निर्णयानुसार है। ये मत समीचीन नही लगते।

कथावस्तु

तंजौर के राजा शाहजी की पत्नी सारसिका नामक अद्वितीय सुन्दरी को राजभवन में राजा से छिपा कर रखती थी। महामघ मे वह देवी को मिली थी। मेधावी नामक मन्त्री को यह सन्देह था कि वह काशिराज कमलकेतु की कन्या लीलावती है, जिसे उसने अपने मन्त्री सुमेधा के साथ महामघ देखने के लिए भेजा था। उनके साथ मेधावी के द्वारा नियुक्त परिव्राजिका मैत्रायणी भी थी। मेधावी ने १६८२ ई० में लीलावती-शाहजी परिणय को सम्पन्न करने के लिए वचन दिया था।

इधर काशिराज पर तुर्कों का आक्रमण हुआ। रक्षा करने के लिए शाहजी ने विजयसेन की अध्यक्षता में एक बडी सेना भेजी थी, जिसकी उपलब्धि विषयक पत्र मे लिखा था—

निग्रहश्च तुरुष्काणामिन्द्रप्रस्थस्य चाक्रमः।
प्रतिष्ठा विश्वनाथस्याप्यादिष्टा स्वामिशासनात्॥१·१६

विजयसेन ने पत्र में लिखा था कि लीलावती का पता नही लग रहा है। लीलावती शाहजी की महारानी की मौसेरी बहिन थी।

राजा मणिशिखर-सौध में विदूषक के साथ थे। उस दिन देवी नवरात्र के समारम्भ पर भगवती चण्डिका की शारदी पूजा करने वाली थी। राजा को साथ रहना था। राजा को नागरिको का मंगल-गीत सुनाई पडा। उनके बीच देवी चण्डिका-पूजा के लिए प्रस्थान कर रही थी। उस महिलावृन्द मे राजा को दिखाई पडी—

अव्याजसुन्दरमनुक्षणदर्शनीयमव्याहतस्फुरणमद्भुतसन्निवेशम्।
आसिञ्चदान्तरमिदं करणं सुधाभिरानन्दनं किमपि वस्तु ममाविरस्ति॥

राजा को वह अपनी भाग्यरेखा ही लगी। उसने उसे अपनी दूसरी देवी ही मान ली—

मन्ये देवीयमन्येति॥

रानी ने सारसिका को अपनी पूजा के समय अन्यत्र स्नान करने के लिए शृङ्गार-सर मे भेज दिया, पर वहाँ उसे राजा का प्रतिबिम्ब शृङ्गारसर की रत्नभित्ति पर

शाहजी का लीलावती से विवाह १६६४-६५ ई० में हुआ। विवाह के उपलक्ष मे नारायण ने इस नाटक की रचना की होगी और ऐसा लगता है कि १६६५ ई० मे यह रचा गया होगा। फिर दूसरे महामघ के अवसर पर १७०५ ई० मे इसका अभिनय हुआ होगा, जिसमे सूत्रधार द्वारा प्रणीत भूमिका नाटक के साथ जुटी है। १६६३ ई० के महामघ मे इसका अभिनय असम्भव है, क्योंकि रंगशायी के अद्भुत-पञ्जर नाटक की कथा के अनुसार १६६३ ई० के महामघ को देखने के लिए कुमारी नायिका लाई गई थी।

दिखाई पड़ा। उसके सौन्दर्य को देखकर वह चिरकाल तक उसे ही देखने की इच्छा कर रही थी, पर शीघ्र ही पूजा समाप्त होने पर राजा के दूर जाने पर प्रतिबिम्ब वहाँ नहीं रह गया।

अपनी नई प्रेयसी के ध्यान में मग्न विनोद के लिए उद्यान में आये हुए राजा की एकोक्तियों का स्वरूप है—

स्वप्नः किन्नु भवेदयं न तदा यज्जागरूकोऽभवं
भ्रान्तिः किं न न यद्विशेषविषयैर्बोधैर्न बाधोदयः।
सङ्कल्पः किमसौ न नैव यदभूत् तत्तादृशी भावना
कन्दर्पस्य तदीदृशं मनुमहे कौतस्कुतं चेष्टितम् ॥२.२

शृङ्गार-सर के तीर-कुञ्ज के भीतर वह प्रकृति में दाम्पत्य-भाव का समीक्षण कर रहा था। यथा,

शिव शिव शिखिनीमनीक्षमाणः क्वचन पुरः शुचमश्नुते शिखण्डी।
कुहचन दयिता दृढोपगूढो विहरति गर्भमुखीव राजहंसः ॥२.६

थोड़ी दूर पर अकेली नायिका भी एकोक्ति में निमग्न थी, जिसे राजा सुनने लगा। यथा—

मारसिका—भगवति लज्जे, नमस्ते। यस्यास्तव प्रभावेण प्रियसखी-सन्निधाने स महाभागो न विलब्धं दृष्टः। तदिदानीं दयां कुरु। एकाकिनी किमपि मन्त्रयिष्ये।

राजा को यह तो ज्ञात था नहीं कि सारसिका मेरे ही लिए उत्कण्ठित है। उसकी एकोक्तियाँ सुन कर कहता है—

राजा—अस्याः पुनरीदृशानुरागहेतुः, स कीदृशो महाभागः स्यात्।

अलङ्कारः शङ्के स किल सकलाया अपि भुवः
स सर्वेषां यूनामुपरि शिरसि न्यस्यति पदम्।
त्रिलोकीसाम्राज्यश्रियमपि स एवार्हति यतः
स्वयं यस्मिन्नेव बलवदियमुत्कण्ठितवती ॥२.१५

उसकी एकोक्तियों से राजा ने जान लिया कि वह मेरे लिए ही उत्कण्ठित है। अन्त में वह उसके पास आ ही गया और बोला—

पर्युत्सुका भवसि पंकजपत्रनेत्रे यस्मिन् जने निभृतमेव निबद्धभावा।
सोऽयं प्रिये स्वयमिहावसर-प्रतीक्षः पर्युत्सुकः परवशश्च पुरस्तवास्ते॥

ऐसे समय उधर विदूषक आ रहा था। कलावती नामक सारसिका की सखी ने उसे रोक कर दूसरी ओर चलता किया। कलावती की वाणी सुन कर प्रणयी युग्म छिपने की सोचने लगा। राजा निकुञ्ज-निलय में छिप गया। कलावती ने सारसिका से कहा कि शीघ्र अलङ्कृत होकर पूजा करने चलें। देवी प्रतीक्षा कर रही हैं। सारसिका ने यहाँ से जाने के पहले अभिज्ञान-शाकुन्तल की नायिका की भाँति कहा—

आमन्त्रये रक्ताशोक, त्वां यस्य तव छायया मोदेनापि एतावन्तं कालं सन्तर्पितास्मि ।

नवरात्र के अन्तिम दिन चण्डिका की पूजा के प्रसग मे लोकपावनी ने मरुद्विषा के द्वारा रानी को सन्देश भेजा कि एक ही मण्डप मे दो को पूजा नही करनी चाहिए। रानी ने निर्णय लिया कि कुसुमाकरोद्यान मे मैं पूजा करूँगी और वसन्तोद्यान मे सारसिका ।

सारसिका के प्रेम मे उत्कण्ठित राजा को लेकर विदूषक पहले ही वसन्तोद्यान मे पहुँच गया । उन्हे कलावती के साथ नायिका दिखी । वहाँ वे दोनों पुष्पावचय कर रही थी । राजा और विदूषक छिप कर उनकी बातें सुनने लगे । सारसिका ने बताया कि मुझे राजा से प्रेम है । उसकी दृष्टि मे कठिनाई थी कि राजा को रानी अतिशय प्रिय हैं और वे एक-पत्नीव्रत हैं । सारसिका को राजा के विना असह्य बेचैनी है। यह देख कर विदूषक उसके पास पहुँचा और फिर राजा भी उससे मिला ।

विजयादशमी के विजयप्रस्थान से लौटते हुए राजा को एक सारसी मिली, जिसे उन्होने महारानी को दिया । इस बीच उनकी नई प्रेयसी को दुष्टग्रहावेश का रोग हुआ, जिसे दूर करने के लिए उसे लोकपावनी नामक योगिनी के पास जाना था। प्राकार-द्वार के रक्षको के विना जाने ही नायिका को नगर से बाहर निकलना था, जहाँ पहले से ही योजनानुसार नायक उससे मिलने वाला था।

नायिका अपनी सखी कलावती के साथ-साथ निकुंज मे नायक से न मिल सकने का रोना रो रही थी कि अब तो मर ही जाऊँगी। नायक थोडी दूर पर छिप कर उसकी बातें सुन रहा था। उसने प्रतिक्रिया व्यक्त की--

आलोलमानलुलितालकमश्रुपातैरासिक्तदुर्बलकपोलमसीमधारैः ।
आकम्पितस्तनमरुन्तुददैन्यवादमा कीदृशं व्यवसितं सुदृशा कृते नः॥४.१७

नायक नायिका के पास आ गया और बोला—

वरतनु सुकुमारा मां कठोरैस्तनु ते
परिमृशतु कराग्रैः पातकी पद्मवैरी ।
विरहविधुरकोकीलोकशोकाभिताप--
स्फुटघटितकलङ्को नैपदोषाकरः किम् ॥३.१८

अन्त मे दोनो का प्रणय-व्यापार जब शिखरित हुआ तो वहाँ चन्द्रकला के साथ महारानी आ गई । उसने राजा को सारसिका से यह कहते सुना—

लावण्याम्बुनिधिं विमथ्य तारुण्यमन्थाद्रिणा
कन्दर्पाम्बुजलोचनेन विहितं त्वद्वक्त्रपात्रान्तरे ।
प्रत्यग्रं मधुराधरामृतरस यत्सत्यमास्वादय--
न्निन्द्राणीगृहमेधितामपि तृणायाह न मन्येऽधुना ॥

रानी ने यह सुना और उनके बीच आ कूदी । उसे अतिशय क्षोभ हुआ और जब वह चलती बनी तो राजा ने निर्णय लिया— अब तो देवी का प्रसाद पाना है ।

लीलावती जब सुमन्त्र, सुमेध आदि के साथ वाराणसी से चली थी तो यवनों ने वाराणसी को घेर लिया। मार्ग से सुमेध आदि इस समाचार को पाकर लौट पड़े। मन्दाकिनी नामक तपस्विनी से लीलावती का मेलजोल बढ़ा और मैत्रायणी भी पुरुषोत्तम का दर्शन करने के लिए लीलावती का भार मन्दाकिनी पर डाल कर चलती बनी। मार्ग में मैत्रायणी को कमलकेतु मिले, जिन्होंने बताया कि लीलावती गुम हो गई है। वे काचीपुर तक आ चुके थे और वहाँ से मेधावी के लिए पत्र भेजा। कमलकेतु भी तंजौर आ पहुँचे।

रानी को लीलावती के जन्म के समय से ही उसके जातक से ज्ञात था कि उसका पति सार्वभौम होगा और पति जेठी रानी के पुत्र के युवराज होने पर उसका अनुवर्तन करेगा। वह उसको अपनी सपत्नी बनाने को उद्यत हो चुकी थी। तभी रानी को एक पत्र से ज्ञात हुआ कि मेधावी लीलावती का राजा से विवाह करने की योजना बहुत पहले से ही बना चुके हैं। राजा के सारसिका से प्रणय-व्यापार की प्रगति विदूषक ने रानी को स्पष्ट कर दिया और मेधावी ने बताया कि कैसे लीलावती को मैं आपकी सपत्नी बनाने की योजना कार्यान्वित कर रहा हूँ। इसके लिए रानी समुद्यत थी।

रानी को यह ज्ञात नहीं था कि सारसिका ही लीलावती है। उसने सारसिका को लकड़ी के पञ्जर में बन्दी बना दिया। वह तो इस विपत्ति में मरणासन्न ही थी। यह राजा से मिले, तभी जीवित रह सकेगी—यह विदूषक की योजना थी।

राजसभा में राजा, देवी, कमलावती, कमलकेतु, मेधावी आदि का समागम हुआ। कमलकेतु ने काशी पर इस्लामी आक्रमण का वर्णन किया कि मैंने अकेले ही अश्वसादी बन कर उनके सेनापति से युद्ध किया। तभी आपका भेजा विजयसेन सुमन्त्र के साथ सहायतार्थ आ पहुँचा और तब तो—

जीवग्राहं गृहीतो जरठयवनमूनायकस्तावकेन। ६·११

पश्चात् मेधावी की योजनानुसार कमलकेतु ने राजा को अन्य उपायनों के साथ कमलावती से एक सारस रानी को दिलवाया। प्रसन्न होकर विदूषक से रानी ने कहा कि अपनी सारसी लाओ। इसके लिए विदूषक ने चन्द्रकला के नाम रानी का अनुमति-पत्र लिया, जिसे मेधावी ने लिखा और देवी ने मुद्रा लगाई।[1] फिर तो चन्द्रकला पत्र के साथ सारसिका को लेकर आई। उसे कमलकेतु और कमलावती ने पहचाना कि यह तो लीलावती है। राजा का लीलावती से विवाह सबकी प्रसन्नता के लिए सम्पन्न हुआ। उस समय समाचार मिला कि दिल्ली पर सफल आक्रमण हुआ है और विश्वनाथ की पुनः प्रतिष्ठा हो चुकी है। तब तो राजा का साम्राज्याभिषेक हुआ। अन्त में राजा ने आनन्दवल्ली की वन्दना की।

१. पत्र में लिखा था—या आर्यपुत्रगृहीता सारसिका तव वशे मया निहिता, तामद्य पंजराद् हस्ते गृहीत्वा झटिति आनय।

शैली

लोकोक्तियों के प्रयोग से शैली में सांवादिकता का विलास निर्भर है। यथा,

१. प्रपामण्डपिकामभ्यासाद्य परिश्राम्यसि।
२. मूषिकाया मुखे अपूपिका रक्षणाय निक्षिप्ता।
३ हस्तस्थितवस्तुनो यामिकगृहीतस्य कुम्भीलकस्य दशामनुभवामि।
४. मुषितहस्त एव चोरकस्त्वया गृहीतः।
५. तृणाग्रलग्नसलिलबिन्दुसदृशप्राणा खलु क्षत्रियजातिः।
६. कथं मन्थनव्यापारमन्तरेण महोदधौ सुधालहरी।
७. कथं दीपप्रभया सत् तमसमपनिनीषता दिनश्रीरेव समासादिता।
८. मुषितस्वीकरणायैव चोर प्रति सान्त्व-प्रयोगः।
९. न खलु चन्द्रिकया प्रकाशयितव्ये तारकायाः प्रभा अनुरुध्यते।

कवि की शैली में प्रभविष्णुता है, जब वह कहता है—अभित्तिचित्रायितः खल्विदानीमेषोऽभिलापः।

अनुप्रास की मोहिनीशक्ति कवि को सुविदित है। वह ध्वनि-साम्य की छटा अनेक स्थलों पर स्फुरित करने में सफल है। यथा,

दयया दर्शय दयितां परथा न वृथा क्षणं क्षमे वस्तुम्।
मुक्तं दुष्कृतमपि वा समयो मयि ते समार्जितुं नियते ॥३·७

कुटिलकोमलकुन्तलशाखिना कुरवकस्तवकस्तनशोभिना।
कुसुमभाजनभासुरपाणिना कुतुकितं मम ते वपुषाधुना ॥३·२१

प्रतिकर्तुमनाः पुरतः प्रपतत् परिहृत्य मया समिति प्रहृतिम्।
प्रतनाधिपतिः प्रथितो मथिताः प्रपलायत तद्बलमप्यखिलम् ॥६·१२

नारायण की शैली सुबोध है। एक उदाहरण लें—

कमलकेतु—धन्यं स्वमधुना मन्ये।
मेधावी—कृतकृत्योऽस्मिसाम्प्रतम्।
सुमेधा—चरितार्थश्रमो मेऽद्य।
मन्दाकिनी मरुद्वृधे—निवृत्तं नः प्रयोजनम् ॥७·३६

शृङ्गार के साथ वीर रस का सफल सहयोग इस नाटक में मिलता है। रस-योजना को कवि ने इस प्रकार बताया है—

उत्क्षिप्तो रसः कोऽपि वीरः कमलकेतुना।
करुणाद्भुतशृंगारैरनया वर्बुरीकृतः ॥६·२१

नाट्यशिल्प

कवि ने अपने नाट्यशिल्प का परिचय दिया है—

न बीजं कार्यस्याधिगतमपि यत्नो न विदितो
न संरम्भो ज्ञातो न पुनरवमर्शोऽप्यवधृतः।
कृता चेदम्पर्यस्यवसितिरपि त्वेतदखिलं
फले नैवोन्नेयं कृतमिव पुरा जन्मसु नृणाम् ॥६·१६

कहीं-कहीं कवि ने पूर्ववर्ती नाटकों से संविधानों को ग्रहण किया है। यथा उत्तर-रामचरित से--

तावत् प्रतिज्ञावसरेऽधिकाशि मया पुरा या शरणीकृतासीत् ।
गङ्गेव सास्माननुगृह्णातीत्यमङ्गीकृताङ्गीमववारयेनम् ॥७·१६

नारायण की नाट्यकला में संवरण की अभूतपूर्व महिमा है। प्रायशः चरितनायक परस्पर अज्ञात रहकर और अपने व्यक्तित्व और मन्तव्यों को अप्रकाशित रखकर कुछ रहस्यमय विधि से काम करते हैं। मन्दाकिनी ने कथा-प्रपञ्च की इस प्रवृत्ति को इंगित करके कहा है—

फलाधिगमात् प्रकाशितमिदानीमखिलं संवरणम् ।

अन्त में संवरण जब अनावृत्त होता है तो प्रेक्षक को अद्भुत चमत्कार की अनुभूति से सर्वशः आनन्द होता है।

नाटक को फलागम तक समाप्त न करके आगे बढा कर विशेष रूप से कुछ मांगलिक संविधानों को अन्त में रखने की प्रवृत्ति रही है। इस नाटक में जैसे-तैसे विवाह तक तो कथा प्रपञ्च ठीक था। इसके पश्चात्—

डिल्ली पल्लीवदाक्रान्ता राज्यं प्राज्यं वशे कृतम् ।
अपि विश्वेश्वरः काश्यां विधिवत् सन्निधापितः ॥७·२८

मन मे कुछ विशेष मन्तव्य रखकर कोई व्यक्ति प्रश्न करे और उत्तर देने वाला मिथ्यावाद से उसके प्रश्न के उत्तर से सत्य को प्रकट न होने दे—ऐसी स्थिति रंग-पीठ पर अभिनय द्वारा मनोरञ्जक बनाई गई है। सारसिका मदनातङ्कित है—यह जाननेवाली कलावती का सारसिका से प्रश्नोत्तर होता है--

कलावती—सारसिके कस्मात् कृशासि ।
सारसिका—व्रतनियमात् ।
कलावती—कुतस्तेऽङ्गेषु पाण्डुरता ।
सारसिका—सखि प्रत्यग्रदुकूलनिचोलनात् तव तथा प्रतिभाति ।
कलावती—कस्मादिदानीं दीर्घं निःश्वससिपि ।
सारसिका—पुष्पावचयपरिश्रमात् ।

अन्त में कलावती को कहना पड़ा—

सत्यं कृशासि व्रतखेदनियन्त्रणाभिर्गौरी च नूतनदुकूलनिचोलनेन ।
निःश्वासिनी च कुसुमावचयैरिदानीं वाचासु व्याहरसि किं पुनरन्यदन्यत् ॥३.१५

इसी अङ्क मे कलावती भी झूठ बोलकर चतुरिका को झाँसा देती है कि फूल चुनने में देर होने से सारसिका की पूजा समाप्त न हुई।

तृतीय अङ्क मे नायिका का प्रणयोपक्रम चतुरिका स्वयं देख न ले—इसके लिए उसकी आँखें मूद लेने का रंगमंचीय संविधान रोचक है।

रङ्गपीठ पर नायक नायिका का आलिंगन करता है—यह परवर्ती नाट्यशास्त्रियो के मत के विरुद्ध है, किन्तु अभिनयोचित है। यथा तृतीय अङ्क मे—

राजा—(नायिकाङ्गं किंचिन्निजाङ्गेन पार्श्वे संश्लेपयन् स्पर्शसुखमभिनीय सफलकोद्भेदं स्वगतम्)

किमाश्च्योतैः सिक्तो मलयजरसानामविरलैः
किमासान्द्रैरिन्दोरमृतविसरैर्वा कवचितः।
किमामज्जन्मध्ये हिमसरसि मग्नोऽहमथवा
घनः सर्वाङ्गीणः प्रविसरति यत् कोऽपि जडिमा ॥३·२७

चतुर्थ अङ्क मे भी नायक नायिका का आलिंगन करता है।

एकोक्ति

अद्भुतपञ्जर के द्वितीय अङ्क मे एकोक्ति का अनोखा प्रयोग हुआ है, जिसमे कुछ देर नायक नायिका को थोडी दूर से देखता हुआ भी उसके निकट न जाकर उसकी एकोक्तियों को सुनकर प्रतिक्रियात्मक एकोक्ति प्रस्तुत करता है।

तृतीय अक मे अन्य प्रकार की एकोक्ति है, जिसमे रङ्गपीठ पर राजा के साथ विदूषक तो है, किन्तु राजा उसे अनदेखा करके एकोक्ति-निमग्न है। विदूषक स्वय कहता है---कथमुपस्थितमपि मामेप न प्रेक्षते। विदूषक कुछ कहता भी है तो

राजा—(अश्रुतिमभिनीय)

मन्दाक्षसंहृतविकस्वरदृष्टिपातं मन्दस्मितस्नपितकर्बुरिताधरोष्ठम्।
मामेव सप्रणयमीषदपाङ्गयन्त्या वक्त्रारविन्दमरविन्दहृश. स्मरामि ॥३·२

चतुर्थ अंक मे राजा की एकोक्ति आरम्भ मे ही है। रंगपीठ पर वह अकेले मानवती पत्नी के आक्रोश का वर्णन करता है। वह असमञ्जस मे पडी सारसिका के प्रति महानुभूति प्रकट करता है। वह देवी को प्रसन्न करने की सोचता है।

कपट-नाटक

सत्रहवी शती के नाटको मे नायिका को ग्रहाविष्ट बनाकर उसको नायक से मिलाने की कापटिक योजना प्रवर्तित थी। इसमे सारसिका के ग्रहाविष्ट होने की कथा कपट-नाटक है। नायक से मिलने के लिए उसने यह नाटक रचा था। ग्रह का प्रभाव दूर करने के लिए नायिका को लोकपावनी के पास पहुँचाया गया, जहाँ नायक योजनानुसार उससे समागम के लिए उपस्थित हुआ। राजा ने काम के प्रभाव के विषय मे कहा है—

घोर गभीरमवधीर्य निरङ्कुश मां प्रावीवृतन् महति वालिशचापलेऽस्मिन्।
मुग्धां पुनः परवतीमतिकातरांतामध्यापयत् कपटनाटकसंविधानम् ॥

सारसिका नायिका ने कहा है---

कदाप्यदृष्टपूर्वां भगवती प्रथमदर्शने एव ग्रहावेश इति कपटाचरणेन कथं प्रतारयामि।

कलावती ने कहा—

हा धिक् हा धिक्, अनवहितया मया सविहितस्य कपटनाटकस्य अन्यथैव निर्वहणंसम्पन्नम्।

छायातत्त्व

सारसिका के द्वारा द्वितीयाङ्क में राजा का प्रतिबिम्ब शृंगार-सरोमणिभित्ति पर देखना और नायिका का यह कहना—

अहो मणिभित्तिप्रतिबिम्बितस्य महाभागस्य प्रतिकृतेः सुन्दरत्वम्। इत्यादि छायातत्त्व है।

भावात्मक उत्थान-पतन

भावों के उत्थानपतन की अपनी नाटकीय योजना को कवि ने इस प्रकार उदाहृत किया है—

अम्भो विधे, अमृतेन समं हालाहलमपि सृजतः नैतदद्‌भुतम्।

यह योजना पूरे नाटक मे दर्शनीय है।

ऐतिहासिक घटनायें

अद्‌भुतपञ्जर के अनुसार १६६३ ई० के महामघ के पश्चात् आने वाले विजयादशमी के पहले यवनो का उच्छेद हुआ था।

यवनों ने १६६१-६२ ई० मे काशी को घेर लिया था।

तञ्जोर में शाहजी से निगृहीत होकर दिल्लीश की सेना ने १६६२ ई० में काशी पर आक्रमण किया। विजयसेन की अध्यक्षता मे आई हुई शाहजी की सेना की सहायता मे काशीराज ने यवन सेना के छक्के छुडा दिये। इसके पश्चात् विजयसेन सेना सहित दिल्ली पर आक्रमण करने के लिए चला गया।

इस नाटक के अनुसार काशिराज ने १६६३ ई० मे विश्वेश्वर की प्रतिष्ठा की। अन्त में शाहजी का साम्राज्याभिषेक हुआ।

इनमें से कोई भी घटना इतिहास से मेल नहीं खाती, यद्यपि यह नाटक सर्वथा समसामयिक है। इतिहास के अनुसार शाहजी तो मुगल राज्यपाल को कई लाखों की प्रतिवर्ष भेंट देकर अपना अस्तित्व बनाये रखता था।

राजनीति

भारतीय नरेशों को इस्लामी राजाओं की विध्वंसक प्रवृत्तियों से राष्ट्र की रक्षा करने के लिए एकीभूय प्रयास करना चाहिए—यह कवि का मन्तव्य है, जो इस नाटक में अनेक स्थलों पर व्यक्त होता है। उनकी एकता की चर्चा इस प्रकार पञ्चम अङ्क मे है—

राजा—प्रायस्तातचरणैः सौहार्दमपत्यसम्बन्धेन परिपालयेयमिति कमलकेतोराशयः।

राष्ट्रीयएकता

गंगा महामघ में कुम्भकोण नगर के जलाशय मे और शिवगंगा में भी आ जाती हैं। उस गंगा का कावेरी से सख्य है। यह सब राष्ट्रिय एकता के मूल शाश्वत सत्य हैं। शाहजी के द्वारा वाराणसी के राजा की रक्षा और विश्वनाथ की प्रतिष्ठा करवाने का श्रेय भी इसी दिशा मे इंगित करता है।

अध्याय ३२

अमृतोदय

अमृतोदय के प्रणेता गोकुलनाथ सुप्रसिद्ध महाकवि विद्यानिधि पीताम्बर के पुत्र थे। उनका आविर्भाव सत्रहवीं शती मे हुआ।[1] उनके द्वारा प्रणीत मासमीमासा मे लिखा है—सम्प्रति हि शकाब्दा एकत्रिंशदधिकषोडशशती १६३१। इससे इसकी रचना १७०६ ई० मे प्रमाणित होती है। विण्टरनिज आदि विद्वानो के द्वारा सम्मत अमृतोदय का रचनाकाल १६६३ ई० समीचीन प्रतीत होता है।

गोकुलनाथ विहार मे मिथिला के मैथिली-ब्राह्मण फणदहा (फनहवार) के निवासी थे। ऐसा लगता है कि गृहस्थाश्रम का आरम्भिक समय उन्होंने गढ़वाल जनपद के श्रीनगर के राजा फतहशाह (१६८४–१७१६ ई०) के समाश्रय मे बिताया। उन्होंने अपनी रचना एकावली मे लिखा है—

वृत्तसागररत्नाना सारमुद्धृत्य निर्मिता।
एकावली फतहशाह तव कण्ठे लुठत्यसौ॥

उन्होंने मासमीमासा की रचना मिथिला के राजा राघव सिंह के प्रीत्यर्थ की थी। राघव सिंह ने १७०३ से १७०८ ई० तक राज्य किया। गोकुलनाथ ने कुण्ड-कादम्बरी नामक कर्मकाण्ड का ग्रन्थ अपनी कन्या कादम्बरी के कुण्ड मे डूब जाने पर की थी। उसको सम्बोधित करके उन्होंने इस ग्रन्थ मे कहा है—

कोऽयं लोकः क इव विषयः किं पुरं को निवासः।
यस्मिन्नस्मद्विमुखसहृदया त्वं निलीय स्थितासि॥

कवि की मृत्यु काशी मे ९० वर्ष की अवस्था मे हुई। उन्होंने दो रूपकों की रचना की, जिनमें से अमृतोदय प्रतीक नाटक है और मुदितमदालसा नाटिका है, जिसमे विश्वावसु की कन्या मदालसा का कुवलयाश्व से विवाह वर्णित है।[2]

गोकुलनाथ के प्रकाशित ग्रन्थ अमृतोदय, पदवाक्य रत्नाकर, वाक्यप्रकाश-विवरण, सूक्तिमुक्तावली तथा मासमीमांसा हैं। इनके अप्रकाशित ग्रन्थो की संख्या लगभग ३० है, जिनमे से प्रायशः दर्शन के और कुछ धर्म, ज्योतिष तथा कर्मकाण्ड

---

१. कीथ ने गोकुलनाथ को सोलहवी शती मे माना है। The Sanskrit Drama P. 343. कृष्णमाचार्य के अनुसार गोकुलनाथ ने एकावली की रचना श्रीनगर के १६वी शती के फतेहशाह के प्रीत्यर्थ की। A History of Sanskrit Literature P. 655। विण्टरनिज के अनुसार गोकुलनाथ ने सम्भवतः १६६३ ई० मे अमृतोदय की रचना की। डा० डे भी इसकी रचना का समय १६६३ मानते हैं।

२. अमृतोदय काव्यमाला ५९ मे प्रकाशित है। मुदितमदालसा हस्तलिखित Descriptive Cat. of Skt. Mss in Oriental Ms. Lib Madras XXI. 8444 में है।

के हैं। उन्होंने रसमहार्णव नामक रससिद्धान्त-विषयक ग्रन्थ लिखा है और एकावली तथा वृत्ततरंगिणी में छन्दःशास्त्र का विवेचन किया है। उन्होंने काव्यप्रकाश की एक टीका भी लिखी।

उपर्युक्त सब ग्रन्थों के विषय और उच्चस्तरीय निबन्धन से प्रतीत होता है कि गोकुलनाथ साहित्य विद्या के साथ-साथ दर्शन, विशेषतः न्याय, के प्रकाण्ड पण्डित थे और धर्मशास्त्र में उनकी प्रगाढ अभिरुचि थी।

गोकुलनाथ ने अपने जीवन का उद्देश्य बताया है—

जननि तव पुमर्था एव पादाः प्रयन्ते
प्रथमचरणबद्धो निर्भरं रौमि वत्सः।
चरमचरणमूल - प्रस्नुतां स्तन्यधारा-
ममरगवि कदा ते मुक्तबन्धः पिबेयम् ॥१.११

गोकुल वेदान्ती थे, स्वभाव से अतिशय विनम्र और हसन।

अमृतोदय का अभिनय रात्रि के समय हुआ था। अभिनय के लिए रात्रि सर्वोत्तम समय है—

नोद्वेजयन्ति जनतामभिनयकर्मणि न खेदयन्ति नटान्।
आयामिनः सुषीमा व्यायामसहा निशायामाः ॥१.४

अमृतोदय का आरम्भ होता है सुगतागम नामक सेनापति के द्वारा श्रुति की कन्या प्रमिति के अपहरण से। श्रुति को सुगतागम के सैनिक अनृत आदि खदेड़ रहे हैं। आन्विक्षिकी तर्क के साथ श्रुति की रक्षा के लिए अग्रेसर है। युद्ध में प्रमिति की रक्षा की गई और उसे पुरुष के पास पहुंचा दिया गया। इधर परामर्श का पक्षता से विवाह हो गया। उदयन पक्षता और परामर्श की रक्षा करने के लिए चार्वाक से युद्ध कर रहा है। चार्वाक मारा गया। अतिक्रूर सोमसिद्धान्त वर्धमान के द्वारा मारा गया।

पुरुष पुरुषोत्तम से वियोग होने के कारण सन्तप्त है। उसके विलाप को सुनकर पतञ्जलि उसे सिद्धि से संयुक्त करते हैं, जिससे वह परमात्मा को देख ले।

पुरुष को संयम के द्वारा समाधि सिद्ध हो गई, जिससे वह परम पुरुष पुरुषोत्तम का साक्षात्कार करने लगा। पुरुषोत्तम ने बताया है कि पात्रवत् आचरण करते हुए पुरुष मेरे लिए हास उत्पन्न करने वाले हैं। पुरुष ने पुरुषोत्तम से विवाद करते हुए अपने आपको उसमें विलीन होने की अभ्यर्थना की। विवाद के द्वारा पुरुष और पुरुषोत्तम के सापेक्ष सम्बन्ध और स्वरूप का विशदीकरण है। जीवन्मुक्त की स्थिति में कर्मगण और महामोह का विलय हो गया। अपवर्ग क्षेत्रज्ञ नगर का अधिपति बना।

आन्वीक्षिकी, बुद्धमत और तथागत के संवाद में बुद्धमत नैरात्म्य तथा क्षणिकता का सिद्धान्त प्रतिपादित करता है। जैनमत ने निर्जरा और संवर के द्वारा बन्धन-विमुक्ति को उपादेय बताया। पाशुपत सिद्धान्त के अनुसार शिवसारूप्य अपवर्ग है।

वैष्णवमत में भक्ति का प्रतिपादन किया गया है। इसमें वैकुण्ठसारूप्य अपवर्ग है। आन्वीक्षिकी के आगे न डट सकने के कारण इन सबका प्रध्वंस हुआ।

ब्रह्मविद्या, सांख्ययोग, मीमासा आदि ने अपवर्ग का अभिनन्दन करते हुए कहा—

बुद्धिः शरीरं विषयेन्द्रियाणि सुखं च दुःखैकनिकेतनानि।
विवेकिने केवलमात्मविद्या विद्योतितात्मा स्वदतेऽपवर्गः ॥५·१२

इसी अपवर्ग को लक्ष्य करके गोकुल ने यह नाट्य प्रबन्ध प्रणीत किया।

इस प्रबन्ध मे नाटकीय अभिनय के द्वारा दार्शनिक सुसंस्कृति का निष्ठापन करने में गोकुल निःसन्देह विदग्धतम हैं। इसका आध्यात्मिक ऊहापोह सुबोध है।

रस-विमर्श

दर्शन-विषयक होते हुए भी अमृतोदय शृङ्गारामृत को सोत्साह उछाल रहा है। इसमे एक नायक परामर्श सोल्लास आत्मनिवेदन कर रहा है—

टङ्कोत्कीर्णा त्वचि, विलिखिता नेत्रपत्रे, निषिक्ता
स्वान्ते, स्यूता वचसि, निचिता पार्श्वतः पृष्ठतश्च।
धारारूढा हरिति पुरतः काचसद्येव काचिन्
नाना भूत्वा वरतनुरिह प्रायशः प्राविशन् माम् ॥२·७

अमृतोदय में अङ्गीरस शान्त है। इसमे वेदान्ती, वैष्णव, पाशुपत, जैन और बौद्ध सभी अपवर्ग के द्वारा मोक्ष या मुक्ति पाना चाहते हैं, यद्यपि इन सबमें मार्गभेद है, जो उनके विवाद का विषय है। इसका भरत वाक्य है—

संसारात् प्राप्य निर्वेदं सर्वे निर्वाणलिप्सया।
श्रवणात् मननाद् ध्यानात् पश्यन्तु पुरुषोत्तमम् ॥५·२६

गोकुल हास्य के प्रेमी हैं। उनकी प्रमिति ब्रह्मा से कहती है—

विषमनिगमकाननान्तशाखा ततिषु निलीय परान्निरीक्षमाणः
परिणति विदलज्जगत्कपित्थप्रसनकपे सुचिरान्निरूपितोऽसि ॥२·२४

अर्थात् ब्रह्मा वानर है।

द्रुहिणभवनपद्मबीजमान्ना मणिपरिवर्तनतत्परात्मनस्ते।
ग्रसितुमखिलमेव जन्तुजातं विजनयता विदिता बिडालवृत्तिः ॥१·२५

अर्थात् ब्रह्मा की बिडाल-वृत्ति विदित है।

कंचुकी का हास्यास्पद आत्म-परिचय है—

कुब्जेन त्रिपद पङ्गुः शिशुजनत्रासाय सृष्टो मया। २·१

परिहास-धारा मे पशुपति की भी छीछालेदर गोकुल ने की है। यथा,

जातिं विहाय कनके रमते पशूनां भर्ता बिभर्ति शिरसा कृपणः कपर्दम्।
राजेति वक्रगतिनं तिलकीकरोति तस्मादसौ परिभवास्पदमीश्वरोऽपि ॥ ३·४

दर्शन के इस नाटक में वीर रस की सम्भावनायें प्रचुर हैं। यथा, आन्वीक्षिकी और बौद्धों की लड़ाई है—

अन्योन्यव्यतिघट्टनानलकणाङ्कूराः करेभ्यो द्विषां
सहत्यैकपदे पतन्ति परितो याः स्मायुवश्रेणयः।
बाणैस्तास्त्रसरेणुपुञ्जपदवीमानीय सोऽयं जनो
रक्षामण्डलमात्मनो व्यरचयन् भूमण्डले पांसुभिः॥ १.२६

प्रकृति-परिशीलन

अमृतोदय में भावात्मक नायकादि प्रकृति की बहुलता है। उनके साथ ही मानव प्रकृति है पतञ्जलि, जावालि, महाव्रतकापालिक आदि। प्रतीक नायकादि नाममात्र के लिए भावात्मक हैं। उनका तो मानवों से कुछ कम गहरा प्रणय-व्यापार नहीं है। पक्षता और परामर्श का प्रेम चल रहा है तो परामर्श उसके विषय में स्वप्न देखता है—

स्तम्भेन कर्मणि तनोः स्थगितेऽपि काम-काष्ठां परामधिरुरोहतरां वरोरुः।
गीर्गद्गदेन यदपि ग्लपिता तथापि वाचामगोचरमवोचत लोचनान्तः॥

प्रकृति को इस नाटक में प्रकृति-रूप में स्थापित करके पुरुषों को पात्र बनाया गया है। यथा,

प्रकृतिचरितनाट्यसूत्रधार भ्रमयसि मामियतीषु भूमिकासु।

नाटक के पुरुष और पुरुषोत्तम नामक कथानायक परिहसन हैं—हँसते-हँसाते हैं। उनकी बात-चीत का स्तर हँसोड़ों जैसा है अतिशय आत्मीय। यथा,

भवपथपथिकोऽस्मि वाटपाटच्चर मिलितोऽस्मि विलुण्ठ सम्पदो मे।
अहमपि भवदन्तरं प्रविश्य ध्रुवमचिरेण हरामि ते विभूतीः॥४.६८

फिर पुरुष कहता है पुरुषोत्तम से—

व्यवधिरुपरराम भूविविक्ता प्रभवसि गूढगतिर्न मां प्रहर्तुम्।
तदिह भवतु तावदेकशेषा-परविलयावधिरावयोर्विमर्दः॥४.७८

शैली

विण्टरनित्ज ने इस नाटक की प्रशंसा करते हुए लिखा है—A very learned work is also the drama Amrtodaya in five acts of Gokulanatha of Mithila.[1]

गोकुल की विचारणा अपने अर्थगाम्भीर्य के कारण प्रभावशालिनी बनकर निखरी है। निर्वेद ने लक्ष्मी, कल्पवृक्ष और चिन्तामणि की निस्सारता व्यक्त की है—

जहिहि तरलां लक्ष्मीमेतां त्यजामरपादपान्
हृदय हतया किं ते चिन्तामणेरपि चिन्तया।

---

1. Hist. of Indian Lit. Vol III. Part I page. 282

जठरदहनज्वालाशान्त्यै यदि स्युरमी तदा
स्वपितुरुदधे रौर्वं निर्वापयेयु रुपर्बुधः ॥३.१

कवि का रूपक सफल और सार्थक है। उसने बद्धपुरुष का पुरुषोत्तम के प्रति निवेदन व्यक्त किया है —

बहुविध भवभूमिकाभिराभिर्नटयसि नाथ यथा तथा नटामि।
कृपण गमयिता भवानविद्याजवनिकयान्तरितः कियन्त्यहानि॥

अन्यत्र पुरुषोत्तम की कुमारी कन्या श्रुति है—

श्रुतिजनक रटत्यसौ कुमारी तव दुहिता बहिरेत्य नेति नेति।
व्यवहितनिकटस्थितोऽसि यस्मात्त्वयि मिलितेऽपि ममातिथेः क्व भोगः॥

शाब्दिक क्रीडा के द्वारा हास्य की उत्पत्ति करने मे गोकुल निपुण हैं। यथापुरुष और पुरुषोत्तम का गलचौरा है—

अचिरपरिचितो हरे समूलं हरसि विशेषगुणं परस्य।
प्रथयसि खलतामिमामपूर्वां कथयसि यद्विगुणत्वमात्मनोऽपि।।४ १७

अपि च कलत्रदुश्चरितमर्षणस्येर्ष्याकषायमुषितमनस्तव किमनेन प्रबोधेन। चतुर्थ अङ्क से।

गोकुल अपनी मस्ती में बातों को सीधे कहते ही नहो। उन्होंने अपनी इस शैली का परिचय अपने ही शब्दों में इस प्रकार दिया है —

अपगतपदपाटवोऽपि गर्भाद् उपनिषदामधुनोद्गतः प्रबन्धः।
जनयतु तव कौतुकं कलेन प्रतिपदविस्खलितेन जल्पितेन ।।४.२६

अध्याय ३३

राघवाभ्युदय

राघवाभ्युदय के प्रणेता भगवन्तराय गङ्गाध्वरी तंजौर के राजा एकोजी के अमात्य थे। एकोजी का शासनकाल १६७६ से १६८३ ई० तक था। इस नाटक का सर्वप्रथम अभिनय त्र्यम्बकराय मखी के द्वारा सम्पादित यज्ञ के अवसर पर १६९६ ई० में हुआ।[1] भगवन्त के द्वारा प्रणीत दो अन्य रचनायें मुकुन्दविलास काव्य और उत्तरचम्पू मिलती हैं।

राघवाभ्युदय में रामकथा का आरम्भ विश्वामित्र के साथ राम के जाने के समय से होता है और इसका अन्त रावण-विजय के पश्चात् राम-राज्याभिषेक से होता है।

राघवाभ्युदय में रामकथा का अनेकत्र नयारूप मिलता है। इसके अनुसार राम परब्रह्म परमात्मा के अवतार हैं। उन्हें विश्वामित्र अपने यज्ञ की रक्षा के लिए ले जाते हैं और वहाँ से वे दशरथ के धनुर्यज्ञ में पहुँचते हैं, जहाँ उन्हें सीता देखने को मिलती हैं और वे प्रणय-सूत्र मे बँध जाते हैं। राम ने प्रासाद पर बैठी सीता की छाया मिथिलोद्यान के जलाशय में देखी और उन पर लट्टू हो गये। इधर सीता ने उन्हें देखकर नेत्र के कज्जल से राम का चित्र बनाकर इस कलाकृति को ही वास्तविक मानकर आनन्द पाया।

परशुराम क्रुद्ध होकर आये और राम का कटुवचन से तिरस्कार किया। राम ने उनका दमन किया। उद्यान में राम और सीता सम्मुख तो हुए, पर उनमें बात तक न हुई।

रावण सीता को अपनाना चाहता था। उसने सीता को पाने के लिए मायात्मक व्यापार किये और सर्वप्रथम अपने शुक को दूत बनाकर सीता के पास भेजा। इस शुक ने सीता के शुक का रूप धारण करके रावण के प्रणय का निवेदन किया, पर शीघ्र ही भेद खुला और वह तिरस्कृत हुआ। रावण ने इसके पश्चात् रावण को स्वर्णमृग बनाकर भेजा। उसके पीछे सीता ने राम को दौड़ाया, पर विश्वामित्र के बुलाने पर वे उनकी यज्ञशाला की ओर गये और वहाँ शिव-धनुष लेकर उसीसे मारीचमृग को मार डाला। तृतीय अङ्क में राम का षडाननादि से युद्ध भी होता है। रावण ने इस अङ्क मे सीता का मिथिला से ही अपहरण किया।

चतुर्थ अङ्क मे राम सीता को ढूँढने निकलते हैं। वे सीता के पैरों के चिन्ह देखकर रोते हैं। वे उन्हें ढूँढते हुए अगस्त्य के आश्रम मे जा पहुँचते हैं। पंचम अङ्क में राम का सुग्रीव से सख्य हुआ। सुग्रीव जब वालि से लड़ रहा था, उस समय राम ने सुग्रीव की ओर से आकर वालि के आमने-सामने होकर उसे मार डाला।

---

१. राघवाभ्युदय की हस्तलिखित प्रति सरस्वती महल लाइब्रेरी तंजौर में है।

राम के लिए हनुमान ने लंका जाकर पूँछ की अग्नि से लंका जलाई फिर राम-रावण युद्ध हुआ, जिसे सीता ने प्रत्यक्ष देखा, क्योंकि शची से सीता को वह दिव्याञ्जन प्राप्त हो चुका था, जिससे अप्रत्यक्ष भी प्रत्यक्ष हो जाता है। षष्ठ अङ्क में राम ने युद्ध-भूमि मे रावण को मार डाला। सप्तम अङ्क में राम और सीता का विवाह होता है और रामराज्याभिषेक के अवसर पर विष्णु ने प्रसाद रूप मे आकाश से जो माला गिराई, वह राम के गले में आ पड़ी।

राघवाभ्युदय मे छायातत्त्व है राम का प्रासाद पर बैठी सीता का निकटवर्ती सरोवर में पड़ा हुआ प्रतिबिम्ब देखकर सीता के प्रति आसक्त हो जाना। सीता का अंगुलि पर नेत्र के काजल से राम का चित्र बनाकर प्रसन्न होना भी छायातत्त्व है।[1] तृतीय अङ्क में पुनः छायातत्त्व है रावण के दूत शुक का सीता के क्रीडाशुक रूप में प्रकट होकर सीता को ठगना। क्रीडाशुक का रंगमंच पर आना मात्र भी छाया-तत्त्व है।

नायकादि प्रकृति को अलौकिक शक्तियों से युक्त किया गया है। पंचम अङ्क में सीता को शची एक ऐसा अंजन देती हैं, जिससे वह राम-रावण युद्ध को अदृश्य होने पर भी देख रही है।

प्राचीन कथा को भगवन्तराय ने मनमाना बदला है। सीता और राम का विवाह उन्होंने रावण के मारे जाने के पश्चात् बताया है। रावण का सीता को मिथिला से अपहरण करना ऐसा ही प्रकरण इस नाटक मे है।

राघवाभ्युदय में स्त्री प्रकृति कम है। जहाँ पुरुष प्रकृति की संख्या २३ हैं, वहाँ स्त्रियाँ केवल ५ हैं।

भगवन्त का शैल्पिक अभिनिवेश नायक और नायिका के चित्रों के सन्निवेश से स्पष्ट है। प्रथम अङ्क में सीता के चित्र में हाथ और पैर की रेखायें तक दिखाई गई हैं। सीता ने तो नेत्राञ्जन ही से राम का चित्र अपनी अंगुलियों पर बना दिया था।

राघवाभ्युदय के पाँचवें अङ्क में सीता के प्रीत्यर्थ एक गर्भाङ्क नाटक प्रयुक्त हुआ है। इसकी प्रकृति दो गन्धर्वों की है। इसमें राम के द्वारा सीता के अन्वेषण से लेकर हनुमान् के लङ्का-प्रस्थान तक की कथा है।

युग के अनुरूप कवि का सर्वाधिक प्रिय छन्द शार्दूलविक्रीडित है, जिसमें उसने ५२ पद्यों की रचना की है। दूसरा प्रिय छन्द वसन्ततिलका ३३ पद्यों में है। उसने २७ पद्यों में गीति छन्द रखा है। उसने मृग के दौड़ने का वर्णन द्रुतविलम्बित छन्द में यथायोग्य ही किया है।[2]

भगवन्त की कुछ सूक्तियाँ इस प्रकार हैं—

निसर्गभीरवः पुंसामाभिमुख्यं कुलांगनाः।
न सहन्ते दृश इव प्रसादं रवितेजसाम्॥२·१३

१. राघवाभ्युदय के द्वितीय अङ्क से।

२. राघवाभ्युदय १·२५

भृत्यानां भवति हि जीविकैव कष्टा ।१·१३
न वीरसमयोचितं द्विषि पराङ्मुखे मर्दनम् ॥५·५६

भगवन्त की शैली सरल होने के कारण नाट्योचित है। यथा,

कासार इव विनाब्जं चान्द्रमसबिम्बमिव विनाकाशः ।
नायं भाति गवाक्षः सम्प्रतिवदनं विना तस्याः ॥२·१६

इस पद्य में विनोक्ति अलंकार की शोभा व्याप्त है। विरोधाभास है—

रामे कुर्वति चन्द्रशेखरधनुर्दण्डे गुणारोपणम् ।
दोषारोपणमेव जातमखिलं क्षोणीभुजां विक्रमे ॥

अध्याय ३४

कमलिनी-कलहंस

कमलिनी-कलहंस नाटक[1] के प्रणेता नीलकण्ठ के विषय में सूत्रधार ने इस नाटक की प्रस्तावना मे सूचना दी है। यथा,

अस्ति केरलेषु संगमग्रामनाम गृहम् ।
अभूवन् गाधिकुलजाः कुशला. सर्वकर्मसु ।
द्विजा हरिपदाम्भोजस्मरणाहतकिल्विषाः।
आसीन्महत्तरस्तेषां नीलकण्ठ इति स्मृतः
तृतीयस्तस्य तनयो नीलकण्ठः कविस्त्विह् ॥

अर्थात् केरल मे सगमग्राम में गाधिकुल मे नीलकण्ठ के पुत्र नीलकण्ठ थे। संगम ग्राम आधुनिक कुडल्लूर है। वही प्रसिद्ध नम्बूतिरि कुल मे सम्भवतः १७ वी शती में नाटककार नीलकण्ठ का प्रादुर्भाव हुआ।[2]

कमलिनी-कलहस का प्रथम अभिनय अनन्तासनपुर मे विष्णु की यात्रा के अवसर पर हुआ था।

कथावस्तु

कमलिनी का विवाह कलहस से हो, ऐसा दुर्गा देवी का आशीर्वाद है। एक दिन विज्ञानवती नामक आचार्या की योजना से पुष्पावचय करती हुई कमलिनी अपनी सखी कुमुदिनी के साथ दुर्गा के मन्दिर के पास पहुची, जहाँ थोड़ी दूर पर नायक कलहंस पहले से ही था। उसने नायिका को देखा तो परवश हो गया। उसके मुँह से निकल पड़ा—

का न्वियं कमनीयाङ्गी कामं जनयती मम।
उद्याने विद्युदुल्लासहृद्यद्युतिमती भवेत् ॥१·२०

नायक और नायिका परस्पर मिलकर एक दूसरे के हो गये। फिर नायक और नायिका अकेले रह गये तो नायक ने उसका आलिगन करना आरम्भ किया और नायिका बचने लगी। इसी बीच भगवती विज्ञानवती कुमुदिनी के साथ आ पहुची। लतागृह मे वे दोनो साथ मिले। विज्ञानवती ने उन्हें आशीर्वाद दिया कि तुम दोनों शिव-पार्वती आदि की भाँति योग्य दम्पती बनो।

रात मे कमलिनी कलहस के लिए विकल रही। उधर कलहंस विज्ञानवती के बुलाने पर उनके पास आ पहुचा। तभी 'बचाओ' का आर्तनाद सुनाई पड़ा। हाथी ने कमलिनी पर आक्रमण किया था। बचाया कलहंस ने। वह चेतनाहीन कमलिनी

---

१. इस नाटक का प्रकाशन केरल विश्वविद्यालय से १८९ सख्या मे हुआ है।

२. The Contribution of Keral to Sanskrit Literature P, 219 के अनुसार वे १८ वी शती मे भी नीलकण्ठ हो सकते हैं।

को लेकर विज्ञानवती के पास पहुंचा। कलहंस को कुमुदिनी के अनुसार कमलिनी का पति बनने का अधिकार प्राप्त हुआ तो वह कमलिनी के पैर पर गिर पड़ा।

दोनों का विवाह हो गया। फिर तो कलहंस के अनुसार नायक की मधुर अभ्यर्थना से वशीकृत नायिका ने कहा—

प्राप्ते सुन्दरि कामुको न सहते कालक्षयं संगमे ।५·११

यत् ते छन्दो भवति सर्वं विदधातु। अहं तावल्लज्जया अनीशास्मि।

अन्तिम अंक में नायिका पितृगृह से विदा लेती है। इस अवसर पर विज्ञानवती का नायिका को उपदेश अभिज्ञान-शाकुन्तल के चतुर्थ अङ्क के समान है। कुमुदिनी सखी का विवाह नायक के मित्र चक्रवाक से हो गया।

प्रायः प्रमुख चरित्र-नायकों के नाम प्रकृति से लिए गये हैं। यथा, कमलिनी का पति कलहंस, कुमुदिनी का पति चक्रवाक आदि। ये नाम यथायोग्य संगमनीय हैं।

संविधान

नायिका को अप्रपाद पर खड़ा कर पुष्पावचय प्रथम अङ्क में कराया गया है, जिससे नायक को उसकी असाधारण कायमङ्गिमा देखने को मिलती है। यथा,

उत्तानवक्त्रकमुदञ्चितबाहुयुग्ममुन्मार्जितत्रिवलिविस्तृतकाययष्टि।
पादाग्रविष्ठितमहीतलमात्मकम्पमस्याः स्थितं हरति मे हृदयं मृगाक्ष्याः।१·२२

नायक को थोड़ी दूर पर छिपाये रख कर उसके द्वारा नायिका पुष्पावचादि मनोहारिणी प्रवृत्तियों का दर्शन और वर्णन प्रस्तुत करने की रसात्मक योजना पहले अङ्क में अन्य कई नायकों के समान ही है।

श्लेषात्मक शब्दों के प्रयोग द्वारा महत्त्वपूर्ण तथ्यों का पूर्वप्रकाशन किया गया है। यथा, प्रथम अङ्क में कमलिनी का अपनी सखी कुमुदिनी से इस प्रकार संवाद होता है—

कुमुदिनी—(अम्बुजमादाय) कलहंसो उवट्ठिओ विअ पडिभादि।

कमलिनी—किं कलहंसओ उवट्ठिओ।

कुमुदिनी—णहि णहि एदं। उवट्ठिओ कलहंसओ विअ पडिभादि त्ति मए भणिदं। तुए उण णामसारिस्सेण अण्णहा कप्पिअं।

इस श्लेष प्रयोग से नायक को ज्ञात हो जाता है कि यह सुन्दरी मुझमें अनुराग करती है क्या? इससे उत्साहित होकर वह कमलिनी से मिलने के लिए आगे बढ़ता है। तभी कमलिनी भगवती के बुलाये जाने पर चल देती है।

द्वितीय अङ्क में कलहंस का मित्र चक्रवाक उससे मिलता है। कलहंस नायिका की प्रशंसा करता है। चक्रवाक कहता है कि उसका चित्र बना दें तो ठीक से समझ में आ जाय। कलहंस के पास जो चित्र-फलक भगवती ने भेजा था, उस पर उसका चित्र था। उसे ज्ञात हुआ कि कमलिनी नायिका ने यह चित्र रचा है। कलहंस ने उस पर कमलिनी का चित्र बना दिया। वह चित्रफलक कमलिनी के पास पहुंचा। योजना बनी कि दोनों संगमित चित्रों को देख कर माता-पिता इन्हें एक कर देंगे।

कलहंस और कमलिनी परस्पर मदनातङ्क दूर करने के लिए भाग्यवशात् साथ हैं, पर विवाह के पहले कमलिनी अपना हाथ नहीं पकड़ने देती तो कलहंस कहता है कि विवाह तो हो चुका है—

धर्माय ते करसरोजमिदं गृहीतं माराग्निजर्जरदशेन मया करेण।
अज्ञानिनेदमविमृश्य विमुच्यते चेद् धर्मः मृगाक्षि मम मूलत एव नष्टः ॥३'१४

पंचम अङ्क के अन्त मे रंगमंच पर सखी की उपस्थिति में नायक अपनी विवाहित नायिका का रोमाञ्च पूर्वक आलिंगन करता है—यह शास्त्र विरुद्ध कहा जाता है, पर नाटककारों ने इसे लोकरुचि संवर्धन के लिए छोड़ा नहीं।

एकोक्ति

एकोक्ति के द्वारा रमणीय वर्णना प्रस्तुत करने की योजना सफल है। प्रथम अङ्क मे रंगमंच के दो भाग करके एक मे नायक को छिपाये रखा गया है, जहां से रंगमंच के दूसरे भाग मे पुष्पावचय करती हुई नायिका को सखी के साथ देखते हुए उसकी रमणीय प्रवृत्तियों से वासित होकर वह कहता है—

करेण पल्लवाभेन नैवाकर्षति मल्लिकाम्।
मल्लिकासुमविद्धा मे बालाकर्षति मानसम्॥१'२४

आगे चल कर वह जाल लगी दीवाल में अपने को छिपा कर नायिका की देवीपूजा देखते हुए कहता है—

एषा ममायतभुजाश्वललंघ्यदेशमभ्येयुषी जिगमिषुर्गिरिजासकाशम्।
स्पष्टं प्रकाश्य वपुषो विभवं पृथूरूरुद्दीपयत्यतितरां मदनानलं मे॥१'३२

प्रथम अङ्क के अन्त मे सभी पात्रों के रंगमंच से चले जाने के पश्चात् नायक कलहंस अकेले बचता है। वह तीन पद्यों मे नायिका की प्रवृत्तियों का गीतात्मक वर्णन करता है। एकोक्ति में मध्याह्न-वर्णन भी है।

द्वितीय अङ्क में रंगमंच के अलग-अलग भागों मे अवस्थित चक्रवाक और कलहंस की एकोक्तियाँ हैं। कलहंस की एकोक्ति का आदर्श है—

प्रहर कुसुमवाणैर्वचसारंरनेकै
र्धनुरपि गुरुसारं धत्स्व चेक्षुं विहाय।
हृदयमवशयित्वा यद्भवान् मत्समक्षं
व्यरचयदतिरम्यान् पक्ष्मलाक्ष्या विलासान् ॥२'६

पंचम अङ्क के आरम्भ मे विवाह हो जाने के पश्चात् नायक नायिका-विषयक चिन्ता को एकोक्ति के १० पद्यों मे व्यक्त करता है। तब उसे कहीं कमलिनी दिखी।

कथा समीक्षा

कमलिनी-कलहंस की कथावस्तु प्रख्यात नहीं है, उत्पाद्य है। सूत्रधार का कहना है—

अस्माकं चेतसस्तोषमापिपादयिषुर्नवम्।
प्रयुंक्ष्व नाटकं रम्यं सुहृद् कृत्रिमवस्तु च॥

संस्कृत नाट्यशास्त्र के लिए नाटक में कथावस्तु का उत्पाद्य होना कोई नई बात नहीं है, किन्तु इतनी स्पष्टता से इस तथ्य का प्रतिपादन अन्यत्र नहीं दिखाई पडता। प्रस्तावना में एक बार और कवि ने इस तथ्य की उद्‌घोषणा की है।

कथावस्तु का सूत्र पहली बार ग्रहण कराने के लिए नटी सूत्रधार से कहती है कि मेरी कन्या का अमुक व्यक्ति से प्रेम है। मैं उनके प्रेम का प्रतिपालन करने के लिए चिन्तित हूं। कथासूत्र ग्रहण कराने के उद्देश्य से कहता है—

वत्सायाः संयोगं महत्सेवा करोति नः।
यथा वै योगिनीसेवा दुहितुश्चन्द्रवर्मणः॥

इस युग के कतिपय अन्य नाटकों मे भी यह योजना प्रायः इसी संविधान के अनुसार अपनाई गई है। '

प्रथम अङ्क में मेधाविनी कलहंस को बताती है कि कमलिनी और कुमुदिनी कौन हैं।

नाटक की शैल्पिक योग्यता के विषय मे सूत्रधार का वक्तव्य प्रगुणवाद है। यथा,

हृद्या वाक् कृत्रिमं वस्तु रम्यं दम्पति चेष्टितम्।
मनोहरसुहृन्नव्यं रूपं रूपय नो मुदे॥

ऐसा नाटक कमलिनी कलहंस ही है।

नल्लादीक्षित का नाट्यसाहित्य

नल्ला का अपर नाम भूमिनाथ मिलता है। इनके पिता बालचन्द्र कौशिक गोत्रीय थे। नल्ला की जन्मभूमि चोल प्रदेश में कण्डरमाणिक्य अग्रहार नामक ग्राम है। यह ग्राम कुम्भकोनम् के समीप था। उन्होंने अपनी 'अद्वैतमंजरी' में गुरुओं की नामावली दी है—परमशिवेन्द्राचार्य और उनके शिष्य सदाशिव ब्रह्मेन्द्र। षड्दर्शनीसिद्धान्तसग्रह मे उनके गुरु रामनाथ मखीन्द्र की चर्चा है। नल्ला के परम मित्र वैद्यनाथ थे, जिनके कहने पर शृङ्गार सर्वस्व के अनुसार

बालचन्द्रमखीन्द्रस्य तनयो विनयोज्ज्वलः।
स भाणं प्राणयद् बाल्ये सख्युर्वचनगौरवात्[1] ॥६

नल्ला के द्वारा अधो लिखित कृतियाँ प्रणीत हैं—

१. शृङ्गारसर्वस्वभाण
२. सुभद्रापरिणयनाटक
३. जीवन्मुक्तिकल्याण नाटक
४. चित्तवृत्तिकल्याणनाटक
५. अद्वैतमञ्जरी

इसमे शृंगारसर्वस्व और सुभद्रापरिणय नाटकों की रचना कवि ने १७ वीं शती में और शेष नाटकों की रचना अठारहवीं शती में की। अद्वैतमञ्जरी वेदान्त-दर्शन का ग्रन्थ है।

शृंगारसर्वस्व

शृङ्गारसर्वस्व में अनङ्गशेखर नामक विट की अपनी एक दिन की चरितगाथा है। उसका हृदय किसी एक तरुणी ने चुरा लिया था। उसने इसको दृष्टि से मारा था और चली गई थी। चन्द्रमुखी नामक कुट्टनी ने कहा था कि उससे तुम्हरा संगम हो कर रहेगा।

रात बीत रही थी। कुलटायें विटों की संगति का आनन्द लेकर अभिसार-स्थलों से अपने पतियों के घर जाने लगी थी। अनङ्गशेखर को सूर्य भी विट ही प्रतीत हो रहा था। यथा, उसके शब्दों मे—

---

१. नल्ला ने शृङ्गारसर्वस्व की रचना २० वर्ष से कम की अवस्था में ही की थी, जैसा इसकी अन्तिम पुष्पिका से ज्ञात होता है—

प्रागेव विंशद्वयसः प्रबन्धा नल्लाकवीन्द्रेण सुधीश्वरेण।
शृंगारसर्वस्वमिति प्रतीतः सन्दर्भितोऽयं सरसः प्रबन्धः ॥

इसका प्रकाशन काव्यमाला ७८ संख्यक हो चुका है।

प्राचीकुचमुदयाद्रिं परिरभमाणैः करैस्तपनः।
कंचन विकासयोगं कुरुते सरसीमुखाब्जेषु ॥२४

अनंगशेखर पण्यवीथिका से होकर अपनी यात्रा करने लगा। वहाँ विलासिनियों का झुण्ड प्रेमप्रवण था। चूड़ी पहनाने वाले कुछ मनचले युवकों से विलासिनियों का प्रेमसंलाप चल रहा था। विद्युल्लता नामक विलासिनी क्या थी—

पश्यति चेदियमबला फलितं नः पूर्वसंचितैः पुण्यैः।
संलपति सादरं यदि स स्वर्गः स परमपवर्गः ॥२८

उस परवधू से अनङ्गशेखर को किसी रात विजन उपवन में परानन्द की प्राप्ति हो चुकी थी। उसने बातचीत करते हुए बताया है कि पातिव्रत्य का ढोंग भी चल रहा है।

कष्टं नाम कामिनीनां पतिगृहवासपातकम्।

अनङ्गशेखर को विद्युल्लता कैसे प्राप्त हुई थी, यह उसने बताया है—

प्राकारमुल्लंघ्य महानिशीथे प्रविश्य कृत्स्नाद् भवनं त्वदीयम्।
निद्राति नाथे तदुपान्त एव त्वयान्वभूवं किल संगतानि ॥३१

विद्युल्लता चूड़ी पहनाने वाले की विदग्धता से प्रसन्न होकर उसके पास जा पहुँची।

कलभाषिणी नामक कुलवधू कुलटा थी। वह भी सबेरे चूड़ी लेने के बहाने वहाँ पहुँची थी। अनङ्गशेखर से साहचर्य-घटना इस प्रकार उसीने बताई है—

कदाचित् कावेरीपरिसरगते नीपविपिने
लताकुञ्जे सद्यस्तनकिसलयस्तोमशयने।
समारम्य क्रीडां रसपरवशे मय्युपरते
विलोलभ्रूरेषा स्वयमकृत वीरायितविधिम् ॥३८

कलभाषिणी ने भी कुटुम्बवास के नियन्त्रण का रोना रोया—पंजरबद्धशुकीव शोकमनुभवसि। विट ने उसे परामर्श दिया—

अद्य प्रभृति विशृंखलीभूय सफलीकुरुष्व तारुण्यम्। अरण्यचन्द्रिकां मा कुरु करभोरु सुकुमारतरं शरीरम्।

इसको चूड़ी पहनाते हुए--

स्वयं वन्यंमन्यो जयति तरुणः स्वर्णवलयी ॥४४

कान्तिमती नामक वधू चूड़ी पहन रही थी। उसी समय कोई युवक उधर से आ निकला, जिसके दर्शन मात्र से पहनाई जाती हुई सारी चूड़ियाँ विदलित हो गई। उसे पकड़ कर चुड़िहारा उसके घर ले जा रहा था कि यह वृत्त अक्षरशः वहाँ बताऊँगा। कान्तिमती डर रही थी कि यदि प्राणनाथ के कानों मेरी प्रणय वार्ता पहुंची तो विपत्ति ही है। अनंगशेखर ने उसे अपना स्वर्णकंकण देकर कान्तिमती को उससे विमुक्त किया।

वलय-वीथिका के अनन्तर अनङ्गशेखर शृङ्गार वीथिका में आया। यही वेशवाट था। वहाँ उसे सर्वप्रथम पद्मावती नामक प्रणयिनी मिली। वह तो कुछ उपेक्षा सी

करती हुई प्रतीत हुई। अनंगशेखर ने पूछा कि मुझे क्यों उपेक्षा-भाव से देख रही हो, जब पहले कभी प्रगाढ प्रणयानुराग से तुम्हारी सगति का आनन्द प्राप्त कर चुका हूं। इतने से भी काम न चला तो वह पद्मावती के चरणो पर गिर पड़ा—

वद स्तोकं दासे मयि विदितभागः कियदपि ॥५८

पद्मावती ने प्रसन्न होकर कहा—

अद्य प्रभृत्यात्मनो भृत्यजनेष्वसावपि गणनीया भवता।

इसके अनन्तर अनङ्गशेखर को विटशेखर और सारसाक्षी के विवाद का निर्णय करना पड़ा। मणिगुप्त नामक विहार (खेल) में विटशेखर ने सारसाक्षी को पराजित करके एक मास उसे कलत्र रूप मे प्राप्त किया था। तीन-चार दिनों तक तो ठीक चला, पर इसके पश्चात् सारसाक्षी पलट गई। उसने अनंगशेखर को कारण बताया कि हम दोनो का यह भी समय था कि यदि उस मास मे किसी दूसरी प्रमदा से विटशेखर का सम्बन्ध होगा तो कलत्र-भाव की समाप्ति हो जायेगी। कल इन्होंने मेरी छोटी बहिन मुक्तावली की सगति का आनन्द उठाया, जब मैंने इन्हे पान देने के लिए भेजा था। विटशेखर ने कहा कि मैंने मुक्तावली की समागम-प्रार्थना ठुकरा दी थी। अतएव उसने मिथ्या बातें जड दी हैं। सारसाक्षी ने कहा कि जब वह लौट कर आई तो उसके सभी लक्षणो से उसका समागम प्रतीत होता था। विटशेखर ने कहा—

क्रीडासद्मनिहंसतूलशयने निद्रालसोऽहं स्थितः
सा तत्रावसरे समेत्य रभसादुत्संगमध्यास्त मे।
वीटी तद्वदने मया वितरता किंचिन्निपीड्याधरं
वक्षोजे निहितः करः किमियता काम. समाराधितः ॥ ६२

अन्त में यह निस्सन्देह प्रमाणित हुआ कि मुक्तावली का विटशेखर से प्रसङ्ग हुआ। अनङ्गशेखर ने अन्त में निर्णय दिया कि मुक्तावली को भेजकर सारसाक्षी ने अनुचित किया। उसे कलत्रभाव मानना ही पडेगा।

आगे अनंगशेखर को चक्षुरपिधान-विहार करने वाली सुमध्या और काञ्चन-माला मिली। काञ्चनमाला ने आँख खुलने पर कलभगमना को ढूँढ निकाला। अनगशेखर ने कलभगमना के स्थान पर स्वय विहार में सम्मिलित होना चाहा, पर उन्हें यह कह कर विमुख किया गया कि पुरुष इस विहार मे रमणी को स्मरपरवश होकर उपभोग की सामग्री बना लेते हैं। आगे अम्बरकरण्डक विहार मे प्रवृत्त वाराङ्गनायें मिलीं। इसमे मणिप्राय करण्डक को एक हाथ से ऊपर फेंककर गिरते समय उसे लोका जाता था। कलकण्ठी इसमें दक्षता दिखा रही थी। अनङ्गशेखर ने उससे कहा कि तुम्हारी पतितसंग्रह प्रवृत्ति अच्छी रहे। उसने उत्तर दिया कि जब से तुममे चित्त लगाया, तब से ही यह प्रवृत्ति रही है। अनङ्गशेखर ने उससे कहा—

उत्सङ्गे भवती निधाय सरसं सलापमभ्यस्य च
प्रेम्णा ते मुखवीटिकाविनिमयव्याजाद् गृहीत्वाधरम्।

पाणिभ्यामपि ते पयोधरभरामर्शं विधाय स्वयं
कामप्यद्य कृतिं कयापि विधया कर्तुं मनः काङ्क्षति ॥ ७३

उसने उत्तर दिया—मैं तो तुम्हारी ही हूँ। कलकण्ठी का वसन्तक से एक वर्ष के लिए कलत्र-पत्र इस प्रकार लिखा गया था—

मासे मासे वसनयुगलं मादृशां श्लाघनीयं
पक्षे पक्षे परमभिनवा कञ्चुली रत्नगर्भा।
प्रातः प्रातः परिमलमुचो वीटिका गन्धमाल्ये
नक्तं नक्तं नवमपि पयो देयमित्यस्ति पत्रे ॥ ७४

कालान्तर में वसन्तक ने यह सब देने के स्थान पर चोरी करने की ठानी। एक रात गाढ़ी निद्रा में जब कलकण्ठी सोई थी तो उसके सारे अलंकार शरीर से उतार लिए। जब मुक्ताहार पर हाथ साफ़ कर रहा था तो वह जग गई और उसे पकड़ लिया। तब तो उसकी कठोर माता ने पुराने सूप से उसे मार भगाया था। उसके पश्चात् प्रतिदिन वह नये-नये युवकों का मन भरती रही।

आगे वसन्तकलिका गेंद खेल रही थी। उससे अनङ्गशेखर ने कहा कि चरण पर गिरे हुए को कठोरतापूर्वक मारने की तुम्हारी रीति रही है—

वाचालकंकणगणेन भुजेन कण्ठे मामन्तिकस्थमभिगृह्य निपात्य मञ्चे।
आक्रम्य वक्षसि निपीड्य पयोधराभ्यामाक्रीडितं खलु तलोदरि यद्भवत्या ॥७८

आगे पक्ष्मलाक्षी जूआ खेलती मिली। उसने अनङ्गशेखर को अर्धासन पर बिठा लिया। उसके स्पर्श से इन्हें रोमाञ्च हो आया। आगे चलने पर विवाद-निर्णय के लिए निवेदन करती हुई कुम्भस्तनी मिली। मन्दारक जूये में हारा था, जिससे पक्ष्मलाक्षी को वीरायित करने का अधिकार प्राप्त था, और मन्दारक मान नहीं रहा था। अनङ्गशेखर ने उसे समझाया—

शेष्वाधस्तादथ वितर वा तस्य बिम्बाधरं त्वं
शेतेऽधस्तादधरमथवा सोऽपि दत्ते भवत्यै।
अस्मिन्नर्थे समरसतथा नास्ति कश्चिद्विशेषो
भूयो भूयः कलहविधया ब्रूहि किं वा फलं वा ॥८९

दोपहर के समय अरविन्दमुखी के साथ गप्प करने विट पहुँचा। वह झूला झूल रही थी। दोला-विहार का आनन्द लेने के लिए उसने अनङ्गशेखर को आमन्त्रित किया। अनङ्गशेखर ने कहा कि आतिथ्य विधिपूर्वक होना चाहिए—अङ्कपीठ, पयोधरनालिकेर और बीटी देकर। अरविन्दमुखी ने कहा कि यह सब रात्रिकालीन आतिथ्य में देय हैं। अनङ्गशेखर ने कहा—

रन्तुं प्रतीक्षणीया रजनी किल वेद किंकरैरेव।
स्वच्छन्दचारिणां पुनरहरहराहुः स्मृतं सुरतम् ॥९४

अन्त में अरविन्दमुखी ने वीणा बजाती हुई गायन प्रस्तुत करने का आयोजन किया तो अनङ्गशेखर कुचताल देने के लिए उत्सुक हो गया। गाना सुनकर उसने कहा—

तव तन्वङ्गि संगीते द्रवन्ति हि शिला अपि।
निःसारो मक्षिकासारो नीरसश्च सुधारसः ॥६७

आगे रत्नचूड से लड़ती कम्बुकण्ठी मिली। उनमें युग्मायुग्मदर्शन विहार में जीत होने पर स्वामित्व पण था। मुक्ताओं को गिनते समय कम्बुकण्ठी ने अपह्नव किया था। अनङ्गशेखर ने उसकी पराजय की घोषणा कर दी। पर अन्तिम निर्णय न दे सका।

आगे चलने पर उसे कृशोदरी मकरन्द को फटकारती हुई मिली। गजपति-कुसुम-कन्दुक-विहार में मकरन्द को कृशोदरी का घोड़ा बनना था। विचारा मकरन्द उसके स्तनजघन भार से पीड़ित होकर थोड़ी दूर पर उसे फेंककर मुक्त हुआ। अनङ्गशेखर ने उसे संकेत दिया कि पलायन करो, नहीं तो यह छोड़ने वाली नहीं है।

आगे चतुरङ्ग खेलने वाली मारवल्लरी की मण्डली मिली। विदग्धभूषण को अनङ्गशेखर ने कहा कि फिर से खेल कर जीतो। आगे चलने पर अनङ्गशेखर को सिर पर पुस्तकों का भार ढोता हुआ कामान्तक नामक विट मिला। वह काञ्चीपुर से लौटा था। वहाँ एक दिन उसे एक परम सुन्दरी दिखाई पड़ी। उसने उसका चित्त चुरा लिया। उसके विरह ताप से मरते हुए कामान्तक को किसी दिन एक कुट्टनी मिली। उसने कामान्तक से कहा कि तुम्हारी चहेती भी तुम्हारे लिए मर रही है। आज रात मे निष्कुट वन मे उसको जीवन प्रदान करो। कामान्तक उसके गृहोद्यान मे रात मे उस प्रेयसी की प्रतीक्षा कर रहा था, तभी वह अपने पति के सो जाने पर उसके पास आ गई। उसके समागम का पूरा आनन्द कामान्तक को मिला। कामान्तक से अनङ्गशेखर ने अपना मनोरथ पूछा, जिसे उसने सिर पर रखी पुस्तकें देखकर बता दिया कि आज रात में अभिलषित तन्वी से समागम का अवसर मिलेगा। अनङ्गशेखर ने उसे बताया कि कनकलता नामक कन्यारत्न के लिए उत्सुक हूँ। उसे एक बार देखा और वह मेरा चित्त लेकर चलती बनी। कामान्तक ने कहा कि वह तुम्हे मिल कर रहेगी।

आगे बढ़ने पर अनङ्गशेखर को स्तम्भननट मिले। उनकी स्त्रियों का खेल देखा—

हन्त स्तम्भननटाङ्गनाः कतिचन प्रेयासमसस्थले
पादाभ्यांमभिहत्य मूर्धनि चिरं तिष्ठन्ति निश्चेष्टितम्।
उत्प्लुत्याम्बरसीम्नि चक्रमिव च भ्रान्त्वा निपातक्षणे
पङ्कयामेव पुरेव भूतलमलंकुर्वन्ति नार्योऽवराः ॥१३०

पाशावलम्बकलया सहसाधिरुह्य स्तम्भाग्रमुन्नतमुरोजभरेण खिन्ना।
तिर्यग्विवर्तिततनुस्तरुणीचिराय चक्रे परिभ्रमति चम्पकमालिकेव ॥१३१

कहीं मुष्टि-युद्ध करते हुए मल्ल दर्शक को समुत्सुक बना रहे थे। कहीं कुक्कुटों का युद्ध चल रहा था। कहीं कोई मदारी बन्दर की जोड़ी लिए घूम रहा था। अन्यत्र कोई मदारी तुमड़ी बजा रहा था। कहीं ढोल पीटा जा रहा था। ढोल की घोषणा से ज्ञात हुआ कि कावेरी-तीर पर शिव का प्रस्थान-मंगलोत्सव है। नगर की

रमणियाँ अप्सरा की भाँति पतिगृह के कारागार से मुक्त सी होकर सजधजकर रंगरेलियाँ करती हुई सड़क पर उधर चलीं। सुन्दरतम युवकों को देखकर मनस्तृप्ति के अपूर्व अवसर का लाभ उन्होंने पूरा उठाया। मार्ग में अनङ्गशेखर को प्रमत्त हाथी दिखाई पड़ा, जिसे उसने गजानन-रूप में पहचाना। उसने स्तोत्र पाठ किया—

जय जय जगतां मूल जय जय भो जन्म कल्मषद्वेषिन्।
गजवक्त्र विघ्नशत्रो सुत्रामस्तुतचरित्र शिवपुत्र ॥१४६

तभी चन्द्रमुखी नामक कुट्टनी ने आकर अनङ्गशेखर को बताया कि कनकलता की माता ने मुझ से कहा है कि प्रियविरह में सन्तप्त मेरी कन्या का मनोरथ जैसे भी हो पूरा करो। आज चन्द्रशाला में आपको उससे मिलना है। सन्ध्या हो गई। अनङ्गशेखर ने देखा—

संकेतस्थलमुद्दिशन्ति कुलटाः साकं विटानां वरैः ॥
मोदन्ते परसुन्दरीकुचपरीरम्भक्रियारम्भिणः ॥

वह अपनी प्राणनाडी कनकलता से मिलने चला।

धिक्कार है उस विद्वन्मण्डली को, जिसमें सर्वोच्च प्रतिभाशाली आचार्यों और उनके वंशजों की लेखिनी वाराङ्गनाओं के वर्णन-रूपी कालुष्य को मसि बनाकर भारतीय आध्यात्मिक संस्कृति पर कालिख पोतने में समर्थ हुई। देश के सामने अब और तब असंख्य सामाजिक समस्यायें थीं, जिनका समाधान करने में यदि उनकी वर्णना प्रवृत्त होती तो भारत की भव्यता विनष्ट न हो पाती। दुर्भाग्य है संस्कृत का कि कुछ ही कवियों की दृष्टि सदा चारु-दर्शिका बन पाई। इस भाण में कुलाङ्गना कुलटाओं को नल्ला ने समेट लिया है। केवल वाराङ्गनाओं से उन्हें परितोष न हुआ। कुलवधुओं को फँसाने के लिए यह कामतन्त्रीय भाण सफल प्रयास बन पड़ा है।

शैली

नल्ला की शैली भाणोचित वैदर्भी से समलङ्कृत है। स्वर और व्यञ्जनों की सानुप्रासिकता से वे प्रायः संगीत का सर्जन करने में सफल हैं। यथा,

कूलंकषकुचभारा कुंकुमकर्दमितमुग्धमणिहारा।
कुन्तलविनिहितमाला कुरुते केयं कुतूहलं बाला ॥४६

सुभद्रापरिणय

सुभद्रा-परिणय पाँच अङ्कों का नाटक है।[1] इसका प्रथम अभिनय मध्यार्जुन-प्रभु की यात्रा के अवसर पर हुआ था। इसमें महाभारत और पुराणों में सुप्रसिद्ध अर्जुन के द्वारा सुभद्रा के अपहरण और विवाह की कथावस्तु पल्लवित है। इसके अनुसार दुर्योधन भी सुभद्रा से विवाह करना चाहता था। अर्जुन की अनुपस्थिति में द्वारका जाकर वह बलदेव को प्रभावित करता है कि मैं सुभद्रा के योग्य हूँ।

१. इसकी हस्तलिखित प्रति मद्रास के राजकीय ओ० मैनु० पुस्तकालय में R0778 संख्यक है।

अर्जुन कृष्ण से मिले और सुभद्रा को छद्म द्वारा प्राप्त करने की योजना उन्होंने कार्यान्वित की, जिसके अनुसार अर्जुन साधु वेश में द्वारका मे सुभद्रा और उसकी सखियो से मिलकर उनसे बातें करते हुए अर्जुन-रूप मे पहचाना जाता है और सुभद्रा उसको मनसा वरण कर लेती है। तभी बलदेव के वहाँ आ जाने से सुभद्रादि चली जाती हैं और बलदेव उन्हे बिना पहचाने राजोद्यान में रहने की सुविधा प्रदान कर देते हैं।

एक दिन सुभद्रा ने सन्देहवश स्वयं अर्जुन की सेवा न करके चेटी को भेज दिया। उस दिन कृष्ण की इच्छानुसार शकर ने आकर अर्जुन से युद्ध किया। इस बीच दुर्योधन ने सेविका चेटी को सुभद्रा समझकर उसका अपहरण कर लिया।

सुभद्रा का यह सन्देह प्रगाढ हो गया कि यतिवेशधारी छद्मी दुर्योधन है। उसने ग्लानिवश आत्महत्या करने का उपक्रम किया। अर्जुन ने उपस्थित होकर ऐसा करने से उसे रोक लिया। अन्त मे उन दोनों का प्रणय परिणय में परिणत हुआ।

परवर्ती युग मे सुभद्रापरिणय की कथा संस्कृत नाटककारों की दृष्टि में अतिशय नाट्योचित रही है। कृष्णमाचार्य ने सुभद्रापरिणय नामक तीन नाटक क्रमशः नल्लाकवि, रघुनाथाचार्य और रामदेव के गिनाये हैं। इनके अतिरिक्त भी अनेक नाटक सुभद्रा और अर्जुन के परिणय के विषय मे लिखे गये। इन सब मे अधिकतम उच्चकोटिक कथा-संविधान कुलशेखर के सुभद्रा-धनंजय नाटक का है, जिसकी छाप नल्लाकवि के सुभद्रापरिणय पर स्पष्ट झलकती है।[1]

नल्ला ने इस नाटक की कथावस्तु मे सघर्ष और युद्ध का वातावरण बनाने के लिए कई सविधान जोड़े हैं। पहले तो दुर्योधन का द्वारका आकर सुभद्रा के लिए बलदेव से याचना करना, फिर दुर्योधन का सुभद्रा की चेटी का हरण करना—इन दो बातों से दुर्योधन का विशेष सचेष्ट होना प्रकट होता है। नल्ला ने इसकी कथावस्तु में शकर और अर्जुन के युद्ध का अवसर लाकर एक अप्राक्कलित प्रसग का समावेश अपनी युद्ध-प्रियता के कारण किया है। यही किरातवेश-धारी शकर से अर्जुन के युद्ध का अवसर उपस्थित होता है। कवि ने यतिवेशधारी अर्जुन के प्रति सुभद्रा की यह भ्रान्ति कि यह दुर्योधन है—कवि की निजी देन है। युद्ध मे अर्जुन शंकर को पराजित करके प्रसन्न करता है। सुभद्रा ने अपनी चेटी को सुभद्रा बनाकर अर्जुन के पास भेजा छायातत्त्व का विशेष विलास इन बहुत सारी माया-छद्म आदि की योजनाओ से स्पष्ट है।

पंचमअङ्क में छायातत्त्वानुसारी भ्रान्तियों का जाल सा बिछाने में नल्ला को सफलता मिली है। नायिका अर्जुन को पति रूप मे पाने के विषय में निराश होकर जब आत्महत्या करना चाहती है तो यतिवेशधारी अर्जुन उसे बचाने जाते हैं। उसे देखकर और परपुरुष समझकर वह उससे बचने के लिए चिल्लाती है। उसे दुर्विनीत

१. सुभद्रा-धनंजय की विस्तृत आलोचना लेखक के मध्यकालीन संस्कृत-नाटक के पृ० १०१—१०८ में है।

कहती है। यह सब अदृष्टाहति (Irony) का अच्छा प्रसंग है।

इस नाटक में कवि का सर्वाधिक प्रिय छन्द शार्दूल-विक्रीडित है, जो २७ पद्यों में प्रयुक्त है। इसके बाद श्रेष्ठ छन्दों में वसन्ततिलका १७ पद्यों में प्रयुक्त है, जो शृङ्गारोचित है। कहीं-कहीं कहावतों के प्रयोग से भाषा बलशालिनी है। यथा, अन्धः किमन्धमपरं पथि नेतुमीष्टे। कवि के जीवन का चारित्रिक आदर्श उसके नीचे लिखे पद्य से परिचेय है—

सम्पदो विपदो वापि सम्पद्यन्तां पराश्शताः।
मर्यादां नातिवर्तन्ते महान्तस्सागरा इव ॥४·८

कवि की भाषा नाट्योचित सरल है। अलंकारों का प्रयोग सौविध्यपूर्ण है। वैदर्भी रीति और कैशिकी वृत्ति का प्रायशः सामञ्जस्य है। प्रच्छन्नता के प्रकरणों में स्वभावतः आरभटी वृत्ति है।

जीवन्मुक्ति-कल्याण

नल्लाध्वरी की परिपक्वावस्था में १८ वीं शती के आरम्भ में यह आध्यात्मिक नाटक प्रणीत हुआ था।[1] इसका प्रथम अभिनय मध्यार्जुन-प्रभु की यात्रा में उपस्थित ब्रह्मनिष्ठ सामाजिकों के कहने पर हुआ था।

कथावस्तु

कथानायक जीव की पत्नी बुद्धि प्रौढा नायिका है, जिससे जीव ऊब चुका है। वह कहता है—

अतिचारिण्या बुद्ध्या सह संसरतो मम कल्याणे का न्यूनता नाम। यथा,

रथ्यानां जनुषः परांमुखतया नित्यं, प्रवृत्युन्मुखान्
भूयः प्रेरणकर्मणा स्वयमपि प्रोत्साहयन्ती मुहुः।
स्वस्थं मां विषमेष्वमीषु विषयेष्वाकृष्य चाकृष्य च
भ्राम्यन्ती कृपया ह्रिया च रहिता नाद्यापि विश्राम्यति ॥ १

जीव प्रमाता बनकर सुख का अनुभव नहीं करना चाहता। उसका स्पष्ट कहना है—

प्रमातृत्वावेशे सति भवति कर्मस्वधिकृति
स्ततः कर्तृत्वं स्यात्तदनु फलभोक्तृत्वमपि च।
विमुक्तस्यानेन ध्रुवमखिलदुःस्वप्नप्रशमनं
विमुक्त्यर्थोपायस्तदनुसरणीयः प्रथमतः ॥१·३२

---

१. लेखक का परिचय देते हुए सूत्रधार ने प्रस्तावना मे कहा है—

यस्य कविः सुभद्रापरिणय-शृङ्गार-सर्वस्व-चित्तवृत्तिकल्याण-अद्वैत रसमंजरी-प्राद्यनेक-प्रबन्धनिबन्धनाभिनन्दनीयः श्रीबालचन्द्रमखीन्द्रनन्दनो नल्लाध्वरी। चित्तवृत्तिकल्याण नाटक अप्रकाशित है। नाम से ज्ञात होता है कि इस प्रतीक नाटक में चित्तवृत्ति के विवाह की योजना वैसी ही है, जैसे जीवन्मुक्ति-कल्याण में।

रमणीयचरण नामक मन्त्री से यह सब चर्चा करते हुए जीव जागरित नामक वन को पार करके स्वप्नाराम में जा पहुँचे। वहाँ उसने देखा कि सभी रूप क्षणभंगुर हैं। यथा,

हस्तीत्याकलितः क्षणेन स महानद्रिः समापद्यते
सद्यः स द्रमतामुपैति स पुनः पक्षिप्रथां गाहते।
अज्ञातं शतयोजनान्तरितमप्यध्यक्षमालक्ष्यते
वस्तुप्राप्तिमदप्यपूर्वमिव सप्राप्तव्यमास्ते पुनः ॥१·४२

निद्रालस देवी बुद्धि को जीव ने सुला दिया और अपने उस कल्याणी कन्या को ढूँढने चला, जिसकी मधुरवाणी से वह आनन्द-विमोर हो चुका था। वह उसका वर्णन करता है—

इयं सा कल्याणी सुललितलतामूलनिलया
पयोदेनालीढा तडिदिव जगन्मोहनतनुः।
अवस्थाभेदे च स्थितिमुपगता काचिदधुना-
सदानन्दस्फूर्तिः सुतनुरिति संमोहयति माम् ॥ १·४६

इसकी बाह्य और वास्तविक रमणीयता पर मुग्ध होकर जीव कहता है कि यदि यह मेरी हो जाय तो मम स एव मोक्षोत्सवः।

बुद्धि के पिता अज्ञानवर्मा को यह ज्ञात हो गया कि जीव मेरी कन्या से खिन्न होकर जीवन्मुक्ति नामक दूसरी सुन्दरी के चक्कर मे है। उसने बुद्धि को सावधान किया और कामादि अपने छः सेवकों को लगाया कि जीव को जीवन्मुक्ति की ओर प्रवृत्त न होने दो।

इधर जीव ब्रह्मचर्याश्रम मे प्रवेश करके जीवन्मुक्ति को प्राप्त करने के लिए सचेष्ट हुआ। पर उसे बुद्धि से छुटकारा कहाँ? उसे देखते ही जीवन्मुक्ति को भूला हुआ सा बोला—

एह्येहि सुन्दरि किमन्तरितासि दूरं कल्याणि नन्वयुतसिद्धममुं जुपस्व।
उत्संगमण्डलमलंकुरु मे निविष्टा जीवन्नसौ न सहते किल ते वियोगम् ॥२·२२

बुद्धि ने कहा कि यह सब बनावटी बातें हैं। तभी जीव का बनाया नई नायिका जीवन्मुक्ति का चित्र उसे आपातबोध की काँख से गिरा हाथ लगा। आपातबोध ने बताया कि मुझे यह सुन्दरी वेदवन मे दिखी है। इसके सौन्दर्य से स्वामी जीव का मनोरजन करने के लिए इसका चित्र बनाकर लेता आया।

बुद्धि ने कहा कि आपातबोध, मैं अज्ञानवर्मा नामक ऐन्द्रजालिक की कन्या हूं। तुम मुझे उल्लू नहीं बना सकते।

आपातबोध ने जीव को समझाना आरम्भ किया कि जीवन्मुक्ति को प्राप्त करने के लिए कर्म को छोडो। इसके लिए संन्यासाश्रम ग्रहण करो। तभी कामादि छः मार्गकण्टक बनकर आ पहुँचे। उन्होंने अज्ञानवर्मा की आज्ञा से जीव को अपने चक्कर मे फँसाये रखने का उपक्रम किया। काम ने अपनी योजना बताई—

जीवन्मुक्ति को साक्षात् दिखा दूँ। उन्होंने ऐसा किया। तब तो बुद्धि ने जीव को जीवन्मुक्ति से मिलने में सहायता की।

शिव ने शिवप्रसाद को नियुक्त किया कि जीव का अभीष्ट उसे प्राप्त कराओ। उसने ब्रह्मविद्या नामक सिद्धाञ्जनौषधि से वह दृष्टि दी कि उसने जीवन्मुक्ति का दर्शन कर लिया। ब्रह्मविद्या के तेज से अज्ञानवर्मा जग गया। जीव का जीवन्मुक्ति से विवाह हो गया।

रस

नल्ला ने आध्यात्मिक नाटक को भी पर्याप्त शृङ्गारित बना कर सहृदय प्रेक्षकों की भी अभिरुचि इसमें उत्पन्न की है। यथा नायिका जीवन्मुक्ति का नायक जीव ने स्वप्न में दर्शन किया। उसका वर्णन रमणीयचरण नामक मन्त्री को सुनाता है—

> सस्नेहं परिरम्भसंभ्रमदशारम्भे विलोलभ्रुव-
> स्तस्यास्तुंगपयोधरक्षितिधरासगातिभारादिव।
> आनन्दाम्बुनिधेरगाधपयसो मध्ये निमग्नस्तदा
> बाह्यं किंचन किंचनान्तरमहं नावेदिषं वस्तुतः॥२.४

जीव उसका चित्र प्रस्तुत करता है—

> सैषा वधूरिह सुधारसधारयेव सूक्त्या यया श्रुतिरभूदभिपूरितेयम्।
> सन्दर्शनस्य पदवीमदवीयसी मे या च व्यगाहत तदोपवनान्तभागे॥२.१४

एकोक्ति

द्वितीय अङ्क में २१ वें पद्य के पश्चात् बुद्धि जगती है और अकेले बोलती है—

अहो जललिपिः पुरुषाणां स्नेहो व्यवहारश्च। ···इदानीं सापराध एव सः, येन सुषुप्तगृहे एकाकिनी मामुज्झित्वाग्रतो निर्गत आर्यपुत्रः।

छायातत्त्व

तृतीय अंक में मोह गज का रूप धारण करता है और काम उसका वाहक बन जाता है। यह छायातत्त्वानुसार है।

संवाद

कवि ने मनोरंजक संवादों की योजना अनेक स्थलों पर प्रस्तुत की है। यथा,

जीवः—(आपातबोध हस्तेन गृहीत्वा, सोपहासम्) आपातबोध, गजो मिथ्या, किं पलायसे?

आपातबोधः—पलायनमपि मिथ्यैव।

चतुर्थ अंक में खादिरमूले कपित्थफललाभः; 'वराटिकान्वेषणप्रवृत्तस्य निधिलाभः' आदि जैसे व्यंग्य प्रयोगों में संवाद चटपटे बन पड़े हैं।

अध्याय ३६

सत्रहवीं शती के अन्य नाटक

मधुरानिरुद्ध

आठ अङ्कों का मधुरानिरुद्ध प्रणयात्मक नाटक है।[1] इसमें यथानाम उषा और अनिरुद्ध के गान्धर्व विवाह की कथा है। अन्त में उषा के पिता वाणासुर से युद्ध होता है, जिसमें वाणासुर मारा जाता है।

मधुरानिरुद्ध के रचयिता चन्द्रशेखर बुन्देलखण्ड के राजा वीरसिंह के आश्रय में रहते थे।[2] इस राजा का शासन काल सत्रहवीं शती का प्रारम्भिक युग है। नाटक का प्रथम अभिनय शिव के उत्सव के अवसर पर हुआ था। लेखक स्वयं शैव था।

प्रथम अंक में नारद कृष्ण और बलराम को बतलाते हैं कि वाणासुर शिव का वरदान पाकर उत्पात करने लगा है, जिससे इन्द्र त्रस्त हैं। वे अन्त में वाणासुर की राजधानी 'शोणितपुर जा पहुँचते हैं तथा वाण और शिव के बीच मनमुटाव उत्पन्न करने का प्रयास करते हैं। द्वितीय अङ्क में जय और वीरभद्र के संवाद से ज्ञात होता है कि वाण के गर्व से शिव चिन्तित हो उठे हैं। वे कैलास चले गये। पार्वती भी कैलास गईं और उषा को बतला गईं कि शीघ्र ही तुमको पति का दर्शन होगा। उषा ने बातचीत में चित्राङ्गदा को बताया कि मुझे देवों के वर के विषय में चिन्ता है।' तीसरे अङ्क में अनिरुद्ध अपना स्वप्न बताता है कि मैंने स्वप्न में अपूर्व सुन्दरी देखी है, जिसके विषय में नारद समझाते हैं कि वह वाणासुर की कन्या उषा है। अनिरुद्ध वाणासुर की नगरी तक जा पहुंचे, परन्तु उस नगर के चारों ओर तो अग्नि-कुण्ड दहक रहा था, जिसके शमन के लिए उसने ज्वालामुखी देवी को तपस्या द्वारा प्रसन्न करना आरम्भ किया। चतुर्थ अङ्क में ध्वजा के पतन से वाणादि चिन्तित हैं कि अब मृत्यु-योग निकट है। पंचम अङ्क में जब अनिरुद्ध ज्वालामुखी के प्रीत्यर्थ आत्मदाह करने को उद्यत है तो वह उसे आकाश-मार्ग से विचरण करने की शक्ति देती है। वह आकाशयान से दुर्गा (ज्वालामुखी) से मिलने के लिए समग्र उत्तर भारत का भ्रमण करके ज्वालामुखी के समीप पहुंचता है और उनका वर प्राप्त करता है।

षष्ठ अङ्क में चित्रलेखा की बनाई चित्रावली में उषा स्वप्न में देखे हुए नायक को पहचान लेती है। उसे पाने के लिए नारद चित्रलेखा को द्वारका भेजते हैं। सातवें अङ्क में नायक-नायिका का गान्धर्व विवाह हो जाता है। आठवें अङ्क में वाण अनिरुद्ध के दूषण को जानकर लड़ाई करता है। कृष्णादि भी अनिरुद्ध की सहायता

१. इस नाटक की चर्चा विल्सन ने The Theatre of the Hindus के पृष्ठ १४३—१४५ में की है।

२. कृष्णमाचार्य के अनुसार इनके पिता वाजपेयी गोपीनाथ राजा वीर केसरी रामचन्द्र के गुरु और धर्माचार्य थे।

के लिए आ जाते हैं। शिव ने परिवार सहित बाण की सहायता की, पर उसकी चार बाहो को छोड़कर सभी बाहे कृष्ण ने काट दी। पार्वती और ब्रह्मा ने बाण से सन्धि कर लेने की प्रार्थना की। शिव से लड़ते हुए कृष्ण को मानसिक सन्ताप हो रहा था। तब शिव ने उनसे कहा कि युद्ध करना तो अपने आप मे पूर्ण उद्देश्य है, इसमे शत्रुता और मैत्री के भाव का प्रश्न ही नही उठता।[1] पार्वती के साथ उषा वहाँ आती है। शिव और पार्वती की इच्छानुसार बाण उषा को अनिरुद्ध के लिए सौंप देता है। शिव बाण को अपना पार्षद बना लेते हैं, जिसका नाम महाकाल पड़ता है।

उषा और अनिरुद्ध के प्रणय की कथा मूलत. महाभारत, हरिवंश, भागवत-पुराण, शिवपुराण, पद्मपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, मत्स्यपुराण आदि मे मिलती है। चन्द्रशेखर ने उपर्युक्त उपजीव्य ग्रन्थो से कथा लेकर उसमे अभिनव कथांश जोड़े है।

विल्सन के अनुसार वर्णनों की अधिकता से इसकी नाटकीयता मे कमी आ गई है। उनका कहना है कि इस नाटक की काव्य शैली मे पर्याप्त औदात्य है।

नलानन्द नाटक

सात अङ्कों के नलानन्द नाटक के रचयिता जीवबुध हैं।[2] इनके पिता कोनेरी राजा थे। इनका जन्म उपद्रष्टा वंश मे हुआ था, जिसमे सुप्रसिद्ध विद्वान् पण्डितराज जगन्नाथ हुए हैं। जीवबुध ने अपने चाचा सुब्रह्मण्य के कहने से इस नाटक का प्रणयन किया था। स्टेनकोनो के अनुसार इसकी रचना १६५० ई० के पहले हुई होगी।[3]

कथावस्तु

नल और दमयन्ती के विवाह-विषयक असंख्य नाटको की कथा के समान ही जीवबुध ने महाभारत की नल की कथा को उपजीव्य बनाया है और दमयन्ती के स्वयंवर से लेकर उसके विवाह, द्यूत मे नल की पराजय, ऋतुपर्ण का सारथि बनना और नायिका से पुनर्मिलन आदि घटनाओ का संयोजन किया है।

कृष्णाभ्युदय

कृष्णाभ्युदय नामक प्रेक्षणक के रचयिता लोकनाथ भट्ट का प्रादुर्भाव सत्रहवीं शती के पूर्वार्ध मे हुआ।[4] लोकनाथ के पिता वरदार्य या कविशेखर थे। कहते हैं कि लोकनाथ भट्ट विश्वगुणादर्श के रचयिता वेङ्कटाध्वरी के मामा थे। वेङ्कटाध्वरी का प्रादुर्भाव १७ वीं शती के मध्य भाग मे हुआ था।

कृष्णाभ्युदय का प्रथम अभिनय काञ्चीपुर मे हस्तिगिरिनाथ के वार्षिक यात्रा-महोत्सव मे आये हुए सामाजिको के प्रीत्यर्थ हुआ था।

१. यह विचार भारत को युद्ध परायण बनाने के लिए है।

२. इसकी हस्तलिखित प्रति सरस्वती महल लाइब्रेरी, तंजौर मे ४३६८ संख्यक है।

३ ..... of which we possess a manuscript transcribed in 1650
A. D. Stenkonow. A History of Sanskrit Drama P. 174

४. इसका प्रकाशन जबलपुर से १९६४ मे हुआ।

प्रायः पूरे प्रेक्षणक में प्रस्तावना के पश्चात् प्राकृत में स्त्रियों का संवाद है। विश्ववेदिनी लक्षण देखकर भविष्य बताती हुई वसुदेव के घर पहुँचती है। वह गर्भ-भार से अलसाई हुई देवकी से मिलकर बताती है कि आपको तो अब शुभ ही शुभ है। वह अपनी पेटी से काञ्चन-शलाका निकाल कर पुष्प-अक्षत आदि से पूजा करके हाथ जोड़कर उसके विषय में अन्य शोभन बातें भी बताती है। फिर उसका हाथ देखती है और कहती है—

चूतप्रवालसरसीरुहविद्रुमेषु कुन्दशिरीषकुसुमेषु कुमारभावः।
देव्या हृन्नकमलेक्षणे किमप्येतत् मत्कान्तिरूपसुकुमारगुणस्य रीतिम् ॥१८

वह कहती है कि यह अपत्य रेखा है। इसके अनुसार जो पुत्र उत्पन्न होने वाला है, वह—

विश्वम्भराभारहरो धुरीणः विश्वातिगो विश्वविधानदक्षः।
आकल्पमव्याहतपुण्यकान्ति-दीप्तार्कज्योतिरथ वासरस्य ॥१९

आपको जो पुत्र उत्पन्न होगा, उसका विभव ब्रह्मा भी नहीं वर्णन कर सकते। विश्ववेदिनी ने देवी का संकल्प बताया—

वृन्दावने पुण्ये शुकहंसैः भद्राणि पुष्पाणि।
लीलया च पर्यटन्ती गोकुलमध्ये वसेयमहम्।

थोड़ी देर के पश्चात् कृष्ण-जन्म हुआ। दिव्य मंगलवाद्य घोष हुआ, पुष्पवृष्टि हुई और आनन्द-पूर्वक नृत्य हुआ।

देवकी ने पुत्रको वसुदेव के हाथ में दिया। पिता ने कहा—

अङ्गमङ्गममृतोपमेन मे स्पर्शनेन सुखयस्व पुत्रक।
अङ्कुरैरमृतवृष्टिशोनलैरेवि तापहरणामिलापुकैः ॥ २८

वसुदेव-देवकी भरतवाक्य कहते हैं—

राजा जीयान्नयविभवतः प्राणिरक्तः प्रवृत्तौ
विद्यावेदानुमतगनयः सन्तु यज्ञैरुपेताः।
काले वृष्टिर्भवतु महती लोकमुज्जीवयन्ती
भक्तिर्भूयाद् भगवति श्रीपतौ वासुदेवे ॥ ३०

इस प्रेक्षणक की आद्यन्त मृदुता कृष्णजन्मोत्सव के अवसर पर भक्तों को महती प्रीति उत्पन्न करने में नितरां सफल रहेगी।

कृष्णनाटक

कृष्णनाटक संस्कृत रूपक-परम्परा की एक अभिनव दिशा की प्रतिनिधि कृति होने के कारण विशेष महत्वपूर्ण है।[1] इसके रचयिता मानवेद या एरलपट्टि राजा कालीकट के जमोरिन (महाराज) थे। वे परम वैष्णव थे और गुरुव यूर के विष्णुमंदिर में भक्तिपूर्वक प्रायः रहा करते थे। मानवेद १६५५ ई० में जमोरिन बने। कहते हैं

१. इसका प्रकाशन त्रिचूर से मंगलोदय कम्पनी से १९१४ में हुआ था।

कि अपने आध्यात्मिक गुरु विल्वमंगल की कृपा से वे बालकृष्ण को वंशीवादन करते देखते थे। मानवेद ने उनसे स्पर्शपूर्वक प्रेम करना चाहा तो बालकृष्ण मोरपख छोड़कर चम्पत हो गया। उस मोरपख को मुकुट में जड़वा कर मानवेद उस बालक के शिर पर रखते थे, जो नाटक मे कृष्ण की भूमिका मे रंगपीठ पर आता था।

मानवेद ने अपनी कवि-प्रतिभा के विलास को नारायण भट्ट की गुरु गरिमा से मण्डित किया था। नारायण ने मानवेद की प्रशस्ति मे बताया है कि वे नाटक, व्याकरण, तर्क और काव्य मे विशेष निष्णात थे। कृष्ण पिशारोटी से उन्होंने व्याकरण पढ़ा था।

मानवेद ने १६४३ ई० मे पूर्वभारतचम्पू की रचना की थी। इसके द्वारा उन्होंने अनन्तभट्ट के अपूर्ण भारत चम्पू को पूरा किया था।

कृष्णगीति मे जयदेव के *गीतगोविन्द* के आदर्श पर आठ परिच्छेदों मे कृष्ण का समग्र जीवन जन्मोत्सव से देवलोकगमन पर्यन्त भागवत पर आधारित चरित वर्णित है।[1] इसमे गीतियो के साथ ही पद्यो मे भी आख्यान हैं। कहते हैं कि इसी नाट्य के आदर्श पर कथाकली का विकास हुआ था। गुरुवयूर के मन्दिर मे अब तक प्रतिवर्ष इसका अभिनय होता है। इसकी रचना १६५२ ई० में हुई थी।

कृष्णनाटक के कुछ गीत जगद्विजयच्छन्द की परम्परा मे प्रतीत होते हैं। यथा,

'विलसितहृदयविकारं विरहितविविधविचारं।
विलुलितपृथुकुचभारं मदचलमदनागारं॥
मसृणितनियतस्वारं मुखरितरशनावारं।
मुकुलितनयनमसारम्।'[2] इत्यादि पृष्ठ १०६ पर

मानवेद को स्वल्पतम अक्षरो के पाद वाले पद्यों की रचना का विशेष चाव था, किन्तु दण्डक कोटि के सुदीर्घ पद्य भी अनेक है।

कृष्णनाटक गीतनाट्य है। इसमें आख्यान तत्त्व पद्यों में और भाव-विशिष्ट तत्त्व गीतो मे दिये गये है। गीतो का भावात्मक अभिनय नृत्य के द्वारा प्रस्तुत किया जाता था। गीतों मे अनुप्रासात्मक ध्वनियो का सामञ्जस्य सुसगत है। कहीं-कहीं कीर्तन की माधुरी प्रस्तुत है। यथा,

कृष्ण राम कृष्ण राम कृष्ण राम कृष्ण राम
कृष्ण राम तव तु नटनमधिक-मोहनम्।
याम इमे शरणं त्वां यदुवर, याम इमे शरणं त्वाम्।

---

१. भागवत के अतिरिक्त हरिवंशादि पुराणो से कतिपय कथांश गृहीत हैं। यथा हरिवंश से कैलास-यात्रा-चरित। कतिपय अंश कृष्ण-विलास पर आधारित हैं।

२ ऐसे ही पद्य पृष्ठ ६१ पर
"मकर-कुण्डलं गण्डमण्डनं वदन-मण्डलं तापखण्डनं" आदि हैं।
इन दोनों कृतियों का समय तो प्रायः एक ही है, पर उद्भव-स्थान अतिदूर हैं।

गीत-दिगम्बर

चार अंकों के गीतदिगम्बर के रचयिता वंशमणि मैथिल ब्राह्मण के पिता रामचन्द्र थे।[1] वे नेपाल मे राजाश्रित होकर रहने लगे थे। उन्होंने १६५५ ई० में काठमाण्डू में प्रतापमल्ल के तुलापुरुष-दान के उपलक्ष्य में इसका प्रणयन किया था। महाराज ने इस अवसर पर कवच-सहित अपने बराबर स्वर्णादि रत्नो का दान ब्राह्मणों को दिया था। उस समय उपस्थित राजाओं और विद्वानों के मनोरंजन के लिए इस नाटक का प्रयोग हुआ था। प्रताप स्वयं उच्चकोटि के कवि थे। उनके विरचित अष्टक अब भी शिलाओं पर उत्कीर्ण मिलते हैं।

हास्यसागर-प्रहसन

हास्यसागर-प्रहसन के प्रणेता रामानन्द ने इस कृति में अपना संक्षिप्त परिचय इस प्रकार दिया है[2]—'श्री सरयूपारीण मधुकरात्मज रामानन्द' इत्यादि। अपने युग में रामानन्द की प्रतिमा काशी को प्रकाशित करती थी। १६५६ ई० मे दारा शिकोह ने इनसे विराड्विवरण नामक ग्रन्थ लिखने की प्रार्थना की थी।[3] इस प्रकरण से रामानन्द का मानवतावादी होना प्रमाणित होता है। कवि का साहित्य विद्या के साथ ही षड्दर्शन पर अधिकार था। काशी के इतिहास में मोतीचन्द्र ने उनके द्वारा प्रणीत अन्य ग्रन्थों की चर्चा की है—रसिकजीवन, पद्यपीयूष, काशी कुतूहल और रामचरित्र। इन्होंने किरातार्जुनीय की भावार्थ दीपिका टीका लिखी। ऐसे बड़े विद्वान् के योग्य हास्यसागर नही प्रतीत होता। इसमें कुलकलंकिनी ब्राह्मण वधू विन्दुमती की कुट्टनी कलहप्रिया उसे मान्दुरिक नामक यवन के सम्पर्क में लाती है। विन्दुमती का भाई कुलकुठार राजा के पास इस दुर्वृत्त को पहुँचाता है और वही कुलकलंकिनी का भण्डाफोड़ होता है।

रामानन्द ने इस प्रहसन में संस्कृत के साथ हिन्दी का भी प्रयोग किया है। इसमें हिन्दी के पाँच पद्य छप्पय छन्द में लिखे गये हैं। संवाद एकमात्र संस्कृत में ही हैं। हिन्दी का नाटकों मे प्रयोग का यह प्रथम उदाहरण प्रतीत होता है, यद्यपि उर्दू का प्रयोग १५ वी शती के गंगा-प्रताप विलास नाटक मे हुआ। इसकी उर्दू हिन्दी है केवल मुसलमान वक्ता के होने से फारसी और अरबी के शब्दों का बाहुल्य है।[4]

इस प्रहसन में रामानन्द ने हिन्दुओं की औरङ्गजेब-कालीन दुर्गति का चित्रण इस प्रकार किया है—

हन्यते निर्निमित्तं सकलसुरभयो निर्दयैर्म्लेच्छजाते-
दीर्यन्तेऽमी सदेवाः सकलसुमनसामालयाश्चातिदीर्घाः।

---

१. कैटेलोगोरम भाग २ में ३३ संख्यक।

२. इसकी हस्तलिखित प्रति संस्कृत वि० विद्यालय, वाराणसी के पुस्तकालय मे है।

३. इसमें साकार ईश्वर की सार्थकता सिद्ध की गई है।

४. मध्यकालीन संस्कृत नाटक पृष्ठ ४१७।

पीड्यन्ते साधुलोकाः कठिनतरकरग्राहिभिः कामचारैः-
प्रत्यूहैस्तैः ऋनूनां समयमिव जगत्यामराणां कुमारैः ॥

रामानन्द के कुल मे आज तक संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित होते आये हैं।[1] दारा ने इनके पाण्डित्य से प्रभावित होकर इन्हें विविध-विद्या-चमत्कार-पारंगत की उपाधि से मण्डित किया। औरंगजेब ने दारा को मरवा डाला। तब विपन्न होकर रामानन्द ने कहा—

दाराशाहविपत्तु हा कथमहो प्राणाम्न गच्छन्त्यमी।

रामानन्द साहित्य के अतिरिक्त व्याकरण, दर्शन, ज्योतिष और कर्मकाण्ड में निष्णात थे।

इस प्रहसन मे कुछ अन्य पात्र मिथ्याशुक्ल तथा मण्डक-चतुर्वेदी हैं।

शृंगारवापिका

शृङ्गारवापिका[2] के प्रणेता विश्वनाथ भट्ट रानाडे मूलतः कोङ्कण के चित्त पावन ब्राह्मण थे, किन्तु लोकानन्द की तुच्छता से प्रभावित होकर वे शिवशरण प्राप्ति के लिए काशी में आ बसे। उन्होंने शम्भु-विलास नामक काव्य में अपनी प्रवृत्ति का परिचय इस प्रकार दिया है—

मुक्त्वा वैषयिकं सुखं कविरसौ सञ्जात-बोधस्ततो।
दृश्यं स्थावर-जंगमात्मकमिदं ज्ञात्वा प्रपञ्चं मृषा॥
सर्वानन्दगृहं परात्परतरं श्रीराजराजेश्वरी—
रूपं ब्रह्म हृदि स्मरन् शिववने काश्यां स्थितिं निर्ममे॥

विश्वनाथ के पिता महादेव भट्ट, और पितामह विष्णुभट्ट थे। उनके आचार्य ढुण्डिराज ने उन्हें अन्य शास्त्रों के साथ साहित्य विद्या मे पारङ्गत बनाया था। इनके दूसरे गुरु कमलाकर भट्ट थे।

विश्वनाथ ने शृङ्गार-वापिका नाटिका का प्रणयन आमेर के महाराज रामसिंह (१६६७-७५ ई०) के समाश्रय मे रहते हुए किया। इसकी कथावस्तु अधोलिखित है—

उज्जयिनी के चन्द्रकेतु और चम्पावती के राजा रत्नपाल की कन्या कान्तिमती का प्रथम प्रणयानुसन्धान स्वप्न द्वारा हुआ। स्वप्न की राजकुमारी से मिलने के लिये राजा चन्द्रकेतु सिद्ध योगिनी मुण्डमाला के द्वारा उससे सम्पर्क स्थापित करता है। योगिनी चम्पावती मे जा बसती है और चन्द्रकेतु उससे मिलने जाता है। उसे वहाँ के राजा का आतिथ्य प्राप्त होता है। इस प्रकार प्रणयिनी नायिका से साक्षात्कार के क्षणों में उनका प्रेम परा काष्ठा पर पहुँचता है। मुण्डमाला ने इस

१. इस समय इनके वंशज श्री करुणापति त्रिपाठी संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति हैं।

२. इसकी हस्तलिखित प्रति विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर में २५६१ संख्यक है।

बीच कुलदेवी से रत्नपाल को स्वप्नादेश दिया कि कान्तिमती और चन्द्रकेतु का विवाह होना समीचीन है। नायक और नायिका का पाणिग्रहण होता है।

शृङ्गारवापिका का प्रथम अभिनय राजाराम सिंह की राजसभा के मनोरंजन के लिए हुआ था। इसमें कवि का एक प्रधान लक्ष्य है अपने आश्रयदाता रामसिंह की प्रशंसा करना। नाटिका के लगभग एक चौथाई भाग मे रामसिंह की प्रशंसा है। इसके चौथे अङ्क मे राजसभा की कविगोष्ठी के आयोजन का वर्णन है, जिसमे कवि सुभाषित और समस्यापूर्ति के पद गाते हैं। इस प्रकार नाटिका की रीति इस कोटि की रचनाओं से बहुत-कुछ भिन्न पड़ती है।

कवि को अपनी काव्यशैली पर वास्तविक अभिमान है। इस नाटिका मे उसने २१ अक्षरों की स्रग्धरा में ६६ और १९ अक्षरों के शार्दूलविक्रीडित में १२३ पद्यो की रचना की है। ये दोनों संस्कृत के विकट छन्दों मे से हैं। कवि के अन्य प्रिय छन्द १४ पद्यों में वसन्ततिलका, १० पद्यों मे शिखरिणी और १० में पृथ्वी-छन्द हैं। १७वी शती के किसी कवि ने अपने बड़े से बड़े नाटक मे २८ से अधिक पद्य स्रग्धरा में नही लिखे।

छन्दों की भाँति कवि ने अलंकारों के वैविध्य से भी अपनी रचना को मण्डित किया है। यथा श्लेष,

सद्वृत्ता सद्गुणोपेता सदलंकृति शोभना।
कान्ता कान्ता च कविता च कण्ठे भाग्यवतां सदा।

सरल वैदर्भी रीति से नाटिका में सर्वत्र माधुर्य और प्रसाद गुण चमत्कार उत्पन्न करते हैं।

इसमें कुछ ऐतिहासिक और सांस्कृति महत्त्व की सूचनायें मिलती हैं। इसकी प्रस्तावना के अनुसार जयपुर के राजा महासिंह ने अनेक बड़े यज्ञ कराये थे।

मदनाभ्युदय-भाण

मदनाभ्युदय भाण की रचना सत्रहवी शती मे कृष्णमूर्ति ने की।[1] कृष्णमूर्ति के पिता सर्वशास्त्री वशिष्ठ गोत्री थे और उत्तरी-सरकार प्रदेश मे रहते थे। कृष्णमूर्ति की प्रतिभा का विलास १७वी शती के अन्तिम चरण में हुआ था। उन्होंने अपने आपको अभिनव कालिदास कहा है और मदनाभ्युदय भाण के अतिरिक्त यक्षोल्लास की रचना की, जिसमे उत्तरमेघ की कथावस्तु प्रपञ्चित है।

कुशलव-विजय

कुशलव-विजय नाटक के प्रणेता सत्रहवी शती के वेंकटाद्रि के पुत्र वेङ्कटकृष्ण दीक्षित तन्जौर के श्री शाहजी महाराज के आश्रित थे।[2] वे उच्चकोटि के महाकवि थे।

१. मदनाभ्युदय भाण की प्रति Triennial Cat. of Skt. Mss. in Oriental Library में खण्ड २ मे २०७३ संख्यक है।

२. कुशलव-विजय नाटक की हस्तलिखित प्रति ट्रावनकोर में ७६ संख्यक है।

उन्होंने नटेश-विजय-काव्य, श्रीराम-चन्द्रोदय-काव्य और उत्तरचम्पू की रचना की थी।

वेङ्कटकृष्ण को १६६३ ई० में शाहजीपुरम् के अग्रहार में भाग मिला था। उन्होंने शाहजी की इच्छा से इस नाटक का प्रणयन किया था।

युक्तिप्रबोध नाटक

मेघविजय गणी युक्तिप्रबोध नाटक के रचयिता हैं।[१] सत्रहवीं शती में मेघ विजय औरंगजेब के समकालीन थे। इनके गुरु कृपाविजय और विजय प्रभसूरि थे। उन्होंने साहित्य, व्याकरण, ज्योतिष और न्याय-शास्त्रों में प्रचुर पाण्डित्य प्राप्त करके अपने उच्चकोटिक ग्रन्थों की रचना की। इनका सप्त-सन्धान काव्य अपनी कोटि की एक निराली रचना है। इनके देवानन्दाम्युदय में विजयदेव सूरि का चरित वर्णित है। इसकी रचना १६७१ ई० में हुई। शान्तिनाथ-चरित में इन्होंने नैषधीय-चरित की कविता को समस्या रूप में गूँथा है। इनका मेघदूत समस्या लेख में विजय प्रभसूरि से अपने को प्राप्त सदेशामृत का वर्णन है। इन्ही सूरिका चरित उन्होंने दिग्विजय-महाकाव्य में वर्णन किया है।

मेघविजय ने युक्तिप्रबोध नाटक में न्यायदर्शन के सिद्धान्तों का प्रतिपादन प्रतीक पात्रो के सहारे किया है। इसमें १२ वी शती के अमृतचन्द्र-विरचित पद्यों के कतिपय उद्धरण संस्कृत और प्राकृत में मिलते हैं। इसकी रचना लगभग १७०० ई० में हुई। लेखक ने स्वय इसकी टीका भी लिखी है। इसका प्रधान उद्देश्य है पं० बनारसीदास के मत का खण्डन करना, जैसे नीचे लिखे पद्य से प्रकट है—

पणमियवीरजिणिन्दं दुम्मयमयमय विमद्दणमयंद।
कुच्छं सुयणहितत्थं वाणारसियस्स नयभेदं ॥१८

बनारसीदास ने अपने न्याय-सम्बन्धी सम्प्रदाय की स्थापना वि० सं० १६८० में की थी।[२]

रतिमन्मथ

रतिमन्मथ नामक नाटक के प्रणेता जगन्नाथ हैं। जगन्नाथ के पिता बालकृष्ण तंजौर के राजा एकोजी (१६७५–१६८४) के मन्त्री थे। जगन्नाथ की दूसरी कृति शरभराज-विलास है। इनका दूसरा नाटक वसुमती परिणय है। जगन्नाथ स्वय सरफोजी प्रथम (१७१२–१७२८ ई०) के आश्रित थे। स्टेनकोनों के अनुसार जगन्नाथ के गुरु कामेश्वर थे। ये वही जगन्नाथ हो सकते हैं, जो तंजौर के थे और शाहजहाँ के पुत्र दारा से सम्बद्ध थे। जगन्नाथ ने वसुमती-परिणय नाटक की भी रचना की थी।

---

१. इसका प्रकाशन ऋषभदेव-केसरीमल-श्वेताम्बर-संस्था, रतलाम से हो चुका है। इसकी रचना लेखक ने आगरे में रहते हुए की थी।

२. यही बनारसीदास समयसार नामक हिन्दी के नाटक के रचयिता हैं।

३. हस्तलिखित प्रति तंजौर महल पुस्तकालय में भाग ८ में ३४६० सख्यक है। इसका प्रकाशन बम्बई से (१८९०–९१) में हो चुका है।

४. ZDMG 42 P. 554

अतन्द्रचन्द्र-प्रकरण

अतन्द्रचन्द्र-प्रकरण के रचयिता जगन्नाथ के आश्रयदाता फतेहशाह का शासन-काल १६८४ से १७१६ ई० है।[1] कवि तीरभुक्ति के प्रख्यात काव्यजीवी वंश में उत्पन्न हुए थे। उनके पितामह रामभद्र उच्चकोटि के कवि थे। उनके अन्य तीन बड़े भाई सुयोग्य विद्वान थे। जगन्नाथ के पिता पीताम्बर थे।

जगन्नाथ की रचनाओं में से अभी तक यही उपलब्ध है। इसका प्रणयन आश्रय-दाता और उसके सामन्तों के मनोरंजन के उद्देश्य से किया गया था। इसमें सात अङ्क हैं। इसका प्रथम अभिनय फतेहशाह की राजसभा के मनोरंजन के लिए हुआ था।

कथानक

अतन्द्रचन्द्र के चरितनायक प्रकृति के प्राङ्गण में विचरण करने वाले तत्त्व पुरुष-रूप हैं। इसका नायक चन्द्र है, जिसका चन्द्रिका से अनुराग प्ररूढ हुआ। दूसरा नायक सागर है, जिसका चन्द्रकला से प्रणय-व्यापार चल रहा है। चन्द्रिका को अपने प्रणय-पाश में आबद्ध करने के लिए प्रतिनायक है तमिस्रा का पुत्र विमूढ, जिसकी सहायता कादम्बिनी नामक सिद्धयोगिनी कर रही है और जिसकी योजना के फलस्वरूप चन्द्रिका का विवाह विमूढ से आयोजित तो हुआ, किन्तु सानुमती नामक योगिनी के प्रपंच द्वारा चन्द्रिका-वेशधारिणी उसकी सखी कलावती से उस अवसर पर उसका विवाह हुआ। विवाह के अनन्तर कलावती ने एक और जाल रचा। वह चन्द्रकला नामक विमूढ की बहिन को सागर नामक नायक से संगमित कराने का प्रलोभन देकर अपने साथ ले गई। विमूढ ने समझ लिया कि यह सब चन्द्र और सागर के करतब हैं। उसने ससैन्य उन दोनों पर आक्रमण कर दिया, पर हार गया।

कादम्बिनी ने तिरस्करिणी विद्या के प्रयोग से चन्द्रिका का अपहरण करवाया। विमुक्त होने पर नायक चन्द्र मरना चाहता था। उसके मित्र सागर ने भी उसके साथ ही निराश होकर मर जाना ही श्रेयस्कर समझा। ऐसी स्थिति में चन्द्रिका की पक्षधारिणी शारदा नामक योगिनी ने चन्द्रिका को आकर्षिणी विद्या के प्रयोग से चन्द्र के लिए बचा लिया। उन दोनों का प्रणय प्ररूढ हुआ। चन्द्रकला तो सागर की हो ही चुकी थी।

अतन्द्रचन्द्र-स्त्री प्रधान रूपक है। इसकी प्रकृति में पुरुष तो केवल पाँच हैं, किन्तु स्त्रियाँ ११ हैं। अपवाद रूप से ही रूपकों में स्त्रीप्रकृति पुरुष-प्रकृति से अधिक होती है।

इस रूपक में तिलस्मी जादूगरी के करतब अद्भुत हैं। योगिनियों के कार्यकलाप साधारण स्तर के दर्शकों के लिए विशेष रुचिकर हैं। यथा शारदा की आकर्षिणी विद्या का प्रभाव है—

१. इसकी हस्तलिखित प्रति भण्डारकर ओ० रि० इं०, पूना में है।

यद्यस्ति त्रिदशालये सुरबुधवृन्देभसंसेविते।
पाताले यदि वा किमु प्रियचरभूलोकयास्ते यदि॥
अम्भोधौ जलधिगिरावपि वने लीलामहो चन्द्रिका-
माकर्षामि समाधिवैभवफलं सम्पश्यतु मामकम्॥

जगन्नाथ कवि का सुप्रिय छन्द इस शती की छान्दसिक प्रवृत्ति के अनुरूप शार्दूलविक्रीडित था, जिसमें उन्होंने ८४ पद्य लिखे, जो उनके सभी पद्यों के लगभग आधे पड़ते हैं। शार्दूलविक्रीडित इस युग का सर्वाधिक लोकप्रिय छन्द रहा। इसके बाद अनुष्टुप् और वसन्ततिलका आते हैं, जिनकी संख्या नाटकों में शार्दूलविक्रीडित से आधी ही है।

जहाँ सिद्धयोगियों का कार्य व्यापार है, वहाँ शैली का गूढ होना स्वाभाविक ही है। कवि ने प्रणय की चर्चा में वैदर्भी रीति और माधुर्य-गुण का प्ररोचन किया है। छठें और सातवें अङ्क में माया और युद्ध के प्रसंगों में ओजोगुण के योग्य पदरचना क्लिष्ट है। मायात्मक आरभटी वृत्ति इसमें पर्याप्त सफल है।

इस युग में प्रकरणों का प्राय अभाव रहा है। जगन्नाथ की यह रचना इस कारण भी महत्त्वपूर्ण है।

जगन्नाथ ने अतन्द्रचन्द्र के चतुर्थ अङ्क में अपने वर्णनों से प्रायः समग्र भारत की प्राकृतिक विभूतियों का संग्रहण किया है। गोदावरी, गगा आदि नदियों, पंचवटी तथा विन्ध्यारण्य आदि के उनके वर्णनों से भवभूति का स्मरण होता है। इस प्रकरण में चन्द्र और सागर की ओर से युद्ध करने वाली सेना का कार्यकलाप उल्लेखनीय है। हाथियों के चिग्घाड़ की चर्चा जैसी इसमें हैं, वैसी अन्यत्र कम ही मिलती है।[1]

कल्याणपुरंजन

कल्याणपुरञ्जन के रचयिता शठमर्षन गोत्र के तिरुमलाचार्य तेलङ्गाना में गडवल के रहने वाले थे।[2] गडवल के रेड्डी नरेश संस्कृत-विद्या के उन्नायक थे। कवि के आश्रयदाता पालभूपाल थे। कल्याणपुरजन में केवल दो अङ्क हैं।

१. अतन्द्रचन्द्र ६.३

२. इसकी हस्तलिखित प्रति मैसूर कैटेलग भाग १ पृ० २७५ संख्या १८६४ में निदर्शित है।

अठारहवीं शती के नाटक

अध्याय ३७

शाहजी महाराज की नाट्यकृतियाँ

तञ्जौर में महाराष्ट्रिय राजाओं ने संस्कृत-साहित्य की विशेष अभिवृद्धि की। इनमें से कई राजा विख्यात साहित्यकार हुए। महाराज शाहजी को इस दिशा में अपनी विशेष उपलब्धियों के कारण धारा के भोज की ख्याति प्राप्त थी।

शाहजी का जन्म १६७२ ई० में हुआ था। उनका शासनकाल १६८४ ई० से १७११ ई० तक है। इनके आश्रित कवियों में संगीत और साहित्य-विद्या में परम निष्णात गिरिराज कवि हुए। इनकी तत्सम्बन्धी रचनाओं से सम्भवतः शाहजी को प्रेरणा मिली हो। शाहजी ने अनेक संगीत-रूपकों का प्रणयन किया। इनमें से चन्द्रशेखर-विलास विशुद्ध संस्कृत में है। शेष विविध भाषाओं में रचित हैं।[1]

संगीत-रूपकों को यक्षगान या अभिनय-रूपक भी कहते हैं। इनका समारम्भ और विकास यक्षवर्ग के संगीत-प्रेमी लोगों में हुआ और उन्हें देशी नाट्यविधा कह सकते हैं। यक्ष लोग इस कोटि के रूपकों के द्वारा सार्वजनिक मनोरंजन करते रहे हैं। शनैः शनैः इनकी लोकप्रियता बढ़ी और सुसंस्कृत वर्ग ने इस नाट्यविधा को अपना लिया। तंजौर में नायकवंशी राजाओं के समुदय के समय तेलुगु भाषा में रचित यक्षगानों का विशेष प्रचार हुआ।

महाराज शाहजी के शासन-काल में तेलुगु के अतिरिक्त संस्कृत, तमिल, महाराष्ट्री, हिन्दी आदि भाषाओं में भी यक्षगानों की रचना होने लगी। ऐसी रचना संस्कृत-साहित्य की एक नई शाखा-रूप में विकसित हुई।

शाहजी ने चन्द्रशेखर-विलास के अतिरिक्त पञ्चभाषा-विलास नामक यक्षगान की रचना की। इसमें संस्कृत की प्राथमिकता तो अवश्य है, किन्तु इसके साथ ही तमिल, तेलुगु, महाराष्ट्री और हिन्दी-भाषा-भाषी, अपनी-अपनी भाषा बोलते हैं।

शाहजी के दो यक्षगान हिन्दी में मिलते हैं—विश्वातीत-विलास नाटक तथा राधा-वंशीधर-विलास नाटक। उन्होंने शब्दरत्न-समन्वय-कोष तथा शब्दार्थ-संग्रह की रचना की। तेलुगु और मराठी में उनकी अनेक रचनायें हैं।

चन्द्रशेखर-विलास की रचना कब हुई? इस प्रश्न का निश्चित समाधान अभी तक नहीं हो सका है। इसकी सर्वप्रथम हस्तलिखित प्रति १७०१ ई० की मिलती है। सम्भव है, यह १७०१ ई० में लिखा गया हो, अन्यथा इसे १७ वीं शती के अन्तिम छोर पर रखना उचित होगा।

शाहजी ने अपने यक्षगानों की कोटि महानाटक बताई है। चन्द्रशेखर-विलास के आरम्भ में सूत्रधार कहता है—'अस्मिन् चन्द्रशेखर-विलास-महानाटके' इत्यादि। इसके अन्त में सूत्रधार कहता है—

---

१. चन्द्रशेखर-विलास का प्रकाशन तंजौर से १९६३ ई० में हुआ था।

इति श्रीमद् भोंसलकुलाम्बुधिसुधाकर-श्रीशाहजी-महाराजविरचितं चन्द्रशेखरविलासमहानाटकम्' इत्यादि। इसको नाटक या महानाटक भरत की परिभाषा के अनुसार माना ही नहीं जा सकता। इसकी सारी सामग्री अधिक से अधिक एकांकी के बराबर है। इसमें अङ्कों के द्वारा या अन्य किसी प्रकार से विभाजन भी नहीं मिलता। इसमें नान्दी, प्रस्तावना, आमुख आदि भी प्राचीन रूप में नहीं हैं। इसकी वस्तु की प्रस्तावना कंचुकी करता है। आन्ध्र-भाषा के यक्षगान के समान इसमें दरु, चूर्णिका, पद आदि का प्रयोग मिलता है। पहले के संस्कृत-नाटकों में ये नहीं मिलते हैं।

यक्षगान गीत-प्रधान हैं। इसके आरम्भ, मध्य और अन्त में गीतों का सम्भार है। गीत के पश्चात् नृत्य का स्थान है। इसमें विघ्नराज का नृत्य अभिप्रेत है।

कथावस्तु

इन्द्र अपनी सभा में पधारते हैं। नृत्य-कौतुक देखने की इच्छा देवाङ्गनाओं के आगमन से पूरी की जाती है। वे नाचती-गाती हैं। सभी देवता इन्द्र की शरण में आ पहुँचते हैं। नारदादि मुनि भी आते हैं। सभी इन्द्र से कहते हैं कि कालकूट का अतिदारुण भय है। इन्द्र ने कहा कि इस भय को मैं दूर करने में असमर्थ हूं। हम सब ब्रह्मा के पास चलें। पर ब्रह्मा स्वयं वहां आ पहुँचे। सबने उनसे कहा—

अद्य अतिसत्वरं पाहि गरलात् कमलसम्भव।

ब्रह्मा ने कहा कि मेरे लिए यह शक्य नहीं। हम सभी विष्णु के पास चलें। ब्रह्मा ने स्वयं विष्णु से कहा—

अस्मदार्तित्राणपरायणेन भवताधुना भवितव्यम्।

विष्णु ने कहा कि शङ्कर के बिना और कोई आप लोगों का भय दूर नहीं कर सकता। थोड़ी देर में शिव वहाँ आ पहुँचे। विष्णु ने शिव की स्तुति की—

शरणं शरणं भवच्चरणमस्माकं हर परिहर शीघ्रमखिलदुरितम्॥

सभी देवताओं ने शिव से निवेदन किया—

भयमखिलं निवारयाभयं वितर दयया
भयदं कालकूटं वारयोदभटसंकटादुत्तारय॥

तब तो कात्यायनी ने उन सबको डाँट लगाई—

क्षीराब्धिसम्भवानि स्वीकृतानि सुवस्तूनि
दारुणं कालकूटं दातुं हरायागता. किम्॥

पर शिव ने उन्हें आश्वासन दिया कि आपका भय दूर करने के लिए मैं अमृत के समान विष को पी जाऊँगा।

देवों ने शिव को हालाहल दिखा कर उनकी स्तुति की—

हालाहलं पश्य त्रिपुरहर देव अनन्तभयप्रदमिदं त्रिपुरहर।
कालरात्रिरूपमिदं त्रिपुरहर लोककण्टकमिदं दुस्सहमिदं त्रिपुरहर॥ इत्यादि

शिव ने उसका आचमन करना आरम्भ किया। पार्वती ने देखा कि शिव के उदर में जगत् है। कहीं गरल उसे नष्ट न कर दे। जगन्माता पार्वती ने शिव से कहा—

अन्तर्बहिर्जगदवनाय हालाहलं त्वया कवलितम्।
अन्तस्थजगदवनाय मया हालाहल त्वद्गलस्थं कृतम् ॥

देवताओं ने फिर शिव की स्तुति की। शिव ने उन्हें उत्तर दिया—

भक्त्या स्मरणेन शुद्धभावेन मां नित्यं
युक्त्या पूजया भजत युष्मानभितोऽधिकम् ॥

नारदादि मुनियों ने मङ्गलगान किया।

मंगल शशिधराय मगलं शिवाय
प्रणतार्तिहराय परमेश्वराय प्रणवस्वरूपाय कालनेत्राय।
फणिराजभूपाय प्रमथनाथाय कनकाद्रिचापाय कालकंठाय ॥

अन्त मे ग्रन्थ श्रीत्यागेश साम्बशिव को अर्पित है।

नाट्यशिल्प

चन्द्रशेखर-विलास मे सूत्रधार रंगमंच पर आद्यन्त रह जाता है। वह निवेदक की भांति आगे आने वाली घटनाओं की सूचना रंगमंच से देता रहता है और आवश्यकतानुसार कभी-कभी अन्य पात्रों से संवाद भी करता है।[1] यथा,

सूत्रधारः —एवं कंचुकिमुखात् सभासज्जीकरणं श्रुत्वा इन्द्रः समायाति। पश्यन्तु सभासदः।

इन्द्र के आने के पश्चात् वह पुनः सूचना देता है—

एवं कंचुकिना आहूता देवाङ्गनाः समायान्ति।

सूत्रधार अपनी सूचनाओं को प्रायः पद्यों में विविध रागों में गाकर सुनाता है, साथ ही नायकों का लोकरंजक वर्णन करता है। यथा,

अतिनीलवेणी अम्बुजपाणी सुकेशी समायाति, इन्द्रसमाजम्।
काञ्चन-कलशस्तनी कमनीयकोकिलवाणी ऊर्वशी समायाति इन्द्रसमाजम् ॥

रंगमंच के दो भाग हैं। कतिपय पात्र एक भाग से दूतों द्वारा दूसरे भाग के पात्रों को संवाद भेजते हैं। दृश्य-स्थली बदलने के लिए कहीं-कहीं पात्रों का परिक्रमण (थोड़ा चलना-फिरना) मात्र पर्याप्त है।

भाषा-वैचित्र्य

संस्कृत को उत्कृष्टता प्रदान करते हुए कविने उसे तेलुगु से संस्पृष्ट रखा है। यथा,

राजीवलोचनू रे राकेन्दुवदनू रे आजिजितदनुजू रे अमरेन्द्र मां पाहि रे
मारि साधा पधसरि गागा रि रि सारि गाधा इत्यादि।

इस पद्य में लोचनू, वदनू अनुजू आदि तेलुगु के रूप हैं।

---

१. अर्थोपक्षेपक की सारी सामग्री सूत्रधार के निवेदन-रूप में मिलती है।

इस यक्षगान मे शिष्य तेलुगु बोलता है, एक मुनि भी तेलुगु बोलता है। इनकी भाषा नितान्त सरल, सुबोध और सर्वथा संगीतमयी है।

रस

यक्षगान कोटि के रूपक मे शृङ्गार की विशेषता स्वाभाविक है। देवाङ्गनायें नीचे लिखे शृङ्गारित पद्य का नृत्य इन्द्र के प्रीत्यर्थ करती हैं—

सललितं दयया स्तनयुगले नखक्षतममितं कुरु विभो।
कलितप्रीत्या मामालिग्याधरं गाढं चुम्ब रमस्व मया सह॥

व्यञ्जना का अभाव ऐसे स्थलो पर ग्राम्य दोष का परिचायक है।

पंचभाषा-विलास

पचभाषा-विलास शाहजी की दूसरी सस्कृत नाटकीय कृति है।[1] इसमें कृष्ण का चार नायिकाओ से प्रेम-निवेदन है। आरम्भ मे गणेश की पूजा होती है, जिसमें परिचारिका नट, देवदासी और शहनाई-वादक भाग लेते हैं। सूत्रधार सवाद देता है कि द्रविड देश की राजकुमारी कान्तिमती शृङ्गार-वन मे आई है। तभी उधर से कचुकी आता दिखाई पड़ा। कचुकी के साथ ओछा व्यवहार करने पर सूत्रधार आदि को सुनना पड़ा कि आप लोग वेश्यापुत्र हैं।

कान्तिमती ने युधिष्ठिर के राजसूय-यज्ञ मे कृष्ण को देखा था और उनके रूप-गुण पर मुग्ध होकर उन्ही की बन कर रहना चाहती थी। शृ गार-वन मे अपने प्रणय का निवेदन करती हुई वह कहती है कि जिस दिन से मैंने श्रीकृष्ण को देखा है, उसी दिन से काम-पीडित हूँ। उसके रगमच छोड देने पर उसी जैसी आन्ध्र-देश की राजकुमारी कलानिधि रंगमच पर आती है। वह राजसूय-यज्ञ मे श्रीकृष्ण को देखकर मोहित होने पर शृ गार-वन मे आ पहुँची है और अपनी उद्दाम प्रेमभावना को विस्तार से प्रकट करती है। उसकी सखी उसकी बातें सुनाती हैं। वह रगमच से चली जाती है।

तीसरी नायिका महाराष्ट्र-राजकुमारी कोकिलवाणी है। उसका सौन्दर्य-निरूपण सूत्रधार आदि करते हैं। अन्त मे रगमच पर आकर वह अपना विरह निवेदन करती है कि कैसे कृष्ण के प्रेमपाश मे निगडित होने पर कामदेव के द्वारा सताई जा रही हू।

इसके पश्चात् उत्तर देश की राजकुमारी सरसशिखामणि रंगमच पर आती है। वह कृष्ण के प्रति अपनी आसक्ति का वर्णन सखियो से करती है—

विरह सतावे मोहे छनछन माई। उन बिन मोहे कल न परत हे।
कइसे रहों निसवासर हो माई। तन तपता हे उनके मिलवे कू॥
नैन पेशेद के उर सखे सखी। ध्यान न जानो मन्त्र न जानो।

---

१. इसका प्रकाशन T. M S. S. M. Library के जर्नल में १८.३ तथा १९.१-३ में हो चुका है।

जानो उनही को नाव सखो। सम्पद मुखानन्द वो हि दीनो हर ॥
श्रीहि के जतावे जाने दे सखी ॥

यमुना-तट पर सखाओं के साथ वनविहार करते हुए कृष्ण को कंचुकी विरहिणियों की अवस्था बताता है। इधर इन कन्याओं में कृष्ण-प्रेम के तारतम्य को लेकर परस्पर विवाद होता है। द्राविड और आन्ध्र-भाषिणी नायिकायें एक-दूसरे को समझती हैं और परस्पर कलह करती हैं। महाराष्ट्र और उत्तर देश की नायिकायें परस्पर कलह करते हुए एक दूसरे की बात समझती हैं। कलहवार्ता को सुनकर कृष्ण ने सर्वभाषाविद् नर्मसचिव को उनसे बात करने के लिए भेजा। नायिकायें संस्कृत नहीं समझती थीं। नर्मसचिव ने पहले द्राविड भाषा में वार्तालाप किया। कान्तिमती ने उसके प्रश्नों का उत्तर दिया। कलानिधि से बातें तेलुगु में हुईं और कोकिलवाणी से मराठी में। सरससिखामणि से बातें हिन्दी में हुईं। अन्त में उसने कृष्ण से उनकी प्रणय-गाथा सुनाई। कृष्ण से उसकी बातें संस्कृत में हुईं। कृष्ण की अनुमति से सभी नायिकायें विवाह के लिए कृष्ण के पास आईं। उनका वर्णन है—

कन्निर्फंकल् नालुपेरुं कूडि	(द्राविड)
कनकभूपाग्गालु धरिंचि	(तेलुगु)
मान्यभावे भक्तिनें	(मराठी)
माधव से मिलने चले	(हिन्दी)
पश्यन्त्वखिलजनाः।	(संस्कृत)

पुरोहित काशीभट्ट की सहायता से सबका कृष्ण से विवाह हुआ। वे सभी प्रसन्नता-पूर्वक कृष्ण के साहचर्य में अपनी इच्छापूर्ति में लग गईं।

ऐसा लगता है कि यक्षगान का अनुरंजन प्राकृत जनोचित है। इनमें नायिकायें अपनी मनोव्यथा व्यञ्जना से न कहकर अभिधा से प्रकट करती हैं। यथा कोकिल-वाणी का कहना है—

मेरा जीवन व्यर्थ है। करिकुम्भ-गर्वापहारी, कनककलश के समान मेरे स्तन कृष्ण-समागम के बिना व्यर्थ हैं, इत्यादि।

नाटक में परवर्ती अनेक भाषाओं का सामञ्जस्य दिखाया गया है। यही इसकी प्रमुख विशेषता है।

अध्याय ३८

आनन्दलतिका

आनन्दलतिका के प्रणेता कृष्णनाथ सार्वभौम, भट्टाचार्य हैं[1]। इनके पिता का नाम श्री दुर्गादास चक्रवर्ती था। दुर्गादास कृष्ण-भक्त थे। कवि का आश्रयदाता सामन्त चिन्तामणि नामक था। कन्या का विवाह होने पर जब वह पति के घर चली गई तो चिन्तामणि अन्यमनस्क थे। उनका मनोविनोद करने के लिए आनन्दलतिका का प्रथम प्रयोग हुआ था।

कवि के प्रारम्भिक आश्रयदाता चिन्तामणि के विषय मे अन्य विवरण अज्ञात है। इनके अन्य आश्रयदाता रामजीवन का नाम उल्लेखनीय है। रामजीवन के पुत्र का नाम रघुनाथ राय (१७१५-१७२८ ई०) था। १७१५ ई० मे रामजीवन की मृत्यु होने पर रघुनाथ राय राजा हुआ, जिसका समाश्रय कवि को प्राप्त हुआ। रामजीवन की राजधानी नाटौर मे थी। रामजीवन के पितामह राजाराम कृष्णराय ने १७०३ ई० मे कविवर को भूमि दान मे दी थी, जिसे कवि ने अपने शिष्य रामजीवन पचानन को १७१६–१७ ई० मे दे दिया था।

कृष्णनाथ ने पदाङ्क-दूत की रचना १७२३ ई० मे की थी। पदाङ्कदूत प्रौढ कवित्व से निर्भर है। आनन्दलतिका की रचना इसके पहले हुई होगी। इसकी प्रस्तावना मे कहा गया है—

अभिनवकविकवितेय भरति न वा रुचमेतदभिज्ञानाम्।
हरति वा वित्तचित्तं चटुलयति मां हरेर्गुणानुवादः॥

ऐसी स्थिति में इसकी रचना ७१५ ई० के पूर्व हुई—यह सम्भावना है। आनन्दलतिका के अतिरिक्त कृष्णनाथ ने पदाङ्कदूत में मेघदूत के आदर्श पर गोपियो के द्वारा कृष्ण के पदचिह्नो को दूत बनाकर वृन्दावन भेजा है। उनके कृष्ण-पदामृत मे कृष्ण की स्तुति है और मुकुन्दपद-माधुरी मे कारिकायें सटीक प्रणीत हैं। कृष्णनाथ यथानाम कृष्णोपासक थे।

कथावस्तु

आनन्दलतिका के पाँच कुसुमो मे साम और रेवा के परिणय की कथा है। एक बार नारद कृष्ण के पास आये। कृष्ण उनके चरणो मे गिर पड़े। फिर कृष्ण उन्हें कालिन्दी के घर मे ले गये। नारद ने कृष्ण को बताया कि राजा दमन की कन्या रेवा अनुपम गुणो से मण्डित है। तुम्हारा पुत्र साम अपने योग्य कन्या ढूँढ़ते हुए मेरे द्वारा प्रदत्त विद्या के सहारे अदृश्य रहकर दमन की नगरी मे प्रवेश कर गया। राजा के अन्त:पुर मे रेवा से उसका मिलन हुआ। दोनो मे प्रगाढ प्रेम उत्पन्न हुआ।

१. यह रूपक संस्कृत साहित्य-परिषद् पत्रिका २३ १ तथा इसके पश्चात् के अङ्को में अंशतः प्रकाशित है। इसकी अप्रकाशित पूर्ण प्रति लन्दन की इण्डिया आफिस की लाइब्रेरी में मिलती है। इसकी एक प्रति ढाका विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में है।

नायक ने अपने मित्र सुमति (उद्धव के पुत्र) से सब बातें बताईं और नायिका का चित्र बना दिया।

दमन ने रेवा का स्वयंवर रचा। अनेक राजकुमार आये। स्वयंवर में राजकुमारी की ओर से एक समस्या अभ्यर्थियों की पूर्ति के लिए रखी गई, जो इस प्रकार थी—

रोपामिघो धीरसमोऽप्यधीरः को मित्रजामित्रजनप्रसूतः॥

अन्य राजकुमार इसकी पूर्ति में असफल रहे। साम ने अन्तिम दो पादों की इस प्रकार रचना करके सफलता पाई—

कृष्णात्मजोऽसौ सम एव नान्यः प्रानूनकालिन्यपि यं स एवः॥७६

उसे रेवा ने जयमाला पहना दी। विवाह हो जाने के पश्चात् शीघ्र ही रेवा के पतिगृह जाने का मुहूर्त आया। राजा दमन उसके प्रस्थान के समय विलाप करते हुए कहने लगा—

रेवा यास्यति हन्त नाथ निलयं बालाननिन्दा कथं
शुश्रूषां प्रवियास्यति श्वशुरयोः पत्युर्मनोरञ्जनम्।
क्षुद्दुत्तापविपीडिता च कुलजा कर्म्मं किलास्यास्यते
शून्यान्येव दिवां मुखानि किमहो पश्यामि तां चिन्तयन्॥

यह कह कर राजा रोने लगा।

मन्त्री ने राजा को समझाया कि आप धैर्य धारण करें और प्रस्थान की अनुमति दें। राजा ने रेवा को सद्व्यवहार की सीख दी।

मार्ग में यात्रा करते हुए दम्पती अष्टावक्र के आश्रम में महर्षि का दर्शन करते हैं। आश्रम है—

नानापुष्पितपादपाः प्रतिदिशो नृत्यन्मयूराः स्थली
शाखाग्राममयाः पठन्ति किमहो सामानि शुद्धं शुकाः।
माध्वीकान्मधुरं कपोलमधुलिट् पुंस्कोकिलैः गीयते
आघ्रानुं रसवाजिनामपि मुखान्यायान्ति मुग्धा मृगाः॥

सभी लोगों को छोड़ कर दम्पती अष्टावक्र से मिले। उनकी कृपा से तत्क्षण द्वारका आ पहुँचे।

नाट्यशिल्प

नाट्यशिल्प की दृष्टि से आनन्दलतिका नई धारा का प्रवर्तन करती है। इसमें अङ्कों के स्थान पर पाँच कुसुम मिलते हैं। सूत्रधार नान्दीपाठ द्वारा सभ्यों को आनन्द प्रदान करने के कारण आनन्दक कहा गया है। प्रस्तावना में रंगमंच पर अकेले आनन्दक है, किन्तु प्रेक्षकों से उसकी बातचीत होती है। नान्दी सुनकर वे कहते हैं—

भो आनन्दक! साधु, साधु! नान्दीभिर्नन्दिता वयम्। किन्तु देवस्य चिन्तामणेर्मातृपरिणीतोर्णोततनया निमित्तमन्याद्दशमानसम्। तदस्य मनोनिर्वेदजनकमपि प्रबन्धं प्रस्तावय।

आनन्दक (सूत्रधार) कहता है—'श्रीकृष्णनाथकविना विरचितमानन्द-तेकानाम प्रबन्धमधीतवानस्मि।' इससे स्पष्ट है कि प्रस्तावना का लेखक य आनन्दक है। प्रस्तावना के कतिपय दृश्य कार्य पाठको को सूचित किये गये । यथा,

सभ्येषु निवेद्य नृपतिपुरत उपसृत्य प्रकटितकरपुटकः प्रचलद्भवदल. वेनयनमितकन्धरः क्षितिपतिपदनिहित-नयनस्तिष्ठति।

नाटक मे निवेदनो की अधिकता है। इनसे प्रायः अर्थोपक्षेपक के प्रयोजन सिद्ध ते हैं। निवेदनो में सवाद नही हैं, पर इनमे काव्यात्मकता उस अभाव की पूर्ति ता है। इस दृष्टि से यह हनुमन्नाटक की परम्परा मे आता है।

अध्याय ३९

घनश्याम की नाट्यकृतियां

घनश्याम का जन्म १७०० ई० के लगभग हुआ था। वे १८ वीं शती में तन्जौर के भोंसलावंशी राजा तुक्कोजी (१७२९–१७३५ ई०) के मन्त्री थे। इनके कुल में पाण्डित्य परम्परागत था। उनकी दोनों पत्नियां सुन्दरी और कमला परम विदुषी थीं और उन्होंने मिलजुल कर विद्धशाल-भञ्जिका की चमत्कार-तरंगिणी नामक टीका लिखी थी। इनके एक जन्मान्ध पुत्र गोवर्धन ने भी घटकर्पर पर टीका रची।

घनश्याम में अनेक व्यक्तित्व समुदित थे। उन्होंने अपनी मानसी वृत्तियों का आकलन किया है—

दत्वा ग्रामान् द्विजेभ्यः कृतमखबुधसात्कृत्यदन्तावलेन्द्रान्
कृत्वा श्रीपौण्डरीकं रचितघनसरः सत्रदेवालयादिः।
नीत्वा ख्यातिप्रबन्धान् प्रथितरणयशा न्यस्य राज्येषु पुत्रा-
नन्ते संन्यस्य शम्भो त्वयि हृदिव वपुर्गाङ्गनीरेऽर्पयामि ॥

नवग्रहचरित से।

डमरुक में सूत्रधार ने घनश्याम के विषय में कहा है—

षट्पड्भाषाकाव्यं नाटकभाणौ च सट्टकं चम्पूः।
अन्यापदेशशतकं प्रहसनमपि येन लीलया ग्रथितम् ॥

घनश्याम के विषय में लोकमत था—

बुद्ध्या वर्धितशत्रपक्ष-निजदोर्दण्डात्तभाग्योपकृत्
प्रायो वैदिकलौकिकाध्वगतिभ्रष्टप्रबन्धीकर।
आनन्दाम्बुनिधे त्रियम्बककुलोद्धारैकहेतो कवे
धीरश्रीसुरनीरपण्डितघनश्याम त्वमन्यादृशः ॥७

उनके विषय मे किंवदन्ती थी कि वे सरस्वती है—

सरस्वती घनश्यामो घनश्यामः सरस्वती ।८

बीस वर्ष की अवस्था में ही घनश्याम को सर्वोत्कृष्ट ख्याति प्राप्त हो चुकी थी। सूत्रधार ने कुमारविजय नाटक की प्रस्तावना में कहा है—

स्वच्छन्दप्रवहत्सुवारसझरी कल्लोलहल्लोहला
हुंकारोत्करहुंक्रियाकरमहावाग्गुम्फकूलंकषः।
द्वैतध्वान्तदिवाकरः किल महाराष्ट्रैकचूडामणिः
सन्तोषाय कुतूहलाय च घनश्यामो विजेजीयत ॥

घनश्याम ने शैशव में ही काव्य-रचना मे प्रकाम निपुणता प्राप्त कर ली थी। उन्होंने केवल १२ वर्ष की अवस्था मे युद्धकाण्ड-चम्पू लिखी। उस समय से आजीवन अहर्निश वे कुछ-न-कुछ लिखते रहे। कहते हैं कि उन्होंने सौ से अधिक ग्रन्थो का प्रणयन किया, जिनमे से ६४ संस्कृत मे तथा २० प्राकृत और अन्य इतर भाषाओं मे थे। उनकी रचनायें अधिकाश तजौर के सरस्वती-भवन मे प्राप्य हैं। उनके काव्य-धवलित अनेक नाम मिलते हैं। यथा, सर्वज्ञ, कण्ठीरव, सुरलीर, वश्यवाक् आदि। कवि की कुछ प्रमुख रचनाओ के नाम नीचे लिखे हैं—

रूपक

प्राप्त—कुमारविजय नाटक, मदनसजीवन भाण, नवग्रहचरित, डमरुक, प्रचण्ड-राहूदय, अनुभूति-चिन्तामणि नाटिका, प्रचण्डानुरजन-प्रहसन, आनन्द-सुन्दरी-सट्टक।[1]

अप्राप्त—गणेश-चरित, त्रिमठी-नाटक, एक डिम और एक व्यायोग—चारों का उल्लेख विद्धशालभंजिका की चमत्कार-तरगिणी टीका मे मिलता है।

काव्य

प्राप्त—भगवत्पादचरित, षण्मतिमण्डन, अन्यापदेशशतक।

अप्राप्त—प्रसगलीलार्णव, वेङ्कटेश-चरित स्थलमाहात्म्यपंचक।

टीकायें

प्राप्त—उत्तररामचरित, विद्धशालभजिका, भारतचम्पू, नीलकंठविजयचम्पू, अभिज्ञानशाकुन्तल, दशकुमारचरित पर।

अप्राप्त—महावीरचरित, विक्रमोर्वशीय, वेणीसहार, चण्डकौशिक, प्रबोध-चन्द्रोदय, वासवदत्ता, कादम्बरी, भोजचम्पू और गाथासप्तशती पर।

कलिदूषण नामक काव्य मे घनश्याम ने ऐसे पद-विन्यास रखे थे, जो संस्कृत और प्राकृत दोनो भाषाओ से सिद्ध थे और कलि की दूषित प्रवृत्तियो का परिचय देते थे। घनश्याम का आबोधाकर श्लेष-काव्य स्पर्धी था, जिसका प्रत्येक श्लोक नल, हरिश्चन्द्र और कृष्ण-परक था।

कवि का लेखन अत्यन्त क्षिप्र गति से चलता था। उन्होंने मदन-सञ्जीवन भाण की रचना एक दिन में की थी।[2]

घनश्याम की मृत्यु १७५० ई० में हुई। वे २९ वर्ष की अवस्था में टुक्कोजी के मन्त्री हुए थे।

---

१. घनश्याम ने वैकुण्ठचरितसट्टक और एक अज्ञात-नाम सट्टक की भी रचना सम्भवतः की थी।

२. एकेनाह्ना कृतं तेन मयैकेन प्रयुज्यते। इत्यादि प्रस्तावना में।

मानुदत्तादि समसामयिक बहुत से कवियों ने घनश्याम की प्रशस्ति में कहा है—

वाग्देवीकरदण्डघातनलिकक्रीडा-विनिर्यत्सुधा–
सारासारमहापरीमलझरीमाधुर्य-वेगासहः ।
गम्भीरः सरलो विलेखनविलम्बेन क्षणाकूणनः
श्रीमान् मातिरसोमिलः कविघनश्यामस्यवाणीभरः ॥

घनश्याम पुरानी लकीर के फकीर नहीं थे । उन्होंने उमरुक नामक एक नाट्य-विधा को संस्कृत के अभिनय-प्राङ्गण में प्रतिष्ठित किया । नवग्रह-चरित में रूपक की प्रस्तावना तथा नान्दी आदि की एक अभिनव दिशा मिलती है ।

कुमारविजय

कुमारविजय का अपर नाम ब्रह्मानन्द-विजय है, क्योंकि लेखक ने इसे अपने गुरु ब्रह्मानन्द के प्रसाद से लिखा । घनश्याम ने बीस वर्ष की अवस्था में कुमारविजय की रचना की ।[1] इसके लिखने के पहले युद्धकाण्डचम्पू, मदनसंजीवन-माण, मणिमण्डन (छः भाषाओं में), अन्यापदेश-शतक तथा आनन्द-सुन्दरी लिख चुके थे ।

कुमार-विजय का प्रथम अभिनय परिषद् के यह कहने पर हुआ कि 'सभाजन-समुचितं किमपि रूपकं निरूप्यतामिति । इस वक्तव्य से प्रतीत होता है कि कुछ रूपक समाजन-समुचित नहीं माने जाते थे, फिर भी उनका अभिनय होता था । चण्डानुरंजन प्रहसन की प्रस्तावना में सूत्रधार ने जनमत स्पष्ट किया है कि—सभ्यजनानुचितमपि तावकं प्रहसनं महामुपकरोति यदिदानीं प्रहसनस्य प्रयोक्ता मया भवितव्यमिति संसूचितोऽस्मि ।

कथावस्तु

दक्ष-यज्ञ में पिता के न बुलाने पर और पति के अनुमति न देने पर भी सती वहाँ यज्ञस्थली में जा पहुंची । पिता के व्यंग्य करने पर सती ने आवेश में आकर अपने को अग्निसात् किया । फिर तो जब यह समाचार शिव को मिला तो शोकान्ध शंकर ने वीरभद्र की सृष्टि करके यज्ञ का विध्वंस करवा दिया । वीरभद्र ने शिव को बताया कि कैसे-कैसे क्या हुआ—ब्रह्मा के दांत तोड़े, सरस्वती की वीणा फोड़ी, इन्द्र की टाँग मरोड़ी और भगोड़े विष्णु का केवल प्राण छोड़ा । पश्चात् सनत्कुमार ने आकर उनसे कहा कि आप धैर्य धारण करें । शिव ने उनकी बात मान ली और वन में ध्यान लगाने के लिए चलते बने ।

हिमवान् की पत्नी मेरुकन्या मेनका ने पार्वती को जन्म दिया । एक दिन मौहूर्तिक ने नवजात शिशु के विषय में बताया—

भक्त्यादरेण प्रणयैर्नयैरपि प्रत्यङ्गसौन्दर्यझरीभरैरपि ॥
त्वत्कन्यका पूर्णमनोहराप्यसौ शम्भोः शरीरार्धहरा भविष्यति ॥२.१६

१. इस अप्रकाशित नाटक की दो प्रतियाँ तञ्जौर के सरस्वती-भवन में हैं ।

दक्षयज्ञ में सती को देवताओ ने इसलिए जल जाने दिया कि सती के जन्मान्तर मे ही उसके गर्भ से तारक को मारने वाला वीर उत्पन्न होगा। नारद को पार्वती-जन्म के आगे के कार्यक्रम का नियोजक देवताओ ने बनाया था। नारद ने जो पार्वती को एक दिन कण्ठमाला दी, उसके प्रभाव से स्वप्न मे पार्वती ने शिव का दर्शन किया और प्रणयासक्त हो गई। नारद ने बिल्व वन में तपस्या करते हुए शिव की सेवा पार्वती करे—ऐसा उसके पिता को परामर्श दिया। दो सखियो के साथ पार्वती शिव की सेवा के लिए गई।

तृतीय अङ्क मे शिव समाधि लगाये हुए है—

नासाभागादंगुष्ठकनिष्ठिकानामिकात्रयीमवतार्य
नासारन्ध्रमसौ दहन्नुदयति श्वासानिलो मांसलो
दुर्वारो हृदयज्वरः क्षणमपि स्तोक न विश्राम्यति।
क्षुभ्यन्ति प्रसभं शनैरवयवा निर्वेदभारश्लथा
वाष्पव्याकुलमीक्षणं च विषयान् गृह्णाति नो तत्त्वतः॥३.१

अर्थात् उनको मदन-सन्ताप विरह-वेदना से व्यथित कर रहा था।

नग भाति तथापि तद्विरहित शून्य जगद्मण्डलम्॥३.६

शिव वेद की निन्दा करने लगे कि यज्ञ का विधान यदि वेद ने न किया होता तो यह सारा सकट मेरे ऊपर न आता। वे पत्नी-वियोग मे उन्मत्त होकर कहते हैं—

कुत्र गच्छसि कथं नायासि किं पीडयस्यङ्गानि।
प्रसभं दृशा तव मया पीतानि किं धावसि। इत्यादि

पार्वती सखियो के साथ वहाँ आई और पूर्वजन्म का अनुबन्ध शिव को स्मृत हो आया। इधर पार्वती ने स्वप्न मे सुन्दर युवक देखा था, जो तपस्वी था सौष्ठव-विहीन। फिर भी तपस्वी की सेवा करके कामना-पूर्ति की आशा से पार्वती ने शिव की सेवा आरम्भ कर दी। सेवाकार्य थे—फल लाना, फूल लाना, पानी लाना, पादसवाहन। पार्वती ने शिव को अपना मन्तव्य बता दिया। शिव ने उपासना की अनुमति दी।

चतुर्थ अङ्क के पूर्व प्रवेशक मे रति पार्वती को उभयानुराग-चरित नाटक देती है कि आप के गर्भदोहद के मनोरजन के लिए इसका अभिनय होना है। पार्वती का शिव से गान्धर्व विवाह हो गया था। उसके गर्भ से पुत्र की उत्पत्ति हो, इसके लिए पुसवन सस्कार होना था। पहले शिव ने काम को जलाया, पर पुनः उज्जीवित कर दिया, क्योकि काम ने वस्तुतः शिव का स्वार्थ ही सिद्ध किया था। फिर तो शिव ने काम को आदेश दिया कि उस कन्या को मेरे मनोनुकूल बनाओ। शिव को सती-दाह से सन्ताप मिला, फिर तप का ताप था, फिर जलाने के लिए काम आया तो शिव ने उसे जला दिया था।

कामदेव से पार्वती ने दोहद की चर्चा की। उसने नाटक का अभिनय करने का आयोजन किया। इसके अभिनेता तरु तथा लता मानवरूप धारण करके भूमिका

सम्पन्न करेंगे। गर्भनाटक की कथा वस्तु है—शिव पार्वती के क्षणिक वियोग में सन्तप्त हैं। कुछ देर में कुबेर आ गये। वे शिव की विरहोक्तियाँ सुनते हैं। कुबेर से शिव कहते हैं कि आप तो मुझे पार्वती से मिलाइये। कुबेर ने पार्वती को शिलापट्ट पर बैठी दिखाया। शिव वहाँ गये। उसके मदन-ज्वर को दूर करने के लिए वैद्य बुलाये जा रहे थे। पार्वती का उत्स्वप्नायित अभिनय में प्रस्तुत है। शिव पार्वती से मिलकर उसके साहचर्य का निरन्तर आनन्द प्राप्त करना चाहते हैं।

इसके पश्चात् पार्वती का पुंसवन-कल्याण देवताओं के नियोजन में हुआ।

पार्वती का पुत्र कार्तिकेय तारकासुर का वध युद्ध में करता है। कार्तिकेय का अभिषेक-संभार होता है। वे भद्रपीठ पर आसीन किये जाते हैं।

नाट्यशिल्प

कुमारविजय में स्त्री आदि पात्रों का प्राकृत बोलना स्वाभाविक मानकर नाट्यशास्त्रीय विधान का समुचित आदर किया गया है। ऐसे नाट्यकारों का कवि ने उल्लेख किया है, जो प्राकृत के स्थान पर 'संस्कृतमाश्रित्य' लिखकर संस्कृत से काम चलाते हैं। सूत्रधार की दृष्टि में यह नाट्यकारों के प्राकृत-ज्ञान का अभाव है।

इस नाटक की प्रस्तावना में नटी नहीं है, क्योंकि सूत्रधार अविवाहित है। नटी के अभाव में मंगलगीत नहीं गाया जा सका। सूत्रधार ने बताया है कि भृङ्गरीटि की भूमिका में मेरा भाई रंगमंच पर आ रहा है। इससे यह स्पष्ट है कि प्रस्तावना का लेखक सूत्रधार ही है। सूत्रधार का विवाह नहीं हुआ है—यह विवरण भी नाटक का लेखक नहीं देगा, अपितु सूत्रधार से ही इसकी आशा की जाती है।

चरित्र-चित्रण की दिशा में घनश्याम को प्रगल्भता प्राप्त है। वे नायक का परिहासात्मक चित्रण करने में रुचि लेते हैं। उनके विषय में कथा-संविधानानुसार चकोरिका कहती है—आरम्भ में स्त्री जनलम्पट यह शिव था, बीच में तपस्वी हो चला था, इत्यादि।

घनश्याम एकोक्ति के विशेष प्रयोक्ता हैं। अंकों के बीच में भी एकोक्तियाँ हैं। कुमारविजय के प्रथम अङ्क का आरम्भ शिव की एकोक्ति से होता है। वे इसमें सती के जलने पर शोकाकुल विचार प्रकट करते हैं। फिर दक्ष के विषय में अपनी उत्सुकता प्रकट करते हैं। इसके ठीक पश्चात् दक्ष की एकोक्ति है। एकोक्ति के लिए रंगमंच पर पात्र का अकेला होना आवश्यक नहीं है। रंगमंच के एक भाग में एकोक्ति करने वाले पात्र के लिए अदृष्ट कोई दूसरा पात्र रह सकता है। वीरभद्र की एकोक्ति ऐसी ही स्थिति में है। आगे चलकर सनत्कुमार भी ऐसी ही स्थिति में इस अङ्क में अपनी एकोक्ति प्रस्तुत करते हैं। द्वितीय अंक में पुरोहित की एकोक्ति भी ऐसी ही स्थिति में है। रंगमंच पर दूसरी ओर अन्य पात्र हैं। कवि ने पर्वतों को पात्र बनाया है। द्वितीय अंक में फणिकूट और मणिकूट नामक दो पात्र रंगमंच पर वार्ते करते हैं। यह वृत्त छायातत्त्वात्मक है।

अठारहवीं शती में सूत्रधार नान्दी-पाठ करता था, जैसा चतुर्थ अंक के गर्भनाटक का सूत्रधार करता है।

चतुर्थ अंक प्रायः पूरा का पूरा गर्भनाटक है।

शैली

मदनसंजीवन-भाण की प्रस्तावना में सूत्रधार ने कवि की शैली की वर्णना की है—

फुल्लन्नीरज-सौरभी मधुघटी-निद्रापित-द्वीपज-
द्राक्षा तादृशमाधुरी-सहचरी वाचां कवेर्वैखरी ॥६

सांस्कृतिक सूचनायें

घनश्याम ने अपने युग के समाज की विषम प्रवृत्तियों का दर्शन कराया है। पुरोहित, कंचुकी और मौहूर्तिक अपनी-अपनी दुर्दशा पहले प्रेक्षकों को एकोक्तियों द्वारा बतला कर फिर अपना नाटकीय काम करते हैं। मौहूर्तिक की दुःस्थिति का परिचय चेटी के मुख से इस प्रकार है—

जीर्णवसनो मलीमसो वेतालसदृशः

कन्यायें सिर नहीं ढकती थीं। हाथ में पाँच-छः कंकण पहनती थीं। वे कटि में नील वस्त्राचल धारण करती थीं। कन्धे पर मणिसरवलय होता था।

कवि के मदनसंजीवन भाण की प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि भद्र पुरुष भी भाण जैसे हीनकोटि के अश्लील रूपकों का अभिनय देखने जाते थे। इस भाण में घनश्याम ने विस्तारपूर्वक द्रविड, गुर्जर तथा महाराष्ट्र देशों की स्त्रियों के अशिष्ट आचार तथा माध्वगुरु, गोस्वामी आदि सम्प्रदायों के अनुयायियों में धर्म के नाम पर प्रचलित घोर चारित्रिक भ्रंश का नग्न चित्र प्रस्तुत किया है। यथा, गोस्वामियों को लीजिये—

अभर्तृकास्तरुणीः सभर्तृकाः अपत्नीकानात्मनः सपत्नीकान् विदधानाः। विधवास्वेवास्माकमनुराग इति सूचयितुमिव काषाय-वसानं वसनाः, सन्तत-मुञ्छवृत्तिदम्भेन गृह-गृह रण्डावलोकनाय हिण्डमानाः इत्यादि।

द्राविडों में उस समय कुछ कुरीतियाँ थीं। कवि ने उनकी ओर ध्यान आकृष्ट किया है। यथा, स्त्रियों की दुर्गति है—

सदानीतं बाल्यं जनकगृह-सम्मार्जविधया
हृतं तारुण्यं च श्वसुरगृह-सर्वार्थवहनैः।
इदानीं वृद्धासीदहह विधिना गोमयपरा
वन स्वप्नेऽप्यल्पं भजति न सुखं द्राविडवधू ॥४१

कोई द्राविड स्त्री अपने द्वार पर ही गोमय-चिता बना रही थी।

मदनसंजीवन-भाण

मदनसंजीवन-भाण का प्रथम अभिनय पुण्डरीकपुर (चिदम्बर) में कनक-सभापति के आर्द्रादर्शनमहोत्सव के समय हुआ था।[1] इसके प्रेक्षकों में काव्य, संगीत,

१. इस अप्रकाशित भाण की प्रति तंजोर के सरस्वती महल में है।

साहित्ती आदि के मर्मज्ञों के साथ, अद्वैत विद्या में पारंगत तथा महायाज्ञिक भी थे। ये सभी सूत्रधार के शब्दों में रसिक जन हैं। सूत्रधार इनको गुणगणगर्भित बताता है।[1]

कवि ने बीस वर्ष की अवस्था में इस भाण की रचना की। इतनी कम अवस्था का युवक इस प्रकार के भोंड़े साहित्य की सर्जना करे—यह उस युग की चारित्रिक निर्माण-सम्बन्धी विषमता को व्यक्त करता है।

मदनसंजीवन का अभिनय सूत्रधार के नागिनेय भृंगिरीटि ने किया था।

कथावस्तु

कुलभूषण नामक नायक भट्टगोपाल की कन्या चित्रलेखा के साथ अभी नई-नई प्रणय-ग्रन्थि जोड़े है। उसके विरह में व्याकुल है। उसका आलिंगन करने की उत्कट अभिलाषा कुलभूषण को है। वह चलते-फिरते वेश्या-ग्रस्त वेदपाठी, वस्त्र धोती हुई द्राविड़ कन्याओं, आन्ध्री महिलाओं, वैष्णवस्त्री-समूह, विधवायें, गुर्जर स्त्रियाँ, महाराष्ट्राङ्गना, जनार्दन तीर्थ नामक माध्व गुरु, मतिवृषभ, गोस्वामी आदि के कुत्सित आचारों का वर्णन करता है। अन्त में वह वेशवाट में पहुँचता है। यहाँ की वेश्याओं का रूप-दर्शन अन्यतम ही कहा जा सकता है। यह प्रकरण कामिक प्रक्रियाओं के नग्न वर्णन से वस्तुतः कामशास्त्र का अध्याय प्रतीत होता है। विट वेशवाट के पश्चात् मध्याह्न में उद्यान में जा पहुँचता है। वहाँ चक्रवाक, मयूर, कपोत, शारिका, जलक्रीडा-परायण स्त्रियाँ और उपदेशक पौराणिक को देखता-सुनता है।

विट ने सँपेरे का सांगोपाङ्ग वर्णन किया है। उससे कोई बिच्छू-साँप की ओषधि, कोई स्तम्भन-मणि, स्त्रीवशीकरण-मूलिका आदि माँग रहे थे। आगे चलने पर विट ने देखा कि वसुलता नामक वेश्या के लिए दो विट तलवार खींच कर लड़ से रहे थे। आगे मल्लयुद्ध, कुक्कुटयुद्ध, मेषयुद्ध, वृषभ का नृत्य, कवि का आशुकवित्व, सुन्दरी की कन्दुक-क्रीडा आदि देखते हुए विट शिवमन्दिर में हर-हर महादेव करते पहुचा।

उस मन्दिर में विट घनश्याम के बड़े भाई चिदम्बर ब्रह्म को देखता है। उन्हें उसने १२ बार प्रणाम किया। उनके दर्शन का पुण्य फल तत्काल मिला। उसकी प्रेयसी चित्रलेखा को प्राप्त कराने के लिए मंजुगुण गया था। वह विट को आता हुआ दिखा। उसने बताया कि चित्रलेखा को निकटवर्ती मण्डप में लाया हूँ। चित्रलेखा को देखकर विट उसके सौन्दर्य का बाण की शैली पर लम्बा-चौड़ा वर्णन करता है, जो तीन पृष्ठों तक विस्तृत है। उस समय चन्द्रोदय हुआ और विट का नायिका से मिलन हुआ।

उपदेश

भाण की रचना करते समय भी घनश्याम अपना विशुद्ध ब्रह्मरूप नहीं भूल पाते। नायक के मुख से श्रीकण्ठ के देवालय से बजने वाले घण्टे का व्यंग्य अर्थ उन्होंने प्रस्तुत किया है—

---

१. उस युग की और सूत्रधार की गुणगण-सम्बन्धी मान्यता चिन्त्य है।

पुत्राः के दयिता च का जनयिता कः कस्य माता च का
भ्राता कस्य च कस्तदेतदखिलं हन्तेन्द्रजालोपमम्।
संसारो जलधिस्तमः किल निशा माययाखिलं विष्टपं
साधो जागृहि जागृहीति रणति श्रीकण्ठघण्टामणिः ॥१८

कुछ उदाहरण भी घनश्याम ने दिये हैं, जिनसे वेश्याओं से विराग कराना उनका अभिप्राय स्पष्ट है। वेदपाठी ने भिक्षा में प्राप्त धन को गणिका को देकर उसका सहवास प्राप्त किया तो रोगमग्न होकर वेदना को शिव-शिव कह कर छिपा रहा था।

विभिन्न सम्प्रदायों में किस प्रकार भ्रष्टाचार बढ रहा था, उसके अनुयायी कितने लोभी, लम्पट और लीलापरायण थे, उनके द्वारा धर्म का कैसा विद्रूप प्रकट किया जाता था, भक्तों को वे कैसे पीड़ित करते थे, कितने विलासी हैं, स्त्रियों को चरित्र-भ्रष्ट करने के लिए कौन-कौन उपाय इन दम्भियों ने अपनाये हैं—आदि प्रकरण कवि ने रुचिपूर्वक स्पष्ट किये हैं।

वेश्यागामियों का पतन अनेकमुखी है। बुरे साधनों से अर्जित धन भी वंशपरम्परा को पतित बना देता है—यह कृष्ण दीक्षित और उनके पुत्र केशव दीक्षित की कथा से स्पष्ट होता है। यथा,

'सर्वमर्थवता जितम्' इति द्यूतचौर्याभ्यामर्थसार्थं सम्पाद्य अहमपि वेश्याभुजंगमो भवेयमिति पिता यावन्तं कालं प्रार्थयेत तावन्तं कालं धनलोलुपैस्सेवकैस्ताडयित्वा निगलनियन्त्रितं च कारयित्वा रुदन्ती जननीमपि किमायास्यसि न पतिदशां न द्रष्टव्यसीति भीषयन् पत्नीभूषणानि चादाय मुदात्र प्राप्तः।

विट के मुख से सहसा निकल पड़ता है—

कुशलः किल दिगम्बरमपि नग्नयितुं वेश्याजनः।

वेश्याओं को देने के लिए धन-संचय करने के लिए मन्दारक ने चोरी की तो ग्रामपालक के द्वारा पीटा गया। इन सब बातों से शिक्षा देना कवि का गौण मन्तव्य है।

चण्डानुरञ्जन प्रहसन

घनश्याम का भाण एक भद्दी रचना है—यह पहले ही कहा जा चुका है। उनका चण्डानुरञ्जन प्रहसन नग्न व्यभिचारिता का भोंडा वर्णन है।[1] आश्चर्य है कि घनश्याम को प्रहसन के लिए यही अश्लील दिशा मिली। प्रहसन का क्षेत्र अतिशय विशाल होता है। ऐसा लगता है कि कवि युवावस्था की उद्दाम शृङ्गारित प्रवृत्तियों को उगलने में आनन्द का अनुभव करता है। कवि ने २२ वर्ष की अवस्था में इसका प्रणयन किया था।

---

१. प्रहसन की हस्तलिखित प्रति तंजौर के सरस्वती-महल में है।

सूत्रधार ने बताया है कि मेरे सम्बन्धी मार्जार, बर्कर और तर्णक की भूमिका मे रंगमण्डप में आ रहे हैं।

डमरुक

घनश्याम का रूपक डमरुक एक उच्चतर कोटि का प्रहसन है।[1] शिव ने पाँच-छः बार कवि को स्वप्न में आदेश दिया कि डमरुक लिखो। इसकी रचना कवि ने २२ वर्ष की अवस्था में की। इसमें कवि की पत्नी सुन्दरी का अपने पति के विषय में लिखा पद्य सूत्रधार ने प्रस्तावना में सन्निविष्ट किया है—

अये सखि गृहे गृहे भुवि पुनर्विवाहव्रतैः
कचाकचि समं समं थर्वविदधते चकोरीदृशः।
अहं तु कवितास्त्रिया मृगितलब्धदष्टोज्झित-
त्रिलोकवरया स्वयंवृतववापि नन्दाम्यहो॥८

सूत्रधार ने इसकी प्रस्तावना में बताया है कि बहुत से ग्रन्थों का प्रणयन करना चाहिए—

एष्टव्याः बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत्।
कर्तव्या बहवो ग्रन्था यद्येकोऽपि प्रयां व्रजेत्॥११

बाईस वर्ष की अवस्था में कवि ने आठ प्रबन्धों की रचना कर ली थी।[2]

समीक्षा

डमरुक में घनश्याम ने विशेष व्यंग्यात्मक शैली में माधुर्यपूर्वक सरसता की सरिता प्रवाहित करते हुए साधारण लोगों की अविचारित, और क्वचित् आत्मप्रवञ्चनामयी, अन्यत्र परवंचनामयी जीवनपद्धति और प्रवृत्तियों की सूक्ष्म दृष्टि से आलोचना की है। साथ ही जिन सात्त्विक मनीषियों की प्रवृत्तियाँ उदात्त हैं, उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा भी कवि ने की हैं। अन्त में भर्तृहरि की पद्धति पर वैराग्यपरक जीवन को सारपूर्ण बताया है। घनश्याम ने देवताओं का परिचय कहीं-कहीं परिहासात्मक पद्यों के द्वारा संजोया है। यथा,

वासश्चर्म रथो वृषः प्रियतमापर्णाकदन्तः सुतो
ज्येष्ठोऽन्यस्तु विशाख इत्यभिजनो हस्ते कपर्दो धनम्।

---

१. डमरुक का प्रकाशन १९३९ ई० में मद्रास से हो चुका है। इसकी प्रति सागर विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में है।
डमरु एक नई नाट्य विधा है, जैसा नवग्रह-चरित की भूमिका में कहा गया है—
प्रहसन-डमरुनाटक-सट्टक-काव्य-द्विमंजरी-माणान्।
देवतादंकलिपि कृतवान् यश्चान्यमिष्टशतचम्पूम्॥

२. इस डमरुक के भरतवाक्य में कहा गया है—
जीयाच्च प्रवचा महाकविरसावष्टप्रबन्धीकरः॥
इससे ध्वनित होता है कि भरतवाक्य सूत्रधार लिखता था।

नो मातापितरौ गृह महिधरो भस्माङ्गरागो महा-
नित्थ सर्वदरिद्रमीश्वरमहो लक्ष्यं भजामो वयम् ।।१०४

कवि के तीखे व्यंग्य हँसी उत्पन्न करने के साथ लोगों की आँख खोलने के लिए हैं। यथा,

लेखिन्यः पञ्चषा द्वित्राः पत्रिका द्वौ मषीघटौ।
कुकवेः कवमानस्य केवलो डम्भडम्बरः ।।५४

कहीं-कहीं सामाजिक वैषम्य की ओर दृष्टिपात कराया गया है। यथा,

प्रातः पर्युषितं भुक्त्वा रज्जुग्रथनकर्मणा।
महिषीक्षालनेनापि क्षिपन्ति द्रविडा वयः ।।६५
करीषकृतये व्रीहिवितुषीकरणाय च
निर्ममो निर्मिमीते स दुर्विधिर्द्रविडाङ्गनाः ।।६७

बड़े लोगों पर फबती है—

परद्रव्यं परं धर्मं परनिन्दां परां मतिम्।
परनारी परं ब्रह्म प्रभवो ननु मन्वते ।।१०६

वैराग्य या वानप्रस्थ की सुलालसा का अन्तर्दर्शन करें—

मुहु. स्नातुं पुण्या विविध सरितो धर्तुममला-
स्त्वचो भोक्तुं कन्दादिकमनुचरा बालहरिणः।
इतीदं निर्यात्रं सकलमपि क्लृप्तं ननु तथा—
प्यरण्यं दुर्जन्तुर्जगति न शरण्यं कलयति ।।११७
अङ्गादङ्गाविवनवाः स्वेदा इव सुतादयः।
उत्पद्यन्ते विपद्यन्ते मुधा मुह्यन्ति जन्तवः ।।११८

भाषा-सम्बन्धी परिहास करने मे कवि चूकता नही। तमिल ध्वनि का उदाहरण हास्य के लिए है---

नाज्ञान् मानानुपेर्यतम्बिरप्पाकुट्टिश्च मृत्तवन्।
वेङ्कडं नल्लतम्बिश्च रज्जुग्रथनकर्मणा ।।६४

नाट्यशिल्प

डमरुक नामक रूपक कवि की अप्रचलित नाट्यशिल्प की रचना है। इसमें अभिनय के नाम पर कुछ भी नही है। इसके १० अलङ्कारों मे प्रत्येक मे लगभग १० श्लोको मे कवि ने अलग-अलग पात्रो का किसी एक विषय पर पद्यो द्वारा चुभती हुई साङ्गीतिक शैली मे विमर्श प्रस्तुत किया है।[1] आरम्भ मे प्रस्तावना के स्थान पर पात्र-सूचना और अन्त मे भरतवाक्य साधारण रूपको की भाँति ही है। कवि का यह नाट्य विधान वस्तुतः रोचक है।

---

१. दस अलंकारो मे क्रमशः राजानुरजन, कलिदूषण, सुकवि-सजीवन, कुकवि-सन्तापनम्, अबोधाकर, शाब्दिक मञ्जन, पण्डित-खण्डन, जाति-सन्तर्जन, प्रमुत्व और अखण्डानन्द की चर्चा है।

नवग्रह-चरित

घनश्याम ने २२ वर्ष की अवस्था में नवग्रहचरित नामक रूपक का प्रणयन ११वी कृति के रूप में किया, जैसा प्रस्तावना में सूत्रधार ने कहा है। इस रूपक में नाटकीय पारिभाषिक शब्दावली अनूठी है। इसका आरम्भ मङ्गल-गान के तीन पद्यों से होता है। इसके पश्चात् रंगमंच पर विश्वासवसु ज्यों ही कुछ कहता है कि आकाशवाणी सुनाई पडती है, जिसके प्रसंग में वह कुछ कहता है कि फिर आकाशवाणी उसका समाधान करती है। इस प्रकार रंगमंच पर विश्वावसु अकेले ही वर्त्तमान है और पुनः पुनः आकाशवाणी उसकी बातों का उत्तर देती जाती है। अन्त में उसी से उसे ज्ञात होता है कि मुझे घनश्याम के नवग्रह-चरित का प्रयोग करना है। उसके पश्चात् उसे वायु एक भूर्जपत्र-पुस्तक देता है, जिसमें लिखा है—

> प्रारब्धं कर्मदैवं सुकृतविविदशा ईश्वरेच्छां शिवाज्ञाम्
> कालं होरेति पूजाफलम्'''दैव संकल्पयोगे।
> पुण्यं पापं च भाग्याङ्कुरपरिणमनमतप्राक्तनादृष्टरेखा
> भाविप्रान्तेश्वरा इत्यभिदधति जना यान् ग्रहाः पान्तु ते नः॥

प्रस्तावना (सूच्यार्थ) में सूचना दी गई है कि घनश्याम-विरचित नवग्रहचरित का अभिनय होना है।

कथावस्तु

कवि के शब्दों में कथावस्तु है—

सूर्यस्य राहोश्च गृहाधिपत्याय स्वतन्त्रतया राशिलाभाय राहुवार-केतुवारकल्पनाय च दारुणः कलहकोलहलोऽभिवर्तते।

अर्थात् सूर्य का प्रतिनायक राहु गृहाधिपति होना चाहता है। स्वतन्त्ररूप से राशिलाभ करना चाहता है और अपने तथा अपने साथी केतु के नाम पर एक-एक दिन बनवाना चाहता है। देववर्ग ने बुध को कुमार बनाया है। मंगल सेनाधिपति नियुक्त है।

इधर राहु देवों की पराक्रमपूर्ण उपलब्धियों से व्याकुल होकर उनकी निन्दा कर रहा है। तभी केतु ने आकर बताया कि शुक्राचार्य ने हमारे अभ्युदय के लिए कुछ ऐसे-ऐसे उपाय किये हैं। उन्होंने शनैश्चर को फोड़ लिया है। ग्रहों में भी परस्पर वैमनस्य है। उसकी जड है उनकी दुर्बलता। यथा,

> शाणच्छिन्नवपुः शशधरः क्षीणस्त्रिकोणालयो।
> भौमः पण्ढवरो बुधोऽशुचिवधूर्जीवो विदग्भार्गवः॥
> पंगुर्भास्करसूनुरंगविकलौ यद्राहुकेतू ततो।
> यत्सत्यं सरसीरुहाक्षि भुवने सन्ति ग्रहाणां ग्रहाः॥२.२

लडाई ठनने वाली है। सवत्सर, क्षत्र, करण, तिथि, होरा, ऋतु, घटिका, सन्ध्या, रात्रि, प्रहर, दिवस मास, निमिष, काष्ठा, कला, क्षण आदि के अधीन उनके सैनिक हो गये। उन्हे अपनी-अपनी स्थिति बनाकर सभी दशाओं मे रक्षा करनी है।

सूर्य, बुध रंग मंच पर आते हैं। उनको बृहस्पति के सविधान मे सन्देह हो रहा है, क्योकि देवपक्ष हार रहा है। रोहिणी ने आकर बताया कि चन्द्र को केतु ने जीते जी पकड़ लिया। कुछ देर बाद चन्द्र आ गया। उसने बताया कि मेरे पकड़े जाने का संवाद झूठा है।

दोनो पक्षो के युद्धवीर लड़ने के लिए सन्नद्ध तो थे, पर शुक्र और बृहस्पति ने युद्ध की भीषणता समझते हुए सन्धि कर ली। बृहस्पति के सन्धि-प्रस्ताव को और आकाशवाणी के निवेदन को शुक्राचार्य ने मान लिया। शुक्र ने प्रस्ताव रखा—

राहो सदास्तं भजतो रवीन्दुभौ मयज्ञकालाः कुजपण्ढमन्दा।
मूढौ मरुद्दैत्य-गुरुपतित्वं तेषां ग्रहाणा कथं अर्हसीति ॥३·१६

शुक्र ने कहा—राहु का नाम स्वर्भानु कर दिया जाय। सूर्य तो केवल भानु है।

नाट्यशिल्प

नवग्रहचरित की प्रस्तावना मे बताया गया है कि नेपथ्य यन्त्रफलक का बना हुआ है।[1] इसमे नान्दी-पाठ बहुत से गद्य-पद्यों के माध्यम से विश्वावसु के द्वारा विवरण दे चुकने के पश्चात् आता है। नान्दी के पश्चात् सूत्रधार के समकक्ष सूचक नामक एक पात्र आता है, जिसकी गृहिणी कालयुक्ति अन्य रूपको की नटी के समकक्ष पड़ती है।[2] प्रस्तावना का नाम सूच्यार्थ है। प्रस्तावना के पश्चात् अंको के स्थान पर तीन प्रपञ्चो में कथावस्तु प्रपंचित है। विष्कम्भक का नाम इसमे कला है। प्रथम प्रपंच के पूर्व शुद्ध कला का समावेश है। इसमे भावात्मक पात्र धृति और आनन्द आदि हैं। इसमे दिव्य और भावात्मक पात्रो का सयोजन हुआ है। तृतीय प्रपञ्च के पहले कला तो ९ पृष्ठ की है और प्रपञ्च एक पृष्ठ मात्र का है।

चरितनायक

नवग्रह-चरित की भूमिका विचित्र ही है। इसमे देवता चरितनायक हैं। विश्वावसु, वायु आदि नान्दी तक हैं। इसके पश्चात् सूचक और कालयुक्ति ने प्रस्तावना (सूच्यार्थ) मे बातचीत करते हैं। कथावस्तु की भूमिका का विष्कम्भक के द्वारा व्यतीपात और व्याघात नामक पात्रों के कथोपकथन से होता है। मुख्य पात्र राहु और क्रोधन सर्वप्रथम रगमच पर आते हैं। राहु का द्वारपाल राक्षस है। द्वितीय प्रपञ्च के मिश्र विष्कम्भक (कला) के पात्र देव पक्ष के धृति और आनन्द हैं।

१. अन्यत्र इसमें कहा गया है—'कौशेयनिर्मित–नेपथ्याभिमुखमवलोक्य' इत्यादि
२. सूचक—तद्गृहिणीमाकारयामि।

प्रचण्डराहूदय

घनश्याम का प्रचण्डराहूदय पाँच अंकों का नाटक है।[1] कहते हैं कि प्रबन्ध चन्द्रोदय और संकल्प सूर्योदय की परम्परा में यह कड़ी घनश्याम ने जोड़ी थी। इसमें वेदान्तदेशिक के विशिष्टाद्वैतका खण्डन है।

अप्राप्त रूपक

घनश्याम द्वारा विरचित अनुभूति-चिन्तामणि या अनुभव-चिन्तामणि नाटिका, गणेशचरित नाटक और त्रिमठी नाटक अभी तक अप्राप्त हैं। इनके उल्लेखमात्र मिलते हैं।

१—यह अप्रकाशित नाटक और इसकी टीका तंजौर के सरस्वतीमहल में मिलते हैं।

अध्याय ४०

वेङ्कटेश्वर का नाट्यसाहित्य

कावेरी नदी के तट पर दक्षिण भारत मे मणलूर नामक अग्रहार मे धर्मराज नामक विद्वान् थे। वे स्वय उच्च कोटि के नाटको के रचयिता थे। धर्मराज के पिता वैद्यनाथ और पुत्र वेङ्कटेश्वर दोनो असाधारण प्रतिभा के मनीषी हुए। सूत्रधार ने वैद्यनाथ का परिचय देते हुए कहा है।

श्रीमन्निध्रुव-काश्यपान्वयमणिर्निर्णीत सर्वागमो
निर्वेलप्रथितान्नदानजनुपा कीर्त्या जगद् भासयन् ॥
यत्तातो भुवि वैद्यनाथ-सुमतिर्वैकुण्ठयोगीश्वरः
सद्यः संन्यसनेन चिद्घन-सुधाम्भोधेरगादेकताम् ॥

समापति-विलास की प्रस्तावना से।

सूत्रधार ने उन्मत्त-कविकलश-प्रहसन की भूमिका मे बताया है कि वेङ्कटेश्वर के पिता मणलूराग्रहार के नायक मणि थे। उनको षड्दर्शनी-सागर-निशाकर और षड्भाषा सार्वभौम की ख्याति प्राप्त थी। वे नित्य साहित्यिक रचना करते रहते थे। वे महाभाष्य कण्ठाग्र कर चुके थे। वे नाटक लिखने मे दक्ष थे। धर्मराज के बड़े भाई राम महाभाष्य के आचार्य थे।

वेङ्कटेश्वर का जन्म ऐसे महामनीषियो के कुल मे हुआ था। सूत्रधार ने समापति-विलास की प्रस्तावना मे बताया है कि वेङ्कटेश्वर योगीन्द्र थे। जब वे ध्यान लगाते थे तो उनके समक्ष साक्षात् शिव प्रकट हो जाते थे। राघवानन्द की प्रस्तावनानुसार वे प्रतिदिन प्रबन्ध-निर्माण पर थे।

वेङ्कटेश्वर ने अनेक रूपक लिखे। यथा,

१. समापतिविलास[1]
२. उन्मत्त-कविकलश-प्रहसन[2]
३. नीलापरिणय[3]
४. राघवानन्द[4]

राघवानन्द का ही अपर नाम सम्भवत प्रतिज्ञा-राघवानन्द है। इसमे राम ने मुनियों की रक्षा करने की प्रतिज्ञा की है। इनके अतिरिक्त उन्होंने भोसल-वशावली-चम्पू का प्रणयन किया। इसमें तजौर के भोसलवशी राजाओ का सरफोजी तक वर्णन है।

वेङ्कटेश्वर तजौर-नरेश सरफोजी प्रथम (१७११-१७२८) ई० के आश्रय मे रहे।

---

१. समापति-विलास अन्नमलाइ से संस्कृत-ग्रन्थमाला स० २ प्रकाशित है।
२-४. इनकी हस्तलिखित प्रतियाँ तजौर के सरस्वती-महल और सागर-विश्वविद्यालय के पुस्तकालय मे हैं। अभी तक ये प्रकाशित है।

सभापति-विलास

सभापति-विलास मे सभापति शिव हैं। उनके आनन्द-ताण्डव की योजना इस नाटक मे निबद्ध है। यह वेङ्कटेश्वर की श्रेष्ठ कृति है। इसकी रचना पर उन्हें चिदम्बर-कवि की उपाधि मिली। इसका प्रथम अभिनय चिदम्बरपुर में कनक-सभापति (शिव) की यात्रा के महोत्सव के अवसर पर हुआ था। उच्चकोटि की सज्जन-मण्डली दर्शक बनकर विराजमान थी। इस महोत्सव का सांस्कृतिक प्रभाव नीचे लिखे पद्य मे है—

साहित्यामृतपारणाय कतिचित् कुर्वन्ति गोष्ठीं जना
वादायापि ससम्भ्रमाः कतिपये कण्डूलजिह्वाञ्चलाः।
पुण्याः केऽपि मिथो विविक्तमनसः पौराणिकीस्ताः कथाः
संगीतागमभङ्गिपुंखितधियः सभ्याः परेऽप्यागताः॥ प्रस्तावना ६

कथावस्तु

दक्षिण भारत में स्थल-माहात्म्य नामक पुराणपथानुसारिणी कथायें प्रचलित हैं। वेङ्कटेश ने ऐसे ही स्थल-माहात्म्य को लेकर इस नाटक की रचना कर डाली है। एक बार आर्द्रोत्सव के समय चिदम्बर-स्थल की व्याख्या करते हुए श्रोताओं को उन्होंने चिदम्बर-माहात्म्य सुनाया। उस समय श्रोताओं ने उनसे निवेदन किया—

विद्वत्पुंगव वेङ्कटेश्वर कवे वाणी तवेयं दलन्
मन्दारान्तर - माकरन्दलहरीमाधुर्यधुर्योदया।
तन्निर्माय चिदम्बरेश-विषयं किं चिन्नवं नाटकं
चेतः प्रीणय नश्चिदम्बर-कविर्भूया स्त्वमेतावता॥ प्रस्तावना १२

शिव माध्यन्दिनि बालमुनि की सेवा से प्रसन्न होकर उसकी इच्छा-पूरण करने के लिए दर्शन देना चाहते हैं। उन्होंने नन्दिकेश्वर को तिल्वाटवी में भेज कर अपने आविर्भाव के योग्य भूमि जान ली।

शिवगंगा-तीर्थ पर नन्दिकेश्वर पहुँचा। वहीं बालमुनि अपने शिष्य के साथ पहुँचे। वे शिव के चरण-कमल-दर्शन की उत्कट अभिलाषा शिष्य को बतलाते हैं। वे दोनों मूलनायक (शिव) की सेवा करने के लिए चल देते हैं। बालमुनि मूलनायक के पास पहुँच कर स्तुति करता है—

क्व चाहं जात्यन्धो विविधजननैकान्तवसतिः
क्व च त्वं ब्रह्मेन्द्रप्रमुख-सुरदुर्बोधमहिमा।
तथाप्याकांक्षेऽहं तव चरणसन्दर्शन-सुखं
कुतस्तन्मे सिध्येत् कुटिल-विषयव्यापृतधियः॥

शिव पार्वती के साथ वहाँ साक्षात् प्रकट हुए। बाल ने उनकी स्तुति की—

नम इदमव्याजदयानतित-चित्राय देवदेवाय।
सकल-जनता-मुमुक्षा-प्रत्युपहारैकहेतवे तुभ्यम्॥

शिव के कहने पर उसने वर माँगा कि पूजा के लिए जाते समय मेरे हाथ-पैर व्याघ्र रूप हो जायें। यह नगर मेरे नाम पर प्रसिद्ध हो। शिव ने कहा—एवमस्तु। फिर शिव अन्तर्धान हो गये। तत्काल वात व्याघ्रपाद हो गये और नगरी व्याघ्रपुरी हो गई।

इधर नन्दिकेश्वर से देवकिंकर मानुकम्प ने बताया कि आज दारुकवन के मुनीन्द्रों का गर्व खर्व करने के लिए विष्णु मोहिनी और शिव पिङ्ग बनकर पहुँच रहे हैं।

बालमुनि ने वसिष्ठ की बहिन से उपमन्यु को उत्पन्न किया। आरम्भ में शिशु अरुन्धती के द्वारा पाला-पोसा गया। वह सुरभि का दूध पीता था। जब उसे बालमुनि अपने घर लाये तो उसे दूध के स्थान पर जौ की दलिया दी गई। उसने दूध के अतिरिक्त कुछ भी ग्रहण करना अस्वीकार कर दिया। बाल उस बालक को मूलनाथ विष्णु के पास लाये। फिर तो उन्हें क्षीरसागर ही उस बालक के लिए बनाना पड़ा।

गर्भाङ्क में रगमच पर विष्णु, शिव और नन्दिकेश्वर अपनी-अपनी भूमिका में आते हैं। विष्णु मोहिनी हैं, शिव विट हैं। वे दारुकवन के मुनियों में व्यामोह उत्पन्न करने जा रहे हैं। मुनियों के आश्रम यज्ञ और होम-धूम से परिलक्षित हो रहे थे। कार्यक्रम बना कि मोहिनी मुनियों को मोहे, शिव उनकी दीक्षित पत्नियों को फँसायें। नन्दिकेश्वर को वहीं सब देखते रहना था।

शिव पर्णशाला के चारों ओर घूमते-फिरते हैं। मुनि-पत्नियाँ कामुकता-वश उनके पीछे पड़ती हैं। नेपथ्य से उन्हें बोध कराया जाता है कि मुनिपत्नियों को व्यभिचार-पथ नहीं अपनाना चाहिए। मुनिपत्नियाँ उत्तर देती हैं—

युक्तायुक्तविचारः स्वाधीनानां खलु मदनचाण्डालः।
न सहते कालविलम्ब प्रसीद नः प्राणपालनं कर्तुम्॥

इधर मुनीन्द्र-गण मोहिनी को देखकर उसके प्रणयी बने हुए हैं। मोहिनी भी—'ललितं परिक्रम्य, मुनीन्द्रानवलोक्य मुख साची करोति' सभी मुनि उसके लिए ललचा रहे हैं। तभी वह चले जाने की उत्सुकता प्रकट करती है। मुनीन्द्र कहते हैं—

देवि, किमित्यात्मनीनमगणयित्वा दासकुलं प्रस्थीयते।

मोहिनी ने मुनीन्द्रों से कहा कि आपका ऐसा आचरण अयोग्य है। मुनियों ने कहा कि पहले हमारा प्राण तो बचाओ। वे प्रार्थना करते हैं—

कर्पूरवीटि-प्रतिपादने वा संवाहने वा चरणाम्बुजस्य।
क्रीतदासा नवतालवृन्त-सवीजने वा विनियुज्य सर्वान्॥२.४०

तब तो मोहिनी के पीछे-पीछे मुनिगण रगमच से चलता बना। मुनियों को ज्ञात हो जाता है कि यह सब शिव की योजनानुसार हो रहा है। उन्होंने अभिचार से सिंह, सर्प आदि बनाये कि वे शिव का संहार करें। शिव ने उन सबको वश में कर लिया। फिर तो मुनि शिव की स्तुति करने लगे, जब उन्होंने अपना ताण्डवनृत्य दिखाया। पार्वती उनके साथ नृत्य कर रही थीं। शिव-प्रदत्त चक्षु से मुनियों ने

शिव का नृत्य देखा। शिव की इच्छा से मुनियों ने शिवलिंग की प्रतिष्ठा की। इसकी पूजा से आपको परम पद प्राप्त होगा। यथा,

> अस्मिन्नेव वने विप्रा मम नृत्ताङ्गणे शुभे
> शिवलिंगं प्रतिष्ठाप्य पूजयध्वमतन्द्रिताः।
> पूजया तस्य लिंगस्य भोगमोक्षैकहेतुना
> अनन्यलब्धं परमं लभध्वं पदमव्ययम् ॥२.५५

तृतीय अङ्क में तिल्व-वन में प्रातः काल हो रहा है। वहीं कृष्ण की कुटी में सेवक दारुक पहुँचता है। कृष्ण वहाँ शिव-दीक्षा लेने के लिए सत्यभामा-सहित आये हुए थे। सत्यभामा और कृष्ण प्राकृतिक सौरभ के बीच मनोविनोद कर रहे हैं। उसी समय दारुक ने सिंहवर्मा के द्वारा भेजे हुए चित्रपट का उपहार वायु में उड़ा कर उनके पास तक पहुंचाया। सिंहवर्मा की चमड़ी सिंह की सी थी। उससे वह मुक्ति पाने के लिए कृष्ण के अनुग्रह की याचना करता था।

कृष्ण और सत्यभामा ने आकाश में बोलते हुए शुक की वाणी से शिव-दीक्षा का दार्शनिक रहस्य जाना। वे दोनों भी शिव-कृपा की महिमा विषयक चर्चा करते हैं। यथा कृष्ण का कहना है—

> वागीशा जननी यस्य व्योमव्यापी पिता शिवः।
> मन्त्रैः शिवाध्वरे जातः स मुक्तो नात्र संशयः ॥२.२६

निकट ही कृष्ण को अपने गुरु उपमन्यु से भेंट हुई। उपमन्यु ने उन्हें आशीर्वाद दिया—

> शिवविज्ञान-सम्पन्नौ भूयास्ताम्।

फिर वे उपमन्यु के पिता व्याघ्रपाद से मिलते हैं। व्याघ्रपाद ने उन्हें शिव के ताण्डव का वर्णन सुनाया। कृष्ण के पास सिंहवर्मा के द्वारा प्रेषित चित्र को देख कर तत्सम्बन्धी चर्चा होने पर व्याघ्रपाद ने बताया कि वह शिवगङ्गा में स्नान करे तो सिंहरूप से मुक्त हो जायेगा।

चतुर्थ अङ्क में कौण्डिन्य व्याघ्रपाद को एक चित्र देता है, जिसमें शिव के चरित की स्थलियाँ चित्रित थीं। उसमें चिदम्बर-क्षेत्र, पूर्वी समुद्र, कावेरी-नदी, चोलमण्डल, ब्रह्मपुर-क्षेत्र, जटायु क्षेत्र, सिद्धामृत सरोवर, मायूर-क्षेत्र, तेजिनीवन-क्षेत्र, रक्तारण्य-पुरी, कमलालय-आयतन, वेदारण्य, सेतुबन्ध, हालास्य-क्षेत्र, गजारण्य, पंचनद-क्षेत्र, एकाधिकरण क्षेत्र, दक्षिणावर्त-देवालय, कुम्भकोण, मध्यार्जुन-क्षेत्र, श्रीपुरी, वृद्धाचल-धाम, शोणाचल, काची, कालहस्तीश्वर-क्षेत्र (कैलाश), श्रीपर्वत, भीमेश्वर-क्षेत्र, विन्ध्यपर्वत, रेवाक्षेत्र, गोकर्ण-क्षेत्र, प्रभास-क्षेत्र, गंगा, वाराणसी, केदारनाथ, हिमालय, मेरु, सुमेरु, कैलास आदि देखते हैं।

इसके अनन्तर ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर आदि शिव के दर्शनार्थ आते हैं। यह सब चित्र में दिखाया गया है।

पतञ्जलि नामक सर्प व्याघ्रपाद से मिलने के लिए रंगमंच पर आते हैं। उन्होंने बताया कि शीघ्र ही आप शिव के आनन्दताण्डव का दर्शन करेंगे। वे वस्तुतः शेष-नाग हैं। शेष ने अपनी कथा बताई कि कैसे मुझे आनन्दताण्डव देखने की योग्यता के लिए घोर तप करना पड़ा।

चित्सभा हुई। वह आनन्द-ताण्डव के दर्शन के लिए इकट्ठी हुई थी। सभी श्रेष्ठ देवता और ब्राह्मण सभा में दर्शक थे। सभी के यथोचित आसन ग्रहण कर लेने पर शिव उमा के साथ नृत्य करते हैं। व्याघ्रपाद और पतञ्जलि उनके पार्श्वों में स्थापित किये जाते हैं।

देवी पार्वती की स्तुति दण्डक छन्द में विस्तारपूर्वक पतञ्जलि ने की। शिव ने उन दोनों को यथेष्ट वर माँगने की आज्ञा दी। उन्होंने वर माँगा कि यहाँ रहने वालों को और हमें सदा आपका नृत्य देखने को मिले। शिव ने कहा—एवमस्तु। उसी समय शिवगंगा में स्नान करके सिंहवर्मा ने मानव शरीर प्राप्त किया। वह हिरण्य वर्मा हो गया।

इस नाटक का प्रधान नायक व्याघ्रपाद और उपनायक पतञ्जलि हैं। फल है आनन्दताण्डव का दर्शन।

नाट्यशिल्प

पाँच अङ्कों के नाटक सभापति-विलास का आरम्भ लम्बी एकोक्ति से होता है, जिसमें नन्दिकेश्वर शिव के उस आदर्श की चर्चा करते हैं कि तिल्वाटवी में मेरे प्रकट होने की स्थली ढूँढें। यह एकोक्ति वर्णनात्मक है। इसके १६ पद्यों में तिल्वाटवी की प्राकृतिक विभूति और तज्जनित शान्ति के वातावरण का चित्रण है। चतुर्थ अङ्क के आरम्भ में कौण्डिन्य की एकोक्ति है।

प्रथम अङ्क के अन्त में विष्णु का मोहिनी-रूप धारण करना और शिव का भिक्षु बनना छाया-नाटक के तत्त्व हैं। तृतीय अङ्क में शुक को पात्र बनाना छायातत्त्वानुसारी है। चतुर्थ अङ्क में चित्र के प्रयोग द्वारा छाया नाट्य का प्रवर्तन मिलता है।

द्वितीय अङ्क में गर्भाङ्क नाम से एक प्रेक्षणक सन्निवेशित है।[1] सूत्रधार उसे रूपक कहता है।[2]

वर्णनों के लिए कवि की विशेष अभिरुचि है। उसने तिल्वाटवी का विस्तृत वर्णन प्रथम अङ्क में किया है। द्वितीय अङ्क में मध्याह्न तथा सन्ध्या, चन्द्रोदय का वर्णन है। काव्य की दृष्टि से ऐसे वर्णनों की चारुता असन्दिग्ध है, पर नाटक में ऐसे लम्बे वर्णनों का परित्याग अच्छा रहता है, क्योंकि वर्णनों के साथ अनुभाव और संचारिभावों का सामञ्जस्य विरल होता है। कवि की दृष्टि में सफल नाटक के लिए दो बातें आवश्यक हैं—कथावस्तु-सन्दर्भ तथा अभिनय-भङ्गि में माधुर्य।

---

१. कौण्डिन्यः—ममापि खलु मनः प्रेक्षणकालोकनदराक्षणम्।
२. किमप्यभिनवं रूपकं नाटयितव्यम्। दारुकावनवासाभिधानम्।

इस रूपक में नटो का नाम नर्तक मिलता है।[1]

तृतीय अङ्क के आरम्भ में कृष्ण और सुदामा तिल्ववन, प्रातःकाल और पारस्परिक भावनाओं का वर्णन विस्तार से करते हैं। इसका कोई उपयोग नहीं दिखाई देता।

सत्यभामा कृष्ण का आलिंगन करती है, जब तृतीयाङ्क में कृष्ण सत्यभामा को उत्सग में लेते हैं। यह दृश्य वस्तुत: भारतीय संस्कार से हीन पड़ता है, किन्तु जिस काव्य-परम्परा में भाण जैसे अश्लील साहित्य की रचना हुई, उसमें रंगमंच पर आलिंगन को वर्जित मानना असंगत है। महाकाव्यों की नग्न शृंगारित प्रवृत्ति भी यही प्रकट करती है कि प्राचीन भारत और उसकी आधुनिक परम्परा सौन्दर्य-पिपासा की परितृप्ति की दिशा में कुछ भी अकथ्य और अदृश्य नहीं रहने देना चाहते थे। इस क्षेत्र में व्यंजना को छोड़कर अभिधा का आश्रय लेना उनकी कला-विहीनता का परिचायक प्रतीत होता है।

रस

रस-निर्भरता के लिए उद्दीपन-विभावों का वर्णन-विशेष है। द्वितीय अङ्क में शृंगार के लिए चन्द्रोदय आदि का वर्णन समीचीन है।

छन्द

सभापति विलास में शार्दूलविक्रीडित, पृथ्वी, स्रग्धरा, मन्दाक्रान्ता, अनुष्टुभ्, मालिनी, शिखरिणी, वसन्ततिलका, हरिणी, नर्दटक, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, शालिनी आदि छन्दों का प्रयोग है।

राघवानन्द

सूत्रधार ने राघवानन्द की प्रस्तावना में बताया है कि अभिनय-विद्या मुझे कुल-क्रम से प्राप्त हुई है। इसका अभिनय रंगनाथ के मन्दिर में शरद् ऋतु में हुआ था।

कथावस्तु

वनवास के अनन्तर राम चित्रकूट में पहुँच चुके हैं। इस अवसर पर वसिष्ठ ने एक पत्र अगस्त्य के पास भेजा है कि कैसे राम के द्वारा तपस्वियों का कल्याण होना है। चित्रकूट में मारीच राम की विपत्ति का अवसर देख रहा है। वह अनेक रूप धारण करके तिरोहित रहता है। उसे राम ने विश्वामित्र के यज्ञ में बाधा डालने के कारण बाण-प्रहार से सैकड़ों योजन दूर फेंक दिया था। वह महाशम्बर से मिलकर चित्रकूट में अपनी योजनायें कार्यान्वित कर रहा है।

अगस्त्य ने हनुमान् को भेजकर वालि के पास से सुग्रीव को ऋष्यमूक पर्वत पर बुला लिया। सुग्रीव राम की सहायता करेगा और साथ ही रावण से पृथक् किया हुआ विभीषण भी राम का सहायक बनेगा।

महाशम्बर ने राम को विपत्तियों में डालने का काम अपने ऊपर लिया है। वह भरत और शत्रुघ्न का निवर्तन करने के लिए यमुना तट पर लवणासुर को और

१. अहो नर्तकानामभिनयकौशलम्। द्वितीयाङ्क में।

केकय-प्रदेश मे गन्धर्वो को राम के विरुद्ध उभाड़ता है और दण्डक वन मे विराध को उकसाता है। भरद्वाज के शिष्य हारीत ने चित्रकूट मे रामादि को बताया कि यमुना-तट पर लवण अत्याचार कर रहा है। वहां से सीधे भरत उसे दण्ड देने के लिए चलते बने।

महाशम्बर तापस बनकर चित्रकूट मे राम से मिला और बताया कि दक्षिण के मुनियो के साथ अगस्त्य ने आपको आदेश दिया है कि आप गोदावरी-तट पर पंचवटी मे रहे, जिससे हमारी तपश्चर्या ठीक से चले। राम पंचवटी की ओर चलते बने।

द्वितीय अङ्क की सूचना के अनुसार राम ने खरदूषणादि को मार डाला है। विराध उनके पहले ही मारा जा चुका था। शूर्पणखा रामादि के लिए काम-पीडित होने पर कान-नाक विरहित की गई। फिर राक्षसो का उपर्युक्त अनर्थ हुआ। सीताहरण के लिए मारीच के साथ रावण आया है। महाशम्बर वही निकट है।

गोदावरी-तट पर विनोद करते हुए लक्ष्मण ने काञ्चन मृग देखा। उसे वह सीता को उपहार रूप मे देना चाहते है। उसे पकडने के चक्कर मे वे वहीं पहुँचे, जहाँ राम और सीता हैं। उस हरिण का वर्णन सुन कर सीता ने उसको पाने की उत्सुकता प्रकट की। अब प्रश्न था कि राम अगस्त्याश्रम मे यज्ञ की रक्षा करने जायँ अथवा हरिण के चक्कर मे पडें। हारीत उन्हे बुलाने के लिए आ गया। राम मुनि के पास जा पहुँचे। अगस्त्य ने उनसे मुनिजनो की रक्षा करने के लिए कहा था। अगस्त्य यज्ञ के फलरूप मे एक रत्न सीता को देते हैं। उन्होंने रावण के विषय मे बताया—

न चेदंनत्क्रौर्यं क इह सदृशो राक्षसपतेः ॥२.३६

राम ने अगस्त्य को बताया कि मैं स्वर्ण-मृग को पकडने जा रहा हूँ। लक्ष्मण सीता की रक्षा करेंगे। अगस्त्य ने कहा कि सीता की रक्षा तो वह रत्न करेगा, जो मैंने उसे दिया है। उन्होने सीता को आशीर्वाद दिया—जब राम और लक्ष्मण तुमसे वियुक्त हो तो पृथ्वी तुम्हे धारण करें।

अगस्त्य ने राम को बताया कि वालि द्वारा निष्कासित सुग्रीव ऋष्यमूक पर आपकी मैत्री के लिए प्रतीक्षा कर रहा है। उसका मन्त्री हनुमान् सहायक होगा।

राम हरिण पकडने के लिए गये। हारीत का रूप धारण करके महाशम्बर लक्ष्मण को अगस्त्य के पास बुला ले गया। इस बीच रावण ने सीता का अपहरण किया और उसे अशोक-वन मे रखा। सुग्रीव के आदेश से हनुमान् लङ्का गये। अशोक-वन मे छिपकर वहाँ महाशम्बर सीता के लिए मदन-सन्तप्त रावण की बातें सुनता है। इसके पश्चात् वह रावण से मिलता है। रावण उसके कान मे उसका भावी कार्यक्रम बताता है कि मेरे लिए सीताहरण से लेकर अब तक की घटनायें प्रत्यक्ष करो। फिर तो माया-लक्ष्मण आदि का कार्यकलाप उसने रावण, सीता

और त्रिजटा के सामने सिनेमा जैसा अशोक-वन में प्रस्तुत कर दिया।[1]

उपर्युक्त माया नाटक के अनुसार कबन्ध और अधोमुखी आदि को मार कर रामादि सफलता की ओर बढ़ रहे हैं। राजपद पर अभिषिक्त सुग्रीव ससैन्य राम का सहायक बन चुका है। हनुमान् को सीता की खोज करने के लिए लङ्का भेजा गया है। यह सब गर्भनाटक में देखकर रावण की चिन्ता बढ़ी। उसने गर्वपूर्वक कहा कि आज हनुमान् आदि सभी शत्रुओं को समाप्त करता हूँ।

रावण के जाते समय हनुमान् द्वारा गिराई हुई मुद्रिका सीता को त्रिजटा ने दी। पश्चात् हनुमान् को अगणित राक्षस वीरों ने घेर लिया। हनुमान् ने असंख्य वीरों को धराशायी किया। मेघनाद ने उन्हें पकड़ लिया और उसकी पूँछ में आग लगाई, जिससे सारी लंका-नगरी ध्वस्त हो गई। अकेले विभीषण का घर अग्नि की लपट से अछूता रहा। सीता ने हनुमान् की कल्याण-कामना करते हुए कहा—

यद्यस्ति पतिशुश्रूषा यद्यस्ति चरितं तपः।
यदि वास्त्येकपत्नीत्वं शीतो भव हनूमतः॥३-४१

तृतीय अङ्क के अन्त में सीता से चूडामणि अभिज्ञान-रूप में लेकर हनुमान् राम से मिलने चलते बने।

राम ने लङ्का पर आक्रमण किया। विभीषण ने उनकी पूरी सहायता की। चतुर्थ अङ्क के आरम्भ में रामपक्ष के योद्धाओं का पराक्रमात्मक परिचय दिया गया है। फिर युद्ध का समारम्भ है। युद्ध की भूमिका का सविस्तर वर्णन है। राम अगस्त्य को प्रणाम करके रावण से युद्ध करने चले हैं।

पंचम अङ्क में स्वयं अगस्त्य भी विजयोपाय बताने के लिए रामपक्ष में विराजमान हैं। रावण के द्वारा त्रस्त देवों ने उन्हें इसके लिए प्रेषित किया था। घनघोर युद्ध का घोर वर्णन है। रावण और विभीषण का भयङ्कर युद्ध हुआ। रावण ने उन्हें पकड़ा तो अंगद और लक्ष्मण ने युद्ध करते हुए उनकी रक्षा की। राम और रावण का युद्ध हुआ। घायल रावण को सारथि युद्धभूमि से दूर ले गया। रावण की पराजय हुई।

षष्ठ अंक में युद्ध भूमि से भागती हुई रामसेना विभीषण के उत्साहित करने पर रुकती है। अतिकाय सबको डरा रहा है। लक्ष्मण अतिकाय से लड़ने के लिए आये। उन दोनों में षष्ठ अंक में जो बातचीत हुई, उसमें राम और रावण पक्ष की दुर्बलताओं का संकेत करते हुए दोषारोपण किया गया है और उनको प्रतिपक्ष द्वारा निरस्त किया गया है। नेपथ्य से युद्ध का वर्णन किया गया है। उसमें बताया गया है कि कुम्भकर्ण राम के द्वारा मारा गया है। यह उस समय हुआ, जब वह कहता था कि मैं वानरों को नचाने आया हूँ। युद्ध में लक्ष्मण ने अतिकाय को धराशायी कर दिया।

---

१. इस गर्भनाटक में राम की भूमिका में राम ही शाम्बरी माया से नायक बन कर रंगमंच पर आते हैं।

षष्ठ अङ्क के अन्तिम भाग मे मेघनाद के प्रयासों का वर्णन है। वह महाशम्बर को गडबडी मचाने के लिए अयोध्या मे भेजता है। इधर हनुमान् औषधि लाने के लिए उत्तर-पर्वत पर गये। उस दिव्यौषधि से घायल वीर विशेषतः जाम्बवान् स्वस्थ हो गये। महाशम्बर का वध करने के लिए जाम्बवान् ने हनुमान् को अयोध्या भेजा।

सप्तम अङ्क मे सिन्धुतट-वासी तीन करोड गन्धर्वों को परास्त कर भरत केकय से अयोध्या आ रहे हैं। महाशम्बर भरत को विनष्ट करने के लिए अदृश्य होकर उनके पास पहुंचता है। दक्षिण से आये हुए सिद्धो ने सुमन्त्र को राम की विजयाभिगामिनी प्रवृत्तियो को बता दिया है, जिसे वे भरत को बताते हैं। रावण और इन्द्रजित् के अतिरिक्त सभी महाराक्षसो का अन्त हो चुका है। यह सब सुनकर महाशम्बर अदृश्याजन मिटाकर सिद्ध का रूप धारण करके भरत के समक्ष आकर बताता है कि राम और लक्ष्मण युद्ध मे मारे गये। राम और लक्ष्मण के लिए भरत करुण विलाप करते हैं।

महाशम्बर ने सुमित्रा को ध्वस्त करने के लिए बताया कि लवणासुर से लडते हुए शत्रुघ्न की मृत्यु भी युद्ध मे हो चुकी है। तब तो भरत नदी में डूबने के लिए चलते बने। उस समय उन्हे दक्षिण दिशा से आती हुई सेना दिखाई दी। हनुमान् ब्राह्मण-बटु का रूप धारण कर शाम्बरी माया का निराकरण करने के लिए पहुंचते हैं। हनुमान् ने पूछने पर महाशम्बर को बताया कि आप से योगविद्या सीखने आया हूँ।

इसके पश्चात् नेपथ्य की घोषणा से विदित हुआ कि विजयी शत्रुघ्न अयोध्या पहुँच रहे हैं। महाशम्बर ने सामने शत्रुघ्न को आते देखा तो भरत से कहा कि यह लवणासुर है, शत्रुघ्न का रूप धारण करके आ रहा है। भरत उस पर बाण-प्रहार करना चाहते हैं। यह देख कर शत्रुघ्न अन्यत्र चले जाते हैं। महाशम्बर ने भरत को उकसाया कि शीघ्र शत्रु को मारें। वह अब भागने ही वाला था कि झपट कर हनुमान् ने उसे बन्दी बना लिया। उसे भरत के पास ले जाकर उन्होंने अपना परिचय दिया कि मैं राम का सेवक हनुमान् हूँ। फिर भी उन्हें हनुमान् की बात पर पूरा विश्वास नही पडा तो हनुमान ने वसिष्ठ को बुलवा कर सारी परिस्थिति उनके सामने रख दी। यह भी कहा कि शत्रुघ्न भी विजयी होकर आ गये हैं, किन्तु भरत के भय से सामने नही आ रहे हैं। सभी वसिष्ठ के आश्वस्त करने पर प्रसन्न होते हैं। हनुमान् ने राम के पराक्रमो का आद्यन्त परिचय दिया और सीता की अग्नि परीक्षा की चर्चा की।

वसिष्ठ ने बताया कि रावण ने माया-सीता का अपहरण किया था। सीता वस्तुत अगस्त्य के दिये हुए रत्न के प्रभाव से राम और लक्ष्मण से वियुक्त होने पर पृथ्वी के द्वारा उदर में धारण की गई थीं। अग्निपरीक्षा मे वास्तविक सीता पुनः आविर्भूत हुई। महाशम्बर को हनुमान् ने दूर ले जाकर मार ही डाला।

राम के आगमन की सूचना घोषित हुई। पुष्पक विमान नीचे उतरा। भरत ने उनके चरणों मे खड़ाऊँ पहना दी। राम का पट्टाभिषेक हुआ। सीता ने अपने कण्ठ

से दिव्य हार निकाल कर हनुमान् को दिया। भरत ने राम से याचना की कि सबके हृदय में आत्मज्योति का उदय हो।

समीक्षा

राष्ट्र के समक्ष असंख्य समस्यायें थीं। उनको कथावस्तु में न अपना कर कवि ने सनातन सांस्कृतिक विकास का रामायणीय कथानक अपने ढंग से अच्छा सजोया है। राम की कथा में नाट्यकारों ने बहुविध परिवर्तन मनमाना किया है। वेङ्कटेश्वर का नाम इन परिवर्तनकारों में अग्रगण्य है।

शिल्प

द्वितीय अङ्क में पत्रवाचन अर्थोपक्षेपक रूप में प्रयुक्त है। तृतीय अङ्क में रावण के लिए अपशकुन बताने के लिए रंगमंच पर बिल्ले से मार्ग कटवाया जाता है। वहाँ नेपथ्य में सुनाई पड़ता है—

भोः भोः प्रगृह्यतामयं मायामयो मर्कटो मार्जाररूपमधिगत्य यदेष लङ्कां प्राप्तो विलोक्य नृपतिमवरुणद्धि।

वेङ्कटेश्वर की सांवादिक शैली षष्ठ अङ्क में विशेष व्यंग्य-प्रखर है। ऐसे व्यंग्यों से संवाद में चटपटापन आ गया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ऐसे संवादों की काव्यात्मक चारुता भले ही हो, किन्तु नाट्यकला की दृष्टि से ये सर्वथा व्यर्थ हैं। इनके बीच कथासूत्र लुप्तप्राय हैं। कहीं-कहीं द्व्यर्थक वाक्यावली के प्रयोग द्वारा प्रेक्षकों को असमंजस में डाला गया है।

राघवानन्द में छायानाट्य की विशेषता है। महाशम्बर की कुहनामयी भूमिका वैदिक काल से ही सुप्रसिद्ध है। इस नाटक के प्रथम अङ्क के आरम्भ में वह राक्षस तापस वेष में रंगमञ्च पर आता है। द्वितीय अङ्क में वह अगस्त्य-शिष्य हारीत बन कर लक्ष्मण को अगस्त्य के पास भेज देता है, जब उन्हें सीता की रक्षा करते हुए कहीं नहीं जाना चाहिए था। तृतीय अङ्क में वह मायामय रामादि को अशोकवन में सीता और रावण के समक्ष प्रस्तुत कर देता है। यहाँ महाशम्बर का मायात्मक व्यापार गर्भनाटक का परिष्कृत रूप है। इसमें राम की प्रवृत्तियों और कार्यकलापों के प्रति रावण की प्रतिक्रियाओं का रसमय वर्णन है, जो अन्यथा असम्भव होता।

महाशम्बर के मायात्मक व्यापार से कृत्रिम पात्र, रूप बदलते हुए पात्र, अदृश्य पात्र आदि रंगमंच पर कार्यपरायण हैं। इनकी प्रवृत्तियों से रंगमंच पर अद्भुत कार्यकलापों का प्रदर्शन सम्भव होता है।

चरित्र-चित्रण की कला इस नाटक में सुविकसित है। शत्रु के मुख से भी प्रशंसा करवा कर रामचरित्र का औदात्त्य विभावित है। मया शम्बर की उक्ति है—

दृष्टा श्रुताश्च भुवनेषु मुधाभिरूढविक्रान्तयो भुजभृतः कति नाम किं तैः।
वीरस्त्वमेव भुवि यो रजनीचरेन्द्र वीरायितानि वचसापि निराकरोषि॥

इस नाटक में अनेक पात्र रावण के साथ और उसके हितैषी हैं, पर वे राम

के प्रशासक हैं और रावण के दुर्वृत्त के निन्दक हैं। महाशम्बर उनमे सर्वप्रथम है। स्वयं रावण भी लक्ष्मण की भूरि-भूरि प्रशंसा करता है।[1]

शिल्प

अपभ्रंश और मागधी नामक पात्र क्रमश अपभ्रंश और मागधी भाषा बोलते हैं। अपभ्रंश का प्रयोग संस्कृत नाट्यसाहित्य मे सर्वथा विरल है।

अदृष्टाहृति

अनेक स्थलो पर अदृष्टाहृति (Irony) का प्रयोग मिलता है। यथा, पंचम अङ्क मे जब कुम्भकर्ण कह रहा है कि मैं तो वानरो को नचाने आया हूँ, तभी वह राम के द्वारा मारा जाता है।

एकोक्ति

नाटक का आरम्भ महाशम्बर की एकोक्ति से होता है। इनमे वह अपनी विचित्र कुहनामयी दशा और राम के शिवधनुर्भञ्जन आदि पराक्रमो की चर्चा करता है। वह अपनी योजना बताता है। राम को विघ्नित करने के लिए पूरी की हुई अपनी कार्यावली का वर्णन करता है। उस प्रकार वक्तव्य की दृष्टि मे यह एकोक्ति अर्थोपक्षेपक से भिन्न नहीं है। द्वितीय अङ्क का आरम्भ गोदातीर पर विनोद करते हुए लक्ष्मण की एकोक्ति से होता है। वहाँ उन्हे एक स्वर्ण-मृग दिखाई देता है। उसको पकड़ने के चक्कर मे वे अपने विचार प्रकट करते हैं।

रंगमंच

रगमञ्च को प्रथम अक के आरम्भ मे दो भागो मे विभक्त करके एकभाग मे राम-लक्ष्मण और सीता का संवाद दिखाया गया है और दूसरे भाग मे अदृश्य रहकर शम्बर उनकी बातें सुनते हुए अपनी प्रतिक्रियात्मक बातें कहता है।

द्वितीय अङ्क मे रंगमच पर गोदावरी, उस प्रदेश के वन, सीताराम की अवस्थान-भूमि और अगस्त्याश्रम—ये सभी साथ ही दिखाये गये हैं। राम के अवस्थान से अगस्त्याश्रम तक जाने के लिए केवल अधोलिखित नाट्यनिर्देश पर्याप्त है— परिक्रम्य मुनि प्रति

वर्णन

अनेक परवर्ती नाट्यकारो की भाँति वेङ्कटेश्वर ने इस नाटक मे वर्णनात्मक पद्यों का प्रचुर समावेश किया है। ऐसे वर्णन उद्दीपन विभाव के रूप मे हैं।

द्वितीय अङ्क के आरम्भ मे गोदावरी-तट पर मनोविनोद करते हुए लक्ष्मण गोदावरी-तट के वृक्षो और स्वर्ण-मृग को पकड़ने के प्रयाण-पथ पर पड़ने वाले जङ्गलों का भयोत्पादक वर्णन करते हैं। वर्णन-शैली रसानुरूप है। ऐसे ही वर्णनात्मक संवादो के बीच मे कथासूत्र त्रुटित सा है। कवि को चाव है मुनिजीवन-दर्शन कराने का। तदनुसार रमणीय वर्णन है—

1. रामयानन्द ३·१६—'प्राकार: किं वीररौद्ररसयो.' इत्यादि।

शय्या स्निग्धतरोस्तलं सिकतिलं सर्वर्तुभोग्यं पयः
पर्यन्ते विमलं प्रवृद्धकमलं स्नानार्चनादेः क्षमम् ।
काले ध्यानविरामदायि पतनाटोपं फलं चाशनं
कस्यैवं सुखमस्त्विदं शमधनैर्यत्प्राप्यते कानने ॥२.२०

ऐसे पद्यों से भर्तृहरि का स्मरण हो आता है। अनेक वर्णन कोरे प्रशंसात्मक होने के कारण व्यर्थ से प्रतीत होते हैं। राम और अगस्त्य का प्रारम्भिक संवाद कुछ ऐसा ही है। पंचम अङ्क में वेङ्कटेश्वर का युद्ध-वर्णन अद्वितीय ही है। षष्ठ अङ्क में युद्धतत्पर वीरों का शत्रुओं से रोषपूर्ण निन्दा-स्तुति-परक बातें करना मनोरंजक है। इस प्रकार संवाद अस्वाभाविक होने पर भी रोचक हैं। इनका अभिनयात्मक महत्त्व है।

उन्मत्त-कविकलश-प्रहसन

वेङ्कटेश्वर यदि इस प्रहसन को न लिखते तो कम से कम मेरी दृष्टि में उनके लिए अधिक आदर होता। इसके नग्न अनुचित शृङ्गार से कोई भी सुसंस्कृत पाठक मन ही मन उस समाज से घृणा करेगा, जिसमें अयोग्य कामपिपासा को बुझाते हुए नर-नारियों से सड़क, गली, कूचे, मन्दिर और मठ भरे हों। कोई वर्ग भी तो अपने वेश के योग्य संयत नहीं दिखाई देता। यह प्रहसन विटों की सभा के विनोद के लिए अभिनीत हुआ। वास्तव में वेङ्कटेश्वर को स्वयं अपने पतन से ग्लानि हुई थी। इस रूपक की रचना करके वे रोये थे—

पुण्यश्लोकसुधाकथालहरिभिः सिक्ता मनीषावताम् ।
वाणीगर्ह्यचरित्रकीर्तनभुवा दोषेण हा श्लिष्यते ॥

क्या प्रहसन का यही रूप होना चाहिए? कम से कम विश्वात्मक प्रहसन-साहित्य को देखते हुए ऐसा लगता है कि यह प्रहसन नितान्त भोंडा है। भारत में भी पुराने और मध्ययुग में कुछ प्रहसन मिलते हैं, जिनके वर्ण्य विषय का स्तर और शैली प्रकाम ऊँची हैं। प्रहसन को अश्लील शृङ्गार की सीमा से ऊपर उठाना वेङ्कटेश्वर जैसे मनीषियों का काम था, पर वे ऐसा न कर सके। इस प्रहसन के हास्य में वैशद्य का सर्वथा अभाव है।

इस प्रहसन के नायक कवि कलश हैं—

दौर्जन्यस्य तपःफलं सुचरितस्योत्पातकेतुः कले-
रावृतिर्दुरितस्य गर्भसदनं मोहस्य काष्ठा परा।
तृष्णाया. परदेवतानृतगिरां सीमा खलश्रेयसा-
मास्थानं कलशस्स एष कविरित्यायाति मायानिधिः ॥१३

उनकी वेश-भूषादि से ही हँसी आती है—

कटिघटितकटारिः कंचुकोष्णीषकक्ष्ये
यवन इव दधानः श्मश्रुजालं च भीमम् ।

असितकृशशरीरो तालदीर्घोऽधुनोल्का
मुख इव कलशोऽसौ दृश्यते क्रूरकर्मा ।।१४

कलश का उस दिन का काम था दिन का व्यय चलाने के लिए ऋण प्राप्त करना। उनसे ऋण चुकता पाने के लिए सैकड़ो व्यक्ति उनकी टोह मे थे। वह छिपकर इधर-उधर निकलता था।

कलश और उनके शिष्य रण्डाओ को फँसाने वाले पौराणिको की निन्दा कर लेने के पश्चात् राजैश्वर्यशाली माध्व-सन्यासी और मठाधीश-यति के विवाद की चर्चा करते है। उन दोनो के शिष्य झगड़ पडते हैं। आगे कलश को विधवा और भागवत मिलते हैं। भागवत ने देवालय-प्राङ्गण मे विधवा को सनाथ किया था। उसे मोक्षमार्ग दिखाने के बहाने उसकी कामुकता शान्त की थी।

आगे उन्हे प्रौढ कवि और बालकवि रगमच पर मिलते हैं। बालकवि के मुख से कलश का वर्णन है—

मत्कुणवृश्चिकमहिपप्लवंगकौलेयकाजगोष्ठश्वानः।
पृथक् पृथगवलोक्याः कविकलशे दृष्टिगोचरे जाते ।।४७

कलश ने अपने विषय मे कहे हुए इस पद्य की बडी प्रशसा की।

कलश और उसके शिष्य को कृपण-भक्त नामक वैश्य का पुत्र विट-चक्रवर्ती मिलता है। आगे एक ब्राह्मण मिलता है, जिसने चेटी से सम्भोग कर लेने के पश्चात् उसके सो जाने पर उसकी सम्पत्ति चुरा ली। कलश के कहने पर रोती हुई चेटी को उसने पेटिका से चुराई हुई धनराशि देने का जब उपक्रम किया तो चेटी पेटिका लेकर भाग गई। कलश के माँगने पर उसने अपनी रुद्राक्ष माला दे दी।

आगे कलश को एक रोता हुआ व्यक्ति मिलता है। उसकी एकस्तनी पत्नी किसी विदेशी विट के साथ भाग गई थी। कवि कलश ने उसे दिलाने की आशा दी।

कलश प्रापणिक के पास ऋण के लिए पहुँचा। उसने कलश से बचने के लिए उन पठानों को सूचना दे दी, जिनके ऋण वह नही लौटा रहा था। बाहर निकाल कर सड़क पर कलश की दुर्गति की गई। वह मूर्छित हो गया। राजपुरुषो ने पठानो को पकड कर राजा के पास पहुँचाया। पठानो ने कहा कि यह पचास दीनार नही लौटा रहा। इसके भरत वाक्य से इसकी अश्लीलता की कल्पना करें।

साधुषु विवेकमत्योर्योगो गाढः शुनो रत इवास्तु।
त्यक्तुरिभशेफः-नुमिव दैर्घ्यं मर्त्यायुषां सदा भूयात् ।।६१

नीलापरिणय

वेङ्कटेश्वर ने नीलापरिणय की रचना के पहले राघवानन्द और सभापति-विलास लिखे थे। एक ही नाटक-मण्डली ने कवि के अनेक रूपको का देश-विदेश मे भ्रमण

करके अभिनय किया था।[1] नटी अपने गीत से कथावस्तु का सङ्केत करती है।

कथावस्तु

नीला नामक कन्या पहले नन्द के गोपकुल में उत्पन्न हुई। कृष्ण की मुरली जब बजती थी तो गुरुजनों से रोकी हुई वह कृष्ण के चित्र से विनोद करती थी। मरने पर वह चोलराजकुमारी कृष्ण के चित्र-सहित चम्पकमंजरी हुई।

कृष्ण राजगोपाल नाम से प्रख्यात होकर द्वारका में रहते हैं। एक दिन गरुड ने एक दिव्य मणि तथा दर्पण गोप्रलय महर्षि को दिया। ऋषि ने दर्पण को सौराष्ट्र के राजा के भवनोद्यान मे लगा दिया। उसे मायाधर अपने स्वामी के लिए पुनः प्राप्त कर लेना चाहता था।

राजगोपाल दर्पण को देखने के लिए आये। उस समय झञ्झावात से उड़ाकर प्रासाद सहित दर्पण अदृश्य कर दिया गया।

इधर चम्पकमञ्जरी नामक सुन्दरी का चित्र विदूषक ने राजगोपाल को दिया। कुछ समय बाद वह सुन्दरी आ गई। राजगोपाल के मुख से उसका वर्णन है—

> नेत्रे नीलसरोरुहे विचकिलं मन्दस्मितांशुर्जपा
> पुष्पं दन्तपटश्शरीरसुषमा चाम्पेयदामावली।
> वक्षोजौ कनकाब्जकुड्मलयुगं पद्मौ मृगाक्ष्याः पदे
> प्राप्यं किं परतः प्रसूनमपरं लीलावनाम्यन्तरे॥२·१६

दूर से राजगोपाल और चम्पकमंजरी एक दूसरे को देखते हैं। चम्पकमंजरी को विदूषक ने उसका चित्र दिखाया, जो झंझावात में उड़ गया था। विदूषक ने राजगोपाल और चम्पकमंजरी को मिलाकर कहा—मंजरी आप के लिए है।

राक्षस मायाधर बतलाता है कि स्थूलाक्ष के लिए दर्पण तो मैंने पुनः प्राप्त करके दे दिया। अब मेरे स्वामी ने मुझे चंपकमंजरी को लाने के लिए भेजा है। यहाँ चम्पक-वन मे कृष्ण वियोगी बनकर निःश्वास ले रहे हैं। ऐसा लगता है कि चम्पक-मंजरी के विरह में उनकी यह स्थिति है।

इधर राजगोपाल के प्रेम में पगी चम्पकमंजरी अतिशय सन्तप्त है। राजगोपाल उसका मदन-सन्ताप देखकर अन्त में उसके सामने प्रकट होते हैं। मायाधर ने वहाँ की स्थिति देखकर योजना बनाई कि अदृश्याञ्जन से गूढ होकर चम्पकमंजरी को छिपा कर स्वामी स्थूलाक्ष के पास ले जाऊंगा। उसने चम्पकमंजरी की सखियों को पकड़ा। उनके आक्रन्दन करने पर रामगोपाल चम्पकमंजरी को छोड़कर उधर गए। मायाधर ने किसी द्रव्य के प्रभाव से चम्पकमंजरी को अदृश्य कर दिया। दैवज्ञ ने उसके पिता को आश्वासन देते हुए बताया कि गोप्रलय महर्षि के यज्ञ की समाप्ति होने पर उसके साथ राजगोपाल का विवाह होगा।

चतुर्थ अङ्क मे राजगोपाल और उनके साथी रंगमंच पर हैं। उनके साथ ही चम्पकमंजरी अदृश्य होकर वर्तमान है। राजगोपाल उसे ढूँढ रहे हैं। घूमती-फिरती

१. नटी—किं ण दिट्ठाणेण कइदेण आसुत्तिआ राहवानन्दं सहाअइ-विलासं अ णाडअं अम्हेहिं तेसु तेसु दिअन्तेसु विम्हयाणंदवीसन्ता महन्ता। प्रस्तावना से।

जब वह सरसी-तट पर पहुँचती है तो वहाँ जल मे उसकी छाया राजगोपाल देखकर वहाँ उसकी उपस्थिति की कल्पना करते हैं। चम्पकमजरी वासन्तिका का आह्वान करती है। सखियाँ कहती हैं कि राक्षस उसे खा गया। उसकी कोई कला बोल रही है। यह सुनकर नायक के मूर्छित होने पर चम्पकमजरी ललाट पर उसका स्पर्श करती है। नायक सचेत होता है। फिर उसके मूर्छित होने पर नायिका अदृश्य रहकर ही उसका आलिंगन करती है। नायक सचेत हो जाता है। इस आलिंगन मे उसके ललाट पर लगा अजन छूट जाता है, जिससे वह सशरीर प्रकट हो जाती है। नायक के हाथ मे लगे अजन से विदूषक को अदृश्य बना दिया गया। अन्त मे नायिका देवी के पास पहुँचा दी गई। इधर गरुड ने स्थूलाक्ष को मार डाला। गरुड ने मायाधर के चगुल से अदृश्य चम्पकमजरी को बचाया था। अन्त में यह घोषणा की गई कि नायिका का विवाह नायक से होगा। विवाह होने पर देवताओ ने अतिशय हर्ष व्यक्त किया।

प्रस्तावना-लेखक

सूत्रधार ही प्रस्तावना लिखता था, जैसा उसके नीचे लिखे वक्तव्य से स्पष्ट है।

सूत्रधार—मारिष, मद्वचनाद् उच्यतां नर्तकास्तेषु तेषु पात्रेषु सावधानैर्भवितव्यमिति। यावदेषोऽहमधुना गोप्रलय-महर्षि-शिष्यस्य हारीतस्य भूमिकां गृह्णामि।

पात्रानुसन्धान

नीलापरिणय नाटक की प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि स्त्रियाँ भी पुरुषो की भूमिका मे आती थी। इस नाटक मे सूत्रधार हारीत बना और उसकी नटी मायाधर राक्षस बनी।[1] पुरुषो का स्त्री भूमिका मे आना कोई असाधारण बात न थी।[2] द्वारका मे कृष्ण राजगोपाल है। राजगोपाल को इस नाटक के तृतीय अङ्क मे कपट-नाटक सूत्रधार कहा गया है।

नीलापरिणय मे पौराणिक सूचनाओ की भरमार है। किसी नाटक मे इस प्रकार अधिकाधिक सूचनाये देना नाट्यकला के विरूद्ध है।

एकोक्ति

तृतीय अङ्क के आरम्भ मे विष्कम्भक के अनन्तर देवराजगोपाल की लम्बी एकोक्ति मे ११ पद्य है। वे पहले तो चम्पकमजरी के आङ्गिक सौन्दर्य का वर्णन करते है। फिर अपने मन की विवशता की चर्चा करते हैं। उन्होने कामदेव की प्रहार-लीला का अनुसन्धान किया। यह सब सोचते-विचारते वे चम्पक वन मे पहुँचते हैं। वहाँ चन्द्रोदय का अपने ऊपर प्रभाव बताते हैं और मलयवायु को उलाहना देते हैं। यह सब एकोक्ति मे है।

रगमञ्च पर तृतीय अङ्क मे नायक-नायिका का आलिंगन दिखाया गया है। यह विधान अभारतीय है।

१. सूत्रधारः—यावदेषोऽहमधुना गोप्रलयमहर्षि-शिष्यस्य हारीतस्य भूमिकां गृह्णामि।
नटी—अहं अ माआहरस्स।

२. आनन्दराय मखी के विद्यापरिणयन में शिवभक्ति की भूमिका में रंगनाथ आता है।

अध्याय ४१

आनन्दराय-मखी का नाट्यसाहित्य

आनन्दराय मखी का प्रादुर्भाव तञ्जौर नरेशों के मन्त्रिकुल में हुआ था। इनके पितामह गंगाधर महाराज एकोजी के मन्त्री थे और पिता नृसिंह राय एकोजी तथा शाहजी के मन्त्री थे। स्वयं आनन्दराय शाहजी प्रथम, सरफोजी प्रथम तथा तुक्को जी के धर्माधिकारी और सेनाधिकारी थे। आनन्दराय का जन्म १७ वीं शती के उत्तरार्ध में हुआ और वे लगभग १७३५ ई० तक जीवित रहे।

सूत्रधार ने विद्यापरिणयन में आनन्दराय को विद्वत्-कविकल्पतरु कहा है। इससे प्रमाणित होता है कि वे विद्वानों के आश्रयदाता और पोषक थे। आनन्दराय कोरे कवि ही नहीं थे, अपितु 'समरे च विक्रमार्क इव' अर्थात् युद्ध में विक्रमादित्य की भाँति पराक्रमी थे।

सूत्रधार के अनुसार तो स्वयं सरस्वती ने शाहजी के रूप में अवतार ग्रहण किया था। उसने आनन्दराय पर प्रसाद किया, जिसके फलस्वरूप उनकी प्रतिभा का सर्वोपरि विकास हुआ।

आनन्दराय का चारित्रिक विकास समीचीन था। सूत्रधार ने उनका परिचय दिया है कि वे दीनों पर दया करते थे। पारिपार्श्विक ने उनकी दिनचर्या बताई है—

'श्रुतिस्मृतीतिहासागमतन्त्रादिसिद्धनानाविध-साम्बशिवचरणपरिचरण-तदनुसन्धान-निरन्तरितनिखिलवासरस्य तदन्तरालपरिमितपरिशिष्टकति-पयमुहूर्त-निवर्तनीय-चतुरुदधि-परिमुद्रित-सकलराजतन्त्रस्य शरभमहाराज-मन्त्रिशिखामणेः' इत्यादि।

आनन्दराय शिव और विष्णु में अन्तर नहीं मानते थे। उन्होंने निवृत्ति के मुख से विद्यापरिणयन नाटक में कहा है— 'विष्णुर्न शिवादन्यः' ।१.४३

आनन्दराय के दो नाटक विद्यापरिणयन और जीवानन्दन प्रसिद्ध हैं। इनकी अन्य कृति आश्वलायन-गृह्यसूत्रवृत्ति है।

विद्यापरिणयन

विद्यापरिणयन नाटक की रचना सरफोजी प्रथम (१७११-२८ ई०) के समय में हुई। इसका अभिनय भगवती आनन्दवल्ली-अम्बा के महोत्सव के अवसर पर हुआ था।

कथावस्तु

विद्यापरिणयन सात अङ्कों का नाटक है।[1] सूत्रधार ने नाटक की कथावस्तु का सारांश इस प्रकार दिया है—

१. विद्यापरिणयन का प्रकाशन १९६७ में चौखम्भा-संस्कृत-सीरीज में हुआ है।

यल्लाभतो वल्लभमस्ति नान्यदात्मा स शेपी सकलागमानाम् ।
येनाधिगम्येत तदागमान्तं प्रमेयसर्वस्वमिहेतिवृत्तम् ॥

जीव अविद्या के मोहपाश मे ग्रस्त होकर नाच रहा है। परमेश्वरी को उसकी दुर्गति पर दया उत्पन्न हुई। उसने शिवभक्ति से कहा कि तुम्हारे होते हुए जीव क्यों कर दुःख भोगे? जीव वस्तुत. शिव और विद्या शिवा है। परमेश्वरी इनकी सन्तान है।

जीव अविद्या और उसकी सखियो प्रवृत्ति, विषय-वासनादि के साथ प्रसन्न है। उन्ही के साथ चित्त शर्मा जीव का सचिव भी है। वह विवेक के प्रभाव मे आकर जीव को अविद्यादि के पाश से मुक्त करने की योजना के अन्तर्गत इनकी प्रसन्नता के उत्कृष्ट अवसर पर कहता है—इन सबसे क्या सुपरिणाम होगा? फिर तो चित्त के ऊपर अविद्या और उसके परिवार का मर्मान्तक वाक्-प्रहार आरम्भ हुआ। आवेश मे आकर चित्त ने अपनी भावी योजना का आभास दे ही डाला कि आपको इन सुख-दुःखो मे नचाने वाली शक्तियो से क्षणिक छुटकारा मैं ही दिलाता हूँ। यथा,

एतास्तावदहं प्रतार्य करणद्वाराणि बद्ध्वा दृढं
निर्व्यापारतया पुरी तदुदरे गूढं निलीय स्थितः।
दुःखासकलितं नयाम्यनुपदं नो चेदभवन्तं सुखं
कृत्वा रोगसहस्रगुम्फनमिमाः किं वा विदध्युर्न ते ॥

निवृत्ति जीव से मिली, जब वह चित्तशर्मा के साथ था। निवृत्ति से प्रभावित होकर जीव ने उसका परिचय पूछा। उसने अपना आवास आनन्दमय वेदारण्य बताया। जीव ने पूछा—क्या मेरा भी वहाँ प्रवेश हो सकता है? निवृत्ति ने कहा—हाँ, शिव-भक्ति के प्रसाद से।

वातावरण कुछ ऐसा बना कि अविद्या को सन्देह हुआ कि जीव को मुझ से विलगाने वाले प्रयत्नशील हैं। वेदारण्य के महायोगी शम, दमादि इनमें प्रमुख हैं। अविद्या ने काम्य क्रिया और उपासना को नियुक्त किया कि जीव को भक्ति, विरक्ति, निवृत्ति, शम, दमादि के चक्कर मे न पड़ने दो।

तृतीय अङ्क मे चित्तशर्मा ने वेदारण्य के तपस्वियों से शृङ्गार वन में बैठे जीव को विद्यापरिणय की जो बात सुनी थी, वह बताई। जीव विद्या के विषय मे उत्सुक हो गया। तभी शिव-भक्ति के द्वारा निर्मित विद्या का चित्र जीव के लिए निवृत्ति ने लाकर दिया। इसे देखकर वह लुब्ध हो गया। वह उसके प्रेम मे उन्मत्त होकर अपनी आसक्ति की वर्णना करने लगा, जिसे अविद्या ने वहाँ आकर छिपे-छिपे सुना। जब उससे नही सहा गया तो वह प्रकट हुई और जीव को फटकारने लगी। जीव भी एक घुटा हुआ था। उसने कहा कि यह सब चित्तशर्मा का इन्द्रजाल था। इसमें वास्तविकता कहाँ है? जीव ने पैर पर गिर कर अविद्या को प्रसन्न करना चाहा, पर वह उसका तिरस्कार कर थोड़ी दूर हो गई।

चित्तशर्मा ने अविद्या को परामर्श दिया कि जीव का पिण्ड न छोड़े। वह वेदारण्य

में जाना चाहता है तो जाय, पर वहाँ उसे महामोह आदि को लगा दें कि वे शम-दम को ध्वस्त कर दें।

इधर विद्या भी जीव को पतिरूप में पाने के लिए बहुत उत्कण्ठित थी। सत्संग से मिलकर चित्तशर्मा ने योजना बनाई कि वेदारण्य में कैसे विद्या का जीव से परिणय कराया जाय।

वेदारण्य में अविद्या अपनी सखियों के साथ जीव से मिलने आ पहुँची। अविद्या की ओर से जीव को सत्पथ से च्युत करने के लिए विविध पापण्ड, मोह आदि नियुक्त थे। इधर शिवभक्ति ने वस्तु-विचार को उन्हें ठीक मार्ग पर चलाने के लिए नियुक्त किया था। लोकायतिक, बौद्ध सिद्धान्त, चार्वाक, दिवसन (जैन) सिद्धान्त, आदि की बातें जीव ने न मानीं। फिर अविद्या की इच्छानुसार सोमसिद्धान्त, पाञ्चरात्र-सिद्धान्त, तान्त्रिक, श्रीवैष्णव, कलि आदि के पारस्परिक विवाद से भी जीव का मन न भरा। वे सभी पापण्ड हार कर भाग चले।

अविद्या ने अपने पक्ष की विफलता देखकर असूया के द्वारा भेजे हुए मोहादि के द्वारा शम आदि के प्रचार को रोकने की योजना को कार्यान्वित करना चाहा।

काम, क्रोध, लोभ, हर्ष, मान, दम्भ, आदि अविद्या की सहायता के लिए आये। चित्तशर्मा के साथ जीव विराजमान हुए। वेदारण्य में वैदिक यज्ञों का प्रकाम विस्तार था। जीव काम, लोभादि के वश में कुछ-कुछ आ रहा था, पर चित्तशर्मा ने किसी की एक न चलने दी। अन्त में अविद्या को हारकर कहना पड़ा—

न वाग् न रूपं न रसो न गन्धो न स्पर्शनं वा सुखहेतुरस्ति।
भवानहो कं गुणमाकलय्य विद्येति सम्मुह्यति वा न जाने ॥५.३६

जीव विद्या को और विद्या जीव को प्रत्यक्ष देखकर परस्पर प्रणयाभिसन्तप्त हो गये। इधर अविद्या ने चित्तशर्मा से कहा कि जीव मेरे हाथ से बाहर जा रहे हैं। आप उन्हें रोकें। चित्तशर्मा ने कहा कि जीव जब आपको प्रसन्न करने जायें तो आप प्रसन्नता न प्रकट करें। आगे में सब समाधान कर लूँगा।

अविद्या कोपभवन में बैठी थी कि जीव चित्तशर्मा के निर्देशानुसार तापसारण्य में प्रवास करने चले। जीव अविद्या के पास मनाने आये तो बात कुछ बनी नहीं। जीव ने कहा कि जब अविद्या नहीं प्रसन्न होती तो मैं वेदारण्य में चला। तापसों ने जीव से भेंट की। तभी अविद्या के द्वारा नियुक्त राजसी और तामसी शिवभक्ति ने मन्त्र-समुदायों के साथ जीव को पकड़ा। उन्होंने अपने साथ लौकिक अभ्युदय प्राप्त कराने वाले पाशुपतादि अस्त्र, शरभेश्वर मन्त्र, बगलामुखी मन्त्र, श्येनयाग आदि ग्रहण करने की सुविधा प्रदान की। जीव ने कहा कि यह सब कुछ नहीं। अष्टाङ्गयोग के प्रकट होने पर चित्तशर्मा ने जीव को उसकी उपयोगिता बताई। योग ने अपने दण्ड से जीव को सत्पथ से अलग रखने का प्रयास करने वालों को दूर हटाया।

विवेक और मोह की महती सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ। मोहपक्ष हारकर भागा। फिर तो योग ने एक दिन निद्रा में साम्बदक्षिणामूर्ति का दर्शन जीव को

कराया। शिवभक्ति के प्रति कृतज्ञ जीव ने उससे मिलते ही उसे सौ बार प्रणाम किया।

पुण्डरीक-भवन मे विद्या को सजाकर उसके विवाह की तैयारी कर दी गई। साम्बशिव ने रंगमच पर प्रवेश किया। जीव ने उनकी लम्बी स्तुति की। फिर तो तण्डु के निर्देशन में शिव कल्याण-मण्डप की ओर चले। शिवप्रसाद और ओरेम् की उच्चाशयता का निनाद हुआ। निदिध्यासन ने विद्या का कन्यादान जीव के लिए कर दिया। अविद्या ने यह सब देखा और सपरिवार परावृत्त हो गई।

विद्यापरिणयन की कथा पढने से पाठक को अश्वघोष-कृत सौन्दरनन्द महाकाव्य की कथावस्तु का स्मरण हो आता है। महाकाव्य का नन्द नाटक का जीव है, सुन्दरी अविद्या है और मुक्ति विद्या है। महाकाव्य का बुद्ध नाटक का विवेक है तथा आनन्द चित्तशर्मा है।

समीक्षा

सूत्रधार ने आनन्दराय के रचना-वैशिष्ट्य का निदर्शन करते हुए कहा है—

अश्लीलं न तितिक्षते न सहते पात्रेषु चानौचितीम्।

संस्कृत-भाषा तो भारत के विद्वानों की १८वी शती की सर्वाधिक लोकप्रिय भाषा थी, पर मध्यकालीन प्राकृत भाषायें—शौरसेनी, महाराष्ट्री, मागधी आदि जनता से दूर हो गई थीं। इन भाषाओं को नाटककारों ने यद्यपि अपनाये रखा, किन्तु शाहजी जैसे राजकवियों ने इनके स्थान पर स्थानीय आधुनिक भाषाओं को अपनाया। उनके पचभाषा-विलास मे हिन्दी, मराठी आदि भाषायें प्राकृतों के स्थान पर हैं। मध्ययुगीन प्राकृतों को नाटक में स्थान न देने की प्रवृत्ति भी इस युग में पनप रही थी। आनन्दराय ने प्राकृतों को नाटक मे स्थान न देने का कारण इस प्रकार बताया है—

अप्राकृतसभाहृद्या न प्राकृतगिरो मताः।
अत· संस्कृतया वाचा सभालङ्क्रियतामिति॥

अपने मन्तव्यों को प्रत्यक्ष सा कर देने मे आनन्दराय निपुण हैं। विद्वान् भी अविद्या के पाश मे बद्ध होकर वानर की भाँति नचाये जाते हैं—यह आनन्दराय की उक्ति है—

कृष्टस्त्वया विवलते विषयेषु नाम।
बद्धो वलीमुख इवाशरणो बुधोऽपि ॥२.४

विषयवासना साधिकार कहती है—

स्वाध्यायाध्ययनावबोधविहितानुष्ठाननिष्ठाक्रमः
कान्तारे गिरिकन्दरे तृणपयोवृत्त्या च शुद्धान्तरः।
आरुह्य श्रवणादितुङ्गपदमध्यास्ता निदिध्यासनात्।
तं नस्योतमिवापकृष्य विषये बध्नामि कामादिभिः ॥२.१०

प्रस्तावनालेखक सूत्रधार

आनन्दराय मखी के नाटकों की प्रस्तावना से स्पष्ट होता है कि प्रस्तावना-लेखक सूत्रधार है। पारिपार्श्वक के पूछने पर जीवानन्द मे सूत्रधार कहता है—

सूत्रधारः—नन्वस्ति ममवशे सहृदयजनहृदयचन्दनं जीवानन्दनं नाम नवीनं नाटकम्।

विद्यापरिणयन में सूत्रधार पारिपार्श्वक को नाटककर्ता आनन्दराय मखी का परिचय देते हुए कहता है—

स (आनन्दराय मखी) तावत् इदं नाटकमुचितेषु प्रयोक्तव्यम् इति सबहुमानमस्मद्वशे समर्पितवान्।

अर्थात् आनन्दराय मखी ने आदरपूर्वक यह नाटक मुझे समर्पित किया और कहा कि उचित प्रेक्षकों के होने पर ही इस नाटक का अभिनय किया जाय।

जीवानन्द की प्रस्तावना में पात्रों के नाम दिये हुए हैं। विद्यापरिणयन में सूत्रधार कहता है—

अये मत्स्यालको रंगनायनामा शिवभक्तेर्भूमिकामादायागत एव।

जीवानन्द में विकट नामक नट के सूत्रधार के प्रतियोगी होने की चर्चा है।

उपर्युक्त बातें केवल सूत्रधार ही लिख सकता है, नाटककार नहीं—यह विद्वान् स्वयं समझ सकते हैं।

पात्रों की सज्जा

पात्रों की सज्जा की कल्पना इस नाटक की निवृत्ति की सज्जा से की जा सकती है।[1] यथा,

भस्मालेपनतः क्षरज्जलधरच्छायां तनुं बिभ्रती
पक्ष्मभ्यामधरश्रिया च कथमप्युन्नेयवक्त्राम्बुजा।
वैयाघ्रं परिधाय चर्म दधती संव्यानमैणीत्वचं
विद्युत्पिङ्गजटाच्छटा विजयते सेयं निवृत्तिः पुरः॥१.२४

नायक-कल्पना

इस नाटक में प्रायः सभी नायक भावात्मक हैं। उनका मानव रूप केवल प्रतीक के द्वारा है। यह प्रतीक कल्पना अधिष्ठातृदेव की मान्यता से परिपुष्ट और साकार हुई है। नदी केवल वारिराशि नहीं है, अपितु वह एक देवी है। अग्नि देव हैं। सूर्य आदि देव हैं। ऋग्वेद के समय से ही मन्यु आदि भावों को देव मानकर उनके मानव रूप की कल्पना हुई है। आनन्दराय इन नायकों को स्थूल मानव रूप भी देते हैं। नीचे के उदाहृत पद्यों से यह स्पष्ट होगा। भावात्मक नायकों के अतिरिक्त इस नाटक के अन्त में साम्बशिव देवता नायक हैं। तण्डु उनके साथ है।

नायकों का रूपोच्चय कवि की एक विशिष्ट देन संस्कृत नाटक के लिए मानी जा सकती है। तपस्वियों को कवि-दृष्टि से परखें—

गाढोद्बद्धजटासनीडनिबिडव्यानद्धनीडोदर—
क्रीडन्नीडजकाकलीकलकलाटोपैरविक्षेपिणः।
देवे क्वापि निविष्टतुष्टमनसः शिष्टा इमे तापसाः
संघीभूय समापतन्ति क इमे धर्मा विशुद्धा इव॥६.१५

---

१. निवृत्ति नामक पात्र की सज्जा का वर्णन १.३९ में भी है।

नायकों के नाम कहीं-कहीं ऐसे मिलते हैं कि उनके अधिष्ठाता देव और मानव स्वरूप मानो स्पष्ट सा है। यथा, चित्त नामक नायक चित्तशर्मा कहा गया है।

नाट्यशिल्प

अर्थोपक्षेपकोचित सामग्री भी रंगमंच पर अङ्क-भाग में दी गई है। प्रथम अङ्क में निवृत्ति वह सारी बात बताती है कि शिवभक्ति ने मुझे बताया है कि जीव को अविद्या से छुटकारा प्राप्त कराने के लिए क्या योजना बन चुकी है। यथा,

"मायागहनकर्मणश्चित्तशर्मणो भेदनेनैव जीवराजोऽभिमुखी करणीयः।"

तृतीय अङ्क में चित्तशर्मा जीव को वे सारी बातें बताता है, जिन्हें वह वेदारण्य में सुन चुका है।

कोई पात्र रंगमंच पर प्रवेश करते ही किसी अन्य पात्र को दूर से ही देख कर उसके विषय में अपने मनोभाव एकोक्ति द्वारा प्रकट करे—यह रीति आनन्द राय ने अपनाई है। द्वितीय अङ्क में प्रवृत्ति की अविद्या के विषय में ऐसी एकोक्ति इस प्रकार है—

प्रवृत्तिः—कथमत्रैव विषयवासनया सह भद्रपीठमध्यास्ते देवी। यथा,

पश्यन्त्येव न पश्यति प्रणयिनी वस्तून्यहो चक्षुषा,
शृण्वत्येव शृणोति न प्रियसखी नर्मानुलापानपि।
चेतः क्वापि वचः कुतोऽपि तदहं मन्येऽधुना चिन्तया,
पत्युर्विप्रियजन्मना चिरमसावाकृष्यते केवलम् ॥२.८

अतएव किल,

प्रातश्चन्द्रकलेव पुष्यति दृशोर्नन्दमस्यास्तनु-
र्निश्वासोष्मविघट्टनेन गलितो बिम्बाधरे शोणिमा।
वीटी चित्रगतेव तिष्ठति चिरं चिन्मुद्रया मुद्रिता
सन्त्रस्तो विफलोद्यमः परिजनः पर्यन्तमासेवते ॥२.९

तदुपसर्पाम्येनाम्।

कवि ने इस प्रतीक नाटक में नायकों को ऐसा रूपित किया है कि वे मानवों से मानो अभिन्न हैं। जीव का रूपायन देखिये। वह कहता है—

हृद्यं वस्तु न रोचते हृदयजस्तापो न विश्राम्यति
श्वासः प्लोषयतेऽधरं शिथिलयत्यङ्गानि चिन्ता मम।
मोहे मज्जति चेतनापि निमिषः कल्पादनल्पायते
कस्मै किं कथयेय हन्त तमिमं कालं क्षिपेयं कथम् ॥३.३

इस पद्य में जीव शरीर, मन और वाणी से पूरा मानव है।

छायातत्त्व

विद्या के चित्र से नायक वैसे ही मुग्ध होता है, जैसे सदेह व्यक्ति से। वह चित्र देखकर कहता है—

आप्लाव्य ज्वलदङ्गमङ्गमभितः संसृत्य नाडीष्वपि
प्लोषावेगकदर्थितासुकरणान्युज्जीवयन्ती पुनः।

अस्या निस्तुलतरादङ्गसुपमाकल्लोलिता काप्यसा—
वानन्दामृतदिव्यसिन्धुलहरी विश्वं किलापह्नुते ॥३-२८

वह चित्र को बहुत देर तक निहारता है, उन्मत्त हो जाता है और उसे सम्बोधित करके कहने लगता है—

मृद्नामि किं नु मृदुलं पदपल्लवं ते, किं ते लिखामि कुचयोरुत पत्रवल्लीम्।
एह्येहि मे विदधती सकृदङ्कपालीमन्तर्गतं निरवशेषय तापमेनम्॥

अन्त में चित्तशर्मा को बताना पड़ता है—

(सोपहासम्) वयस्य प्रतिकृतिरियं खलु तस्याः ।

छायातत्त्व के उत्तम उदाहरणों में से यह एक है । वस्तुतः प्रतीक नाटक आद्यन्त छायातत्त्व से सम्भृत होता है ।

जीवनदर्शन

आनन्दराय ने इस नाटक में जीवन-दर्शन की वही दिशा बताई है, जो भर्तृहरि के वैराग्यशतक में है । यथा,

पिष्टरसामृत-सदृशं वैषयिकं तत्सुखं सुखं नैव।
आधि-व्याधिजराभिर्दुर्लभमेतच्च काकमांसमिव ॥

जीवानन्दन

सात अङ्कों का जीवानन्दन आनन्दराय का दूसरा प्रतीक नाटक है ।[1] इसका प्रथम अभिनय तञ्जौर में बृहदीश्वर-रथोत्सव के अवसर पर हुआ था । नाटक देखने के लिए जो सभ्य उपस्थित थे, उनका वर्णन सूत्रधार ने किया है—

सरसकवितानाम्नो हेम्नः कपोपलतां गताः
विहरणभुवः षड्दर्शिन्या विवेकधनाकराः।
विदधति तपोलभ्याः सभ्या इमे मम कौतुकं
तदिह हृदयं नाट्येनैतानुपासितुमीहते ॥

जीवानन्दन के नायक जीव का मन्त्री विज्ञानशर्मा है । जीव राजा है, उनकी पत्नी बुद्धि है । नायक-पक्ष के अन्य पात्र हैं— ज्ञानशर्मा (अपवर्ग-मन्त्री), धारणा (बुद्धि की सहचरी), प्राण (प्रतिहारी), विचार (नगर-पालक), किंकर (विचार का साथी), वैतालिक, विदूषक, शिवभक्ति, स्मृति, श्रद्धा, चेटी, काल, कर्म, परमेश्वर, परमेश्वरी, औषधियाँ आदि । प्रतिनायक राजयक्ष्मा है। उसकी पत्नी विषूची है । अन्य पात्र हैं पाण्डु (यक्ष्मा का मंत्री), सन्निपात (सेनापति) श्वास-कास (भृत्य), छर्दि (कास की पत्नी) कण्ठकण्डूति (छर्दि की सपत्नी), गलगण्ड (यक्ष्मा का परिचर), गद (यक्ष्मा का चर), व्याक्षेप (गुप्तचर) । इस प्रतीक नाटक में लेखक का उद्देश्य दुःसाध्य राजयक्ष्मा का निदान प्रवर्तित करना है। शिवभक्ति का माहात्म्य स्थान-स्थान पर चर्चित है ।

जीवानन्दन नाटक का महत्त्व आयुर्वेद की दृष्टि से भले ही अधिक हो, साहित्यिक पाटव की दृष्टि से यह नगण्य है ।

---

१. जीवानन्द का प्रकाशन काव्यमाला-सीरीज में तथा अड्यार से हो चुका है । १९५५ ई० में इसका प्रकाशन पुस्तकभवन-वाराणसी से हुआ ।

अध्याय ४२

गोविन्दवल्लभ नाटक

गोविन्दवल्लभ नाटक के प्रणेता द्वारकानाथ के पिता रुक्मिणीकान्त थे ।[1] कवि ने नाटक के अन्त मे अपनी वंशपरम्परा का वर्णन किया है, जिसके अनुसार क्रमशः द्वारकानाथ, रुक्मिणीनाथ, जगदानन्द, गोकुलचन्द्र, शीलगोपाल, कानुराम और पर्णगोपाल पितृपरम्परा मे हुए। पर्णगोपाल के आश्रयदाता राजा सुन्दरानन्ददेव चैतन्य के प्रियपात्रो मे से थे। कवि का प्रादुर्भाव १८वी शती के पूर्वार्ध मे हुआ था। इस नाटक की रचना १७२५ ई० के लगभग हुई। कवि ने गीतों मे कही-कही अकेले और कही-कही पूर्वजो के नाम सहित अपना नाम दिया है[2]। यथा,

द्वारमुखान्तिकनाथककाह्वसतेरितगीतमुदारम् ॥ तृतीयाङ्क मे गीत ८ से।

द्वारकानाथ ने इसे सूत्रधार को समर्पित किया था।[3] वर्षा ऋतु मे इसका अभिनय लेखक के पितामह जगदानन्द के कहने से हुआ था। उन्होने सूत्रधार से कहा था—

हरिचरितविचित्रं चित्तचौरं नराणां सहृदय-हृदयाब्धेः पूरणाम्बुस्वरूपम्।
अभिनवकृतिमुद्यद् गीतपद्यालिहृद्य प्रकटय नटवर्य त्वं प्रबन्धं नु कचित्॥

अभिनय का आरम्भ प्रातःकाल के समय हुआ।[4]

कथावस्तु

कथा का आरम्भ बालकृष्ण के प्रातः जागरण के लिए यशोदा के गीत से होता है। कृष्ण उठे, मुँह-हाथ धोया और मल्ललीला के लिए गये। व्यायाम का वर्णन है—

गत्वा तत्राग्रज श्रीहलधरविहितादेशसकाशकारी
दोर्द्वन्द्वाशक्तरक्तच्छविमृदुमृदसौ शौर्यजास्फालनादिः।
भूमौ कृत्वा कराब्जद्वितयमथ पदद्वन्द्वमोजोजवाभ्यां
कायं चित्रं चिरायाचरितबहुविधं चालयत्येष कृष्णः॥

---

१. इसकी हस्तलिखित प्रति भुवनेश्वर के राजकीय-संग्रहालय मे है। इसका प्रकाशन बंगलिपि में श्रीधाम नवद्वीप (नदिया) के हरिबोल कुटीर से हुआ है।

२. लेखक ने गीतो मे कही-कही अपने को जगदानन्द-सुतात्मज कहा है। यथा,
जगदानन्द सुतात्मज—शसनमेतदतीव मुदेव। १.१७
अन्यत्र गोकुलचन्द्र—सुतात्मजपुन कहा है। २ १ मे

३. श्रीगोविन्दवल्लभनामसगीतनाटकं निर्माय समर्पितम्। तदभिनेष्यामः।
इससे स्पष्ट है कि प्रस्तावना का लेखक सूत्रधार है।

४. प्रस्तावना मे नवसूर्य. आदि अभिनयारम्भ के समय का वर्णन है।

कृष्ण गायों को दुहते हैं और दूध अन्य बालकों को पिला कर पीते हैं। कृष्ण को दासों से फल मिलता है। उनके स्वाद से तृप्त कृष्ण उनसे पूछते हैं कि कहाँ मिला? वे बताते हैं कि निकट ही वृन्दावन से। बस, गाय लेकर वृन्दावन जाने का कार्यक्रम वे सभी गोप बालकों के साथ बनाते हैं। यशोदा इसका विरोध करती हैं। कृष्ण ने माता से अनुरोध किया कि मैं तो गोपाल हूँ। मेरा जातिधर्म है गाय चराना। राजकुल में उत्पन्न हुआ तो क्या हुआ? बलदेव ने कृष्ण का समर्थन किया। अन्त में यशोदा ने बलराम से कहा कि अच्छा, कृष्ण को ले जाओ।

इसके पश्चात् द्वितीय अङ्क में नन्द की अनुमति पाने की समस्या आती है। स्वयं यशोदा रंगमंच पर उनसे पूछती हैं कि इन सबकी इच्छा है कि कृष्ण गोचारण के लिए वृन्दावन जायें, यदि आप अनुमति दें। नन्द ने प्रसन्नता व्यक्त की और ज्योतिषी बुलाकर जान लिया कि कृष्ण के लिए यह मुहूर्त गोचारण प्रारम्भ के लिए अच्छा है। ज्योतिषी ने कृष्ण के कान में कहा—

अद्य तावद् यात्रायां स्त्रीरत्नलाभो भविता।

माता ने कहा—

गोविन्द गोकुल सुधाकर वत्स तात हे नीलरत्नवर वंशधर स्विदद्य
नूनं प्रयास्यसि वनं पशुपालनाय तत्त्वामहं स्वकरतो वत भूपयामि॥

यह सब होने पर कृष्ण गोचारण के लिए चले। उनके साथी श्रीदामा ने कहा कि मेरी माता ने आपको अपने घर आने का निमन्त्रण दिया है। वृषभानुपुरी में उसके घर कृष्ण और बलराम पहुँचे। वृषभानुराज की महिषी कीर्तिदा और उसकी सपत्नी सुशीला ने कृष्ण के स्वागत की पूरी सज्जा की। राधा ने भी कृष्ण का गुण पहले से ही सुन रखा था। वह उनके दर्शनों के लिए उत्कण्ठित थी। सखियों ने राधा को कृष्ण का दर्शन कराया। राधा ने कृष्ण को देखा और उसका वर्णन करने लगी—

एष विलासी शोभाराशिः निर्मल-गोकुलचन्द्रो हरति मनः॥ ध्रुव
सजलजलद-रुचिर-कलेवर-चपलाचेलविकाशः। इत्यादि

राधा की माताओं ने उनका बड़ा आदर किया। बलराम को वहाँ पीने के लिए उनकी प्रिय मदिरा मिली, जिसे उन्होंने कृष्ण को न पीने दी। माता ने राधा को बुलाया। कृष्ण और राधा एक दूसरे के दर्शन-मात्र से एक दूसरे के हो गये।

चतुर्थ अङ्क में कृष्ण और राधा की प्रेम-प्रवृत्तियाँ बढ़ती जा रही थीं। तभी बलदेव ने शृङ्ग बजाया और कृष्ण के साथ सभी गोप उनके पास जा पहुँचे।

कृष्ण वृन्दावन में प्रवेश करते हैं। वृन्दावन का गीतात्मक वर्णन है—

प्रविशति गोकुलचन्द्रो वृन्दाकाननम्।
गोपकदम्बकलध्वनि-सहकृतविश्वमनोहरगानम्।
वायुविलोलितलतांगुलि-कूजित-चित्रविहङ्गमजातम्।

सादरमाह्वयदिव पुरतः स्वकमागत-सुरभि-सुदूतम्।
भावकमिव शुभपुष्पघनानि किरन्मृदुवायु विलोलम्।
वाष्पतुलितमधुधारमहो परिहृष्टतनूरुहजालम्।
अलिकुलझंकृति-गद्‌गद्‌भापणमानसशाखाव्रातम्।

वृन्दावन में पहुँचकर कृष्ण गाय चराने लगे। साथ ही अन्य गोपाल-बालों के साथ उनका वनविहार होने लगा। कृष्ण और श्रीदाम का मल्लयुद्ध हुआ। कृष्ण श्रीदाम से पटके जाते हैं। बलराम और अन्य गोप भी मल्लयुद्ध करते हैं। हारने पर विजयी को पीठ पर लाद कर ढोना पड़ता है।

पंचम अङ्क में कृष्णादि गोपों का यमुना-जल-विहार होता है। फिर कृष्णादि भोजन करते हैं। इसके पश्चात् सभी मिलकर एक स्वांग रचते है, जिसमें कृष्ण राजा, बलराम मन्त्री, श्रीदामादि पार्षद बन जाते हैं। कृष्ण सिंहासन पर बैठते हैं। राजसभा में मनोविनोद का कार्यक्रम चलता है। सभी राजा कृष्ण का कीर्तिगान करते हैं। विदूषक के घोड़ा माँगने पर उसे किसी हरिण पर चढ़ा कर परिहास किया जाता है। कृष्ण वंशी-ध्वनि से हरिण को निकट बुलाकर मीत विदूषक को उतारते हैं। अन्त में सभी कृष्णादि गोपाल बिखरी गायों को ढूँढने चले जाते हैं।

षष्ठ अङ्क में वियोगिनी राधा पौर्णमासी के निर्देशानुसार कृष्ण से मिलने के लिए वृन्दावन में जा पहुँचती है। राधा से प्रेमभरी छेड़छाड़ करते हुए कृष्ण उसे छेंकते हैं कि मैं राजा हूँ। मुझे ऐसा करने का अधिकार है। राधा कहती है कि राजा हो तो ठीक है--

तव तु भवतु राज्यं राज्यभाजः प्रजाः काः
वयमुत कुलबाला नः कथं त्वं रुणत्सि।
प्रकटय ननु गोपु वृक्षेपु वादः
किमिति निरपराधे स्त्रीगणे ते नृपत्वम्॥

कृष्ण ने उत्तर दिया—

आगः किं न कृतं रुतं परभृतो नीतं मृगेन्द्रोदरं
द्वैपं कुम्भयुगं त्वयाथ हरिणीनेत्रं च हसद्‌भुतम्।
ता रोषात् क्व गताः प्रजाः गतिभृतश्चाम्पेय-बन्धूककौ
क्रन्देते हृतकान्तिकावगती गात्राधराभ्यां पुरः॥६.१६

राधा और कृष्ण का परस्पराकर्षण इस प्रकार कुछ और बढ़ा।

सप्तम अङ्क में विरही कृष्ण को वन काटने लगा। उन्होंने अपने मित्र सुबल से कहा कि राधा को जैसे-तैसे मिलाओ। सुबल राधा के पास जाकर बोला कि यमुना के उस पार पुष्पच्छटा दर्शनीय है। वहाँ कृष्ण भी अपना पुष्प-शृंगार करते हैं। आप भी चलें। कृष्ण आप सबको नदी पार करायेंगे। यह सुन कर राधा कृष्ण के पास पुनः आ गई। राधा ने कृष्ण से प्रार्थना की——

पारय नो हे नाविकवर
दुस्तरतरणिसुतामतिसुन्दर शरणहरे यदुवीर ॥ इत्यादि

कृष्ण ने सभी गोपियों को नाव पर बैठाया। फिर नाव चलाई—

चालयतीह तरिं वनमाली
करचरजलताडनातिसाधनातिशाली।
गायति कलगीतमतनुकीर्तनञ्च कामम् ॥
झणझणझणझणझणझण-शिंजिताभिरामम् ॥

बीच में सोने का वहाना करके राधा के अंक में हाथ रख दिया। राधा ने कहा कि जागिये, नहीं तो नौका डूबी।

अन्त में यमुना पार कर राधा के साथ कृष्ण केलिसदन में प्रवेश करते हैं। वहाँ कृष्ण राधा से कहते हैं कि मुझ पर दयादृष्टि डालें। उनकी कामक्रीडा का कवि ने वर्णन किया है। अन्त में राधा कृष्ण से कहती है—

शिरसि निधाय कराब्जं मम माधव हे कुरु निगमम्।
त्वां तु कदाचन न निरसितास्मि हृदेमम् ॥ इत्यादि

इस प्रकार उनका गान्धर्व विवाह हुआ। राधा अपने घर गई और कृष्ण अपने साथियों के बीच जा पहुँचे।

आठवें अङ्क में बलराम अधिक मधुपान किये हुए मिलते हैं। उनसे बची मदिरा साथी गोपों ने पी थी। पी-पाकर सभी सोने लगते हैं। सो लेने के बाद कृष्ण ने बलदेव को जगाया तो वे सबको मारने के लिए हल-मुसल से प्रहार करते हैं। दौड़ते हुए बलदेव यमुना में गोपबालों की छाया देखकर उन्हें वास्तविक गोप समझ कर उन्हें दण्ड देने लिए यमुना में कूद पड़े। फिर वहाँ बड़ी देर तक जलक्रीडा करते रहे। वे कहने-सुनने पर भी न निकले तो बलिष्ठ गोपों ने उन्हें पकड़ कर यमुना से बाहर निकाला। नशा उतर चुका था। उन्होंने फिर घड़े में रखी मदिरा माँगी। कृष्ण ने कहा कि पीकर आपने प्रमादवश हम सबको मारने का उपक्रम किया था। बलदेव लज्जित हुए। उन्होंने कहा कि कोई मेरी पियक्कड़ी की चर्चा माता-पिता से न करे। सबको मधुमंगल पर सन्देह था। बलराम ने उसे पेड़ से बाँधा। सभी गोप ताली बजा कर नृत्य करते हैं। मधुमंगल ने प्रतिज्ञा की कि किसी से नहीं कहूँगा। तब बलदेव ने उसे मुक्त किया। कृष्ण ने पुनः अपने हाथों से बलदेव को मदिरा पिलाई।

नवम अङ्क में सन्ध्या के समय बिखरी हुई गायों को एकत्र करके गणना करने के लिए कृष्ण बाँसुरी बजा कर उन्हें बुलाते हैं।

दशम अङ्क में सन्ध्या के समय कृष्ण के न लौटने पर यशोदा और नन्द की व्याकुलता का वर्णन है। ऊँचाई पर चढ़ कर वे उन्हें बुलाते हैं। तभी नन्द को मुरली की स्वर-लहरी सुनाई पड़ती है। दूत यशोदा को सूचित करते हैं कि कृष्ण

आ ही रहे है। गोपियाँ उनका स्वागत करती हुई दर्शन करना चाहती हैं। कृष्ण आदि सभी बालक गोष्ठ मे आ गये। यशोदा पुत्रों की आरती उतारती हैं। वे भोजन करते हैं।

शिल्प

सूत्रधार ने प्रस्तावना मे इसे सगीतनाटक कहा है। आद्यन्त यह नाटक सुललित गीतो से भरा है। द्वितीय अङ्क के अन्त मे गोपबालको का नृत्य द्रष्टव्य है।

निवेदन

नाटक मे गद्य और पद्यो के माध्यम से चूलिका-रूप में निवेदनो का विनिवेश प्रचुरमात्रा मे हुआ है।[1] प्रथम अङ्क का आरम्भ नीचे लिखे निवेदन से होता है—

> प्रत्यूषप्राप्तनिद्राहतिरतिरभसो हासयन् स्वीयभासा
> देश देश निदेशं पितुरपि तु पथि स्वीकरोति प्रियत्वात्।
> यावत्तावच्च नीचैर्न चलति चपल चालयन् पाणिपद्म
> सानन्द नन्दसूनो सविधमथ विधोर्याति दामा सुदामा॥
> माणिक्यमुक्तामणिदामनिर्मित--श्रीमत्सुपर्यङ्कविचित्रविष्टरे
> निद्रासमुद्रोक्षणनिश्चलाङ्गकं गोविन्दमुत्थापयतीह दामा॥

निवेदन चूलिका से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। द्वितीय अङ्क के आरम्भ में चूलिका मे नन्द का वर्णन है—

'कर्णान्दोलितरत्नकुण्डललसद्गण्डस्थलस्तुन्दिलः' इत्यादि।

भूमिका

नाटक में पुरदेवता की भूमिका है। वृषभानुपुर-देवता और गोकुलपुर-देवता

---

१. निवेदन के द्वारा रगमच पर घटने वाली कार्यावली का परिचय सवाद के द्वारा न देकर नेपथ्य से दी जाती है। यदि कोई घटना रंगमच पर नही होती है तो उसकी सूचना विशुद्ध चूलिका है। किन्तु यदि घटना रंगमंच पर दृश्य है और उसका वर्णन नेपथ्य से सुनाया जाय तो वह दृश्य का वर्णन होने के कारण चूलिका नही, अपितु निवेदन है। यथा, तृतीय अङ्क का अधोलिखित पद्य—

> तस्मिन् श्रीवृषभानुराजसदने गोपालबाला मिथः
> केपाञ्चिन् निभृतं च केचन बलात् केचिच्च नानाछलात्।
> पात्रेभ्यः कलयन्ति मोदभरतः सम्भोजनीयं मुदा
> कामिन्यो हसितारविन्दवदनाः पश्यन्ति दिक्षु स्थिताः॥३.२५

द्वितीय अङ्क के १३वें पद्य मे ज्योतिषी के रंगमंच पर आने के समय ही नेपथ्ये—

> खर्वः स्थूलांशुकेनावृतकटितटकः स्थूलवासःशिरस्कः।

इसमे ज्योतिषी का वर्णनमात्र है। किसी घटना की सूचना नही है।

तृतीय अङ्क में ३१वाँ पद्य 'इति वचन विलोला' आदि निवेदन का अनूठा उदाहरण है।

ऐसे पात्र बनते हैं। पात्रों की वेश-भूषा भी मनोरंजक है। प्रथम अङ्क में बलराम हल और मुसल लिए रंगमंच पर आते हैं। दस अङ्कों का यह नाटक है। इनमें से नवम अङ्क तो एक ही पृष्ठ का है। इतनी कम सामग्री के लिए एक अङ्क बनाना अपवादात्मक है।

ग्रामता

संस्कृत नाटकों में ग्रामता विरल है। गोविन्द-वल्लभ-नाटक इसका अपवाद है। कृष्ण का जन्म, लीलायें और बालपन ग्राम-जनों के बीच हुआ। मनोरम है बालकृष्ण का गोदोहन—

गामिह गोकुलचन्द्रो दोग्धि
पयः स्वयमय सुखोदधिमध्याध्यस्तशरीराम्।
सक्रममीरितवंगविचूपरण-पूर्णपयस्तनभाराम्॥
विहित-तदीयपराङ्घ्रि-युगोचित-बन्धनमत्र सुपात्रम्।
निपुणजनानुकरणमनु जानुयुगं च विभर्त्यतिमात्रम्।
करकमलद्वितयेन च पातयतीह पयो बहुधारम्
अतिघनघर्घरघोपणकर्णवजातकुतूहलपूरम् ॥१.३

श्यामल सुन्दर कृष्ण की बाललीला भी इस नाटक की विशेषता है। आद्यन्त इस नाटक मे बाललीला अपूर्व रुचिकर तत्त्व है।

भोजनादि का अनिषेध

रंगमंच पर भोजन का निषेध है, किन्तु इस नाटक में द्वितीय अङ्क में बताया गया है—यशोदानन्दनो भुंक्ते।

संगीत

नाटक मे संगीत तो सर्वाधिक निर्भर है। कतिपय गीतों में ग्रामता की पुट है। यथा, गोपाल गाते हैं—

है है हहो हो हो' इत्यादि।

शराबी का गीत बलराम के

'कृ कृ कृष्ण: कु कु कुत्र क्व माता य यशोदा' से झलकता है।

एक ही गीत के विभिन्न पादों को दो पात्र रंगमंच पर संवाद के रूप में गाते हैं। यथा,

नन्दः—वत्स त्वं किमुतासि घोरविपिने शक्तो गवां चारणे
कृष्णः—शक्तोऽहं जनकाग्रजेन बलिना चेत् सीरिणा सम्भृतः।
नन्दः—स्वित् त्वं नाप्तवयाः।
कृष्णः—कथं मम समा दामादयस्तद्वने।
तन्मात्रादिभिरीरिता विभविनो बाला गवां चारणे॥ २.६६

सप्तम अंक में कृष्ण और राधा का ऐसा ही द्विगान है—

रा०—किं तनुषे नो बत खलताम् । पयसि मुरारे विपरीताम् ॥
कृ०—का खलता वितरातरक अधितरि राधे त्वमभीकम् । इत्यादि

रस

हास्य रस की एक लोकोचित धारा प्राचीन परिपाटी से सर्वथा भिन्न अपनाई गई है। यथा, द्वितीय अङ्क में ज्योतिषी बहरा है। उससे नन्द पूछते हैं कि मेरे पुत्र कृष्ण गोचारण के लिए वन मे जाना चाहते हैं। ज्योतिषी उत्तर देता है—घर से आ रहा हूँ। सब ठीक है। नन्द फिर वही प्रश्न करते है तो ज्योतिषी कान मे कहता है—क्या पुत्र के विवाह की बात है? इस प्रकार अप्रासंगिक उत्तरों की परम्परा के अन्त मे अनेक गोपाल-बाल जोर से उसके कान मे चिल्लाकर नन्द का प्रश्न दुहराते हैं। फिर भी ज्योतिषी कुछ दूसरा ही समझ कर पूछता है—

ज्ञातं बलदेवोद्वाहदिवसमावेदयथ । ज्येष्ठेऽनुद्वाहे कनिष्ठोद्वाहासम्भवात् ।

हास्य-प्रवण कवि ने मधुमंगल नामक ब्राह्मण-विदूषक की दुर्गति चतुर्थ अङ्क में कराई है। वह कृष्ण के समान अपनी भूषा गोप-बालकों से कराना चाहता था। सुदामा ने उसकी हास्यास्पद भूषा कर दी। यथा,

गले दिव्यां माला वितरति करे ताञ्च कपर्दै—
र्दंशोश्चूर्णं कर्णो ऽप्यलिकफलके मूर्ध्नि गरुतः ।
पिकानां गण्डे त्वञ्जनमुपकचान्तं च विटपं
सुदामान्तर्हासो मुदित-हृदयस्यास्य ग्हसि ॥४-३५

उसके पूछने पर गोपो ने कह दिया कि अब तो आप कामदेव को भी लज्जित करने लगे। फिर तो कृष्ण के पास ले जाकर उसे नचाया गया। इतनी हँसी देख कर उसने यमुना के जल मे अपना रूप देखा तो लज्जित होकर सुदामा से बदला लेने दौड़ा।

कवि पर माघ के शिशुपाल-वध का कहीं-कहीं प्रभाव परिलक्षित होता है। जैसे महाकाव्य के षष्ठ सर्ग मे सभी ऋतु कृष्ण की सेवा करने आते हैं, वैसे ही इस नाटक मे भी—

अथ बलेन हरिं परिसेवितुं निजभवोत्तम-पुष्पफलादिना
ऋतुगणः परमादरतः समं नयनगोचरतां व्रजति स्फुटम् ॥
मृदु पलाशि पलाशि गणः स्फुटत् सुभगपुष्पगपुष्पलिहां सताम्
स्वरचितो निचितोनु सुगीतकैः परभृतैरभृतैव परंवने ॥

इसमे माघ की पदावली और यमकालङ्कार-योजना स्पष्ट है।

द्वारकानाथ का नाटक अतिशय सजीव और दैनन्दिन जीवन की रसमरी प्रवृत्तियों से ओत-प्रोत है। कृत्रिमता का अभाव नाटक में रुचिरता ला देने मे सफल है। अनेक दृष्टियों से द्वारकानाथ का गोविन्दवल्लभ नाटक अभिनव प्रवृत्तियों से परिपूर्ण होने से तथा विशेष रूप से सांगीतिक होने के कारण आधुनिक युग के नाट्य साहित्य में उच्च स्थान पर विराजमान है।

अनुमिति-परिणय-नाटक

अनुमिति-परिणय नाटक के रचयिता नृसिंह मद्रास के निवासी थे।[1] कृष्णमाचार्य के अनुसार उनकी रचनायें १८वीं शती के प्रथम चरण की हैं। कवि उस समय समुद्र-तट पर बसी हुई कैरविणी पुरी में रहते थे। उनके पिता वेङ्कटकृष्ण भारद्वाज-गोत्रोत्पन्न थे। प्रस्तावना में सूत्रधार ने नृसिंह के विषय में बताया है कि वे नटों से अनुराग करते थे।

इस नाटक का अभिनय कृष्ण के चैत्रोत्सव में आये हुए विद्वानों के मनोरंजन के लिए हुआ। कैरविणीपुर नामक कोई नगर समुद्र-तट पर स्थित था। वहीं इसका रङ्गमण्डप था। नाटक की प्रस्तावना में नदी को रंगमंगल-देवता कहा गया है।

कथावस्तु

कथानायक न्यायरसिक की पहली पत्नी साक्षात्कारिणी को आकाशवाणी से ज्ञात होता है कि नायक का अनुमिति नामक नई नायिका से प्रणयारम्भ हो गया है। उसे नायिका का परिचय देवतानुग्रह से मिला था कि पार्वती की कृपा से तुम्हें योग्य पत्नी मिलेगी। न्यायरसिक का सखा तर्कसार साक्षात्कारिणी की सखी बुद्धि-लता से बातें करते हुए बताते हैं कि साक्षात्कारिणी नायक के नये प्रेम से खिन्न होकर कोपभवन में है। नायक उसे मनाने गया है। ऊपर से वह साक्षात्कारिणी को मनाता है, पर उसका हृदय अनुमिति में निमग्न है। नायक और नायिका में विवाद होता है। नायक कहता है—

प्रिये त्वद्दर्शनैकजीवातुहृदयस्य मम कथमन्ययानुरागः।

चपलहरिणनेत्रा मुंच वक्षोजभारा-
वनततनुलतां त्वामन्तरा चेतना मे।
घनदनगर-भूपादीर्घिकामाश्रयन्ती
श्रयति न परा राजहंसीव कुल्याम्॥१·२४

पूर्वनायिका ने कहा कि बातें बनाने से क्या होता है? मेरी आत्मा आपके दर्शन मात्र से क्लान्त होती है। तभी क्रोध करते हुए, हाथ में चिट्ठी लिये हुए साक्षात्कारिणी का पिता चार्वाक अपने शिष्यों के साथ न्यायरसिक से दो टूक बात करने के लिए आया। उसने तार्किक को खोटी खरी सुनाई। न्यायरसिक ने चार्वाक की प्रशंसा पर प्रशंसा की पर वह मानने वाला नहीं था। अपने पक्ष में न्यायरसिक को कहना पड़ा—

सति सतीत्वे कथमसत्यामभिलापः।

1. इस अप्रकाशित नाटक की अधूरी प्रति (पहला अङ्क और दूसरे का किंचित् भाग) मद्रास की ओरियण्टल मैनु० लाइब्रेरी में मिलती है।

चार्वाक माना नही। वह बलात् अपनी कन्या साक्षात्कारिणी को ले जाने लगा तो न्यायरसिक ने उसकी दाढी पकड कर प्रार्थना की कि यह प्रथम परिग्रह है। रहने दें। चार्वाक ने कहा कि तब ऐसा लगता है कि अब दूसरे परिग्रह की तैयारी है। अनुमान की कन्या अनुमिति के चक्कर मे आप है।

न्यायरसिक ने शिरोमणिकार से चार्वाक को परास्त कराने का आयोजन किया।

द्वितीय अङ्क के पूर्व विष्कम्भक मे चित्रचरित और नयनाभिराम के सवाद मे चोल देश का रमणीय वर्णन है। यथा,

निरीक्षणश्लेपविहारिणीनां स्वेदोदसंवर्धित-हारिणीनाम्।
करोति तापप्रशमं वधूनां कवेरकन्या सलिलैरतीव॥

फिर वे गौडदेश और अवन्ति की सुपमा का वर्णन प्रस्तुत करते हैं। गौडदेश की प्रशस्ति है—कृत-सुकृत-निचयैरेव सेवितव्यो गौडदेशः।

दक्षिण की प्रशस्ति है—श्रोत्रियाः खलु दाक्षिणात्याः

नाट्यशिल्प

सूत्रधार को सामाजिको की ओर से पत्रिका मिलती है कि इस प्रकार का नाटक करें,

वाणीनर्तितसत्कवीन्द्ररचना सन्धुक्षितैः सत्पदैः
क्रीडाब्धिश्च सुधारसेन विदुषामार्याणि चेतांसि च।
धीरोदात्तमहागुण-प्रणयिभिस्स्यूताः प्रयोज्येऽधुना
चेतोहारिणि रूपके तु कविता यस्यातिमात्रोद्धताः॥

तस्य मान्यार्थसन्दर्भनिर्भरस्य त्वया वयम्।
प्रयोगेणाप्यनुग्राह्याः पात्रितन्यायवस्तुनः॥

प्रस्तावना मे उपर्युक्त चिट्ठी की प्राप्ति के लिए सामाजिको की सूत्रधार से जो बातचीत होती है, वह नीचे लिखे आकाश-भाषित से सम्भव बनाई गई है—

सूत्रधारः—(आकाशे कर्णं दत्वा) किं ब्रूथ। अये भरतागमपारीण प्रतिगृह्यतामियं पत्रिकेति।

रगमच पर नायक नायिका का आलिगन करता है—

'सरसमन्यतो गन्तुं प्रवृत्तां ता झटिति कराभ्यामुत्संगे स्थापयित्वा करेण परामृशन्' इत्यादि

लम्बे-लम्बे विष्कम्भको मे कवि वर्णन तथा बहुविध चर्चायें सन्निवेशित करता है।

अध्याय ४४ 52862

कामकुमार-हरण

कामकुमार-हरण के रचयिता कविचन्द्र द्विज से असम प्रदेश समलंकृत हुआ था।[1] उनके आश्रयदाता महाराज शिवसिंह (१७१४–'४४ ई०) थे, जिनकी पत्नियाँ प्रमथेश्वरी और अम्बिका सुप्रसिद्ध थीं। कविचन्द्र ने १७३५ ई० में धर्मपुराण का अनुवाद किया था। प्रमथेश्वरी देवी १७२४ ई० से १७३१ ई० तक शिवसिंह के साथ शासिका रहीं। इन्हीं के शासन काल में कामकुमार का प्रणयन हुआ।

कामकुमार-हरण का अभिनय महाराज शिवसिंह के आदेशानुसार हुआ था। वे स्वयं इसका अभिनय देखने के लिए उपस्थित थे।

कथावस्तु

एक बार महाराज बाणासुर वनविहार के लिए नदी के तीर पर रंगस्थली बनाकर सपरिवार उषा को लेकर पहुँचे। वहीं रुद्र भी आने वाले थे। कुछ देर में वे पार्वती के साथ बैल पर बैठे हुए अपने गण के साथ उषा का मनोरथ पूरा करने आ पहुँचे। बाण ने उनकी स्तुति की। आने वाले मागध, सूत और वन्दियों ने शिव की स्तुति की। विहार के पश्चात् उन सबने शिव की स्तुति की। अप्सराओं ने शिव की स्तुति की। शिव ने कामिनीमोहनवेश धारण किया। चित्रलेखा नामक अप्सरा देवी पार्वती का रूप बना कर शिव को प्रसन्न करने लगी। शिव उससे प्रसन्न हो गये। उन्होंने कहा कि तुम्हारे रूपलावण्य को देखकर चित्त को परितुष्ट कर रहा हूं। पार्वती ने यह देखकर शिव के पार्षदों को आज्ञा दी कि अप्सराओं के साथ क्रीडा करें—

शृण्वन्तु पार्षदाः सर्वे वचनम्मे भवत्प्रियम्।
अप्सरोभिः सहानन्दं विहरन्तु यथेच्छया ॥१.४५

पार्षदों में कोई लंगड़ा, कोई काना था। सभी काममोहित होकर अप्सराओं से प्रार्थना करने लगे। अप्सराओं ने घृणापूर्वक उन्हें दूर से ही फटकारा। फिर तो उन्होंने दिव्य रूप धारण कर लिया। पार्षदों को सुन्दर देखकर अप्सरायें भागकर पार्वती के पास पहुँचीं।

उपर्युक्त दृश्य उषा ने देखा तो काम सन्तप्त हो गई। उसने कहा—

धन्याः सभर्तृका नार्यो रमन्ते स्वेच्छया मुदा।
अलब्धभर्तृकाः पापा वृथा जीवन्ति मद्विधाः ॥१.५३

मनोगत जानने वाली पार्वती ने उसे आशीर्वाद दिया कि तुम्हें शीघ्र पति का साहचर्य प्राप्त होगा। यथा,

---

१. कामकुमार-हरण नाटक का प्रकाशन रूपकत्रयम् में १९६२ ई० में असम-साहित्य-सभा, चन्द्रकान्त हैन्दिक्वि-भवन, जोरहट, आसाम से हो चुका है।

वैशाखे मासि शुक्लायां द्वादश्यां तु दिनक्षये
रमयिष्यति यस्त्वां वै स ते भर्त्ता भविष्यति ॥१.५५

उपर्युक्त तिथि में किसी दिव्य पुरुष ने सोई हुई उषा का आलिङ्गन किया। उसने चित्रलेखा से कहा—मैं तो परपुरुष-सम्पर्क से दूषित हूं। आप लोगों के साथ कैसे रहूं? अब तो मरना ही श्रेयस्कर है। वह सखियों के समझाने पर भी स्वप्नगत प्राणेश के वियोग में मानो मर सी गई।

चित्रलेखा सहायता करने के लिए आ गई। उसने बताया कि शिव की कृपा से सब कुछ मुझे विदित है। मैं सभी प्रमुख पुरुषों का चित्र बनाती हूँ। जिसे तुम स्वप्नगत प्रियतम बताओगी, उसे ला दूंगी। उसने बनाये चित्रों में से एक-दो-तीन पटों को दिखाये। तीसरे पट में उसे कृष्ण का पुत्र अनिरुद्ध अपना प्रियतम प्रतीत हुआ। वह उन्मत्त होकर चित्र-पुत्तलिका का आलिंगन करने के लिए दौड़ पड़ी। उसे हटा दिया गया तो वह तलवार से अपना सिर काटने को तैयार हो गई। चित्रलेखा ने उसे समझाया कि सप्ताह के भीतर ही तुम्हारे प्रियतम को लाकर तुमसे मिलाती हूँ। वह रथ पर चल पड़ी द्वारिका की ओर। मार्ग में नारद ने उससे कहा कि इस असम्भव कार्य से विरत हो जाओ। चित्रलेखा ने कहा कि मायाबल से ऐसा कर लूंगी। नारद ने कहा—इससे काम न चलेगा। तुमको निगूढ़-विद्या बताता हूँ। उसने सीखा और द्वारका जा पहुंची।

नारद कृष्ण से द्वारका में मिले और बताया कि आज रात में चोर अनिरुद्ध का अपहरण करेगा। इधर उषा रात में भ्रमरी बनकर अनिरुद्ध के कमरे में पहुंची। वहाँ अपने रूप में होकर अपने और अनिरुद्ध के ललाट पर तिलक लगाया। दोनों भ्रमरी-भ्रमर बन गये। उषा ने अपनी पीठ पर भ्रमर को रखा और रथ के पास लाई और उसे लेकर उषा के पास आ पहुंची। मार्ग में अनिरुद्ध ने उससे प्रेम करना चाहा तो उसे समझा-बुझा कर मनाया।

चतुर्थ अङ्क में उषा और अनिरुद्ध ने वाचा विवाह कर लिया। फिर चित्रलेखा के पौरोहित्य में उनका सुविधा से विवाहसंस्कार हो गया। आठ दिन तक उनकी दाम्पत्य-क्रीडा विलसित हुई। एक दिन कुब्जा दासी से यह व्यभिचार नहीं देखा गया। उसने अनिरुद्ध को खोटीखरी सुनाई और उन्हें बाणासुर के पास ले जाने को उद्यत हुई। उसने कहा

पिपीलिका चुम्बति चन्द्रबिम्बम्।

उसने गान्धर्व विवाह की बात राजामाता से कही। राजामाता ने उससे कहा कि राजा से न कहो यह सब। वह मानी नहीं और राजा से जाकर सब कुछ कह दिया। बाण ने उसकी नाक तो कटवा ली, पर अपने दस पुत्रों को भेजा कि जाकर देखो कि क्या कुब्जा सत्य कह रही है। उनको अनिरुद्ध ने अपने हाथ से उखाड़े हुए एक खम्भे को घुमाकर विघमित कर दिया। वे सभी मारे गये। फिर तो ६० पुत्रों को आगे करके बाण अनिरुद्ध से लड़ने आया। उसे देखकर अनिरुद्ध ने कहा—

हे हे महाराज, अहं गोविन्दस्य नप्ता, कामदेवस्य पुत्रः। तव दुहित्रा परमप्रयत्नेन आनीतः। अहं तां विवाहितवान्। तस्य च दिनाष्टकं यातम्। तव ये दशपुत्रा आगता अतीव मूढा मां बहु तिरश्चक्रुः। तथापि मया क्षान्ताः। 'केशेनाक्रष्टुमिच्छन्ति' इति दृष्ट्वा क्रोधात मया हताः। एष दोषः क्षम्यताम्, क्षम्यताम्।

वाण माना नही। वाण की सेना ने उसे घेर लिया। ६० पुत्रों ने उसके ऊपर बाणवर्षा की। उसने लाखों की सेना को मार गिराया। उसके एकमात्र शस्त्र-स्तम्भ को वाणपुत्र कुम्भवीर ने वाण से काट डाला। तब उसने सूर्य की प्रार्थना की कि सहायता करो। सूर्य ने आकाशद्वार से उसे उत्तम धनुष-वाण दिया। वाण ने उसे नागपाश में बांध दिया। सूर्य ने उसके शरीर को अभेद्य कवच से पिनद्ध कर दिया। उसे मारने के लिए बाण ने उसको दस हाथियों से कुचलवाया। अगाध जल में फेंकवाया। वह डूबा नही।

मन्त्री कुम्भाण्ड ने वाण से कहा कि इस वीर की अद्भुत महिमा है। इसे वन्दीगृह में डाल दें। यह कौन है—यह ज्ञात करके इसकी रक्षा करें या मार डालें। नागपाश से बँधे अनिरुद्ध को वाण की आज्ञानुसार रक्षक घेर कर खड़े हो गये। अनिरुद्ध ने अपने को नागपाश से छुड़ाने के लिए दुर्गा देवी की प्रार्थना की। तब तो सिंहवाहिनी दुर्गा प्रकट हुईं और बोली—मैं नागपाश को शिथिल कर देती हूँ। शीघ्र ही कृष्ण तुमको मुक्त करेंगे।

उषा ने अनिरुद्ध के लिए करुण विलाप किया। तलवार से आत्महत्या करने के लिए उद्यत हुई। उसे चित्रलेखा ने यह कहकर रोका कि कृष्ण अनिरुद्ध को तीन-चार दिन में मुक्त कर लेंगे।

स्वयं नारद ने अनिरुद्ध को आश्वस्त करके द्वारका में कृष्ण को अनिरुद्ध का वन्दी होना वताया। कृष्ण ने तुरन्त गरुड को बुलाकर उसे अर्घ प्रदान किया और युद्ध में उसकी सहायता ली। शोणितपुर के चारों ओर अग्निवृत्त रक्षा के लिए था। उसे गरुड ने बुझाने का प्रयास किया। कृष्ण ने उनके नेता अंगिरा को बाण से मार कर मूर्छित कर दिया। अग्नि भाग चले। कृष्ण के शोणितपुर में प्रवेश करने पर शिव उनसे लड़ने आये युद्ध देखने के लिए देवगण आ पहुँचा। शिव का पूरा परिवार युद्ध में आ जुटा। शंकर को कृष्ण ने पछाड़ दिया।

शंकर ने देखा कि कृष्ण वाण को मार डालेंगे। उन्होंने पार्वती से कहा कि उसे बचाओ। पार्वती ने उसकी रक्षा के लिए कोटवी भेजा कि जाकर कृष्ण को युद्ध से विरत करो। अन्त मे युद्ध बन्द न होने पर कृष्ण और शिव का युद्ध हुआ—

हरिहरयुद्धमवर्तत घोरम्। सकलसुरासुरधैर्यविचोरम्।

ब्रह्माने बीच में आकर उन दोनों का युद्ध बन्द करा दिया। अनिरुद्ध के कहने से चित्रलेखा गद को विवाह मे द दी गई। मगलगीत गाया गया।

शिल्प

आसाम की अङ्किया नाट परम्परा में कामकुमार-हरण अनेक दृष्टियों से आदर्श माना जा सकता है। इसमें नाट्य-निर्देश का नाम कथा मिलता है। इसका वक्ता सूत्रधार है। सर्वप्रथम कथा है—

तमवलोक्य मृदङ्गं वादयित्वा परिभ्रम्य हरिध्वनिं विधाय प्रणम्य तिष्ठति मार्दङ्गिके सूत्रधारो वदति। इस कथा का वक्ता कोई पुरुष सम्भवतः पर्दे के पीछे या नेपथ्य में रहता था। सूत्रधार आद्यन्त रंगपीठ पर विराजमान रह कर प्रत्येक वक्ता का नाम लेकर बताता था कि संवाद में अब कौन बोल रहा है और साथ ही उस पात्र के अभिनयात्मक भावों को भी बताता था। यथा,

सूत्रधारः—तच्छ्रुत्वा उषा शोकं परिहृत्य सानन्दं ब्रूतेस्म।
उषा—भो भो प्रिय सखि त्वां विना मत्प्राणप्रिया कापि न विद्यते।

सूत्रधार गाता भी था। पूरे नाटक में प्रत्येक ललित दृश्य की भूमिका उसके गीत से मिल ही जाती थी, चाहे प्राकृतिक दृश्य हो या किसी पुरुष की उदात्तता हो। उसने आरम्भ में बाणासुर का वर्णन राग और ताल पूर्वक किया है, फिर पज्झटिका में क्रीडास्थली का वर्णन किया है। यथा,

श्रीहरगौरीक्रीडास्थानम्। पश्य सभासत् केलिनिदानम्॥११
तरुगण राजति गंगातीरम्। मन्द सुशीतलमलयसमीरम्॥११

कहीं-कहीं सूत्रधार बताता है कि रंगपीठ पर कौन पात्र क्या कर रहे हैं। यथा,

सूत्रधारः—अतः परं गन्धर्वकिन्नरचारणाः देवकन्या अप्सरसश्च स्व-स्ववाहनमारुह्य रंगस्थली प्रविशन्ति स्म। एवं प्रविश्य ते सर्वे पुष्पलाजाक्षत-क्षेपादिना बहुविहारं कृतवन्तः।

छायातत्त्व

अनिरुद्ध के चित्र का आलिंगन, उसे दूर हटाने पर आत्महत्या करने के लिए तलवार उठाना आदि दृश्य छायातत्त्वानुसारी हैं। पंचम अङ्क में अग्नि कृष्ण से युद्ध करते हैं। अग्नि ज्वलनशील हैं। ऐसे पात्र का प्रकल्पन छायातत्त्व का मनोरम प्रयोग है। षष्ठ अंक में बाण के मयूर और कृष्ण के गरुड का युद्ध छाया-तत्त्वानुसारी है।

अङ्क में अनेक दृश्यस्थली

तृतीय अङ्क में शोणितपुर में उषा का घर, निकटस्थ दैवज्ञ का घर, फिर द्वारकापुरी और फिर शोणितपुर में उषा का प्रासाद दृश्य हैं। एक ही अंक में परस्पर दूरस्थ अनेक स्थलों के दृश्यों का समावेश अटपटा सा है। इसके लिए दृश्य-परिवर्तन का विधान होना चाहिए।

नग्नता

संस्कृत रंगपीठ पर नग्ननृत्य कालिदास ने मालविकाग्निमित्र में समाविष्ट किया

था। उनके पश्चात् नग्नता प्रायः विरल ही रही है। चन्द्रद्विज ने इस नाटक में कोटवी को विवस्त्र बनाकर रंगपीठ पर ला दिया है। यथा,

सूत्रधारः—एवमुक्त्वा पवनाधिकवेगा श्रीकृष्णाग्रे गत्वा विवस्त्रा तस्थौ।

भाषा

कामकुमार-हरण मे संवाद संस्कृत मे हैं। कोई पात्र प्राकृत नही बोलता। गीत संस्कृत मे हैं या ऐसी असमी भाषा मे है, जिसका संस्कृत से ६० प्रतिशत साम्य है। यथा

परमकृपानिधि विहित सुरत-विधि सुन्दर नटवरवेश।
निजपदसेवक देवकपालक जटिल सुपिङ्गलकेश ॥१.२६

नाटकीय असमी भाषा में भी उर्दू, फारसी और अरबी के शब्दों का सर्वथा अभाव है। वर्णन के कतिपय गीत विशुद्ध संस्कृत में हैं। असमी गीत है—

हा प्राणेश्वर सर्वांगसुन्दर नाहि पटन्तर यदुवीरवर।
विधियो लिखिले तोमार हेन विलाय।
अति शुभनय मदनतनय गहन आशय सर्वगुणालय
तयु दुख देखि किसक प्राणनेयाय ॥५.७

लोकरंजकता

गाली-गलौज और परिहास में लोक की रुचि जानते हुए कवि ने एतन्मात्र प्रयोजन से रुचिकर संवादों की झड़ी लगाई है। उषा और त्रिभङ्गी नामक उसकी सखी दैवज्ञ से बातचीत करती हैं।

त्रिभङ्गी—अरे अरे लम्पट, स्त्रीपराधीन जगद्भण्डक तव सर्वदा स्त्रीसंग एव रतिः। इत्यादि

उषा—अये जगद् भण्डक, एतद्वार्ता यदि अन्यैः श्रूयते तर्हि अवश्यं नासिकाच्छेदनं करिष्यामि।

उषा अपनी दूती चित्रलेखा से कहती है—

किं वा पूर्वं स्वयमुपभुज्य पश्चाद् मयि निवेदयिष्यसि।

अध्याय ४५

लक्ष्मी-देवनारायणीय

लक्ष्मी-देवनारायणीय नाटक के रचयिता श्रीधर अम्पलप्पुल के राजा देवनारायण के द्वारा सम्मानित कवि थे।[1] इन्हीं को नायक बनाकर कवि ने इस नाटक का प्रणयन किया है। स्थापना मे सूत्रधार ने श्रीधर की एक राजप्रशस्ति इस प्रकार उद्धृत की है—

> धीमन् श्रीदेवनारायण धरणिपते त्वद्गुणाम्भोधिवीची-
> केलीलोलात्मना मज्जितजडमनसाप्येवमेतन्मया हि।
> कष्टं दुष्टं निकृष्टं गतरसविषयं नाटकं टीकमानं
> युष्मत्कारुण्यमाध्वी-रसपरिमिलितं मंगलं बोभवीतु॥

इस श्लोक से प्रतीत होता है कि श्रीधर स्वभावतः विनयी थे। इसी प्रसङ्ग में सूत्रधार के द्वारा कवि का एक विशेषण बताया गया है—'करुणाकूपारकूलङ्कष-विलोचन-देवनारायणमोदजलधिवीचीकण-मिलितवपुः' इत्यादि। इस नाटक की रचना १८वी शती के पूर्वार्ध में हुई।

लक्ष्मीदेवनारायणीय की रचना तथा अभिनय कथानायक देवनारायण के निर्देशानुसार हुआ। देवनारायण ने विचित्र-यात्रा के उत्सव का आयोजन कराया था। उसमें देश-विदेश के विद्वान् उपस्थित हुए थे। सूत्रधार के अनुसार उन्हीं विद्वानों ने इसके अभिनय के लिए कहा था।

कथावस्तु

पाँच अङ्कों के इस नाटक में यथानाम लक्ष्मी का देवनारायण से विवाह वर्णित है।[2] लक्ष्मी के पिता दिनराज और माता छाया हैं, जिनका आवास नन्दनपुर में था। नायक-नायिका की प्रतिमा-मात्र देखकर मदन-सन्तप्त है। वह वारिभद्रा नदी के तट पर मनोरंजन करने के लिए विचरण कर रहा है और निकट के वासुदेव मन्दिर में जा पहुँचता है। यहीं पर नायक नायिका का चित्र देखता है और नायिका नायक का। नायक विदूषक के साथ एक ओर बैठकर नायिका और उनकी सखी की बातें सुनाता है। नायिका उस फलक को ढूंढती है, जिस पर नायक का चित्र बना था। विदूषक उसे नायिका की ओर फेंक देता है।

नायिका नायक के पास आ जाती है। तभी परिजनों के आह्वान पर उसे दूर चला जाना पड़ता है। राजा पुनः वियुक्त होकर शोक-मग्न हो जाता है।

लक्ष्मी ने मदनलेख नायक के पास बालनन्दा नामक सखी से भेजा। उन दोनों को परस्पर मिलने का अवसर देने की योजना थी। राजा ने बताया कि

---

१. अम्पलप्पुल त्रावनकोर मे स्थित है।
२. इस अप्रकाशित नाटक की दो प्रतियाँ त्रिवेन्द्रम् मे केरल-विश्वविद्यालयमें हैं।

हिमालय पर गंगा के प्रवाह का मदनन्दन प्रदेश है। वहीं नायिका को लाओ। नायक ने उस प्रदेश में रहने वाले राक्षस-राज को भगा दिया था। राक्षसराज ने प्रतिज्ञा की कि मैं भी आपकी पत्नी का हरण करूँगा।

नायिका लक्ष्मी नायक से मिलने के लिए आ गई। उसकी प्रेम-प्रवण वाणी से नायक प्रमोद-निर्भर हो गया। नायिका नायक के लिए सन्तप्त हो रही है। वह सखी की दी हुई नायक की हारलता का आलिंगन करके सुख पाती है। नायिका के मदन-ज्वर को नायक स्वयं उसके समीपस्थ होकर दूर करता है। उसके आलिंगन से नायिका सचेत हो जाती है।

प्रेमपरवश दम्पती को राक्षस ने अपने को वनगज बनाकर क्षुभित कर दिया। उसके आक्रमण से मुनियों की तपोभूमि विसंष्ठुल हो गई। इधर नायक उसे मारने गया, उधर राक्षस ने आकर नायिका का अपहरण कर लिया। राजा ने उसका पीछा किया तो वह नायिका को छोड़कर छिप गया। कुछ समय के पश्चात् अपनी सेना-सहित उसने नायक से घोर युद्ध किया और मारा गया। नायिका नन्दनपुर में चली गई। नायक उसके वियोग में उन्मत्त होकर विक्रमोर्वशीय के नायक की भाँति अमानवों से पूछताछ करता है। वह गजराज से पूछता है—

यदि सा पृथुलारोहा नायाता सरणीं दृशोः।
कथं वा गतिरेषा ते मन्थरा सुलभा भवेत् ॥४·१६

वह मयूर से पूछता है—

वियोग-विधुरं कापि बिभ्रती वदनाम्बुजम्।
कानने भवतः केकिन् किमयात् पद्धतिं दृशोः ॥४·२०

प्रेयसी के वियोग मे नायक नदी मे डूबकर प्राणान्त करना चाहता है। तभी उसे नेपथ्य से वासुदेव की वाणी सुनाई पड़ती है कि आपको प्रेयसी के साहचर्य का सुख शीघ्र मिलेगा। मैंने उसकी रक्षा कर ली है। मैं उसे पिता के घर से लाता हूँ।

पंचम अंक में राक्षस नायिका के पिता से युद्ध कर रहे हैं। इधर नायिका लक्ष्मी के नदी मे गिराने का समाचार फैला। उसे वासुदेव ने बचा लिया।[1] उसे लेकर वह नन्दनपुर आये, जहाँ नायक पहले से ही उपस्थित था। कन्या के पिता ने कहा—

मायागोपकिशोरो व्रजति दृशोः पद्धतिं कृपालुरयम्।

वासुदेव ने लक्ष्मी से कहा कि तुम अपने माता-पिता को समाश्वस्त करो। अन्त में लक्ष्मी देवनारायण से विवाहित हुई। नायक ने कन्या के पिता दिनराज से कहा—

वैवस्वताननगता दुहिता त्वदीया सेयं विभो दिनमणे यदुसंगता माम्।
नागन्ययच्च युवयोर्वपुरार्ति-भिन्नमेतत्समं कपटगोपतनोः प्रसादः ॥५·२५

'लक्ष्मी-देवनारायणीय' की कथा पर रूपगोस्वामी के नाटकों की कथाओं का प्रचुर प्रभाव परिलक्षित होता है।

---

१. नायक ने नायिका के पिता से पंचम अंक मे कहा है—

मुकुन्देन रक्षिता तनया तव।

नाट्यशिल्प

भास के नाटको की भाँति इस नाटक मे प्रस्तावना के स्थान पर स्थापना है। नाटक के आरम्भ मे भास के आदर्श पर नान्दीपाठ कोई अन्य करता है और इसके बाद सूत्रधार रगमच पर आता है। नाटक का आरम्भ 'ततः प्रविशति सूत्रधारः' से स्पष्ट है कि सूत्रधार नान्दी-पाठ नही करता था, अन्यथा नान्दी के बाद उसके रंगमच पर उपस्थित होने का प्रश्न ही नही उठता।[1]

एकोक्ति

नाटक का आरम्भ नायक की एकोक्ति से होता है। वह प्रतिमा देखकर उसके विरह की अनुभूति का वर्णन करता है। पुनः वह नायिका की वारिमद्रा-तटीय वन-राजि और निकटस्थ वासुदेव के मन्दिर मे कृष्ण का वर्णन करता है और आगे नायिका का वर्णन करता है। चतुर्थ अङ्क मे नायक अकेले ही नायिका के प्रति भाव-निमग्न होकर विलाप करता है।

रंगमच पर पात्रो की कार्य-बहुलता इस नाटक की विशेषता है। जहाँ अन्य नाटको मे पात्र कोरी बातचीत करते हैं, वहाँ इसमे पात्रो की पूरी हलचल कार्य-परक है।

इस नाटक की हस्तलिखित प्रति मे विष्कम्भक आदि को अंक का भाग नहीं बनाया गया है। विष्कम्भक के अन्त मे इति विष्कम्भकः तथा अङ्क के अन्त होने पर इति अक लिखा गया है।

वर्णना

प्राकृतिक वर्णनो की प्रचुरता, विशेषतः साङ्गीतिक स्वर-लहरी मे, विशेष रोचक है। पर्वतभूमि, वर्षाऋतु और मयूरपति—तीनो की सागीतिक गति से परिप्लुत श्लोक है—

श्रोत्रानन्द निनदमतिगम्भीरमम्भोधराणां
शृण्वन्नन्तम्स्फुरित-कुतुकं विद्युदुद्योदितानाम्।
प्रत्यासारैर्विशदममलं प्रस्तरं विस्तृतोद्य-
द्बर्हापीडशिशखिपतिरसौ लास्यलोलस्समेति ॥४·२१

और शुको की चारिमा है—

विराजन्ते जम्बूविटपि-पटली-कोटर-गृहे-
ष्वये प्रत्यग्रोद्यत्किसलयरुचिरतेनवदना।
प्रियावक्त्रानीतप्रतिनवफलास्वादमुदिता
गलन्माध्वीलापा दघति मुदमते शुकगणाः ॥४२१

---

1. यह नाट्यशास्त्र ५.१०८ के विरुद्ध है, जिसके अनुसार नान्दीपाठ सूत्रधार को करना चाहिए। सम्भव है नान्दी-पाठ यवनिका के भीतर से होता हो या नेपथ्य मे होता हो। तब सूत्रधार नान्दीपाठ करके रंगमंच पर मले आता हो।

अध्याय ४६

चन्द्रकला-कल्याण

चन्द्रकला-कल्याण नाटक नञ्जराज यशोभूषण के षष्ठ विलास में समाविष्ट है।[1] इसके रचयिता नृसिंह कवि मैसूर के सनगर नामधारी ब्राह्मण कुल के थे। नृसिंह के पिता सुधीमणि और बड़े भाई सुब्रह्मण्य थे। पिता से ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा प्राप्त करके नृसिंह ने योगानन्द नामक संन्यासी से पराविद्या का अध्ययन किया। इनके एक अन्य गुरु पेरुमल थे।

नृसिंह के आश्रयदाता नञ्जराज (१७३९-१७५९ ई०) मैसूर के राजा कृष्णराज द्वितीय (१७३४-१७६६ ई०) के श्वसुर तथा सर्वाधिकारी थे। उन्होंने नञ्जराज यशोभूषण के अतिरिक्त शिवदयासहस्र काव्य का प्रणयन किया। इनकी अन्य रचनाओं का अभी तक परिचय नहीं प्राप्त हुआ है।

अठारहवी शती मे प्रतापरुद्र-यशोभूषण की परम्परा में अनेक ग्रन्थ रचे गये। नञ्जराज यशोभूषण में कवि ने आलङ्कारिक लक्षणों के उदाहरण नञ्जराज के चरित-विषयक स्वरचित पद्यों के द्वारा दिये हैं। इसकी रचना १७४० ई० के लगभग हुई होगी।

नञ्जराज विद्वानों के अतिशय प्रेमी थे। उनकी सभा के काशीपति ने इन्हें नवभोजराज की उपाधि दी थी। नृसिंह की कविता से प्रभावित लोग इन्हें अभिनव कालिदास कहते थे। नञ्जराज स्वयं उच्चकोटि के साहित्यकार थे। उन्होंने संगीत-गंगाधर, कर्णाट भाषा में हालास्य-चरित और शिवभक्ति-विलास आदि अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया था।

कथावस्तु

ककुदगिरि पर सेनापति वीरसेन के साथ मृगया करते हुए नञ्जराज ने एक रमणी-रत्न को देखा, जहाँ निकट ही नूतनपुर का सरोवर तथा भद्रशैल थे। उसे देखते ही उन्हें उसके प्रति उदग्र अभिनिवेश उत्पन्न हुआ। नेपथ्य की वाणी से उन्हें समाश्वासन प्राप्त हुआ। विदूषक ने उसे मिलाने का वचन दिया। उसके निर्देशानुसार नायक मरकत-सरोवर के समीप मनोरंजन करने के लिए चला गया। उसने विदूषक को बताया कि नायिका चन्द्रकला ने मरकत सरोवर में स्नान करके देवी की उपासना करते समय वीणा बजाते हुए मधुर राग में गीत गाया। वहीं नायिका की भी दृष्टि नायक पर पड़ी और वह उसी की बन गई।

नायक नायिका से मिलने के लिए इतना व्याकुल था कि उसके लिए वह एक रात तक प्रतीक्षा करने में असमर्थ था। तब तो विदूषक दर्शिका महिला का रूप बनाकर चन्द्रकला के अन्तःपुर में पहुँचा। उसे आने-जाने में चन्द्रकला की चेटियाँ

१. नञ्जराज यशोभूषण का प्रकाशन गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज, संख्या ४७ में बड़ोदा से हो चुका है। इसकी प्रति जबलपुर-विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में है। चन्द्रकला-कल्याण का प्रथम अभिनय गरलपुरीश्वर के वसन्तोत्सव के अवसर पर सम्पन्न हुआ था।

विचक्षणा तथा मंजरी ने सहायता दी थी। विदूषक ने योजना बनाई कि चेटियाँ चन्द्रकला को दोहद के बहाने नवमालिका-गृह में पहुँचायें, जहाँ नायक उसे मिलेगा।

नायक काम का रूप धारण करके नायिका से क्रीडा-स्थली में निश्चल होकर बैठ गया। सखियाँ नायिका को चन्द्रोदय तक समय बिताने के लिए कन्दर्प की पूजा करने के लिए ले जाती हैं। सखियों ने कन्दर्प-रूपधारी नायक की पूजा नायिका से करा दी। नायिका को सन्देह होता है कि कहीं यह नायक ही तो नहीं है। दोनों को सात्त्विक भाव उत्पन्न होते हैं। प्रतिमा में स्वेद-बिन्दु देखकर नायिका सखियों से पूछती है कि क्या प्रस्तर-प्रतिमा में स्वेद होता है? सखियाँ कहती हैं कि आपके सौन्दर्य के प्रभाव से पत्थर भी पसीज गया है। चन्द्रकला ने अपने मनोरथ कन्दर्प बने राजा के सामने कहे। उसने प्रमादवश कुछ पुष्प गिरा दिये तो सखियों ने कहा कि कन्दर्प ने आपकी इच्छा-पूर्ति का संकेत दिया है।

दोहद का समय चन्द्रोदय होने पर आया। नायिका ने आलिंगन करके कुरबक को पुष्पित किया। फिर वहीं उसे नायक से मिलन-सुख प्राप्त हुआ। विदूषक के वहाँ आने से तथा कंचुकी द्वारा नायिका के बुला लेने पर दोनों इधर-उधर चलते बने। नायिका को साथियों ने बता दिया कि जिसे आप कन्दर्प की मूर्ति समझती हैं, वह आपका प्रियतम है।

कुन्तल-देश के राजा रत्नाकर ने भगवती अम्बिका के स्वप्न-सन्देश के अनुसार अपनी कन्या चन्द्रकला का स्वयंवर आयोजित किया, जिसमें नायक को सम्मिलित होने का आमन्त्रण मिला। उसमें नायक नञ्जराज को जयमाल से पुरस्कृत किया गया। दूसरे दिन धूमधाम से दोनों का विवाह-संस्कार सम्पन्न हुआ।

शिल्प

तृतीय अंक में विदूषक चूडाकर्ण का दर्शिका महिला का रूप धारण करके चन्द्रकला को नायक की ओर विशेष अभिमुख करने का कार्य छायातत्त्वानुसारी है। तृतीय अंक में नायक की कामदेव की प्रतिमा-रूप में प्रतिष्ठित होकर नायिका-सर्वांग-प्राप्ति की योजना नए प्रकार का छाया-तत्त्वानुसन्धान कवि की विशेष उद्भावना का परिचायक है।

समीक्षा

चन्द्रकला नाटक में उस युग के अनुरूप चन्द्रोदय, प्रमद वन, क्रीडाशैल, सरस्व सरोवर, सूर्योदय, सन्ध्या आदि के वर्णन समाविष्ट हैं। कवि की वर्णना चारुतर है। यथा सूर्योदय है—

> वेगेन प्रतिसद्म निष्कुटमहीनिद्रायिताः पद्मिनी-
> स्त्वत्पाणिग्रहणोत्सवं कथयितुं नूनं करैर्बोधयन्।
> मौलस्पंकजबन्धनालयगतानिन्दीवरान् मोचय-
> न्नुद्यद्रिमपल्लवच्छविरसाम्युज्जिहीते रविः॥

नाटक का नायक ऐतिहासिक है। नाटक में उल्लिखित कतिपय घटनायें ऐतिहासिक हैं।

अध्याय ४७

चन्द्राभिषेक नाटक

चन्द्राभिषेक नाटक के रचयिता बाणेश्वर विद्यालङ्कार बङ्गाल के १८ वीं शती के सर्वोच्च संस्कृत साहित्यकारों में से हैं। बाणेश्वर साहित्य-विद्या के साथ ही धर्मशास्त्र-कोविद (Jurist) थे। इनका जन्म हुगली जनपद की गुप्तपल्ली में हुआ था। इनके पूर्वजों में शोभाकर सुप्रथित हैं। बाणेश्वर के सूत्रधार ने शोभाकर का परिचय इस प्रकार दिया है—

शोभाकरो द्विजवरः प्रथितः पृथिव्यां विद्यानवद्यकवितादिगुणाम्बुराशिः।
यश्चन्द्रशेखरगिरौ कृतपुण्यपुञ्जः सिद्धिं जगाम परमां मनुसत्तमस्य॥

प्रस्तावना ३६

बाणेश्वर के दादा विष्णु सिद्धार्थ भट्टाचार्य उच्चकोटि के कवि थे और उनके पिता रामदेव तर्कवागीश नैयायिक थे। कहा जाता है कि उन्हें पूरा महाभारत कण्ठस्थ था। बाणेश्वर के भाई रामकान्त के पुत्र बलराम भट्टाचार्य बनारस के महाराज महीपाल नारायण सिंह के दीवान थे।

बाणेश्वर की शिक्षा उनके पिता के श्रीचरणों में हुई। कवि की विद्वत्ता की ख्याति जब फैली, तो नदिया के महाराज कृष्णचन्द्र ने उनको अपना सभाकवि बनाया।[1] इसके पश्चात् वे अलिवर्दी खाँ के पास मुर्शिदाबाद में पहुँचे। मुर्शिदाबाद से वे वर्द्धवान के राजा चित्रसेन के पास पहुँचे। वहाँ १७४४ ई० तक वे चित्रसेन के समाश्रय में रहे। यहीं पर उन्होंने चन्द्राभिषेक नाटक और चित्रचम्पू की रचना की।[2] चित्रसेन की मृत्यु १७४४ ई० में हुई और फिर कवि को नदिया के महाराज कृष्णचन्द्र का आश्रय लेना पड़ा। कुछ वर्षों के पश्चात् बाणेश्वर कलकत्ते के शोभाबाजार के महाराज नवकृष्णदेव के आश्रय में आ बसे।

१. अलीवर्दिनवाबमप्यथ नवद्वीपे चरन्ताश्रितं
तत्पश्चान्नवकृष्णभूपतिममुं रे चित्त वित्ताशया।
सर्वत्रैव नवेति शब्दघटितं त्वञ्चेत् कमालम्बसे
तद्देवं परमार्थदं नवघनश्यामं कथं मुञ्चसि॥

२. इस चम्पू में चित्रसेन की उपलब्धियों का वर्णन है, और मराठों के बंगाल पर आक्रमण का आख्यान और भारत के तीर्थों का विशद विवरण है। इसकी रचना १७४१ ई० में हुई। भास्कर पन्त ने १७४१ ई० में बंगाल और विहार पर आक्रमण किया था। १७४४ ई० में चित्रसेन की मृत्यु हो गई थी। ऐसी स्थिति में ग्रन्थ रचना का काल इसमें दिये हुए कालाङ्कतर्कोपधि में काल को ३ मान कर १७४१ ई० रखना समीचीन है।

कवि ने १७५५ ई० में वाराणसी की तीर्थयात्रा की। वहीं उन्होंने काशीशतक का प्रणयन किया। इस शतक की रचना उन्होंने पाँच घण्टे में पूरी कर दी थी।[1]

अंग्रेजी शासकों के द्वारा हिन्दुओं के विवादों का निर्णय करने में भारतीय धर्मशास्त्रों की सहायता ली जाती थी। इसके लिए वैज्ञानिक विधि से सुसम्पादित विधियों की आवश्यकता थी। यह काम वारेन हेस्टिंग्स के आदेशानुसार वाणेश्वर ने अन्य दस विद्वानों के साथ सम्पन्न किया। इस संग्रह-ग्रन्थ का नाम विवादार्णव-सेतु है। इसके पहले फारसी भाषा में और फिर अंगरेजी में इसका अनुवाद हुआ। यह ग्रन्थ २१ खण्डों में है और इसमें १६३२ पद्य हैं।

कलकत्ते में रहते हुए वाणेश्वर ने कृपाराम घोष के निवेदन करने पर रहस्यामृत नामक महाकाव्य की रचना २० सर्गों में कुमारसम्भव के आदर्श पर की। इसमें पार्वती की तपस्या के पश्चात् शिव से विवाह होने पर दम्पती के वाराणसी में आ बसने का कथानक है। वाणेश्वर की अन्य ज्ञात रचनायें सौ श्लोकों का शिवशतक, हनुमत्स्तोत्र तथा तारास्तोत्र हैं।

चन्द्राभिषेक नाटक की रचना १७४० ई० के लगभग हुई। इसके प्रणयन के लिए चित्रसेन ने स्वयं आग्रह किया था। इसका प्रथम अभिनय चित्रसेन के मन्त्री के आदेशानुसार राजा के कुसुमाकरोद्यान में वसन्त ऋतु में हुआ था। राजा प्रेक्षकों में से एक था। सूत्रधार के शब्दों में—

> तद्वंशाम्बुधिसम्भवेन कृतिना यन्निर्मितं नाटकं।
> राज्ञां मौलिमणेर्महागुणनिधेरस्याज्ञया सम्प्रति ॥
> तत्तस्यैव निदेशतोऽद्य पुरतश्चन्द्राभिषेकं मया।
> शक्त्या नाटयितव्यमत्रभवतां याचे प्रसादं परम् ॥

कथावस्तु

चित्रकूट में मन्दाकिनी के समीपवर्ती प्रदेश में योगीन्द्र सम्पन्न समाधि के शिष्य दान्त और विनीत गुरु की अनुमति से अपने को पवित्र करने के लिए सभी तीर्थों में गये और जल लेकर अपने गुरु के पास आये। गुरु के पूछने पर उन्होंने बताया कि हमने राजा नन्द को अप्रतिम शक्तिशाली और तेजस्वी पाया है। योगीन्द्र ने नन्दवंश की प्रशंसा करते हुए कहा—

१. काशीशतक में कवि ने लिखा है—

> शाके द्वीपवियागक्षितिपरिगणिते मार्गशीर्षस्य मासः
> सौरस्यैकोनविंशेऽह्नि बुधदिवसे सार्धयामान्तरा।
> सम्पूर्णं श्रीलकाशीशतकमतितरां कातरस्तद्वियोगाद्
> भक्त्या यत्नेन तेने द्विजवरतनयः श्रीलवाणेश्वराह्यः ॥

कवि को आशु कविता की रचना में अप्रतिम दक्षता प्राप्त थी। वे समस्या-पूर्ति में [illegible] थे।

धन्यो वैन्य इति प्रसिद्धचरितो येनेयमुर्वी पुरा।
चापोग्रेण समीकृता क्षितिभृता क्षिप्रा दिगन्तं गता॥
मान्धातापि च भूर्बभूव सकला यद् यज्ञयूपाङ्किता।
द्वीपानम्बुधिभिः प्रियव्रतनृपश्चक्रे रथाङ्गैरपि॥१४७

उसी कुल में कृष्ण और राम हुए।

गुरु को नन्द के विषय में जिज्ञासा हुई तो शिष्यों ने बताया कि उन्होंने राजसूय के लिए सारी पृथ्वी से रजत तथा स्वर्ण का क्रयकर लिया है। राजाओं को जीतकर उनसे उपहार-रूप में सारा स्वर्ण तथा रजत ले लिया।

गुरु ने शिष्यों को पूछने पर बताया कि नन्द नव हैं, जो नवग्रह की भाँति सुशोभित हैं। इनका मन्त्री शाकटार दास महामनीषी है।[1]

आचार्य के द्वारा समीहित व्रत पूरा कर लेने पर दोनों शिष्य सभी अभीष्ट विद्याओं में पारंगत बना दिये गये। उन्होंने गुरु से आग्रह पूर्वक कहा कि गुरु दक्षिणा माँगें। गुरु ने १४ कोटि स्वर्ण मुद्राओं की दक्षिणा माँगी। उसे अन्यत्र प्राप्त करना असम्भव देखकर उन्होंने विन्ध्यवासिनी देवी की शरण में जाकर एकान्त व्रतोपवास किया। देवी ने प्रसन्न होकर उन्हें स्वप्न में बताया कि तुम लोग अपने गुरु के पास चले जाओ। वे ही तुम्हें दक्षिणा-प्राप्ति का उपाय बतायेंगे। गुरु योगीन्द्र समाधि सम्पन्न को भी स्वप्न में ज्ञात हो गया था कि शिष्य किस प्रकार विन्ध्यवासिनी देवी को तप से प्रसन्न कर रहे हैं। कुछ देर पश्चात् शिष्यों को आया हुआ गुरु ने देखा कि वे तप से क्षीणकाय केवल श्वासमात्र से जीवित हैं। गुरु ने उनका स्वागत किया और कुछ समय के पश्चात् उन्हें दक्षिणा-प्राप्ति का उपाय बताया कि आज से पाँचवें दिन नन्द मरेगा। मैं उसके शरीर में प्रवेश करूँगा। इसके लिए वहाँ के लोगों को दिखाने के लिए विनीत कहेगा कि मैं मृत राजा को संजीवनौषधि से पुनरुज्जीवित करता हूँ और दान्त इस बीच मेरे शरीर को गुफा में रख कर रक्षा करेगा। मैं जब विनीत को जीवनदान—उपकार के लिए १४ कोटि स्वर्ण मुद्रा दे लूँगा तो वह यहाँ आकर मेरे शरीर की रक्षा करेगा और दान्त मुझसे १४ कोटि की दक्षिणा लेगा। फिर मैं मृगया करते हुए यहाँ आकर मर जाऊँगा और पुनः अपने शरीर मे पुरप्रवेश विद्या से प्रवेश कर जाऊँगा।

शाकटार को नन्द के मरणासन्न होने से अतिशय खेद है कि नन्द के शेष आठ भाई कामचारी हैं और अब परस्पर लड़कर मर जायेंगे। नन्द को गंगातट पर मरने के लिए लाया गया था। वह वहाँ पर्यङ्क से उतरे और गंगा मे स्नान करके पर्यङ्क पर आकर परमानन्द भगवान् का ध्यान करते हुए मर गये। उसी समय विनीत मिश्र शाकदार से अनुमति लेकर सारी दाम्भिक प्रक्रियायें पूरी करके नंद के शरीर

१. इस अप्रकाशित नाटक की प्रति 'इण्डिया आफिस, लंदन' तथा सागर-विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में है।

मे प्राण संचार कर देता है। शाकटार समझ लेता है कि किसी योगी ने योग के द्वारा राजा के शव मे प्रवेश किया है। तथापि उसने अपने प्रयोजन की पूर्ति के लिए नगर मे महोत्सव की सज्जा कराई, सगीत का आयोजन कराया, दान और ब्राह्मण-भोजन कराया।

पुनरुज्जीवित नद ने शाकटार से कहा कि आप मेरे पिता के स्थान पर हैं। बताइये, किसने मुझे जीवित किया। मैं उसे १४ कोटि सुवर्ण मुद्रा दान दूँगा। शाकटार ने समझ लिया कि ये वास्तविक नंद नहीं हैं। ये तो प्रयोजक साधक योगी नंद बने हैं। उसने विनीत मिश्र का नद का आदर करना देख कर समझ लिया कि जो योगी प्रविष्ट है, वह विनीत मिश्र का गुरु है। यह १४ कोटि का दान गुरु दक्षिणा देने के लिए है। शाकटारदास ने निर्णय लिया कि यह योगी पुनः राजशरीर को छोड़ न दे। नहीं तो सारी बनी बात बिगड़ जायेगी। परशरीर में प्रविष्ट योगी को तभी नये शरीर के साथ रखा जा सकता है, जब उसका अपना वास्तविक शरीर जला दिया जाय।

शाकटारदास ने तत्काल विनीत मिश्र को १४ कोटि स्वर्ण मुद्रायें दिलवाईं। विनीत ने कहा कि मेरा मित्र दान्त भी मुझे ढूँढते हुए आयेगा। उसका भी आप लोग सत्कार करें। राजा ने कहा कि उसे भी १४ कोटि मुद्रायें दूँगा। विनीत के साथ भारवाह उसके आश्रम की ओर मुद्रायें लेकर चले। शाकटार ने उन भारवाहों के कान मे कह दिया कि तुमको मेरे लिए कैसे क्या-क्या करना है।

राजा अन्तःपुर मे पहुँचा। शाकटार ने वहाँ लोगों से कह दिया कि बीमारी और मरण के कारण राजा की मानसिक स्थिति ठीक नहीं है। सभी इनसे अधिकाधिक प्रेम करें और इनकी त्रुटियों को क्षमाभाव से देखें।

शाकटार ने सभी राजपुरुषों को बुलाकर कहा कि राजा को शव से घृणा हो गई है, क्योंकि वह स्वयं शव बन चुका था। कल वह मृगया करने जायेगा और जिस राजपुरुष के क्षेत्र में शव दिखाई देगा, उसे मार डाला जायेगा। आपके क्षेत्र मे जहाँ-कहीं शव हों, उन्हें जला दें।

विनीत भारवाहों के साथ न दौड़ सका। वे जल्दी-जल्दी दान्त के पास आये, उसे १४ कोटि मुद्रा दी और एक पत्र दिया, जिसमे लिखा था कि पत्रवाहक राजा के आत्मीय भृत्य हैं। ये विश्वासपात्र हैं। इनकी बातें सुनिये और तदनुसार कार्य कीजिये। भारवाहों ने उसे विनीत का मौखिक समाचार बताया कि आप जिस गुप्त वस्तु की रक्षा कर रहे हैं, उसे इन भृत्यों को सौंपकर शीघ्र यहाँ आ जाइये। फिर हम दोनों यहाँ से साथ चलेंगे।' दान्त ने ऐसा ही किया। उसके पाटलिपुत्र की ओर चल देने पर भारवाहों ने योगीन्द्र के शव को शाकटार की आज्ञा के अनुसार जला दिया और फिर दौड़ पड़े पाटलिपुत्र के लिए। मार्ग में जब वे उससे पीछे-पीछे आते मिले और पूछने पर कुछ न बोले तो उसने भाँप लिया कि दाल में कुछ काला

है और वह वहीं से लौट गया। उसने वहाँ देखा कि गुरु का शव भस्मीभूत है। विनीत जब पाटलिपुत्र से लौटकर चित्रकूट के आश्रम में पहुँचा तो दान्त ने सारी घटना सुनाई। विनीत ने यह सब जानकर समझ लिया कि यह सारा अनर्थ शाकटार की धूर्तता से हुआ है। उसने क्रोध में आकर शाप दिया—शाकटार का सकुटुम्ब शीघ्र ही नाश हो।

इधर राजा भी मृगया करते हुए वहाँ चोला बदलने के लिये आ पहुँचा। वह सारे परिवार को नीचे ही छोड़ कर राम के चरण चिह्नों को देखने के बहाने पर्वत शिखर पर चढ़ गया। कृपाणवल्ली लिये शाकटारदास को ही उसके साथ जाने की अनुमति मिली। वह उस गुहा के पास पहुँचा, जहाँ उसका शव रखा था। वहीं दोनों शिष्य रोते हुए मिले। राजा ने समझा कि मेरे शरीर को किसी हिंस्र जन्तु ने खा लिया होगा। शिष्यों से मिलने पर उसे वस्तु-स्थिति का ज्ञान हुआ। उसने सोचा कि शिष्यों से अनुराग करने का यह फल मुझे मिला है। उसने अपनी मर्यादा-रक्षा के लिए आँख के संकेत से ही शिष्यों को समाश्वस्त किया। वह वहाँ से दूसरी गुफा में विश्राम करने के लिए पहुँचा और प्रतिज्ञा की कि जिसने शवदाह कराया है, उस वैरी को बन्धु-बान्धवों सहित नष्ट कर दूँगा।

शाकटार ने देखा कि शोक के कारण कहीं राजा मर न जाय। उसने उचित यही समझा कि राजा को अपना सारा मन्तव्य बता दे। उसने राजा से अनुमति लेकर कहा कि मैं जानता हूँ कि आप योगिराज हैं और शिष्यों का कल्याण करने के लिए नन्द के शव मे प्रविष्ट हैं। मैंने ही पृथ्वी को सनाथ रखने के लिए शव को जलवाया है। शाकटार उनके पैरो मे गिर पडा। राजा ने देखा कि इस धूर्तराज शाकटार के चंगुल मे मैं हूँ। इसके सामने शोक प्रकट करना ठीक नही। उसने शाकटार से कपट-पूर्वक कहा कि आप मेरे गुरु हैं। आपके ही हाथ में राज्य-शासन का कार्य-संचालन है। राजा के कहने पर उसने दान्त मिश्र को १४ कोटि मुद्रायें दी, जिन्हें वह अपने साथ पाटलिपुत्र से लाया था।

राजा पाटलिपुत्र लौट आया। उसने शाकटार से बदला लेने के लिए अपनी योजना कार्यान्वित की। गुप्तचर ने परिव्राजिका की सहायता से बालक राक्षस को प्राप्त किया, जिसे राजा ने अपने अन्नपान से संवर्धित किया था। एक दिन उसने शाकटार को सकुटुम्ब अर्धरात्र में बुलाकर उसे सर्वथा श्रीहीन बना दिया और राक्षस को मन्त्री बना लिया। घोषणा की गई—

दुष्टामात्यकृतापरावकलुपाण्युद्धर्तुमुच्चैस्तरां।
श्रेयः संक्रमणाय दस्युपिशुनप्रत्यर्थिनाशाय च॥
बाल्ये यो विदुषां विधाय विजयं मन्त्राश्रयो राक्षसः।
सोऽयं मन्त्रिसमाजराजपदवीं धीरोऽयमारोप्यते॥

इसके पश्चात् मन्त्री राक्षस ने बड़ी सेना लेकर दिग्विजय के लिए प्रयाण किया।

कालान्तर में शाकटार को सकुटुम्ब किसी भूमिगृह में डाल दिया गया। वहाँ तीन दिन में एक बार उन्हें सत्तू और जल मिलता था। कुछ ही दिनों में शाकटार को छोडकर सभी लोग मर गये।

एक दिन रात मे नन्द मूत्र करने के बाद हँसा। उसे हँसते देखकर रानी भी हँसी। नन्द ने उससे कहा कि यदि तुम मेरे हँसने का कारण नहीं बताती तो तुम्हारे जीवन का अन्त कर दूँगा। रानी ने इसका समाधान करने के लिए भूमिगृह में जाकर शाकटार का दर्शन किया। शाकटार ने पुछवाया कि जहाँ पेशाब किया था, वहाँ क्या था। पता चला कि एक वट का नवजात पौधा उखडा हुआ था। इतने से शाकटार ने नन्द की हँसी का कारण जान लिया कि आरम्भ मे जड़ पकडने के पहले थोडी शक्ति से शत्रु का विनाश सुकर है, जैसे इस पौधे का। यही नीतिवाक्य स्मरण कर राजा हँसा। राजा ने शाकटार की दुर्गति दूर करके उसके जीवन की सुव्यवस्था कर दी।

राजा ने रानी के द्वारा बताये हुए उत्तर को सुनकर उससे पूछा कि किसने आपको यह समाधान बताया है? तब रानी ने क्षमा-याचना करके शाकटार का हाल सुनाया। राजा उसकी विचारणा से चकित होकर उसे पुनः राक्षस के ऊपर मन्त्री बना दिया। राजा ने घोषणा की—

नेत्रद्वय मम तु सम्प्रति शाकटारदासस्तथा सचिव राक्षस इत्यवेहि ॥
सान्तःपुरप्रकृतिवर्गविशेषमत्र प्राचीनतेति वहुदर्शितयोपदिष्टम् ॥

शाकटारदास राजा नंद की की हुई उस नृशंसता को भूल न सका, जिसमें उसके कुटुम्बी जन मारे गये थे और उसकी प्राणान्तक दुर्गति हुई थी। वह बदला लेने की सोच ही रहा था कि उसे चाणक्य दिखाई पडा जो दर्भग्रास को उखाड कर उसकी जड मे माध्वीक डाल रहा था, ताकि जडो को चीटियाँ खा जायें। इस मनस्वी को देखकर उसने समझ लिया कि इससे मेरा काम सिद्ध होगा। उसने चाणक्य को नन्द के राजसूय यज्ञ मे आने का निमंत्रण दिया। चाणक्य आया और मूल से गंदे कपडे पहने हुए राजसिंहासन पर बैठ गया। नद ने उसका अपमान किया और चाणक्य ने नद कुल को उन्मूलित करने की प्रतिज्ञा की। उसने ऐसा अभिचार किया कि सभी नद ज्वर-पीडित होकर मर गये। तब तो चाणक्य ने चंद्रगुप्त को राजा बना दिया।

नाट्यशिल्प

मात अङ्कों के नाटक चन्द्राभिषेक की प्रस्तावना में नाटक के प्रयोग की आज्ञा देने वाले राजा की प्रशंसा मे नव श्लोक वैतालिकों की नेपथ्य से वाणी के द्वारा और दो श्लोक सूत्रधार की प्रशस्ति द्वारा समाविष्ट हैं। यहीं ऋतु-वर्णन भी अतिशय विस्तारपूर्वक किया गया है, जिसमें १५ पद्य हैं। ऐसा लगता है कि इस वर्णन के द्वारा सूत्रधार अपनी काव्य-रचनात्मक दक्षता से प्रेक्षकों को प्रभावित करना चाहता है। प्रेक्षकों का ध्यान केन्द्रित करना ऐसे वर्णनों का उद्देश्य तो है ही।

प्रस्तावना में कवि का परिचय प्रस्तुत करने के लिए अवसर कैसे मिले, इसके लिए कवि ने आकाशभाषित का सहारा लिया है, जिसमें उसे प्रेक्षकों की वाणी सुनाई पड़ती है। यथा, (आकाशे कर्णं दत्त्वा) किं ब्रूथ ? कीदृशोऽसौ कविरिति। फिर उन्हें सम्बोधित करके बताता है—

आर्य-विदग्धमिश्रा

> किं तन्न्यायनयादिसूक्ष्मसरणीदीक्षातिदाक्ष्यादिभिः
> सम्प्रोक्तं रपरैश्च सद्गुणगणैर्जातस्य तस्मिन् कुले।
> यत्राशेषकलाविलासजलधिर्वैदग्ध्यवारांनिधि-
> र्धीरः श्रीयुतचित्रसेनवसुधाधीशोऽप्यतिप्रेमवान्॥

प्रस्तावना में किसी पात्र की सूचना-मात्र होनी चाहिए।[1] इस नाटक में सूत्रधार ने योगीन्द्र नामक पात्र की सूचना मात्र न देकर उसकी प्रशस्ति भी की है। यथा,

> वन्वाभ्यासगुणेन येन हि जगत्प्राणो विहङ्गोपमः
> सन्नीतो वशतामपीन्द्रियमहादुर्दान्तरक्षोगणः।
> अन्तस्तामरसाटवीमटति यो हंसायमानः सदा
> श्रीसम्पन्नसमाधिरेति स पुरः शिष्यद्वयेनान्वितः॥

नाटक में पञ्चम अङ्क दो पृष्ठ का है, किन्तु उसके पूर्व आने वाला विष्कम्भक सात पृष्ठों का है। स्पष्ट है कि कवि विष्कम्भक को भी अङ्क से कम महत्त्व नहीं देता। परम्परानुसार नाट्यशास्त्रीय विधान को देखते हुए विष्कम्भक में सूचना मात्र संक्षेप में होना चाहिए था, किन्तु कवि ने इसे अन्य बहुविध बातों से भर रखा है।

एकोक्ति

तृतीय अङ्क के आरम्भ में अकेले विनीत अपनी एकोक्ति में नीचे लिखी सूचनायें देता है—(१) सम्पन्न-समाधि वत्सल हैं (२) गुरुदक्षिणा का क्या उपाय उन्होंने बताया है (३) गुरु कैसे नन्द की मृत्यु होने पर पुरप्रवेश-विद्या द्वारा नन्द के शरीर में प्रवेश होकर १४ कोटि सुवर्ण-मुद्रा दान करेंगे। (४) कैसे गुरु का प्राणहीन शरीर सुरक्षित रखा गया है। (५) वह पाटलिपुत्र का वर्णन करता है (६) नन्द को देखने के लिए आने वाले लोगों का वर्णन (७) राजा के मरणासन्न होने पर आर्तनाद होता है (८) अपनी योजना कार्यान्वित करनी है। षष्ठ अङ्क के आरम्भ में शाकटारदास की मार्मिक एकोक्ति है।

अर्थोपक्षक

चन्द्राभिषेक नाटक मे पाँचवें अङ्क के पहले विष्कम्भक में चन्द्रकला और हेमलता के पुत्र की लम्बी कहानी कहना असाधारण विन्यास है। अर्थोपक्षेपकों में कार्य-वैचित्र्य का निदर्शन अन्यत्र भी अतिशय विस्तारपूर्वक किया गया है। उनका सविशेष महत्त्व

---

१. सूचयेद्वस्तु बीजं वा मुखं पात्रमथापि वा।

है। प्रायः अर्थोपक्षेपकों में महत्त्वपूर्ण सामग्री मनोरंजक विधि से दी गई है। विष्कम्भक मे तो पात्रो के कार्य भी कहीं-कहीं दिखाये गये हैं।

छायातत्त्व

सम्पन्नसमाधि का नन्द के शव मे प्रवेश करना और उसके पश्चात् उसके सारे कार्य छायातत्त्वात्मक हैं।

कपट-नाटक

चन्द्राभिषेक मे कपट-नाटक के तत्त्व विशेष रूप से मिलते हैं। इस दृष्टि से यह मुद्राराक्षस से कतिपय स्थलों पर मिलता है। चतुर्थ अङ्क में विनीत मित्र ने दान्त से कहा भी है—तन्मन्ये त्वां कपटवार्तया विश्लिष्य तैरेव दाहितमिदं मद्गुरु-शरीरम्।

शाकटार तो कपटी है ही, उसके साथ योगीन्द्र भी राजा नन्द बनकर महाकपटी बन जाता है। इनके कापटिक कार्य कलाप मे छायातत्त्व अवश्यम्भावी है।

कार्य-विशेष

रगमंच पर कतिपय कार्यविशेष प्रभावोत्पादक हैं। यथा, चतुर्थ अङ्क में राजा के चित्रकूट में आने के समाचार से उसका शरीर भस्म हो जाने के कारण शिष्यों का छाती पीट-पीट कर रोना।

कथावस्तु का विन्यास कहानी की भाँति होता है। प्रथम अङ्क मे कही बीज का निक्षेप नही दिखाई देता। वास्तव मे नाट्यकार कहानी का प्रेमी है। वन्यक्रीडाकुरंग की कथा शाकटार सुनाता है, जिसमे चार पृष्ठ हैं। कहानी पर्याप्त विस्तार से कही गई है। यह धूर्तों की कथा है, जो वस्तुत: मनोरजक है, पर नाट्यकला की दृष्टि से हेय है। पाँचवें अङ्क के पहले विष्कम्भक मे हेमलता और चन्द्रकला की लम्बी कहानी तीन पृष्ठो मे दी गई है। सारे नाटक की कथावस्तु में कुछ तिलस्मी रंग है, जो युग की विशेषता है।

नायक-विश्लेषण

यद्यपि इस नाटक मे भूमिका विविध क्षेत्रीय है और अतिशय विशाल परिधि से ली गई है, तथापि स्त्रियो की भूमिका नगण्य है।

वर्णना

नाटक मे काव्यात्मक वर्णना को उत्कृष्ट स्थान दिया गया है। उदात्त भावो को प्रेक्षकों के समक्ष उपमान द्वार से भी प्रस्तुत कर देने मे कवि सफल है। यथा,

नायं भाति महेन्द्रचापसहितः सौदामिनी-शोभनः
सान्द्रश्यावरणव्यनीरदमहाव्यूहो मनोरञ्जनः।
वैदेही-सहितः शरासनधरः पूर्वं प्रवासाश्रमं
शङ्के प्रेक्षितुमागतस्स भगवान् श्रीरामचन्द्रः स्वयम्॥

प्रातः काल का वर्णन है—

चक्री चक्रसमागमाद्विजयते स्फूर्जत् प्रमोदश्रिया
हंसान्दोलितपद्मसंभवमहामोदः समुज्जृम्भते ।
मूर्धोल्लासितचन्द्रकोज्ज्वलतनुः श्रीनीलकण्ठस्तथा
भूतैरप्यपरैश्च नृत्यति निजैः कार्यैरिवाकल्पितः ॥

कहीं-कहीं आदर्शों को प्रस्तुत किया गया है । यथा गुरु और शिष्य हैं—

न पित्रोर्नो मित्रे न वपुषि कलत्रे न तनये
भवेद् तादृक् यादृक् स्फुरति रतिरुच्चैरतितराम् ।
गुरौ क्षान्ते दान्ते विदुषि विषयास्वादविमुखे
परब्रह्मध्यानस्तमितहृदये भक्तसदये ॥

अन्यत्र चतुर्थ अङ्क में लोककल्याण की राजकीय योजनाओं का सविस्तर आकलन है ।

ऐतिहासिक सूचना

सूत्रधार ने बताया है कि महाराज चित्रसेन को नागपुर से बलि प्राप्त होती थी । यथा,

इन्द्राणीमयभूरपि प्रतिपदं यं प्रीणयत्युच्चकैः
यः प्रोच्चैरुपदिश्यतेऽथ गुरुणा काव्येन सूक्ष्माश्रुतिः ।
भेजे नागपुराद्बलिश्च सुमहान् यस्यान्तिकं दृश्यते
सोऽयं कोऽपि सुरासुरेन्द्रविभवः श्रीचित्रभूमीपतिः ।

समीक्षा

चन्द्राभिषेक संस्कृत के परवर्ती सर्वश्रेष्ठ नाटकों में अन्यतम है । इसमें राजतरंगिणी के रचयिता कल्हण की इतिहास-निदर्शना के साथ नीति और वैराग्य का उपदेश और बाणभट्ट की कादम्बरी जैसी रमणीय शैली का संवलन अनूठी सफलता की उपलब्धि है ।

अध्याय ४८

प्रमुदित-गोविन्द

प्रमुदित गोविन्द के रचयिता सदाशिव को उत्कल-प्रदेश में धारकोटे के राजा ने कविरत्न की उपाधि से विभूषित किया था।[1] वे राजपुरोहित थे। सदाशिव का प्रादुर्भाव अठारहवीं शती मे हुआ था। सूत्रधार ने सदाशिव का परिचय प्रेक्षकों को देते हुए बताया है—

अस्ति तावद्वत्सकुलकैरवाकरकलाकरायमाणस्य प्रथितकविरत्नपुरोहित-राजपदवीकस्य कवेः सदाशिवोद्गातुरभिनवं प्रमुदितगोविन्दं नाम रूपकम्।

प्रमुदित गोविन्द का अभिनय राजसभा के प्रीत्यर्थ हुआ था। जैसा प्रस्तावना मे मे बताया गया है, राजसभा का एक पत्र नटी को प्राप्त हुआ था कि किस प्रकार का नाटक खेला जाय। सूत्रधार के शब्दो मे नाटक की आलोचना है—

शृङ्गार-संवलित-वीररस-प्रकर्ष-व्यामिश्रितोत्तमचमत्कृतिसारगर्भम्।
सन्दर्भमुद्ग्रथितसाधुपदार्थभाज गम्भीरमाजनयितुं वलते मनीषा ॥७

कवि को इसके द्वारा साधु चरित्र-परम्परा का उद्घाटन करके सहृदयों का आराधन करना है। सदाशिव मूलतः वैष्णव थे। वैष्णव सस्कृति का विस्तार और प्रचार करने के लिए उन्होंने इस नाटक का प्रणयन किया था।

कथावस्तु

दुर्वासा ने एक बार ऐरावत पर आरूढ इन्द्र को स्वनिर्मित माला दी। इन्द्र ने उसे देखने के लिए ऐरावत के गण्डस्थल पर रखा। ऐरावत ने सूँड से माला लेकर पैर तले रखकर मसल दिया। अपनी माला की दुर्गति देखकर दुर्वासा ने इन्द्र को शाप दिया—आप की श्री नष्ट हो जाय। दुर्वासा का चरित्रचित्रण है—

वटवः स्वतो हि कटवः किंपुनस्तत्र दिग्वासा असौ दुर्वासाः।

इसके पहले ही देवासुर-संग्राम मे मायावी असुरो ने देवताओ को परास्त कर दिया था। इन्द्र की इस विपत्ति को निरस्त करने के लिए ब्रह्मा और शिव विष्णु से परामर्श करते हुए इस निर्णय पर पहुँचे कि समुद्र का मन्थन करके देवताओ को अमृत प्राप्त करना है। इस योजना के कर्णधार विष्णु बने। उन्होंने असुर-प्रमुखों को बुलाया कि हमारे सम्मिलित प्रयास से अमृत प्राप्त हो। बलि और वासुकि उनसे सहमत हो गये। समुद्र के मध्य मे देवता पहुँचे। उन्हे लगा कि तत्काल दैत्यों और नागों से परामर्श करके मन्थन में सफलता की योजना प्रतिपन्न होनी चाहिए। विष्णु से पत्रिका लेकर पुण्डरीक बलि के पास पहुँचे। बलि पत्रिका पढ़कर दैत्यों

१. प्रमुदित गोविन्दकी अप्रकाशित प्रतियाँ मद्रास की ओरियण्टल लाइब्रेरी और स्टेट म्यूजियम, भुवनेश्वर में प्राप्य हैं।

का मन्तव्य जानकर समुद्र-मन्थन के लिए उद्यत हो गया। विष्णु की पत्रिका पाकर वासुकि नाग भी समुद्र-मन्थन में विष्णु की सहायता करने के लिए उद्यत हो गया।

द्वितीय अङ्क के पहले प्रवेशक के अनुसार कार्तिकेय की अध्यक्षता में देवसेना समुद्र-मन्थन के लिए तट पर पहुँची थी। मन्दर-पर्वत को वैनाशी बनाया गया। पर वह उठता नहीं था। अन्त में स्वयं विष्णु को उसे उठाना पड़ा। विष्णु ने उसे सागर के अर्वाची तीर पर रख दिया। वहाँ से वह पर्वत इन्द्र का विवाह देखने के लिए अदृश्य होकर चलता बना। इन्द्र ने पुलोम नामक दैत्य की कन्या शची से इसलिए विवाह किया कि दैत्यों से मुठभेड होने पर श्वशुर-पक्ष से सहायता प्राप्त कर सके।

मन्थन-कर्म में विष्णु ने वासुकि को नेत्र बनाया। जब मन्दर समुद्र में डाला गया तो पैप्पलादी ने उसे मुँह में ग्रस्त कर लिया। स्वयं विष्णु कच्छप बने और पर्वत को पीठ पर उठाकर ऊपर लाये। असुरों ने हठ करके अपनी श्रेष्ठता बताने के लिए वासुकि का फणप्रदेश पकड़ कर मन्थन करने का उद्योग किया। देवों ने पुच्छ पकड़ी। मन्थन से बहुविध वस्तुयें क्रमशः निकलीं, जिनका बटवारा होता जाता था। हालाहल-विष के निकलने पर उसे ग्रहण करने के लिए कोई आगे न बढ़ा। देवताओं ने शिव से कहा कि आप विषपान करें। पार्वती ने उन्हें प्रारम्भ में अनुमति नहीं दी, किन्तु अन्त में लोकरक्षा के लिए अपने पति को विष कवलित करने के लिए भेज दिया। शिव ने विषपान किया और पार्वती से मिलने के लिए चलते बने।

लक्ष्मी निकली और विष्णु से अपना प्रणय प्रकट किया। धन्वन्तरि अमृतकलश लेकर निकले। दानव छीन कर उसे लिए हुए पर्वत पर जा पहुँचे। अमृत पाने के अभिलाषी देवता विष्णु के पास पहुँचे। विष्णु मोहिनी का रूप धारण करके दानवों के पास पहुँचे। मोहिनी से आकृष्ट होकर दानवों ने अपना सर्वस्व उस पर निछावर कर दिया। उन्होंने उसे अमृत-कलश देकर निवेदन किया कि आप इसे देव और दानवों में अभेद बुद्धि से बाँट दें। मोहिनी ने सारा अमृत देवों को दे दिया। असुर ताकते ही रह गये।

समुद्र से निकली वस्तुओं में ऐरावत, उच्चैःश्रवा, अप्सरा, कल्पवृक्ष, लक्ष्मी आदि देवताओं ने ली। फिर तो बलि ने देवों से युद्ध ठान दिया। रंगमंच पर आकर बलि इन्द्र को सन्देश भेजता है कि युद्ध करो। युद्ध में बहुत से असुर मारे गये। भार्गव ने उन्हें जीवित कर दिया।

अन्तिम सप्तम अङ्क में समुद्र ने लक्ष्मी को विवाह में विष्णु के लिए दे दिया। इसके पश्चात् विष्णु और शिव ने विषपान और मोहिनी के अमृत-वितरण की चर्चा की। शिव ने मोहिनी-रूप पुनः देखना चाहा। विष्णु के मोहिनी-रूप को देखकर शिव मोहित हो गये।

सा तत्र दर्शितघनस्तनबाहुमूला मूलाद्धरस्य धृति-वीरुधमुच्चखान।
गौरीपतिः पतितहस्तगृहीतशस्त्रः पंचायुगस्य गमिताजनि नष्टचेष्टः ॥७.११

उसे हस्तगत करना चाहा तो वह सुन्दरी अदृश्य हो गई। फिर पास आ गई। इस प्रकार शिव को छकाया।

शिल्प

प्रस्तावना मे सूत्रधार और नटी के चले जाने के पश्चात् उनके द्वारा प्रवर्तित प्रियंवद और उसकी पत्नी मंजु के द्वारा सवाद मे प्रमुदित गोविन्द-नाटक की भूमिका प्रस्तुत की गई है। इस भूमिका का नाम यद्यपि हस्तलिखित प्रति मे मिश्र विष्कम्भक मिलता है, किन्तु यह विष्कम्भक नही है, क्योकि विष्कम्भक का पात्र नाटकीय कथा का पात्र होना चाहिए। इस नाटक मे ऐसा नही है। प्रियंवद और मंजु नाटकीय कथा के पात्र नही हैं, अपितु सूत्रधार के सहकर्मी हैं। वे किसी भी भूमिका मे रंगमच पर नही उतरते।

कवि ने वर्णनों से नाटक की चारुता बढाई है। द्वितीय अक में मदरोद्धरण का वर्णन प्रवरसेन-विरचित सेतुबंध के प्रासंगिक वर्णन से मिलता-जुलता है। यथा—

निर्यान्तं बहिराननं कुटिलगं यात्यद्रिमध्याच्छिखी
तं चान्वक् शबरः करे धृतधनुर्बाणस्तमेणादनः
एनं चापि वृकस्तमत्तु मयते सिंहस्तमष्टापदः
शैलान्ते गगनं समीक्ष्य चकिताः पृष्ठे भजन्ते रिपुम् ॥२.१३

वर्णनो मे कवि-कल्पना की नवता दर्शनीय है। यथा—

निद्रा कैतवमीयुषां कृततमः प्रावारहृग्वारणां
रात्रीवासकसज्जिकामुपगतः प्रालेयरुक्कामुकः
द्वित्रैरेव करैर्निचोलमनयत्तत्तन्मुखादन्यथा
कस्मात् काश्चन तां दिशं प्रतिहसन्त्येता वयस्या यथा ॥२.१८

ऐसे वर्णन कलात्मक होने पर भी अनुपयोगी और कथासूत्र को अदृष्ट बनाने वाले हैं। द्वितीय अक मे वर्णन ही वर्णन हैं, दृश्य तो नाममात्र का ही है। तृतीय अंक में संवाद के द्वारा सूचनायें मात्र वैसे ही दी गई हैं, जैसे इसके पूर्व के प्रवेशक मे।

छायातत्त्व

मन्दर पर्वत इन्द्र का विवाह देखने के लिए जाता है। विष्णु उसे समुद्र-तट पर रखते हैं। वहां से अदृश्य होकर चल देता है। यह छाया नाट्य है। विष्णु का मोहिनी का रूप धारण करके दानवो को छलना छाया-तत्त्वानुसारी घटना है।

निवेदन

पंचम अङ्क मे रंगमच से शिव के चले जाने के पश्चात् कोई नट बिना रंगमंच पर आये ही सुनाता है—

प्रालेयाम्भोधरात् प्राङ्मुखमिव ककुभां दृश्यते तीरमब्धेः
सोऽयं कालस्तपर्तौ चरममिव दिनस्यातिरम्यत्वमेति।
मन्येऽपि स्पर्धिपन्ते विमथितपुरुषाभूतभूम्नि श्रमेऽपि
व्यापारेऽस्मिन् फलाय प्रभवति महतामेकमध्याहरामः।

यह निवेदन चूलिका से कुछ-कुछ मिलता-जुलता है।[1] रंग पीठ पर कतिपय ऐसे कार्य होते हैं, जो संवादों के द्वारा वर्णित नहीं हैं। उन्हें सम्भवतः नेपथ्य से कोई बताते चलता है। पंचम अंक में लक्ष्मी के रंगमंच पर आने पर निवेदन किया जाता है। यथा—

इतरे विश्वजननीं प्रणेमुरविशंकिताः।
मनसा मानसं स्त्रीणां संस्थानेनोपपद्यते॥

नाट्यसंकेत

रूपक में लम्बे-लम्बे नाट्य-संकेत मिलते हैं। पंचम अङ्क में लक्ष्मी का प्रवेश होने पर १५ पंक्तियों में उसका गद्य में वर्णन नाट्य-संकेत के रूप में है। ऐसी सामग्री कीर्तनिया नाटकों में पद्यात्मक मिलती है और गीत है। इसके पश्चात् 'केचित्' को गाने वाला मानकर एक गीत भी लक्ष्मी-वर्णन के लिए प्रयुक्त है।

इसी अंक में धन्वन्तरि के अमृत-कलश लेकर रंगमंच पर आने पर निवेदन के द्वारा उनका लम्बा वर्णन है और बताया गया है कि रङ्गमंच पर दानव उनके कन्धे से अमृत-कलश लेकर भाग चलते हैं। देवता विष्णु की स्तुति करने लगते हैं। यह सारी सामग्री किरतनिया नाटकों के योग्य है।[2]

इन लम्बे नाटक-संकेतों से यह प्रतीत होता है कि यह नाटक लेखक की दृष्टि में पढ़ने के लिए है, अभिनय के लिए गौण रूप से ही है। अभिनय में तो ये सारी बातें आहार्य, अनुभाव आदि प्रत्यक्ष ही होते चलते।

मूकपात्र

पंचम अंक में लक्ष्मी रङ्गमंच पर आती है और कुछ भी बोलती नहीं। उसके हावभाव का वर्णन मात्र कर दिया गया है।

---

१. चूलिका से अन्तर यही है कि इसमें वृत्त और वर्तिष्यमाण का नहीं, अपितु वर्त्तमान घटनादि का परिचय दिया जा रहा है। यह निवेदन की प्रमुख विशेषता है।

२. अठारहवीं शताब्दी में मिथिला किरतनिया नाटकों का विकास हो रहा था। इन नाटकों में स्तुति और वर्णन-परक सामग्री मैथिली भाषा में प्रस्तुत की जाती थी। प्रमुदित-गोविन्द में यह सामग्री संस्कृत में है।

पारिभाषिक शब्दावली

प्रमुदित गोविन्द मे कही-कही नई पारिभाषिक शब्दावली प्रयुक्त है। यथा, अंक समाप्ति के लिए अंक-स्थान[२] षष्ठ अक के पहले प्रवेशक के लिए प्रस्तावना आदि।

अङ्को के आरम्भ मे अङ्को की संख्या का नाम या उनके आरम्भ की सूचना नहीं दी गई है। केवल उनके अन्त मे प्रवेशक और विष्कम्भक के अन्त की भाँति यह लिख दिया गया है कि अङ्कः समाप्तः। सप्तम अङ्क के आरम्भ के पहले जो प्रवेशक है, वह वस्तुतः लघु अङ्क है। इसमे सूच्य तो नगण्य है और दृश्य महत्त्व पूर्ण है। इसमे हरि और समुद्र का सवाद है। ऐसे प्रवेशक वस्तुतः लघु दृश्य हैं।

शृङ्गार-विशेष

शृङ्गारोचित विभावादि का कवि ने रुचिपूर्वक वर्णन किया है। सप्तम अङ्क में २० पक्तियों के एक वाक्य मे मोहिनी की उन चेष्टाओं का वर्णन है, जिनसे उसने शिव को छकाया।

---

२. चतुर्थ अङ्क के अन्त मे।

अध्याय ४६

श्रीकृष्ण-विजय

श्रीकृष्ण-विजय डिम के प्रणेता वेङ्कटवरद मद्रास–प्रदेश के अर्काट जनपद मे श्रीमुष्ण ग्राम के निवासी थे।[1] कौण्डिन्य गोत्र में रामानुज वैष्णव आचार्यों के कुल में श्रीनिवासार्य के पौत्र तथा वरदाचार्य के पुत्र अप्पलाचार्य हुए। अप्पलाचार्य के पुत्र वालविपश्चित् वेङ्कटवरद ने श्रीकृष्ण-विजय नामक डिम का प्रणयन १८ वी शती के पूर्वार्ध में किया। सूत्रधार ने श्रीनिवास के विषय में बताया है—

श्रीरंगनगरीनाथं श्रीनिवासगुरुं भजे।

वेङ्कटवरद ने ७७ वर्ष की अवस्था में श्रीकृष्ण-विजय की रचना की। उनके पिता अप्पलाचार्य ८० वर्ष की अवस्था तक ग्रन्थो की रचना करते रहे। इनके पितामह श्रीनिवास के विषय में कहा जाता है—

त्रय एव हि लोकेऽस्मिन् कवयो बुधसम्मताः।
प्राचेतसमुनिर्व्यासः श्रीनिवासगुरूत्तमः॥

श्रीनिवास ने (१) अम्बुजवल्ली-परिणय (२) भूवराह-विजय (३) अनङ्गमंगल (४) अष्टपदी (५) वृत्तालौकिकसारमालिका (६) वराहचम्पू (७) वकुलमालिनी (८) गीता-परिणय (९) सीतादिव्यचरित्र (१०) भारतचन्द्रिकासारसंग्रह (११) मीमामा-सारसंग्रह (१२) वेदान्तसार (१३) अम्बुजवल्लीदण्डक (१४) श्रीवराहचूर्णिका (१५) घ्यानचूर्णिका (१६) श्रीरंगदण्डक (१७) चूर्णिकाकीर्तन (१८) श्रीरंगराज चरित (१९) गानपद इत्यादि ग्रन्थों की रचना की थी।

श्रीनिवास के पुत्र वरदाचार्य ने (१) लक्ष्मीनारायणचरित (२) रघुवीरविजय (३) कमलनयनचर्या (४) रामायण-सग्रह (५) गद्य-रामायण (६) शब्द-माहात्म्य (७) अौक दर्पण (८) अम्बुज-वल्लीशतक (९) वराहशतक (१०) प्राकृत-रत्नाकर (११) स्मृतिसार (१२) रहस्यरत्न (१३) श्रीरंगराज (१४) श्रीरंगनायिका-दशक इत्यादि की रचना की।

वेङ्कटवरद ने (१) श्रीनिवास-चरित्र (२) श्रीनिवासकुलाब्धिचन्द्रिका (३) श्रीनिवासामृतार्णव (४) श्रीदिव्यदम्पतिवरस्तव और (५) अत्रिकामकल्पवल्ली की रचना की। रूपक के अभिनय के समय सूत्रधार के अनुसार वे कल्याण-साधिका की रचना करने वाले थे।

श्रीकृष्ण-विजय डिम का सर्वप्रथम अभिनय श्रीमुष्ण में श्रीमुष्णपुर-नायक वेङ्कटेश भगवान् विष्णु की सभा में वसन्त ऋतु में यज्ञ के अवसर पर हुआ था।

इस डिम मे कम से कम पाँच यवनिकान्तर थे, जिनमें से पंचम यवनिकान्तर केवल अंशतः मिलता है।

---

१. इस रूपक की हस्तलिखित प्रति शासकीय हस्तलिखित ग्रन्थालय, मद्रास मे है।

प्रस्तावना लेखक सूत्रधार

'श्रीकृष्ण-विजय डिम की प्रस्तावना मे सूत्रधार ने कवि के पितामह श्रीनिवास के ग्रन्थों के नाम बताकर कहा है—एतानि मया दृष्टानि उक्तानि च।' यह सूत्रधार की लेखिनी से ही प्रणीत हो सकता है। आगे चलकर नटी ने सूत्रधार से कहा है-

इयं प्रस्तावना सलक्षणा निरूपिता त्वया कुशीलवकुञ्जरेण।

कथावस्तु

कृष्ण से द्वारका मे आये हुए अर्जुन ने कहा कि मुझे आपकी भगिनी सुभद्रा से सबसे अधिक प्रीति है। कृष्ण ने कहा, मैं ऐसा करा दूंगा। द्वारका के समीप कृष्ण उनसे पुनः मिले और बताया कि आपसे मिलने बलरामादि आ रहे हैं। इस बीच आप त्रिदण्डी सन्यासी बन जायें। फिर पर्वत की गुहा मे जा बैठें। कृष्ण और बलराम कुछ देर के बाद आये। बलराम ने प्रस्ताव किया कि यह यतिराज हमारे प्रमदवन में रहे। अर्जुन प्रमदवन मे आ पहुँचा। सुभद्रा उसकी सेवा के लिए नियुक्त हुई। फिर तो गान्धर्व विवाह हो गया। पश्चात् सभी देवताओं ने सम्मिलित होकर उनकी सास्कारिक विवाह-विधि सम्पन्न की।

शिल्प

श्रीकृष्ण-विजय डिम अनेक दृष्टियो से एक ऐसी रचना है, जो पुरानी परम्परा से सर्वथा भिन्न है। सर्वप्रथम इसके नाम को लीजिये। श्रीकृष्ण-विजय मे सुभद्रा और अर्जुन का विवाह होना प्रमुख घटना है। ऐसा होना उचित नहीं प्रतीत होता।

जहाँ तक डिम की कथावस्तु का सम्बन्ध है, इसमे कुछ लडाई-झगडे की बात होनी चाहिए, पर श्रीकृष्णविजय मे ऐसा कुछ भी नहीं है। कथावस्तु मे रौद्र रस की योग्यता होनी चाहिए। इस रूपक मे न तो रौद्ररस है और न रौद्ररसोचित कार्यव्यापार हैं। उलटे इसमे डिमके लिए वर्जितशृङ्गार की सरिता और कहीं-कहीं तो अनुचित शृङ्गार की प्रवृत्तियाँ अपनाई गई हैं। अनेक स्थलों पर शृङ्गार की दृष्टि से यह भाण के आसपास जा पहुँचता है।[1]

विष्कम्भक और प्रवेशक डिम में नहीं होने चाहिए। श्रीकृष्णविजय मे इनकी प्रचुरता है। डिम मे चार अंक होने चाहिए। इसमे कम से कम ५ अंक हैं। अंकों के स्थान पर यवनिकान्तर हैं।

डिम के १६ नायक सभी के सभी मानवेतर होने चाहिए। इस नियम का पालन भी इसमे नही है।

---

१. द्वितीय यवनिकान्तर में कवि ने अनावश्यक होने पर भी भँड़ैती की है। पद २·२८, ३० इसके उदाहरण हैं। सोमरवि की धृष्टता का अनुमान ऐसे दूषित पदो से किया जा सकता है। तृतीय यवनिकान्तर मे स्त्रीसंग के अभाव में क्या उपाय कामुक करते हैं—ये सब अश्लील बातें इस रूपक में बढ़ा-चढ़ा कर कही गई हैं।

वेङ्कट के सामने डिम की एक परिभाषा थी, जिसे सूत्रधार ने प्रस्तावना में बताया है, किन्तु इस डिम की हस्तलिखित प्रति में वह परिभाषा त्रुटित है। प्रथम यवनिका के अन्त की पुष्पिका में कवि ने अलङ्कारसर्वस्व नामक ग्रन्थ की परिभाषा का उल्लेख किया है। सूत्रधार की डिम की परिभाषा का स्वल्पांश मिलता है, जिसके अनुसार इसमें कविस्तुति, विष्कम्भ और चूलिका की प्रचुरता होती है और नाना प्रसंग हैं। ये सब बातें इसमें प्रचुर मात्रा में हैं।

छायातत्त्व

अर्जुन का त्रिदण्डी संन्यासी बनकर पूजा जाना छायातत्त्वानुसारी है। कृष्ण ने उनसे कहा—

त्रिदण्डकाषाय-शिखोपवीतैः सितोर्ध्वपुण्ड्रैस्सहितो द्विपांकैः।
कदा सुभद्रां घटयन्नुरस्थां सुखं लभेयेति-विचिन्तयन् वस ॥२·७

मनोरञ्जन की बाह्य सामग्री

रूपक में मनोरंजन की सामग्री बढ़ाने के लिए वेङ्कट ने विद्याविलास-प्रकरण कथावस्तु में अनावश्यक होने पर भी जोड़ दी है। इसमे पहेलियाँ बुझाई गई हैं और उनके उत्तर दिये गये हैं। यथा,

किं वा सर्वरसज्ञम्—जिह्वा

सावमर्श-चूलिका (निवेदन)

इस युग मे निवेदन के अनेक नाम मिलते हैं। असम-प्रदेश के नाटकों में निवेदन का प्रयोजक सूत्रधार होता था। मैथिली किरतनिया नाटकों में भी सूत्रधार ही यह कार्य करता था। इस डिम में ऐसे निवेदन का नाम सावमर्श-चूलिका दिया गया है। तृतीय यवनिकान्तर मे उदाहरण है—

तत्रान्तरे सरससारसचारुनेत्रा सौन्दर्य-सागर-समुद्भवसारलक्ष्मीः।
साकं सखीभिरनुरूप-विभूषणाढ्या पत्युस्सकाशमभजत यतिनः सुभद्रा ॥३.३

सावमर्श-विष्कम्भक तथा अङ्कास्य

तृतीय यवनिकान्तर के पूर्व सावमर्श-विष्कम्भक है, जिसकी परिभाषा है—

समयत्रयकार्यार्थप्रशंसा क्रियते यतः।
विष्कम्भः सावमर्शोऽपि नाटके कीर्त्यते बुधैः॥

इसके पश्चात् अंकास्य है, जिसकी परिभाषा है—

अङ्कास्यं नाम वृत्तान्तो यद्यदत्र प्रसूच्यते।
प्रबन्धोऽयं मध्यपात्रैस्तदङ्कास्य मुदीरितम्॥

आलिंगन

नायिका का रंगमंच पर नायक आलिंगन करता है, जैसा तृतीय यवनिकान्तर में नीचे लिखे रंगनिर्देश से ज्ञात होता है—

तामङ्के निधायालिंग्य तिष्ठति।

तृतीय यवनिकान्तर के अन्तिम भाग में बिना वक्ता का नाम बताये कुछ सूचनायें दी गई हैं। तृतीय यवनिका में सूचनायें ही आद्यन्त हैं। नायक और नायिका के संवाद द्वारा भी सूचना दी गई है।

रुक्मिणी-परिणय

रुक्मिणी-परिणय के प्रणेता रमापति उपाध्याय पल्ली-निवासी मैथिल भार्गव-वंशी ब्राह्मण थे।[1] इनके पिता श्रीकृष्णपति उपाध्याय स्वयं कवि और वेद तथा उपनिषद् के प्रकाण्ड पण्डित थे। रमापति की प्रतिभा का विलास दरभंगा के राजा नरेन्द्र सिंह (१७४८–१७६१ ई०) के आश्रय में हुआ। इनकी एकमात्र रचना रुक्मिणी-परिणय नाटक मिली है। इसके छः अङ्कों में रुक्मिणी और कृष्ण के विवाह की कथा है। लेखक ने नाटक की रचना छात्रों के प्रार्थनानुसार की थी।

रुक्मिणी-परिणय का अभिनय राजा नरेन्द्रसिंह की कमलेश्वरी-स्नान यात्रा के अवसर पर समागत विद्वानों के अभिनन्दन के अवसर पर हुआ था। स्वयं राजा ने किसी नव्यरूपक का अभिनय करने के लिए कहा था। रुक्मिणी-परिणय नाटक की हस्तलिखित प्रति कवि ने अपने शिष्य भरतो को दी थी।

इस नाटक के अनुसार सूत्रधार अन्य कुशीलवों का गुरु होता था। यथा,

सूत्रधार—प्रिये, साधु, साधु। सम्यक् परिचीयते त्वयैव महाराजः तस्मात् सहैव मया मदन्तेवासिभिश्च कुशीलवैर्गीयतामस्य गुणौघः।

नाटक की प्रस्तावना से स्पष्ट है कि इसका लेखक सूत्रधार है, रमापति उपाध्याय नहीं। प्रस्तावना में कवि के आश्रयदाता का विस्तृत वर्णन है। यह परवर्ती नाटकों की विशेषता रही है।

कथावस्तु

राजा भीष्मक और उनकी महारानी अपनी कन्या रुक्मिणी के विवाह के लिए भारत के विविध देशों के राजाओं को स्वयंवर में आने के लिए ब्राह्मण से निमन्त्रण भेजते हैं। वे दोनों कृष्ण को जामाता बनाने के लिए उत्सुक हैं। द्वितीय अङ्क में कलहवर्धन नामक घटक रुक्मी के इस मत का समर्थन भीष्मक के सामने करता है कि शिशुपाल को रुक्मिणी दी जाय। फिर दूसरा घटक हरिवल्लभ शर्मा को बुलाया गया। उसने भीष्मक के मत का समर्थन किया कि यादवेन्द्र कृष्ण को रुक्मिणी दी जाय। अन्त में भीष्मक ने कृष्ण के पास यह सन्देश भेजा—

देव्या मया च मनसा परिकल्पितोऽसौ पाणिग्रहे यदुपतिर्दुहितुर्ष्पतिर्मे।
भूयादयाशुभमतिः शिशुरेष भूयः प्रत्यूहमाचरति किंकरणीयमत्र ॥२.६

रुक्मी के विरोध का शमन भीष्मक ने यह कहकर करना चाहा कि अन्यथा कृष्ण आक्रमण करके रुक्मिणी को ले जायेंगे। क्रोध करके रुक्मी ने शिशुपाल के

---

[1] रुक्मिणी-परिणय का प्रकाशन तीरभुक्ति, १ एलेनगंज-रोड, इलाहाबाद से हो चुका है।

पास जाने का उपक्रम किया तो उसे पिता ने यह कह कर रोक लिया कि स्वयंवर में सभी राजाओं को बुलाया जाय। ब्राह्मण और नाई से सभी राजाओं को स्वयंवर का सन्देश दिया गया।

कृष्ण ने उग्रसेन, बलरामादि के साथ सभा में रुक्मिणी के स्वयंवर का निमन्त्रण पाया। पत्रवाहक द्विज ने अकेले श्रीकृष्ण के सामने रुक्मिणी का सौन्दर्य वर्णन किया। ब्राह्मण ने कृष्ण से संकेत पाने पर बताया कि आप कुण्डिनपुर पहुँचेंगे तो रुक्मिणी जालमार्ग से देखेगी। आपके लिए सारी व्यवस्था हो जायगी।

सभी यादव वीर ससैन्य कुण्डिनपुर की ओर चल पड़े। कृष्ण का वहाँ क्रथकैशिक के घर में स्वागत हुआ। कैशिक ने यादवों के लिए वहाँ मन्दिर बनवा रखे थे। क्रथकैनिक ने श्रीकृष्ण के चरण का प्रक्षालन करके उन्हें सिर पर रख कर उनके लिये चँवर डुलाकर उपचारों से पूजा की।

कुण्डिनपुर मे आये हुए सभी राजाओं को सूचना दी गई कि आप कृष्ण के राजेन्द्राभिषेक मे सम्मिलित हो। जो नही आयेगा, वह वध्य होगा—यह देवराज का आदेश है। इस राज्याभिषेक में भीष्मक भी सम्मिलित हुए। कृष्ण सभाभवन में जाकर स्वयंवर में सम्मिलित नही हुए थे।

भीष्मक ने कृष्ण की रुचि के अनुसार स्वयंवर का कार्यक्रम विघटित कर दिया और कहा—

> गच्छध्वं भूमिपाला नय-विनययुतास्वैरनीकैस्समेताः।
> इदानीं मम सुतायाः पतिवरणमतो राजधानीं स्वकीयाम्॥
> क्षन्तव्यश्चापराधो मम गतवयसः शीलवद्भिर्भवद्भिः।
> याचेऽहं नम्रमौलिः कृतनयवशगो नो विधेयः प्रकोपः॥

विदर्भ नगर से भीष्मक कुण्डिनपुर चले आये और कृष्ण ने भी मथुरा की ओर प्रस्थान किया। इधर रुक्मी के साथ मन्त्रणा करके जरासन्ध आदि ने कालयवन के नेतृत्व मे मथुरा पर आक्रमण कर दिया। कृष्ण ने पहले से ही द्वारका नगरी गरुड से बनवाकर सभी यादवों को वहाँ भेज दिया और राजा मुचकुन्दकी नेत्राग्नि से कालयवन को भस्म करा दिया। वे स्वयं भी द्वारका चले गये। वहाँ से उन्होंने भीष्मक को नारद से सवाद दिया कि आप शिशुपाल से रुक्मिणी के विवाह का समारम्भ करें। कृष्ण के दूर चले जाने पर रुक्मिणी की मानसिक वृत्ति का वर्णन मनोरम गीत के द्वारा वर्णित है—

> माधव-गमन-दिवस सत्रो सजनी, मोहि होअ जहिन विषाद।
> जतनहु कहए न पारिअ सजनी, छने-छने तनु अवसाद॥
> अमिअकिरन शशि सुनिअ सजनी, सेहओ वरिस विखधार।
> दखिन पवन तह तनु दह सजनी, मलयज परस अंगार॥ इत्यादि

रुक्मिणी ऐसी स्थिति मे मूर्छित हो गई। सखियों ने उसका उपचार किया। अन्त मे सखी के बुलाने पर नारद वहाँ आये। उन्होंने रुक्मिणी पर दया करके कहा कि शीघ्र ही तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा। मैंने छिप कर तुम्हारी कृष्णप्रेम-विषयक सारी बातें सुन ली हैं।

रुक्मिणी ने नारद से अपने को कृष्ण का बनाने के लिए योजना नारद को बताई—

गिरिनन्दिनी पूजए हम जाएव वाहर देव अगार।
तखने गहथुकर देव गदाधर तेहि पय अछि सुविचार॥

नारद ने कहा—मैं जाकर कृष्ण को अभी लाता हूँ।

षष्ठ अंक में शिशुपाल रुक्मिणी से विवाह करने के लिए धूमधाम से राजधानी में आ पहुँचता है। रुक्मिणी इस समाचार से कृष्ण के लिए रोने लगती है। नारद ने आकर रुक्मिणी को बताया कि गरुड से कृष्ण यहाँ आ रहे हैं। उन्होंने आपको आश्वस्त करने के लिए मुझे भेजा है। मैं पुन: जाकर कृष्ण को आपके विषय मे बताऊँगा।

नगर-वधुओं ने कृष्ण को देखकर गाया—

इन्दु विनिन्दक ओरे हरिमुख देखि तहि हरल सकल दुख।
वहुत जनम तपें ओरे पाओल लोचन जुगल जुडाओल॥ इत्यादि

कृष्ण ने वियोगिनी रुक्मिणी की वार्ता सुनकर नारद से सन्देश भिजवाया।

यथा विपीदत्यनिश मृगाक्षी तथैव तच्छेत्तुमवेहि मामपि।
भूपालवर्गान् परिभूय तत्करं हृत्वा ग्रहीष्यामि वलाद् प्रभाते॥

दूसरे दिन सवेरे पूजा करने के लिए अम्बिका-गृह में जाने वाली रुक्मिणी की रक्षा के लिए जरासन्ध आदि राजा नियुक्त हुए। इधर सभी यादव भी सन्नद्ध हुए।

गौरी की पूजा रुक्मिणी ने विधिवत् की। अन्त मे वर माँगा—

भवतु मे धवो माधवः।

नारद ने कृष्ण को बताया कि देवी की पूजा करके रुक्मिणी मठ से बाहर निकल कर जाने वाली है। आप गरुडरथ पर विराजमान हों। कृष्ण ने गरुड से कहा कि अब मैं रुक्मिणी का हरण करने चला। आप तो ऐसा करें कि जरासन्धादि मेरे पास न फटकें। गरुड ने कहा कि डैनों से ऐसा तूफान प्रवर्तित करूँगा कि जरासन्ध युद्ध कर न सकेगा।

कृष्ण ने रुक्मिणी को देखा तो विमुग्ध हो गये। अन्य वीर भी रुक्मिणी को देखने के लिए आये। भीड लग गई। नारद ने संकेत दिया कि अभी हरण का ठीक समय है। कृष्ण ने झपटकर रुक्मिणी का हाथ पकड़ा और उसे रथ पर बिठा लिया और ले भगे। यह सब जानकर रुक्मी ने प्रतिज्ञा की—

अनानीय स्वसारं स्वामहत्वा केशवं युधि।
भवद्भिरवधातव्यं न प्रवेक्ष्यामि कुण्डिनम्॥६'१३

कृष्ण रुक्मिणी के साथ द्वारका जा पहुँचे। इधर बलराम ने जरासन्धादि से घोर युद्ध किया। सबको हराकर बलदेव भी यादवों के साथ अपनी नगरी की ओर चलते बने। द्वारिका नगरी में विवाह-महोत्सव सम्पन्न हुआ। स्त्रियाँ गाती हैं—

अति सुदिवस भेल आजे, रुकुमिनि पानि गहथि व्रजराजे। इत्यादि

नारद ने आशीर्वाद दिया। देवताओं ने नीराजना की। फिर कृष्ण कौतुकागार में जा पहुँचे। वहाँ रुक्मिणी के साथ बैठे। रुक्मिणी की सखियों ने गाया—

माधव सुनिअ निवेदन बानी, सुमुखि मिलल तोहि गुनमय जानी। इत्यादि

सभी चलते बने। रुक्मिणी ने रोते हुए कोपपूर्वक कृष्ण से कहा—आप मेरे भाई को तत्काल बन्धन-विमुक्त करें। कृष्ण की आज्ञा से रुक्मी विरूप करके छोड़ दिया गया। तबसे लज्जित होकर वह भोज नगर में रहने लगा।

शिल्प

रंगपीठ पर एकही अङ्क में अनेक स्थलों की घटनायें दिखाई गई हैं। चतुर्थ अङ्क में विदर्भ-नरेश कैशिक और कृष्ण का संवाद कैशिक के स्थान विदर्भ नगर में बताया गया है। इसके पश्चात् दूसरा घटना-स्थल इसी अङ्क में है कुण्डिनपुर मे रंगभूमि का, जहाँ जरासन्धादि हैं। इन दोनों कथांशों के बीच में रंगनिर्देश है—'इति निष्क्रम्य रङ्गभूमिं गतः' अर्थात् प्रतिहारी एकही अंक में दो स्थानों पर अविलम्ब वर्त्तमान होता है।

छठें अङ्क में कुण्डिनपुर और द्वारका दोनों स्थलों की घटनायें दृश्य हैं। पात्र आँख बन्द करते हैं और कुण्डिनपुर से द्वारका जा पहुँचते हैं।

आकाशयान

पंचम अंक में रगमंच पर आकाशयान से नारद को उतारने का दृश्य दिखाया गया है। इसके पूर्व रंगनिर्देश है—

ततः प्रविशति आकाशयानेन नारदः।

जब वे जाने लगते हैं तो कहा जाता है—

इत्याकाशमार्गेण निष्क्रान्तः।

विष्कम्भक

रुक्मिणी-परिणय के पंचम अंक के पूर्व जो विष्कम्भक है, वह वस्तुतः विष्कम्भक नहीं है, अपितु लघु अंक के सदृश है अथवा पंचम अक का भाग है। इसमें नारद और भीष्मक पात्र हैं। इतने ऊँचे पात्र इस अर्थोपक्षेपक में नहीं होने चाहिए। जो घटनायें प्रेक्षकों को ज्ञेय हैं, वे नारद भीष्मक को सुनाते हैं। नारद ने कृष्ण का सन्देश इस विष्कम्भक में सुनाया है। ऐसी स्थिति मे भीष्मक का विष्कम्भक मे पात्र होना उचित नहीं है। यह अंक में होना चाहिए।

छायातत्त्व

गरुड पक्षी को मानवोचित वाणी से युक्त बताया गया है। कृष्ण उससे कहते है- 'मद्वचनात् समुद्रसकाशात् स्थलमुपगृह्य भवता पक्षवातेन जलं प्रक्षिप्य विश्वकर्माणमाहूय तत्र सकलयादवगण-सन्निवेशयोग्या द्वारवती नाम्नी नगरी द्रुतं विधेया।'

गरुड प्रणाम करके उत्तर देते हैं—

देवदेव, सर्वमेतन्मया सम्पादनीयम्।

पंचम अंक मे नारद ने आकारगोपन किया है। उन्ही से सुदक्षिणा कहती है कि आप नारद हैं। वे कहते हैं—कुत्रास्ति नारदः। सुदक्षिणा कहती है कि आप नारद हैं। नारद कहते हैं—मुझ वृद्ध तपस्वी को नारद कहा तो डण्डे से तुम्हें मारूँगा। अन्त में उन्होंने स्वीकार किया—

स एवाहं मुनिः। कथय प्रयोजनम्॥

प्रायः निवेदन पद्यात्मक हैं और मैथिली भाषा मे हैं। निवेदन के विषय हैं रङ्गमंच पर आने वाले का वर्णन तथा पात्रो द्वारा आत्मवर्णन। उच्च कोटि के पात्र संस्कृत भाषा में ही पद्यात्मक आवेदन भी प्रायः करते हैं, अपवाद रूप से मैथिली मे।

सस्कृत और प्राकृत का प्रयोग इतिवृत्तात्मक संवादों मे पात्रो की पदमर्यादा के अनुसार यथायोग्य है। जहाँ तक मैथिली बोलने का सम्बन्ध है, उत्तम, मध्यम और अधम कोटि के सभी पात्र मैथिली के योग्य प्रकरणों को मैथिली मे ही पद्यात्मक विधि से कहते हैं। राजा भी कही-कही मैथिली में पद्यों द्वारा सन्देश देता है।

रुक्मिणी-परिचय किरतनिया नाटक है। देवताओं का कीर्तन तो गीतात्मक है ही। अन्यत्र भी जहाँ किसी का भावुकतापूर्ण भावावेश का वर्णन है, वह भी प्रायशः मैथिली भाषा मे गीतात्मक है। देवी साश्रुपात सप्रश्रय गीत से राजा से रुक्मिणी के विवाह के लिए आवेदन करती है—

भूपति अवहुँ करिय सुविचार।
दुहिता परिणए तोरित कराविअ आनिअ घटक कुमार॥ध्रुवम्

एकोक्ति

नाटक मे मैथिली-भाषात्मक एकोक्तियो की प्रचुरता है। जब कोई नया पात्र रङ्ग पीठ पर आता है, वह प्राय अपना परिचय एकोक्ति द्वारा मैथिली-गीत मे देता है। द्वितीय अंक मे ब्राह्मण की ऐसी एकोक्ति है।

के नहि जानए हमे द्विजराज सतत करिअ हम भूपतिकाज।
धवलतिलक उपवीत विसाल धौत वसन युगकर जयमाल॥ इत्यादि

द्वितीय अंक में कलहवर्धन और हरिवल्लभ नामक घटक एकोक्ति द्वारा अपने परिचय के साथ मन्तव्य भी व्यक्त करते हैं।

प्रथम अङ्क में रुक्मिणी के लिए चिन्तित उसकी माँ की एकोक्ति हृदय-द्रावक है।

निवेदन

कवि अपनी ओर से नेपथ्य मे खड़े किसी पाठक के द्वारा प्रेक्षकों को सुनाने के लिए बहुशः निवेदनों का प्रयोग करता है। रुक्मी अपने पिता की कृष्ण के समर्थन में बातें सुनकर जब चलने लगता है तो निवेदन सुनाया जाता है—

> ज़नक वचन सुनि कोपित भए मने घटकराज लए साथ।
> काढि विभूषन सकल मनोहर चाप वाण गहि हाथ॥
> रुसि चलल कुमार हमे नहि सुनवे रहन विचार॥ इत्यादि

निवेदन के द्वारा नायक का वर्णन करने और परिचय देने की रीति इस नाटक में मिलती है। तृतीय अंक के आरम्भ में कृष्ण के विषय में निवेदन-गीत है।

> हेर इत हर भव भीति कलेश। अति सुखदायक हरि-परवेश॥ इत्यादि

आगे चलकर बलदेव का ऐसा ही वर्णन निवेदन रूप में है—

> रिपुवल-तिमिर-विनाश-दिनेश। रोहिणि नन्दन देल परवेश॥ इत्यादि

फिर उग्रसेन का वर्णन निवेदन-गीति के रूप में है।

निवेदन रूप में प्रयाण-गीत तृतीय अंक मे है।

> कुण्डिन-नगर चलल गोविन्द। सूनि स्वयंवर अतिसानन्द॥ इत्यादि

किरतनिया नाटक

किरतनिया नाटक में मैथिली के गीत हैं। मैथिली गीतों को छोड़ कर इस कोटि के नाटक की परम्परा संस्कृत में भी मिलती है। सदाशिव का प्रमुदित-गोविन्द इसी शती का सात अङ्कों का ऐसा ही नाटक है। कीर्तन की विशेषता से किरतनिया नाम पड़ा है। इसके समकक्ष आसाम में अंकिया नाट और दक्षिण भारत मे यक्षगान पड़ते हैं।

शैली

छोटे-छोटे वाक्य, पूर्व परिचित शब्दावली और स्वाभाविकता से मण्डित रुक्मिणी-परिणय की भाषा सर्वथा नाट्योचित है। नाटक में मैथिली-भाषा एक प्राकृत के रूप में उच्च स्थानीय प्रतीत होती है। इसकी मैथिली-भाषा को हम प्राकृत ही कह सकते हैं। यह आधुनिक प्रान्तीय भाषाओं की भाँति उर्दू-फारसी-अरबी आदि के शब्दों से सर्वथा विनिर्मुक्त है।

मैथिली-भाषा के अतिरिक्त इसमे संस्कृत और शौरसेनी प्राकृत में संवाद पात्रानुकूल रखा गया है। स्त्रियां शौरसेनी बोलती हैं। प्राकृत भाषा भी सर्वथा

रमणीय है। गद्यात्मक संवादों में मैथिली का प्रयोग कहीं नहीं मिलता।

कहीं-कहीं स्त्री-पात्र भी संस्कृत बोलते हैं। यथा रुक्मिणी—

जलार्द्रया किं नलिनीदलेन किम्। श्रीखण्डकर्पूररजश्चयेन किम्॥
आकर्णितं केन विलोकितं वा। हृद्रोगशान्तिः करमार्जनेन किम्॥

अन्यत्र भी पद्यात्मक संवादों से नाटक संवलित है। कुछ गीत संस्कृत में भी हैं। यथा रुक्मिणी द्वारा गाया हुआ—

किम्मे ददातु गिरिजा परिवाञ्छितार्थं।
किं वा हरत्वखिलजीवहरः कृतान्तः!
प्राणस्तथाप्युभयथा भवितावसान
दुःखस्य मेऽद्य सखि तेन हृदि प्रहर्षः॥५.५

छठें अङ्क के अन्त में कतिपय मैथिली गीतों की संस्कृत श्लोकों में छाया सी दी गई है।

अध्याय ५१

रामपाणिवाद का नाट्यसाहित्य

अठारहवीं शती के सर्वोच्च नाटककार रामपाणिवाद की प्रतिमा का विलास केरल में हुआ। उनके द्वारा विरचित अनेक रूपक मिलते हैं। पाणिवाद और पाणिघ उस प्रदेश के ब्राह्मणों की उपाधियां हैं। पाणि (हाथ) से ताल देकर बजाये जानेवाले वाद्य मृदङ्ग के वादक पाणिघ लोग अभिनय में योग देते थे। इस वाद्य का नाम मिलावु है। इनके मामा राघव पाणिघ भी उच्चकोटि के विद्वान् थे। राम का जन्म १७०७ ई० में मंगलग्राम में हुआ था।

राम ने नारायण भट्ट से काव्य-रचना की शिक्षा प्राप्त की थी, जैसा उन्होंने कहा है—

> श्रीनारायणभट्टपाद — करुणापीयूषगण्डूषणाद्।
> इष्टां पुष्टिमुपैति यस्य कविताकल्पद्रुबीजांकुरः॥[1]

सीताराघव की प्रस्तावना से

रामपाणिवाद की संक्षिप्त जीवनी बालभारत के एक तालपत्र पर इस प्रकार मिलती है—

> योऽसौ विष्णुविलासनाम कृतवान् काव्यं तथा प्राकृतं
> काव्यं कंसवधाभिधं गुणयुतं तद्राघवीयं तथा।
> पश्चात्तद्वदुषानिरुद्धमपरं वीथीद्वयं नाटकं
> सीताराघवमेव च प्रदिशतान्मह्यं गुरुर्मंगलम्॥
> प्राकृतवृत्ति तद्वत् श्रीकृष्णविलासकाव्यविवृति च।
> कृतवानन्यानपि यः स जयेच्छ्रीरामपाणिवादः कविः॥
> तालप्रस्तारशास्त्रं च सद्वृत्तो वृत्तवार्तिकम्।
> तद्वत् प्रहसनं किंचित् कृतवान् राममातुलः॥
> क्षोणीदेवक्षितीशो निजमिव तनयं देवनारायणाख्यः
> बाल्ये यं लालयित्वा विधिवदथ परं शास्त्रमध्यापयित्वा॥
> संरक्षन् यत्कुटुम्बं द्रविणवितरणात् कामितं सावयित्वा
> स्नेहेनापालयन्मे दिनमनु स गुरुः श्रेयसे बोभवीतु॥

१७६५ ई० में रामन् नम्बियार ने ये पद्य लिखे। लेखक रामपाणिवाद का भतीजा था। इसके अनुसार अम्पल्लपुल के राजा देवनारायण ने बचपन से ही

---

१. उस प्रदेश में कई नारायण हो चुके हैं। The Contribution of Keral to Sankrit Literature में कुंजुन्नी राजा ने बताया है कि राम के गुरु १७ वीं शती के मेलपुत्तूर के नारायण भट्ट नहीं थे। तृक्कारमन् कुल के नारायण भट्ट भी इनसे भिन्न थे। इसका भी कोई प्रमाण नहीं है।

रामपाणिवाद का पुत्रवत् पोषण किया और उनके कुटुम्ब का सरक्षण किया। १७५० ई० मे अम्पल्लपुल ट्रावनकोर में मिला दिया गया और रामपाणिवाद ट्रावनकोर चले गये, जहाँ मार्तण्ड वर्मा राजा था।

रचनायें

कवि ने मदनकेतु-चरित-प्रहसन, चन्द्रिका और लीलावती वीथी और सीताराघव नाटक लिखे। राघवीय महाकाव्य मे २७ सर्गों मे रामकथा लिखी गई है, जिसमे उत्तरकाण्ड की कथा नही है। इसमें १५७२ पद्य है। राम ने स्वय इसकी बाल-पाठ्या नामक टीका लिखी। राम का दूसरा महाकाव्य विष्णुविलास है। इसमे आठ सर्गों मे भागवत की कथा है। इसकी विष्णुप्रिया नाटक टीका सम्भवत: राम की ही लिखी हुई है। राम के लिखे भागवतचम्पू मे मुचकुन्द-मोक्ष तक भागवत कथा मिलती है। इसमे सात स्तवक मिलते हैं। इसमे प्राकृत के कतिपय गद्य भी हैं। राम पाणिवाद के स्तोत्रों मे मुकुन्दशतक नामक दो रचनायें हैं। इनमे से एक मे १०७ और दूसरे में १०१ पद्य हैं। प्रत्येक पद्य-दशकों में विभक्त है। अम्बरनदीश-स्तोत्र मे कृष्ण की प्रशसा मे ११२ पद्य और सूर्याष्टक में ८ पद्य हैं। इनके शिवशतक मे शिव की प्रशंसा है।

उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त रामपाणिवाद की अनेक ग्रन्थों पर टीकायें मिलती है और उनके रचे शास्त्रीय ग्रन्थ हैं। इनके वृत्तवार्तिक मे छन्दों का और तालप्रस्तार मे अनुष्टुप् छन्द के विविध रूपो का सोदाहरण लक्षण है। प्राकृत मे उनके काव्य कसवध और उषानिरुद्ध है। उन्होने वररुचि के प्राकृत-प्रकाश की व्याख्या लिखी है। इनके अतिरिक्त अनेक और रचनायें राम द्वारा प्रणीत बताई जाती हैं, जो तत्त्वानुशीलन से दूसरो की प्रतीत होती हैं।

सीताराघव

सीता-राघव का प्रथम अभिनय वञ्चि मार्तण्ड की पण्डित-परिषद् के प्रीत्यर्थ हुआ था। पद्मनाभ के मन्दिर में १७५६ ई० मे मुरजप के उत्सव में इसके द्वारा मनोरजन का कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया था।

कथावस्तु

राम और लक्ष्मण विश्वामित्र के आश्रम से जनकपुर गये। विश्वामित्र ने चारायण नामक दूत भेजकर दशरथ की एतदर्थ अनुमति ले ली थी। विश्वामित्र के आश्रम मे राम ने मारीच को तो उडा कर दूर फेंक दिया था। बचा था उसके साथ आया हुआ उसका शिष्य मायावसु। मायावसु को यथेष्ट रूप प्रदान कराने वाली एक अगूठी मारीच से मिल गई थी, जिससे उसने दशरथ का रूप बना कर मिथिला मे प्रवेश किया। उसका उद्देश्य था सीता से राम के विवाह मे विघ्न डालना।

विश्वामित्र ने जनक से कहा कि राम के द्वारा शिवधनुष को प्रत्यंचित करने का

आयोजन करें। जनक इसके लिए बहुत उत्साहित नही थे, क्योंकि उन्होंने देख लिया था कि किस प्रकार बड़े-बड़े वीर असमर्थ हो चुके हैं। फिर भी विश्वामित्र की प्रेरणा से जब वे कुछ तैयार हुए तो नेपथ्य से सुनाई पड़ा—

भो भो साहसिकस्य शासनगिरा गाधेस्तनूजन्मन-
श्चण्डीशस्य शरासनं नृपशिशो मास्म ग्रहीद्ग्रहम्।
संरोद्धुं प्रियनन्दनो दशरथो राजा तवोपक्रमं
साकेतात् स सुमन्त्र-यन्तृकरथारुढः स्वयं प्रस्थितः ॥ २·१३

विश्वामित्र ने क्रोधपूर्वक कहा कि जिसने मुझे साहसिक कहा, उसे अपनी तप की अग्नि मे जलाता हूँ। उन्हें जनक ने रोका—

कोपस्य कोऽयं क्रमः।

मायावसु और उसका सेवक करम्भक क्रमशः दशरथ और सुमन्त्र का वेश धारण करके मिथिला में आ पहुँचे।

मायावी दशरथ ने कहा कि सारी दुनिया से झगड़ा मोल लेना होगा, यदि धनुष प्रत्यञ्चित करके राम सीता से विवाह करते हैं। उसकी इन बातों से काना-फूसी होने लगी कि यह तो दशरथ जैसा नहीं लगता। फिर उस मायावी ने विश्वामित्र से कहा कि आप मेरे लड़कों को यज्ञ समाप्त होने पर भी क्यों नही लौटा देते? आपने कोई दूत भी नही भेजा। तब तो विश्वामित्र का सन्देह दृढ हो गया। उन्होंने कहा कि क्या आप को उन्माद हो गया है? मैंने चारायण जो भेजा था और आपने स्वीकृति दी थी। मायावी दशरथ ने कहा कि मारीच शिष्य मायावसु ने कुछ गड़बड़ी की होगी। वही कहीं चारायण बन कर अयोध्या तो नहीं आया था? यही स्पष्ट करने के लिए मैंने आपसे ऐसा पूछ लिया। मायावी ने जनक के पूछने पर फिर जब अपनी कमजोरी बताई कि राम धनुष के पास नही फटकेंगे तो जनक ने विश्वामित्र से कहा—

महीतल-कलाभुजोऽप्यहह नैवमाचक्षते।
जगत्त्रितयशासिनो मनुकुलोद्भवाः किं पुनः॥

विश्वामित्र ने उत्तर दिया—

अयं न हि महीपतिर्दशरथस्तथा विग्रहे।
निकामनिरवग्रहो नियतमेष नक्तंचरः॥२·३६

प्रतिहारी ने आकर बताया कि शतानन्द के साथ महाराज दशरथ सपरिवार पधारे हैं। तब तो जनक ने मायावी दशरथ से पूछा कि यह क्या बात है। उसने कहा कि बहुत से नकली दशरथ आदि घूमा करते हैं। उनसे हानि की सम्भावना है। हमें तो राम को लेकर शीघ्र अयोध्या की ओर चल देना है। तब तक शतानन्द आ पहुँचे। उन्होंने देखा कि यहां तो दशरथ पहले से बैठे हैं। उन्होंने पूछा कि राम ने क्या धनुप को प्रत्यञ्चित किया? जनक ने कहा कि ये

दशरथ रोक रहे हैं। शतानन्द ने कहा कि यह कैसा दशरथ ? यह तो राक्षस है। राम शीघ्र धनुष को प्रत्यञ्चित करें। मायावी दशरथ ने फिर रोका तो जनक ने उससे कहा—

धिङ्मूर्खं निशाचरेषु कस्यादरः।

पश्चात् नेपथ्य से सुनाई पड़ा कि राम ने धनुष तोड़ दिया। मायावसु और करम्मक परशुराम की सहायता लेने के लिए भग गये।

तृतीय अंक के पहले के विष्कम्भक के अनुसार रामादि चार भाइयो का विवाह सीतादि चार बहनो से हो गया। परशुराम मायावसु की योजनानुसार तृतीय अंक में आ पहुँचते हैं। परशुराम राम के द्वारा शान्त किये गये। कन्याओ की विदाई के पूर्व जनक, शतानन्द आदि ने उन्हें पतिगृहाचार की सीख दी। वही राम के यौव-राज्याभिषेक की तैयारी होने लगी। चौथे दिन अभिषेक होने वाला था।

चतुर्थ अंक के पहले विष्कम्भक मे शूर्पणखा के द्वारा नियोजित अयोमुखी ने इस अवसर पर मिथिला मे राक्षसों का अच्छा काम बनाया। वह मन्थरा का रूप बनाकर कैकेयी के पैर पर गिर कर बोली—

मुग्धे दुग्धमितिभ्रमेण गरलं पातुं प्रवृत्तासि किं।
रामो यद्यभिषेचितः स भरतो राज्यादपि भ्रंशितः ॥४.२

उसके बारबार कहने पर कैकेयी ने दशरथ से दो वर माँगे—१४ वर्ष का राम का वनवास और भरत का यौवराज्य। फिर राम वन चले। अयोमुखी ने इस प्रकार दो कामो का बीज डाला—

१ रावण द्वारा सीता का ग्रहण।
२. शूर्पणखा द्वारा राम की पति-रूप में प्राप्ति।

चतुर्थ अंक मे रावण सीता के लिए मदनातङ्कित है। उसका मनोरंजन करने के लिए प्रहस्त हाथ में चित्रपट लिए आया। गन्धर्व भी वीणा लिए उसका मनो-रंजन करने आया। वह वस्तुतः इन्द्र का गुप्तचर था। अन्त में नाक-कटाई हुई शूर्पणखा नेपथ्य से अपनी कथा सुनाती है। रावण मारीच को सन्देश भेजता है कि अब तुम्हें क्या करना है।

मारीच-मरण, सीताहरण, वालि-मरण, हनुमान् का सीता को ढूँढने जाना आदि हो जाने के पश्चात् मायावसु राम, लक्ष्मण और सुग्रीव को मार डालने के उपक्रम में चारण का रूप बनाकर पहुँचता है। वह बतलाता है कि मैं वज्राङ्गद नामक चारण हूँ। मुझे इन्द्र ने भेजा है कि मेरे पुत्र वाली को मारकर राम ने जो अपराध किया है, उसका बदला लेने के लिए तुम वालि पुत्र अंगद को शीघ्र ले आओ। मैं दक्षिण-समुद्र-तट पर घूमते-घूमते पहुँचा। वहाँ अंगद ने मुझसे बताया है कि सम्पाति लंका गया, यह कहकर कि आज-कल मे हनुमान और सीता को लाता हो

हूँ। पर वह रोते हुए लौटा कि रावण ने जब देखा कि सीता प्रसन्न नहीं हो रही है तो उसने तलवार से उसका सिर काट डाला। इसे सुनकर रामादि मूर्छित हो गये। उनके सचेत होने पर मायावसु ने बताया कि हनुमान् ने जब तोड़-फोड़ की तो इन्द्रजित् ने उसे मार डाला। अंगद भी उनकी यह स्थिति देखकर प्रायोपवेश द्वारा मर मिटे।

पश्चात् दधिमुख नामक वानर ने आकर बताया कि सफल हनुमान् लंका को जला कर लौट आये। तब तो मायावसु सीधे भाग चला।

छठें अंक में राम के सेतुबन्ध-निर्माण करके लंका पर आक्रमण करने की कथा है। लंका में युद्ध होने लगा मायावसु मारा गया। कुम्भकर्ण लड़ाई करने लगा और वह दीर्घनिद्रा प्राप्त कराया गया। मेघनाद का वध हुआ। फिर रावण लड़ने के लिए आया। इन्द्र ने सारथि-सहित अपना रथ राम की सहायता के लिए भेजा। उसकी मृत्यु के अनन्तर युद्ध समाप्त हुआ।

सप्तम अंक मे राम, लक्ष्मण, सुग्रीव, विभीषण और सीतादि विमान पर अयोध्या के लिए प्रस्थान करते हैं। वे चित्रकूट के ऊपर से होते हुए प्रयाग में भरद्वाज-आश्रम पहुँचे। महर्षि के आश्रम-वाट में वटवृक्ष हैं—

शारीशुकायतनकोटरसम्प्ररूढ-श्यामाकशालिफलशालिवटद्रुमाणि।
गोगर्भिणी-चरितदर्भकुशाङ्कुराणि विश्रान्तिमाश्रमपदानि दृशोर्दिशन्ति।७·१६

सभी ऋषि-महर्षि, जनक, राजा, महाराजादि राम के राज्याभिषेक के लिए अयोध्या पहुँचे थे। विमान अयोध्या पहुँचा। वहाँ मातायें मिलीं—

प्रस्नुतस्तनपयोनयनाम्भो—निर्झरस्नपितशुष्कशरीराः।
सम्भ्रमस्खलितपादसरोजा मातरः स्वयममूरभियान्ति॥७.२५

राम सिंहासन पर बैठे। भरत ने लाकर उनकी पादुकायें उन्हें पहनाई।

रामपाणिवाद ने उत्तर-रामचरित, बालरामायण, जानकी-परिणय, आश्चर्य-चूडामणि, अनर्घराघव आदि रामपरक नाटकों से पर्याप्त संकेत लेकर इस नाटक की कथा को रूपित किया है।

नाट्यशिल्प

प्रधान पात्रों के रंगमञ्च पर आने की सूचना प्रावेशिकी ध्रुवा गीति के द्वारा दी गई है। इस नाटक मे अर्थोपक्षेक का एक रूप चित्रपट के माध्यम से अङ्कभाग में प्रस्तुत किया गया है। प्रहस्त ने सीता-विषयक जो चित्रपट दिया, उसके विषय में रावण के देखते समय बताता है—

सुत-विप्रयोगजरुजोज्झितस्तनुं पितुरौर्ध्वदैहिक विधेरनन्तरम्।
गुरुशासनात् प्रतिगृहीतपादुको भरतः प्रयाति किलैष नगरं प्रतिष्ठते॥४.३१

रंगमंच के एक ओर कोई पात्र कुछ अन्य प्रसंग में कह-सुन रहा है और दूसरे

भाग मे साथ ही कतिपय अन्य पात्र किसी दूसरे प्रसंग मे बातचीत करते हैं।[1]

छायातत्त्व

सीताराघव मे छायातत्त्व का बाहुल्य है। इसमे मायावसु और करम्भक क्रमश: दशरथ और सुमन्त्र बनकर मिथिला मे आते है। राम भी उनसे मिलकर उन्हे दशरथ ही समझते है। इसके पश्चात् अयोमुखी मन्थरा बनकर कैकेयी से राम का वनवास मँगवाती है।

छायात्मक प्रवृत्तियों का एक अन्य स्वरूप चतुर्थ अङ्क मे प्रहस्त के द्वारा रावण को सीता का चित्रपट अर्पित करने से आरम्भ होता है। यथा, चित्र देखकर रावण की उक्ति है—

द्वन्द्वं सुन्दरि पुण्डरीकमुकुलस्पर्धालु वक्षोजयो—
र्गाढं वक्षसि निक्षिप स्मरकृतातङ्कस्य लंकापतेः।
किं चोदंचय चंचलाक्षि वदनं चुम्बामि बिम्बाधरं
किं वा नाभिदधासि कामितमितो यद्देवि दासोऽस्मि ते ॥४.२५

यह देखकर प्रहस्त कहता है—

अहो प्रतिकृतावप्यस्यां सत्यजानकीबुद्ध्येव प्रलपति देवः।
रावणः —हेमवति, कुतः कारणादियं प्रतिवचनेनापि न सम्भावयति माम्।
प्रहस्तः —महाराज, प्रणयकुपितयानया भवितव्यम्।
रावण चित्र-जानकी के पैर पर गिरना चाहता है।

एकोक्ति

चतुर्थ अक मे रगमच के एक ओर प्रवेश करता हुआ गन्धर्व अपनी एकोक्ति मे वीणा को दयिता बताता है और अपनी यात्रा की भूमिका देता है। पंचम अंक मे रगमंच के एक ओर प्रवेश करता हुआ मायावसु एकोक्ति द्वारा अपनी योजना बताता है और वस्तुस्थिति का परिचय देता है।

आकाशवाणी

शास्त्रीय अर्थोपक्षेपको के बाहर है आकाशवाणी का प्रयोग। पंचम अक मे आकाशे है—

मिहिरान्ववायजलराशिचन्द्रमा भरताग्रजो यदवधीन् मृधाङ्गणे।
तदिदं चतुर्दशसहस्र-सम्मितं खरनेतृकं बलमवेहि रक्षसाम्॥ ५.३

दूसरी आकाशवाणी है रावण के द्वारा सीताहरण और सीता को खोजने के लिए राम के पर्यटन के विषय मे। स्वभावत. इतनी बड़ी राम-कथा अङ्को मे दृश्य नही हो सकती है। इस कथा के एक बडे भाग को कवि ने शास्त्रीय अर्थोपक्षेपको के द्वारा और अङ्कभाग मे कही चित्रपट की कथा द्वारा, कही गन्धर्वादि पात्रो के घटनात्मक

१. पंचम अंक मे एक ओर मायावसु और दूसरी ओर रामादि ऐसा करते हैं।

आत्मपरिचय के द्वारा और कही आकाशवाणी से बताया है। इस उद्देश्य से स्वगत और एकोक्तियों का भी प्रयोग अङ्कभाग में किया गया है।

चरित्र-कलना

जहाँ अन्य कवियों ने रामचरित के औदात्त्य को अक्षुण्ण रखने के लिए वालि-वध प्रकरण को छोड़ दिया या उसमें हेर-फेर किया, वहाँ प्रस्तुत नाटक में राम ने स्पष्ट कहा है कि छद्मवृत्ति से वालि को मैंने मारा। यथा,

> सोऽपि त्रैलोक्यहेलाविजयपटुमहाविक्रमः शक्रसूनु—
> नीतो धिक् छद्मवृत्त्या निधनमचरितस्फारवीरव्रतेन ॥ ५.१६

राम को सत्यवादी बनाये रखना कवि का व्रत है।

शैली

रामपाणिवाद की शैली वैदर्भी रीति-मण्डित सरल और सुबोध है। नीचे के पद्य को लें। यह गद्य की भाँति परिचेय है—

> रविकुलभुवां राजन्यानां विदेहमहीश्वरैः सह।
> समुचितः सम्बन्धोऽयं यदि प्रतिपत्स्यते॥
> यदि च भगवान् विश्वामित्रः स्वयं प्रतिभूरपि।
> प्रियतरमिदं श्रेयः कस्मै जनाय न रोचते ॥१.१६

लोकोक्ति

रामपाणिवाद ने कहीं-कहीं लोक्तियों का प्रयोग किया है। यथा—

१. न खलु माधवीलता उद्भिन्नमात्रे पल्लवानि दर्शयति।
२. महानद्यो महोदधिं वर्जयित्वा क्वान्यत्र विश्राम्यन्ति।
३. असदृशपुरुषाधिगमः शल्यं नु एकमामरणम्।

जीवन-दर्शन

रामपाणिवाद वक्रपथ से भी जीवन को उदात्त बनाने वाले ठोस तत्त्वों को बताते चलते हैं। प्रथम अंक में यह चर्चा आई है कि विश्वामित्र स्वयं क्यों नहीं यज्ञ की रक्षा कर लेते? उत्तर है—

> शेषेण भारयति चक्रधरो धरित्रीं मेघेन वर्षयति सोऽपि पतिर्नदीनाम्।
> नैशं तमः शमयति ज्वलनेन भास्वान् नानन्तरं स्वविभवं प्रथयन्ति संतः॥१.६

लीलावती वीथी

लीलावती वीथी संस्कृत में दुर्लभ कोटि की रचना है। चन्द्रिका-वीथी में इस कोटि की रचना का लक्षण मिलता है—

> पात्रद्वय-प्रयोज्या भाणवदेकाङ्कसन्धिश्च।
> आकाश-भाषितवती कृत्रिममितिवृत्तमाश्रिता वीथी॥

पहले के नाट्य-शास्त्रकारों ने प्रायशः कहा है कि वीथी में एक या दो पात्र

होते हैं। जब एक पात्र होगा तो आकाश-भाषित की विशेषता होगी, किन्तु राम की वीथी में दो ही पात्र होंगे—एक नहीं और आकाशभाषित भी विशेष रूप से होगा ही।

लीलावती का अभिनय महाराज देवनारायण के आश्रित विद्वानों के आज्ञानुसार हुआ।[1] उनका आदेश ही इस वीथी की विशेषताओं को बताता है। यथा,

अभिनवपदवन्ध-बन्धुरार्थामभिनय कामपि वीथिकामुदाराम्।
शुचिरसमधुराणि या बिभर्ति प्रचुरविचित्रतराणि चेष्टितानि॥ प्रस्तावना से

रामपाणिवाद ने वीथी लिखकर सूत्रधार को दी थी, जैसा सूत्रधार ने कहा है—

लीलावती वीथी मदधीनैव

प्राचीन काल में नृत्तोत्सव का आँखों देखा रूप सूत्रधार के मुख से परिचेय है।

गम्भीरनीरदमृदङ्गरवाभिराम भृङ्गाङ्गना मधुरगीतकलासनाथम्।
विद्युत्प्रदीपकलिते विपिनान्तरंगे नृत्तोत्सवं वितनुते ननु नीलकण्ठ.॥ ६

अर्थात् नृत्तोत्सव में रात्रि के समय प्रकाश का प्रबन्ध किया जाता था।

रूपक की कथा की भूमिका नटी अपने परिवार विशेषतः अपनी कन्या की समान-कथा की चर्चा करके प्रस्तुत करने की रीति मध्ययुग में विशेष प्रचलित हुई। इस वीथी में यही रीति सूत्रधार ने नियोजित की है। नटी की बहिन की कन्या रङ्गलक्ष्मी चम्पा के सगीतमल्ल से प्रेम करती थी, पर संगीतमल्ल की पत्नी विरोध करती थी। बस, ऐसी ही कथा वीथी की हैं।

कथावस्तु

राजसभा मे कामामात्य विदूषक लीलावती से वीरपाल राजा का विवाह करा देना चाहते थे, पर राजा की पहली पत्नी कलावती ऐसा नहीं होने देना चाहती थी। उसने सिद्धिमती नामक योगीश्वरी को इसमें सहायता करने के लिए तैयार कर लिया।

लीलावती वीरपाल के वियोग में सन्तप्त है। वीरपाल लीलावती के वियोग में जैसे-तैसे जी रहा है। लीलावती का परिचय है कि कर्णाट-राज ने शत्रुओं के द्वारा अपनी कन्या के अपहरण के भय से उसे राजमहिषी कलावती के संरक्षण में रख दिया है। कलावती ने जान लिया है कि उसके लाख प्रयास करने पर भी राजा का लीलावती के प्रति प्रेम बढ़ रहा है। वह अपने भाग्य पर रो रही है। राजा दक्षिण नायक है। वह नहीं चाहता है कि कलावती का हृदय टूटे। राजा चिन्तित है।

लीलावती ने अपने ताटङ्क पर राजा के लिए अन्यापदेश लिखकर अपनी स्थिति बताने का उपक्रम विदूषक के माध्यम से किया, किन्तु वह ताटक विदूषक ने गिरा दिया, जिसे महारानी की दासी कन्दलिका ने पाकर पढ़ा और फिर उसे विदूषक को दे दिया।

---

१. विद्वानों की सभा को राजपरिषद् कहते थे।

योजनानुसार महारानी कलावती को साँप ने काटा और वह मूर्छित हो गई। राजा भी मूर्छित हो गया। तभी इधर विदूषक सँपेरा बन कर आया, उधर रानी स्वस्थ हो गई। यह सब रङ्गपीठ के बाहर रहने वाली योगीश्वरी का इन्द्रजाल था।

राजा को अन्तःपुर में पहुँचने पर सँपेरा (विदूषक) मिलता है। राजा कृतज्ञ है। रानी सँपेरे को पारितोषिक देने के लिए बुलाती है। उसने कुछ लिया नहीं। वह साँपों को खिलाने-पिलाने के बहाने चलता बना।

रानी ने राजा को कन्दलिका द्वारा बताया हुआ ताटंक-श्लोक सुनाया। अन्त में रात में सोते समय रानी ने राजा की खोज करवाई। रानी ने सपना सुनाया कि मुझे स्वप्न में शिव का आदेश हुआ है—

वत्से कलावति सरीसृपदूषिता त्वमद्याहितुण्डिकमिषेण मयैव गुप्ता।
तत्पारितोपिकमतो वितराश्रुतं मे येनायमृद्धिमुपयास्यति वीरपालः ॥५१

पारितोपिक था कि लीलावती को वीरपाल ग्रहण कर ले। रानी ने उसका विवाह राजा से कर दिया। जब नवदम्पती को मंगल देवताराधन के लिए जाना था, तभी लीलावती को ताम्राक्ष नामक असुर ने मायाकर्म से हर लिया। राजा ने उसे परास्त करके लीलावती को पुनः प्राप्त किया। विदूषक ने राजा को बता दिया कि यह सब योगीश्वरी ने किया है।

नाट्यशिल्प

वीथी में विष्कम्भक नहीं होना चाहिए। लीलावती में इस नियम का उल्लंघन किया गया है।

नायक की एकोक्ति विष्कम्भक के पश्चात् पाँच पद्यों की है, जिसमें वह नायिका-विरह-सन्ताप की घोषणा कर रहा है। यथा—

वेणीलतादरतिरोहितमुद्वहन्तीं वक्त्रं पयोद परिवीतमिवेन्दुबिम्बम्।
आवेपमान-तनुरास्थितलज्जया मे लीलावती वलितलोलतरैरपाङ्गैः ॥१६

आकाशभाषित से अधिक महत्त्व की हैं चूलिकायें, जिनके द्वारा कोई पात्र रंगपीठ पर आये बिना ही रंगपीठ के पात्र से बात करता है। ऐसा करने से रंगपीठ पर पात्र संख्या तो नहीं बढ़ती, किन्तु वस्तुतः एक अधिक पात्र का संयोजन तो हो ही जाता है।

रूपक साहित्य में अर्थोपक्षेपक में पत्र-सन्देश की गणना नहीं है, किन्तु उसका प्रयोग बहुशः है। इस वीथी में पात्रों की संख्या कम करने के लिए पत्र का उपयोग किया गया है। पत्र है राजा के नाम नायिका लीलावती का—

मम नयनयोरातिथ्यं ते यदा मधुरस्मितं
वदनकमलं दैवादासीत् तदा प्रभृति स्मरः।
कुसुमविशिखैर्दीनं चेतो दुनोति दिने दिने
भुवनशरणं भूत्वा श्रीमन् किमेवमुपेक्षसे ॥

पात्रो की संख्या कम रखने के लिए एक ही पात्र आवश्यकतानुसार अपने को बदल लेता है। विदूषक सँपेरा बनकर रानी को साँप काटने पर उपचार करता है। उसका नाम तब भद्रसिद्धि है।

पात्रो की संख्या दो से अधिक न हो—इसके लिए रानी कलावती की बातो को आकाशभाषित से सुनाना कुछ अड़बड सा लगता है। ऐसा लगता है कि रंगपीठ से थोडी दूर पर कोई दूसरा रगमच है, जहाँ पात्र बातें करते हैं, जिसे पहले रगमच के पात्र सुनते हैं। यथा कलावती का यह कहना—

कन्दलिके, तं श्लोकं श्रावय महाराजम्, यस्य चिरविचारितोऽप्यस्माभिर्न ज्ञातोऽभिधेयः।

यहाँ कलावती रगमंच पर नही है, पर राजा उसकी बात का उत्तर देता है—

देवि के वय भवदनाकलिते बुद्धि प्रवर्तयितुम्।

सारा उपक्रम कुछ गर्भाङ्क के आदर्श पर निर्मित सा लगता है।

कपट-नाटक

विदूषक से केलिमाला इस नाटक के कपटात्मक सविधान की चर्चा करती है। यथा,

कः पुनस्ते कपटनाटकं न जानाति।

इस कपट-नाटक के लिए अन्य इस कोटि की रचनाओं के समान ही इन्द्रजाल-विद्या का उपयोग किया गया है।

कन्दलिका भी विदूषक से कहती है—

सर्वं मया ज्ञातं युष्माकं कपटनाटकम्

विदूषक स्वयं सँपेरा बन कर रगमञ्च पर आता है। यह कपट है। ऐसी कापटिक प्रवृत्तियाँ नाटक में छायातत्त्व का विस्तार करती हैं।

कवि ने इसके कपट-वृत्त को इन्द्रजाल-प्रबन्ध नाम दिया है।

लोकोक्ति

वीथी मे लोकोक्तियों का समीचीन प्रयोग हुआ है। यथा

१. अमथ्यमानं दधि न नवनीतं मुंचति।
२. दुग्धसागरमुज्झित्वा कुतो लक्ष्मीरुद्गच्छति।
३. कः शुक्तिभंजनभयेन मुक्तावलिं मुंचति।
४. को दुग्धस्नानपानसमये आरनालं चिन्तयति।
५. तदेव बीजं स एवांकुरः।
६. कुतः पंकजिनी विना राजहंसस्य निर्वृत्तिः।
७. आमन्त्रितः को मिष्टभोजनं परित्यजति।
८. गोष्ठी सा विरला न यत्र घटते सत्ता पुरोभागिनां
नारी सा खलु दुर्लभा न कुसृतिश्लिष्टं यदीयं मनः।
दुष्प्रापं च तदम्बु तीरजरजोराजिर्न यद् दूषयेद्
दुस्साधं च सुखं तदाविलयते दुःखानुवृत्तिर्न यत् ॥५८

शैली

रामपाणिवाद अन्यापदेशात्मक मनोरम पद्यों का उपयोग सन्देश देने के लिए करते हैं। यथा,

राजहंस मम पंकजिन्या दर्शयित्वा क्षणमात्मविलासम्।
साम्प्रतं पुनर्घनोत्कलिकां मे केवलं करोषि मुक्तमिदं ते ।।२७

व्यंग्य अर्थ की महिमा अविरल है। यथा,

तच्चेत्ते ननु कृतमश्मना विधात्रा ।।२८
पिब प्रियासन्देशपीयूषम्।

कहीं-कहीं रसपेशलता की दृष्टि से विशेष महत्त्व के गीत सन्निवेशित हैं। यथा, नायिका का सन्देश है—

सजलजलधरा वोज्ज्वला विद्युतो वा
सुरभिलमधुवाही केतकी मारुतो वा।
विरहिमथनक्रोडाकर्मठो मन्मथो वा
सुभग तव कृते मां नाम शेषं करोति ।।३६

पदयोजना रसानुकूल है। शृंगारित राजा को रसान्तरित वृत्ति देने के लिए नैपथ्य से सुनाया जाता है—

उत्तानीकृतभोगमण्डलचलज्जिह्वाकरालाकृतिः ।।३७

मदनकेतु-चरित

मदनकेतु-चरित की प्रस्तावना से स्पष्ट है कि इसका लेखक सूत्रधार था, कवि नहीं। सूत्रधार का कथन है—

रामपाणिवादेन विरचितं मदनकेतु चरितं नाम प्रहसनमस्मद्वशे वर्तते इति।

इसका अभिप्राय है कि सूत्रधार को रामपाणिवाद ने अभिनय के लिए इस प्रहसन की प्रति दी थी।

इसका प्रथम अभिनय भगवान् रङ्गनाथ के यात्रोत्सव में उपस्थित परिषद् के मनोविनोद के लिए हुआ था।

सूत्रधार ने इसकी प्रस्तावना में एक शाश्वत लोकधारणा की चर्चा की है कि समसामयिक साहित्य उत्कर्ष-विहीन होता है।

कथावस्तु

किसी भिक्षु की प्रेयसी अनङ्ग-लेखा नामक वाराङ्गना अभी तक उसे दुष्प्राप्य थी। उसे सिंहल के राजा मदनकेतु की पत्नी शृङ्गारमंजरी का सन्देश मिला कि आप से रानी जी को कुछ काम है। उसने कहा कि सवेरे का काम समाप्त करके रानी जी के पास पहुँचता ही हूँ।

कलिंग को जीतकर मदनकेतु ने वहाँ मदन वर्मा को युवराज बनाया था। मदन मेरे देश का राजा मदनकेतु और भिक्षु विष्णुत्रात गणिकाओं

के चक्कर मे पडे रहते हैं। ऐसी स्थिति मे राज्य की जनता का चारित्रिक ह्रास होगा। इस स्थिति को रोकने के लिए मदनवर्मा ने शिवदास नामक कापालिक योगी को मदनकेतु के पास भेजा कि उनका मनोरंजन इनकी अद्भुत सिद्धियो से होगा। महाभैरव-रूपधारी शिवदास महराज के सामने आया। राजा की इच्छा जानकर उसने कहा कि उस प्रेयसी गणिका को आपके लिए प्रस्तुत करता हूँ।

तभी भिक्षु महारानी से मिलने आ गया। वह राजा को छोडकर चलती बनी। राजा ने शिवदास से कहा कि द्रविड देश मे चन्द्रलेखा नामक गणिका है। उसके प्रत्यङ्ग-ध्यान में विलीन मुझसे अब जिया नही जाता।

इधर कोई कुट्टिनी किसी योगी को घसीटते हुए राजद्वार पर लाई कि इसने बलात् मेरी कन्या का प्रधर्षण किया है। कुट्टिनी ने भिक्षु की हड्डी-पसली तोड दी थी, फिर भी वह मन ही मन उत्फुल्ल था कि—

गाढं पीडितवान् हठादपि यतो वक्षोरुहौ वक्षसा।
सोऽहं मुग्धदृशो विवृत्तमपि तद्वक्त्राब्जमाघ्रातवान् ॥२२

उसने कुट्टिनी से कहा कि यह सब मैंने रानी की इच्छा से किया है। रानी ने कहा है कि राजा अनङ्गलेखा से प्रेम करता है। राजा को उससे संगमित कराना है। आप तो जैसे हो, उसे यहाँ लाइये।

राजा ने खडे होकर भिक्षु का अभिवादन किया। राजा और शिवदास ने भिक्षु को मुक्त कराया। कुट्टिनी ने कहा कि आज इन्होंने मेरी कन्या को उसके न चाहने पर भी अकेले मे ले जाकर बलात् नङ्गी करके······अधिक क्या कहूँ। भिक्षु ने कहा—

धिक्कुट्टिनी यदियमेव हि तां निरुन्धे।

अर्थात् यह उसे रोक रही है।

राजा ने कहा कि ये शिवदास महाभैरव अभी सब कुछ ठीक करते हैं। शिवदास ने ध्यान-शक्ति से चन्द्रलेखा को खींच कर सबके समक्ष वही प्रस्तुत कर दिया। वह आते ही राजा के प्रति सस्पृह हो गई। राजा ने उसे देखकर सौन्दर्याभिभूत होकर शिवदास से कहा कि तुम भी आँखें खोलो, इसे देख लो। शिवदास ने चन्द्रलेखा से कहा कि ये महाराज सपने मे ही तुम्हारे मुखकमल की गन्ध लेते हैं। चन्द्रलेखा ने कहा—महाराज, आपकी जय हो।

इस बीच शृङ्गारमजरी देवी आ गयी। वे खम्भे की आड में खड़ी होकर उनकी बातें सुनने लगी। राजा ने चन्द्रलेखा से कहा—

द्वन्द्वं सुन्दरि पुण्डरीकमुकुलस्पर्धालु वक्षोजयो-
र्गाढं वक्षसि निक्षिप द्रुततरं कन्दर्पदग्धस्य मे।
किंचोदंचय चंचलाक्षि वदनं चुम्बामि बिम्बाधरं
बिम्बोष्ठविरहेण केवलमहं क्रीतोऽस्मि दासोऽस्मि ते ॥३०

चन्द्रलेखा ने कहा कि यह तो मेरे पति द्वारा आपका उपचार देवीजी के प्रति अन्याय होगा। राजा ने स्पष्ट कहा—

देवीविरोधमनुशंक्य तवांगसंगसौख्यं चिराभिलषितं कथमुज्जिहामि।
व्यालीभयेन मलयाचलकन्दरस्थं को वा पटीरनरसारमपाकरोति ॥३१

शिवदास ने राजा का समर्थन किया—

केतकीकुसुमगर्भसम्भृतां माधुरीजितसुधां मधूलिकाम्।
कण्टकावलिपरिक्षतोऽपि सन् नैव मुञ्चति कृती मधुव्रतः ॥३२

राजा ने चन्द्रलेखा की ठुड्डी पकड़ कर उठाई ही थी कि रानी सामने आ टपकी और बोली—बहुत ठीक! राजा झिझके तो उन्होंने कहा कि आप सर्पिणी के भय से चन्दनरस को या कण्टक के भय से केतकी-मधूलिका को क्यों छोड़ें?

शिवदास ने रानी के कान में कहा कि मैं आप ही का काम कर रहा हूँ। आप देखते जायें। महाराज को सदा के लिए आपकी मुट्ठी में करने के लिए आया हूँ। आप तो ऐसा करें और कान में कुछ कह दिया।

रानी ने चन्द्रलेखा को गले लगाया और राजा से कहा कि यह मेरी बहिन है। इससे ऐसा व्यवहार करें कि यह अपने बन्धुजनों का स्मरण करती हुई न घुले। मैं इसके लिए अलंकार लाने जा रही हूँ। चन्द्रलेखा राजभोग के लिए सजने-धजने चली गई।

भिक्षु ने देखा कि शिवदास ने किस प्रकार राजा का काम बना दिया। उसने अपने लिए भी प्रस्ताव रखा कि कब तक मेरी कामना पूरी होगी। शिवदास ने काम के सम्बन्ध में मन ही मन कहा—

कुलं वा शीलं वा विनयमथवा शौर्यमपि वा
प्रभुत्वं वा न त्वं गणयसि कदाचित्तनुभृताम् ॥३७

शिवदास ने भिक्षु से कहा—यह लो। यह कह कर मदिरा-चषक को भरा। भिक्षु ने कहा—हम परिव्राजकों को इसे नहीं लेना चाहिए। शिवदास ने कहा कि अनंगलेखा के पिये हुए मद्य को तो पी लेते हो और अब यहाँ बन रहे हो। भिक्षु ने पी ली।

राजा ने समग्र जनपद के लिए घोषणा कराई—

ये नाम केचन तपोनियमो वसन्ति संसारधर्ममपहाय मदीयराज्ये।
ते सर्व एव मदिरामनिशं पिबन्तो मच्छासनेन गणिकानदनं भजन्तु ॥४०

राजा के लिए चन्द्रलेखा की बुलाहट आई कि लीलागृह में पधारें।

शिवदास ने राजा को प्रोत्साहित किया—

यूथिका भजतु बालरसालं कौमुदी श्रयतु शीतमयूखम्
त्वामसौ सरसकेलिधुरीणा लोकनायमधिगच्छतु तन्वी ॥४४

शिवदास को ध्यान था कि भिक्षु को भी अनंगलेखा मिलनी चाहिए। उसने दूत

से उसे बुलवाया। अनगलेखा ने इच्छा न होने पर भी शिवदास के कहने पर भिक्षु पर प्रेमदृष्टि मारी। भिक्षु ने कहा कि मैं तो तेरे पैर चाँपूँगा—

मन्दं मन्दमिमौ करेण यदहं संवाहयेयं तव ॥५१

अनंगलेखा ने कहा—दुष्ट वटुक, मुझे छूना मत। तब तो भिक्षु उसको गाली देने लगा। शिवदास ने गणिका से कहा कि इन्हें मनाओ। भिक्षु उसके ऐसा करने पर प्रसन्न हुआ। तभी राजा ने शिवदास को बुलवाया और वह अनगलेखा को चले जाने के लिए कह कर राजा के पास चलता बना। जाते-जाते भिक्षु को उपदेश देता गया—

क्वासौ संसारसिन्धोस्सुतरणतरणिर्योगिनामाश्रमस्ते
क्वामूर्निर्वाणचन्द्रोदयवहलनिशाः केवलं वेशनार्यः।
कल्याणं कामयेथाः परिचिनु च सभामुज्ज्वलां सज्जनानां
तीर्थस्नायी दुराशाकलुषितमधुना मानसं वा पुनीहि ॥६०

भिक्षु ने मन ही मन कहा कि इस शिवदास ने तो मुझे धोखा दिया। वह अपने लिए अत्यावश्यक मध्याह्न स्नान करने के लिए चलता बना।

इस बीच साँप ने अनगलेखा को काटा। भिक्षु विचारा रोते हुए शिवदास की शरण मे आया कि उसे बचा लें, नही तो मैं मरा।

शिवदास दौड पडे। थोडी देर मे अनङ्गलेखा के शव में अपने को अभिनिविष्ट करके वे आ गये। उन्होंने स्वगत कहा—मैंने अनंगलेखा का प्राण किसी मरे जन्तु में डाल दिया है। फिर माया सर्प से उसे कटवा कर, उसके शरीर को निष्प्राण करके, अपने शरीर को लताकुंज मे रखकर, पर-पुरप्रवेश विद्या द्वारा अनगलेखा के शरीर मे प्रवेश करके अब इस भिक्षु को पाठ पढ़ाऊँगा। इस प्रकार मदनवर्मा की इच्छा पूरी होगी। शिवदास के अनुसार मदनवर्मा अपने राज्य के विनाश की आशंका से दुःखी है।[1]

शिवदासाभिनिष्ट अनंगलेखा ने कहा कि भिक्षुजी का एक बार अनादर करने से मैं गलती जा रही हूँ। अब मैंने उनका प्रेम पाने के लिए अभिसार किया है। उसने राजपरिवार के समक्ष भिक्षु से कहा—

प्रणयपराधीनायां मयि भगवन् किं त्वमुदासीनः।
करोषि न कण्ठावेष्टं मृणालमृदुलाभ्यां बाहुभ्याम् ॥ ७८

भिक्षु कुछ घबराने सा लगा। तब कपट-अनगलेखा ने कहा—

प्रेक्षस्व भिक्षुक प्रशिथिलवस्त्रं कुंकुमच्छुरणवर्धितशोभम्।
मोहनं केवलं कामिजनानां सज्जितं तव कृते कुचयुग्मम्।

देवी ने चन्द्रलेखा से फुसफुसाया 'कि पता नही अब क्या सुनना बाकी रह गया है? मदनकेतु बिगड़ कर बोला कि कुल्टे, भग जा। अनङ्गलेखा बोली कि जिनके

१. यस्त्विदानीं निजराज्यविनाशं शङ्कमानो दुःखमास्ते।

साथ इतना भोग मम्भाव्य है, उनसे क्या कोई कठोर बात कही जाती है। वह मानने वाली थोड़े थी। उसने भिक्षु का हाथ पकड़ लिया। उसने हाथ झिड़क कर अलग किया। उसने मुख मोड़ लिया। अनंगलेखा ने कहा—

दरशिथिलदुकूलं मेखलाशिंजितैं-
मंदननिगमशाखां बाढमुद्घोषयन्तम्।
मम जघनमनर्घं प्रेक्षमाणः समक्षं
न खलु विपहते कामी कोऽपि कालप्रतीक्षाम् ॥९०

रानी तो यह बेहयाई सुन कर चलती बनी। राजा ने अनंगलेखा को डाँट लगाई—मैं तो तुम्हें तलवार के घाट उतारता हूँ। अनङ्गलेखा ने उत्तर दिया—

यस्मिन् खलु निपतन्ति मे घनस्नेहगाढादरं
मृणालवलयोपमा उपपतीनां बाहालताः।
तस्मिन् किल गलान्तरे परुपरोपयोपाविलं
कृपाणलतिकापि ते पततु नाम का मे गतिः॥

राजा और भिक्षु दोनों वाराङ्गना-मार्ग से कुछ विचलित से होने लगे। तब अनंगलेखा ने कहा—

एकस्याङ्के निहितवपुरप्यन्यमालोकयन्ती
चिल्लीवल्लीचलन-कलया चापरं प्रीणयन्ती।
नर्मालापैर— मृतमधुरैरन्यमाह्लादयन्ती
नारीनाम्ना जयति हि जगन्मोहिनी कापि शक्तिः॥९७

भिक्षु ऊब गया इन बातों को सुन कर। उसने कहा कि मेरी वारागना मुझे निर्वाण प्रदान करायेगी। मदनकेतु भी वाराङ्गनाओं के बीभत्स रूप को देख चुका था। अनङ्गलेखा बने शिवदास ने मन ही मन प्रसन्नता व्यक्त की। उसके स्वगत के अनुसार—

यस्य राज्ये प्रमाद्यन्ति विद्वांसोऽपि कदाचन।
तस्य राज्ञो जनपदो विनश्यति पदे पदे॥९९

अनंगलेखा ने पूछा कि आप से परित्यक्त मैं अब कहाँ जाऊँ? भिक्षु ने कहा—

गच्छ, गच्छ। यथेच्छं गच्छ।

फिर तो अनंगलेखा बना हुआ शिवदास चलता बना।

इसी समय शिवदास का शव लेकर जम्भक आ पहुँचा। उसे देख कर राजा तो बारबार मूर्छित होने लगा। भिक्षु भी आर्त था। अनंगलेखा ने भिक्षु से पूछा कि शिवदास ने तुम्हारा क्या उपकार किया था। भिक्षु ने कहा—

येन मे चपलकर्मकर्मठं मानसं समनुकृष्य कापथात्।
अस्ततन्द्रमपुनर्निवर्तने वर्त्मनि द्रढयता न किंकृतम्॥१०४

राजा ने कहा कि जब हमारा सबसे बड़ा अभ्युदयकर्ता ही नहीं रहा तो मैं नहीं रहूँगा। उसका निर्णय है—

नाट्यशिल्प

भावुकता का उद्रेक एकोक्ति में विशेष होता है। यह तथ्य राम को ज्ञात है। उन्होंने प्रहसन का आरम्भ भिक्षु की एकोक्ति से किया है कि नींद आ जाओ कि प्रेयसी का चुम्बन प्राप्त हो।

इस प्रहसन का आरम्भ विष्कम्भक से होता है। यह नियम विरुद्ध है। नियमानुसार तो नाटक, प्रकरण और नाटिका में ही प्रवेशक और विष्कम्भ होने चाहिए।

चरितनायकों का चारित्रिक विकास संस्कृत के विरल रूपकों में ही बन पड़ा है। मदनकेतु-चरित प्रहसन इस दृष्टि से एक अनूठी कृति है। इसमें राजा मदनकेतु और विष्णुमित्र भिक्षु के व्यक्तित्व का सर्वथा नवीन दिशा में मोड़ बताया गया है।

इस कृति पर भगवदज्जुकीय-प्रहसन का प्रभाव परिलक्षित होता है। मदनकेतु-चरित केवल अभिनय की दृष्टि से प्रहसन है। काव्य की दृष्टि से इसका अनुपम महत्त्व मानव-चरित्र के विकास की दिशा में है।[1] यह भर्तृहरि के शतकों की भाँति शृङ्गारित जीवन-धारा से उबार कर पाठक को वैराग्य की निर्मल धारा में अवगाहन कराते हुए उसे मोक्ष-प्रवण बनाता है। संस्कृत में ऐसे प्रहसनों का अभाव-सा है। इस कृति का विशेष महत्त्व यह बताने में है कि लकीर का फकीर बन कर ही कवि नाटक नहीं लिखते थे, अपितु वे तो कलाकृति का निर्माण करते थे, भले उसके लिए आलोचकों को किसी नई काव्यकोटि की कल्पना करनी पड़े।

चन्द्रिका-वीथी

चन्द्रिका-वीथी का प्रथम अभिनय वीरराय महाराज की आज्ञा से परकोड नामक श्वेतारण्य क्षेत्र में शिव के माघकृष्ण चतुर्दशी के महोत्सव में महाब्राह्मणों की परिषद् में हुआ था।[2] सूत्रधार ने इसकी विशेषतायें प्रस्तावना में दी हैं—

पात्रद्वयप्रयोज्या भाणवदेकाङ्किका द्विसन्धिश्च।
आकाशभाषितवती कृत्रिममितिवृत्तमाश्रिता वीथी॥

नायक को सोते समय कोई सुन्दरी अपना स्वरूप दिखाकर एक अंगूठी देकर अन्तर्धान हो गई। विदूषक ने देखा कि उसकी हालत खराब है। उसने पूछने पर विदूषक को बताया—

कामप्यहं कमलपत्रविशालनेत्रां नेत्राभिरामरमणीयमुखेन्दुबिम्बाम्।
बिम्बाधरामधरिताप्सरसाङ्गलक्ष्म्या लक्ष्म्यासनाभिमिवलक्षितवान् कुमारीम्॥

१. स्वयं राम पाणिवाद को सन्देह था कि इसे कैसे प्रहसन-कोटि में रखा जाय। उन्होंने पुस्तक के अन्त में कहा है—

प्रहसन-लक्षणलेशैः स्पृष्टं चेन् प्रहसनाभिधां लभताम्।
नो चेन् पुनरन्यदिदं विनोदनं पाणिवादस्य॥

२. इसका प्रकाशन Bulletin of the Ramavarma Research Institute NO.3, त्रिचूर से १९३४ ई० में हुआ है।

नायक मदनातङ्क से विप्लुत था। वह विदूपक के साथ पुष्पाकर नामक बालोद्यान में जा पहुँचा। वहाँ वासन्तिक सौरभ के बीच सहकार वृक्ष से भूर्जपत्र पर लिखित एक सन्देश राजा को मिला, जिसमे चार बार कामो, कामो, कामो, कामो लिखा था। राजा ने समझ लिया कि पद्य के प्रत्येक चरण के आदि और अन्त के ही अक्षर लिखे गये हैं और तब तो पद्य है—

कामो तुज्झ कए वामो काम दहइ मं इमो।
कालवह्निसमो सोमो का गई मम दे णमो॥

विदूपक ने समझ लिया कि वही वह कुमारी है, जिसने सोते समय नायक को अँगूठी दी थी और अब पत्र द्वारा प्रेम प्रकट कर रही है। वह कही पेड पर छिपी है। नायक ने कहा कि मानव-कन्या पेड़ पर नही चढती। अवश्य ही यह दिव्य कन्या है। तभी नेपथ्य से सुनाई पड़ा—

अङ्गक्ष्मापालभूमीवलय— कुमुदिनीचन्द्रमाश्चन्द्रसेनः
ब्रूते स्वाभीष्टमर्थं कमपि मणिरथो नाम विद्याधरस्त्वाम्।
मत्पुत्री त्वद्गुणौघैरपहृतहृदया चन्द्रिका नाम कन्या
त्वत्पत्नी कल्पितेयं मनुजवर मया त्वामनुप्रेपितेति॥१७

दोनो सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। नायक के परितोष के लिए आकाशवाणी हुई—

इयमुपयाति चन्द्रिका त्वामसमशराशुगपीडितापि बाला।
अपरिचितमनुष्यलोकवृत्ता पथि पथि विन्दति विह्वला विलम्बम्॥

नेपथ्य से सुनाई पडा कि चण्ड नामक राक्षसराज आती हुई नायिका चन्द्रिका को ले उडा।

नायक ने राक्षस से युद्ध करने के लिए धनुष लिया तो आकाशवाणी हुई—

विरम बाणविमोचनतो रिपुस्स खलु बाणपथादतिवर्तते॥

नायक वेहोश होकर गिर पडा। 'मैं तो मरा' यह कह कर रोने लगा। विदूपक ने रोते-रोते समझाया कि लम्बोदर की स्तुति करे। वे सब काम बना देंगे। राजा ने हाथ जोड़कर बालगणेश की स्तुति की—

पितुश्शम्भोरङ्के कलिवसतिमौलेः शशभृतः
कलामस्याहृत्य प्रसभमथ शुण्डारलतया।
द्वितीयं वक्त्रे स्वे विरचयति यो दन्तमुकुलं
स बालो हेरम्बो दिशतु मदभीष्टार्थमखिलम्॥२६

गणेश ने अपने दाँत से राक्षस को विदीर्ण किया और नायिका नायक को दे दी। शुभ मुहूर्त की घोषणा हुई और उनका विवाह हो गया। अन्त मे कवि लोक रुचि का ध्यान रखते हुए कामशास्त्रानुरूप प्रवचन करता है—

वृत्ते तत्र विवाहकर्मणि गुरुव्रीडावनम्रानना—
माहूयाय कथञ्चिदङ्कफलकमारोपयिष्यामि ताम् ।
किं चाश्लिष्य बलाद् विवर्तितमपि व्याचुम्ब्य बिम्बाधरं
भद्राम्बाङ्गुलिमुद्रिकां कररुहे तस्या निधास्याम्यहम् ॥३२

वीथी के अन्त में इसके शेष लक्षणों की चर्चा की गई है ।

वीथीयं चन्द्रिका नाम रामपाणिघ-निर्मिता ।
एकाहचरितैकाङ्का नाट्येष्वष्टमलक्षणा ॥३४

प्रश्न है कि क्या यह वीथी आकाशभाषितवती है ? आकाशभाषित पारिभाषिक शब्द है । उसकी परिभाषा के अनुसार इसमें एक भी आकाशभाषित नहीं है । ऐसा लगता है कि इसमें चूलिका या नेपथ्य-कोटि की उक्तियों को आकाशभाषित कहा गया है । लीलावतीवीथी में भी यही दिखाई देता है ।

अनादि मिश्र का नाट्यसाहित्य

अनादि मिश्र उत्कल के भारद्वाज-गोत्रीय ब्राह्मण थे। इनके पिता शतञ्जीव और पितामह मुकुन्द थे। शतञ्जीव विरचित मुदितमाधव गीतकाव्य था। अनादि के पूर्वज दिवाकर कवि चन्द्रराय ने अनेक ग्रन्थो की रचना की थी, जिनमें से उनके नाटक प्रभावती की ख्याति थी। दिवाकर विजयनगर के राजाओ के द्वारा समादृत थे।

अनादि उत्कल मे खण्डपारा के राजा नारायण मगपार के द्वारा सम्मानित थे। नारायण का शासनकाल १७वी और १८वीं शती मे था। इनकी इच्छापूर्ति के लिए मणिमाला नाटिका की रचना कवि ने की थी।

अनादि ने मणिमाला की रचना १७५० ई० के लगभग की होगी।[1] उनके शिष्य सदाशिव ने इसकी प्रतिलिपि १७७६ ई० मे की थी। कवि ने रासरगोष्ठी नामक दूसरे रूपक का प्रणयन चन्द्रमण्डिका-चन्द्रिका-वशी राजा वनमाली जगद्देव के आदेशानुसार किया था।[2] इनके अतिरिक्त अनादिमिश्र ने केलि-कल्लोलिनी काव्य की रचना की, जिसमे राधा और कृष्ण के प्रेमाचार की काव्यात्मक चर्चा है। अनादि मिश्र शिष्यो का अध्यापन भी करते थे।

मणिमाला

मणिमाला नाटिका मे चार अङ्क है। इसका प्रथम अभिनय उज्जयिनी-नगरी की दुर्गा देवी के शरत् समय के दर्शनार्थियो के प्रीत्यर्थ हुआ था।

कथावस्तु

उज्जयिनी मे दुर्गोत्सव देखने के लिए अद्भुतमूर्ति नाम का सर्वज्ञ वैतालिक योगीन्द्र आया हुआ था। उसकी मैत्री उज्जयिनी-नरेश शृङ्गार-शृङ्ग से हो गई। योगीन्द्र की योजना से पुष्करद्वीप की राजकन्या मणिमाला और शृङ्गारशृङ्ग ने परस्पर स्वप्न मे दर्शन किया। राजा ने भूर्जबल्कल पर अपना चित्र बनाया और विदूषक चित्रचरित्र के द्वारा उसे नायिका के पास भेजा। चित्रचरित्र ने जाने के पहिले दुर्गा की स्तुति की। दुर्गा ने उसे प्रसादरूप मे माला दी और कहा कि तुम्हारी सहायता करने के लिए मैं भी तुम्हारे आगे-आगे चलती हूँ।

नायक अपने विदूषक कदम्ब के साथ दुर्गामन्दिर के प्राङ्गण में पहुँचा। वहाँ शरत् की सुषमा का उन दोनो ने अभिरुचि से अवलोकन किया। राजा इधर मणिमाला के ध्यान मे निमग्न था, तभी उधर से पतिप्रिया नामक महादेवी आ निकली।

---

१ इस अप्रकाशित नाटिका की हस्तलिखित प्रति उड़ीसा के राजकीय संग्रहालय मे है।

२. इस अप्रकाशित रचना की हस्तलिखित प्रति उड़ीसा के राजकीय संग्रहालय मे है।

मम पुनरसावासीत् स्वप्ने यदक्षिरसायनं
त्रिभुवनमन.कारागारो तदेव जनुःफलम् ॥२.७८

नायिका प्रसन्न तो हुई, पर दूसरे ही गन्धर्वराज से विवाह होने की सज्जा हो रही थी, फिर क्या हो ? उसी समय सुसिद्धिसाधिनी ने आकर कहा—मेरी कनक-नौका से आप तत्काल उज्जयिनी के लिए प्रस्थान करें। चित्रचरित्र के कहने पर वे सभी कनक-नौका से उड जाने का उपक्रम करते हैं।

नारद मुनि आकर सूचना देते है कि ब्रह्मा की इच्छा से शृङ्गारशृङ्ग द्वन्द्व-दंष्ट्र राक्षस को मारने मे समर्थ होगे, जब मणिमाला उनकी सहचरी बनेगी।

नायक विदूषक के साथ अपने काम-सन्तप्त होने की गाथा गा रहा था। उस समय सुसिद्धि-साधिनी और घर्घरघण्टा नामक योगिनियां उनसे मिलकर शीघ्र ही मणिमाला के आने का संवाद देती हैं। शीघ्र ही कनकनौका से चित्रचरित्र के साथ मणिमाला और उसकी सखी वही आ जाती हैं। फिर तो मणिमाला वरण-माला शृंगारशृङ्ग को पहना देती है। सभी मणिमाला के प्रत्यङ्ग-सौन्दर्य की अलौकिकता का वर्णन प्रसन्न होकर पुनः पुनः करते हैं। फिर तो धम्मिल्ल, भाल, भूद्वन्द्व, दृष्टिच्छाया, नेत्र, नासिका, अधर, दन्त, चिबुक, मुख कपोल, कर्णलतिका, कण्ठ, बाहु, हस्त, स्तन, लोमलता, त्रिवलि, कटि, नाभि, नितम्ब, जघन, चरणनाल, चरण, पादयुग्म, पादाङ्गुलि और चरणनख की शृङ्गारित वर्णना चाव से सभी लोग प्रत्येकश करते हैं।

अभी मणिमाला का शृङ्गारशृङ्ग से विवाह भी नही हुआ था कि द्वन्द्वदंष्ट्र नामक राक्षस ने अपनी बहिन से मणिमाला का अपहरण करा दिया। राजा के उसके लिए विक्रमोर्वशीय के पुरूरवा की भाँति विलाप करते समय अद्‌भुतभूति ने आकर बताया कि द्वन्द्वदंष्ट्र की मृत्यु आपके ही हाथो होनी है। उसका प्राण क्रौञ्चाद्रि पर स्वर्ण-वृक्ष के मध्य मणिसम्पुट मे निवास करने वाले कीटराज मे रहता है। उसको मार डालने पर द्वन्द्वदंष्ट्र की मृत्यु हो जायेगी। स्वर्णवृक्ष के नीचे इस समय उससे मुक्त हुई आपकी प्रेयसी मणिमाला है। नायक ने खेचरसिद्ध-साधन नामक चूर्ण खाया और आकाश मे अन्य लोगो के साथ उड गया। वह क्रौञ्च पर्वत पर पहुँच गया। वहाँ अद्‌भुत-भूति से भैरव का मण्डलाग्र लेकर इधर उसने कीटराज को मारा, उधर द्वन्द्वदंष्ट्र मरकर गिर पडा। नेपथ्य से कुसुमवृष्टि के साथ यह गीत सुनाई पडा—

येनासीदमरावती सुरसुदृक् क्लेशांशुकाकर्षण-
प्रेक्षानिर्गतनेत्रनीरनिकरोद्यद्भर्तृ लज्जाङ्कुरा।
सोऽसावद्भुतभूतियोगपरशुव्यालूनमायावनो
व्यापन्नो भवति त्वयेति शरणं शृङ्गारशृङ्गासिना॥४.७४

सभी उज्जयिनी लौट आये। मणिमाला महादेवी पतिप्रिया के चरणो पर गिर पडती है। फिर तो नायक-नायिका के विवाह की तैयारी होने लगी। भरतवाक्य है—

सदा गोःसन्दर्भः स्फुरतु सुधियां सन्विगहनः
सुधापारावारं सपदि विदधद्गोप्पदमिव।
सतां सान्द्रानन्दं विदधतु कवेर्दुर्घटकथाः
प्रबन्धप्रागल्भ्यप्रतिभणितिवैदग्ध्यविधयः ॥४.६१

नाट्यशिल्प

रंगमंच पर आलिंगन करने की रीति अपनाई गई है। प्रथम अंक में नायक महादेवी का आलिंगन करता है। तृतीय अंक में नायक नायिका का आलिंगन करता है।[1]

'दुर्गा की मूर्ति के चरण पर पड़ा एक कमल उड़कर नायक के हाथ में गया'। ऐसा दृश्य दिखाने की योजना सम्भव थी। रंगमंच पर आकाशचारी–कोटि वायुयान से उड़कर आई हुई दिखाई जाती थी। द्वितीय अङ्क के आरम्भ में योगिनी गगन-गामिनी कनकनौका से रंगमंच पर प्रवेश करती है।

'ततः प्रविशति यथा निर्दिष्ट गगनगामिन्या कनकनौकया सुसिद्धि-साधिनी नाम योगिनी।'

द्वितीय अङ्क के पूर्व विष्कम्भक में २८ पद्य सन्ध्यादि के वर्णन के लिए प्रयुक्त हैं। विष्कम्भक में भारतीय नाट्यशास्त्र के अनुसार वर्णन और वह भी इतना लम्बा नहीं होना चाहिए। चतुर्थ अङ्क के पहले के विष्कम्भक में अद्भुत-सिद्धि ने भारत की नैसर्गिक विभूति का काव्योचित वर्णन सविस्तर दिया है।

द्वितीय अंक के आरम्भ में कंचुकी की एकोक्ति और पश्चात् कादम्बिका से उसकी बातचीत का विषय दोनों ही अर्थोपक्षेपक के योग्य हैं। इनमें भूतकालीन और भविष्य कथांश की चर्चा की गई है। चतुर्थ अंक में योगिनी मणिमाला के हरण की कथा बताती है। यह भी अर्थोपक्षेपक में होना चाहिए था।

नाटिका में छायातत्त्व की प्रचुरता है। चित्र और स्वप्न के माध्यम से नायक और नायिका का मिलना इस दिशा में कवि की अपनी निजी प्रतिभा है।

एक ही अंक में अनेक स्थानों की कथायें कही गई हैं। यथा चतुर्थ अंक में उज्जयिनी में आरम्भिक कथा घटित होती है, फिर राजा उड़कर क्रौञ्चगिरि पहुँच जाता है और उसी रंगमंच पर उसी अंक में क्रौञ्चगिरि की घटनायें अभिनीत होती हैं।

संवाद-सौष्ठव

संवाद-सौष्ठव इस नाटिका में उच्चस्तरीय है। सबकी वाणी से आभिजात्योचित वर्णमञ्जरी निर्झरित होती है। पूरी नाटिका ही इसका निदर्शन है। उदाहरण के लिए चित्रचरित्र की नायिका के प्रति नायक की मनुहार सुनिये—

१. कथं गुरुजनसमक्षमेव मामालिंगति आर्यपुत्रः।

भवदविरहृदहनसन्तापसन्तान्तस्य प्रियवयस्यस्य हृदयालंकारलतिका भूत्वा भवती पीयूष—सरस्वतीभावं भावयिष्यति। द्वितीयाङ्क से नायिका का उत्तर है—

सर्वकुशललतिका फलमस्य महाभागस्य प्रसाद-दोहदसेकेन भविष्यति।

वर्णना

अनादि मिश्र पद्यात्मक वर्णनो मे अधिक उलझते है। काव्योचित कल्पना का प्रकर्ष सर्वप्रथम पहले अक के शरद्-वर्णन मे नायक और विदूषक के संवाद के माध्यम से प्रकटित हुआ है। इस वर्णन मे ३२ पद्य विविध छन्दो मे प्रणीत हैं। कवि की वर्णनायें नवीनता ली हुई है। यथा—

गङ्गावारिपरम्परामतिमुपादत्ते मरालावली
श्यामाम्भोरुहसान्द्रसारसरसि सूरात्मजा मध्यतः।
किं च ग्रीवभुवः कटाक्षपदतां प्राप्तस्य चेतोभुवः
कीर्तिः प्रच्छुरिता विभाति जगती काशव्रजव्याजतः॥

द्वितीय अक के पहले विष्कम्भक मे आरम्भ से २८ वें पद्य तक सूर्यास्त, सन्ध्या तथा चन्द्रोदय का वर्णन है। ऐसा तो महाकाव्यादि मे होना चाहिए था। वास्तव मे मणिमाला नाटिका के साथ ही महाकाव्य का आनन्द प्रायशः देती है।

महोत्सव के अवसरों पर ऐश्वर्य को प्रकट करने के लिए विविध प्रकार के कौतुकों से जनमानस को तरंगित किया जाता था। यथा, अच्छहिण्डीरगुच्छ[1], नीलोत्पल-दीपिका[2], नक्षत्रावली[3], चलचम्पकवाण-वीथी[4], जातिवाणावली[5]। कवि की कल्पनायें नैषधकार हर्ष का स्मरण दिलाती है। यथा नीचे लिखे पद्य में—

एतस्याननशोभया जिततया दोषाकरो लज्जया
मग्नः कण्ठतले कलङ्कपटाद्धृत्वोपलं खाम्बुधौ।
कृच्छ्रं प्राप्य तथाप्ययं लघुतया तस्मिल्लघून्मग्नतां
गत्वा संततचिन्तया विनतया पूर्णो मुहुः क्षीयते॥२.७७

शैली

अनादि ने अलकारो की प्रचुरच्छटा इस नाटक मे दिखलाई है। अर्थालंकारों के साथ ही शब्दालङ्कारों की स्वाभाविक धारा उनकी विशेषता है। यथा,

सान्द्रेन्द्रनीलबहलस्थलमञ्जुलाभे व्योम्नि स्फुटस्फटिकनिर्मलमेघसघ-।
दरो तमालदलनीलकलिन्दकन्या नीरस्फुरत् सुरसरित्सलिलौघबुद्धिम्॥१.२१

१. इससे उल्का समूह-सा दृश्य आकाश मे बनता था।
२. इससे गंगा-यमुना का सगम-दृश्य आकाश मे बन जाता था।
३. यह ज्योतिर्बाण था, जिससे आकाश मे मल्लिका-मुकुलो का दृश्य उत्पन्न होता था।
४. इससे गगन-कानन मे चम्पक-पुष्पों की वीथी बन जाती थी।
५. इससे आकाश मे कनक-केतु-यष्टि बन जाती थी।

उत्प्रेक्षा का वर्णसाम्यता से इतना मंजुल सहचार विरल होता है। पूरी नाटिका मे कवि की यह विशेषता स्पष्ट झलकती है। इसमें भाव और ध्वनि-सावर्ण्य दोनो से साङ्गीतिक गरिमा सुसम्पन्न है।

इस नाटिका में पद्यों की अतिशयता इसी उद्देश्य से प्रतीत होती है कि रंगमच पर पात्र उन्हें गाकर प्रेक्षको का मनोरंजन कर सकें। चार अकों में क्रमशः ६०, ८४, ८४ और ६१ पद्य हैं। इतने अधिक पद्य रूपकों मे विरले ही मिलते हैं। शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलका, शिखरिणी, द्रुतविलम्बित, पुष्पिताग्रा, उपजाति, वंशस्थ, स्रग्धरा, पृथ्वी आदि कवि के प्रिय छन्द हैं। चण्डी और सोला आदि कवि के द्वारा प्रयुक्त कम प्रचलित छन्द हैं। कवि ने मात्रिक छन्दों का प्रयोग नही किया है।

यह नाटिका अनेक दृष्टियो से कर्पूरमजरी के समान पड़ती है। दोनो मे गीत-तत्त्व की प्रचुरता है।

प्रस्तावना-लेखक सूत्रधार

सूत्रधार ने बताया है कि किस प्रकार मणिमाला को लिखकर लेखक ने मुझे दिया। उसका कहना है—

स च कविः श्रीमदुत्कलेश्वर–पादपंकजोपजीविराजसमाजमौलिमाल्येन श्रीनारायणमंगराजेन प्रयुज्यमानेन मया मणिमाला नाम नाटिका कृता। सा च भरतर्षभेण भवता नाट्यनिर्व्येनि सौहार्दरसासारपरम्परार्द्र-हृदयतया तामस्माकं कण्ठे समर्पितवान्।

ऐसी बातें अनादि ने नही लिखी, अपितु सूत्रधार ने लिखी हैं।

राससंगोष्ठी

शारदातनय ने भावप्रकाशन में और विश्वनाथ ने साहित्य-दर्पण मे गोष्ठी की जो परिभाषा दी है, वह अनादि मिश्र की राससंगोष्ठी पर प्रायः ठीक उतरती है। रासक की परिभाषा में विश्वनाथ ने कहा है कि इसमे सूत्रधार है। अतएव इसे रास या रासक मे जोड़ने का कोई कारण नही दिखाई देता। रास-सगोष्ठी उप-रूपक है और अन्य बहुविध उपरूपको की भाँति इसे परिभाषा की परिधि मे सीमित कर लेना सरल नही है। सूत्रधार ने इसका नाम सगीतक भी दिया है।[1] शरत्काल मे इसका सर्वप्रथम अभिनय हुआ था। सूत्रधार ने इसे विलास-रास चरित्त नाम दिया।

कथावस्तु

कृष्ण की मुरली-ध्वनि सुनकर राधा ललिता के साथ वृन्दावन की ओर चल पडीं। उनकी बातचीत होती है कि यही माधव की लीला होती है। आगे चलकर उन्हें यमुना-तट के निकट निकुञ्ज मे कृष्ण सुबल के साथ दिखे। दोनों सखियाँ छिप

१. तदेहि यथातथं संगीतकमनुतिष्ठावः। प्रस्तावना से। संगीतक में संगीत और वाद्य की विशेषता होती है। इसमें वस्तुतः गीतात्मक हार्दिकय प्रचुर मात्रा में है।

कर इनकी बातें सुनने लगी। कृष्ण ने सुबल से कहा कि यमुना मे चन्द्रबिम्ब राधा के मुख के समान मुझे लगता है। कृष्ण को राधा की स्मृति से ऐसा लगा कि वह मदनार्दित होगी। राधा ने यह सुना तो फूली न समाई। उसने कहा—

मदयति हृदयं मदीयमेतत् प्रियतम-सूनृतमादृतप्रसादम्।
तृणयति च गुणार्यांत दधानं घनघनसारतुषारभानुभासः ॥१४

कृष्ण ने स्पष्ट शब्दों मे राधा के प्रति अपना घोर प्रणय व्यक्त किया। राधा ने यह सब सुन कर अपना मनोभाव प्रकट किया—

गुणप्रवीणा दयितस्य वाणी मा काचिदेषाद्भुतशक्तिभूतिः।
समुत्खनन्ती खलु धैर्यशैलं निर्माति मे चित्तभुवं सरन्ध्रम् ॥११

कृष्ण ने कहा कि मेरे हृदय मे राधा के वियोग से विस्फोट हो रहा है। सुबल ने कहा कि राधा के आने के लिए वशी की ध्वनि मे सूचना दी गई है। फिर तो राधा और ललिता उनके पास आ गई। उन्हे देखकर कृष्ण को व्रजवनिताओं के साथ क्रीडा का अवसर देने के लिए सुबल चलते बने। कृष्ण ने राधा से कहा—

गात्रं प्रदाय मम चार्द्रय सर्वमङ्गम्।

ललिता ने कहा कि आप सभी गोपाङ्गनाओ को राधा के समान ही परितोष प्रदान करें। कृष्ण ने स्वीकार किया। फिर राधा ने उन्हें प्रेमोपायन दिया।

सभी व्रजवनितायें कृष्णोपचार के लिए आ पहुँची। कृष्ण ने उन सबके साथ रासक्रीडा करने के पहले उनकी परीक्षा लेने के लिए कहा कि आप लोगो के पति देवता है। उन्ही की सेवा करें। गोपियो ने कहा कि आप हमारे सर्वस्व हैं। यथा,

पयोऽन्तरेण क्व पयोरुह् भवेत् क्व वा सरो वारिजबान्धवादृते।
गृहस्थधर्माः क्व मनोभवः क्व वा वियोगात्तव जीवनं च नः ॥२६

कृष्ण ने उनका भावगाम्भीर्य परख लिया। उन्होंने रासक्रीडा से सबका मनोरथ पूर्ण किया। गोपियों ने इसे अपना महाभाग्य माना।

नाट्यशिल्प

अनादि मिश्र ने इसके प्रथम दृश्य का नाम विष्कम्भक दिया है, जो उचित नही है। विष्कम्भक रास या गोष्ठी मे नियमानुसार नही हो सकता। फिर इसमे तो सारी कथा दृश्य रूप मे है। सूचना जैसी वस्तु बहुत कम है। तथाकथित विष्कम्भक के पात्र अङ्क भाग मे भी रगमच पर रह जाते हैं। ऐसा भी विष्कम्भक मे नही होता। रगमच पर रासक्रीडा का दृश्य अतिशय मनोहर है। रासक्रीडा का अभिधा से शृङ्गारित अनुशीलन चूलिका के द्वारा प्रस्तुत करके लेखक ने इस कृति मे विशेष लोकप्रियता भर दी है।

अध्याय ५३

बालमार्तण्ड-विजय

बालमार्तण्ड-विजय के प्रणेता देवराज सूरि को अभिनव-कालिदास उपनाम सम्भवतः उनके आश्रयदाता महाराज मार्तण्डवर्मा का ही दिया हुआ था।[1] देवराज मार्तण्ड और उनके भागिनेय रामवर्मा के प्रमुख सभापण्डित थे। मार्तण्ड ने १७२६ से १७५८ ई० तक और रामवर्मा ने १७५८ से १७९८ ई० तक शासन किए।

देवराज के पिता और पितामह दोनों का नाम शेषाद्रि था। देवराज मूलतः मद्रास के तिन्नेवेल्ली जनपद में पट्टमडाड ग्राम के रहने वाले थे। १७६५ ई० में मार्तण्ड वर्मा के द्वारा शुचीन्द्र के समीप आश्रम गाँव में जिन १२ ब्राह्मणों के लिए अग्रहार बनाया गया, उसमें देवराज प्रमुख थे। इस नाटक की रचना देवराज ने १७५० ई० में की, जब महाराज मार्तण्ड ने अभीष्ट प्रदेशों पर विजय करके त्रिवेन्द्रम् के पद्मनाभ देव को अपना राज्य अर्पित किया था।

कथावस्तु

पाँच अङ्कों के इस नाटक में केरल के राजा बालमार्तण्ड का चरित-वर्णन है। उन्होंने श्रीपद्मनाभ के शंखतीर्थ मे माघस्नान नियमपूर्वक किया। उन्हें राज्य-शासन से विरक्त राजा को समझाना था कि किस प्रकार राजतन्त्र के साथ आध्यात्मिक साधना करें। राजा सोचने लगा था—

राज्येन किं भवेत् पुंसो महामोहप्रदायिना।
यस्मिन् निविशमानस्य हरिभक्तिर्दवीयसी ॥१.२०

तब तो उनके समक्ष पद्मनाभ प्रकट हुए—

विकस्वरेन्दीवरसुन्दरांगः पिशंगवासा स्मितमंजुलास्यः।
चतुर्भुजः श्रीवनमालहारी पुमान् पुरः कोऽपि ममाविरासीत ॥

राजा ने मौलि पर हाथ जोड़ कर अस्फुट वाणी कही—

देव! प्रभो! नाथ जय।

विष्णु ने राजा का सिर स्पर्श करते हुए कहा—

वत्स,

इदं राज्यं ध्रुवस्येव न ते मोहाय कल्पते ।१३३

और आज्ञा दी—

'स्यानन्दूरपुर मे मेरे जीर्ण मन्दिर का नवीकरण करो। इसके लिए अपेक्षित धन भारत के राजाओ को जीतकर प्राप्त करो। तुम्हें कोई हरा नही सकता। दिग्विजय के पश्चात् राजसूय विधि से मेरा अभिषेक करो। तब तो जगत्पालक मैं तुम्हारी राज्यधुरा को भी वहन करूँगा। तुम मेरे युवराज रहोगे।'

---

१. इस नाटक की प्रति वाराणसी-संस्कृत-विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में प्राप्य है।

राजा ने इसके पश्चात् दिग्विजय-प्रस्थान के पूर्व सहस्र-गोप्रदान-मङ्गल किया। फिर चतुरङ्गिणी सेना को कटाक्ष से अनुगृहीत किया। राजा प्रयाण के लिए तैयार हुए तो पुरजनवासियों ने कहा कि हम आपके वियोग में यहाँ कैसे रहेंगे? साथ चलेंगे। तभी कवि कालिदास (इस नाटक के प्रणेता) आ पहुँचे। उन्होंने अवसरोचित अपनी उत्साहवर्धक कविता सुनाई और एक नाटक राजा को दिया। फिर तो राजा ने

'नवीन-कालिदासाय ग्रामो दत्तो महोदयः॥"

इस शासन-पत्र को हार-सहित उपहार दिया। उन्हें कनकशिविका पर घर भेजा गया। राजा ने अपने भागिनेय रामवर्मा को बुला कर कहा कि सभावल्लभ नामक पाठक के पुत्र रंगरंजक पाठक से कहना कि पुरजनवासियों का मेरे विरह के दुःख को दूर करने के लिए इस मनोरंजक कृति को पाठन द्वारा प्रस्तुत करें। तृतीय अङ्क में पाठक ने इसको सुनाया है।

चतुर्थ अङ्क में दिग्विजय के पश्चात् राजा लौट कर पद्मनाभ मन्दिर के नवीकरण का आदेश देते हैं कि पाँच दिन में सारा काम सम्पन्न हो जाना चाहिए। इस बीच श्रीपादमन्दिर में नायक ने व्रत रखा। पंचम अंक में महाभिषेक से पद्मनाभ प्रसन्न हुए। उन्हें सभी चक्रवर्ती के चिह्न धारण कराये गये। राजा ने उन्हें अपना राज्य समर्पित कर दिया। मार्ताण्ड वर्मा युवराज रह कर राज्य का शासन करने लगे। सभी राजकीय शासन का कार्य पद्मनाभ की मुद्रा से होने लगा। अन्त में सभी महाकवियों और पण्डितों का बहुमान आदरपूर्वक सम्पन्न हुआ।

ऐतिहासिकता

बालमार्तण्ड-विजय में सत्य घटनायें भी बढा-चढाकर कही गई हैं। नायक ने कायंकूर पर विजय की थी—यह ऐतिहासिक सत्य है। नायक ने कोलतंक केरल पर विजय की—यह नाटकीय कल्पना सत्य से संपृक्त नहीं है। नाटक में अन्य ऐतिहासिक तथ्य है—पप्पुतम्पि और रामन् तम्पि को जीतना, डचों को परास्त करना और डीलन्नाय को बन्दी बनाना, तभी से राजा की उपाधि युवराज होना आदि।

नाट्यशिल्प

सूत्रधार ही प्रस्तावना का लेखक था—यह इस नाटक की प्रस्तावना से सुसिद्ध सूत्रधार ने कहा है—

अहं च नाट्यार्णवपारदर्शी कवेस्तु वाणी सरसा च मृद्वी।

उसने इस प्रस्तावना में यह भी बताया है कि नटी ने राजभवन में विविध लास्यों का प्रदर्शन करके मनोरञ्जन करने के अपने वचन को पूरा किया था। यथा,

झनज्झनितबन्धुरक्वणितनूपुराडम्बरं
सुगीतिरसमञ्जुलं ललितलास्यभेदक्रमान्।
प्रकाश्य सकलाञ्जनान् सपदि तोषयिष्याम्यहं
यदीरितमिति त्वया निपुणमेव तत्साधितम्॥

सूत्रधार ने यह भी प्रस्तावना में बताया है कि नवरात्र पूजा-महोत्सव के अवसर पर नटी ने एक बार जो लास्य का कार्यक्रम प्रस्तुत किया था, उससे प्रसन्न होकर महाराज ने अपनी ही नामाङ्कित अंगूठी दी थी।

ऐसी चर्चा सूत्रधार को ही शोभा देती है, नाटककार को नहीं।

नायकोत्कर्ष

इस युग में श्रेष्ठ राजाओं के चरित को लेकर अनेक जीवनवृत्तात्मक नाटकों की रचना हुई। इन रचनाओं में श्रेष्ठ नायक को आदर्श रूप में प्रतिष्ठित करना था। सूत्रधार ने नाटक की भूमिका में बताया है—

लोकोत्तरगुणावासः पुनानो स्यान्न नायकः।
कवितानाट्यकलयोः कथं स्याच्चरितार्थता ॥१२

नाटक का नायक स्वयं राजा बालमार्ताण्ड है। लेखक की भी एक प्रमुख भूमिका है।

संगीत

नाट्याभिनय में संगीत का कार्यक्रम अनुत्तम है। आरम्भ में नटी के गान से प्रस्तावना का अन्त होता है। इसके पश्चात् नाट्याभिनय का आरम्भ वैणिक की वीणातन्त्री-वाद्य के साथ नायक की प्रशंसा से होता है।

अभिनय-शिक्षण

सूत्रधार, नटी और अन्य पात्र नाट्य-विद्या का चिरकाल तक अभ्यास करते थे।[1] पात्रों की वेष-भूषा की कल्पना तृतीय अङ्क में नट-पाठक के वेष की युवराज द्वारा वर्णना से ज्ञात होता है। यथा,

व्यालोलोर्मिमदुज्ज्वलाञ्चलपयः फेनालिशुभ्रांशुकः
सर्वांगीणपटीरपंककलितां विच्छित्ति-शोभां वहन्।
बाहुद्वन्द्वलसत्सुवर्णवलयः कोटीरवान् कुण्डली
वेषोऽयं बत पाठकस्य कुरुते नो कस्य वा विस्मयम् ॥३.४

और भी—

अल्पेन तालवृन्तेन स्वल्पमावीजयन् मुखम्।
तदन्तःस्थितभारतया धर्ममुत्सारयन्निव ॥

संवादाधिक्य

रंगमञ्च पर पात्र प्रायः गत वृत्तान्तों को अन्य पात्रों को सुनाते हैं। चतुर्थ अंक तक कोई काम (action) रङ्गमञ्च पर होना विरल है। इसके पात्र पाठक हैं—'अभिनेता नहीं। पञ्चम अङ्क में साम्राज्य-चिह्नों का समर्पण, पद्मनाभ को उन्हें धारण कराना, उनकी अर्चना, भोग लगाना आदि कार्य रंगमंच पर दिखाये गये हैं, जो पर्याप्त रमणीय हैं।

१. नटी—'चिरं अम्हाणं णट्टविज्जापरिस्समो फलिओ' इत्यादि।

पाठन

१८वीं शती में चरितगाथाओं को विशेष अभ्यास और दक्षता प्राप्त पाठक कहानी और नाटक विधानों को मिश्रित करके बिना किसी अभिनय के रंगमंच पर प्रस्तुत करते थे। इस नाटक के तृतीय अङ्क में इसी प्रकार का पाठन दिया गया है।

पुरजनवासियों ने इसकी समीक्षा करते हुए प्रयोक्ता से कहा है—भवता निबन्धनपठनाख्यानेन परितोषिताः स्मः।

इसका नाम निबन्धन-पठनाख्यान है। इस आयोजन का सम्पादक युवराज के द्वारा पाठक-कुलभूषण कहा गया है। पाठक नट से भिन्न होता था, जैसा इस नाटक में सारिका की नीचे लिखी उक्ति से स्पष्ट है—

निबन्धनमुपजीव्य पाठको वा नटो वा सभ्यजनं कथं रसमनुभावयति।

चतुर्थ अंक से

बालमार्तण्ड विजय जीवनवृत्तात्मक (biographical) नाटक है। इस प्रकार के नाटक संस्कृत में बहुत अधिक नहीं हैं, किन्तु इनकी परम्परा का प्राचीन काल में आरम्भ भास के बालचरित से ही दृष्टिगोचर होता है।

अध्याय ५४

नवमालिका-नाटिका

नवमालिका नाटिका के लेखक विश्वेश्वर पाण्डेय उत्तरप्रदेश मे हिमालय की अधित्यका में अल्मोड़ा जिले में पटिया ग्राम के निवासी थे। उनके पिता लक्ष्मीधर उच्च कोटि के विद्वान् थे, जिनके विषय में सूत्रधार ने इस नाटिका की प्रस्तावना में कहा है—

बभार यो महारत्नभारतीं भारतीमृताम्।
स सुप्रसिद्धनामेह बुधो लक्ष्मीधराभिधः॥

लक्ष्मी ने वृद्धावस्था में काशी में मणिकर्णिका-तट पर कोटि-पार्थिव की पूजा करके शिव के प्रसाद से विश्वेश्वर को पुत्र रूप मे प्राप्त किया था। इन्हे पर्वत-प्रदेश का वासी होने के कारण पर्वतीय भी कहते हैं।

विश्वेश्वर का जन्म १८ वी शती के प्रथम चरण में हुआ था। पिता के चरणो मे शिक्षा पाकर वे १५ वर्ष की अवस्था से अच्छी कविता करने लगे थे। कवि को दीर्घायु नहीं मिली थी। उनकी सारस्वत साधना का पूरा समय २० वर्ष से अधिक नहीं है, जिसमे उन्होने २० से अधिक ग्रन्थ लिखे। वे ४० वर्ष से कम की अवस्था मे ही दिवंगत हो गये। उनके प्राप्य ग्रन्थों के नाम हैं—(१) अलकारमुक्तावली, (२) अलंकार-कौस्तुभ, (३) आर्यासप्तशती, (४) कवीन्द्रकर्णाभरण, (५) नवमालिका-नाटिका, (६) नैषधीय टीका, (७) मन्दारमंजरी कथा, (८) रस-चन्द्रिका, (९) रस-मंजरी टीका, (१०) रोमावलीशतक, (११) लक्ष्मीविलास, (१२) वक्षोजशतक, (१३) शृङ्गार-मंजरी सट्टक, (१४) व्याकरण-सिद्धान्तसुधानिधि, (१५) होलिका-शतक और (१६) काव्यरत्न।

विश्वेश्वर के अप्राप्त ग्रन्थ हैं—

(१) काव्यतिलक, (२) काव्यरत्न, (३) तत्त्वचिन्तामणि-दीधिति-प्रवेश, (४) तर्ककुतूहल, (५) तारासहस्रनाम व्याख्या, (६) षड्ऋतु वर्णन[1]।

विश्वेश्वर अध्यापक थे, जैसा उन्होने कवीन्द्रकर्णाभरण की टीका के आरम्भ में लिखा है—शिष्यशिक्षार्थं विश्वध्नन्नेव प्रतिजानीते। वे पार्वती के विशेष उपासक थे।

विश्वेश्वर को शृङ्गार में विशेष अभिरुचि थी। उनके कवीन्द्रकर्णाभरण की टीका में उदाहरण के स्वोपज्ञ पद्य प्रायशः शृङ्गारित हैं। उनकी शृङ्गार-मंजरी, षड्ऋतु-वर्णन, होलिकाशतक, वक्षोजशतक, आर्यासप्तशती, नवमालिका आदि रचनायें शृङ्गारित प्रवृत्ति का परिचय देती हैं। मन्दारमञ्जरी की कथा शृङ्गार-निर्भर है।

१. सुशील कुमार डे ने उनके अलंकार-कुलप्रदीप का उल्लेख किया है।

कवीन्द्रकरणाभरण की रचना करके कवि ने प्रमाणित किया है कि उसे कविता लिखने की सहज सिद्धि थी। विविध बन्धों, प्रहेलिकाओं, गूढजाति आदि के लिए स्वरचित उदाहरण बनाना कवि की अपनी निजी उपलब्धि है।

कथावस्तु

अवन्ति के राजा विजयसेन के मन्त्री नीतिनिधि को अरण्य मे दो सखियो के साथ नायिका मिली। नायिका और उसकी सखियो का अपहरण करके कोई राक्षस ले जा रहा था। जब वह दण्डकारण्य मे था तो प्रभाकर नामक तपस्वी ने अपने दिव्य रत्न के प्रभाव से राक्षस के शक्ति-हीन हो जाने पर कन्याओ को वियुक्त पाया। नीतिनिधि ने उन कन्याओं को विजयसेन के अन्त पुर मे रख दिया, जहाँ महादेवी चन्द्रलेखा नवमालिका की रमणीयता के कारण विजयसेन के प्रणय-पाश मे उसके आबद्ध होने की शंका से दोनो का परस्पर साक्षात्कार तक न होने देती थी। एक दिन जब नवमालिका महारानी के साथ थी, उधर पास ही से राजा सहसा महारानी से मिलने के लिए निकला तो महारानी ने कुछ देर पीछे रखकर नवमालिका को उसकी सखी के साथ दूर हटवाया, पर इसी बीच महारानी के नासिकारत्न मे प्रतिबिम्बित नवमालिका को राजा ने देख लिया और उसको पाने के लिए अधीर हो उठा।

नवमालिका ने अपना एक चित्र बनाकर महादेवी चन्द्रलेखा को दिया था। उसे महादेवी ने पुष्पावचय करते समय किसी वृक्ष के नीचे रख दिया था और लाना भूल गई। उसे ढूँढ लाने के लिए नवमालिका और चन्द्रिका उसी उपवन मे पहुँची। वहाँ राजा पहले से ही विराजमान था। राजा को विरह मे उद्विग्न देखकर विदूषक ने नवमालिका का चित्र उसे दिखाया। तब तो नवमालिका के विषय मे विदूषक से राजा को कुछ अधिक ज्ञात हुआ।

नवमालिका से राजा की भेंट हुई। उनका परस्पर प्रशंसात्मक प्रेमालाप चल ही रहा था कि महादेवी चन्द्रलेखा आ पहुँची। महारानी क्या करती? क्रोध करके चलती बनी। उसने नवमालिका को उसकी सखी चन्द्रिका के साथ कारागार मे डाल दिया।

कुछ दिनों के पश्चात् अङ्गराज हिरण्य वर्मा का मन्त्री सुमति नवमालिका को ढूँढते हुए वहाँ अवन्ति मे आ पहुँचा। उसने बताया कि किस प्रकार हमारे राजा की कन्या मन्दाकिनी-तट पर विहार करती हुई अपनी दो सखियो के साथ अदृश्य हो गई। उसी समय प्रभाकर नामक तपस्वी ने राजा को एक दिव्य रत्न देकर उसका अनुभूत प्रभाव बताया कि इसके बल पर तीन कन्यायें हमें किसी राक्षस से वियुक्त होने पर प्राप्त हुई हैं।

नवमालिका सुमति को पहचान लेती है। सुमति भी उसे देखकर पहचान जाता है। सुमति ने बताया कि नवमालिका हिरण्यवर्मा की पुत्री है। नवमालिका

का पति सार्वभौम सम्राट् होगा यह जानकर नीतिनिधि ने नवमालिका को लाकर अन्तःपुर में रखा था। तब महादेवी नवमालिका का विवाह राजा से कर देती है, क्योंकि वह स्वयं भी हिरण्यवर्मा से सम्बद्ध थी। वस्तुतः वह हिरण्यवर्मा की बहिन थी।[1]

मालविकाग्निमित्र, रत्नावली और प्रियदर्शिका की कथाओं के प्रायः समान ही नवमालिका नाटिका की कथा है।[2] नायिका की छाया नासिका-रत्न में देखकर उसके प्रति नायक का आसक्त होना यह छायातत्त्व है, जो मदनकवि की पारिजातमंजरी के तार्टक अंक में वर्तमान है।

चतुर्थ अक में राजा की एकोक्ति द्वारा उसके नवमालिका-विषयक भाव व्यक्त किये गये हैं।

---

१. विजयसेन अपनी महारानी चन्द्रलेखा से कहता है—देवि, दिष्ट्या वर्धसे भ्रातुरपत्यलाभेन। सपत्नी के रूप में भाई की कन्या कैसे ग्रहणीय हुई—यह प्रश्न लोकरीति-प्रवर्तन से समाधेय है।

२. विश्वेश्वर के शृङ्गारमंजरी-सट्टक का प्रकाशन श्री बाबूलाल शुक्ल शास्त्री ने वाराणसी से किया है।

०

अध्याय ५५

प्रद्युम्नविजय

प्रद्युम्नविजय के लेखक महाराष्ट्रीय ब्राह्मण शङ्कर दीक्षित के पिता बालकृष्ण आनन्दवन (काशी) के निवासी थे।[1] बालकृष्ण के पिता ढुण्ढिराज सम्भवत' वही है, जिनकी १७५० ई० में लिखी मुद्राराक्षस की टीका मिलती है। इनकी एक अन्य रचना शाहविलासगीत मिलती है। इस ग्रन्थ से प्रसन्न होकर महाराज शाहजी ने इन्हे अभिनव-जयदेव की उपाधि से समलकृत किया था। ऐसा लगता है कि अपने जीवन के अन्तिम दिन ढुण्ढिराज ने काशी मे बिताये और तबसे उनकी वंश-परम्परा इसी नगरी मे प्रतिष्ठित रही। शकर के पिता बालकृष्ण ने भी संस्कृत की कुछ उत्कृष्ट रचनायें की थी।

सूत्रधार ने प्रद्युम्नविजय की प्रस्तावना मे बताया है कि इस नाटक को मुझे बालकृष्ण ने अर्पित किया है। बालकृष्ण सूत्रधार की परिचर्या से सन्तुष्ट थे।[2] इससे तो ऐसा लगता है कि इस नाटक की रचना बालकृष्ण ने की थी, क्योंकि साधारणत लेखक स्वयं ही अपनी कृति अभिनय करने के लिए सूत्रधार को समर्पित करते थे।[3]

नाटक के अन्त मे कवि शकर ने कहा है—

श्री तातवक्त्राम्बुजभूसमुद्गतिः प्रबन्धकल्पद्रुः सोधिशाखः।
तं गद्यपद्याच्छदवाणशाखिकाधिकं व्यधाच्छंकरदीक्षितो यम्॥

इससे प्रतीत होता है कि पिता और पुत्र दोनों का कृतित्व इस नाटक मे है। कवि की अन्य रचनायें—गंगावतारचम्पू, शकरचेतोविलासचम्पू आदि हैं।

प्रद्युम्नविजय का अभिनय छत्रसाल के पौत्र और हृदयशाह के पुत्र सभासिंह के राज्याभिषेक के अवसर पर हुआ था। स्वय सभासिंह ने सूत्रधार से कहा था कि मधुसूदन के चरित-विषयक नाटक का अभिनय करें। सभासिंह के तीन पुत्रों में अमान सिंह श्रेष्ठ था। उन्होंने सूत्रधार से कहा था कि किसी ऐसे नाटक का प्रयोग करें कि राजसमाज को अन्य नाटकों के प्रति विराग हो जाय।

इस नाटक का अभिनय प्रात काल के समय हुआ था।

कथावस्तु

कश्यप और दिति का पुत्र वज्रपुर का राजा वज्रनाभ नामक असुर ब्रह्मा के वरदान पाकर अतिशय शक्तिशाली बन गया था। वह देवताओं को सताता था।

---

१. इस अप्रकाशित नाटक की प्रति काशी के सरस्वती-भवन मे है।

२. अधिगत-समस्त-विद्या-विनोदानन्दित-सकलविद्वज्जनेनानन्दवनवास्तव्येन मत्परिचर्यागुणसन्तोषजनितप्रसादेन श्रीमद्दीक्षितबालकृष्णेन नाटकमेतं समर्पितमस्ति। तदभिनेतव्यम्।

३. उपर्युक्त वृत्त से प्रतीत होता है कि प्रस्तावना-लेखक सूत्रधार है।

उसने इन्द्र से कहा कि त्रैलोक्य-शासन मुझे करना है। घबड़ाकर इन्द्र ने द्वारका मे कृष्ण से परामर्श किया और तदनुसार अपनी माता अदिति से बताया कि वज्रनाम क्या चाहता है। अन्त में एक दिन परस्पर विवाद करते हुए इन्द्र और वज्रनाम कश्यप के पास न्याय के लिए पहुँचते हैं। कश्यप इन्द्र का पिता है। वे अपनी पत्नियों अदिति और दिति के साथ यज्ञ कर रहे थे। कश्यप ने वज्रनाम के अत्याचारों को सुना और उसे ऐसा करने से रोका। वज्रनाम ने कहा कि त्रिलोकी का शासन हम दोनों में बराबर-बराबर बाँट दें। कश्यप ने उन दोनों को समझाकर शान्त कर दिया।

श्रीकृष्ण अपने पुत्र प्रद्युम्न का विवाह करना चाहते हैं। वे इस विषय में रुक्मिणी और भद्रनट से परामर्श करते हैं। भद्रनट बताता है कि वज्रनाम की कन्या प्रभावती ही प्रद्युम्न के योग्य रूपवती है। रुक्मिणी कृष्ण से कहती है कि प्रभावती को लायें।

इन्द्र ने प्रभावती को प्रद्युम्न के लिए प्राप्त करने के उद्देश्य से हंस तथा हंसियों को उसके पास भेजा। उन्हें वज्रनाम ने बहुत सी सुविधायें प्रदान की। वह अपनी कन्या प्रभावती के लिए अपने से बढ़कर शक्तिशाली वर चाहता था। उसने उसे इस कार्य के लिए नियोजित किया। हंस ने बताया कि द्वारका में एक ऐसा अष्टसिद्धि-युक्त पुरुष है। वज्रनाम ने कहा कि उसे ले आयें।

प्रद्युम्न की प्रशंसा हंसियों के मुख से सुन कर प्रभावती उन्हें आदेश देती है कि मेरी प्राणरक्षा के लिए प्रद्युम्न को यहाँ लाकर उनसे मुझे मिलाओ। कृष्ण ने हंसी को बताया कि मैंने पहले ही प्रद्युम्न, गद और साम्ब को नटरूप धारण कराकर वज्रपुर मे भेज दिया है। प्रभावती का गान्धर्व विवाह हो गया। सबके प्रयास से गद और साम्ब का विवाह उसकी बहनों से हो गया।

नारद की बन आई। उन्होने वज्रनाम को बताया कि प्रभावती तो प्रद्युम्न के प्रणयपाश मे निमग्न है। उसे प्रद्युम्न से गर्भ है। वज्रनाम ने आदेश दिया कि प्रद्युम्नादि की हत्या कर दी जाय। इधर नारद ने द्वारका आकर कृष्ण से बताया कि प्रद्युम्न का अन्त ही करना चाहता है वज्रनाम। कृष्ण ने वज्रपुर पर आक्रमण करके वज्रनाम को मार डाला। प्रभावती उनकी बहू बनी।

प्रद्युम्न विजय सात अङ्कों में निष्पन्न है।

समीक्षा

इस नाटक में मानवेतर भूमिका सुरुचिपूर्ण है। हंस और हंसिनियों की रंगमंच पर पात्र-रूप मे अवतारणा छायातत्त्व है। इसके विषय मे विल्सन ने कहा है—

The introduction of such performers on the stage must have had rather an extraordinary effect, although not more so than the Birds and Wasps of Aristophanes or the Lo of Aeschylus, who as the dialogue sufficiently proves, were dressed in character[1].

---

१. The Theatre of the Hindus P. 147 Ed. 1955.

पंचम अंक मे प्रद्युम्न भ्रमर बनकर प्रभावती के कान मे पिरोये हुए कमल में बैठ जाते हैं और हंसिनी तथा प्रभावती का अपने विषय में संवाद सुनते हैं। पक्षी तो शास्त्र-विचक्षण हैं। इन्द्र, कश्यप, श्रीकृष्ण आदि की भूमिका से नाटक का औदात्य संवर्धित है। आरभटी-वृत्ति की प्रचुरता के कारण यह नाटक छल-छद्मों से परिपूर्ण है।

शंकर ने इस नाटक को महाकाव्योचित लम्बे वर्णनो से परिव्याप्त किया है। नाट्यकला के साथ काव्यकला का सामजस्य यद्यपि संस्कृत की परम्परा रही है, किन्तु कला की दृष्टि से यह उपादेय नही है।

शिल्प

अभिनय में किन-किन तत्त्वों की प्रधानता होती थी—इसकी चर्चा सूत्रधार ने प्रस्तावना मे की है—

गायन्ति यच्च विवदन्ति वदन्ति यान्ति नृत्यन्ति यत्किल पतन्ति तथोत्पतन्ति।
सन्ताडयन्ति लडयन्ति विडम्बयन्ति तत्सर्वमेव ललितं ललनाजनस्य॥

संवाद मे इन्द्र और वज्रनाम का कलह पाठको को अतिशय रोचक प्रतीत होता है। रंगमच पर ऐसे सवादों से प्रेक्षकों की अभिरुचि बढ़ती है। वज्रनाम का अपने पिता से इन्द्र के विरोध मे कहना है—

हन्तुं मामेष वैरी प्रतिपदमधिकं देवताः संयुनक्ति।
व्यक्तं त्यक्तास्मदादीन् सपदि मखविधौ यज्ञभागान् भुनक्ति।
स्वाराज्ये रज्यमानः किमपि न हि पुनर्दातुमेषोऽभिवक्ति॥१.४४

सयुक्ताक्षरों के आनुप्रासिक प्रयोग से कवि भावोचित वातावरण उत्पन्न करता है। यथा,

हे सौविदल्ल कृतमल्लपरिश्रम त्वं प्रद्युम्नमानय हतप्रतिमल्लवीर्यम्।
प्रोक्षिप्तमल्लशतसहतशत्रुवर्गभारात् करोमि किल वल्लभया समेतम्॥२.६

कवि प्रवेशकों और विष्कम्भको को कहीं-कहीं अतिशय लम्बायमान करते हैं। द्वितीय अङ्क और इसके पहले का विष्कम्भक प्राय बराबर आयाम के हैं।

लम्बे-लम्बे वर्णन भले ही काव्य की दृष्टि से चारुतर हैं, किन्तु रंगमच पर एक ही पात्र का लम्बे वर्णनों को अनेक पृष्ठो तक सुनाते जाना नाट्योचित नही है। तीसरे अक मे हसी की वर्णना कुछ ऐसी ही है। शकर के वर्णनो की शैली से बाण का स्मरण होता है। पंचम अक मे अन्धकार और चन्द्रोदय का वर्णन लम्बे समासों और अलकारो का जाल प्रस्तुत करता है। इस अक मे वर्णन या सूच्य ही अत्यन्त है, दृश्य नाम मात्र का है।

अठारहवी शती के प्रेक्षागृह मे राजा के लिए ऊँचा आसन होता था। मणिजाल-रचित तिरस्करिणी के भीतर से स्त्रियाँ नाटक देखती थी। नाटक के प्रयोग से आह्लादित होकर प्रेक्षक शरीर से वस्त्राभूषण उतार कर नट को देते थे।[1] नाटक की उत्तमता

१. राजा ने तो राज्य ही नट को देना चाहा।

समझी जाती थी कि प्रतीति हो—स एव रामः, स एवायं दशरथः। स एव ऋष्यशृङ्गः। इदं सर्वं तात्कालिकमेव पश्यामः।

चतुर्थ अंक में भद्रनट के अनुसार रामायण-काव्यार्थकथा-नाटक का प्रयोग चर्चित है।

कवि ने सभी शास्त्रीय विधानों और परम्परागत मर्यादाओं का अतिक्रमण करते हुए नाटक के पंचम अंक में सम्भोग की आद्यन्त विधियों का रुचिपूर्वक वर्णन किया है।[1] आज के चलचित्र भी इसके सामने फीके पड़ जायेंगे। यह सारा उपक्रम नाटक को कामशास्त्रीय बना देता है।

शैली

अलंकारों के प्रयोग में कवि की रुचि विशेष है। अर्थालंकारों को शब्दालंकारों से कवि ने चमकाया है। उनका अनुप्रास कोरे व्यञ्जनों का नहीं है, अपितु स्वरों का भी है। यथा,

इयं हि नवयौवना कुसुमचापसंग्रन्थना
निर्वर्तितविभूषणा प्रबलकामसन्तापना।
सदैव नमितानना श्वसितितैव वा कामना—
महो वदति शुप्यते सततमम्बुजन्मानना॥

शंकर ने विविध छन्दों का प्रयोग किया है। शार्दूलविक्रीडित, हरिणी, शिखरिणी, वसन्ततिलका, स्रग्धरा, मालिनी, पृथ्वी, नर्दटक, आर्या, गीति, उपगीति, पुष्पिताग्रा, प्रबोधिता, दण्डक, स्वागता, शालिनी, दुर्मिल आदि प्रमुख छन्द प्रयुक्त हैं। शार्दूलविक्रीडित कवि का प्रियतम छन्द प्रतीत होता है।

नाटक का अपर नाम वज्रनाभ वध है।

सामाजिक मान्यताएँ

अभिनेताओं की प्रतिष्ठा न्यून थी। रुक्मिणी के शब्दों में—

ये स्वीयां दयितां स्नुषां दुहितरं सन्नर्तयन्तो नरा
जीर्णाः सद्मनि वर्तयन्ति समयं गायन्त उच्चैः स्वरम्।
संसत्स्वश्रु च तत्कटाक्षविशिखव्याक्षिप्तचित्रस्फुरत्-
प्रीतिप्रीतजनार्पितात्र कवलैर्यज्जीवनं धार्यते॥२.३६

किन्तु कुछ ऐसे विचारक थे, जो नटों के उस योगदान को समझते थे, जिससे राष्ट्र का चारित्रिक निर्माण होता है। यथा,

पुराणपुरुषः पुरा समकरोन्मुदा जीविकां
तथैव किल जीवतां सुकृतमैहिकामुष्मिकम्।
नयन्ति खलु तत्र ये जनिमथाभिरामैर्गुण-
प्रकार-विविनर्मनैरपि च किं न धन्या भुवि॥४.२६

शारदातिलक-भाण

शारदातिलक-भाण शंकर दीक्षित की दूसरी नाट्य कृति है। इसका नायक रसिकशेखर विट है। वह कोलाहलपुर में वेशवाटादि में परिभ्रमण करते हुए अपनी शृंगारित अनुभूतियों का वर्णन प्रस्तुत करता है।

१. कवि शृंगाररसिक है। उसने ६.१२ में यन्दरों तक का आलिंगन वर्णन किया है।

सान्द्रकुतूहल-प्रहसन

सान्द्रकुतूहल-प्रहसन[1] के रचयिता कृष्णदत्त सुविख्यात वाग्जड जनपद में ग्रामठीय गाँव के निवासी थे। उनके पिता सदाराम और माता आनन्द देवी थी। कवि ने अपने वंशधरों का वर्णन इस प्रकार इस रूपक के अन्त में प्रस्तुत किया है–

यस्यास्ते वाग्जडेति प्रथितजनपदे ग्रामठीयाख्यखेटो,
य मातानन्ददेवी तनयमजनयच्छ्रीसदारामभर्तुः ॥
साहस्त्रौदीच्यजातिर्य इह सुविदितो डालवाणीय जोशी–
ख्याविख्यातावटंको जयति कृतिरियं कृष्णदत्तस्य तस्य ॥

इसी क्रम में कवि ने बताया है कि उनके सुविख्यात पूर्वज रघुराम थे। उनकी सन्ततिपरम्परा में पीताम्बर, अचलदास और सदाराम हुए। अन्तिम सदाराम इस कृति के प्रणेता कृष्णदत्त के पिता हुए। कृष्णदत्त का उपनाम गिरिवरधरदास था।

कृष्णदत्त का वाग्जड जनपद कहाँ था और उनका आश्रयदाता राजा धर्मवर्मा किस प्रदेश का प्रशासक था—यह अभी तक सुनिश्चित नहीं है। कवि ने व्रजप्रदेश की महिमा का जो निदर्शन इस रूपक में किया है, उससे सम्भव प्रतीत होता है कि वे व्रजवासी थे और कृष्णभक्त वैष्णव कुल में उनका प्रादुर्भाव हुआ था। कृष्णमाचार्य कृष्णदत्त को मिथिलावासी मानते हैं। वहाँ का वज्जड जनपद ही सम्भवतः वाग्जड है।

कृष्णदत्त की अपर कृति राधारहस्यकाव्य मिलती है। इसके २२ सर्गों में राधा और कृष्ण का प्रणयाख्यान वर्णित है।

कृष्णदत्त ने इस रूपक का रचना-काल स्वयं बताया है—

नवाम्बराष्टापदभूमिता समा मा माधवो निर्मलपक्षसंयुतः।
एका तिथिः श्रेष्ठतमा सुमंगला तेनेऽन्वह स्वां कृतितामिमामिह ॥

इसके अनुसार १८०९ वि० सं० के वैशाख मास में इसकी रचना हुई। यह १७५२ ई० होगा।

कथावस्तु

प्रथम अङ्क में पद्माकर पिता अपने पुत्र दिवाकर को कृष्णभक्ति की अद्वितीयता बताता है। कृष्ण को व्रजभूमि मोहिनी है। वे वहाँ रासक्रीडा करते थे। रासक्रीडा क्या है—यमुना नदी के तीर पर सामूहिक नर्तन। यथा,

व्रजाङ्गने व्रजाङ्गने तदन्तरे व्रजाधिपो
व्रजाधिपस्तदन्तरे व्रजांगने व्रजाधिपः
इति व्रजाधिपाष्टकं व्रजांगना द्विरष्टकम्
प्रकल्प्य रासमण्डले ननर्त नन्दनन्दनः ॥

---

1. इस अप्रकाशित नाटक की प्रति भण्डारकर इंस्टीट्यूट, पूना में है।

इस विषय पर कवि ने मनोरम गीतात्मक नन्दनाष्टक का समावेश किया है। पद्माकर ने अपने को सौविदल्ल बनाकर कृष्ण की शरण पाई थी। वह अपने पुत्र को बताता है कि कैसे मैं ध्यान लगाता हूं और कृष्ण की विविध चरितावली का ध्यान-स्तिमित लोचन से प्रत्यक्ष करता हूं। कृष्ण की बाललीलाओं का अनुत्तम प्रकर्ष है। यथा-गोपिकाङ्गनायें कृष्ण को लेकर उलाहना देती हैं। कृष्ण बाँधे जाते हैं तो वे उन्हें छुड़ाने के लिए कहती हैं—

यशोदे-यशोदे ह्यदः साम्प्रतं नो वदामोदरं त्वां सदामोदराशेः।
कुदामोदरान्मुञ्च दामोदरस्य स दामोदरो वर्तते बालकोऽयम् ॥३४

फिर पद्माकर कृष्ण और राधा के संवादात्मक चरित्र का ध्यान करता है। पुत्र के पूछने पर पिता बताता है कि अतिदैन्य से भगवान् की प्रीति उत्पन्न की जा सकती है।

पुत्र की इच्छानुसार पद्माकर गोवर्धनगिरि, गोकुलग्राम और यमुना का भक्ति-भावाविष्ट वर्णन है। पिता बताता है कि भक्ति ज्ञान, कर्म और मुक्ति से दुर्बल नहीं पड़ती। उस भक्ति की प्राप्ति का साधन है वल्लभाचार्य-मार्गप्रवेश। इस मार्ग का स्पष्ट और मनोग्राही वर्णन किया गया है। इसके लिए हृदय में तीव्र आकांक्षा होनी चाहिए। अन्य मार्ग उपयोगी नहीं हैं। पुत्र सुखाकर की समझ में बात आ गई कि—

वृथा मनुजजन्मता ननु वृथाद्विजत्वं तथा
वृथा वचनचातुरी सकलशास्त्रवित्त्वं वृथा।
वृथा फलमियत्तया गतमिह ममायुर्धनं
कदाप्यगतवल्लभप्रकटिताव्वपूर्वस्थितेः ॥१·७८

फिर वल्लभ के पुत्र विट्ठल की महिमा का आकलन पिता ने किया है। यथा,

वल्लभराजकुमार मारमनोहररूपवर।
धरणीत्रिदशाधार धारय चेतसि मामनघ[1] ॥१·८०

विट्ठल के सात पुत्रों का संक्षिप्त परिचय है।

द्वितीय अङ्क में दो कविवर प्रभाकर और उनके पुत्र क्षपाकर हैं। रंगमंच पर पुत्र का पिता से प्रश्न है—हमारे मार्ग में कौन देव पूज्य है? पिता बताता है—

पशुपते हिमपर्वत-कन्यके व्रजपते रहरे रघुनायक।
गणपते तपनाखिलदेवताः प्रतिदिनं शिरसा प्रणमामि वः ॥२·२

यह स्मार्त मार्ग है, जिसमें सभी देव समान रूप से पूज्य हैं। सबसे पहिले शिवचरित की वर्णना करते हुए पिता विविध प्रबन्धों के उदाहरण प्रस्तुत करता है। प्रबन्ध हैं—प्रतिलोमानुलोमपाद, द्व्यक्षर, चतुरक्षर, अन्तर्लापिका, सर्वतोभद्रप्रबन्ध,

१. यह पद्य सौराष्ट्रच्छन्द (सोरठा) में है।

हारबन्ध, वक्रोक्ति, बहिर्लापिका, वर्णमोक्षविपर्यासचमत्कृति, प्रतिपदयमक, निरोष्ठ्य, प्रतिपादान्तयमक, पादान्तयमक, छत्रबन्ध, व्यंजन-बन्ध, कर्तृकर्म-क्रिया-गुप्त, पादाद्यन्त यमक, चतुःपादादि यमक, प्रतिपदयमक, अन्तर्लापिका, कमलबन्ध, कविदुराप, गुप्त-करण आदि। इनके उदाहरण प्रस्तुत करते हुए पिता-पुत्र ने क्रमशः गगा, गणपति, श्रीकृष्ण, प्रह्लाद, रामचन्द्र आदि के चरित और महिमा-विषयक स्तुतियाँ अपने श्लोको मे दी हैं।

तृतीयाङ्क में दिवाकर पिता और उसका पुत्र गुहाकर रगमंच पर हैं। दिवाकर शरीर से वृद्ध पर मन से विट युवक है। उसका मत है कि स्मार्त, वैष्णव, पाशुपत आदि धर्मों की शिक्षा देते हुए मूर्ख पाषण्डी साधारण लोगो को ठगते हैं। इस ससार मे एकमात्र महत्त्व तो रमणियो का है। पुत्र के कारण पूछने पर दिवाकर ने बताया कि—

कामिन्याः सुरतं क्व तज्जपतपोमासोपवासाः क्व ते।

उक्तं च

अमृतस्येव कुण्डानि सुखानामिव राशयः।

दिवाकर हनुमान् की स्तुति करता है कि पति वियोग मे जैसे आपने, सीता की रक्षा की, वैसे ही पत्नी-वियोग मे मेरी रक्षा करें।

दिवाकर से गुहाकर ने प्रश्न किया कि कान्ता को शास्त्रो ने दुःख का मूल बताया है। क्यों आप उसके पीछे पड़े हैं? दिवाकर कान्ता का अर्थ बताता है–'कं सुखमन्ते इति कान्ता' अर्थात् जो आद्यन्त सुख दे, वह कान्ता है। दिवाकर अपनी उपपत्नी की उत्सुकतावश उत्कण्ठित था। तब तक उपपत्नी कुसुमकलिका आ गई। उसका कामुक वर्णन कर लेने पर उसे शिष्य का प्रश्न सुनने को मिला—असदः समर्थ प्राकृतपुरुषेणाप्यवाच्यवादान् वदन् निर्लज्ज इव कुतो न वार्धके लज्जसे।

इस प्रश्न का उत्तर हिन्दी के कवि केशवदास की पद्धति पर दिवाकर ने दिया—

वृद्धत्वे यदकारि दैवरिपुणा कर्तुं न तच्छक्यते
कांचीनूपुरकंकणोत्कटरणत्काराद्विकारप्रदा।
श्यामाङ्गीमृगलोचना विधुमुखी सूक्ष्माञ्जना सुस्तनी
मा तातेतिपितामहेति वचसा सर्वोवयेदर्भगम्॥३.१३

कुसुमकलिका ने दिवाकर के वियोग मे निद्रा को उपालम्भ दिया—

निद्रे नायासि कस्मात् प्रियतमविरहे कोऽपराधः कृतस्ते
किं रुष्यसि भर्तुर्भुजयुगगतया नादृता प्राङ्मयातः।
किं वा भीतासि बाष्पाकुलितनयनयोर्मज्जनाद्वा मयि त्वम्
कृत्वा सापत्न्यभावं व्रजसि यदि पति त्वद्यति त्वां प्रियोऽपि॥

एक बार वह प्रवास करने वाला था, पर अपनी उपपत्नी की सहचरी के समझाने पर विदेश नहीं गया।

चतुर्थ अङ्क में दोषाकर अपने पुत्र सुधाकर के साथ रंगमंच पर आते हैं। पुत्र को पिता राजा के कोषाध्यक्ष के पास भेजता है कि अपने स्वरूप और विद्या का वर्णन करके सिद्धान्न माँग लाओ। पुत्र ने लौटकर बताया—

रीतयोऽन्याः प्रदृश्यन्ते राजद्वारेऽत्र नूतनाः।
नटा विटाश्च पूज्यन्ते न विद्वांसो महाजनाः॥

पिता ने कहा कि तब अन्य देश में चलें। पुत्र ने कहा कि सर्वत्र यही दशा है। जिस ओर से बयार बहे, उसी ओर पीठ कीजिये। जैसे लोग हों, वैसे ही अपने भी बन कर सिद्धि प्राप्त की जा सकती है। पिता ने कहा कि मैं गिरगिट-पन्थी नहीं हूँ। इस क्षणभंगुर जीवन में इस प्रकार की लम्पट-जीविका को अपनाना ठीक नहीं है। पर यदि कोई अन्य उपाय नहीं है तो तुम मेरे सूचीवक्त्र नामक उपपुत्र को बुलाओ। वही भँड़ैती और नाटक कर सकता है। साथ में वह अपनी पत्नी कल्पमंजरी को भी लाये। सूचीवक्त्र ने आकर अपनी सम्मति दी—

पाषण्डानृतभाण्डगायनपरस्त्रीवंचने स्तेयता च
कौटिल्यौषधियन्त्रमन्त्रपरता द्यूतेन्द्रजालानि च।
पाशाक्षेपगरप्रदानहननद्वैजिह्व्यधातुक्रिया–
नैतान्विन्दति हन्त यः कलियुगे तज्जीविकाशा कुतः॥४·७

दोषाकर ने उसे सिद्धान्न के लिए राजसभा में भेजा। उसने राजा की प्रशंसा की और उसे बताया कि कैसे-कैसे व्यभिचारों को कुलधर्म बनाये हुए हम होलिकापुर-वासी हैं। राजा ने कहा कि यह ठीक नहीं। सूचीवक्त्र ने कहा कि शास्त्र आदेश देता है—

आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जः सुखी भवेत्॥

सूचीवक्त्र और कल्पमंजरी के संवाद के बीच गणेश की विघ्नविघातिनी स्तुति है—

नमस्ते चण्डिकापुत्र मोदकामोदिने॥

इसमें मोदक सुनकर तथाकथित ब्राह्मण-कुटुम्ब-कुठार और कुलकलंक रंगमंच की ओर झपटे। तब सूचीवक्त्र सपत्नीक भाग खड़े हुए। कुटुम्बकुठार ने देखा कि मोदक का यहाँ नाम भी नहीं रहा। उसका शोक दूर करने के लिए कुलकलंक ने कहा कि यहीं यजमान दुर्मुख-भ्राता राजा श्याममुख रहता है। उनके रहते क्या कष्ट? उनके बुलाने पर राजा, रानी और राजकुमार रंगमंच पर आते हैं। श्याममुख ने कहा कि मैं अपने पुत्र नीलपाद का विवाह गोत्रघाती की पुत्री कर्कशा से करने के लिए उत्सुक हूँ। वर-वधू पक्ष की कुलशुद्धि का विश्लेषण है—

माता यस्याः पुलिन्दी नट इति जनकः कथ्यते नाममात्रं
जाता या चर्मकारात् स्वजनविरहिता पालिता वेश्यया या ॥
क्रीता दुर्भिक्षकाले सदसि च जगृहे गोत्रघाती ततो याम्,

वर की कुलशुद्धि, का परिचय देते हुए उसका पिता राजा श्याममुख कहता है—

ग्रहमपि वरुडोऽस्मि, स्त्री च चाण्डालपुत्री
यवनयभनजातो बालको नीलपादः।
रजकसदनपुष्टो भिल्लकैवर्ततो यः ॥ इत्यादि

राजा ने कुलकलक से कहा कि इस प्रकार की कन्या से विवाह होना है कि मेरे पुत्र के पाँच पुत्र हों। कुलकलंक ने कहा कि इससे विवाह होने पर एक मास में ही आपका पुत्र पंचत्व प्राप्त करेगा। विवाह का समय निर्णीत हुआ आश्विन मास मे, कृष्णपक्ष, अमावस्या, शनिवार, ज्येष्ठा-नक्षत्र, नामकरण, वैधृति-योगयुक्त। विवाह मे सम्मिलित होने के लिए सम्बन्धियो को निमन्त्रण भेजा गया। साथ ही सूचना दी गई—

वस्त्राण्युत्तार्य गत्वा सरिदभिपुलिने वाचनीयान्यमूनि ॥

यह सब हो जाने के पश्चात् कन्या के पिता गोत्रघाती का कहना है—

हस्तौ पादौ दुर्बलौ सत्त्वहीनौ दृश्येते ते नीलपादस्य सूनोः।
तस्मादस्मं कन्यकायाः प्रदाने चेतो दोलेवाग्रपश्चात्स्वमेति ॥४·४५

श्याममुख ने कहा—

किं हस्तपादचिबुकाननगुल्फना सा पृष्टाङ्गुलीजठरलोचनदर्शनैस्ते।
तात्पर्यमस्ति यभने तदुदीक्षणीयं ह्यादर्शदर्शनमहो करकंकणे किम् ॥४.४६

ऐसा ही किया गया। कर्कशा ने कहा कि इसमें दोष है। मैं नीलपाद को उपयुक्त नही समझती। नीलपाद को भी कर्कशा मे कुछ दोष अनुभूत हुए। पर अन्त मे उनके माता-पिता ने निर्णय लिया कि छोटे-मोटे दोष तो रहते ही हैं। बाकी सब ठीक है। विवाह हो जाना चाहिए। पुरोहित ने अश्लील कन्यादान संकल्प पढ़ दिया।

राजा श्याममुख का मत है—कामियो का सौभाग्य है कि कोई युवती विधवा हो जाय। यही रूपक समाप्त होता है।

शिल्प

सगीतक की चारुता की परम सफलता सान्द्रकुतूहल के प्रथम अंक में मिलती है। इसमे कोई भी ऐसा पद्य कदाचित् ही मिले, जो पाठक को गुनगुनाने के लिए प्रवृत्त न कर दे। यथा कृष्ण का वर्णन है—

ग्रमाङ्गल्यध्वंसी भुवशुभशंसी करपुटे,
दधद्रम्यां वंशीमपरकलहंसीमिव पराम्।

सदा दुष्टभ्रंशी विलसदवतंसी श्रवणयोः,
स्वयं साक्षादंशी जयति यदुवंशीयतरणिः ॥

अनुप्रासिक ध्वनियों का समाहार करने की विशेष क्षमता कृष्णदत्त में है।

अभिनय के आरम्भ में चार ब्राह्मण अपने-अपने पुत्र के साथ रंगमंच पर आते हैं। उनमें से पिता-पुत्र की द्वयी तो पूरे अङ्क भर संवादपरायण हैं। शेष छः क्या करते हैं—यह बताया तो नहीं गया, किन्तु चुपचाप पड़े हैं—यह स्पष्ट है। ऐसी स्थिति अनाटकीय है। वैसे प्रत्येक अङ्क के आरम्भ में पुत्र और पिता का रंगमंच पर आना और अंक के अन्त में पिता-पुत्र का जाना बताया गया है। ऐसी स्थिति में प्रथम अंक के आरम्भ में–'ततः प्रविशन्ति स्वस्ववाक्चातुरीचमत्का··· ·· ·········चत्वारो ब्राह्मणाः ससूनवश्च'। यह निवेदन त्रुटिपूर्ण है।[1]

पात्र कैसी मुद्रा में रंगमंच पर आये—यह कवि ने पद्यात्मक निवेदन के रूपमें प्रस्तुत किया है। यथा तृतीयांक के आरम्भ में—

दन्तान्निष्पीडयन् सन्निजकरयुगलं पेपयन् रोपवेशात्
पादाघातान् कुर्वन्नहह शिवेत्याब्रुवन् खेदखिन्नः।
मूर्धानं धुनयन् यो विकटकटितटं भ्रामयन्नासमन्तात्
पश्यन् शोणाक्षिकोणात् कुटिलभ्रूकुटिकां नर्तयन् वाचमूचे ॥

तृतीय अंक के मध्य में एक और निवेदन समाविष्ट है, जिसमें कुसुमकलिका पद्य द्वारा दिवाकर को प्रोषित होने से रोकती है। यथा,

भर्तुः प्रस्थानकाले करधृतवसना मुंच मुंचेति कान्ते।
प्रोक्ता कान्तेन कान्ता शिथिलतरतनुर्गद्गदां वाचमूचे ॥३.१४

इसके पश्चात् निवेदन रूप में कुसुमकलिका का विलाप है। आगे निवेदन द्वारा ही बताया गया है कि कैसे उसने एक सखी को दिवाकर के पास भेजा। उस सहचरी का सन्देश भी निवेदन द्वारा प्रेक्षकों को ज्ञेय है। यथा,

रात्र्यां हेमन्तिकायामपि बत वसनं वेष्टयित्वार्द्रमङ्गे
धैर्यं व्यालम्ब्य शौर्यादतिरतिवशतः साहसं संविधाय।
तस्याः पार्श्वे कथञ्चिच्चरति सहचरी त्वद्वियोगादमुष्यां
दीनायां निर्दयत्वं शिव शिव कुमते निर्दयत्वं त्यजेथाः ॥३.१६

रंगमंच पर एक ही अंक में अनेक स्थानों की घटनायें दिखाई गई हैं। यथा चतुर्थ अंक के रंगमंच पर ब्राह्मण सुधाकर और दीपाकर का स्थान भी है और साथ ही राजसभा भी है।

कितने समय की कथा एक अंक में होनी चाहिए, यह विचार नहीं रखा गया है। चतुर्थ अंक में विवाह का लग्न-शोधन, सम्बन्धियों को पत्र लिखना, उनका उपस्थित

१. ऐसी ही अन्य त्रुटियों से स्पष्ट होता है कि प्रस्तावना कृष्णदत्त की लिखी नहीं है।

होना, विवाह आदि सभी बातें समय की अपेक्षा की दृष्टि से अनेक अंकों में होनी चाहिए थी।

अन्तर्नाट्य

चतुर्थ अङ्क के मध्य में सूचीवक्त्र और कल्पमंजरी यद्यपि पात्र हैं, पर वे सूत्रधार और नटी के रूप में अपने कर्तव्यों और परिहासात्मक संवाद के द्वारा एक अन्तर्नाट्य की प्रस्तावना प्रस्तुत करते हैं। अन्तर्नाट्य के प्रमुख पात्र कुटुम्बकुठार और कुलकलङ्क हैं।

कुतूहल

कुतूहल कोटि की रचनाओं में इस प्रकार विभिन्न अंको में विषय-वैभिन्न्य मिलता है। इसी शताब्दी के परवर्ती कवि भोलानाथ शुक्ल के कर्णकुतूहल में तीन कुतूहल-राजवर्णन, सम्भोग तथा मगल क्रमशः हैं।

समीक्षा

कवि का एक सामाजिक दृष्टिकोण है, जिसे वह प्रेक्षकों को देना चाहता है। यथा,

स्त्रियो न निन्द्या न कदापि हेयाः स्त्रियोऽखिलं दातुमलं समर्थाः।

प्रायशः कृष्णदत्त सोत्साह अश्लील चर्चाओं से इस प्रहसन को बोझिल बनाये हुए हैं। ऐसा लगता है कि कवि को अश्लील में हास्य का स्रोत दिखाई देता है। यह सर्वथा अनुचित है। रंगमंच पर वमन का दृश्य और विस्तारपूर्वक वर्णन अश्लीलता की परा काष्ठा हैं, भले ही प्रहसन हो, ऐसे दृश्य वर्ज्य हैं।

यह प्रहसन भद्दी चर्चाओं का अद्वितीय पिटारा है। सान्द्रकुतूहल का केवल चतुर्थ अक विशुद्ध प्रहसन है। पहले तीन अकों में प्रहसन-तत्त्व नहीं है। कवि की यह रीति प्रतीत होती है कि एक ही रंगमच पर विविध प्रकार की उच्चावच घटनाओं और चर्चाओं को अलग-अलग अंको में रखने से बहुविध प्रेक्षकों का बहुविध मनोरजन हो सकता है। कुछ दृष्टियों से यह रूपक सफल माना जा सकता है।

प्रधान-वेंकप्प का नाट्यसाहित्य

सूत्रधार ने प्रधानवेङ्कप्प का परिचय इनकी रचनाओं की प्रस्तावना में दिया है। कामविलासमाण में बताया गया है कि वेङ्कप्प राम के परम भक्त थे। वे सर्वभाषा वैशारद्य तथा बहुविध कलाओं में अपनी वैदग्धी हनुमद्भक्ति के कारण सम्भव हुई मानते थे। वेङ्कप्प को अपने जीवन-काल में यश प्राप्त हुआ। उनको समकालिक कवियों ने सरस्वती का पुरुषावतार माना था। वीरराघव में सूत्रधार ने उन्हें आञ्जनेय द्वितीयावतार कहा है। उन्हें मूर्तिमान् धर्म कहा जाता था। वे परम सुशील थे।

वेङ्कप्प का जन्म भार्गव वंश में हुआ था। उनकी माता वावाम्बिका और पिता हम्मार्य थे। पिता राजमन्त्री थे। कवि श्रीरामपुर का रहने वाला था।[1] वह अपनी दानवृत्ति के लिए विख्यात था। वेङ्कप्प के प्रधान गुरु आचार्य चिदानन्द थे।

वेङ्कप्प मूलतः ब्रह्मविद्या में पारंगत थे। साथ ही वे षड्दर्शनीवल्लभ कहे जाते थे। उनके साम्राज्य-धुरंधर होने की चर्चा लक्ष्मी-स्वयंवरसमवकार में की गई है। सूत्रधार ने कहा भी है—

यस्याङ्गणे श्रीमदनीकिनीनां किरीटसंघर्षणजातरेणुः।
दिशत्युदारोत्सवभागिनीनां दिगङ्गनानां पटवासलक्ष्मीम् ॥६

वीरराघव में सूत्रधार ने कवि को अमात्य-शिरोमणि कहा है। वे १७६३ ई० से १७८० ई० तक मैसूर के राजा कृष्णराज द्वितीय, नञ्जराज तथा चामराज के मन्त्री थे। कृष्णराज द्वितीय (१७३४–१७६६ ई०) ने उन्हें सर्वाधिकारी नञ्जराज के अधीन प्रधान बना दिया था। कृष्णराज ने आगे चलकर अनेक विभागों के अध्यक्ष पद पर वेङ्कप्प को नियुक्त किया था। वेङ्कप्प ने मराठा राजा राघोवा से कृष्णराज की संधि कराई थी।

---

१. सूत्रधार ने रुक्मिणी माधवाङ्क की प्रस्तावना में कवि-परिचय देते हुए लिखा है—

यः श्रीरामपुरीविलासवसतिः श्रीरामकारुण्यदृक्
प्राप्तैश्वर्यपदश्चतुर्दशकला-वीरन्वरीवन्धुरः।
यस्मिन् विस्मयनीयपावनकृपोल्लासो वसत्यन्वहं
यं प्राप्यैव रमा समानमधिपं पातिव्रतं विन्दति ॥७

कवि के नाम के अनेक पर्याय मिलते हैं। वे वेङ्कसूरीचन्द्र भी कहे जाते थे, जैसा लक्ष्मीस्वयंवर की प्रस्तावना में सूत्रधार ने बताया है। वीरराघव में सूत्रधार ने कवि को वेङ्कप्रभु कहा है।

वेङ्कप्प युद्धों में लड़ने के लिए भी जाते थे। जब हैदरअली ने मैसूर का शासन संभाला तो उसने वेङ्कप्प को अवनत कर राजधानी से दूर भेज दिया।

वेङ्कप्प ने अगणित ग्रन्थों की रचना की, जैसा सूत्रधार ने प्रस्तावना में कहा है—

कश्शक्तिस्तत्प्रबन्धसङ्ख्याकरणेऽपि संख्यावताम्।

उनकी सर्वप्रथम रचना, जो लक्ष्मीस्वयंवर के सूत्रधार को ज्ञात थी, कुक्षिम्भर भैक्षव है।

वेङ्कप्प ने कम से कम आठ रूपकों की रचना की, जो सभी अप्रकाशित हैं, और मैसूर के हस्तलिखित ग्रन्थागार में उपलब्ध हैं। इनके रूपकों के नाम हैं—

(१) कामकलाविलास (भाण), (२) कुक्षिम्भरभैक्षव (प्रहसन), (३) महेन्द्रविजय (डिम), (४) वीरराघव (व्यायोग), (५) लक्ष्मी-स्वयंवर अथवा विबुधानन्द (समवकार), (६) सीताकल्याण (वीथी), (७) रुक्मिणीमाधव (अंक), तथा (८) उर्वशीसार्वभौम (ईहामृग)।

संस्कृत में रूपकों के अतिरिक्त उनकी रचनायें हैं—

(१) अलकार-मणिदर्पण, (२) जगन्नाथविजय-काव्य (व्याकरणात्मक), (३) सुधालहरी (उपन्यास), (४) कुशलव-विजयचम्पू, (५) आञ्जनेयशतक, (६) सूर्यशतक, (७) हनुमज्जय, (८) चिदद्वैतक।

कन्नड भाषा में उनकी रचनायें हैं—

(१) कर्णाटरामायण, (२) इन्दिराभ्युदय अथवा रामाभ्युदय तथा (३) हनुमद्विलास।

उर्वशी-सार्वभौम

वेङ्कप्प का उर्वशी सार्वभौम नामक ईहामृग अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण कृति है। पहले तो ईहामृग कोटि की गिनी-चुनी रचनाओं में से यह एक है और वस्तुतः अनुत्तम है। इसकी कथावस्तु नेता और रस आदि की परिकल्पना शास्त्रीय विधान के अनुरूप हैं। उर्वशीसार्वभौम वेङ्कप्प की प्रौढतम रचनाओं में से है। इसके पहले वे कर्णाटी रामायण, कामविलास, चिदद्वैत, महेन्द्रविजय, रुक्मिणी-माधव, आञ्जनेय-शतक, हनुमज्जय, कुक्षिम्भर-भैक्षव आदि कृतियों का प्रणयन कर चुके थे।

उर्वशीसार्वभौम का अभिनय वसन्त ऋतु में श्रीरामपुर के श्रीनिवास राम के महोत्सव के अवसर पर किया गया था। ईहामृग कोटि के रूपक उस युग में भी विरल ही थे। इसके अभिनय में कुवलय-शेखर कञ्चुकी बना था।

कथावस्तु

नारद ने पुरूरवा से उर्वशी के सौन्दर्य की चर्चा की। एक बार नारायण तप कर रहे थे। उस तप से डिगाने के लिए इन्द्र ने काम और अप्सरादि को नियुक्त किया। नारायण ने बदले में अपनी जंघा से अपूर्व सुन्दरी उर्वशी को रच कर देवताओं के

पीछे पलीता लगा दिया। उसी उर्वशी को पुरूरवा प्राप्त करे, यह नारद की कलह-प्रिय नीति का सारभूत है। उर्वशी को इन्द्र अपने प्रणयपाश में आबद्ध करना चाहता था।

विदूषक उर्वशी के लिये नायक की चिन्ता देखकर राजा की इच्छानुसार मदन-यज्ञ-परायण बना। वह सम्प्रति इन्द्र के चंगुल में थी—यही बाधा दूर करनी थी। राजा उसके प्रेम में उन्मत्त-सा हो चला था। उर्वशी की अनुपस्थिति में वह उसे देखते हुए होने का आचरण करने लगा। विदूषक ने कहा—

'ननु मयापि कोपेनैकदिनं गृहिणीमुज्झित्य गृहस्तम्भादिकं संवेत्यालिंगितम्'

तभी इन्द्र का सारथि मातलि पुरूरवा के पास आया और सन्देश दिया कि असुरों ने आक्रमण कर दिया है। आप रक्षा करें। राजा ने प्रस्थान करने का उपक्रम किया।

असुरों को पुरूरवा ने पराजित किया। विजयी राजा का भरपूर सम्मान इन्द्र ने किया। वहीं कहीं नर्तन करती हुई उर्वशी और पुरूरवा ने परस्पर दर्शन किये तो उर्वशी की समझ में बात आ गई कि अब मेरे लिए इन दो मित्रों—पुरूरवा और इन्द्र में बिगाड़ होगा।

मुझे लेकर इन दोनों में आग भड़क सकती है। वह इस स्थिति को न आने देने के लिए दूर सुमेरु पर्वत पर अन्तर्धान विद्या द्वारा चली गई। अलकनन्दा नदी के तट पर वह मन्दार-वन में बैठकर प्रिय का ध्यान कर रही थी। उसे मदन-ताप सता रहा था। उसने सखी को बतलाया—

स खलु दृष्टमात्र एव मम नेत्रयुगलस्यामृतसेचनं कृत्वा मां स्वाधीन-हृदयां कृतवान्—

उर्वशी जानती थी कि इन्द्र उसका अभिलाषुक है किन्तु मेरे पिता के भय से मेरा बलात् अपहरण नहीं करेगा। इसी समय वहाँ इन्द्र चित्ररथ के साथ आ पहुँचा। उन्होंने सुना कि उर्वशी पुरूरवा के प्रेम में निमग्न है। चित्ररथ का सोचना था कि वह इन्द्र के प्रति प्रेमासक्त है, पर बात विपरीत निकली। इन्द्र ने उर्वशी को यह कहते सुना—

अतएव त्रैलोक्यवल्लभमपि सुलभमुज्झित्य पुरूरवसमेवोद्दिश्य मम मनो धावति।

इन्द्र को कान में चित्ररथ ने उपाय बताया कि कैसे उर्वशी अविलम्ब मिल कर रहे। छद्म के द्वारा पुरूरवा का रूप धारण करके उर्वशी को आत्मसात् करना था। वे पुरूरवा का रूप बनाकर उर्वशी के पास पहुँचे। इन्द्र ने निकट वृक्ष से अन्तरित होकर उर्वशी को कहते सुना—

स यद्यलं मय्यनुरक्तचेताः स्वप्नेऽपि वा भोगमुपैतुमीशः।
अहं किमेतादृशधन्यताया अस्वप्नता पातकिनी समर्था: ॥३·१०

उर्वशी का मदनताप दूर करने के लिए उशीरलेपादि का प्रयोग हो रहा था। इन्द्र ने देखा—

तप्तायसीव परिशुष्यति गात्रसारो लिप्तोऽपि गाढतरमेष वपुष्यमुष्याः।
चित्ते पदं वितनुते यदवेक्षितुर्मे यत्नोपसम्भृतकृतघ्नजनोपकारः॥ ३·१२

उर्वशी ने सखी से कहा कि इससे काम नहीं चलेगा। पुरूरवा का चित्र लाओ। सखी चली तो उसे थोड़ी दूर पर इन्द्र (पुरूरवा वेषधारी) मिले। वे उर्वशी से मिले। इन्द्र अतिथि-सत्कार उर्वशी के हाथों से ही ग्रहण करना चाहते थे।

इस बीच मातलि के विमान पर बैठा पुरूरवा उधर से निकला। उसने मन्दार-वन में कुछ देर विहार करने का कार्यक्रम बनाया। मातलि वहीं द्वार पर रुक गया। राजा ने वन में प्रवेश करने पर अपनी प्रेयसी उर्वशी को देखा। उसने देखा कि मेरे ही समान अन्य पुरुष यहाँ पहले से ही विराजमान है।

इन्द्र को देखकर उर्वशी का मन चंचल हो उठा था। वह सपर्यार्पण में देर कर रही थी। इन्द्र ने उसका हाथ पकड़ना चाहा। पुरूरवा ने समझा कि कोई राक्षस मेरे वेश में मेरी प्रेयसी से बलात्कार करना चाहता है। वह उसे बचाने के लिए सामने आया। अब उर्वशी के सामने दो पुरूरवा थे। दोनों अपने को असली और दूसरे को नकली बता रहे थे। उर्वशी किंकर्तव्यविमूढ थी। वे दोनों लड़ने के लिए उतारू थे। तभी नारायण का भेजा कोई तपस्वी आया। उसने उर्वशी को बताया कि जो पीछे आया है, वही असली पुरूरवा है। पहला तो इन्द्र है।

पुरूरवा ने इन्द्र को खोटीखरी सुनाई और सारा इतिहास बताया कि कैसे छद्मपरायण बन कर तुमने क्या कुकर्म किये हैं। दोनों वाग्युद्ध के पश्चात् शस्त्रयुद्ध करने के लिए समरभूमि की ओर चलते बने। चित्ररथ देवताओं के पास इन्द्र के लिए उनकी सहायता भेजने के लिए चलता बना। उर्वशी और उसकी सखी किसी ऊँचे स्थान से प्रेमियों की लड़ाई देखने के लिए चलती बनी।

इन्द्र और पुरूरवा में घनघोर युद्ध हुआ। इन्द्र पुरूरवा का वेश त्याग कर पुनः महेन्द्र हो गया था। पत्थरों को भी विगलित करा देने वाला भयंकर युद्ध हुआ। दिक्पाल इन्द्र का साथ देने के लिए आ गये। उर्वशी को भय हो रहा था कि—

एक एव स मनोरथवल्लभः सर्वेषां सुपर्वणां रणपात्रमिति वेपते मे हृदयम्।

इधर नारायण के भेजे हुए ऋभुगण पुरूरवा की सहायता के लिए आ पहुँचे। युद्ध का वर्णन है—

क्वचिद् भ्रमितपट्टिशं क्वचिदुदिर्नसिहस्वनं
क्वचिद् हृदयभेदनप्रथमवीरवादोल्वणम्।
क्वचिच्छरधनुष्करप्रसभपातिसादिव्रज—
प्रचारनयनोत्सवं जयति जन्यभूमीतलम्॥ ४·१३

तब तक नारद बीच में आ टपके। उन्होंने बताया कि युद्ध बन्द हो। उर्वशी जिसे चाहे, वही उसका अधिकारी हो। यथा,

मन्दारकुसुममालामादायाभ्येति सा वरारोहा।
यं कामयेत मनसा तं कुर्यान्नाम तत्परिष्कारम् ॥ ४·१६

गन्धर्वों ने देखा कि उर्वशी ने कामुक इन्द्र को छोड़कर पुरूरवा का वरण किया है। उर्वशी तो साधारण स्त्री थी ही। नेपथ्य से उसके विषय में सुनाया गया—

अये संक्रन्दन किमिति चिन्तयसि।
अनुभूय भोगपूगानभिलपतु त्वामतः परं सैपा ॥

नारद ने इस प्रकार इन्द्र को आश्वासन दिया। नारद ने पुरूरवा से कहा कि आपका पुत्र आयु होगा। आप सार्वभौमत्व प्राप्त करेंगे। पुरूरवा मातलि के विमान पर लौट आया।

शिल्प

चार अङ्कों के इस ईहामृग में प्रस्तावना के पश्चात् और प्रथम अंक के पूर्व तथा अन्यत्र भी विष्कम्भक हैं। इस भारतीय विधान का परिपालन प्राचीन रूपकों में कहीं-कहीं ही मिलता है। नाट्शास्त्राचार्यों ने नियम बना दिया है कि नाटक, प्रकरण, नाटिका और प्रकरणिका में ही प्रवेशक और विष्कम्भक का समावेश हो सकता है, अन्य रूपकों और उपरूपकों में नहीं। इस प्रतिबन्ध को परवर्ती रूपकों में मान्यता नहीं मिलती दिखाई पड़ती है।

रंगमंच के दो भागों में अलग-अलग पात्रगण संवाद करते हैं। पहले से उर्वशी और उसकी सखी एक ओर हैं। इसके पश्चात् आये हुए इन्द्र और चित्ररथ बातचीत करके और उर्वशी की बात सुनते हुए दूसरी ओर खड़े हो जाते हैं।

'पुरूरवा का वेप धारण करके इन्द्र उर्वशी से प्रेम बढ़ा रहा है। छिपकर पुरूरवा उनकी बातें सुन रहा है।' ऐसा सविधान संस्कृत नाट्य साहित्य में विरल ही है। इन्द्र के द्वारा पुरूरवा का वेश धारण करना छायात्मक है।

इस नाटक में अंको की क्रमसंख्या और विष्कम्भक के अन्त में 'विष्कम्भकः' ऐसा दिया है। इस प्रकार अंक के भीतर अंक के अंग रूप में विष्कम्भक नहीं है।

युद्ध का वर्णन चूलिका द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

समीक्षा

विदूषक की हास्योक्तियाँ अच्छी लगती है। प्रथम अङ्क में वह उर्वशी को क्षण भर में अपने उत्तरीय के अंचल में बाँधकर लाने को तैयार है। राजा ने भी उसकी बात का समर्थन किया 'तावानस्ति तव प्रतापः।' यह परिहास के लिए है।

चित्ररथ की कतिपय उक्तियों के द्वारा वैङ्कप्प ने यह स्पष्ट कर दिया है कि स्वामी के विषय में अनुचरों की उक्तियों और मनोभावों में साम्य नहीं होता। चित्ररथ मन

मे सोचता है कि इन्द्र कितना कापुरुष है, किन्तु उसे प्रसन्न करने के लिए समर्थन करता है। यथा,

कथमस्य गर्हितां वृत्ति जानतोऽपि तदेकायत्तचित्तता न खेदयत्यात्मानम्। तथाप्याश्वासयामि प्रकृतानुरोधेन। देव को वापकर्षश्चिन्त्यते। सर्वेऽपि मदनपरवशतामुपगता एव।

रूपकों मे केवल ईहामृग की कथा मिश्रकोटि की होनी चाहिए। इस कथा मे मिश्र कथानक का लक्षण विचारणीय है। वस्तुतः नायक और नायिका का परिणय प्रख्यात है और शेष सारा संविधान कल्पित है। इसका कल्पित अंश ही कलात्मक चूडान्त है।

वीरराघव

वीरराघव व्यायोग का अभिनय शरद् ऋतु मे श्रीरामपुरी मे भगवान् रघुपति के महोत्सव के दर्शन के लिए आये हुए विद्वानो के विनोद के लिए हुआ था।

कथावस्तु

दण्डकावन मे राम के आश्रम पर आये हुए मुनियो ने प्रार्थना की कि आप हमे राक्षसों से अभयदान दें। राम ने प्रतिज्ञा की—एवमस्तु। तब तो क्रुद्ध होकर राक्षसो ने विराध को भेजा। वह मारा गया।

एक दिन राम के संवाददाता जटायु ने समाचार दिया कि खर और दूषण राक्षसो की बडी सेना लेकर आक्रमण करने के लिए आ रहे है। राम की सहायता करने के लिए मातलि इन्द्र का रथ लेकर आ पहुँचा। राम के निर्देशानुसार जटायु किसी पर्वत पर जा बैठे, जहाँ से उन्हे राक्षसो की गतिविधि का निरीक्षण करना था। राक्षस-सेनापति घोर शोर करते हुए आ पहुँचे। मातलि ने राम को अपने रथ से समरोचित स्थान पर पहुँचा दिया।

रंगमंच पर चित्ररथ और चामरग्राही के संवाद के द्वारा युद्ध का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया जाता है। चामरग्राही ही प्रश्न पूछता है और उनके उत्तर क्रमशः चित्ररथ पद्यात्मक देता है। खर का भाई त्रिशिरा युद्ध करने के लिए आया। युद्ध में वह मारा गया। फिर दूषण लडने के लिए आया। उसने कहा—

नायं सुबाहुर्न च ताटकापि न जामदग्न्यो न च वा विराधः।
सरोष-कालान्तक-भीषणोऽलं सपत्न-हन्ता ननु दूषणोऽयम्॥५६

राम और दूषण मे वीरंमणा-परायण उक्ति-प्रत्युक्ति हुई, जो नेपथ्य से सुनाई जाती है—

तब तक भूत के समान दूषण का सिर राम के बाण से कटा हुआ आकाश मे उड़ता दिखाई पड़ा।

अन्त में युद्ध करने के लिए खर आया। उसने राम को ललकारा कि बुड्ढों और दुबलों को मार कर तुम बड़े बने हो। राम ने बाणवर्षा से उत्तर दिया—

पतदुत्पतदम्बक्रावलीनामुपघातेन परस्परोदितानाम् ।
न पलैरुपसादितं तदा चेत् किमसावन्तकजिह्मका विकासः ।।

राम ने स्वपन-जृम्भण-मोहनादि बाणों को चलाया। उन्होंने अत्यन्त कौशल के प्रयोग से खर को धराशायी किया। युद्ध समाप्त हुआ। ऋषि राम को बधाई देने के लिए आते हुए कहते हैं—

जित्वा संयति लोककण्टकमयं रक्षस्त्रयं सैनिकै-
रक्षय्यं स्वयमेकमेव तरसा तीर्णः प्रतिज्ञार्णवः।
अद्यायाति सुखी स राघव इति द्रष्टुं समुत्कंठिता
दृष्टिरसम्प्रति चेतसोऽपि पुरतः स्वातन्त्र्यमालम्वते ।।

शिल्प

वीरराघवव्यायोग के आरम्भ में मिश्र विष्कम्भक है। यह नवीन प्रयोग है। परम्परानुयायी नाट्यशास्त्रियों के अनुसार व्यायोग में प्रवेशक और विष्कम्भक का समावेश नहीं होना चाहिए।

वेङ्कप्प की संगीतमयी शैली अनुप्रास-गुणोत्तरा कही जा सकती है। उदाहरण के लिए अधोलिखित पद्य है—

कण्ठीरवार्कापिकराः करीन्द्राः कलापि सस्नेहकलाः फणीन्द्राः।
तरक्षुवक्षश्रयिताः कपीन्द्राः सुखेन सर्वेऽत्र महामुनीन्द्राः ।।

ऐसी सुसरला भाषा सर्वथा नाट्योचित है।

लक्ष्मी-स्वयंवर-समवकार

लक्ष्मी-स्वयंवर-समवकार का सर्वप्रथम अभिनय श्रीरामपुरी में तिरुवेङ्गलनाथ नामक रघुनाथ के महोत्सव के अवसर पर उपस्थित रसिकमण्डली के मनोरञ्जन के लिए हुआ था। इस रूपक के अभिनय में रङ्गभूषण और रङ्गतिलक पात्र थे।

कथावस्तु

वरुण ने समुद्र की कन्या लक्ष्मी का विवाह करने के लिए स्वयंवर कराया, जिसमें बहुत से देवादि आये। बात यह हुई थी कि प्रणय-कलह के कारण माधव की प्रेयसी लक्ष्मी ने समुद्र की कन्या के रूप में पुनर्जन्म लिया था। वैनतेय ने माधव की प्रणयोन्मत्त स्थिति देखी तो निवेदन किया कि अनुमति दें तो अकेले ही समुद्र को जीतकर लक्ष्मी को आपके लिए ले आऊँ। माधव ने कहा कि यह उपाय ठीक नहीं। अभी समय आने दें। वैनतेय का कहना है—

कृत्वा वासुकि-साहाय्यं जित्वा चासुर-मण्डलम्।
स्वयंवरमहो नूनं स्वयं लक्ष्मीमुपेष्यसि ।।३०।।

विष्णु पर कामदेव-हतक का प्रभाव देखकर वैनतेय व्याकुल हो उठा।

तभी नारद आये। उन्होंने विष्णु से बताया कि समुद्र अपनी सुन्दरी कन्या लक्ष्मी को लोकैकवीर पति को देने लिए स्वयंवर कर रहा है। दानव जानते हैं कि लोकैकवीर तो माधव ही हैं। हम सभी माधव का रूप धारण करके स्वयंवर मे पहुँचें, फिर देखा जायेगा। वैनतेय ने कहा कि यह तो हुआ गदहे का शार्दूल का चमड़ा ओढ़ कर छलने का प्रयास करना। नारद ने सुझाया कि लक्ष्मी आप पर रुष्ट हैं। आप तो जाकर उसे ले आयें। वैनतेय की सवारी से कृष्ण स्वयंवर-प्रदेश में आ पहुँचे।

स्वयंवर मे सखियों के साथ लक्ष्मी आई। वैतालिक सबसे पहले दानवों का वर्णन करता है। लक्ष्मी की प्रतिक्रिया है—इन्हें छोड़कर आगे बढ़ें। विद्याधरों को इसलिए लक्ष्मी ने ठुकरा दिया कि वे इन्द्र के अनुचर हैं। आगे वैतालिक ने इन्द्र को सामने आने पर उसका प्रशंसात्मक वर्णन किया। विदूषक ने निन्दात्मक चित्रण किया। लक्ष्मी आगे बढी। सामने अग्नि आये। वैतालिक ने उनकी प्रशंसा और विदूषक ने निन्दा की। इसी प्रकार आगे क्रमशः यम, निऋति, वायु, कुबेर, आदि को लक्ष्मी ने अस्वीकार किया। अन्त मे माधव समक्ष आये। उनके साथ शिव, अगस्त्य, मय, इन्द्र, चन्द्र आदि थे। रमा ने उन्हे देखते ही सद्यः वरण किया। माधव ने विवाह के लिए सज्जा का आदेश दिया। सागर और वरुण ने आकर इस उपक्रम का अनुमोदन किया। वरुण ने समुद्र को उन सभी देवो का परिचय दिया, जो विष्णु के साथ थे। यथा,

अयं चेद् विघ्नेशस्सुरपतिरयं नारदमुनि-
स्स्वयं चागस्त्योऽयं रविरयमयं कुण्डलिविभुः।
मयश्चायं चन्द्रस्स्वयमयमयं चापि धनदः
सुराणामाचार्योऽप्ययमुपगतो माधव-कृपाम्॥२.३७

वैनतेय ने सागर और वरुण का परिचय कराया। फिर वैवाहिक महोत्सव प्रारम्भ हुआ। वैवाहिकी शाला का अलंकरण हुआ।

तृतीय अङ्क मे विष्णु विवाह के अवसर पर अन्य देवों को पारितोषिक देते हैं। इन्द्र को साम्राज्य-पद, नारद को गायक-धौरेय-पद, शेष को शयनीय-पद, अगस्त्य को अखिलर्षि-उपदेश-पद, शिव को समस्तभजनीय-पद आदि दिये गये। गणेश पिचण्डिल और बृहस्पति आचार्य बना दिये गये। सबने सन्तोष व्यक्त किया और युगल-जोड़ी को अमरता का आशीर्वाद दिया। सभी प्रसन्न होकर अपने-अपने घर गये।

शिल्प

समवकार की परिभाषा इस कृति की प्रस्तावना मे इस प्रकार सूत्रधार ने दी है-

'विबुधदानवमुख्यकथाद्भुत—
प्रकटसर्वरसप्रसवाकरः।
समवकार इति प्रथितस्समा' इत्यादि।

लक्ष्मीस्वयंवर में छद्म और माया की प्रचुरता है। माया प्रायः छायातत्त्व का पर्याय है। कंचुकी के अनुसार दानव और विष्णु दोनों ही माया का आचरण करेंगे। यथा,

वितत्य वैष्णवीं मायां वीरश्रीमाधवः स्वयम्।
अशेषमायासम्मोहमाशु संगोपयिष्यति ॥२.५

समवकार में नियमानुसार विष्कम्भक और प्रवेशक नहीं होना चाहिए[1], किन्तु इसमें प्रत्येक अंक के पहले विष्कम्भक है ही।

समीक्षा

विदूषक के आकार का परिचय उसके नाम से मिलता है। विदूषक का नाम है कीशमुख।

समवकार कोटि के इस रूपक के अभिनय के प्रसंग में प्रस्तावना में नटी ने कहा है—

अपूर्वः खलु समवकारप्रयोगः।

सूत्रधार ने नटी का समर्थन करते हुए कहा है—

सत्यं विरल एव तादृशरूपकाविर्भावः।

इस समवकार मे तीन अङ्क हैं।

महेन्द्रविजय-डिम

महेन्द्रविजय डिम का सर्वप्रथम अभिनय श्रीरामपुरी के रघुनाथ-तिरुवेंगलनाथ के महोत्सव के अवलोकन के लिए आये हुए रसिकों के मनोरंजन के लिए हुआ था। सूत्रधार ने इसे मारिपादि पात्रों को पढ़ाया था[2]।

कथावस्तु

देवताओं के राज्य पर दैत्यबल की सहायता से बलि ने आक्रमण किया। ऐसा होने का कारण था दुर्वासा का शाप, जो उन्होंने उस समय दिया, जब उनके द्वारा प्रदत्त हार को ऐरावत ने तोड़-फोड दिया था। उन्होंने मनाने पर शाप-मार्जन किया कि विष्णु के द्वारा इसका परिमार्जन होगा।

प्रथम अंक में इन्द्र मातलि से असुरों के द्वारा किया हुआ उपद्रव सुनता है। वह उनका विनाश करने की प्रतिज्ञा करता है। बृहस्पति उन्हें ब्रह्मा का परामर्श बताते हैं कि अमृत प्राप्त करने के उपक्रम में असुरों को परास्त किया जाय। इन्द्र ने ब्रह्मा की बात न चाहते हुए भी मान ली।

द्वितीय अंक में देवताओं के परास्त होने पर एक दिन बृहस्पति शुक्र के घर पहुँचे और उनसे बोले कि मैं आपका छोटा भाई आया हूँ। बृहस्पति ने उन्हें योजना बताई कि कश्यप के वंशज देव और दानव मिलकर समुद्र से अमृत प्राप्त करें।

१. नात्र विन्दुप्रवेशकौ। दशरूपक ३.६१

२. नन्वध्यापितं महेन्द्रसाहसनिरातङ्कं श्रीवेङ्कयार्यस्य महेन्द्रविजयं नाम तादृशगुणगणनाभाजनम्। प्रस्तावना से।

शुक्र ने बलि के पास जाकर उनसे बताया कि देव प्रायः उन्मूलित हो चुके हैं, पर उनसे कब तक वैर रख कर अपने भी भय से पीड़ित बने रहें? बलि ने पूछा कि क्या करना है? शुक्र ने उनसे बृहस्पति की योजना बताई कि दुर्वासा के शाप से बचने के लिए आवश्यक है कि हम सब सुधा प्राप्त करें और इसके लिए समुद्र-मन्थन करें। बलि ने कहा कि इस सारी योजना के भीतर इन्द्र की कोई चाल है कि वह हम लोगो पर विजय प्राप्त करे। शुक्र ने कहा कि ठीक है। फिर बलि के कान में बताया कि हम लोग तो इस (आसुरी) नीति के अनुसार काम करें। बलि की समझ मे बात आ गई कि देवो को छल कर पूरी सुधा प्राप्त कर लेंगे। निर्णय हुआ कि गुपचुप विधि से सब काम बनाया जाय। बलि के उद्यत हो जाने पर बृहस्पति को उनसे मिलाया गया। बृहस्पति के शिष्टाचारवशात् बलि उनके चरणो पर गिर पड़ा। तब तो शुक्र ने उनसे कहा—

अनुगृह्यतामेष भवदन्तेवासी सार्वभौमः।

बृहस्पति ने बलि के द्वारा इन्द्र के विषय मे पूछने पर कहा कि हमने तो उनकी पराजय के पश्चात् उनकी उपेक्षाकर दी है। बलि ने कहा कि हम और इन्द्र भाई-भाई हैं। वैर नही रहना चाहिए। शुक्र ने कहा—

चिरविरोधिसुरासुरमण्डली विहितमंत्रितया यदवाप्यते।
विषयभोगविरागतया तव तदनवाप्यमितीव मतिर्मम ॥

अन्त मे बृहस्पति बलि से यह वचन लेकर लौटे—

तद्गम्यतामुभयकुलकुशलाय।

शुक्र ने बलि से कहा कि हम सबको प्रयत्न तो यही करना है कि अमृत हमे ही मिले, देवताओ को नही।

बृहस्पति के प्रयास से देव और असुर मिलकर बलि की अध्यक्षता मे एकमुख हो चले। दोनो पक्षों को अमृत पाने की गूढ इच्छा थी। समुद्र मन्थन के लिए विष्णु मन्दराचल को उठा लाये।

बृहस्पति ने बातो-बात इन्द्र को बताया कि छल से शत्रुओ की सम्पत्ति को जीतना है। इन्द्र इसे अपना गौरव मानते थे। वे तत्काल युद्ध करना चाहते थे। बृहस्पति ने कहा कि अमृतकलश निकलने दीजिये, फिर सब ठीक हो जायेगा।

अमृतकलश की प्राप्ति के लिए जब मन्थन आरम्भ हुआ तो इन्द्र बृहस्पति के साथ वहाँ पहुँचे, जहाँ शुक्र के साथ बलि था। वहाँ बलि को शुक्र बता रहे थे—

अमृतं भावितं नूनमसुरारेर्निदेशितः।
बलित्वाद् भवतामेतद् भविष्यति वशं पदम् ॥१५

सभी मिले तो शुक्र और बृहस्पति ने साथ कहा—

इयमपि सकृदुक्ता भ्रातरार्येति वाणी
श्रवणचुलुकपेयं दोग्धुपीयूषमेषाम्।

अलमलमनुकूलभ्रातृसौहार्दवाचा—
मृतमिति कियत् स्यादग्रतो वा न विघ्नः ॥१६

किं च–

यत्काश्यपस्य यमिनस्तपसोऽनुरूपं यच्चावयोरपि मनोरथसिद्धिसाध्यम्।
यद्देवदैत्यकुशलानुभवैकमूलं तत् सौहृदं समजनीति जितं विधात्रा ॥१७

बलि और महेन्द्र दोनों ने साथ मिलकर कहा—
सर्वमपि युष्मत् कृपाकल्पतरुपरिपाकः।

उन सबकी मित्रता ऊपरी थी, पर बाहर से सप्रेम उन्होंने समुद्रमन्थन घूम-फिर कर देखा। तब तक अमृत-कलश निकलने के पहले कालकूट निकला, जिसे शिव ने पिया। क्रम से कल्पवृक्ष, अश्व, ऐरावत, लक्ष्मी, वारुणी चिन्तामणि, आदि निकले। इन्द्र ने कहा कि यह सब हम लें। बलि ने कहा—ठीक है। केवल लक्ष्मी और वारुणी में से कोई एक हमारी हों।

अन्त मे धन्वन्तरि अमृत-कलश लेकर निकले। उसे छीनकर दैत्य-दानव इधर-उधर भागने लगे। बलि स्थिति सुलझाने के लिए उनके बीच गये और तभी इन्द्र को सूझा कि बल प्रयोग से सुधा-कलश हथियालें। बृहस्पति ने कहा कि जल्दी न करें। विष्णु से पूछा जाय कि ऐसी स्थिति मे अब आगे क्या किया जाय।

विष्णु ने अमृत-कलश की प्राप्ति के लिए मोहिनी का रूप धारण किया। नारद उनके इस उपक्रम के विषय में कहते हैं।

गुणो गृहीतः कतमोऽङ्गनानामणोरणीयानपि वा भवद्भिः।
कथं जनः प्रत्ययभाजनं स्याद् विकारवेदी विषवल्लिकासु॥

दैत्यों ने अमृत-कलश बाँटने के लिए मोहिनी को दे दिया। उसने सारा अमृत देवों को पकड़ाया। तब भी असुर—

कटाक्षैरेव मोहिन्या कामसाहित्यमाययुः॥४.४

केवल राहु-केतु ने अमृत पिया असुरों में से, पर उसका सिर विष्णु द्वारा चक्र से तत्काल काट दिया गया। विष्णु अपने लोक चले गये। देव-दानवों में युद्ध छिड़ गया। रङ्गमंच पर रथारूढ होकर इन्द्र और बलि युद्ध के लिए आ पहुँचे। महेन्द्र ने कहा—

भो भो वैरोचने, यदेवमभियुक्तो बलवद्भिरस्माभिः।

बलि ने उत्तर दिया—

कुतो वा मम वीरता भवादृशानां पुरतः
अमेयधैर्यशालित्वादयं जानाति मन्दरः।
न वा तव वचोभंगी न गीर्वाणशिरोमणिः॥४.२२

रंगमंच छोड़कर दोनों पक्ष लड़ने के लिए समरोचित भूमि की ओर चलते बने। बलि ने मायाजाल के द्वारा असंख्य सैनिकों को उत्पन्न किया। बलिवर्ग ने कहा—

कृत्वा शक्रस्य वधं पीत्वा रुधिरं नवम्।
नृत्यामो रणशीर्षे नित्यं निर्वृत्तमानसाः ॥३७

इन्द्र ने सबको मार गिराया। महेन्द्रविजय सम्पन्न हुआ। फिर महेन्द्र का पट्टाभिषेक ऋषियों ने विधिवत् किया।

शिल्प

भारतीय नियमानुसार डिम में विष्कम्भक या प्रवेशक नहीं होने चाहिए। इसके विपरीत प्रस्तावना के पश्चात् इसमें नारद और उनके शिष्य का संवाद विष्कंभक में है।

एक ही अंक में विविध स्थलों के वृत्त का अभिनय थोड़ी परिक्रमा मात्र से अन्यत्र पहुँचना दिखाकर किया गया है। तृतीय अङ्क में बृहस्पति और इन्द्र कहीं बात कर रहे हैं। इस प्रकरण में—

महेन्द्र—(सहर्षम्) कथमुपक्रान्त एव कलशाब्धिमथनप्रयत्नः। तदिदानीं यत्र भार्गवसखायो बलिप्रमुखा ... तत्रैव भवितव्यमस्माभिः।

आङ्गिरः—तथेति। (उभौ परिक्रामतः) (ततः प्रविशति भार्गवेण सह बलि)।

समीक्षा

प्रस्तावना में डिम के लक्षण इस प्रकार दिये गये हैं—

यत्रैवास्ति समस्त-सन्धुनिपदप्रोद्भासिनो षड्रसा
यत्र प्रख्युनकेतिवृत्तघटना धीरोद्धतो यत्र राट्।
यद्देवासुरयक्षराक्षसचमूसंघर्षापादद्भुतं
तद्भूयादधिदृक्पद डिमपदप्रख्यातकं रूपकम् ॥४

छायातत्त्व

विष्णु का मोहिनी रूप धारण करके दैत्यों को छलना छायानाट्य-तत्त्वानुसारी है।

रुक्मिणी-माधवांक

कथावस्तु

विदर्भ से आकर ब्राह्मणदूत ने रुक्मिणी का पत्र कृष्ण को दिया, जिसमें लिखा था कि आप आकर मुझे ले जायँ, इसके पहले कि शिशुपाल रुक्मी की सहायता से कुछ गड़बड़ी करे। कृष्ण ने उससे कहा कि एवमस्तु। दूत चलता बना। बलराम की अध्यक्षता में सेना के साथ कृष्ण रथ पर विदर्भ की ओर चले। वे दारुक को सारथि बनाकर शीघ्र ही विदर्भ में भीष्मकपुरी पहुँचे। वे नगर-वाटिका में प्रविष्ट हुए। दारुक ने वहाँ के वृक्षों को देखा—

माकन्दमंजुलमरन्दभरप्रसार — सामोदसंवहनलोलतलीकरोऽयम्।
आगत्य गन्धवह एष विशेषवन्धु रालिंगतीव शुभवन्तमसौ भयन्तम् ॥२२

उसी वन में रुक्मिणी चण्डिका-दर्शन के लिए आ गई। कृष्ण दारुक के साथ चण्डिका-मन्दिर में छिपे हुए थे। सभी को बाहर ही रोककर अकेले में चण्डिका से प्रार्थना करने के लिए रुक्मिणी भीतर घुसी। कृष्ण ने उसके सौन्दर्य को निहारा—

शुचेराघातत्वान्मदनपुनरुज्जीवनकृते
रसस्याविर्भावः किमिहमयता भूयमयतः।
अनङ्गस्याज्ञामप्यवनितलमानेतुमुदिता–
ज्जगज्जेत्री शक्तिर्जयति नवचूताङ्कुरमयी ॥२७

कृष्ण ने देखा कि उसके पास कटि तो मानो है ही नही—

नभ इव तनुमध्यः ॥२६

रुक्मिणी ने स्त्रीत्व की अस्वतन्त्रता पर झख मारा। वह कहती है—

हा हतास्मि अस्वतन्त्रत्वप्रतिपादकेन स्त्रीत्वेन।

इधर शिशुपाल के विवाह के लिए कौतुक-मंगल की प्रक्रिया सम्पन्न हो गई थी। इसे सुनकर रुक्मिणी मूर्च्छित हो गई। तब तो कृष्ण ने दारुक से कहा कि रथ लाओ। रथ पर रुक्मिणी को सखी के साथ बैठाया गया। रथ चल पड़ा। इस घटना की सूचना प्रसारित की गई कि कन्या का अपहरण करने वाले को सेना पकड़ कर दण्ड दे। मूर्छित रुक्मिणी को तभी चेत आया, जब कृष्ण ने अपने हाथ से देखा कि उसकी हृदयगति बन्द तो नही हो गई। रुक्मिणी और उसकी सखी समझती थीं कि यह शिशुपाल का रथ है। अब हमें मर जाना चाहिए। उन्होंने वेणियों से फांसी लगाने की सोची। दारुक ने उन्हें बताया कि ये शिशुपाल नही, कृष्ण हैं।

अन्त में लड़ने के लिए शिशुपाल आ पहुँचा। रुक्मिणी सोचती है कि शिशुपाल जीतेगा तो पहले ही मैं क्यों न मर जाऊँ। इधर जरासन्ध, शिशुपाल और साल्व लड़ने के लिए आ पहुँचे। रंगमंच पर शिशुपाल रथ से आया। उसने कृष्ण को अपहरण के लिए खोटी-खरी सुनाई। कृष्ण का भयंकर उत्तर सुन कर वह रण-छोड़ बना। फिर कृष्ण को बच निकलने का अवसर मिला। बलराम की सेना ने जरासन्ध को परास्त किया।

रुक्मिणी का पिता बलराम का मित्र बन कर कन्यादान करने के लिए द्वारका आया। कन्यादान-महोत्सव सज-धज के साथ सम्पन्न हुआ। ब्राह्मण दूत को रुक्मिणी ने मुक्ताहार और कृष्ण ने सम्मान दिया। भरतवाक्य शोभन है—

भवत्वदुर्भिक्षपदं धरित्री भजन्तु नार्यं विबुधा रसज्ञम्।
अचंचला नित्यकलासमृद्धिर्जयत्वपारोत्सवसम्प्रसारः ॥४६

शिल्प

रुक्मिणी-माधवाङ्क की प्रस्तावना में नटी ध्रुवागान करती है, किन्तु उसका गीत नहीं मिलता। प्रस्तावना में माधव और दारुक की भूमिका में पात्र बनने वाले ये

मणिशेखर और चम्पकशेखर। रूपक का आरम्भ बीज रूप में संक्षिप्त कथानक से होता है। यथा—

वैदर्भात् समजनि रुक्मिणीति कन्या धन्या या गुणगणवर्णनीयतायाः।
सा च त्वय्यनुदिनमेधमानभावा सातंकं हृदयमधत्त चैद्यभीता॥११

नेपथ्य से रंगमंच से बाहर होने वाली घटनाओ से सम्बन्धित कोलाहल सुनाई पडता है।

समीक्षा

एक अंक के रुक्मिणी-माधव मे द्वारका और भीष्मकपुरी की घटनाओ का अभिनय मिलता है। यह अस्वाभाविक है। कृष्ण रुक्मिणी को लेकर भागे तो जंगल पार कर लेने पर भी वही रंगमंच उसी अंक मे रह गया।

सीताकल्याण-वीथी

सीताकल्याण-वीथी में सीता के राम से विवाह की कथा है। उसके स्वयंवर के अवसर पर प्रत्याशियो की सेना से मिथिला घिरी थी। राम शिव का धनुष देखने गये थे।

विश्वामित्र का आना सुनकर पुरोहित के साथ जनक उनका स्वागत करने आये। शतानन्द ने उनके साथ आये राम और लक्ष्मण का परिचय पूछा। जनक ने उनको सीता और उर्मिला के योग्य समझा।

धनुरारोपण करने मे असमर्थ अनेक प्रत्यर्थी भाग खड़े हुए। दशरथ को जनक ने पहले से ही बुला रखा था। वे भरत और शत्रुघ्न को लेकर आये थे।

विवाह हो गया। परशुराम आये। उन्हे राम ने शान्त किया। वे चलते बने। राम और विश्वामित्र परस्पर साधुवाद देते हैं। सन्ध्या हुई। सभी अलग-अलग सन्ध्या का वर्णन करते हैं। चन्द्रोदय होता है। उसका वर्णन राम और लक्ष्मणादि करते हैं। विश्वामित्र ने राम के पराक्रमो की प्रशंसा की—

मारीचमुख्यमखवैरिगणं प्रहृत्य मौनीन्द्र दारगुरुशापभरं निवार्य।
सीताकरग्रहणमप्यविजित्य रामं क्षेमं करोषि भुवनस्य ततः कृतार्थः॥६८

शिल्प

वेङ्कप्प ने वीथी की परिभाषा दी है—

अलमलमन्यालापैरसमानधीरावृत्तरसलोपैः।
नवरसचंक्रमवीथी नववीथी सम्प्रयुज्यतां भवताम्॥

प्रस्तावना मे रूपक का नाम पहेली के द्वारा बताने की रीति का इस वीथी में पालन हुआ है। सूत्रधार नटी से कहता है—

पर्यायनामधेयस्स्यात् किं वा लांगलपद्धतेः।
कांचनस्यापि वेङ्कार्यकृतिश्च का॥८

इस पहेली को नटी बूझती है और वीथी का नाम सीताकल्याण बता देती है।

इस वीथी का आरम्भ शुद्ध-विष्कम्भक से होता है। प्राचीन परम्परा के अनुसार विष्कम्भक वीथी में नहीं रखे जा सकते हैं। किसी घटना की सभी साथ आशंसा करें—इसके लिए एक ही पद्य के विभिन्न पादों का एक-एक व्यक्ति द्वारा कथन सांकेतिक है। यथा, राम के धनुष को उठाते समय—

लक्ष्मणः—आर्येण सम्भृतमहो हरचापमेतत्
विश्वामित्रः—आनम्य तं च सुतरां करकौशलेन।
जनकः—आरोपिता च तरसाप्यमुनैवमुर्वी
शतानन्दः—अत्रान्तरे झटिति भग्नमभूद्विचित्रम् ॥

रंगमंच पर कोई काम होता नहीं दिखता। राम का धनुरारोपण भी रंगमंच पर नहीं दिखाया जाता।

समीक्षा

अठारहवीं शताब्दी में वीथी का प्रचलन नगण्य था। प्रस्तावना में नटी कहती है—

अपूर्वः खलु कुलपालिकाया इव वीथी संचारस्सरस्वत्याः।

सीताकल्याण-वीथी के प्रथम अभिनय के दो पात्रों के नाम कुवलय-शेखर और पल्लवशेखर हैं।

रंगमंच पर एक ही अंक में अनेक दिनों की कहानी न हो इसके लिए कवि ने कथा में कुछ परिवर्तन किया है। राम के द्वारा धनुर्भङ्ग और दशरथ का उनके विवाह में आना—यह एक ही दिन में नहीं होना चाहिए और न एक ही अंक में। वेङ्कप्प ने इसका परिमार्जन करते हुए बताया है कि दशरथ तो पहले से ही जनक के द्वारा आहूत होकर वहाँ उपस्थित थे। यथा,

चिरादायातं तं दशरथमुपागम्य जनकः
समानीयावासं सह भरत-शत्रुघ्नमुखरैः।
शतानन्दादेशात् स तु सकुशलं दीक्षितवरो
विधातुं कल्याणं सपदि तनयायाः प्रयतते ॥४७

कुक्षिम्भर-प्रहसन

कुक्षिम्भर नाटक का अभिनय वसन्तऋतु में हुआ, जब किंशुक फूल रहे थे। इस प्रहसन का नायक कुक्षिमर बौद्धाचार्य भ्रष्टचरित ढोंगी था। एक दिन उसने कामकलिका नामक वाराङ्गना को देखा और उसकी वियोगाग्नि में जलने लगा। यथा,

आमील्याक्षियुगं क्षणं न चलति ध्यानावधानादिव
आयस्वेति वदत्ययाश्रुविसृजन्नुन्मादमोहादिव।
आहारादि यथापुरं न तनुते वैराग्यभावादिव
प्रायेणाश्रति चैत्यवन्दनविधिव्याजेन वीथीमपि ॥

उसने अपने शिष्य वक्रदन्त से कहा कि जैसे भी हो, कामकलिका से मिलाओ मुझे। वक्रदन्त गुरु के काम की चिन्ता में था, जब उसे कुक्षिम्भर की रखेलिन भगवती कुर्करी का परिचारक पिचण्डिल मिला। उसे स्वामिनी ने भेजा था कि कुक्षिम्भर किसी के प्रेमपाश में ग्रस्त है क्या? वक्रदन्त ने उसे बताया कि गुरु कामकलिका के चक्कर मे हैं। पिचण्डिल ने कहा कि कामकलिका तो एक हूण किलकिल-हुकदक के प्रणयपाश में आबद्ध है। वह उसे चौबीस घंटे मे कभी नहीं छोड़ता। यदि उसने जान लिया कि कुक्षिम्भर काम-कलिका पर डोरा डाल रहा है तो गुरु की नाक-कान कटवा लेगा।

कुक्षिम्भर का एक अन्य शिष्य जम्बूक था। एक दिन कुक्षिम्भर मल्लूक नामक विदूषक से मिला। गुरु की वियोगावस्था मे विषण्ण गति सुनी-सुनाई। तभी गुरु मूर्छित हो गया। उन्हे सचेत करने के लिए मल्लूक ने कान में मन्त्र पढ़ा—

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ कर्मन्दिन्नुपश्रुत्य भवद्दशाम्
समेत्य जीर्णशूर्पेण सन्ताडयति कुर्कुरी ॥१९

कुर्कुरी का नाम सुनते ही कुक्षिम्भर के कान खड़े हुए। उसने पूछा—वह योगिनी कहाँ है? थोड़ी देर मे वह कामकलिका का स्मरण करने लगा कि वह मिलकर मेरा मदनताप दूर करे।

वृद्धाचार्य कुक्षिम्भर का मनोविनोद करने के लिए वे सभी उसे लेकर बुद्धायतन-वन की ओर चले। मार्ग मे जो संकेत-गृह की ओर जाती हुई वारवनितायें मिलीं, उन्हे गुरु शिष्यो को दृष्टि-द्वारा पी लेने के लिए कहता है। आगे उन्हे कुक्षिम्भर के शिष्य धर्मगुप्त की कन्या बालविधवा दिखी, जिसे कुक्षिम्भर ने अनेक बार अपने प्रणयभोग द्वारा पवित्र किया था। वीथिका-मुख पर गडुकाक्ष मिला। उसने गुरु से आत्मकथा बताई कि मैं जनगुप्ताचार्य की कन्या को फँसाकर निष्कुट में उससे सम्भोग करने ही वाला था कि उसके बाप ने मेरे ऊपर प्रहार का भय प्रकट किया। गुरु कुक्षिम्भर ने उपदेश दिया कि तुम तो अपना काम जारी रखो, बुढ़ियो की अथवा कन्याओ की भी सम्भोग-कामना पूरी करो।

आगे उन्हे जंगम और दास कुत्तो की भाँति लडते मिले। कुक्षिम्भर ने उनके लड़ने का कारण बताया कि तुम लोग स्वयं पीते हो, जानते ही हो कि मदिरा पी लेने पर कलह मे जोर आता है। परस्परारोप में जंगम ने कहा कि मैं उरुभिक्षा शैवसम्प्रदायानुकूल ही लेता हूँ। कुक्षिम्भर ने उन्हें समझाया कि विधि-निषेध साधुओ के लिए थोड़े ही होते हैं।

आगे उन्हें कपाल-कुण्डल नामक कापालिक मिला। वह अपने विषय मे बताता है कि अभी-अभी मैंने बलि दिये हुए मनुष्य का रक्त पिया है। मल्लूक ने कहा कि क्या बडी सिद्धि तुमने कर ली। मैंने तो—

परिपीय कलंजधूमसारं पिदधानस्तनुमायतस्तनाभ्याम्।
उरसि स्फुटपंजरे जरत्याः शयितः सौख्यझरीपरिप्लुतोऽस्मि ॥

कुक्षिम्भर ने कापालिक से कहा कि मदिरा और परदार-सेवन तो हम लोगों में भी खूब चलता है। तुम लोग हिंसारत हो। बस, यही एक हमारी कमी है। कापालिक ने कहा कि हम महान् भगवान् भैरव के लिए बलि देते हैं। वह बुरा कैसे है? मल्लूक ने कहा कि तुम्हारा भगवान् प्रकट क्यों नहीं होता? उसने कहा कि अभी भगवान् को ध्यान से प्रकट करके तुम्हारी बलि उन्हें अर्पित करता हूँ। तब तो उसके आँखें बन्द करते ही कुक्षिम्भर के योजनानुसार मल्लूक ने अपने को विवस्त्र करके राख पोतकर भैरव बनकर अपने को बचाया।

कापालिक के जाने के पश्चात् क्षपणक (जैनमुनि) रंगमंच पर आता है। उसने कहा कि परदार-संसर्ग भी कर ले या घोर पापाचार कर ले, पर अमर्ष न करे। मल्लूक उन पर पिल पड़ा। उसने कहा कि अब मैं आप पर दण्ड प्रहार करता हूँ। अमर्ष न करना। डरकर क्षपणक ने कुक्षिम्भर का आलिंगन करना चाहा तो वह बोल उठा कि मत छूओ। मैंने अपने शरीर को रण्डाकृतालिंगन के मांगलिक संस्कार से पवित्र किया है। उस जैन मुनि को मल्लूक ने गरदनिया कर बाहर निकाला।

आगे उनको चण्डिकायतन का योगी मिला। वह आत्मकथा बताता है कि योगिनियों को मैंने वश में किया है, छक कर पीता हूँ और पिलाता हूँ। जम्बूक उससे आचार और तदनुरूप फल-सम्बन्धी प्रश्न पूछता है। विदूषक मल्लूक उसकी नाक के पास छुरी घुमाता हुआ कहता है कि यदि ठीक उत्तर न दिया तो नाक-कान काट लूँगा। योगी ने बताया—

पूजापात्रमभाणि यत्र सुभगः तद्बालरंडाभगः ॥४५ इत्यादि।

कुक्षिम्भर ने कहा कि हमारा सम्प्रदाय भी आपके ही जैसा है, केवल हम मास नहीं खाते।

चार्वाक मिला। उसने पूछने पर अपने सम्प्रदाय की मान्यतायें बताईं—

न पुण्यपापप्रसक्तिर्न चात्मा कुतः प्रसक्ता परलोकचिन्ता।

चार्वाक ने पुनः स्पष्टीकरण किया—

यभतु कामपि कश्चन कामिनीं पिवतु नित्य-सुधामधुरं मधु।
अपि च खादतु मांसमलं मुदा अपि च मूर्खमतोदितसम्भ्रमैः ॥४८

विदूषक ने सीधा प्रश्न किया कि यदि मैं तुम्हारी गृहिणी से ही कामचार स्थापित करूँ तो? चार्वाक क्रोध से दाँत कटकटाने लगा।

आगे झगड़ते हुए दो दिगम्बर मिले। इनमें से एक अयोध्यावासी कुष्माण्डदास और दूसरा काशीवासी मुण्डी था। उनका परस्परारोप था कि तुम मांस खाते हो तो तुम मदिरा पीते हो। कुक्षिम्भर ने उनको समझाया कि मास और मदिरा में कोई दोष नहीं। जीते रहो।

आगे दो वैदेशिक विट मिले। उनका विवाद था कि अधिक आनन्द परस्त्री-क्रीडा मे है या वारस्त्री-विलास में। दोनो एक दूसरे की गृहीति की निन्दा करते थे। कुक्षिम्भर ने उनको समझाया—

> पण्यस्त्री परस्त्रीति पन्था एव परं द्विधा।
> परमार्थविदां तत्र परानन्दप्रयोजनम् ॥६७

गुरु कुक्षिम्भर से बढकर जमाने वाले विदूषक ने मत दिया—न वारवनिता और न परस्त्री—केवल दासी से ही कामक्रीडा स्वस्थ और निर्विघ्न है।

दुपहरी में कुक्षिम्भरादि शृंगारित अजन से प्रकृति मे कामक्रीडात्मक प्रवृत्ति देख रहे हैं। वे दुपहरी की धूप से बचने के लिए वृद्धायतन मे प्रवेश कर गये। कुक्षिम्भर कामकलिका से समागम करने के लिए पागल-सा होकर आचरण करता है। उसके शिष्य कहते हैं कि इसे कुकुंरी ही ठीक कर सकती है। इस बीच कुक्षिम्भर लता का आलिंगन, हा प्रिये, कह कर, करता है। तब तक कुकुंरी आ पहुँची। उसने कुक्षिम्भर को कहते सुना—

> हा सुन्दरि लग्नासि भुजपंजरे।
> मदयति तथा न मदिरा न कलजं दलति सहितमूलेऽद्य माम्।
> मदयति हि कामकलिका मदनग्रहस्मरणमाधुरीलहरी ॥६८

कुकुंरी ने कहा कि इसने मुझ बालविधवा का सब कुछ ले लिया। अब मुझे छोड़ेगा तो मैं कही की न रहूँगी। इसे सूप से मारूँगी। कुकुंरी ने कामकलिका के अंगरेज प्रेमी हूणहतक का रूप धारण किया। पिचडिल उसके नौकर बिडालक का रूप धारण करके आया। कृत्रिम हूणहतक को देखकर कुक्षिम्भर ने समाधि लगा ली। बिडालक ने भल्लूक का केश पकडकर उससे पूछा कि हमारे महाराज की प्रेयसी पर दृष्टि डालने वाला धूर्त कहाँ है? भल्लूक ने कहा कि मैं कुछ नही जानता। सब कुछ यह जम्बूक जानता है। बिडालक ने जम्बूक को बेतों से मारा।

कुकुंरी (हूणवेश मे) कुक्षिम्भर से बोली—'मम प्राणवल्लभा कामकलिका चिन्तयसि' यह कहकर चरण-प्रहार किया। कुक्षिम्भर ने कहा—हम तापसो के कानों मे स्त्री की बात यह पहली ही बार आ रही है। कुकुंरी ने कहा कि वक्रदन्त क्या करने गया था? कुक्षिम्भर ने कहा कि वह तो हमारे मठ को उजाडने मे लगा है। इधर बिडालक ने जम्बूक और भल्लूक को खूब पीटा। कुकुंरी ने कुक्षिम्भर को कोड़े से मारा। उसके स्पर्श से कुक्षिम्भर को लगा कि उसका पाद-प्रहार तो कुकुंरी जैसा है। वह उसका आलिंगन करने लगता है।

इसी बीच असली हूणराज और उसका नौकर बिडालक आ पहुँचे। जम्बूक ने उन्हें बताया कि ये नकली हूणराज और बिडालक बने थे। भल्लूक डरकर पेड पर चढ़ गया।

नकली विडालक और नकली हूणराज की आफत आई। उनको दण्ड देने के लिए असली विडालक और हूणराज रंगमंच से उन्हें लेकर चले जाते हैं। हूणराज ने कुर्कुरी से बलात्कार किया। विडालक ने पिचंडिल से मैथुन किया। कुक्षिम्भर कुर्कुरी की रक्षा करने के लिए गया। हूणराज के आज्ञानुसार विडालक ने उसके साथ भी मैथुन किया। उन सबको छोड़कर विडालक और हूणराज चलते बने।

कुक्षिम्भर को चिन्ता हुई कि हूण के सम्पर्क में आई कुर्कुरी की शुद्धि कैसे होगी। इस प्रश्न का समाधान जम्बूक और मल्लूक ने बताया, जिससे प्रसन्न होकर कुक्षिम्भर ने उन्हें आशीर्वाद दिया—

जम्भारिसुलभारंभाद्रंभासम्भोगसम्भ्रमाम्।
रमणीयमतीव त्वं रण्डागमनमवाप्नुहि ॥८१

सन्ध्या हुई, चन्द्रोदय हुआ। तभी कामकलिका के साथ वक्रदन्त वहाँ आ पहुँचा। कामकलिका ने कुक्षिम्भर को चरण पर पड़कर प्रणाम किया। कुक्षिम्भर ने कहा—

विरहाम्बुधि-निधानमप्यपारं विपुलो यल्लघुवीचिकानिदानम्।
कमलाक्षि तवावलम्बितेन स्तनकुम्भीयुगलेन संतरेयम् ॥८१

मल्लूक (विदूषक) ने कहा कि यह कुक्षिम्भर मठ की सारी सम्पत्ति अब कामकलिका को दे डालेगा। वक्रदन्त उसे लाने के लिए मठाधिपति बना दिया गया।

समीक्षा

हास्य की परिधि क्वचित् लघुतर है। ऐसे स्थलों पर प्रायशः बातें श्रृङ्गारित हैं और अनेकशः श्रृङ्गाराभास नितान्त अश्लील है। अटूट श्रृङ्गार कवि की दृष्टि-मान्द्य का परिचायक है। अन्य परिहास की प्रवृत्तियाँ भी हैं। रंगपीठ पर संवादों की परिहासात्मकता तो सविशेष है ही, साथ ही जो काम किये जाते हैं, वे कुछ कम मजेदार नहीं हैं। यथा, जंगम हरिदास को दाँत कटकटाकर दण्ड से मारता है। हरिदास उसे चप्पल से मारता है। क्षपणक गरदनिया कर निकाला जाता है।

पात्रों की वेशभूषा भी हँसा देती है। यथा क्षपणक (जैनमुनि) है—

मलपंकपिच्छिकशरीरच्छविः पिच्छिकहस्तः शरीरवानिव प्रतिबन्धः।

शिल्प

प्रस्तावना में सामाजिकों का आदेश आकाशभाषित द्वारा सूत्रधार प्रकट करता है कि हास्यरस का कोई रूपक अभिनीत करें।

इस प्रहसन में प्रस्तावना के पश्चात् विष्कम्भक का प्रयोग है। प्राचीन शास्त्रीय नियमानुसार प्रहसन में विष्कम्भक नहीं होना चाहिए था। प्रहसन में विदूषक का होना भी अशास्त्रीय है।

पात्रों के नाम हास्यास्पद है—यथा कुक्षिम्भर, जम्बूक, विडालक, मल्लूक (विदूषक), वक्रदन्त, कुर्कुरी। सम्भवतः वे सभी रूप और आचार से यथानाम थे।

छायातत्त्व

मल्लूक (विदूषक) का वस्त्र फेंककर भभूत शरीर पर पोतकर भैरव बनना छायातत्त्वानुसारी है। कापालिक ने उसे भैरव समझा और उसके लिए वलि अर्पित करने के लिए विदूषक को ढूँढने गया।

कुर्कुरी का हूणराज की भूमिका मे और विडालक का उसके भृत्य के रूप मे रंगमंच पर आना इस नाटक मे छायातत्त्व का मनोरंजक सन्निवेश है।

प्रयोग-शिक्षा

पात्रों को अभिनेय रूपकों को पढ़ाया जाता था। कुक्षिम्भर-प्रहसन की प्रस्तावना मे सूत्रधार नटी से कहता है—

यन्नवीनमध्यापितासि कुक्षिभरभैक्षवं नाम।

कामविलास-भाण

कामविलास-भाण का प्रणयन कवि ने अपनी प्रौढावस्था मे की, जब वे पहले से ही अनेक काव्यो का सर्जन कर चुके थे। इस भाण का प्रथम अभिनय वसन्त ऋतु मे हुआ था।

कथावस्तु

कामविलास मे रंगपुर नगरी मे पल्लवशेखर नामक नायक अपनी प्रेयसी चम्पकलता से प्रातः के थोड़ा पहले वियुक्त होकर दुःखी है कि अब फिर उससे मिलना कब होगा? कष्ट का विशेष कारण था कि चम्पकलता परोढा थी और उसका देवर पिता के घर से उसे उसी दिन पति के घर ले जाने वाला था। चिन्ता-निमग्न नायक को उसका मित्र नूपुरक दिखाई पड़ा, जो वीरसेन के भय से भाग रहा था। पल्लवशेखर ने कहा कि अब मेरे साथ हो, डर किस बात का? नूपुरक ने बताया कि रात मे वीरसेन की पत्नी लवंगिका से प्रणय-प्रपत्ति करने ही वाला था कि वह अपने घर मे राजभवन से आया और मुझे देखकर तलवार से मारने के लिए द्वार पर खड़ा हो गया, पर मैंने चोरद्वार से भागकर प्राण बचाया। पूछने पर पल्लवशेखर ने उसे बताया कि रात में चम्पकलता के साथ सानन्द रहा, पर आज वह पतिगृह देवर के साथ चली जायेगी। नूपुरक ने कहा कि आज सन्ध्या के समय तक मेरे प्रयास से आपको अपनी प्रेयसी फिर मिलेगी। वे दोनो एक ही गली से आगे बढ़े।

पल्लवशेखर को गुर्जर पौराणिक रामभट्ट स्वर्णकुप्य के घर से गजेन्द्रमोक्ष की कथा सुनाकर लौटता मिला। वह कथा सुनने वाली रमणियो मे प्रेमानुबन्ध आनन्द प्राप्त करता था। आगे पल्लवशेखर को कामगुप्त की पत्नी कलवाणी मिली, जो कमलाक्ष की वशवर्तिनी बन चुकी थी।

फिर उनको वेशवाटी का पुरोहित तल्लुभट्ट मिला। वह शशिप्रभा के घर से निकल रहा था। आगे पल्लवशेखर को उसका मित्र कमलाक्ष मिला, जिसने बताया

कि आज शशिप्रभा के द्वार पर ऐन्द्रजालिक अपने करतब दिखायेगा। मैं अभी कावेरी-तट पर मुखमार्जन करके वहाँ आऊँगा। आप भी वहीं चलें।

वेशवाटी के मार्ग में पल्लवशेखर को कामपालक की कनीयसी पत्नी स्नान के लिए बाहर जाती मिली। वह मार्ग में अपने गूढवल्लभ नारायणभट्ट की प्रतीक्षा कर रही थी। उन दोनों का शृङ्गार अधोलिखित है—

आकृष्यान्तिकमादरेण रभसादारोप्य पर्यङ्किका-
मासज्याननमानने रदपुटीमास्वादयन्त्या रहः।
गाढप्रेमविवर्धमानपुलका प्रस्वेदवक्षोजया
यस्त्वेवं परिरभ्यते कुलटया सोऽयं कृतार्थो युवा ॥४८

वसन्तोत्सव में अलंकृत वेशवाट को पल्लवशेखर देखता है। वह वाराङ्गनाओं की रीति-नीति और कार्य-पद्धति को बताता है, जिससे वे विटों को दुहती हैं और निर्धनों को दूर रखती हैं। वे अनेक विटों को साथ ही समाकृष्ट करती हैं। यथा,

एकं भ्रूवलनैः स्मितैस्तदितरं दृष्ट्यापरं दीर्घया
वाचान्यं कुचयोस्तटेन न मनाक् सन्दर्शनेनापरम्।
किंचित्किंचिदुदञ्चितांशुकरुचि प्रत्यंचितोरुश्रिया
सम्प्राप्तान् गृहमेकदैवगणिकाः सम्मोहयन्ते विटान् ॥५७

फिर विट किस प्रकार अहर्निश वाराङ्गनाओं के फेर या प्रणयपाश में आबद्ध होकर दिन काटते हैं—*यह पल्लवशेखर ने बताया है।*

आगे उस विट को नवमंजरी मिलती है। उस पर मुग्ध होकर उसने कहा—

उत्संगसीम्नि विनिवेश्य द्रुतं कराभ्यामुत्तुङ्गपीनकुचमर्दितबाहुमूलम्।
स पारयन् करतलं जघनोरुमूले वांछत्यसौ तव रतोत्सवमेव भूयः ॥६४

उसे कल मिलने की बात कहकर विट आगे चला तो उसे कलवाणी मिली। भूत और वर्तमान के प्रेमाचार की चर्चा करने पर उसे आगे बढ़ने पर कनकलतिका मिली। आगे विधुरेखा मिली। उसका वर्णन विट के शब्दों में है—

पादौ पल्लवदेशिकौ हृदयतूणीरदण्डोद्यमौ
जंघायुग्ममनंगकुंजरकरप्रस्पर्धि चोरुद्वया ।
मध्यं व्योममहीवरेन्द्रशिखरक्षोदक्षमौ च स्तनौ
विभ्रंश्यद्विधुबिम्बडम्बरकलावैदग्ध्यमस्या मुखम् ॥

आगे मुक्तपूर्व मणिमंजरी मिलती है। उसने पूर्वभोग की आनन्दलहरी का समाकलन किया। पल्लवशेखर उसके शरीर में त्रिदेवों का दर्शन करता है। यथा,

पादौ पद्मभवश्रिया परिणतौ वक्षोरुहावच्युतः
स्थेमानौ शशिशेखरत्वकलया सर्वातिशय्याननम्।
तत्सर्वैस्तरुणीजनैः परिचितस्पष्टश्च तत्त्वं ब्रुवे
त्वय्येतत् स्फुटतामुपैति दयिते मूर्तित्रयाडम्बरम् ॥ ७८

उससे कल मिलने की बात कहकर पल्लवशेखर को आगे बढ़ने पर उसे गाती हुई काञ्चनलता मिली। मुग्ध होकर उससे प्रार्थना की—कुचद्वये स्वप्तुम् ॥८३

उसे कर्पूरमजरी मिली। विट ने उसका कृपापात्र बनने की कामना प्रकट की। आगे उसे शिवमन्दिर का डिण्डिम गान सुनाई पड़ा। उसे पास ही मेषयुद्ध, मल्लयुद्ध आदि देखने को मिला। शशिप्रभा का घर मिला, जहाँ इन्द्रजाल-विद्या का प्रदर्शन था। वहाँ दिखाया गया–बीज डालते ही वृक्ष उग आये, उसमे पुष्प-फल लगे।

पल्लवशेखर ने कुमुद्वती के द्वारा आयोजित उसकी कन्या का प्रथम ऋतूत्सव देखा। कादम्बरी के हाथ से काञ्चनलता को वीटिका विट ने भेजी। दोपहर मे रमणियाँ विहार के लिए निकल रही हैं। महीशूर नगर की राजरानियाँ,मन्दिर मे चतुर्दशगौरी महोत्सव मे दर्शन के लिए जा रही थी। पल्लवशेखर सोचता है कि इस उत्सव को देखने के लिए आज की प्राणप्रिया चम्पकलता भी आई होगी। कुछ देर मे वहाँ विट को चम्पकलता मधुश्री की भाँति दिखाई पड़ी। उसका वर्णन है—

> अस्याश्चेदलकप्रभाहरिमणेराडम्बरस्पर्धिनी
> चाम्पेयः प्रसवे मुहुः कृतपरीहासा च नासा पुनः।
> लीलाचङ्क्रमणं चलदिभविजयोल्लेखं करीन्द्रादिदं
> सल्लापः पिकसुन्दरी कलरवस्वादुत्वविद्यागुरुः ॥११५

चम्पकलता की विरहाग्नि को ठंडा करने के लिए कमलाक्ष पहुँचता है। उसने कमलाक्ष को बताया कि कल उसके पिता चित्रवर्मा के घर के पास चम्पकलता को देखा। चम्पकलता अपना मन देकर मेरा आशय लेकर घर के भीतर चली गई। मैं आधी रात तक उसकी प्रतीक्षा मे वही आसपास मँडराता रहा। निशीथ मे मेरा भाग्य जागा और कपाट खोल कर उसे अपनी गोद मे उठाकर निष्कुट मे लेकर उसके समागम से यथेच्छ आनन्द भोगते हुए क्षणभर मे त्रियामा बिताई। सवेरा होते ही वह फिर घर मे घुस गई। तब से उसे स्मरण कर रहा हूँ।

नूपुरक इस बीच आ पहुँचा। उसने कहा कि आपके सौभाग्य से चाचा के पुत्रोत्सव मे भाग लेने के लिए चम्पकलता ने पतिगृह-प्रस्थान स्थगित कर दिया। आपसे मिलने के लिए चम्पकलता ने पत्र दिया है। उसे देखें और उद्यान मे आज चन्द्रोदय होने पर उसे नन्दित करें।

समीक्षा

कामविलास-भाण परम्परानुसार मनचले लोगो के द्वारा स्त्रियो के चरित्र-विनाश की गाथा प्रस्तुत करता है। ऐसे विटो ने भारत को चारित्रिक भ्रंश के गड्ढे मे गिराया। आश्चर्य है कि समाज मे वे तथाकथित उच्च नागरिक सम्मानित थे।

शिल्प

नान्दी के अन्त मे सूत्रधार सामाजिको के सुख की कामना प्रकट करते हुए रंगमंच पर पुष्पाञ्जलि बिखेरता है।

सूत्रधार प्रस्तावना लिखता था, जैसा नीचे लिखे पद्य से स्पष्ट है—

> सम्मर्दन रसस्य सौख्यलहरीमुद्वेलमातन्वतः
> ख्यातः कामविलास इत्यभिनवो भाणो घुरीणो गुणैः।
> मायन्ते प्रथियोऽपि यत्र च रसास्वादाय सोऽधीयते
> मञ्जर्यामिव मंजुतायुतमधुस्यन्दान् मिलिन्दा इव ॥८

सूत्रधार के इस पद्य से ज्ञात होता है कि प्रस्तावना-रहित रूपक को विद्वान् पढ़कर रसास्वाद ग्रहण करते थे।

वर्णनों को काव्यात्मक बनाकर कवि ने भले ही प्रेक्षकों का ध्यान विटों की दुनिया से पृथक् करने का प्रयास किया है, किन्तु विट के मुख से ऐसे किसी वर्णन का शृङ्गारित होना स्वाभाविक है।[1] सूर्योदय के वर्णन में कवि ने वाराङ्गनाओं का निर्गमन प्रधान दृश्य प्रस्तुत किया है। अन्यत्र बताया है—

> वक्षोजेपु नखक्षतानि सुदृशां लाक्षारसं पादयोः
> सीमन्तेपु च कुंकुमद्रवभरस्ताम्बूलरागोऽधरे।
> लग्नश्चम्पकमालिका कुचतटे रक्तोत्पलं कर्णयोः
> वन्धूकद्युतिरेक एव बहुधा वालातपो दृश्यते ॥४३

अन्य वर्णन सूर्यास्त और चन्द्रोदय के हैं।

कवि के एक पद्य से ज्ञात होता है कि तारण नामक वर्ष में इस भाण की रचना हुई। अन्यत्र मैसूर में इसके प्रणायन की चर्चा है।

---

१. कवि ने १०६ वें पद्य के आगे उद्यान का भी कामदेवोपपन्न वर्णन लम्बायमान किया है।

अध्याय ५८

चण्डीनाटक

चण्डीनाटक के प्रणेता अपने युग के धुरन्धर भाषाविद् भारतचन्द्र राय हैं।[1] इनके पिता नरेन्द्रचन्द्र राय राजा की उपाधि से विभूषित थे। इनको गुणाकर की उपाधि इनके प्रशंसक नदिया के राजा कृष्णचन्द्र राय (१७२८–१७८२) ने दी थी। भारतचन्द्र कृष्णचन्द्र की सभा को समलङ्कृत करते थे।

भारतचन्द्र का जन्म बंगाल मे १७१२ ई० हुगली जिले के वसन्तपुर गाँव में हुआ था और मृत्यु १८६० मे हुई। इन्होने सस्कृत के अतिरिक्त फारसी भाषा का पाण्डित्य अर्जित किया था। बङ्गला मे तो प्रवीण थे ही।

भारतचन्द्र राय की जमीनदारी बर्दवान के राजा ने छीन ली। ऐसी स्थिति में वे दरिद्र हो गये और मामा के घर रहने लगे। इसी समय उन्होंने व्याकरण की शिक्षा ली। कई वर्ष पश्चात् जब उन्होने जमीन्दारी माँगी तो उन्हे कारागार मे डाल दिया गया। कारागार के अधिकारियो की सहायता से वे जेल से भाग कर जगन्नाथपुरी मे आकर रहने लगे। शंकराचार्य के मठ मे गैरिक वस्त्रावृत संन्यासी भारतचन्द्र को कुछ समय के पश्चात् अपने सम्बन्धियो के आग्रह पर गृहस्थ बनना पडा। पर वे दरिद्र रहकर घर नही जाना चाहते थे।

भारतचन्द्र ने विवाह के पश्चात् पुनः अपनी पत्नी से भेंट तो की, पर अपनी आर्थिक हीनता के कारण उसे ससुर के घर पर ही रहने के लिए छोड दिया। इस बीच वे फ्रान्सीसी शासको के दीवान इन्द्रनारायण चौधुरी के सम्पर्क मे आये। उन्होने भारतचन्द्र को नवद्वीप के राजा कृष्णचन्द्र के आश्रय मे रहने की व्यवस्था करा दी। नवद्वीप मे वे अपनी कविता से राजा का मनोरंजन करते थे।

राजा कृष्णचन्द्र ने भारतचन्द्र के लिए सपत्नीक रहने की व्यवस्था अपने दिये गाँव मूलाजोड़ मे कर दी। कुछ दिनो के पश्चात् परिस्थितिवशात् उन्हे मूलाजोड़ से हटाकर अन्यत्र १०५ बीघे भूमि मे वे बसाना चाहते थे। मूलाजोड के निवासियो को भारतचन्द्र से इतना प्रेम था कि वे इन्हे छोडना नही चाहते थे और इस प्रेम के अनुबन्ध मे उन्हें मूलाजोड के नये स्वामी रामदेव नाग के अत्याचार सहने पडे।

चण्डीनाटक की रचना १८ वी शती के मध्यकाल मे हुई। इसके अतिरिक्त राय ने अन्नदामगल, विद्यासुन्दर, मानसिंह, चोरपचाशत, रसमजरी, सत्यपीड, ऋतुवर्णना, राधाकृष्णेर प्रेमालाप, कवितावली, नागाष्टक, धेडे थेडेर कौतुक, फरदरफत, हिन्दी कवितावली, नानाभाषेर कवितावली, गोपाल उडेर आदि पुस्तको का प्रणयन किया।

---

१. इसका प्रकाशन कलकत्ते से भारतचन्द्र-ग्रन्थावली मे बङ्ग सवत् १३०६ में हुआ था। पुस्तक की प्रति वाराणसी के विश्वनाथ पुस्तकालय मे है।

भारतचन्द्र का चण्डीनाटक अनेक दृष्टियों से विशिष्ट रूपक कहा जा सकता है। इसमें अनेक नई भाषाओं का प्रयोग हुआ है। यथा, हिन्दी, बंगला, ब्रजभाषा। बंगला और हिन्दी प्राकृत के स्थान पर हैं। भूमिका में तीन पात्र—चण्डी, महिषासुर और प्रजा को रखना एक नई रीति है। बगला गीतों के माधुर्यपूर्ण विन्यास से काव्य की रोचकता स्पृहणीय बन पड़ी है। ये गीत विविध ताल और राग में लिखे गये हैं।

मैथिली के किरतनिया या आसाम के अंकियानाट के समान ही क्रिया-कलापों की ध्वन्यात्मक वर्णना से नाटक ओत-प्रोत है। यथा, प्रावेशिकी में महिषासुर के आगमन का वर्णन है—

खटमट—खटमट—खुरत्यध्वनिकृत-जगति कर्णपुटावरोध
फों फों फों फेंति नासानीलचलदचलात्यन्तविभ्रान्तलोक।
सप-सप-सप—पुच्छघातोच्छलदुदधिजलप्लावितस्वर्गमर्त्य,
घर-घर-घर-घोर-नादैः प्रविशति महिषः कामरूपो विरूपः।
घो-घो-घो-घो नागारा गड़-गड़-गड़-गड़ चौघड़ीघोरगर्जैः
भों भों भोरंग-शब्दैर्वन-घन-घन-घन बाजे च।
मन्दिरनादैर्भेरीतुरीदमामा-दगड़-मसा-शब्दविस्तव्यदेवैः
दैत्यो ह्यसौ घोरदैत्यो प्रविशति महिषः सार्वभौमो बभूव॥

प्रजा के साथ महिषासुर की उक्ति है—

सुनो रे ग्वार लोग, छोड़ दे उपास-जोग
मानहुँ आनन्द-भोग भंसराजजोग में।
आग में लगाओ घीउ काहे को जलाओ जीउ
पक्करोज प्यार पिउ भोग यही लोक में।
आपको लगाओ भोग कामको जगाओ जोग
छोड़ दे जाग-जोग मोक्ष एई लोक में॥

०

जगन्नाथ का नाट्यसाहित्य

तंजौर के राजाओ के आश्रित कवियो में दो जगन्नाथ हो चुके हैं। दोनों के पिता राजमन्त्री थे। प्रासंगिक जगन्नाथ विश्वामित्र गोत्रोद्भव थे। इनके पिता का नाम बालकृष्ण था। जगन्नाथ के गुरु कामेश्वर थे।

जगन्नाथ के आश्रयदाता तजौर के महाराज प्रतापसिंह (१७३९-१७६३ ई०) वास्तव मे अतिशय प्रतापशाली थे। उनकी अनुज्ञा से जगन्नाथ ने काशी की यात्रा की और वहाँ से लौटते समय पूना में बालाजी राव पेशवा के सम्पर्क मे आये। जगन्नाथ ने बालाजी के व्यक्तित्व के अनुरूप उनके कहने से वसुमतीपरिणय नाटक की रचना की।[1] बालाजी राव ने स्वय इस नाटक का प्रथम अभिनय देखा भी था। नाटक-मण्डली को बालाजी की कृपा प्राप्त थी। उन्होने सूत्रधार से कहा—

भो कलाधर भवता भगवतः श्रीमहागणपतेरेतस्मिन् महोत्सवे वार्षिके समवेता। इमे रसिका विपश्चित्ता। वयं केनचिदभिनवेन नयगुणश्रृंगारितेन श्रृंगार-रसश्रृंगाटकेन नाटकेन विनोदयितव्या।

नाटक की प्रतिलिपि सूत्रधार को सौंपते हुए जगन्नाथ ने सूत्रधार से कहा था कि इसका प्रचार करें। सूत्रधार की एक विशेषता का उल्लेख इस नाटक मे किया गया है कि वह विविधदेशसचार-संजात-सौहृद है।

जगन्नाथ ने नाटकीय कथावस्तु के लिए एक नई दिशा अपनाई है। वे नाटक मे राजाओं के लिए हेय और उपादेय गुणो की वर्णना करके उन्हें सत्पथ पर लाना चाहते थे। लेखक ने इसे अखिलगुणश्रृङ्गाटक नाटक विशेषण दिया है।

पूना मराठे शासन की राजधानी १७५० ई० मे हुई। इसके पश्चात् ही यह नाटक लिखा गया। १७५८ ई० तक मराठो का अखिल भारत मे सर्वोच्च प्रभाव था। कलकत्ते से राजस्थान तक और लाहौर से कर्नाटक तक अपनी सत्ता का विस्तार करने वाला बालाजी इस नाटक का नायक गुणभूषण हैं। १७६१ ई० मे उनकी मृत्यु हुई। यह नाटक ऐसी स्थिति मे १७५६ ई० के लगभग रचा गया।

पाँच अको के इस नाटक मे गुणभूषण नामक राजा के वसुमती से विवाह का वर्णन है।

---

१. वसुमतीपरिणय की हस्तलिखित प्रति भण्डारकर ओरियण्टल इंस्टीट्यूट, पूना मे है। जगन्नाथ की अन्य रचनायें अश्वधाटी-काव्य और भास्करविलास-काव्य हैं। इनकी दो रचनायें हृदयामृत और नित्योत्सवनिबन्ध तान्त्रिक हैं। नित्योत्सव बड़ोदा से प्रकाशित है और भास्करविलास निर्णय सागर प्रेस से ललितासहस्र नाम से प्रकाशित है।

वसुमतीपरिणय

कथावस्तु

राजा गुणभूषण ने स्वप्न में क्षणभर के लिए बिजली की भाँति एक सुन्दरी देखी। उसके प्रेमपाश में उसका मन निगडित हो गया। उसी समय अर्थपर नामक सचिव *पहले तो प्रशासनिक गड़बड़ियों से राजा को* अवगत कराता है और फिर मनोरंजन के लिए मृगया, द्यूत, नृत्य आदि आयोजनों में जाने की प्रार्थना करता है। राजा ने 'देखा जायगा' कहकर उसे अलग किया और विवेकनिधि नामक मन्त्री को परामर्श के लिए बुलाया।

राजा ने विवेकनिधि से अर्थपर की बातें राजकर्मचारियों के घूस लेने के विषय मे कही तो मन्त्री ने कहा कि अपवाद-रूप से भले ऐसा होता हो, साधारणतः कर्मचारी कुलीन होने के कारण सात्त्विक हैं। उसी समय चरों ने सूचना दी कि दुर्जय नामक यवनाधिपति आक्रमण करने की तैयारी कर रहा है। दौवारिक ने बताया कि देशान्तर से आये नट-नटी मृदङ्ग और तालध्वनि उत्पन्न कर रहे हैं। मन्त्री ने मृगया के गुणावगुण की चर्चा करते हुए बताया कि राजा को मृगया से दूर रहना चाहिए। द्यूत-क्रीडा का विज्ञान तो ठीक है, किन्तु राजा इससे बचे। वाराङ्गनाओं में आसक्ति सर्वनाशक होती है।

राजा मन्त्री के कथनानुसार राजकाज मे चौकसी वर्तता है। वह मृगया मे *आसक्त है। विविध प्रकार के मनोरंजन करता हुआ आधी रात तक जागता है।* उसने रात्रि में भोजन करते समय सौधजाल मे स्वप्न में देखी हुई सुन्दरी का दर्शन *किया। सुन्दरी ने भी खिडकी से राजा को देर तक देखा।*

एक दिन जब किसी बालक के साथ राजा प्रमदवन मे था तो वसुमती दो सखियों के साथ वहाँ आई। राजा ने उसे देखकर पहचान लिया कि इसे ही स्वप्न मे देखा था। राजा ने मन ही मन उसका नखशिख वर्णन किया। बालक के हाथ से धनुप और गोली लेकर राजा ने एक आम के फल को तीर से मारकर नायिका के अञ्चल मे गिरा दिया। वसुमती ने उस फल को देखकर समझ लिया कि किसी ने गोली मारकर आम को गिरा दिया है। राजा फल लेने के लिए उसके पास पहुँचा। राजा ने उनसे प्रेमभरी वाणी मे उनका परिचय पूछा। सखियो ने बताया कि आपकी महारानी सुनीति के पोषक पिता पृथु की कन्या वसुमती हैं। सुनीति इन्हे पिता की मृत्यु के पश्चात् लाई हैं। गौरी की अर्चना के लिए पुष्पादि सामग्री सग्रह करने के लिए इन्हें प्रमदवन में भेजा है। फिर सुनीति के बुलाने पर वसुमती वहाँ से चलती बनी।

राजा सुमेरु सौध पर जा पहुँचा। वहाँ सर्वदर्शी नामक चाराधिकारी को बुला कर मिला। उसने सडक पर जाते हुए दर्पध्मात, अस्थान-क्रोध, दुष्टपरिग्रह विप्र, वेश्यालम्पट वणिक्-पुत्र, जाल्म, जुआरी ब्राह्मण-युवा, मृगयु, असभ्य हुक्काड़ी, लोक-

चतुर्थ अङ्क के अङ्कास्य में रंगमंच पर राजा, विवेकनिधि मन्त्री तथा सचिव अर्थपर विराजमान हैं। मिथिला से राजा मित्रवर्मा का पत्र लेकर सुमति नामक दूत आता है। पत्रानुसार मालवा का सूबेदार दुर्मद इन्द्रप्रस्थ के यवन राजा दुर्जय की सहायता से मिथिला पर आक्रमण करना चाहता है। मित्रवर्मा राजा गुणनिधि की सहायता की याचना कराता है। अर्थपर नामक सचिव ने कहा कि मिथिलेश्वर की सहायता के लिए थोड़ी सेना भेज दें। विवेकनिधि ने कहा कि पूरी सेना भेजकर मिथिलेश्वर को विजयी बनायें। अन्यथा शत्रु उसे जीत कर आप पर आक्रमण करेगा। राजा ने अपने भाई विजयवर्मा को मिथिलेश्वर की सहायता के लिए नियुक्त किया। सेनापति विकलवर्मा युवराज की सेना का नेतृत्व करने के लिए गया। वसिष्ठ मुनि ने प्रयाण के पहले उन्हें आशीर्वाद दिया। राजा ने अपने भाई विजयवर्मा को किम्पुरुषखण्ड से सिद्ध के द्वारा लाये हुए फल को खिलाया, जिससे उसे भूख-प्यास आदि से मुक्ति मिल जाय। सेना के व्यय के लिए राजकोश साथ चला। मनोरंजन प्रस्तुत करने वाले लोग भी साथ गये।

सर्वदर्शी नामक चाराध्यक्ष ने बताया कि यह वन्दी आधी रात में भालू का वेश बनाकर नगर में उछल-उछल कर दौड़ रहा था। इसे गुल्माधिकारी ने पकड़ा है। उसके पास जो पत्र निकला, उसमें लिखा था—'स्वस्ति। यह किसी का किसी के लिए लेख है। इस कार्य के घटक व्यक्ति को सपरिवार कैद कर लिया गया है। कन्या से विवाह का यह ठीक समय है। बन्धुओं के साथ शीघ्र आयें।'

राजा ने इसका अर्थ लगाया—'हमारा मन्त्री शत्रु के राज्य का एक अंश पाने पर वश में हो जायेगा। राजसेना प्रवास पर है। राजधानी पर आक्रमण करने का ठीक समय है।' विवेकशील और राजा ने समझ लिया कि यह अर्थपर नामक सचिव का रचा हुआ खेल है। उसे कारागार में डाल दिया गया।

मिथिला से समाचार चरों ने दिया कि युद्ध में हमारे पक्ष के लोग कुशलतापूर्वक काम कर रहे हैं। फिर तो आकाशयान से नारद शिष्य के साथ रंगमंच पर आते हैं। वे मिथिला में प्रवर्तित युद्ध का वर्णन करते हैं। अन्त में विजयवर्मा विजयी हुआ। मिथिला के राजा ने विजयवर्मा को आगे करके मालवराज दुर्मद नामक यवन को पकड़ लिया। मिथिला से आयें दूतों ने विजय का समाचार दिया कि दुर्मद परास्त कर दिया गया है। वहाँ से विजय दिल्ली चला गया, राजा गुणनिधि ने विजयवर्मा को पत्र भेजा कि इन्द्रप्रस्थ में शासन करते रहें। नगर में विजय-महोत्सव सम्पन्न होता है।

एक दिन राजा गुणभूषण वसुमती का चित्र अपनी नई चित्रशाला में बनाकर उसमें मनोविनोद कर रहा था। वहीं विदूषक आ पहुँचा। राजा वसुमती को पाने के लिए उत्सुक था। उसी समय महादेवी वहाँ आई। उन्हें विदित हुआ कि वसुमती के मानसिक सन्ताप का कारण उसका राजा के प्रति अतृप्त प्रेम है।

वचक-धार्मिक आदि की दुष्प्रवृत्तियों का वर्णन राजा को सुनाया। फिर चिरप्रवासी को जारजपुत्र से प्रसन्नता, असत्यवादी का तथ्याहरण, कुट्टिनी का सती स्त्रियों और साधु पुरुषों को व्यभिचारी बनाने का व्यापार, ज्योतिषी का पतितों को जाति से बाहर न करने के लिए तर्कणा आदि लोगों की प्रवृत्तियाँ बताई। उसने शत्रु राजा के गुप्तचर को दिखाया और बताया कि इसने इस राज्य के एक सचिव से मैत्री कर ली है। अन्त में उसने एक मान्त्रिक को दिखाया—

द्वीपान्तरस्थमपि वस्तु ददाति हस्ते दन्तीन्द्रवाजिबहुलां सृजति स्म सेनाम्।
देशान्तरादपि च कर्षति कंजनेत्रां दृष्ट्वेदमत्र जनता विदधाति भक्तिम्॥२·४५

सर्वदर्शी ने बताया कि अवन्ति देश पर यवनों के आक्रमण करने पर ऐसे गड़बड़ चरित्र के लोग हमारे राज्य में भागकर आ गये हैं। राजा ने आदेश दिया—

ब्रूहि राष्ट्रियमस्मत्पुरे जनपदे वै तादृशा असमंजसवृत्तयो यथोचितं दण्ड्या इति।

विवेकनिधि ने महारानी सुमति को तैयार कर लिया कि वह अपनी छोटी बहिन वसुमती का राजा से विवाह करने की अनुमति देकर उन्हें सम्राट् बनने का अवसर प्रदान करें। साथ ही यवनाक्रान्त मिथिला देश के राजा की सहायता करके उसे अपनी ओर कर लें।

धारागृह में सखियों के द्वारा सेवित नायिका रंगमंच पर आ जाती है। मनोरम तल्प शयनीय पल्लवों से सज्जीकृत था। उस पर नायिका सोई। उसके ऊपर चन्दन-रस का लेप किया गया, जिससे उसका मदन-सन्ताप दूर हो। उन्मत्त होकर वह कहती है कि मेरे प्रियतम राजा को वज्रासन पर बैठाइये, जब राजा वहाँ था ही नहीं। वसुमती की सान्त्वना के लिए चित्रालेखन की सामग्री लाई गई, जिसमें वह नायक का चित्र बनाकर उससे समागम का सुख अनुभव करे। वसुमती ने चित्र बनाया और राजा को सम्बोधित करके कहा—

अयि हृदयपाटच्चर ननु गृहीतो भवान्।

चित्र का उपगूहन कर वह प्रमुदित होती है।

भगवती कात्यायनी आई और उस चित्र को लेकर नायक के समीप गई, जिससे नायिका को उसके भाव बता सकें। नायक चित्र-फलक पर नायिका द्वारा लिखित गीत से विशेष क्षुब्ध हुआ। उसने नायिका के प्रीत्यर्थ प्रतिगीत इस प्रकार लिखा—

वासन्ति सौरभैस्तव विवशीभूतोऽपि सुचिरसौहार्दम्।
अनुनीय कुन्दलतिकामथ भवतीमनुबुभूषति मिलिन्दः॥३·४२

पत्र को कात्यायनी ने वसुमती को दिया, जिससे वह प्रसन्न हुई।

इसके पश्चात् महारानी सुनीति वसुमती के सन्ताप-विषयक वृत्तान्त को जानने के लिए आई।

चतुर्थ अङ्क के अङ्कास्य मे रंगमंच पर राजा, विवेकनिधि मन्त्री तथा सचिव अर्थपर विराजमान हैं। मिथिला से राजा मित्रवर्मा का पत्र लेकर सुमति नामक दूत आता है। पत्रानुसार मालवा का सूबेदार दुर्मद इन्द्रप्रस्थ के यवन राजा दुर्जय की सहायता से मिथिला पर आक्रमण करना चाहता है। मित्रवर्मा राजा गुण-निधि की सहायता की याचना कराता है। अर्थपर नामक सचिव ने कहा कि मिथिलेश्वर की सहायता के लिए थोड़ी सेना भेज दें। विवेकनिधि ने कहा कि पूरी सेना भेजकर मिथिलेश्वर को विजयी बनायें। अन्यथा शत्रु उसे जीत कर आप पर आक्रमण करेगा। राजा ने अपने भाई विजयवर्मा को मिथिलेश्वर की सहायता के लिए नियुक्त किया। सेनापति विकलवर्मा युवराज की सेना का नेतृत्व करने के लिए गया। वसिष्ठ मुनि ने प्रयाण के पहले उन्हें आशीर्वाद दिया। राजा ने अपने भाई विजयवर्मा को किम्पुरुषखण्ड से सिद्ध के द्वारा लाये हुए फल को खिलाया, जिससे उसे भूख-प्यास आदि से मुक्ति मिल जाय। सेना के व्यय के लिए राजकोश साथ चला। मनोरंजन प्रस्तुत करने वाले लोग भी साथ गये।

सर्वदर्शी नामक चाराध्यक्ष ने बताया कि यह बन्दी आधी रात मे भालू का वेश बनाकर नगर में उछल-उछल कर दौड़ रहा था। इसे गुल्माधिकारी ने पकड़ा है। उसके पास जो पत्र निकला, उसमे लिखा था—'स्वस्ति। यह किसी का किसी के लिए लेख है। इस कार्य के घटक व्यक्ति को सपरिवार कैद कर लिया गया है। कन्या से विवाह का यह ठीक समय है। बन्धुओं के साथ शीघ्र आयें।'

राजा ने इसका अर्थ लगाया—'हमारा मन्त्री शत्रु के राज्य का एक अंश पाने पर वश में हो जायेगा। राजसेना प्रवास पर है। राजधानी पर आक्रमण करने का ठीक समय है।' विवेकशील और राजा ने समझ लिया कि यह अर्थपर नामक सचिव का रचा हुआ खेल है। उसे कारागार मे डाल दिया गया।

मिथिला से समाचार चरो ने दिया कि युद्ध मे हमारे पक्ष के लोग कुशलता-पूर्वक काम कर रहे हैं। फिर तो आकाशयान से नारद शिष्य के साथ रंगमंच पर आते हैं। वे मिथिला मे प्रवर्तित युद्ध का वर्णन करते हैं। अन्त मे विजयवर्मा विजयी हुआ। मिथिला के राजा ने विजयवर्मा को आगे करके मालवराज दुर्मद नामक यवन को पकड लिया। मिथिला से आर्यदूतों ने विजय का समाचार दिया कि दुर्मद परास्त कर दिया गया है। वहाँ से विजय दिल्ली चला गया, राजा गुणनिधि ने विजयवर्मा को पत्र भेजा कि इन्द्रप्रस्थ मे शासन करते रहें। नगर में विजय-महोत्सव सम्पन्न होता है।

एक दिन राजा गुणभूषण वसुमती का चित्र अपनी नई चित्रशाला में बनाकर उसमे मनोविनोद कर रहा था। वही विदूषक आ पहुँचा। राजा वसुमती को पाने के लिए उत्सुक था। उसी समय महादेवी वहाँ आई। उन्हें विदित हुआ कि वसुमती के मानसिक सन्ताप का कारण उसका राजा के प्रति अतृप्त प्रेम है।

महारानी के डर से विदूषक पेड़ पर चढ गया। वहाँ महारानी ने राजा के साथ वसुमती के चार चित्र देखे—(१) वासगृह में प्रसुप्त महाराज के समीप, (२) अन्तःपुर मे, (३) प्रमदवन मे और (४) धारागृह मे। महारानी की सखी ने बताया कि वातायन के समीप राजा आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। महादेवी राजा के पास पहुँचने पर केवल मधुर उलाहना ही दे सकी कि आप अब मेरे लिए सपत्नी प्राप्त करने की योजना कार्यान्वित करने मे पर्याप्त सफल हो चुके हैं। राजा ने हाथ जोड कर उनसे विनती की कि हे देवि, मेरा यह एक अपराध क्षमा करें। राजा ने कहा कि आपकी अनुमति से आज मैं पुण्यक व्रत करना चाहती हूँ, जिससे आपका अभ्युदय हो। राजा ने स्वीकृति दे दी। तब तो स्वस्तिवाचन करने के लिए विदूषक पेड से उतरा। महारानी ने उसे देखकर कहा कि मैंने तो समझा था कि इस वृक्ष पर वानर चढा है।

कुछ समय पश्चात् विवेकनिधि से राजा आस्थानी मे मिलता है। विवेकनिधि ने बताया कि विक्रमवर्मा ने चारो समुद्रो तक चारो दिशाओ मे विजय प्राप्त कर ली है। इन्द्रप्रस्थ मे प्रतिष्ठित विजयवर्मा ने यह सब कराया है। जीते हुए देशो से प्राप्त वस्तुओ की गणना करने के सम्बन्ध मे चित्रलेख नामक कायस्थ का कार्य-विवरण दिया गया है।

अन्त मे राजा महारानी के पुण्यक-व्रत का समापन करने के लिए अन्त-पुर मे जा पहुँचते हैं। निकट ही खडी वसुमती कनखियों से देखती हुई राजा के विषय मे कहती है—

> नीलोत्पल-श्यामलाङ्गश्चन्द्रोपमितेन वदनलावण्येन।
> नन्दयति लोचनं मम ननु ददात्ययं मनसश्च विकारम्॥

गुणभूषण दक्षिण नायकत्व की मानसी वृत्ति को प्रामाणित करता है—

> सहैताभ्या रात्रावपि कुसुमतल्प श्रितवतो
> भवेत् स्वैरं पार्श्वद्वितयपरिवृत्तिश्च सफला॥५.३१

पश्चात् महादेवी राजा के चरणो मे प्रणाम पूर्वक कहती हैं—आप मेरी बहिन वसुमती का पाणिग्रहण करे।

राजा के द्वारा बुलाया हुआ विजयवर्मा भी इन्द्रप्रस्थ से आ पहुँचा। राजा ने भाई का समादर-पूर्वक आलिंगन करते हुए उसका सम्मान किया। वसिष्ठ की अध्यक्षता मे रंगमच पर वैवाहिक विधियां सम्पन्न होती हैं।

राजा गुणभूषण की इस विजय से प्रसन्न होकर इन्द्र ने उसके लिए पारितोषिक भेजे। उसे लेकर दिव्य पुरुष रगमच पर अवतरित हुआ था।

अन्त में विवेकनिधि राजा से पूछता है कि देव, अब महादेवी आपका कौन-सा प्रिय कार्य करें। राजा ने उत्तर दिया—अब क्या शेष रहा—

जितोऽसौ दुर्वृत्तः समिति यवनानामधिपति-
वंशे जज्ञे पृथ्वी चतुरुदधिवेला-वलयिता।
जयत्येकच्छत्रं जगति मम साम्राज्यमधुना
प्रिया चेयं लब्धा प्रथितकुलजाता वसुमती॥५.३६

कवि ने भरतवाक्य में कहा है—

आचन्द्रार्कमयं सुखी विजयतां बालाजिरावः प्रभुः।

नाटक के पाँच अंकों के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—

(१) प्रस्तुत-नीतिः
(२) दोष-निरासः
(३) तरंगित-विरहतापः
(४) राज्ञश्चक्रवर्तितालाभः
(५) परितुष्ट-नायकः।

सांस्कृतिक वर्णना

वसुमतीपरिणय की सांस्कृतिक चर्चायें महत्त्वपूर्ण हैं। राजकीय कर्मचारी घूस लेते थे। लोग घूस देकर उनसे काम बनाते थे। पर्वत, मैदान, जल और मरुभूमि के दुर्गों में पाषाण, लोह, और काष्ठ की बनी हुई सामरिक सामग्री इकट्ठी रखी जाती थी। उसमें संगृहीत खाद्य वस्तुओं की रक्षा की जाती थी। परराष्ट्रों में दूत नियुक्त होते थे। बहुत से दूत दोनों ओर से वेतन लेकर उलटी-सीधी बातें बताते थे। जुआघरों से आय होती थी। कर्मचारी कोश की चोरी करते थे।

हास्य

नाटकाभिनय में हास्य का स्थान महत्त्वपूर्ण है। वैसे तो इस नाटक में विदूषक है, किन्तु अन्यत्र भी कवि ने हास्य-सर्जन में सफलता पाई है। यथा नारद और उनके शिष्य का संवाद है। शिष्य पूछता है कि जब युद्ध देखने को नहीं मिलता तो आप कैसे मनोरंजन करते हैं। नारद कहते हैं—

दम्पत्योरनुरक्तयोरपि मिथानिष्पादितं वाक्कलि
प्रक्रान्तं सहसा नियुद्धमथवा भक्ष्योत्सुकैर्बालकैः॥४.३०

इसी अंक में भल्लूक-वेषधारी चर के उछल-उछल कर रात में दौड़ने का वर्णन हास्योत्पादक है।

नाटक में कहीं-कहीं भाण, प्रहसन आदि रूपकों का आनन्द तो आता ही है, साथ ही इसमें नीतिशास्त्र का उपदेश एक निराली योजना है।

समीक्षा

छायातत्त्व की विशेषता भल्लूक-प्रकरण तथा नायिका द्वारा स्वरचित नायक के चित्र के उपगूहनादि से आनन्द प्राप्त करने के दृश्य में है। तृतीय अंक में एक ही

रगमच पर नायक का सौध, धारागृह आदि के विभिन्न दृश्य अलग-अलग भागो में बनाये गये है।[1] एक ही रगमच पर चतुर्थ अक में मिथिला और गुणभूषण की राजधानी के दृश्य हैं।

कवि की कला का वैशिष्ट्य है कि उपर्युक्त सास्कृतिक वर्णनाओं के साथ वह शृङ्गारित कथाशो को सफलतापूर्वक समर्जसित करता है। जिन अंशों में राजनीति विषयक कथा की प्रचुरता है, वे कम सरस हैं, किन्तु जहाँ शृङ्गारित प्रवृत्तियों की चर्चा है, वहाँ कवि सरसता की सृष्टि करने मे बहुत पीछे नही कहा जा सकता है।

प्रस्तुत नाटक मे चतुर्थ अंक के पूर्व अंकास्य नामक अर्थोपक्षेपक है। अर्थोपक्षेपक मे सूचनामात्र देने के लिए केवल मध्यम और अधम कोटि के पात्र होने चाहिए थे, किन्तु इस अकास्य मे स्वयं राजा नायक की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

लोकोक्ति

कवि की भाषा मे लोकोक्तियो का अभिनिवेश है। यथा—

किमरण्यचन्द्रिका मम भारती।

दर्पणप्रतिविम्बितमपि वस्तु किं नूपभोगक्षमं भवति।

अनुराग एव वस्तुनः सौन्दर्यमुत्पादयति।

यत्र सिंहस्तत्र पुच्छः।

जगन्नाथ की भाषा सर्वथा नाट्योचित है। सरसता और सरलता का सामञ्जस्य प्रायशः परिपूर्ण है।

अभिनव प्रवृतियाँ

वसुमतीपरिणय-नाटक की कतिपय प्रवृत्तियाँ नाटककारो के लिए सदा उपादेय रहेंगी। इसमे राजा को सत्पथ पर चलाने के लिए सत्साहित्य की संवर्धना का व्यावहारिक सन्देश मिलता है। बालाजि राव को पूरे नाटक मे और विशेषत भरत-वाक्य मे सुनीति के द्वारा विजयी होने का सन्देश प्रवर्तित है। राजनीति की ऐसी अनूठी सरचना परवर्ती युग मे दुष्प्राप्य है। अनेक भागो मे इस नाटक में मुद्राराक्षस और अर्थशास्त्र से भी बढकर उत्तम योजनायें प्रस्तुत की गई हैं। यवन-राजाओं से राष्ट्र की रक्षा करने के लिए हिन्दू राजाओं को अपनी एकता-सघटन करके सफल प्रयास करना चाहिए—यह कवि का अन्तर्भूत मन्तव्य राजाओ के जागरण के लिए था। जैसा पहले लिख चुके हैं, गुणभूषण साक्षात् बालाजि था, जो अपने समय में भारत का सर्वोच्च शासक और राजसंघविनायक था। उसने राजसंघ बनाकर १७६१ ई० में अहमद शाह अब्दाली पर प्रत्याक्रमण किया था।

रतिमन्मथ

जगन्नाथ ने रतिमन्मथ नाटक की रचना तंजौर मे प्रतापसिंह के आश्रय में रहते

---

१. इस अक मे अनेक दिनो की घटनायें भी दिखलाई गई हैं। यह प्राक्कलित नियम के अनुसार नही है।

हुए की थी। प्रतापसिंह बालाजि राव के प्रायः समकक्ष १७३९ से १७६३ ई० तक शासक रहे। कवि ने रतिमन्मथ की रचना १७५० ई० के लगभग की होगी।

तंजौर में लोकमाता आनन्दवल्ली के वसन्तोत्सव के अवसर पर इस नाटक का अभिनय हुआ था।

कथावस्तु

पाँच अंक के इस नाटक में पुराण-प्रसिद्ध रति और कामदेव के परिणय की कथा है। नायक और नायिका ने एक दूसरे को देखा और परस्परासक्त हो गये। मन्मथ ने अपने नर्मसचिव विदूषक से कहा कि उससे फिर कहाँ भेंट हो? उसने बताया कि नन्दन-वन में। मन्मथ वहाँ पहुँचा और अपने हाथ में लिए हुए शुक को भोजन देने के लिए गुलिका-प्रक्षेपण से एक आम का फल गिराया, जो रति के आँचल मे गिरा। फल ढूँढते हुए नायक वहाँ आया और नायिका से वातचीत होने लगी। माता के बुलाने पर नायिका चलती बनी।

धीरललित नायक ने मन्त्री वसन्त पर राज्य का शासन भार डाल दिया और नायिका की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील हो गया। रति भी उनके लिए सन्तप्त हो रही थी। धारागृह में नायिका का शिशिरोपचार हो रहा था। सखियों ने मन्मथ का चित्र बनाकर रति को दिया। रति ने नायक को उसकी चन्द्रशाला के वातायन पर विदूषक के द्वारा धैर्य धारण कराया जाता हुआ देखा। मन्मथ ने रति के द्वारा निर्मित चित्र वाले फलक पर अपने पार्श्व में नायिका का चित्र विदूषक के देखने के लिए बना दिया। मन्मथ चित्र को वास्तविक रति समझकर उसे देखते ही उन्मत्त हो गया।[1]

रति को प्राप्त कराने के लिए मन्मथ ने वसन्त को दूत बना कर सर्वार्थसाधिका के पास भेजा था। सर्वार्थसाधिका ने वशिनी को मन्मथ के पास यह कहने के लिए भेजा कि आपका काम सिद्ध होगा। वशिनी को मन्मथ-रति का वही चित्र विदूषक के हाथ मे गिरा मिला, जिसे उसने रति को ले जाकर दिया। रति उसे हृदय से लगा लेती है।

स्वयं विष्णु ने बृहस्पति को रति के माता-पिता के पास भेजा कि आप लोग रति को मन्मथ के लिए विवाह मे दे दें। इधर शुक्राचार्य के शिष्य वाष्कल ने रति को शम्बरासुर के लिए रति को देने का सदेश दिया। रति के माता-पिता ने बताया कि कन्या की इच्छानुसार हम उसे वर को देंगे। वह शम्बरासुर को नहीं चाहती। इस प्रकार असुरों से ठन गई।

इधर मन्मथ को अनासक्त शिव और पार्वती का परिणय कराने के लिए अपनी महत्वपूर्ण भूमिका पूरी करने के लिए हिमालय पर चल देना पड़ा। वसन्त उसके साथ गया। शिव ने मन्मथ के द्वारा उत्पन्न की हुई गड़बडी को देखकर उसे जलाने के लिए जो अग्नि उत्पन्न की, उसे इन्द्र ने स्वर्ग से ही देखा। सर्वार्थ-साधिका ने

१. यह छायातत्त्वात्मक कथांश है।

मन्मथ को बचा लिया और मन्मथ पर आंच आने के पहले ही अग्नि को शिव के नेत्र मे पुनः स्थापित कर दिया। मन्मथ को सफलता मिलती है। शिव पार्वती का विवाह हो जाता है। कार्तिकेय का जन्म होता है।[1]

इस बीच राग की कन्या रति का अपहरण शम्बरासुर ने करा दिया। मन्मथ शम्बर को मारने चला। उसके पीछे सेना मे थे इन्द्र आदि।

इन्द्र की सेना को दानवों ने पकड लिया। देवासुर संग्राम मे इन्द्र ने शम्बर को मार डाला। कवि ने इसके बीच एक नया कथाश प्रकल्पित किया है कि जब शम्बरासुर रति का अपहरण करवा रहा था तो सर्वार्थसाधिका ने उसी के समान मायावती को उसका स्थानापन्न करके रति को बचा लिया था।[2] इस युद्ध मे मन्मथ भी देवकार्य से लौटने के पश्चात् सम्मिलित हुआ। उसे शम्बर मायावती के साथ रथ मे मिलता है। मन्मथ युद्ध मे शम्बर को मोहित करके मार डालता है। वह मायावती को रति समझकर अपने रथ पर बिठाकर लौटता है।

मायावती ने भी मन्मथ को पति बनाने की उत्कट अभिलापा प्रकट की। इधर मन्मथ को कुछ-कुछ सदेह होने लगा कि यह रति नही है क्या? वह मायावती को उसके घर पर छोड़ देता है।

रंगमच पर रति तो है ही, उसका प्रतिरूप मायावती भी मन्मथ के साथ है। सभी विस्मय में हैं। अन्त मे सर्वार्थसाधिका मायावती की उत्पत्ति की कहानी बताकर सबका संशय और विस्मय दूर करती है। मन्मथ को उन दोनो के प्रति प्रेम था। दोनों नायिकाओं से एक ही मण्डप मे उसका विवाह हो गया।

रति-मन्मथ और वसुमती परिणय के कथाश और सविधानो मे अनेक स्थलो पर समानता है। समान कथाशों मे दोनो मे एकही पद्य मिलते हैं। दो-दो कथाओं का ग्रन्थन दोनों नाटको मे है। दोनो नाटको मे छायातत्त्व की बहुलता है।

---

१. तृतीय अंक मे शिव का विवाह और पुत्र-प्राप्ति दोनो होना कालात्यय के सिद्धांत के अनुसार उचित नही है।

२. यह कथाश छाया तत्त्वात्मक है।

अध्याय ६०

विवेकचन्द्रोदय

विवेकचन्द्रोदय के रचयिता उत्तरप्रदेशीय शिव यमुना-तटवासी थे।[1] इसकी प्रस्तावना में सूत्रधार के साथी रूपशङ्कु ने कहा है—

वाणी यस्य मुखे च कर्णसुखदा देवीप्रसादोद्‌गता
रानेरं नगरं दिनेशतनयातीर्थे यथा जाह्नवी।
तेनैवाद्य शिवेन साधुकविना काव्यप्रियाणां कृते
किं जानासि न राजनीतिनिपुणज्ञानं कृतं नाटकम् ॥

इस श्लोक से ज्ञात होता है कि शिव कवि रानेर नामक नगर के निवासी थे, जो व्रजप्रदेश में रहा होगा। जैसा सूत्रधार ने बताया है कि, व्रजभाषा के कवियों का सम्मान विशेष है।[2] इस नाटक का रचनाकाल कवि ने १७६३ ई० बताया है।

कथावस्तु

ब्रह्माण्डभाण्डोदर नामक विमान में सिद्धिदेव और चारुकण्ठ रंगमंच पर प्रकट होते हैं। चारुकण्ठ की इच्छानुसार सिद्धिदेव उसे रुक्मिणी-विवाह का अभिनय दिखाते हैं। वृद्धश्रवा ब्राह्मण रुक्मिणी का पत्र लेकर द्वारका मे आता है। उसे कृष्ण के ढूँढ़ते हुए उद्धव से भेंट होती है। उद्धव को कृष्ण ने अपने योग्य कन्या ढूँढने के लिए विदेशों मे भ्रमण करने के लिए भेजा था। उद्धव ने रुक्मिणी को कृष्ण योग्य पाया था। वे रुक्मिणी का विरह-सन्देश कृष्ण को देने के लिए उत्सुक थे। कृष्ण चित्रशाला में थे। उद्धव ने अपनी परिभ्रमण की चर्चा कृष्ण से मिलने पर की—

आ जगन्नाथमा सेतुबन्धमा हिमपर्वतम्।
आ सिंहलद्वीपमगां गामिमां पुरुषोत्तम ॥ २.६

कृष्ण के पूछने पर आश्चर्यकरी घटना उद्धव ने बताई की मैं जब विन्ध्यवासिनी देवी का दर्शन कर चुका तो वहाँ के राजा ने अपनी कुसुमवाटिका में कृष्णामात्य के रूप मे मुझे स्वर्ग सुख प्राप्त कराया। वहीं विन्ध्यवासिनी की उपासना करने के लिए इन्द्र दल-बल के साथ आये। जब देवीदर्शन करके वे सब लौट रहे थे तो इन्द्र-सभा के समक्ष मूर्तिमान् दुर्विनय धर्म से बोला कि अधर्म की ओर से मैं कुछ प्रश्न लेकर आया हूँ। इन्द्रसभा मे विराजमान धर्म ने अपने मन्त्री विवेक से कहा कि देखो यह कौन है? उसके पूछने पर दुर्विनय ने कहा कि मैं आपके भाई का पुत्र

१. विवेकचन्द्रोदय का प्रकाशन विश्वेश्वरानन्द इंस्टिट्यूट, होशियारपुर से १९६६ ई० मे हो चुका है।

२. सूत्रधार—वत्स ! एवमेतत् खलु चरमयुगोत्पन्न-भूपालमण्डलीषु यदि कश्चिद् व्रजभाषादिवाग्विलासकुशलः स स्वात्मानं कृतार्थमनुजानीते।

हूँ। तुम्हारे भाई अविवेक ने कुत्सिता से मुझे उत्पन्न किया है। स्वामी अधर्म का पत्र पढ़ें। विवेक ने पत्र पढ़ा, जिसमे लिखा था कि धर्मचर्या मिथ्या कल्पना है। सभी तथाकथित धर्मधुरधर पापलिप्त हैं। यथा,

जघान गुरुमर्जुनः शशधरोऽहरत् सुन्दरी ;
गुरोर्भृगुसुतः पपौ मधुसुवर्णहारी कविः।
मयापकृतमस्ति किं त्वदुपजापजप्तैर्जनैः
शठ! प्रतिमठ कथा किमिति निन्द्यते मामकी ॥

कामादि ने जगत् को जीत लिया है। अब धर्म सीधे से हमें राज्य देकर भाग जायें।

विवेक ने अपने पुत्र विनय से कहा कि वत्स, तुम राजनीति का आश्रय लेकर इस दुरात्मा दुर्विनय को समझाओ। विनय ने उसे समझाया कि राजा गुण से होता है। यथा,

सदा देशकालोचित्त यस्य शौर्यं विनैवापराधं न शत्रोर्वधोऽपि।
फलेच्छा रिपुध्वंसतो यस्य नित्यं रतिः स्वस्त्रियां राजराजः स राजा ॥३·२

विनय ने अपने पक्ष के मन्त्री, न्यायाधिकारी, दुर्गाधिपति, सेनापति देशाधिपति, लेखक, महिषी आदि के आदर्श चरित और चरित्र का विश्लेषण किया है। उसने राज्योपघात प्रवृत्तियों का भी विशद विवेचन किया है। उसने अन्त में दुर्विनय को बताया—

राजा धर्मो यत्र मन्त्री विवेक श्रद्धा राज्ञी निर्णयो राजपुत्रः।
कोशस्तोषः सैनिकाः संयमाद्याः कामध्वसान्मोक्ष-साम्राज्यलब्धिः॥३·२७

विनय की इन बातों को सुनकर दुर्विनय-पक्ष के सभी लोग भाग चले।

चतुर्थ अङ्क मे उद्धव ने समझाया कि रुक्मिणी तो आपको पति-रूप मे चुन चुकी है, किन्तु उसका भाई रुक्मी उसको शिशुपाल को देना चाहता है। वृद्धश्रवा रुक्मिणी का पत्र लेकर आपके पास आया है। पत्र मे एक पद्य था—

सर्वज्ञ यज्ञपुरुषज्ञ जनाशयज्ञ
विज्ञापनीयमिदमेव न देव चान्यत्।
त्वां मत्कृते त्रिजगतामपि राज्यलक्ष्मी-
र्लक्ष्मीरिवाश्रयतु वैरिकुलान्यलक्ष्मीः ॥ ४·१५

कृष्ण ने कहा—दारुक ! रथ लाओ। अभी चैद्यमशक को मारकर रुक्मिणी को लाता हूँ। वृद्धश्रवा को लेकर कृष्ण कुण्डिनपुर में पहुँचे। वहाँ वृद्धश्रवा ने उन्हें वरदा के तट पर रोक रखा कि यहीं देवीपूजा के लिए नायिका आयेगी।

पूजा करके राजमार्ग पर जाती हुई रुक्मिणी को कृष्ण ने अपने रथ पर बिठा लिया। कोलाहल मचा कि रुक्मिणी का कोई अपहरण कर ले गया। जरासन्धादि

ने कृष्ण को रोकना चाहा। गाली-गलौज का वातावरण बना। वहाँ बलभद्र आ पहुँचे। उन्होंने सभी शत्रुओं को मार भगाया। रुक्मी को ध्वजस्तम्भ से बाँधा गया। फिर रुक्मिणी की प्रार्थना पर वह छूटा। विजयी कृष्ण रुक्मिणी के साथ द्वारका लौट आये। वहाँ मण्डपशाला में विधिवत् पाणिग्रहण हुआ। अन्त मे सिद्धिदेव और चारुकण्ठ अन्तर्हित हो जाते हैं।

शिल्प

विवेकचन्द्रोदय में बिना किसी सूचना के ही द्वितीय अंक में एक गर्भनाटक की सी सामग्री सन्निविष्ट है, जिसमे दुर्विनय और विवेक का संवाद प्रमुख रूप से प्रस्तुत है। यह दृश्य पूरे तृतीयाङ्क मे भी चलता है। यह सारी गर्भाङ्क जैसी सामग्री ऊटपटाँग-सी लगती है। पूरा विवेकचन्द्रोदय ऐसी नवीन उद्भावनाओं से ओत-प्रोत है। शिल्प की दृष्टि से एक विचित्र प्रकार का रूपक है विवेकचन्द्रोदय। इसमें चतुर्थ अंक मे कुण्डिनपुर और द्वारका दोनों के दृश्य अभिनीत हैं। प्रस्तावना के पश्चात् आने वाला विष्कम्भक ही प्रथम अंक बन गया है। कवि ने उसके अन्त मे लिखा है—

इति कथामुखप्रस्तावशाली प्रथमोऽङ्कः।

अर्थात् प्रथम अङ्क में कथामुख का प्रस्ताव है।

इस विष्कम्भक या प्रथम अङ्क में नायिका की कोई प्रधान भूमिका नही है। केवल विमान पर बैठे हुए सिद्धिदेव और चारुकण्ठ का संवाद है। यह विष्कम्भक तत्त्वतः नहीं है, क्योंकि इसमें विमान का उतरना दृश्य है। विमान को उतारने का काम इन्द्रजालिक के द्वारा सम्पन्न होता है। सिद्धिदेव और चारुकण्ठ आदि से अन्त तक रंगमंच पर बने रहते हैं।

रंगपीठ का कई भागों मे विभक्त होना सम्भावित है। चतुर्थ अङ्क में एक ओर कृष्ण; वृद्धश्रवादि हैं और दूसरी ओर रुक्मिणी और उसकी सखी मल्लिका बातें करती हैं। वृद्धश्रवा एक ओर से दूसरी ओर आता है। तीसरी ओर स्वयंवर-मंच पर विराजमान राजा हैं।

विवेकचन्द्रोदय प्रतीक नाटक अंशतः है। इसमे मूल कथा कृष्ण का रुक्मिणी से विवाह है। बीच में विवेक के द्वारा अभ्युदय होता है—इस विषय की कहानी जोड़ दी गई है। इस कहानी के पात्र प्रायशः प्रतीक हैं। अर्थोपक्षेपक-रूप में पत्र तथा स्वप्न का उपयोग विशेष प्रवृत्ति है।

समीक्षा

विवेकचन्द्रोदव की विशेषता उसका राजाओं के प्रशिक्षण में है। यथा,

प्रजाः पितृवत् पाति पुष्णाति शिष्टान।
प्रमुष्णाति दुष्टाननिष्टान् जहाति॥
सदाख्याति यस्तथ्यमश्नाति पथ्यं।
गतारातिराज्यं क्व तस्य प्रयाति॥३.८

ऐसी रचनायें संस्कृत मे विरल ही हैं, जो साक्षात् ही राष्ट्रिय निर्माण मे शासन की आदर्श प्रवृत्तियो की चर्चा करती हैं।

शिव की कवितायें और अभिनयात्मक योजनाये पर्याप्त मनोरंजक हैं। नई नाट्यधारा के समीक्षकों के लिए उनकी कृति विशिष्ट योग्यताओं से निर्भर है।

विवेकचन्द्रोदय-नाटिका की भूमिका से स्पष्ट है कि नटमण्डलियाँ गावों और नगरों मे देश-विदेश में परिभ्रमण करती हुई लोगों का मनोरञ्जन करती थी और उनसे प्राप्त धन से उनकी जीविका चलती थी।[1] सूत्रधार नाटक की साधारण प्रस्तावना लिख लेता था और जिस राजा के आश्रय मे उसका अभिनय होता था, उसका नामादि प्रस्तावना मे समाविष्ट कर देता था। प्रस्तुत नाटक की प्रस्तावना मे राजा का नाम रिक्त है। यथा,

सूत्रधारः—भो भो विदग्धाः, शृणुत सावधानाः। अद्य खलु महाराजाधिराजेन समाहूय समादिष्टोऽस्मि।

श्रीमता······भूपालेन इत्यादि।

नाटक शब्द रूपक का पर्याय हो चला है। वस्तुतः विवेकचन्द्रोदय नाटिका है, जैसा इसके अन्त मे कहा गया है—

श्रीविवेकचन्द्रोदयनाटिका समाप्ता।

अन्यत्र इसे नाटक कहा गया है।

नटों का जीवन समृद्ध नहीं था। रूपशकु ने इस वर्ग की दरिद्रता की ओर संकेत करते हुए सूत्रधार से कहा है—

इहापि त्वयाभरणैर्नालङ्कृतोऽस्मि। कदापि गोधूम-मुद्ग-शालि-माषान्न सुबहुघृतं मयापि न भुक्तम्। इत्यादि।

सूत्रधार ने बताया कि ब्रजभाषा का राजसमाज मे अधिक आदर है, संस्कृत का महत्त्व उतना नहीं है, क्योंकि यह चतुर्थ युग जो है।

---

१. विवेक चन्द्रोदय की प्रस्तावना मे रूपशकु नामक नट सूत्रधार से कहता है—

आर्य, ततो यथा ग्रामीणजन सन्तोपयसि, तथा तमेव महाराजं कथं न प्रसादयसि शिवकविरचितेन नाटकेन। आर्य, दूरदेशवर्तिनः कुटुम्बस्य किं जातं तन्न ज्ञायते।

अध्याय ६१

सदाशिव दीक्षित का नाट्यसाहित्य

सूत्रधार ने लक्ष्मीकल्याण नाटक की प्रस्तावना में सदाशिव का परिचय देते हुए कहा है कि वे भारद्वाज कुलोत्पन्न चोक्कनाथ के पुत्र हैं, उनकी माता का नाम मीनाक्षी है। वे स्वयं यज्वा हैं। वसुलक्ष्मीकल्याण की प्रस्तावना के अनुसार कवि सदाशिव सर्वविद्याविशारद था।

सदाशिव दीक्षित केरल के राजा कार्तिक तिरुनाल रामवर्मा (१७५८-१७९९ ई०) की राजसभा के कविराज थे। सदाशिव ने अपने आश्रयदाता को अमर करने के लिए रामवर्मयशोभूषण को प्रतापरुद्रयशोभूषण (प्रतापरुद्रीय) के आदर्श पर प्रणीत किया, जिसके एक अध्याय में नाटक के लक्षणों को उदाहृत करने के लिए पांच अंकों का वसुलक्ष्मीकल्याण नामक नाटक समाविष्ट है। परवर्ती काल में १७९६ ई० के पश्चात् जब बालरामवर्मा ने पद्मनाभ देव को अपने राज्य का अंश समर्पित कर दिया, तो कवि ने लक्ष्मीकल्याण नामक नाटक का प्रणयन किया। इसमें वे पद्मनाभदास हैं।[1]

वसुलक्ष्मी-कल्याण

इस नाटक का प्रथम अभिनय पद्मनाभदेव के वसन्त-महोत्सव में उपस्थित सामाजिकों के प्रीत्यर्थ हुआ था। अभिनय में सूत्रधार भरतराज था। भरतराज का शिष्य कलकण्ठ सदाशिव की परवर्ती कृति लक्ष्मीकल्याण के अभिनय का सूत्रधार था।

कथानक

नायिका वसुलक्ष्मी के पिता ने उसके विवाह के योग्य हो जाने पर सभी सुन्दर वरेण्य राजाओं की प्रतिकृतियाँ उसके समक्ष रखवाई। उसने बालवर्मा को चुना। इसके पश्चात् उसने एक निवेदन बोधिका के द्वारा बालवर्मा को भेजा कि आप वसुलक्ष्मी से विवाह कर लें। इस बीच महारानी ने अपने भाई सिंहल के राजकुमार से वसुलक्ष्मी का विवाह करने के लिए उसको नौका पर सिंहल के लिए प्रस्थान करा दिया और राजा से बहाना बनाया कि मेरी कन्या कुलदेवता का दर्शन करने के लिए गई है। इधर बोधिका ने बालवर्मा के पास वसुलक्ष्मी का सौन्दर्य-वर्णन करके उसे आकृष्ट कर लिया, उधर नौका से प्राप्त एक सुन्दरी कुमारी वसुभद्र नामक सामन्त के द्वारा महारानी के अन्तःपुर में पहुँचा दी गई।

बोधिका योगिनी थी। उसने एक दिन बालवर्मा के करतल पर सिद्धाञ्जन मल

---

१. वसुलक्ष्मीकल्याण तथा लक्ष्मीकल्याण की प्रतियाँ अप्रकाशित त्रिवेन्द्रम् वि० वि० की हस्तलिखित लाइब्रेरी में हैं। इनकी प्रतिलिपि सागर विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में है।

दिया, जिसके प्रभाव से नायिका का प्रतिरूप समक्ष प्रकट हो गया। राजा उसे देखकर मोहित हो गया। बोधिका ने बताया कि यह आपकी होकर रहेगी।

इधर काचनमाला नामक चेटी से महारानी वसुमती को ज्ञात हो गया था कि नायक किसी सुन्दरी के चक्कर मे पड़ चुका है। वह आस्थानी मे काचनमाला के साथ आई, जहाँ बोधिका राजा को नायिका का वृत्त बता रही थी। नायिका के प्रति राजा के प्रेमोद्गार सुनकर भी उसके दाक्षिण्य से प्रभावित होकर रानी वसुमती कुपित न हुई।

रानी राजा के सामने आ गई। उसने कहा, 'जयतु आर्यपुत्रोऽभिमतसिद्ध्या।' उसने बोधिका को कुटिल नेत्रों से देखा तो उसने स्पष्ट कह दिया कि आपके हाथ मे सपत्नी रेखा जो है।

मन्मथ पूजा के अवसर पर प्रियाल वृक्ष को दोहद प्रदान करती हुई वसुलक्ष्मी को बालवर्मा और विदूषक को दिखाने का उपक्रम सफल हुआ। नायक ने उसे देखा और कहा—

प्रागेवैषा नयनपथगा व्यातनोन्मे रिरंसा।
ज्योत्स्नेवाग्रे विहितवसतिर्दृक् चकोरीन्धिनोति॥
हस्तग्राह्या कथमपि भवेदित्यपास्तातिशङ्कं।
चेतो मज्जत्यवधिरहितानन्दवाराशिमध्ये॥२.२३

नायिका चन्द्रलेखा के साथ माधवी-लता-मण्डप में छिपकर माकन्दोद्यान मे होने वाले राजा और रानी के द्वारा सम्पादित मन्मथ-पूजा को देखने लगी। वह नायक को देखकर अतिशय प्रसन्न होती है।

नायक से मिलने के लिए वनज्योत्स्ना-मण्डप से वसुलक्ष्मी अपनी सखी चन्द्रलेखा के साथ जा पहुँची। वही कामाग्नि से परितप्त नायक और नायिका का मिलन होता है। नायक ने नायिका की प्रशंसा की और उसका कर स्पर्श किया। दोनो की प्रेम-प्रवृत्ति मे प्रगमन हुआ।

वसुमती ने अपनी सखी काचनमाला से कहा कि वसुलक्ष्मी मेरे भाई की कन्या है। उसे मैं अपने मामा के पुत्र पाण्ड्याधिपति के साथ प्रणयपाश मे बाँधना चाहती हूँ। रात्रि के समय राजहितकारिणी काचनमाला और नीतिसागर मन्त्री ने पाण्ड्याधिपति के वेश मे बालराम वर्मा को अन्तःपुर मे प्रवेश कराकर वसुलक्ष्मी से उसका विवाह वसुमती की इच्छा से करा दिया। इसके लिए काचनमाला की योजना के अनुसार वसुमती स्वयं वसुलक्ष्मी को लेकर राजा बालराम वर्मा से भीत सी होकर पाण्ड्याधिप से नायिका का विवाह कराने के लिए आस्थानी मे आ पहुँची थी, बालराम वर्मा को पाण्ड्याधिप-वेश मे देखकर वसुमती ने उसे सचमुच अपने मामा का पुत्र ही समझा। इस अवसर पर नायिका के पिता और वसुमद्राज भी वहाँ उपस्थित होकर विवाह-महोत्सव में सम्मिलित हुए।

छद्म

इस नाटक से तथा ऐतिहासिक राजाओं के विवाह-सम्बन्धी नाटकों मे ऐसा प्रतीत होता है कि जिस किसी सुन्दरी से राजा विवाह कर लेते थे और उसकी सभा के कवि उसकी नई प्रेयसी को किसी राजा की कन्या होने की कल्पना करके नाटक बना देते थे। इस प्रकार राजा का उच्चकुलीन कन्या से सम्बन्ध प्रमाणीभूत होता था।

शिल्प

प्रस्तावना में आकाश-भाषित के द्वारा सूत्रधार सामाजिकों के निवेदन सुनने का अभिनय करते हुए पारिपार्श्वक से उनकी पत्रिका ग्रहण करता है, जिसमें लिखा रहता है कि हम कैसे नाटक का प्रयोग चाहते हैं।

लक्ष्मीकल्याण में सभी अंकों का संकेत केवल अङ्कान्त मे दिया गया है, प्रारम्भ में नहीं। इस प्रकार अङ्क के भीतर प्रवेशक और विष्कम्भक को स्थान नहीं मिलता। अङ्क और विष्कम्भक दोनों एक दूसरे से समान रूप से पृथक्-पृथक् हैं।

प्रवेशक और विष्कम्भक में सूचना-मात्र होनी चाहिए। इनमे सन्ध्यङ्ग नहीं होने चाहिए, किन्तु सदाशिव ने इसके विपरीत वसुलक्ष्मीकल्याण के चतुर्थ अङ्क के पहले के प्रवेशक में द्रव, विरोध, अपवाद, सम्फेट, आदि सन्ध्यङ्गों का सन्निवेश किया है। विष्कम्भकादि में वस्तुतः सूचना-मात्र होनी चाहिए, पर लक्ष्मीकल्याण के द्वितीयाङ्क के पहले के विष्कम्भक में सूर्यास्त का वर्णन १० पद्यों में किया गया है। ऐसा लगता है कि कवि अपनी वर्णना-चातुरी का प्रदर्शन करते हुए नाटकीय अपेक्षाओं की अवहेलना करता है।

नान्दीपाठ कुशीलव करते हैं, सूत्रधार नहीं, जैसा वसुलक्ष्मी-कल्याण में कवि ने कहा है—

एषा कुशीलवकर्तृका पूर्वरङ्गाख्या द्वाविंशतिपदा नान्दी।

द्वितीय अङ्क में नायिका अपनी आत्मकथा चन्द्रलेखा को सुनाती है। यह प्रकरण सूच्य है। अङ्क भाग में इसका औचित्य नहीं है।

रंगमंच पर नायिका द्वारा वीणावादन द्वितीय अङ्क में मनोरंजक विशेषता स्पृहणीय है।

प्रणयात्मक नाटक वसुलक्ष्मी-कल्याण के चतुर्थ अङ्क मे विदूषक और कंचुकी का दण्डादण्डि-समुद्यम मनोरंजक है।[1]

बालवर्मा का पाण्ड्याधिप के रूप में वसुलक्ष्मी से चतुर्थ अङ्क में विवाह करना छायातत्त्व है। इसी प्रकार छायातत्व है गरुड पक्षी का द्वितीय अङ्क मे रंगपीठ पर विष्णु से सवाद करना। पक्षी का बोलना मनोरंजक दृश्य है। चतुर्थ अंक मे विष्णु का अस्सी वर्ष का वृद्ध मुनि बनना भी छायातत्त्वानुसारी है।

---

१. गाली देने के पश्चात् 'परस्पर-प्रहारं नाटयतः' इत्यादि।

मूँद दिया। तब तो विष्णु (पद्मनाभ) क्रुद्ध हुए कि जितनी देर तक मेरी आँख मुँदी रही, उतनी देर तक जगत् आर्त रहा। उन्होंने शाप दिया कि पृथ्वी पर प्रकट होकर तुम मुझे फिर से प्राप्त करो। तत्क्षण अन्तर्हित यह पृथ्वी पर कमल-कलिका के पत्रों के बीच आविर्भूत होकर वञ्चिभूपाल रामवर्मा की पालित कन्या हुई और पद्मनाभ को प्राप्त करने के लिए माकन्दोद्यान में तपस्या करने लगी। नारद पुनः दम्पती को प्रणयसूत्र में आबद्ध करने के लिए प्रयत्नशील बने। वे तुम्बरु के साथ पद्मनाभ के पास पहुँचते हैं। पद्मनाभ की प्रतिष्ठा श्रीपुरी (त्रिवेन्द्रम्) के मन्दिर में है। वे गरुड पर आरूढ पद्मनाभ से मिलते हैं। तुम्बरु और नारद पुनः पुनः पद्मनाभ की स्तुति करते हैं। यथा,

ज्योतिर्मयं सदपि यन्नयनातिपाति निस्साधनं सदपि यद्भुवनप्रणेता।
यत् सर्वभासकमणोरपि वस्तुतोऽणु तत्त्वं भवस्यखिलवेदित पद्मनाभ ॥२.५६

नारद की अभीष्ट योजना पद्मनाभ जान गये कि यह मेरा विवाह कराना चाहते हैं। उन्होंने नारद से कहा कि इस ओर मेरी प्रवृत्ति प्रपचित है। लक्ष्मी उत्पन्न हो चुकी है। मैंने यहाँ अवतार ग्रहण किया है।

तृतीय अंक में अस्सी वर्ष का वृद्ध मुनि बनकर पद्मनाभ अपनी प्रणयिनी लक्ष्मी से मिलने के लिए माकन्दोद्यान में गये, जहाँ वह उनके लिए तपस्या कर रही थीं। उनके साथ वटुवेशधारी जय और विजय हैं। लक्ष्मी उनके आगमन के समय पुष्पादि से उनका स्वागत करती हैं। लक्ष्मी की सखियों से वृद्ध मुनि पूछते हैं कि क्योंकर यह तपस्या कर रही हैं—

शिरीषकुसुमकोमलाकृतिरियं किमर्थं
तपस्यतीव कृशतां गता कमलिनीव चन्द्रातपे।
इनेन समुपोषिता विकृतिमेति दोषागमे
प्रसीदति च तच्छमे प्रियकरग्रहेणैव सा ॥३.५६

सखियों ने बताया कि पद्मनाभ की प्राप्ति के लिए। मुनि ने कहा कि इन्हें तो मैं चाहता हूँ—

गोभिस्त्वामिव पद्मिनी इन इव प्रोत्फुल्लपद्मानना-
मन्यर्णालिकुलोपगीतविभवां कर्तुं समभ्यागमम् ॥३.६०

मुनि की इस कामप्रवृत्ति से लक्ष्मी कुनमुनाई, पर शिष्टाचारवश अतिथि से उसे बात करना पड़ा। उसने अपना मन्तव्य बताया तो मुनि ने कहा कि क्या ही अमोग्य वर है। लक्ष्मी ने कहा कि तुम मुनि नहीं, ब्रह्मराक्षस हो कि पद्मनाभ की निन्दा करते हो। भगो यहाँ से।

सखियों ने अनुमान कर लिया कि यह मुनिवेशधारी पद्मनाभ ही हैं, क्योंकि लक्ष्मी के द्वारा डाँटे जाने पर भी प्रसन्न ही हैं। प्रेमपरीक्षा के लिए आये हैं। तब

तो मुनि ने पद्मनाभ की निन्दा मे कहा—

निद्रालुः सदसत्परोऽतिमलिनाकारो गुणैरुज्झितः।
किं चानेकमुखाक्षिपादविकृतस्त्रैलोक्यबीजाङ्कुरो
वापक्षे क्रमशेषकल्पविमुखो चक्रीति लोके स्मृतः॥३·६६

लक्ष्मी ने कहा कि ऐसे दुर्मुख की दुर्गति की जानी चाहिए, पर ब्राह्मण है। हम स्वयं इससे दूर हो जायें। वह ज्योंही दूर जाने को हुई कि पद्मनाभ ने अपना योगेश्वर रूप धारण कर लिया। तब तो लक्ष्मी को भय हुआ कि मैंने अपने पति को बुरा-भला कहा है। उसने मन ही मन कहा—

हृदय इदानीं विस्रब्धं भव, यतो लब्धव्यं लब्धम्।

पद्मनाभ ने लक्ष्मी से कहा कि आप तो मेरे साथ पूर्ववत् विहार करें। लक्ष्मी ने कहा कि मेरे पाणिग्रहण का अधिकार कुलशेखर बालराम वर्मा को है।

चतुर्थ अङ्क के पहले विष्कम्भक के अनुसार लक्ष्मी और पद्मनाभ विरहाग्नि में सन्तप्त हैं। पद्मनाभ कालिदास के पुरुरवा की भाँति लक्ष्मी के चक्कर में परिभ्रान्त हैं। अन्त मे उन्हे उपवन मे अपनी सखियो से बातचीत करती हुई लक्ष्मी दिखी। लक्ष्मी भी विरहाग्नि मे सन्तप्त थी और उसकी सखियाँ उसका शीतोपचार कर रही थी। छिपकर पद्मनाभ उसकी बातें सुनने लगे। लक्ष्मी स्वयं अपनी मन्मथ-व्यथा का वर्णन करती है। वस्तुतः कामदेव पद्मनाभ का पुत्र है। पद्मनाभ को आश्चर्य है कि पुत्र होते हुए भी वह मुझे इतना कष्ट दे रहा है।

चतुर्थ अक के अन्त में धात्री आकर लक्ष्मी से कहती है कि आप स्वयंवर के लिए सज्जित हो जायें।

विवाह के उत्सव मे सभी देवता, देवियाँ और अप्सरायें आईं। लक्ष्मी का प्रसाधन अप्सराओं ने स्वय किया। वे सभी उसके प्रसाधन-मण्डित सौन्दर्य का बखान करती हैं।

स्वयवर-मण्डप मे पद्मनाभदास बालराम वर्मा आये। लक्ष्मी उनके पास कन्यादान करने के लिए आने वाली है। इन्द्र ने बालराम की प्रशसा की। ब्रह्मा ने कहा कि आपकी अनुपम योग्यता है कि आप लक्ष्मी के पिता बने और स्यानन्दपुरी (त्रिवेन्द्रपुरी) मे पद्मनाभ आपका जामाता बनने के लिए पद्मनाभ होकर अवतरित हुए। शिव ने भी ऐसी ही प्रशसा की। अगस्त्य ने लक्ष्मी का आभ्युदयिक कर्म किया। वे स्वयं स्वयवर मे आये। नारद पद्मनाभ को स्वयवर मे ले आये। गरुड पर बैठकर पद्मनाभ आ पहुँचे। उन्हे भद्रासन पर बिठा कर वंचिराज ने लक्ष्मी का पाणिग्रहण करा दिया। चारो ओर प्रसन्नता छा गई। सभी देवता उनकी प्रशसा करते हैं।

कथावस्तु पर कुमारसभव के शिव-पार्वती के विवाह-प्रकरण का भूरिशः प्रभाव प्रत्यक्ष है।

वर्णना

लक्ष्मी-कल्याण में सदाशिव ने महाकाव्योचित वर्णना का सम्प्रसार किया है। निस्सन्देह कवि अपनी असाधारण कल्पना-शक्ति को इन वर्णनों में विच्छुरित करने में सर्वथा सफल है। उदाहरण के लिए चन्द्रोदय-वर्णन के प्रसंग में चन्द्र को गोपरूप में उत्प्रेक्षित किया गया है। यथा,

स्वकीयं गोवृन्दं तिमिरतृणजग्धिप्रमुदितं।
नयन् रोदोगोष्ठं हिमकिरणगोपः प्रतिनिशम्॥
चकोरीवत्साभ्यां तदनुसृतया स्विन्नशशिम।
ण्युद्गूढो भूस्याल्यान्निरवविषयो दोग्धि नियतम्॥२.३१

चन्द्र के वर्णन में कहीं-कहीं कवि नैषधकार की कल्पनाओं का स्तर प्राप्त कर लेता है।

अध्याय ६२

कलानन्दक नाटक

कलानन्दक नाटक के प्रणेता रामचन्द्रशेखर के आश्रयदाता महाराज प्रतापसिंह (१७३९–१७६४ ई०) थे।[1] प्रतापसिंह तजौर पर शासन करते थे। प्रताप के पश्चात् तुलज द्वितीय (१७६४–१७८७ ई०) के शासन-काल मे कलानन्दक की रचना हुई। पौण्डरीक यज्ञ करने के कारण रामचन्द्र को पौण्डरीकयाजी उपाधि मिली थी। कवि के विषय मे प्रस्तावना मे बताया गया है कि वे रसमर्मज्ञ और उच्च-कोटि के वैयाकरण थे।

ऐन्दव नाटक के लेखक रामचन्द्र कवि की पौण्डरीकयाजी से एकता अनेक अनुसन्धाताओ ने प्रमाणित करने का प्रयास किया है, किन्तु अभी तक यह मत सुपुष्ट नही है।

कथावस्तु

कलानन्दक नाटक के सात अको मे नन्दक और कलावती के विवाह में परिणत होने वाले प्रणय की कथा है। मद्राचल पर तप करने वाले राजदम्पती का नन्दक खड्ग के अदेशानुसार उनके पुत्र-रूप मे नन्दक उत्पन्न हुआ। नन्दक अतिशय प्रतापशाली हुआ। उसने अपने पराक्रम से म्लेच्छो को परास्त किया।

उस समय दिल्लीश्वर महाराज इन्द्रसखा था। उसकी कन्या कलावती अतिशय रूपवती थी। वह इस नाटक की नायिका है। उसने सखी से नन्दक की गुणचर्चा सुनी और उसे स्वप्न मे देखा तो वैसे ही मोहित हुई, जैसे गुप्तचर से नन्दक उसकी चर्चा सुनकर। उनके भेजे हुए चित्रों के माध्यम से इन दोनो का प्रथम मिलन होने पर प्रणयासक्ति प्रगाढ हुई। गुप्तवेश मे नायिका के निर्देशानुसार नायक नायिका से साहचर्य प्राप्त कर लेता है। गौरीपूजा के मिस वह नन्दक से मिलने जाती है।

नायक का सहज सहायक त्रिकालवेदी नामक योगीश्वर था। उसकी तपस्या नन्दक वन मे किसी सिंह के द्वारा विघ्नित हो रही थी। नायक ने सिंह को मारकर उसकी सहायता की। कृतज्ञ योगी आद्यन्त उनकी सहायता करता है।

नायक और नायिका का मिलन उद्यान मे होता है। यह चर्चा नायिका के पिता इन्द्रसखा तक पहुँचती है। पर वह अपनी कन्या नन्दक को नही देना चाहता। अन्त मे उससे युद्ध करके नायक नायिका को प्राप्त कर लेता है। वे दोनो त्रिकाल-वेदी के आश्रय मे आतिथ्य ग्रहण करते हैं। वह उन्हे एक फल देता है, जिसके प्रभाव से भूलने-भटकने पर वियोगियो का परस्पर मिलन पुनः हो जाता है।

---

१. इस अप्रकाशित नाटक की प्रति तंजोर के

एक दिन रत्नकूट पर वासन्तिक सौरंभ देखते समय नायिका भटक कर किसी सिद्ध योगी के तपोवन में जा पहुँचती है। वहाँ से उसे लौट आने का मार्ग नहीं मिलता। इधर नायक उसे वन, पर्वत और नदियों के तट पर खोजता-फिरता है। अन्त में त्रिकालवेदी-प्रदत्त फल से नायक-नायिका का पुनर्मिलन सम्भव होता है।

समीक्षा

सूक्तियों के द्वारा संवादों की रोचकता बढ़ी-चढ़ी है। कतिपय सूक्तियाँ हैं—

(१) न शत्रुत्वं न मित्रत्वं जातिर्यस्याहितश्च यः।
यस्य यश्च हितस्तौ तौ शत्रुमित्रे परस्परम्॥

(२) शम्भुं पश्यति यः सदा स तु महान् जात्या पिशाचोऽपि सन्।

(३) भवितव्यतैव लोके तनुते जन्तोः शुभाशुभे नियतम्।

कलानन्दक नाटक संस्कृत की उन विरल कृतियों में से है, जिनमें शास्त्रीय विधानों का स्पष्ट अतिक्रमण मिलता है। नाटक होते हुए भी इसकी कथावस्तु सर्वथा कल्पित है। इसमें चित्र के माध्यम से प्रेमानुबन्ध का प्रदर्शन छायानाट्यानुसारी है। इसी प्रकार गुप्तवेश में नायक का नायिका से मिलना भी छायातत्त्व है। नायिका वास्तविक नायक को उसका चित्र समझती है। वह कामदेव की पूजा करती हुई नायक की ही पूजा करती है।

कलानन्दक नाटक पर कालिदास के विक्रमोर्वशीय का स्पष्ट प्रभाव प्रायः उत्तरार्ध में दिखाई देता है। नायक भटकी हुई नायिका का पता वृक्षों और पशु-पक्षियों से पूछता है।

रस-सौष्ठव

विप्रलम्भ-शृङ्गार का पूर्वराग वर्णित है—

कदा वा तत्ताद्दङ्नवतरुणिमाम्युन्नतिवशा-
दुदश्चद्वक्षोजस्तवकमतिमात्रोरुजघनम्॥
स्मरस्मेराननकमललोलालकभरं।
वपुस्तस्या मुग्धं पुनरपि पुरा स्थास्यति मम॥२.१२१

प्रथम और द्वितीय अंक में नायक और नायिका का लम्बा सौन्दर्य-वर्णन शृङ्गार को उद्दीपित करने के लिए है।

वीररस का परिपाक नन्दक और इन्द्रसखा के युद्ध प्रकरण में मिलता है। यथा,

सैन्याभरणसहनत्वादम्बराङ्गणमवाप्य चरन्ती।
मेदिनीव पृतना जनितानां भाति हन्त रजसां ततिरेषा॥४.३९

शान्तरस का प्रकरण है, रत्नकूट पर्वत पर त्रिकालवेदी के आश्रय में निर्विकल्पक समाधि लगाये हुए मुनियों के शरीर से हरिणों का उनको शिला समझ कर अपनी सींग का सघर्षण करना।

भयानक रस का प्रकरण सिंह की प्रवृत्तियों से हस्ति-शावकों के डरने में है। सिंह का वर्णन है—

नखाग्रपरिघट्टनत्रुटितगण्डशैलावलिः
कठोरतर-सीत्कृतिः श्रुति-वितीर्ण-कर्ण ज्वरः।
जटा-पटल-वीक्षण-क्षुभित-दूरधावत्करी ॥
दरीगृहमुखादभीनिकटमेति नः केसरी ॥३.३५

छन्दोवैचित्र्य

इस नाटक मे सब मिलाकर लगभग ४०० पद्य हैं। इनमे से सबसे अधिक शार्दूलविक्रीडित और अनुष्टुप् प्रत्येक ६८ पद्यों मे हैं। इसमे गीति ३६ और वसन्ततिलका ३३ पद्यों मे हैं। कवि ने अन्य छन्द मालिनी और पुष्पिताग्रा प्रत्येक २७ पद्यो मे, स्रग्धरा २२ मे, उपगीति १८ मे, पृथ्वी १६ में, शिखरिणी १३ मे, उपजाति १२ मे और प्रहर्षिणी ११ पद्यो मे प्रयुक्त हैं। बहुविध छन्दो के द्वारा अतिशय पद्यात्मकता इस नाटक की विशेषता है।

अलंकार

रामचन्द्रशेखर की शब्दनिधि का परिचय उनके शब्दालकारों के प्रयोग मे मिलता है। युगो के नामो पर श्लेष का निदर्शन नीचे लिखे पद्य मे है—

कृतत्रेतानमस्कारो निर्द्वापरमतिस्सदा।
निष्कलिः कल्पतामेष भूयसे श्रेयसे मुनिः ॥७.५५

कवि की उपमायें नई दिशायें इङ्गित करती हैं। यथा,

निर्विकल्प श्रुतवतः सविकल्पा श्रुतिर्यदि।
मत्तस्येव स्वतः पूर्वं मदिरा समुपस्थिता ॥१.४५

अपनी उत्प्रेक्षाओ के द्वारा कवि कही-कही सास्कृतिक निधियो का परिचित्रण करते चलता है। यथा,

वरेण सहितो भाति वध्वा च मुनिशेखरः।
वेदेन साकं स्मृत्या च वेदान्त इव मूर्तिमान् ॥५.१५

रीति

कलानन्दक की भाषा साधरणत. सरल होने के कारण नाट्योचित है। कही-कहीं रसोचित रीतियो को अपनाते हुए कठोर शब्दावली का प्रयोग किया गया है। यथा,

प्रचण्डभटमण्डलीकरपुटीकृपाणीलता
विपाटितमदावलाधिपतिमस्तकान्निस्तलात्
अनर्गलविनिर्गलद्रुधिरघोरणीशुष्मणा
स्तनोति दिवि गृध्रसन्ततिरियं हि घमभ्रमम् ॥४.४९

रामवर्मा का नाट्यसाहित्य

अश्वति तिरुनाल रामवर्मा की दो नाट्यकृतियाँ रुक्मिणी-परिणय और शृङ्गार-सुधाकर-भाण मिलती हैं।[1] उनके पिता रविवर्मा कोयिल ताम्पूरान किलिमानूर के निवासी थे। वे मलयालम में कथाकली कोटि की रचना कंसवधम् के लिये विख्यात हैं। रामवर्मा की प्रथम शिक्षा कार्तिक तिरुनाल महाराज के अधीन हुई। उनके दूसरे अध्यापक आचार्य शंकर नारायण तथा रघुनाथ तीर्थ थे। वे १७८३ ई० में अपने चाचा के साथ रामेश्वर गये थे। १७८५ ई० में उनकी नियुक्ति युवराज पद पर हुई। १७९५ ई० में वे ३८ वर्ष की अवस्था में दिवगत हुए।[2]

रामवर्मा की कृतियाँ संस्कृत में विरचित रूपकों के अतिरिक्त हैं—

(१) कार्तवीर्य-विजय-प्रबन्धचम्पू
(२) वञ्चिमहाराजस्तव
(३) सन्तान-गोपाल-प्रबन्ध
(४) दशावतार-दण्डक

मलयालम में रामवर्मा ने रुक्मिणी-स्वयंवर, पूतना-मोक्ष, अम्बरीष-चरित, पौण्ड्रक-वध, नरकासुर-वध आदि कथाकली कोटि की रचनायें कीं। मलयालम् में पद्मनाभ-कीर्तन उनकी रचना बताई जाती है।

उपर्युक्त कृतियों से प्रतीत होता है कि नाट्य, संगीत और कलात्मक प्रवृत्तियों में रामवर्मा अपने युग के अद्वितीय मनीषी थे। उनकी रचनाओं में रुक्मिणी-परिणय का स्थान सर्वोपरि है।

रुक्मिणी-परिणय

कथावस्तु

रुक्मिणी परिणय की कथावस्तु यथानाम वृन्दावनवासी कृष्ण का रुक्मिणी से विवाह है। उद्धव ने कृष्ण को एक पत्र भेजा कि मैंने रुक्मिणी से आपके विवाह का पथ प्रशस्त किया है, पर इधर उसे शिशुपाल को देने की तैयारी उसके भाई ने की है। दोनों को चकमा देने की योजना भी मैंने बना ली है। आप शीघ्र यहाँ विदर्भ देश में आ जायें। कृष्ण रथ से वहाँ पहुँच गये। वहीं वे कात्यायनी-मन्दिर में छिप कर रहने लगे। उद्धव ने छिपकर मदनातङ्कित रुक्मिणी को कृष्ण से वहाँ

---

१. रुक्मिणी परिणय का प्रकाशन काव्यमाला ४० में हो चुका है। शृङ्गारसुधाकर यूनि० मैनु० लाइब्रेरी, त्रिवेन्द्रम् से १९४५ में प्रकाशित हो चुका है।

२. इससे उनका जन्म १७५७ होना चाहिए, किन्तु कतिपय ग्रन्थों में उनका जन्म-काल १७५५ बताया जाता है, जो प्रत्यक्ष ही अशुद्ध है। कीथ और कोनो उनका जीवनकाल १७३५-१७८७ बताते हैं, जो अशुद्ध है।

मिलने का उपाय रच दिया। कृष्ण को स्वप्न में कोई परम रमणीय कन्या दर्शन दे गई। वे जब विदूषक से इसकी चर्चा कर रहे थे, तभी कात्यायनी-पूजा के लिए आई हुई रुक्मिणी की बातचीत सुनाई पड़ी कि मैं तो रुक्मी के प्रयासों से घबराकर एक बार कृष्ण का दर्शनमात्र करके मर जाना चाहती हूँ। वहाँ कात्यायनी की पूजा के निमित्त पुष्पावचय करती हुई रुक्मिणी और उसकी सखी नवमालिका की अपने विषय में बातें कृष्ण ने विदूषक के साथ सुनी। तभी किसी विमानचर ने रुक्मिणी का अपहरण कर लिया। सुदर्शन ने रुक्मिणी को बचा कर कृष्ण से मिला दिया। दोनों का प्रेमाचार स्निग्ध था। मध्याह्न के समय सभी यथास्थान चलते बने।

तृतीयाङ्क में रुक्मिणी मदनातङ्कित है। उसे कृष्ण का उपहार-स्वरूप मौक्तिक हार मिला। रुक्मिणी ने चित्रफलक पर कृष्ण का चित्र बनाया। नेपथ्य से सुनाई पड़ा कि रुक्मिणी से शिशुपाल का विवाह करने के लिए नगर का अलंकरण किया जाय। इसे सुनकर रुक्मिणी अधमरी सी होकर विलाप करने लगी। सन्ध्या हुई और वह सखी के साथ अपनी माँ के पास चली गई।

चतुर्थ अङ्क में रुक्मिणी-सहित रमणियों की स्वयंवर-यात्रा प्रवर्तित हुई। इधर योजना यह बनी थी कि कृष्ण कात्यायनी-मन्दिर में गौरी-विलास नामक प्रासाद के गर्भगृह में जा पहुँचें, जहाँ रुक्मिणी नेपथ्य-ग्रहण के बहाने आने वाली थी। चलते-चलते रुक्मिणी कात्यायनी-मन्दिर में घुस गई। वह देवी की पूजा करने लगी। फिर नेपथ्य-विधान के लिए रुक्मिणी गर्भगृह में पहुँची। वहाँ मणिस्तम्भ में उसे कृष्ण की छाया दिखाई पड़ी। फिर तो कृष्ण मिले। नवमालिका ने दोनों का पाणिग्रहण करा दिया। अनङ्गसेना नामक सुन्दरी को रुक्मिणी का अलङ्कारादि पहनाकर यात्रा में लौटा दिया गया। अनङ्गसेना का शिशुपाल से विवाह हो गया। इस प्रकार वंचित होने से शिशुपाल ने कृष्ण से बदला लेने की ठानी। उसे युद्ध में मुँह की खानी पड़ी।

पंचम अङ्क में कृष्ण उद्धवादि के साथ रथ पर रुक्मिणी को लेकर लौटे। मार्ग में गोदावरी मिली, जिसे देखकर उद्धव ने रामकथा का स्मरण किया। फिर नर्मदा मिली, जिसकी चारुता की चर्चा कृष्ण ने की—

तटविटपि - सहस्रस्यन्दमानै-र्मरन्दैर्द्विगुणितजलवेणीचारुवेणीकलापे ।
विपुल-पुलिन-पाली मंजुगुंजन्मराली बहलहृदयसौख्यं नर्मदा निर्मिमीते ॥५.४

उद्धव ने कहा—

रेवाम्भोगर्भशिला निधाय हृदि गाढभक्तिगुणबद्धाः ।
दुस्तरमपि विद्वांसस्तरन्ति संसारसागरं चित्रम् ॥५५

फिर वे उज्जयिनी पहुँचे, जहाँ महाकाल हैं—

जगत्त्रय - प्रतीतेऽस्मिन् महाकालनिकेतने ।
निर्मूलोप्यखिलाधारः स्थाणुर्विजयतेतराम् ॥

विदूषक ने कहा—एषा उज्जयिनी कामिजनानां कारागृहम् ।
आगे चलने पर उन्हें गङ्गा मिली । वहीं वाराणसी है—

> मुक्तिक्षेत्रमिति प्रशान्तमतिभिर्व्युत्पत्सुभिर्वालकैः
> विद्याभूरिति चाप्सरःपुरमिति व्याप्तां विटश्रेणिभिः ।[1]
> लीलाताण्डवसाक्षिणीं भगवतः खण्डेन्दुचूडामणे-
> रेणाक्षि द्रुतमादरेण शिरसा वन्दस्व वाराणसीम् ॥५.११

वहाँ के कालभैरव ने सबके हृदय में त्रास उत्पन्न कर दिया । फिर तो सभी वृन्दावन पहुँचे । वहाँ यमुना, कालियह्रद, गोवर्धन आदि की शोभा निराली है ।

नाट्यशिल्प

अर्थोपक्षेपक-रूप में विदर्भ की घटनाओं को आरम्भ में सूचित करने के लिए पत्र का उपयोग किया गया है ।

वासुभद्र की एकोक्ति प्रथम अंक के आरम्भ में उनके रुक्मिणी के प्रति मनोभावों को प्रकट करने के लिए प्रयुक्त है । यथा,

> याने हंसमयीव सारसमयीवात्ययते लोचने
> वर्णे स्वर्णमयीव कर्णमधुरे वीणा मयीव स्वरे ।
> मध्ये शून्यमयीव मुग्धहसिते जातीमयीव श्रुता
> कण्ठे कम्बुमयीव सा प्रियतमा चित्ते वरीवर्ति मे ॥१.६

नाट्यशिल्प की दृष्टि से यह उचित नहीं कि एक ही अंक में पाठक को द्वारका से विदर्भ तक का दृश्य दिखाया जाय । रंगमंच की परिधि इतनी विस्तारित नहीं की जानी चाहिए थी ।

रंगपीठ पर नायिकादि का आलिंगन नहीं होना चाहिए—ऐसा कोई नियम रामवर्मा को मान्य नहीं है । वे द्वितीयांक में रुक्मिणी और कृष्ण के विषय में कहते हैं—

'ततः प्रविशति सन्त्रासनरलया रुक्मिण्या सरभसमालिंग्य वासुभद्रः' इत्यादि ।

नाटक के विष्कम्भकादि में प्रतिनायक की भूमिका नहीं होनी चाहिए । इसमें चतुर्थ अंक के पहले विष्कम्भक में शिशुपाल की भूमिका है ।

नाट्यकथा चतुर्थ अङ्क में समाप्त हो जाती है । विवाह हो जाता है । पंचम अङ्क में कृष्ण का विदर्भ से वृन्दावन लौटने का वर्णन है । नाटकीय कथांश का यह उपबृंहण रोचक भले हो, कलात्मक नहीं है ।

शैली

कवि आनुप्रासिक संगीत का विशेष प्रेमी प्रतीत होता है । यथा,

---

१. इस विशेषण से तत्कालीन वाराणसी की नागरक संस्कृति का विटाभिमुखी होना सुप्रतीत है ।

मलयमहीधरमन्थरमारुतगन्धेभकन्धरारूढः ।
परभृतपटहाटोपप्रकटितविभवो मनोभवो जयति ॥१·२२

रामवर्मा की उत्प्रेक्षा आस्वादनीय है—
प्रालेयवारिघनसारकरम्बितेन सान्द्रेण लिप्त इव चन्दनकर्दमेन।
आपाद-चूडमभिषिक्त इवामृतौघैः सोऽहं सुखेन विवशत्वमुपैमि गाढम् ॥२·१५

रामवर्मा के रूपक अपने विशेषणों के द्वारा चित्र सा उपस्थित करके भावुकता की चरम सीमा अङ्कित कर देते हैं। रुक्मिणी के लिए कहा गया है—

इयं मम मनः शिखण्डिताण्डवयित्री वर्षालक्ष्मीः (प्रकाशम्), सखे पश्य-
पृथुतरकुचशैलोपत्यकोत्पन्नवल्ली—
विटपयुगललक्ष्मीं बिभ्रती बाहुनाले।
सह मम हृदयेन स्वैरमालोकयन्ती
ज्वलयति मदनाग्निं सेयमिन्दीवराक्षी ॥ २·१०

कतिपय अभिनव उद्भावनाओं की प्ररोचना मनोहर है। यथा कृष्ण का कहना है—

अग्रे तन्वी नुदति सुदति स्थूलवक्षोजभारः।
पश्चादेनां तव तनुलतां कर्षति श्रोणिभारः॥
इत्थं माभूदिह कलह इत्येकसम्भृतयोर्वा।
मध्यस्थेयं वदति रशना शिंजितस्यच्छलेन॥

लोकोक्तियों का यथास्थान प्रयोग हुआ है। शिशुपाल रुक्मिणी से विवाह करने को उद्यत हैं। कंचुकी इसे लक्ष्य करके कहता है—

पिबतु दुग्धमिति जीर्णमार्जारस्तत्रम्।

शृङ्गारसुधाकर भाण

शृङ्गार-सुधाकर भाण का प्रथम अभिनय पद्मनाभ के चैत्रोत्सव के अवसर पर समागत विद्वानों के मनोरंजन के लिए हुआ था। सूत्रधार के कथनानुसार इसकी रचना लेखक ने मित्रों के आग्रह पर की थी। भाण का कथानायक माधव नामक विट है। कवि प्रकृति में भी वाराङ्गना-व्यापार देखता है। यथा,

त्रियामा सङ्कोचान्मृदुलदलनम्रां कमलिनी।
हसन्तीमद्योद्यद्द्युमणिकृतपादाहतिनताम्॥
समुद्वीक्ष्याभीक्ष्णं परिहसति सामोदभरिता।

माधव की प्रथम भेंट शृङ्गारशेखर से होती है, जो रतिरत्नमालिका नामक वाराङ्गना के चक्कर में है। रत्नमालिका एक दिन काञ्चन वेदिका पर बैठी थी, जिसकी मणिशिला पर शृङ्गारशेखर का प्रतिबिम्ब देखकर और फिर शृङ्गारशेखर को ही देखकर रोमाञ्चित हो गई। शृङ्गारशेखर ने माधव को बताया कि उस रूपसी के रूपामृत-पान का यह परिणाम मैं भोग रहा हूँ।

माधव ने कहा कि तुमको नाट्यशिक्षा गृह में उससे मिला दूँगा। आगे माधव को सेठ पटीरदास का पुरोहित विद्याधर्मा मिला। उसका परिचय है—

जात्यन्धस्तनुतः प्रकामपृथुलः कन्थां दधद् धूसरां।
पाणौ पाण्डिमपूर्वहे चारिवहन् दण्डं विलालेक्षणः॥
तत्पाटो ननतात्रिकः पञ्चकलं किंचित् प्रजल्पन् स्वयं।
कालः कोऽप्यनालिम्बपोदरधरो नन्दानुसं धावति॥

उसने मन्दारवल्लरी नामक वेश्या से एक बार मनायन यह कहकर किया था कि पौरोहित्य से मुझे १०,००० मुद्रायें पटीरदास पाँच-छः दिनों में देगा। उसे मैं तुम्हें दूँगा। उसने मुद्रायें नहीं दीं तो एक दिन मन्दारवल्लरी की माता पलाण्डुवादिनी हाथ में झाड़ू लेकर उसे मारने को उद्यत मिली। भागते हुए वह माधव मट्ठ की चपेट में आया था। यह सब जानकर माधव ने अपनी शोकवृद्धि प्रकट की कि पैसे के लिए मन्दारवल्लरी ऐसे निर्घृण को अपना शरीर दे रही है। उसने वेश्याओं की दुर्वृत्ति का वर्णन किया—

एडं मनोभवकलासु जडं विरूपं वृद्धं विनष्टनयनं व्रणपूर्णदेहम्।
संस्थानहीन-धनसंचयिनं पुमांसं वेश्याङ्गना द्रविणलोलतया भजन्ते॥

मन्दारवल्लरी के द्वार पर शुक वेश्या-गवेषकों को उसका स्थान बताता था। वह किसी नायक के साथ क्रीडासक्त थी। माधव ने छेद से झाँककर उसकी रति-क्रीडा की परिणति का आँखों देखा चित्रण किया। उसके खटखटाने पर द्वार खुला। माधव ने उससे कहलवा ही लिया कि मैं कामक्रीडा से अभी ही निवृत्त हुई हूँ। उसका प्रणयी अपने को चारपाई के नीचे छिपाये हुए था। माधव ने कहा कि कभी तुम मेरी प्रणयिनी थी। ऐसे बेशर्म शर्मोजों से बचो।

माधव ने चम्पकलता नामक गणिका का घर आगे देखा। उसके प्रासाद-शिखर पर व्यभिचारियों के भित्ति-चित्र थे—अहल्या और इन्द्र, बृहस्पति और स्वाहा। चम्पकलता के उलाहने सुनकर माधव को बात बनानी पड़ती है कि तुम्हारी विलास-शृङ्खला से बँधा हुआ पूर्ववत् मेरा मन किसी दूसरे स्थान पर नहीं भ्रमण करता। चम्पकलता ने पूछा कि फिर आते क्यों नहीं? माधव ने कहा कि तुम्हारे पति मणि-चूड ने आने वालों के पीछे कलहोन्मुखी नामक कुतिया जो लगा रखी है। यथा,

प्रथितापि सुखप्रदायिनी स्वगुणैर्दिक्षु विदिक्षु सन्ततम्।
भुजगी परिवेष्टितान्तरा सुलभा किन्तु पटीरवल्लरी॥

दुपहरी वह निष्कुट-वन में बिताता है। निष्कुट-वन का विस्तृत वर्णन है। वहीं पश्चिम में कोई मंजुल निकुंज था—

निचुलितनिदाघकिरणं शाखाश्रेण्या रयोपमश्रोण्याः।
अभिनवनिधुवन-साक्षी प्रदृश्यते मंजु कुंजमिदम्॥

उपवन के दक्षिण में वेश्याओं की श्रेणी दिखाई पड़ी। झुरमुट की आड से वह वैजयन्ती, वल्लकी सल्लापा, चन्द्रलेखा, कर्पूर-शलाकिका, केतकीशिखा, कस्तूरिकामोदा, लीलावती आदि वेश्याओं का कामुक दृष्टि से वर्णन करता है और बताता है कि वे सभी जलक्रीडा के लिए कमल-सरोवर की ओर जा रही थी। सरोवर मे कमल काँप रहा था। कवि की उत्प्रेक्षा है—

अहमहमिकया वगाढमस्मिन् पयसि पतत्यनिलेन लोलितामाः।
वदनसमुदयात् भयादमुष्याः स्वविजयिनः किमु वेपते सरोजम् ॥

जलतरंगो ने वेश्याओं के साथ मनोरम क्रीडा की। यथा,

आलिगन्ति सलीलमंगलतिकां चुम्बन्ति गण्डस्थली।
नीवी विश्लथयन्ति कुन्तलमिह व्यामिश्रयन्ति स्फुटम् ॥
सीत्कारं रचयन्ति पल्लवकवन् मृद्नन्ति वक्षोरुहा—
वुल्लोला ललनाजनस्य सलिले व्यातन्वतः खेलनम् ॥

स्वयं सरोवर भी कवि को कामी प्रतीत होता है। इस काम-क्रीडात्मक व्यापार में रीछ ने आकर बाधा डाली और वेश्यायें जलक्रीडा छोडकर भाग चली। उसके भय से माधव भी भागा और वेदपाठी, ब्रह्मचारियो के बीच पहुँचा। वह उन्हे सीख देता है कि अपने को बचाओ। कामदेव का आक्रमण हो रहा है। यथा,

त्रयाणां लोकानां प्रभुरपि यमिन्दीवरशरं
त्वनाराध्य स्थातुं प्रभवति न गौरी-सहचरः ॥
विधुर्वा वेधा वा क्षणमपि तथा तौ भगवते
प्रपञ्चे कस्तस्मै सुरभिसुहृदे द्रुह्यति जनः ॥

वह उन्हे उपदेश देता है—

स्वाध्यायमन्त्रजपवेद-विमर्शदेव-पूजादिसर्वमतिदुःखविधायि मुक्त्वा।
सद्यः सुख विदधनीरधुनानुघस्रं त्रस्तैककहायनचमूरुदृशः श्रयध्वम् ॥

ब्रह्मचारी उसकी बेतुकी बातें सुनकर भाग खड़े हुए। आगे माधव को सुमनोवती की अपार सौन्दर्य-राशि देखने को मिली। वह कामदेवायतन जा रही थी। वहाँ उसे नाट्यकला का प्रदर्शन करना था। माधव ने कहा कि अर्धरात्र के समय मैं तुमसे मिलूँगा। आगे चलने पर वह शिरीष सीमन्तिनी के प्रासाद मे देखता है कि जुआ चल रहा है। जीत हुई सीमन्तिनी की और हारे हुए प्रणयी को उसका आलिंगन मिला। उनके आगे के कार्यक्रम मे विना बाधा डाले वह नाट्यशिक्षागृह मे जा पहुँचता है। नाट्यशिक्षा गृह का वर्णन है—

मंजिष्ठोत्कृष्टपट्टस्फुटघटितवितानोच्चयोच्चावचश्री-
र्नेदिष्ठा लक्ष्यतेऽसौ चटुलमृगदृशां नाट्यशिक्षा खलूरी ॥

वहाँ उसने वकुलमंजरी का नृत्य देखा। तब तक सन्ध्या का समय आया। विट के मुख से कवि ने सन्ध्या का सांगोपांग शृङ्गारित वर्णन प्रस्तुत किया है। अन्त में वह शृङ्गारशेखर का काम करने के लिए रतिरत्नमालिका के भवन में प्रवेश करता है। वह उसे देखकर उसका वर्णन करता है—

निकामं क्षामाङ्गी मृदुलनलिनी पत्रशयने।
शयाना दोर्वल्लीकलितविसनीकाण्डवलया॥
उशीरव्यासक्त-स्तनतट - मिलद्बाष्पसलिला।
श्वसन्ती सोत्कम्पं चटुलनयना प्राणिति परम्॥

उसने पूछने पर माधव से बताया कि जब से शृङ्गारशेखर को देखा, तब से यही स्थिति है। माधव शृङ्गारशेखर को लाकर उससे मिला देता है। अन्त में कहता है—

चन्द्रो यथा चन्द्रिकया यथा चन्द्रेण चन्द्रिका।
तथा युवां हि भूयास्तं सम्पृक्तौ सन्ततं मिथः॥६६

भाणों की परम्परा में शृङ्गारसुधाकर का उच्च स्थान है।

अध्याय ६४

कृष्णदत्त का नाट्यसाहित्य

कृष्णदत्त मैथिल ब्राह्मण बिहार में दरभगा के निकट उझान (उद्यान) ग्राम के निवासी थे। इनके पिता का नाम भवेश और माता का नाम भगवती था। इनके तीन भाई पुरन्दर, कुलपति और श्रीमालिक थे। कवि परम्परया शैव या शाक्त सम्प्रदाय के थे। शक्ति की महिमा व्यक्त करने के लिए उन्होंने चण्डिका-चरित-चन्द्रिका नामक महाकाव्य ११ सर्गों में रचा। इन्होंने अपनी शाक्त प्रवृत्तियों का परिचय गीतगोविन्द की गंगा नामक व्याख्या मे भी दी है। गीतगोविन्द की इसमें ऐसी व्याख्या है कि वह राधा और कृष्ण पर तो ठीक उतरती ही है, साथ ही उसके प्रत्येक गीत शिव और पार्वती के प्रसङ्ग मे कहे हुए प्रतीत होते हैं। इनके अतिरिक्त कृष्णदत्त ने गीतगोपीपति काव्य की रचना की थी।

कृष्णदत्त का रचना-काल प्रायः निश्चित सा है। इनके पुरंजन-चरित की एक प्रति पर शक १६९९ सवत्सर लिखा है, जो १७७७ ई० है।[1] इस तिथि के विषय मे यह निश्चित है कि इसमे नाटक की प्रतिलिपि का समय इंगित है। प्र स्तावना के अनुसार कृष्णदत्त के आश्रयदाता देवाजीपन्त को इसकी रचना के समय सर्वोच्च समुच्छ्रय प्राप्त था। देवाजी की ऐसी प्रतिष्ठा १७५५ ई० के पहले नही थी। पुरजन-चरित के सम्पादक सदाशिव लक्ष्मीघर कात्रे के मतानुसार इसकी रचना लेखक ने १७७५ ई० में की होगी, जब वे नागपुर में रहते होंगे।[2] कवि के कुल मे संस्कृत-विद्या का पाण्डित्य परम्परागत है। इस समय उनके वशज ऋद्धिनाथ झा दरभगा के निकट लोहना मे सस्कृत-विद्यापीठ मे प्राचार्य हैं।

सदाशिव कात्रे का अनुमान है कि लेखक ने इसका प्रथम अभिनय अपने निर्देशन में नागपुर मे आयोजित किया था।[3] इसके पीछे हाथ था दिवाकर पुरुषोत्तम चोर-घोड़े का। इन्हें देवाजीपन्त भी कहते हैं। इनके समय में मराठो मे साढ़े तीन महान् राजनीतिज्ञो की गणना थी, जिनमें पूना के नानाफडनवीस आधे कहे जाते हैं, पेशवा दरबार के सखाराम बापू, नागपुर दरबार के देवाजी पन्त और निजाम दरबार के

---

१. पुरजन-चरित-नाटक का प्रकाशन विदर्भ-संशोधन-मण्डल-ग्रन्थमाला-क्रमाङ्क १६ में १९६१ ई० में नागपुर से हो चुका है।

२. यह रचनाकाल सुप्रमाणित नही हैं। निश्चयपूर्वक यही कहा जा सकता है कि १७७५ ई० तक यह नव्य नाटक सुप्रसिद्ध हो चुका था।

3 Probably the auther himself directed and, with the help of his companions from Mithila and some local students and artists arranged the first staging of the drama at the festival. Introduction p. 30. कात्रे का यह मत कल्पनामात्र है।

विट्ठल-सुन्दर पूरे एक-एक मिलाकर तीन हैं। काम्रे के अनुसार—his political wisdom at times challenging or baffling the unique brains even of Peshwa Mahdhavarao I, Nana Phadnis, Clive, Warren Hastings and several other British Statesmen and diplomats of the East India Company.

राजनीति के कुचक्र में देवाजी पन्त जैसे योग्य मनीषी को कुछ दिनों तक जेल में बन्द रहना पड़ा था। उनकी सारी सम्पत्ति राजा ने हड़प ली थी। उनका यह दुर्विलसित १७६९ से १७७२ ई० तक था।

देवाजी पन्त निस्सन्तान मरे। उनका एक अमान्य पुत्र कोका बापू उनकी वारस्त्री से था। देवाजी का एकमात्र स्मारक आज यही नाटक है।

जिस समय मिथिला में कृष्णदत्त सारे भारत के लिए संस्कृत और प्राकृत भाषाओं के सम्मिश्रण से पुरंजन-चरित और कुवलयाश्वीय-नाटक लिख रहे थे, उसके पहले और पीछे संस्कृत-नाटकों में प्राकृत के स्थान पर मैथिली का समावेश मिथिला के कवियों ने विशेषतः मिथिला के दर्शकों के लिए सफलता-पूर्वक किया था।[1]

पुरञ्जन-चरित

पुरंजन-चरित का प्रथम अभिनय नागपुर के भोंसला राजाओं के प्रधान मन्त्री देवाजी पन्त के प्रासाद से लगे वेङ्कटेश-मन्दिर के द्वार पर हुआ था। उसे देखने के लिए देवाजीपन्त के अतिरिक्त नगर के महान् विद्वान्, राजकर्मचारी और व्यापारी उपस्थित थे। अभिनय आरम्भ होने के पहले वहाँ कीर्तनकार हरिदास का भजन हुआ, जिसका परिचय सूत्रधार के शब्दों में है—

विशद - पदकदम्बडम्बरसंवलित-संस्कृत-प्राकृतमय - निरवद्यहृद्यगद्यपद्य प्रबन्धसमुदायेन वेदान्तसिद्धान्तसारसम्बन्धप्रायेण भार्गववासरीयं हरिदास-वितन्यमानं लक्ष्मीनिवास-कीर्तनामृतम्' इत्यादि।

उच्चकोटिक दर्शकों के सुखपूर्वक बैठने के लिए गद्दे और मसनद लगे हुए थे। वेङ्कट-केशवदेव के उपचार-रूप में कई दिनों तक मनोरंजन-पूर्ण उत्सव के कार्यक्रम चलते थे। वेङ्कट देवाजी के कुल देवता थे। यह कार्यक्रम नवरात्र भर चलता था और विजयादशमी को समाप्त होता था।

इस नाटक की प्रस्तावना का लेखक सूत्रधार है, जैसा उसके नीचे लिखे वक्तव्य से स्पष्ट है—

"यत्किल कृष्णदत्तकविना मैथिलेन पुरंजन-चरितं नाम नाटकमस्मानु-समर्पितं तदभिनेयाराधनमस्य संभविष्यति।"

१. कृष्णदत्त के प्रायः समकालीन रमापति उपाध्याय ने रुक्मिणी-परिणय नामक कीर्तनिया नाटक में मैथिली का आद्यन्त रोचक समावेश किया है।

कथावस्तु

राजा पुरंजन नामक अपने सचिव के साथ भ्रमण करते हुए एक नगर ऐसा चुनना चाहता था, जिसमें वह बस सके। उसे एक ऐसा नगर मिला, जिसमें नवद्वार थे और उसका गोप्ता रक्षक प्रजागर नागराज था। पुरंजन यहाँ बस कर अपने मित्र अविज्ञात-लक्षण नामक महायोगी को ढूँढने लगा। वह उसकी शरण में आत्मसमर्पण करना चाहता था।

उस नगर मे एक पुरजनी नामक सुन्दरी रहती थी। वही नगर-स्वामिनी थी। दोनो मे प्रथम दृष्टि से ही प्रणयारम्भ हुआ, जो उनके निकट संगम में परिणत हुआ। पुरंजन मृगया के चक्कर में पुरजनी को नगर मे छोड़कर पंचप्रस्थवन मे घूमा करता था। उसके वियोग मे सन्तप्त पुरजनी को नायक ने इस शर्त पर मनाया कि अब उसे अकेली नही रहना पड़ेगा।

जहाँ पुरंजन वही पुरंजनी। वे घूमते-घामते ऐन्द्रियक विलासों में सरोवार होकर जलक्रीडा मे निमग्न थे। इस प्रकार पुरजनी के साथ परासक्ति देखकर और नायक की मृगया और विनोद-परायणता से उसे दुर्बल हुआ समझ कर चण्डवेग नामक शत्रु ने उस पर आक्रमण कर दिया। शत्रु के साथ जरा और भय भी थे। प्रजागर नगर को कहाँ तक बचाता? उसके घोर प्रयास करने पर भी नगर पर चण्डवेग का अधिकार हो गया। पुरजनी ने भी पुरंजन को छोड दिया और अन्त में निराश होकर नगर छोडकर वह भाग चला।

रणछोड पुरजन वैदर्भी नामक स्त्री-रूप मे परिणत हो गया। उसने विदर्भ के राजकुमार मलयध्वज से विवाह कर लिया। इसी अवसर पर अविज्ञात-लक्षण पुनः उसके सम्पर्क मे अनायास आया। मित्र पुरंजन की इस दुर्दशा से उसे बचाने के लिए उसने नवलक्षणा नामक कामधेनु की सहायता ली।

वैदर्भी का मलयध्वज से संयोगवश वियोग हुआ तो वह उसके वियोग मे आत्मदाह करने के लिए उद्यत हुई, क्योकि वह अपने प्रियतम को ढूँढ निकालने मे असमर्थ सी हो चुकी थी। उसे बचाया कामधेनु नवलक्षणा ने। उसने कहा कि इस नदी के उस पार तैर चलो और उस पार तुम्हें प्रियतम मिलेंगे। वैदर्भी नवलक्षणा की पूँछ पकड़ कर उस पार पहुँची।

अन्तिम अंक मे वैदर्भी के पूछने पर कामधेनु नवलक्षणा ने बताया कि मुझे आपको पार लगाने की शक्ति अविज्ञात-लक्षण नामक महायोगी से प्राप्त हुई है। वैदर्भी ने उनकी सहायता से मलयध्वज से मिलने का कार्यक्रम ठाना। तब तो नवलक्षणा उसे शेषाचल पर्वत पर ले गई, जहाँ महायोगी विष्णु के मूर्तरूप वेङ्कटेश बन कर रहते थे। वैदर्भी ने विष्णु के दशावतार-परक दस पद्यो में उनकी स्तुति की। विष्णु प्रकट हुए। उन्होने वैदर्भी को बताया कि तुम पुरंजन हो और अब पुनः मेरे सहचर बनकर तादात्म्य प्राप्त करो। उन्होने उपदेश दिया कि माया और

इसके त्रिगुण के चक्कर में पड़कर तुमने अपनी यह दुर्गति कर ली है। न तो तुम पुरंजनी के पति हो और न मलयध्वज की पत्नी हो। सदा पुरंजनी नामक स्त्री का ध्यान करने से तुम वैदर्भी नामक स्त्री में परिणत हो गये। अब सदा मेरा ध्यान करके मुझसे तादात्म्य प्राप्त करो। उसे योगावेश से विष्णु के वचन की सत्यता प्रतीत हो जाती है और अद्वैत का सम्यक् दर्शन होता है।

समीक्षा

पुरंजन-चरित का प्रधान उपजीव्य भागवत पुराण है। कवि ने इसमें थोड़ा बहुत परिवर्तन आवश्यकतानुसार किया है। इसमें सितपक्ष, विजक्षण, अमितलक्षणा नवलक्षणा और उसके दो पुत्र सुरोचन और विरोचन नयी प्रकृति हैं। इनके नाम कवि-कल्पित हैं। भागवत के अनुसार पुरंजन को वे ही जंगली पशु पुनर्जन्म में कुल्हाड़ी से काटकर खा जाते हैं, जिनको उसने यज्ञ में बलि दी थी। वे ही नरक में असंख्य वर्ष तक रहकर पुनर्जन्म में वैदर्भी हुए।

भागवत में मलयध्वज के मरने पर विधवा वैदर्भी उनके शव की गोद में विलाप करती है। तभी अविज्ञात-लक्षण आकर उसे ज्ञान देते हैं। नाटक में मलयध्वज से नायिका का वियोग थोड़ी देर के लिए होता है।

भागवत में केवल अविज्ञात-लक्षण वैदर्भी को आध्यात्मिक ज्ञान कराने का प्रयास करते हैं, किन्तु नाटक में उत्पाद्य कथा जोड़ी गई है कि अविज्ञात लक्षण ने नव-लक्षणा आदि का प्रयोग किया और नवलक्षणा ने वैदर्भी को नदी पार कराकर वृषाचल पर्वत पर पहुँचाया और नायक ने वहाँ वेंकटेश केशव की स्तुति की।' वास्तव में नाट्य-कला की दृष्टि से नाटक में इस उत्पाद्य कथांश को जोड़ना आवश्यक नहीं है। इसके बिना ही मूल पौराणिक कथा का प्रयोगात्मक रूप पर्याप्त रमणीय बन गया होता।

पुरंजनचरित प्रतीक नाटक है। इसका विषय अध्यात्म-परक है। नटी तथा सूत्रधार ने भूमिका में संकेत दिया है कि ऐसे नाटकों के प्रेक्षक विशेष प्रकार के लोग होते थे, जैसा नटी कहती है—

नटी —विविधविमलविद्याविलासविश्वविदितपवित्रकीर्तीनां।
ब्रह्ममूर्तीनामेतेषामिह कथं श्रवणसमुत्सुकं हृदयं भविष्यति॥

सूत्रधारः—हरिभक्तकथैवात्र शुश्रूषामुत्पादयिष्यति। उक्तं च तेन कविना—

हरिपदभजनाप्तशुद्धिमेतां लघुमपि मद्गिरमाद्रियेत सभ्यः।

पुरंजन-चरित का प्रतीक तत्त्व गौण है। इसकी भूमिका में पुरंजन आदि प्रत्यक्षतः मानव प्रतीत होते हैं और उन्हें गौणतः पहचनवाना पड़ता है कि वे आत्मा आदि हैं। इस प्रकार भूमिका की भावात्मकता या प्रतीकता या अमानवता नाटक के रसास्वाद में क्षीणता का कारण नहीं बनती है।

शैली

सदाशिव लक्ष्मीधर कात्रे के अनुसार कृष्णदत्त ने पर्याप्त स्थलों पर कालिदास, शूद्रक, भवभूति, भर्तृहरि, हर्ष, जयदेव, शंकराचार्य आदि का अनुहरण किया है।[1] इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि साङ्गीतिक माधुर्य के साथ वैदर्भी का सारल्य कृष्णदत्त की उच्चकोटिक विशेषता है। यथा,

युवा कुलीनः स्पृहणीयरूपो राजाहमस्मीति ममाभिमानः।
न मे पुरी क्वापि नवालकान्ता न बालकान्ता न च भृत्यवर्गः ॥१.१०

कहीं-कहीं स्वरों का साम्य विशेष रोचक है। यथा—

रामाः प्रविश्य हृदयं नयनाभिरामा वामाशयानपि हरन्ति नरान् सकामाः।
किं चिन्तनीयमिह किं तु वरेऽत्र काकतालीय एव यदि तादृश कामभावः॥१.१७

इस पद्य में प्रथम दो पंक्तियों में 'आ' का अनुप्रास विशेष सांगीतिक है।

सूक्ति-सौरभ

कृष्णदत्त का सूक्ति-सौरभ नाटक को प्रायशः सुवासित करता है। यथा,

१. सौख्यं कृतघ्ने कुतः।
२. योग्यस्योपरि सर्वो भरः।
३. पुण्यैर्यशो लभ्यते।
४. एकः कोऽपि गुणो विलक्षणतरः स्यात् सर्वदोषापहः।
५. प्राणेभ्योऽपि प्रतिष्ठा गरिष्ठा।
६. शतमप्यन्धानां न पश्यति।
७. कोपसञ्चयाधीना हि प्रभुशक्तिः।

चौबे गये छब्बे बनने आदि हिन्दी कहावत का संस्कृत-रूप उन्होंने दिया है।

षड्वेदी भवितुं गतस्य हि परं देशं चतुर्वेदिन—
स्तत्रत्यैर्विहितद्विवेदिपदवीमापादितस्योपमाम्

कुवलयाश्वीय नाटक

सात अंकों के कुवलयाश्वीय नाटक की रचना कृष्णदत्त ने अपनी बालावस्था में १७५० ई० के लगभग की थी। इसका प्रथम अभिनव चन्द्रोदय के समय रात्रि में उद्यान ग्राम में महिषमर्दिनी देवी के चैत्रावली-पूजन महोत्सव के अवसर पर समागत शिष्ट भक्तों के प्रीत्यर्थ किया गया था। इसकी प्रस्तावना में बताया गया है कि इस प्रकरण में नाटक के कवि का गुणागुणतारतम्य-विवेचन होना ही चाहिए।[2]

---

1. Introduction P. 20
२. कवयितुरभिधानमनधिगम्य गुणागुणतारतम्य-विवेचनाय न पारयामः।

कृष्णदत्त ने कुवलयाश्वीय नाटक मे राजकुमार कुवलयाश्व की मदालसा से विवाह की कथा ग्रहण की है।[1] कुवलायाश्व का वास्तविक नाम ऋतध्वज था। वह वाराणसी के महाराज शत्रुजित् का पुत्र था। महर्षि गालव ने अपने यज्ञ की दानवों से रक्षा करने के लिए सूर्य के द्वारा प्रदत्त अश्व को लेकर उनसे ऋतध्वज को माँगा। राजा ने ऋतध्वज को उन्हें दे दिया। मुनि ने कुवलय नामक वह अश्व ऋतध्वज को दिया, जो मध्याह्न के समय मुनि के सूर्योपस्थान करते समय सूर्य-मण्डल से उतरा था। कुवलय नामक अश्व पर आरोहण करने के कारण ऋतध्वज को कुवलयाश्व कहते थे।

पातालकेतु ने अपने योद्धाओं-कंकालक और करालक को भेजा कि गालव मुनि के आश्रम से कुवलयाश्व का अपहरण कर लाओ। नायक के पराक्रम को प्रत्यक्ष देख कर करालक भग गया और कंकालक साधु वेष में वहीं रहकर अपनी योजना कार्यान्वित करने लगा।[2] एक दिन गालव ने नायक को आश्रम की शोभा देखने के लिए भेजना चाहा। आश्रम दिखाने के लिए उस समय कंकालक मुनि शिष्य शालंकायन का रूप धारण करके मुनि के आदेशानुसार नायक के साथ चला। वह नायक को वन दिखाते हुए बहुत दूर ले गया। इस बीच पातालकेतु नामक दानव ने मुनि के आश्रम पर धावा बोल दिया। मुनियों ने कुवलयाश्व को पुकारा और उसके आते ही पातालकेतु भाग चला। नायक उसका पीछा करते हुए पाताल में प्रवेश करता है। वहाँ उसे पातालकेतु द्वारा अपहृत नायिका गन्धर्व विश्वावसु की कन्या मदालसा का दर्शन होता है। उसकी सखी आर्या कुण्डला मदालसा को उसके प्रति आसक्त बताती है : नायक भी उसे पत्नी-रूप मे अपनाना चाहता है। विवाह के पहले माता-पिता की अनुमति के लिये दोनों रुक जाते हैं। तुम्बरु ने विश्वावसु और गालव की अनुमति प्राप्त करके उन दोनों का विवाह गान्धर्व विधि से करा दिया।

नायक मदालसा के साथ विश्वावसु की सहायता से पाताल से बाहर आ जाता है। गालव मुनि ने नायक के पिता को सारा युद्ध और विवाह-वृत्तान्त विस्तारपूर्वक अपने शिष्य पुण्यशील से कहलवा दिया। महाराज ने उसके पराक्रम की परीक्षा करके उसे युवराज-पद पर नियुक्त किया।

काशी मे एक दिन सपत्नीक नायक विश्वनाथ-मन्दिर का दर्शन करके घर लौटा और चित्रशाला देखकर विश्राम कर रहा था, जब राजाज्ञा हुई कि प्रतिदिन पूर्वाह्ण में मुनि के आश्रम की रक्षा करो। दूसरे दिन राजकुमार नायक को दानव कंकालक (नकली मुनि) का आश्रम मिला। उसने नायक से कहा कि

१. इस नाटक की पंचम अंक तक हस्तलिखित खंडित प्रति कामेश्वरसिंह-संस्कृत-विश्वविद्यालय, दरभंगा में है।

२. साधुवेष-धारण छायातत्त्व है। आगे कंकालक का शालंकायन बनना छायातत्त्व है।

मुझे अपने अनुष्ठान के लिए धन चाहिए। नायक ने उसे अपना मौक्तिक हार दिया। ककालक नायक को आश्रम की रक्षा के लिए नियोजित कर स्वय नायक के पिता काशीराज शत्रुजित् के पास पहुँचा। इधर राजा उसके लिए अपराह्न मे विशेष चिन्तित था।

कुवलयाश्वीय नाटक की मूलकथा विस्तार-सहित मार्कण्डेय-पुराण मे मिलती है।[1] कृष्ण ने इस कथा मे पर्याप्त परिवर्तन किया है और नये-नये कथा पुरुषो को नये-नये सविधानो मे नियोजित किया है।

कुवलयाश्वीय पर कतिपय महाकवियो का प्रभाव स्पष्ट है। यथा पचम अङ्क मे

कुसुमादपि सुकुमारं कुलिशादपि निर्भरद्रढिमा।
न विवेक्तुमर्हति जनः प्रकृतिगभीरं मनो महताम् ॥

इस पर भवभूति की छाया है।

कवि ने अपनी कृषिप्रियता का परिचय इस प्रकार दिया है—

सुक्षेत्रोप्त-सुबीज इव कैदारिकः सुविनीततनयोपहितविनयो जनक. कोपपूरणं करोतीति। पचम अङ्क से।

प्रथम अंक मे उत्प्रेक्षा का उदाहरण है—

हरिहयहरिदङ्के क्रीडमानस्य शङ्के शिशुगिशिरहरीशः कुक्कुटा हासनाय।
विधुरमधुरचञ्चत्कन्धराबन्धमेते विदधति कुहूकू काकुमाहूतवाचः ॥

छायातत्त्व

कंकालक का मुनिशिष्य शालङ्कायन का रूप धारण करना छायातत्त्वानुसारी है। पचम अक मे वह मायावी पुनः ऋषि का वेश धारण करके तपस्वी बन जाता है। यह छद्मात्मक सविधान छायातत्त्व है।

सूक्तियाँ

(१) स्वस्थे चित्ते बुद्धयः संचरन्ति।
(२) आकृतिविशेष एव पुरुषविशेषं गमयति पुरुषस्य।
(३) दुर्बलानां राजैव बलमित्यामनन्ति महान्तः।
(४) अनात्मवेदिता हि परमापदाम्।
(५) कृतप्रतिकारिता हि महतां शैली।
(६) घुरन्धरेऽपि पुत्रे पिता गर्भरूप इवोपदिशति।

लोकोक्तियाँ

(१) धीवरा एव कच्छपोच्छ्वसितं जानन्ति।
(२) भास्वतानुगृहीतानां न दिशां तिमिराद् भयम्।
(३) पिपीलिकापि चरणस्पृष्टा दशति तत्क्षणम्।

वाराणसी की वर्णना से यह नाटक प्रेक्षकों को पावन बनाता है।

मुझे अपने अनुष्ठान के लिए धन चाहिए। नायक ने उसे अपना मौक्तिक हार दिया। कंकालक नायक को आश्रम की रक्षा के लिए नियोजित कर स्वयं नायक के पिता काशीराज शत्रुजित् के पास पहुँचा। इधर राजा उसके लिए अपराह्न में विशेष चिन्तित था।

कुवलयाश्वीय नाटक की मूलकथा विस्तार-सहित मार्कण्डेय-पुराण में मिलती है।[1] कृष्ण ने इस कथा में पर्याप्त परिवर्तन किया है और नये-नये कथा पुरुषों को नये-नये संविधानों में नियोजित किया है।

कुवलयाश्वीय पर कतिपय महाकवियों का प्रभाव स्पष्ट है। यथा पंचम अङ्क में

कुसुमादपि सुकुमारं कुलिशादपि निर्भरद्रढिमा।
न विवेक्तुमर्हति जनः प्रकृतिगभीरं मनो महताम्॥

इस पर भवभूति की छाया है।

कवि ने अपनी कृषिप्रियता का परिचय इस प्रकार दिया है—

सुक्षेत्रोप्त-सुबीज इव कैदारिकः सुविनीततनयोपहितविनयो जनकः कोपपूरणं करोतीति। पंचम अङ्क से।

प्रथम अंक में उत्प्रेक्षा का उदाहरण है—

हरिह्रयहरिदङ्के क्रीडमानस्य शङ्के शिशुगिशिरहरीशः कुक्कुटा हासनाय।
विधुरमधुरचञ्चत्कन्धरावन्धमेते विदधनि कुहूल्कू काकुमाहूतवाचः॥

छायातत्त्व

कंकालक का मुनिशिष्य शालङ्कायन का रूप धारण करना छायातत्त्वानुसारी है। पंचम अंक में वह मायावी पुनः ऋषि का वेश धारण करके तपस्वी बन जाता है। यह छद्मात्मक संविधान छायातत्त्व है।

समीक्षा

नाटक की प्रमुख कथा तीसरे अङ्क में नायक के विवाह से समाप्त हो जाती है। उसके आगे क्रमशः नायक का युद्ध-वर्णन तथा युवराज-पद पर अभिषेक चतुर्थ अंक में तथा विश्वनाथ-दर्शन और कंकालक-दानव से मुठभेड पंचम अंक में अनावश्यक कलेवर वृद्धि करते हैं। कवि ने अपने आराध्य देव विश्वनाथ के दर्शन का प्रकरण नाटक की आवश्यकता के लिए नहीं, अपितु स्वान्तःसुखाय समाविष्ट किया है।

कृष्ण ने सूक्तियों और लोकोक्तियों के विन्यास से इस नाटक की भाषा को पर्याप्त रोचक बना दिया है। यथा,

---

१. मार्कण्डेय पुराण १८. ३८; १९.८८

सूक्तियाँ

(१) स्वस्थे चित्ते बुद्धयः संचरन्ति ।
(२) आकृतिविशेष एव पुरुषविशेषं गमयति पुरुषस्य ।
(३) दुर्बलानां राजैव बलमित्यामनन्ति महान्तः ।
(४) अनात्मवेदिता हि परमापदाम् ।
(५) कृतप्रतिकारिता हि महतां शैली ।
(६) धुरन्धरेऽपि पुत्रे पिता गर्भरूप इवोपदिशति ।

लोकोक्तियाँ

(१) धीवरा एव कच्छपोच्छ्वसितं जानन्ति ।
(२) भास्वतानुगृहीतानां न दिशां तिमिराद् भयम् ।
(३) पिपीलिकापि चरणस्पृष्टा दशति तत्क्षणम् ।

वाराणसी की वर्णना से यह नाटक प्रेक्षकों को पावन बनाता है ।

अध्याय ६५

श्रीकृष्णशृंगार-तरंगिणी

श्रीकृष्ण-शृङ्गार-तरंगिणी-नाटक के प्रणेता वेङ्कटाचार्य का प्रादुर्भाव मैसूर में हुआ था।[1] इनके पिता अण्णयाचार्य तथा चाचा श्रीनिवास तातार्य थे। इनकी प्रतिभा का विलास सुरपुरम् के राजा वेङ्कट नायक १७७३–१८०२ ई० के आश्रय में हुआ था। वेङ्कट परकाल के महादेशिक के उपासक थे। कवि की कौलिक परम्परा उच्चकोटिक विद्वानों से सुमण्डित रही है। वेङ्कट ने बहुविध ग्रन्थों का निर्माण किया था। यथा—

(१) गजसूत्रार्थ—व्याकरण-विषयक, (२) कृष्णाभावशतक-स्तोत्र, (३) अलंकार-कौस्तुभ, (४) शृङ्गार-लहरी गीतकाव्य, (५) दशावतार-स्तोत्र, (६) हयग्रीवदण्डक-स्तोत्र, (७) यतिराजदण्डक—रामानुजाचार्य-विषयक स्तोत्र और (८) झञ्झामारुत–दर्शन उनका लिखा अचलात्मजा-परिणयमु तेलुगु भाषा में शिव-पार्वती परिणय की कथा है।

प्रस्तावनानुसार इस नाटक के विषय में वेङ्कट का पूर्वाग्रह है—

कृतिनामपोह यतिनां रसश्रुतेर्भविता तथैव भवितानुगामतिः।
द्विषतां दुदूषयिषतामपि स्वयं वचनं गुण-प्रवचनं भविष्यति॥

इसके नाम को सार्थक करने के लिए कवि ने बहुविध योजनाओं के द्वारा आलम्बन, उद्दीपन, अनुभाव और संचारिभावों की अविरल मनोज्ञता प्रस्तुत की है। पंचम अंक में मणिमाला के मुख से नायिका सत्यभामा का नखशिख-वर्णन शृङ्गारित है।

कथावस्तु

अघमर्षण ऋषि के कौतुकपूर्ण पारिजात-पुष्प को इन्द्र ने चुरा मँगवाया और मुनि के भय से उसे नारद को दे दिया। नारद ने उसे द्वारका में कृष्ण को दिया। कृष्ण ने उसे रुक्मिणी को दिया। यह जानकर सत्यभामा प्रकुपित हुई कि मुझे यह पुष्प क्यों नहीं मिला? बस, कलह कराने की नारद की योजना-लता पसरने लगी। कृष्ण सत्यभामा के भवन में पहुँचे। वहाँ सत्यभामा ने बताया कि पारिजात देने के लिए रुक्मिणी है तो प्रेम करने के लिए भी वही रहे। कृष्ण ने कहा—

गत्वा सत्वरमाहरामि ललने मन्दारमिन्द्रालयं।
जित्वा श्वो भवदीयकेल्युपवने न्यस्यामि दास्यामि च॥३.६४

भ्रमरों की बातचीत से विश्वावसु को ज्ञात हुआ कि इन्द्र पर आक्रमण करके कृष्ण पारिजात-हरण करने वाले हैं। वह इन्द्र से ऐसा बता आया। चतुर्थ अंक में

१. इस नाटक की अप्रकाशित प्रतियाँ मद्रास, मैसूर आदि में मिलती हैं।

नारद ने इन्द्र का समाचार कृष्ण को दिया कि चार से इन्द्र को ज्ञात हो चुका है कि पारिजात को इन्द्र यदि सीधे से नहीं दे देता तो आप उसे बलात् हर लेंगे। अतः इन्द्र आप पर बिगड़ा है। कृष्ण ने उत्तर दिया कि कल ही उसे ठीक कर दूँगा।

इन्द्र ने युद्ध के लिए लक्ष्मी की आराधना करके उससे एक कमलदल प्राप्त किया, जिससे यथेच्छ चतुरंगिणी सेना निस्सृत होने को थी, पर वह स्त्री के स्पर्श से व्यर्थ हो जाने को थी। ऐसा ही हुआ। सत्यभामा के साहचर्य से कमलदल से उत्पन्न सारी सेना विलुप्त हुई। अन्त मे कृष्ण जीते।

पंचम अंक में त्वष्टा की कन्या मणिमालिका एक विशिष्ट मणिपर्यङ्क का उपहार सत्यभामा को देती है। रात्रि की चन्द्रिका में रुक्मिणी से खिन्न होकर वृक्ष के मूल में बैठी सत्या कृष्ण की प्रतीक्षा करती है। वह मन्मथ-ज्वर-सन्तप्ता है। वह कृष्ण-विषयक अपने प्रेम-भरे मनोभाव गा-गाकर प्रकट करती है। कृष्ण आये तो सत्या उनके चरणों में लिपट गई। पर्यङ्क पर दोनों बैठे। सखियाँ निकुंजों में छिप गई।

शिल्प

नाटक वर्णन-परक है। अर्थोपक्षेपक विशेषतः वर्णन-पूरित हैं। ऐसा नहीं होना चाहिए। वर्णनों के द्वारा कवि अपनी काव्योत्कृष्टता प्रदर्शित करना चाहता है। नाट्यकला की दृष्टि से यह स्पृहणीय नही है। इनसे कवि की सुकविता भले प्रमाणित होती है, नाट्यमर्मज्ञता नही प्रतीत होती। वर्णनों में पद्यो का बाहुल्य है।[1] वर्णनों में कथासूत्र इतना शिथिल और आच्छन्न है कि उसे देख पाना सरल नहीं है।

रंगमच पर किम्पुरुष-दम्पती चुम्बन-परायण है। यह शास्त्रीय मर्यादा से भले विरुद्ध हो, पर नाट्य-जगत् मे त्याज्य नही रहा है।[2]

विमानावतरण रंगमंच पर दिखाया गया है। किम्पुरुष-दम्पती विमान से आकाश में रह कर ही अपने संवाद से प्रेक्षको को चमत्कृत करता है। विमान ऊपर-नीचे भी किया जाता है। अन्त में विमान रंगमंच पर उतरता है।[3]

विष्कम्भक या प्रवेशक के पात्रो को अङ्क आरम्भ होने के पहले रंगपीठ से चल देना चाहिए। यह संस्कृत रूपकों में निरपवाद रूप से देखा जाता है। ये तो अंक के समान ही स्वतन्त्र अपने-आप में पूरे नाट्यांश हैं। वेंकट ने ऐसा नहीं किया है। प्रथम अङ्क के पूर्व के विष्कम्भक के पात्रो को अङ्कभाग में अनुक्रांत किया गया है।

---

१. प्रथम अङ्क के पहले का विष्कम्भक इस प्रवृत्ति का अनूठा उदाहरण है।

२. द्वितीय अंक में कृष्ण सत्यभामा को 'बलादङ्के निवेशयति' कहा गया है। पंचम अंक में भी कृष्ण सत्यभामा का परिष्वजन करते हैं।

३. 'इति विमानमवतारयतः।'

अनुप्रासित ध्वनि-निनाद से श्रोता का सांगीतिक अनुरंजन करने में कवि विशेष सफल है। यथा,

> वनशबरी-वनकबरी-भरनिबरी-प्रसूनपरिमिलितः।
> उपवन-पवनः पवनान्मम वपुषि श्रममपाकुरुते ॥१.३६

चाहे गद्य हो या पद्य, वेङ्कट सानुप्रासित ध्वनियों को जोड़ने में बेजोड़ है। एक अन्य उदाहरण है—

> अभङ्गभृङ्गभङ्गिकोत्तरङ्गमङ्गलस्वर—
> प्रसंगसंगतं लतानिकुञ्जपुंजमास्थिता।
> प्रफुल्लपल्लवोल्ललत्तमालमेघमालिका
> स्वयंचलासु चञ्चलेव चारु संचचार सा ॥१.४४

वेङ्कट की दृष्टि में प्रथम अङ्क में यह विचार नहीं आया हुआ प्रतीत होता कि अङ्क भाग में केवल दृश्य होना चाहिए। सूच्य तो अपवाद रूप से अङ्क में हो हो सकता है, किन्तु वेङ्कट ने पूरे प्रथम अङ्क में एकमात्र सूच्य वृत्त दिया है कि शठमर्षण का पुष्प कैसे इन्द्र ने चुराया और उसे नारद को दिया। नारद ने उसे द्वारका में कृष्ण को दिया।

संवाद

संवादों की औचिती की ओर वेङ्कट का ध्यान नहीं गया है। चतुर्थ अंक के पूर्व विष्कम्भक में चित्राङ्गद और विश्वावसु वर्णनात्मक संवाद करते हैं। इनमें से विश्वावसु का एक भाषण सीधे ५० पंक्तियों का लगातार है।

०

अध्याय ६६

वसुलक्ष्मी-कल्याण-नाटक

वसुलक्ष्मीकल्याण के रचयिता वेङ्कटसुब्रह्मण्याध्वरी वेङ्कटेश्वर मखी के पुत्र महान् वैयाकरण अप्पय दीक्षित के वंशज हैं।[1] सूत्रधार ने वसुलक्ष्मीकल्याण की प्रस्तावना में अप्पय दीक्षित से आरम्भ करके वेङ्कटसुब्रह्मण्य तक वंशवृक्ष का उल्लेख किया है। यथा,

अप्पयदीक्षित
|
नीलकण्ठदीक्षित
|
सिंहमप्पाध्वरी या चिन्नमप्पाध्वरी
|
भवानीशंकर मखी
|
वेङ्कटेश्वरमखी
|
वेङ्कटसुब्रह्मण्याध्वरी

कवि की वंश-परम्परा मनीषियों की खनि रही है।

वेङ्कटसुब्रह्मण्य व्याकरण, मीमांसा, तर्क, साहित्य-विद्या आदि ज्ञान-विज्ञान की शाखा-प्रशाखाओं के पण्डित-प्रकाण्ड थे। इनकी अन्य रचनाओं का अभी तक परिचय नहीं मिला है।

वेङ्कटसुब्रह्मण्य त्रावणकोर के राजा बालरामवर्मा (१७५८-१७९८ ई०) की राजसभा को समलङ्कृत करते थे। उन्होंने इस नाटक का प्रणयन १७८५ ई० में किया। कवि स्वयं शिष्यों के अध्यापन में निरत थे।

कथावस्तु

वसुलक्ष्मी सिन्धुराज वसुनिधि की पुत्री थी। सपने में रानी ने देखा कि राजा उससे प्रेम कर रहा है। उसका चित्र मन्त्री ने विदूषक के द्वारा बालरामवर्मा के पास भेजा। उसे देखकर वह मोहित हो गया। नायिका भी नायक के चित्र को देखकर मोहित थी। उसके मन्त्री बुद्धिसागर को अपने राजा का प्रभाव बढ़ाने के लिए उसके विवाह में विशेष रुचि थी। वसुनिधि अपनी कन्या को बालराम को विवाह में देना चाहता था, किन्तु उसकी माता उसका विवाह सिंहलराज से करना चाहती थी। माता ने वसुलक्ष्मी को सिंहल-देश भेजा, पर बीच ही में वह केरल के सामुद्रिक तट पर मन्त्री बुद्धिसागर के द्वारा रोकी जाकर त्रावणकोर लाई गई।

---

[1] इसका प्रकाशन त्रिवेन्द्रम्-संस्कृत-सीरीज में हुआ है।

रामवर्मा और वसुलक्ष्मी ने एक-दूसरे को पहले चित्र में देखा था। तभी से वे प्रेम करने लगे। कालान्तर मे राजप्रासाद के उपवन मे परस्पर दर्शन के पश्चात् मनसा एक-दूसरे के हो गये और विवाह के पहले तक मदनाग्नि से संतप्त ही रहे।

रामवर्मा की रानी वसुमती यह नहीं चाहती थी कि मेरी सपत्नी वसुलक्ष्मी बने। वह उसका विवाह चेरदेश के राजकुमार वसुवर्मा से करना चाहती थी। रामवर्मा को यह ज्ञात हुआ तो उसने वसुवर्मा का वेष धारण करके वसुलक्ष्मी से अपनी राजधानी में ही विवाह कर लिया। इस उपक्रम मे जब महारानी वसुमती ने स्वयं वसुलक्ष्मी का पाणिग्रहण रामवर्मा से करा दिया, तब उसे ज्ञात हुआ कि वसुवर्मा ही रामवर्मा है। पहले तो रानी ने वसुलक्ष्मी को बन्दिनी बनाया, पर शीघ्र ही अपनी भूल समझ कर उससे क्षमा माँगी। झख मारकर उसने खुशी-खुशी वसुलक्ष्मी को रामवर्मा को अर्पित कर दिया। इस अवसर पर वसुलक्ष्मी के भाई भी उपस्थित हो गये थे। उन्होंने यौतक दिया।

इस नाटक को कवि ने सदाशिव की भाँति नाट्यशास्त्रीय उदाहरणों की मञ्जूषा-रूप मे निर्मित किया है। सदाशिव और वेङ्कट सुब्रह्मण्य—इन दोनो के वसुलक्ष्मी-कल्याण का कथानक प्रायशः समान है।

समसामयिक दो कवियो ने वसुलक्ष्मी का बालराम वर्मा से विवाह की कथा लिखी है। क्या यह कथा सर्वथा कल्पित है? इस प्रश्न का समाधान उन अनेक नाटको की कथावस्तु का साथ ही विवेचन करके सम्भाव्य है, जिसमें वसुलक्ष्मी या वसुमती आदि के किसी ऐतिहासिक राजा से परिणय का वृत्त है।[1] वेङ्कटसुब्रह्मण्य के नाटक में वसु से समस्त नाम वाली अनेक प्रकृतियों से स्पष्ट है कि वे सभी काल्पनिक हैं।[2]

---

१. अप्पय-दीक्षित का वसुमती-चित्रसेनीय, जगन्नाथकृत वसुमती-परिणय, रामानुज कृत वसुलक्ष्मीकल्याण ऐसे नाटक हैं। इनमें से वसुमती-चित्रसेनीय की प्रस्तावना मे तो स्पष्ट ही लिखा है कि नाटक की कथा कल्पित है। जगन्नाथ के वसुमती-परिणय में वसुमती नायिका ही काल्पनिक है। वह राजश्री का पर्यायवाची है। इसका नायक प्रतीक-द्वार से सर्वथा ऐतिहासिक है। अन्य नाटकों मे भी वसुमती काल्पनिक ही है।

२. राजा की महिषी वसुलक्ष्मी का पिता वसुनिधि उसका भाई वसुराशि, वसुमती का भाई वसुमान्, चेरदेश का राजकुमार वसुमान्, सिन्धुराज का पुत्र वसुराशि, इतने नामों को वसु से आरम्भ करके कवि सम्भवतः प्रेक्षक को बता देना चाहता है कि इनमे ऐतिहासिकता ढूँढने का प्रयास व्यर्थ है।

प्रस्तावना मे सूत्रधार ने बताया है कि इस नाटक को कवि ने मुझे अर्पित किया है। यथा,

> शृङ्गारैकरसोर्मिलं प्रतिदिनं यच्छिक्ष्यमाणं मया।
> पात्रेष्वादरतोऽर्पितं च कविना मय्यद्‌भुतं नाटकम्‌ ॥

नाट्यशिल्प

रगमंच पर आलिंगन का दृश्य नहीं होना चाहिए। इस नाटक में अन्य कई सस्कृत नाटकों की भाँति इस नियम का पालन नहीं हुआ है। इसके तृतीय अङ्क में नायिका नायक का आलिंगन करती है। नायक भी नायिका का दुष्परिष्वंग करता है।

एकोक्ति

वसुलक्ष्मीकल्याण में एकोक्ति को कहीं-कहीं स्वगत कहा गया है। एकोक्ति का प्रयोग प्रथम अङ्क के आरम्भ मे मिलता है। नायक हर्म्यतल पर बैठा हुआ है। वहाँ पीछे से विदूषक आता है और राजा की एकोक्ति अदृष्ट रहकर सुनता है। इस एकोक्ति का प्रयोजन अर्थोपक्षेपक के समान है। इसमे बताया गया है कि राजा ने रानी का उत्स्वप्नायित उपालम्भ सुना कि तुम्हें जिस चुड़ैल से प्रेम हो चला है, उसे मैंने देख लिया है। यह कह कर रानी क्रुद्ध होकर चलती बनी तो राजा पीछे-पीछे चला और उसके चरण पर प्रणति करते हुए अनुनय की कि यह सब वितथ कह रही हैं। वह मानी नहीं और चली ही गई।

राजा की एकोक्ति सुनकर विदूषक अपने विचार प्रकट करता चलता है। उसका बोलना स्वगत-रूप में प्रस्तुत है। तृतीय अङ्क के आरम्भ में २२ पद्यों की लम्बी एकोक्ति राजा नायिका के विषय मे करते हैं। यह एकोक्ति कला की दृष्टि से उच्च कोटिक है। चतुर्थ अंक के आरम्भ में नायक की १६ पद्यों की नायिका-विषयक एकोक्ति है।

संगीत

द्वितीय अक में नायिका के द्वारा वीणागान प्रस्तुत किया गया है। संगीत का सामञ्जस्य नाट्याभिनय को सरस बना देता है।

छायातत्त्व

नायिका के चित्र वाले फलक को देखकर नायक का शृङ्गाराभिभूत होना छायातत्त्वानुसारी है। वह कहता है—

> शृंगारामृतवर्तिकेव नयने सत्कुर्वती कुर्वती
> दर्पं दर्पकसैनिकस्य मुनिहृत्पाषाणविद्राविणी।
> नैषा दृष्टचरी न वा श्रुतिचरी हन्तेयताप्यायुषा
> कैषा कामवधूरिवात्र लिखिता योषा न विज्ञायते ॥

चित्रदर्शन मात्र से वह सानुराग होकर उन्मत्त हो जाता है।

रंगपीठ के अनेक भाग

रंगपीठ पर एक ओर राजा विदूषक से बात करता है और दूसरी ओर उनसे अदृष्ट रहकर रानी और उसकी सखी बातें करती हैं। वे राजा और विदूषक की बातें सुनती हैं। इस प्रकार के दो भागों के बीच में कवाट होता था।[1]

अंकास्य

पंचम अंक के पूर्व अङ्कास्य रखा गया है। इसमें केवल एक पुरुष कंचुकी अपनी गाथा के पश्चात् उन घटनाओं की सूचना देता है, जो साधारणतः प्रवेशक और विष्कम्भक के द्वारा दी जाती हैं। कोई विशेषता इस अंकास्य में नहीं है।

चूलिका

चूलिका नामक अर्थोपक्षेपक के पात्र नेपथ्य से ही नहीं, अपितु रंगपीठ पर आकर अर्थ की सूचना द्वितीय अंक के पूर्व देते हैं। यह अभारतीय तीर्थ है।

अभिनय-शिक्षण

सूत्रधार के द्वारा नटों को नाटक की शिक्षा देने का उल्लेख इस रूपक में मिलता है। सूत्रधार ने कहा है—

शृंगारैकरसोर्मिलं प्रतिदिनं यच्छिक्ष्यमाणं मया
पात्रेष्वादरतोऽर्पितं च कविना मय्यद्भुतं नाटकम् ॥

स्वयं नट ने भी सूत्रधार के द्वारा नटों को नाटक पढ़ाने का उल्लेख इस प्रकार किया है—

भावेन सादरमध्यापिताः स्ववर्ग्या ह्यः सायन्तने भरतवाक्यपाठिनो मया श्रुताः।

कुलक्रम से जैसे नाटकों के प्रणेता आनुवंशिक होते थे, वैसे ही उनका अभिनय करने वाले सूत्रधारादि नटों की भी वंश-परम्परा होती थी। सूत्रधार ने प्रस्तावना में बताया है।

मम हि पूर्वेषामपि रंगदेवाभिनवगुप्त-रसमल्ल-नटकुलशेखरप्रभृतीनां नाट्यविद्याचार्याणामीदृशानितरसाधारणविख्यातिमूलगुरवोऽस्य कवेः पूर्विकाः श्रीमदप्पयाध्वरिवेङ्कटेश्वरमखि-प्रभाकरदीक्षितप्रभृतयः षड्दर्शनीवल्लभा अपि नलचरितोमापरिणयोपाहरण-हरिश्चन्द्रानन्दप्रभृतिभिरपरिमितैरद्भुत नाटकादिप्रबन्धैः कुलक्रमादेवास्मज्जीविका-हेतवः।

१. विदूषक के विषय में इस प्रसंग में कहा गया है—'ससंरम्भं कवाटमुद्घाट्य दृष्ट्वा सावेगम्।'

कतिपय रानियाँ अभिनयशाला में आई हुई सहस्रों कन्याओं का स्वयं अलंकरण करती थी।[1]

राजनीतिक नाटक

वसुलक्ष्मीकल्याण का राजनीतिक महत्त्व सविशेष है। प्रथम अङ्क के पहले कवि ने शुद्धविष्कम्भक मे बताया है कि हिमालय के पश्चिम अनूप देश के रहने वाले हूणराज से नायक का मैत्रीभाव विशेष रूप से बढ़ेगा। यथा,

सिद्धार्थकः—तदनेन तीर्थेन हिमवत्पश्चिमानूपवासिनोऽपि भारतवर्षमात्रव्यापिनो हूणराजस्य चिरप्रवृत्तमपि सख्यं देवेन बहुलीभविष्यतीति मन्ये।

पद्यात्मकता

वेङ्कटसुब्रह्मण्य को पद्य लिखने का विशेष चाव था। जहाँ भावादि की दृष्टि से पद्य की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती, वहाँ भी पद्य के द्वारा बातें कही गई हैं। यथा,

अयं कुमारो वसुराशिवर्मा प्रियः सुतः सिन्धुपतेः प्रवीरः।
स्वसृप्रियत्वात् स्वयमागतोऽत्र नमत्यसौ नः पितृनिर्विशेषम्॥५.५६

इस पद्य में बुद्धिसागर मन्त्री ने वसुराशि का परिचयमात्र दिया है। वास्तव में इस युग में नाटकों में गद्य की अपेक्षा पद्य को अधिक अपनाया जा रहा था, जो अस्वाभाविक प्रवृत्ति है। इस नाटक में ऐसे पद्यों की संख्या प्रचुर है।

---

१. महाराज रामवर्मा की पत्नी वसुमती ने चतुर्थ अंक में कहा है—अभिनयशालागतानां कन्यकानां सहस्रमपि कौतुकिनी क्षणान्तरेणैव चतुरतरमलंकरोमि।

विवेकमिहिर

विवेकमिहिर-नाटक के प्रणेता हरियज्वा का परिचय नाटक की अन्तिम पुष्पिका में इस प्रकार मिलता है[1]—

इति लक्ष्मीनृसिंहसूनुना हरियज्वना प्रणीते विवेकमिहिराभिधे नाटके पंचमोऽङ्कः।

अर्थात् लक्ष्मीनृसिंह के पुत्र थे हरियज्वा। उन्होंने नाटक के प्रणयन का समय बताया है। यथा,

शाके १७०६ क्रोधिसंवत्सरे माघकृष्णप्रतिपदीदं पुस्तकं समाप्तम्।

इसके अनुसार नाटक की रचना १७८५ ई० में हुई। विवेकमिहिर का प्रथम अभिनय नृसिंहमहोत्सव के अवसर पर इकट्ठे हुए विद्वानों के समागम के मनोरंजन के लिए हुआ था।

कथावस्तु

मोह की राजसभा में काम-क्रोधादि क्रमशः आकर संसार में अपने कृतित्व की चर्चा करते हैं। वे बताते हैं कि किस प्रकार तथाकथित विद्वान् भी हमारे प्रभाव के कारण अपनी उच्चता खोकर हीन स्वभाव वाले हो गये हैं। यथा काम का वक्तव्य है—

अधीतविद्या अपि केचिदत्र त्रपां विहायार्यपराः परेषाम्।
मर्माण्युपोद्घाट्य निजप्रभावं सर्वाधिकं संसदि वर्णयन्ति ॥१.३

क्रोध कहता है कि वीतराग भी मेरे प्रभाव में है। उसके वश में आने पर

ओष्ठं प्रकोष्ठं च दशन्ति दन्तैः दन्तान् विनिष्पिष्य करं करेण।
श्मश्रूणि मृद्नन्ति शपन्ति मद्वशाः किं किं न कुर्वन्ति हि कोपिनो जनाः॥

मद ने कहा कि मैं विद्यावान्, धनवान और गुणियों में नित्य रहता हूँ। मद ने मोहराज से कहा कि मेरा एक शत्रु दम है। उससे बड़ा भय लगता है। मोह ने उसे समझाया—

यस्यास्ति कामक्रोधाभ्यां व्याक्षिप्तं सहसा मनः।
न पदं तत्र धत्ते वै दमः पङ्के मरालवत् ॥१.१४

फिर लोभ ने अपना बखान किया—

परिग्रहपराङ्मुखा अपि विरागिणो मद्वशे भवन्ति धनलोभिनो निर्धनभीतिभाजः।

फिर दम्भ आया। उसने कहा—

---

१. यह नाटक अप्रकाशित है। इसकी प्रति सागर-विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में है।

येषां क्वापि गतिर्न चास्ति भुवने तेषां हि दम्भो गतिः ॥१.१८

फिर मत्सर आकर मोह के पूछने पर बोला—

भो स्वामिन्, जगति यावद्गुणिनो, विद्यावन्तः, कलावन्तः, सभाग्याः, सुशीलाः, सुरूपिणः, सुभूपिता आयुष्मन्तः पुत्रवन्त इत्याद्याः सन्ति तावत् कथमहं सुखी भूयासम्। उक्तानामेषां मध्ये यदा कदाचिदन्यतमो मृत इति शृणोमि, तद्दिन एव मनाक् सुखी भवामि।

नेपथ्य से मोह को सुनाई पड़ा कि ऐ पापियो, चुप रहो। उसने समझ लिया था कि विवेकराज आ पहुँचे हैं। वह भाग खड़ा हुआ।

द्वितीय अंक में रंगमंच पर विवेक सपरिवार है। उसके पारिषद ने बताया कि विदूषक के समान कोई आ रहा है। उसने दो बार प्रणाम किया। विवेक ने पूछा कि यह दूसरा प्रणाम किसके लिए? विदूषक ने बताया कि यह मोहराज के लिए है। विवेक ने पूछा कि वह कहाँ है? विदूषक ने कहा कि वह तो अव्यक्त रूप से यहीं विराजमान है। विवेक ने कहा कि मेरे होते तुम्हें उससे क्यों डरना चाहिए? विदूषक ने कहा कि वही मेरी शरण है। विवेक ने कहा कि मैं तेरी शरण हूँ। विदूषक ने उपहास करते हुए कहा कि जब विश्वामित्र ने वसिष्ठ के सौ दायादों को मारा, जब वीरभद्र ने यज्ञशाला में दक्ष प्रजापति का सिर काटा, जब दारुवन में शिव ने महर्षिपत्नियों से व्यभिचार किया······इत्यादि अवसरों पर आप क्यों नहीं पीड़ित वर्ग की शरण बने?

तभी आचार्य आये, जिनसे विवेक ने विदूषक के आरोप को बताया। आचार्य ने समझाया कि विदूषक की उत्तान बुद्धि है। सच तो यों है कि—

धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणां च साहसम्[1]।
तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथेति ॥२.५
सर्वं बलवतां पथ्यं सर्वं बलवतां हितम्।
सर्वं बलवतां धर्मः सर्वं बलवतां स्वकम्॥[2]

आचार्य ने विवेक से कहा कि आप तो पूरी सेना के साथ मोहराज पर आक्रमण करके उसे परास्त करें। फिर सब ठीक हो जायेगा।

शमदमादि ने आकर अपना दुखड़ा आचार्य से रोया कि हमें तो दिनरात कामादि से लड़ना पड़ रहा है। यथा,

मूर्खाणां पण्डिता द्वेष्याः कुरूपाणां सुरूपिणः।
दुष्टानां साधवो द्वेष्याः पांसुलानां पतिव्रताः॥२.६

आचार्य ने समझाया कि पहले तुम सभी भगवदुपासना करो। विवेक के नेतृत्व में इस काम मे सफलता प्राप्त करो। श्रद्धा को अपनाओ।

---

१. यह पद्य भागवत से उद्धृत है।

२. यह पद्य महाभारत से उद्धृत है।

तृतीय अंक में भक्ति और श्रद्धा आचार्य से मिलते हैं। आचार्य ने उनसे कहा कि आप दोनों विवेकवत्स की रक्षा करें। आचार्य ने शम से कहा कि धृति से समन्वित होकर आप काम-क्रोधादि को नष्ट करें।

वहाँ विदूषक आ पहुँचा। उसने आचार्य से बताया कि मुझे मोह ने बहुत सताया है। उसने मुझसे आपके पास सन्देश भिजवाया है। मैं उसे आप लोगों की मन्त्रणा और योजनायें बताता हूँ। उसने कहा है कि मैं आप सबका सर्वनाश कर डालूँगा। वैदिक संस्कृति का मूलोच्छेद कर डालूँगा। विवेक ने विदूषक से सन्देश भिजवाया कि कह दो कि वह मोहराज मरने के लिए तैयार रहे। चतुर्थ अंक में आचार्य ने प्रथम, उत्तम और मध्यम कोटि के जीवों को अपने अभ्युदय के लिए हरिभक्ति का उपदेश दिया है तथा वेदान्त की ब्रह्मात्मैक्य-योजना बतलाई है।

पंचम अंक में वेदान्त का उपदेश दिया गया है। वसिष्ठ ने राम को सात भूमिकायें बताई थी, जिसकी अन्तिम भूमिका में मोक्ष की प्राप्ति होती है।

जीवों के चले जाने के पश्चात् विवेकादि भक्ति, श्रद्धा आदि के साथ आचार्य को सामने करके चलते बने।

शिल्प

हरियज्वा ने भास का अनुकरण किया है, जहाँ तक प्रस्तावना का सम्बन्ध है। इसमें कवि-परिचय के नाम पर कुछ भी नहीं है। नटी संस्कृत बोलती है। सूत्रधार प्रस्तावना के अन्त में जाता है और नाटक के अन्त में एक बार और उपस्थित होकर अन्य पात्रों के साथ भरतवाक्य में श्रीनृसिंह की वन्दना करता है वह नाटक के श्रोताओं को आशीर्वाद देता है।

हरियज्वा ने महाभारत, गीता, पंचतन्त्र, शिशुपालवध, भागवत आदि अनेक लोकप्रिय ग्रन्थों से श्लोकों को लेकर अपने वक्तव्यों को प्रमाणित करने के लिए पात्रों से कहलवाया है। यथा पंचतन्त्र से—

उदीरितोऽर्थः पशुनापि गृह्यते हयाश्च नागाश्च वहन्ति नोदिताः।
अनुक्तमप्यूहति पंडितो जनः परेङ्गितज्ञान-फला हि बुद्धयः॥

विवेकमिहिर-नाटक में प्रहसन का तत्त्व विशेष रूप से समुदित हुआ है।

संवादों के बीच में सम्भवतः नेपथ्य से या रंगमंच पर ही बैठा कोई व्यक्ति परिस्थितियों पर अपनी आलोचना कहीं-कहीं करता है। विदूषक ने द्वितीय अंक में जब विवेक को बताया कि आपकी शरण अवास्तविक है और वे चुप हो गये तो एक ऐसी ही आलोचना सुनाई गई। यथा,

युक्तियुक्तमवधार्य सद्वचः को न मौनमुपयाति सज्जनः।
सम्यगुक्तमिति योऽनुमोदते तस्य को न कुरुते प्रशंसनम्॥२'२

विवेकमिहिर यद्यपि मुख्यतः प्रतीक नाटक है, किन्तु इसमें कतिपय पात्र मानव कोटि के हैं और वे विवेकादि से वैसे ही संवाद करते हैं, मानों वे भी मानव ही हैं। कला की दृष्टि से विवेकादि मूर्तिमान् होते हैं और मानव पात्र ही उनकी भूमिका लेकर रंगपीठ पर अवतरित होते हैं। ऐसे पुरुष हैं विवेक, आचार्य और उनके शिष्य आदि। कतिपय जीवादि पात्र विशुद्ध दृष्टि से छायात्मक हैं, जहाँ नाटककार कहता है–

'ततः प्रविशन्ति विविधा जीवाः' इत्यादि।

उपदेशात्मकता

प्रतीक नाटक का प्रमुख उद्देश्य है कलात्मकता के प्रसंग में चारित्रिक सदुपदेश देना। विवेकमिहिर इस उद्देश्य में सफल है। यथा आचार्य का कहना है—

त्वरा न कार्या गुरुशास्त्रबोधे त्वरा न कार्या विहितेषु कर्मसु।
त्वरा न कार्याध्वसु दुर्गमेषु त्वरा न कार्या हरिसेवनादिषु॥

वेदान्त प्रतिपादित जीवन-दर्शन सरल पदावली में इस नाटक में समझाया गया है।

❀

चित्रयज्ञ-नाटक

चित्रयज्ञ-नाटक के रचयिता वैद्यनाथ-वाचस्पति-भट्टाचार्य नवद्वीप के राजा ईश्वरचन्द्रराय के सभापण्डित थे।[1] ईश्वरचन्द्र राय का शासनकाल १७८८ से १८०२ ई० तक था।[2] इसकी रचना १८ वी शती के प्रायः अन्त मे हुई। स्वय राजा ने कवि को इसका प्रणयन करने के लिए आज्ञा दी थी। चित्रयज्ञ का सर्वप्रथम अभिनय श्री गोविन्ददेव की यात्रा के अवसर पर हुआ था।

सस्कृत के नाटक प्राय. सभी के सभी कुछ काम बनाते हुए दिखाये जाते हैं। इसमे कथावस्तु की एक अभिनव धारा है, जिसमे दक्षयज्ञ को भंग करके विघटन दिखाया गया है।

कथावस्तु

प्रथम अक के अनुसार प्रजापति दक्ष ने यज्ञानुष्ठान किया। उसमे भाग लेने के लिए निमन्त्रित सभी देवता और ऋषि उपस्थित हुए। दक्ष के प्रणाम करने पर ऋषियो ने उसे आशीर्वाद दिया। द्वितीय अक मे सर्वप्रथम हाथ मे चावल लेकर ब्राह्मण स्वस्तिवाचन करते हैं। समिधा-मन्थन करके अग्नि प्रज्वलित की जाती है। उसमे आहुति दी जाती है। इस समय दधीचि नामक ब्राह्मण आ पहुँचता है। वह शिव को वहाँ न देखकर दक्ष की मन्द बुद्धि की गर्हणा करता है कि इसने क्यो नही महादेव को बुलाया ? दक्ष ने उसका समाधान किया कि ब्रह्मादि देवता तो विराज-मान हैं। नामधारी शिव के बिना सब ठीक है। दधीच ने कहा कि शिव सर्वश्रेष्ठ हैं। ब्रह्मा और विष्णु उनके उपासक हैं। दक्ष ने कहा—

रे ब्राह्मण, मम सभायामागमनयोग्यः किं शिवो भवति तथा हि—

वैश्वानरप्रभहिरण्यसुमण्डितानि। नानाविचित्र-मणिकम्पित-भूषणानि ॥
स्रक्चन्दनार्चितवपुर्वमनं विचित्रं। येषां त एव विबुधाः सदसि स्फुरन्ति ॥२.१३

तत्र किं शिवस्य वासः सम्भवति। तथा हि,

यो वै वसद्गरलकालभुजङ्गभूषां।
धत्ते श्मशान—मलभस्म समस्तदेहे ॥
चर्माम्बरास्थिभवमाल्यवृषाधिरूढः।
किं तस्य वास उपवास इहैव न स्यात् ॥२.१४

---

१. इस अप्रकाशित नाटक की प्रति संस्कृत-कालेज, कलकत्ता मे मिलती है।

२. कुमुदनाथ मल्लिक : नदिया-कहानी, पृ० ३०४

दक्ष की दुर्मति है कि वैदिक यज्ञ मे शिव नहीं आ सकते। दक्ष को अज्ञानी, अधम, मदान्ध आदि सम्बोधन प्रस्तुत करके दधीच ने कहा—

मन्ये मृत्युमुपैति तीव्रमशिवव्यापार रे दुर्मते ।।२·२३

दक्ष ने आज्ञा दी कि इसे सभा से बाहर निकाल दो। दधीच क्रोधपूर्वक चलते बने। उन्होंने जाते-जाते कहा कि महादेव तो यहाँ आयेंगे नही।

दधीच के जाने पर नारदादि ऋषि और देवता जाने को तैयार हुए। दक्ष ने द्वाररोध करा दिया। उसने जाने वालों को समझाया कि श्मशानवासी अशिव शिव के न आने से यज्ञ मे कोई त्रुटि थोड़े ही है। देवताओं और ऋषियों ने उसकी एक न सुनी। मार्गावरोधकों को उन्होंने उठा फेंका और चलते बने। नारद वीणा बजाते हुए शिव की नगरी कैलास की ओर चलते बने। उन्होंने दक्ष से कहा कि मुझे तो यह समाचार प्रसारित करना है।

तृतीय अंक मे नारद उस स्थली में पहुँचते हैं, जहाँ महादेव, भगवती और त्रिशूलधारी नन्दी थे। नारद ने शिवाष्टक द्वारा महादेव की स्तुति की। उन्होंने दधीच-प्रकरण पूरा सुना दिया और चलते बने।

चतुर्थ अंक मे पिता दक्ष के यज्ञ का समाचार सुनकर सती ने वहाँ जाने की अनुमति शिव से माँगी। शिव ने कहा कि निमन्त्रण के बिना जाना ठीक नही है। बड़ा विवाद हुआ। सती का दार्शनिक तत्त्वानुशीलन शिव ने प्रस्तुत किया। शिव ने कहा—आपका अपमान होगा। सती ने रट लगाई कि मुझे तो पिता के घर जाना ही है। यदि आपके कथनानुसार मैं स्वतन्त्र हूँ तो मुझे कौन रोक सकता है? वे चलती बनी। शिव ने नन्दी से उनके पीछे रथ भेजा।

पंचम अंक में दक्ष यज्ञकर्म में व्यापृत है। सती उससे आकर मिली। दक्ष को उन्हे देखकर प्रसन्नता हुई। उसने कहा—

नानासुलक्षणयुतां गुणराशियुक्तां।
पुत्रीमवाप्य भवतीं सुखसागरेपु।।
मग्नोऽभवं किमु तथैव महांश्च शोक-
स्त्वां दत्तवानहियुते सति निर्गुणाय ।।५·३

सती ने शिव की प्रशंसा और प्रभुता के पुल बाँधे और दक्ष ने शिवनिन्दा की पोटली उँड़ेल दी। अन्त मे सती ने समझा कि शिव ने ठीक कहा था। अब किस मुँह से उनके पास जाऊँ? शिवनिन्दक पिता के पास रहना ठीक नही। मरना है और वह मर गई—

सती ज्वलन्ती ज्वलदग्निवत् क्रुधा तातस्य वाक्यैः शिवनिन्दयान्वितैः।
अत्युष्णतैले जलबिन्दुवत्तदा प्राणान् जहुर्दक्षसमीपभूमौ ।।

खलबली मच गई। नारद भी उसी समय आ पहुँचे। उन्होंने बताया कि सती

के मरने से शिव का क्रोध वीरभद्र रूप में मूर्तिमान् हुआ है। उसके कार्य हैं—

केषां निपत्य हृदये चरणान्निवेश्य।
दन्तान् बभञ्ज दृढमुष्टिविघातनेन ॥
श्मश्रूणि चैव सहसा दवदुत्पपाट।
कांश्चिच्चकार विनिपातपरान् सुराणाम्।

यज्ञ भङ्ग हो गया।

शिल्प

चित्रयज्ञ एक निराला ही नाटक है। इसकी प्रस्तावना में ही नाटक का आरम्भ होता है और स्वल्प मात्रा में कथा भी चलती है।

चित्रयज्ञ निवेदन-प्रधान नाटक है। इसमे निवेदनों की अतिशय प्रचुरता है। प्रायशः निवेदन पद्यात्मक हैं। कोई पात्र रंगमच पर कुछ कर रहा है और निवेदक उस कार्य का वर्णन करता चलता है। यथा, प्रथम अङ्क में चित्रसेन रगपीठ पर आता है तो निवेदक उसके कार्यों की वर्णना प्रस्तुत करता है—

आदौ भद्र सुदीर्घविस्तृतकटानास्तीर्य तस्योपरि
प्रस्तारेण विचित्रकम्बलकुलान्यास्तीर्य तस्योपरि।
वस्त्रं विस्तृतसूक्ष्मशुक्लमसमं तस्योपरि प्रज्वलत्
चित्राचित्रमहो नु राङ्कवपटं चित्रासनं कारितम् ॥१·६

अपि च,

अतिसुललितमुपधानं कनकनिबद्धनानाफणिपरिकलितम्।
स्थाने-स्थाने विहितं यथा यथा निवसन्ति देवाः ॥

'ततः सर्वरञ्जकं प्रणम्य' इत्यादि।

इसके आगे निवेदक देवताओ का आसन पर बैठना सूचित करता है। निवेदन के द्वारा विशुद्ध वर्णन भी प्रेक्षकों को सुनाये जाते हैं। यथा,

गन्धै राज्यहुतिप्रयुक्तरुचिरैर्दीप्ता दिशः सर्वशः
आ द्वीपात् परितः समेत्य मिलिता धूमस्य पानार्थिनः। इत्यादि

द्वितीय अङ्क के अन्त मे दधीच का जाना श्लोकबद्ध निवेदन के रूप में प्रस्तुत है।

प्रथम अङ्क के आरम्भ में देवता और ऋषि कोटि के लगभग २० पात्र एक साथ ही रंगमंच पर हैं। अङ्कों के अन्त में सभी पात्रों को लेकर पूर्वानुबद्ध कथा अगले अङ्क मे चलती रहती है।

रंगमंच पर कार्यदर्शन प्रचुर मात्रा में होता है। यथा, प्रथम अंक में आये हुए देवता और ऋषियों के लिए आसन लगाना, उनका दक्ष को प्रणाम करने पर आशीर्वाद देना, दक्ष का देवताओं का अभिनन्दन करना आदि। इस सम्बन्ध में निवेदन है—

पाणिभ्यां परिगृह्य कस्य चरणौ धूलिर्ददौ मस्तके
पादौ मूर्ध्नि निधाय कस्य विनतिं कृत्वाचशिष्टांस्तथा।
देवान् लौकिकभाषया बहुतरं संतोष्य दक्षः स्वयं
प्रागाद् यज्ञमहीं पठन् श्रुतिपदं सार्धं द्विजैर्याज्ञिकैः ॥१.१५

द्वितीय अङ्क में यज्ञ की पूरी प्रक्रिया दृश्य है।

शैली

श्लेषात्मक पदों के प्रयोग से पात्रों के दो अर्थों का अभिप्राय प्रकट किया गया है। श्रोता पात्र कौन-सा अर्थ ग्रहण करे—यह समस्या पात्रों के समक्ष प्रस्तुत की जाती है। इसमें अभिप्रेत अर्थ की प्रतीति के लिये विवाद होता है, जिसमें प्रेक्षकों का मनोरंजन कवि की दृष्टि में सम्भाव्य है। ऐसे क्लिष्ट पद हैं—(१) अदृष्टपूर्वा समा (२) यागे शिवे (३) शिव (४) निर्गुणाय आदि।

संवाद की चटुलता सरम्भात्मक वातावरण में सविशेष है।

किरतनिया तत्त्व

तृतीय अङ्क में नारद के द्वारा आठ पद्यों में शिव की स्तुति करना किरतनिया नाट्य-परम्परागत है। यथा,

शम्भो सदाशिव विभो भव दीननाथ
भूताधिनाथ करुणामय विश्वनाथ।
गंगाधर स्मरहरामरमेरुपाद
दासोऽस्मि शान्त शमयान्तकृतान्ततापम्॥

इसमें रंगमंच से बाहर भी गायन की व्यवस्था की गई है। स्त्रियों का ऐसा मंगलगान प्रेक्षकों को सुनाई पड़ता है।

अध्याय ६६

जयरत्नाकर-नाटक

जयरत्नाकर नाटक नेपाल का है।[1] इसके रचयिता शक्तिवल्लभ अर्ज्याल हैं। सूत्रधार ने कवि के विषय में बताया है कि वे नेपाली कवियों मे बृहस्पति है। शक्तिवल्लभ के नाम से लगता है कि वे शक्ति के उपासक हैं।

सूत्रधार की प्रस्तावना के अनुसार कवि आत्रेय गोत्र मे उत्पन्न कान्यकुब्ज ब्राह्मण है। आर्ज्याल इनका उपनाम है। वे गोरखा नगर के निवासी थे। उन्होंने सगीत-शास्त्र का अभ्यास किया था। वे नवरसो मे निष्णात थे, कलाओ मे कुशल थे, देशभाषाओ के ज्ञाता थे, राजनीति मे निपुण थे और राजाओ के द्वारा सम्मानित थे। उनके पिता का नाम श्रीलक्ष्मीनारायण था।

कवि ने बहुत अधिक लिखा था, जैसा उसके नीचे लिखे वक्तव्य से प्रतीत होता है—

कस्मिंश्चित् पद्यमध्ये मम भपकवुधैर्दूषणं दीयते चेद्।
देयं मे नापि हानिनिः स्मरहरकृपया पद्यकोटीश्वरस्य ॥६

इस नाटक की रचना कवि ने १७१४ शक संवत् अर्थात् १७९२ ई० में की।[2] नाटक का प्रथम अभिनय नायक राजा रणबहादुर के समक्ष हुआ। उसने पात्रो को बहुमूल्य प्रसाद वितरित किया।

कथावस्तु

कवि ने इसमे श्रीरणबहादुर शाह के पराक्रम का वर्णन प्रधान रूप से किया है। वह राजा हुआ तो राजपुत्र (सेनापति) ने बताया कि आपके प्रतापोत्कर्ष के लिए क्या-क्या किया जा सकता है। बहादुरशाह ने कहा—

क्षुद्राः सन्त्यत्र भूपा मम निकटगताः कार्यमुद्वेजयन्ति।
तस्माद् विध्वंसय द्राक् सुहृदमनृपतीन् तान् खलान् पृष्ठ-युद्ध्यै ॥

फिर तो देश-विदेश मे राजा के गुप्तचर भेजे गये। उन्होंने देश के सांस्कृतिक पतन का वर्णन राजा के समक्ष किया। राजा ने निश्चय किया कि श्रीनगर के पर्यन्त देश पर आक्रमण होना है। राजा सेना का अग्रणी बन कर चला। कई दिन तक प्रयाण करके सेना सन्ध्या के समय चम्पावती नदी के तट पर पहुँची। वहाँ बहुत से शत्रु राजा इकट्ठे थे। विदूषक ने उनको डराया कि जीवन चाहते हो तो नेपालेश्वर की शरण मे आ जाओ। जुम्लेश्वर ने विदूषक से नेपाल की सुसस्कृति की चर्चा की—

१. इसका प्रकाशन नेपाल-सांस्कृतिक परिषद् से संवत् २०१४ वि० में हुआ।
२. तस्यापरमेन माघे सुविभक्तमतिनाऽब्धीन्दुसप्तैकशाके
नेपाले लोकसारेऽमरनगरसमे नाटकं संव्यधायि ॥

यदा युद्धारम्भं घटयति च नेपालनृपति-
स्तदामात्यादीनामुदरमतिसारो व्यथयति ।
यदि क्रोधाद् गच्छति च सह वराङ्गीभिरथवा
मया किं न ज्ञातं कितव तव नेपालचरितम् ॥५.२९

विविध देशों के विषय में काफी अपवादात्मक बातें विदूषक ने शत्रु-राजाओं को सुनाईं और उन्हें सुननी पड़ीं। यथा कूर्माचल के विषय में विदूषक कहता है—

देशे यत्र महीभुजां जनपदाः कृन्तन्ति शीर्षाणि ये
भूपालाश्च विपश्चितां मुनयनान्युत्पाटयन्ति प्रभो।
दोलाया वहनं द्विजा विदधते कन्यां च विक्रीणते
राजन् भूपतयेऽविवेकमतये देशाय तस्मै नमः ॥५.३०

छठे कल्लोल के आरम्भ में सूत्रधार और नटी फिर आते हैं। हरिद्वार से लेकर चम्पावती तक के सभी राजा एकीभूय नेपालेश्वर रणबहादुर की सेना से लड़ रहे हैं। उनकी सेनाओं और राजाओं का वर्णन सूत्रधार नटी की उत्सुकता मिटाने के लिए करता है। राजा हैं कूर्माचलेश, जुम्लेश्वर, डोटीश्वर आदि। वे सभी रणभूमि में मनोरंजन के लिए तौर्यत्रिक देखने में व्यस्त हो गये। उनके लिए नाटक होने लगा। विदूषक ने उन्हें सलाह दी कि आप लोग नेपालनरेश की शरण में आयें। राजाओं ने कहा कि भग जाओ, नहीं तो गर्दनिया कर बाहर किये जाओगे। वहीं युद्धभूमि में कूर्माचलेश की महारानी थी। उसने अपने पति से कहा कि विदूषक का कहना मान लें। जुम्लेश्वर और डोटीश्वर की पत्नियों ने भी अपने पतियों को नेपालेश्वर की शरण में जाने की सुबुद्धि दी। डोटीश्वर अपनी पत्नी की बात सुनकर असमंजस में था। तभी उनके पाले शुक-सारिका में एक संवाद हुआ। सूत्रधार ने पहले तो उनके पूर्व जन्म की कथा सुनाई। तोता-मैना ने मिलकर डोटीश्वर को रोका कि नेपाल-नरेश से युद्ध न करें। सामुद्रिक ने राजाओं को बताया कि आप लोगों की विजय होगी। शत्रु-राजाओं की पत्नियों ने अनंगमंजरी नामक सारिका को नेपाल की महारानी के पास अपना सन्देश भेजा कि हमें विधवा न होने दें। यथा,

शीर्षोपरि सिन्दूरं करकण्ठगतः काचश्चास्माकं तिष्ठत्विति ।

राजराजेश्वरी ने अनंगमंजरी से कहा कि उन शत्रु-राजाओं को नेपाल-नरेश की शरण की भिक्षा माँगनी ही पड़ेगी। शत्रु-राजाओं को सद्बुद्धि न हुई। वे लड़ने के लिए निकले। नेपाल की सेना को सेनापति ने व्यूह-रचना के द्वारा सज्जित किया। घोर युद्ध हुआ। शत्रु-राजाओं की सेना ने शस्त्र-प्रहार से व्यथित होकर पलायन किया। अन्त में वे सभी परास्त हुए।

कुछ दिन गढवाल में बिताकर राजा नेपाल की ओर लौटा। अपने देश में आये हुए राजा का प्रजा ने बहुत सम्मान किया। राजधानी में आकर राजा ने बहुविध दान किये। नट-भट और गणिकाओं को भी प्रचुर प्रसाद मिला।

दशम कल्लोल में कवि नायक रणबहादुर के प्रतापातिशय का कारण सूत्रधार और नटी के संवाद मे प्रस्तुत करता है। यथा, 'गोरखानगरी मे पृथ्वीनारायण राजा और उसकी पट्टमहिषी नरेन्द्र लक्ष्मी थी। एक दिन उसकी राजसभा में पूरी पृथ्वी की परिक्रमा करके एक दण्डी उपस्थित हुआ। राजा से बात करने पर दण्डी को विदित हुआ कि उसका राज्य लघु है और उसे कोई सन्तति नहीं है। उसने राजा से कहा कि आप तप के द्वारा यह सब प्राप्त कर सकते हैं। आप किसी नदी के तट पर शिवलिंग की स्थापना करके उसकी आराधना करें। राजा ने कहा कि यदि कुछ दिन जीना हो तो यह सब करूँ। तब तो दण्डी ने अतिशय लम्बा-चौड़ा व्याख्यान दिया कि किन शारीरिक लक्षणो और स्वप्नो से कितने दिनो की लघु आयु होती है। राजा मे वे लक्षण नही थे। उसने उपदेशानुसार शिवाराधना की। कुछ दिनो बाद राजा को पल्ली-पतन और सरटारोहण के शुभ-शकुन हुए।

नटी के पूछने पर सूत्रधार ने इन शकुनों के प्रसंग मे उनके फल अपने लम्बे व्याख्यान मे बताये।

राजा ने स्वप्न मे जटिल तपस्वी को देखा। उसने राजा को आदेश दिया कि वाराणसी जाकर अपने तप का फल प्राप्त करो। राजा ने मन्त्रियों को शासन-भार देकर वाराणसी के लिए यात्रा की। उसने वाराणसी मे गंगा की शुभ्र स्तुति की, विश्वनाथ का दर्शन और स्तुति की, कालभैरव, दण्डपाणि, ढुण्ढि आदि की पूजा की, और मध्याह्न के समय मणिकर्णिका मे स्नान और स्तुति की।

रात्रि का समय राजा ने मुक्तिमण्डप मे बिताया। वहीं स्वप्न में शिव ने उन्हें दर्शन दिया। उसे वर दिया कि तुम नेपाल के राजा बनो। तुम्हें योग्य सन्तान हो। *तब राजा के दो पुत्र हुए—सिंहप्रताप वर्मा और बहादुर वर्मा।*

एकादश कल्लोल में बताया गया है कि स्वयं राजा रणबहादुर ने इस नाटक ताण्डव (अभिनय) को देखा और उन्होंने सामाजिकों को बहुतर धन दिया। यथा,

> मुक्ताहारं हिमगिरिनिभं पंक्तिसाहस्रमौल्यं
> रम्यं स्तम्बेरमदशयुगं पट्शतान्यर्वमुख्यान् ॥
> मुद्राभारांन्छतपरिमितान् भूरिकौशेयवस्त्रं
> तेभ्यो भूयो नृपरणबहादूरवर्मा ददार्द ॥११२

विशेषतायें

जयरत्नाकर की नाट्य-परम्परा अलग सी है। इसमे नाट्य-प्रयोग का नाम ताण्डव मिलता है और पात्रों को सामाजिक कहा गया है। सामाजिक का यह प्रयोग देशी भाषाओ मे मिलता है। संस्कृत मे सामाजिक का परम्परागत अर्थ *नाटक देखने वाला है। इसके लिए शास्त्रोचित रंगमंच की भी आवश्यकता नहीं दिखाई* देती। जैसे देहातों मे नृत्याभिनय के लिए विशेष रंगमंच नहीं होता, वैसे ही इसमें भी चारों ओर प्रेक्षक बैठ गये और उनके बीच मे नर्तक अभिनय करने के लिए आये-गये। इसमे नटी सूत्रधार को मेधाविन्, कुलनायक, आर्यनन्दन, दूरदर्शी, दारनाः

आदि कहती है और सूत्रधार नटी को वालिके, सुन्दरि, दुष्टे, सुशीले, लावण्य-तरंगिणि आदि कहकर सम्बोधित करता है।

इस नाटक के दशम कल्लोल में सूत्रधार का एक नाम नटी ने वृत्तान्तसूचक बताया है। वास्तव में सूत्रधार ने असंख्य घटनाओं की सूचना देकर प्रेक्षकों को बताया है, जहां साधारण नाटकों में अर्थोपक्षेपक का प्रयोग होता है।

नाटक के उपोद्घात में नयराजपन्त ने इस कृति की संरचना का वैचित्र्य बताते हुए कहा है—

"पछिल्लो मल्लकालमा नेपालखाल्डा मा एक प्रकार का गद्य, पद्य, गीतहरु को संग्रह गरी बीच-बीच मा संवाद देखाई तिनलाई नाटक भन्ने नाम दिने चलन चलेको थियो। ती नाटकहरु नेवारी, संस्कृत, हिन्दी, मैथिली भापाहरु को मिस्कटमा प्रायः पाइन्छन्।"

इसी परम्परा में जयरत्नाकर नाटक है। रत्नाकर में कल्लोल (लहरें) होते हैं। कवि ने इस नाटक को ११ कल्लोलो में वैसे ही विभक्त किया है, जैसे रत्नाकर (समुद्र) कल्लोलों में विभक्त होता है। इसका विभाजन अंकों में नहीं है।

किसी भी कल्लोल में सूत्रधार और नटी कुछ वर्णन करने के लिए अथवा अर्थोपक्षेपक की सामग्री प्रस्तुत करने के लिए कल्लोल के आदि या बीच में आ जाते हैं। कहीं-कहीं उनके संवाद को प्रस्तावना नाम दिया गया है। वे रंगमंच पर अन्य पात्रों के साथ अभिनय के आद्यन्त बैठे रहते थे और आवश्यकता पड़ने पर उठ खड़े होते थे।[1] वे रंगमंच पर तमाशा सा करते थे। जब देखो, नटी मदनमंजरी बेहोश हो जाती है। इनके अतिरिक्त भी निवेदक होते थे, जो बीच-बीच में रंग-मंच पर खड़े होकर सूचना देते थे। राजा की प्रशंसा उनका प्रधान कर्म था।

अभिनेताओं की शिक्षा के विषय में बताया गया है कि सूत्रधार ने नटी को १२ वर्ष तक शिक्षा दी थी और इसका आरम्भ उसकी ४ वर्ष की अवस्था से हुआ।

छठें अंक की तीन चौथाई में सूत्रधार स्वयं शुक, सारिका, चकोर-नयना, डोटीश्वर आदि के अतिशय लम्बे संवाद रंगमंच पर प्रस्तुत करता है। संवाद समाप्त होने पर अर्थोपक्षेपक तत्त्व है—

'इति विहगमयोर्वाक्यं श्रुत्वा तौ दम्पती मुमुदाते। ततः सहस्रद्वयं दत्त्वा, तौ जगृहतुः। ततः डोटीश्वरो राजा वंजुलनामानं शुकं चकोरनयना राज्ञी चानङ्गमंजरीसारिकां पालयामासतुः। रंकुर्व्याधोऽपि सहस्रद्वय-द्रव्यं संगृह्य स्ववनं प्रचलितः।

---

१. चतुर्थ कल्लोल प्रायः पूरा ही सूत्रधार और नटी के संवाद के द्वारा सेना और विजयाङ्गों के वर्णन के लिए प्रयुक्त है। इसमें सेनापति या राजपुत्र वहादुर वर्मा, बन्धुवर्ग में बलभद्रशाह, श्रीकृष्ण शाह आदि, मन्त्रियों में दामोदर, जगजीत, शिवनारायण आदि का व्यक्तिगत परिचय दिया गया है।

चम्पूतत्त्व

जयरत्नाकर कोरा नाटक नहीं है। इसमे चम्पू-तत्त्व विशेष रूप से समुदित हुआ है। यथा चतुर्थ कल्लोल में नायक ने सेनानियों को सन्देश दिया कि श्रीनगर को जीतना है। फिर तो राजपुत्र, पुरोधा, आदि ने क्या-क्या किया—यह चम्पूशैली में बताया गया है। इसी कल्लोल में वर्णसंकर-जाति पर अनेक पृष्ठों का व्याख्यान सूत्रधार नटी को देता है। छठें कल्लोल मे शुकसारिका वृत्तान्त और नेपाल विषयक सारिका की वर्णना वस्तुतः चम्पूचित ही हैं।

सातवें कल्लोल में अनंगमंजरी का उड़कर नेपाल पहुँचने का वर्णन किसी भी चम्पू के योग्य है।

अशास्त्रीयता

नाट्यशास्त्रीय नियमों के तथाकथित उल्लंघन नाटक में भरे हैं। यथा, नटी रंगमंच पर सूत्रधार का आलिंगन करती है। नाटक की कथावस्तु के प्रतान की सर्वथा उपेक्षा करके सूत्रधार, विदूषकादि इतर जनों का मनमाना संवाद प्रवर्तित करना जयरत्नाकर में प्रायशः वर्तमान है। यह सारा तत्त्व सर्वथा अनपेक्षित है। पंचम कल्लोल में सूत्रधार रणबहादुर की वैजयन्ती का लम्बा वर्णन नटी को सुनाता है। अन्त में कहता है कि राजा की सेना नेपाल नगर से पश्चिम की ओर चली। छठें कल्लोल में तोता-मैना की उत्पत्ति-विषयक लम्बी कहानी सूत्रधार नटी को सुनाता है।

नाटक में सूत्रधार और नटी का महत्त्व सभी पात्रों से बढ़कर कहा जा सकता है। कथावस्तु का प्रपंच प्रायशः उन्हीं के संवाद के द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

जयरत्नाकर में नटी आदि स्त्रीपात्र और विदूषक संस्कृत में बोलते हैं। प्राकृत का प्रयोग ही नहीं है।

छायातत्त्व

जयरत्नाकर में अनंगमंजरी सारिका और वंजुल शुक रंगमंच पर पुरुषों और स्त्रियों से संवाद करते हैं। अनंगमंजरी शत्रु राजाओं की महिषियों का सन्देश लेकर उड़ जाती है और नेपाल-नरेश की महारानी को सुनाती है। सारिका ने शत्रु राजाओं को नीचे लिखा चित्रकाव्य सुनाया—

> सर्दारस्तु पराङ्मुखं द्रवति यो युद्धे परेषां भया-
> न्माना तस्य तु पुत्रिणी यदि भवेद् वन्ध्या भवेत् कीदृशी।
> मानैः कंकणकुण्डलैर्वचनमं वस्त्रैर्गजैर्यो नृपो
> नित्यं कापुरुषाधमं भरति तं भूपं व्यकूपं विदुः॥८.२

ऐतिहासिक सामग्री के कारण नाटक का विशेष महत्त्व है। इसमें नायक राजा रणबहादुर के पूर्वपुरुषों की भी बातें बताई गई हैं। चतुर्थ कल्लोल में विदूषक नटी को बताता है कि तिलंग राक्षस हैं। सूत्रधार कहता है कि नहीं, वे भारतीय मनुष्य हैं। छठे कल्लोल के अन्तिम भाग में फिरंगियों की चर्चा है। यथा,

फिरङ्गी पूर्वस्यां दिशि गलिमनायो यमदिशि
पुनस्तस्यां सैन्यैर्वसुभिरजयट्टिप्पुयवनः।
वनावीशाशायां प्रभुरणवहादूरनृपति-
रिदानीं लोकेऽस्मिन् खलु बलिन इत्येव पुरुषाः ॥६.४६

सांस्कृतिक सामग्री से जयरत्नाकर ओतप्रोत है। पृथ्वीनारायण के विषय में कवि ने बताया है कि वे मरे तो उनके साथ ११ सहचरी, महारानी और दो उपभोगिनी भी जल मरी। राजा का कर्तव्य था कि दूसरी राजधानियों पर आक्रमण करके परद्रव्यापहरण करे। ब्राह्मण का वेश धारण करके गुप्तचर भ्रमण करते थे। यथा,

भूदेवाः कतिचित् त्रिपुण्ड्र-सहिताः शुद्धोर्ध्वपुण्ड्राङ्किताः
केचिद्वै तुलसीदलावृतगला रुद्राक्षमालावराः।
गोपीचन्दनलिप्तगात्ररुचिराः साघोर्यनोद्वंचका
नानावेशवराः कुशास्त्रनिरताः सर्वेऽपि पाखण्डिनः ॥३.१६

इससे ब्राह्मणों का पद क्षीण होने की पूरी सम्भावना थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तथा वधू सभी आचार-पथ से विभ्रष्ट थे।

कहीं-कहीं सांस्कृतिक सन्दर्भ कोरे शास्त्रीय हैं। चतुर्थ कल्लोल में अनुलोम और प्रतिलोम विवाह से उत्पन्न वर्णसंकर जातियों का विस्तृत वर्णन सूत्रधार और नटी अनेक पृष्ठों में करते हैं।

नेपाल की रहन-सहन की एक झाँकी है—

छत्राकवंशांकुरकोविदारैः पिण्डालुशाकैर्लशुनप्रयुक्तैः।
पिण्याकपानैः परिखर्वितानामहर्निशं कोद्रवरोटिकाभिः॥

कुद्दालकैः खुक्कुरिभिः कुठारैः कन्दं खनित्वा सुखजीवितानां
श्मश्र्वाद्यभावाच्छिन्नुलक्षितानां रे मूढ तेषां नतनासिकानाम्।
संवीतखादोमगरीसुतानां हा स्वामिनां मातुलकन्यकानाम्
जाने न किं रेऽहमनीकिनीं तां किं वल्गसे मूढ विदूषक त्वम् ॥५.३१-३३

स्त्रियों की निन्दा करने में कवि निपुण है। उसका वितण्डावाद है—

उत्तमा निजबुद्धिस्तु मित्रबुद्धिश्च मध्यमा।
अधमा भृत्यबुद्धिश्च स्त्रीबुद्धिः प्रलयंकरी ॥६.३६

कहीं-कहीं बेहूदी बातों का पिटारा इस नाटक में कवि ने बहुत रुचिपूर्वक सँजोया है। सप्तम कल्लोल के आरम्भ में सामुद्रिक का राजवल्लभाओं से अङ्ग-लक्षण की अतिशय लम्बी-चौड़ी शुभाशुभ-सम्बन्धी चर्चा कवि की तुच्छता का प्रमाण है। वह स्त्रियों के गुप्ताङ्गों की चर्चा करते हुए मानो अघाता नहीं है। उस सामुद्रिक को तमाचा जड़कर रंगमंच से बाहर कराया गया है—यह सब सम्भवतः हँसने-हँसाने के प्रयोजन से समाविष्ट है।

मलयजा-कल्याण-नाटिका

मलयजा-कल्याण-नाटिका के प्रणेता वीरराघव का स्वल्प परिचय सूत्रधार ने इस नाटिका की प्रस्तावना मे दिया है।[1] इसके अनुसार उनका प्रादुर्भाव दाशरथि वंश मे हुआ था और इनके पिता नरसिंह सूरि थे। महावीर-चरित की टीका मे कवि ने अपना परिचय दिया है, जिसके अनुसार वे मैसूर के निवासी थे। वीरराघव का प्रादुर्भाव अठारहवी शती का अन्तिम भाग है।[2]

वीरराघव ने इस नाटिका के अतिरिक्त नीचे लिखी रचनायें की—

(१) उत्तररामचरित-टीका (२) महावीर चरित-टीका
(३) भक्तिसारोदयकाव्य (४) अन्य दार्शनिक ग्रन्थ।

मलयजा-कल्याण का अभिनय वसन्त ऋतु मे तेलंगाना के सत्यव्रत क्षेत्र के भगवान् देवराज के फाल्गुन उत्सव पर समागत विद्वानो के प्रीत्यर्थ हुआ था।

कथावस्तु

नायक देवराज विदूषक के साथ मलय पर्वत पर मृगया के प्रसंग में अपने कुटुम्बी जनो के साथ आये। वहाँ उनके दृष्टिपथ में मलयराज की कन्या मलयजा आई और उसके लिए वे उत्सुक हो गये। उनकी दृष्टि में ब्रह्मा की सृष्टि में वह अनुत्तम रचना थी। नायक का कहना है—

आकेकरेण मसृणेन विकासभाजा
कूणाञ्चलेन कलिताश्रुकणोदयेन।
निस्पन्दितेन समये प्रतिसंहृतेन
तन्व्या जितोऽस्मि सरसेन कटाक्षितेन ॥१·२३

देवराज मलयजा के लिए उन्मत्त हो गया। विदूषक उसे मलय-वनलक्ष्मी का दर्शन करने के लिए वृक्षवाटिका मे ले गया। वहाँ नायक ने नायिका की आङ्गिक उत्प्रेक्षा की—

तस्याः कोमलगात्र्या नाभीसरसः समुद्गमप्राप्ते।
एकस्मिन् रोमावलिनालाग्रे स्तनसरोजयुगम् ॥१·३५

मृगया बन्द कर दी गई। नायिका का रूप सौष्ठव और भावोत्स स्मरण करते हुए उससे मिलने की आशा मे नायक विदूषक के साथ चल पड़ा क्रीडापर्वत पर गुञ्ज सदन की ओर।

---

१ इसका प्रकाशन जबलपुर से डा० बाबूलाल शुक्ल के द्वारा किया गया है।

२. कृष्णमाचार्य ने वीरराघव के विषय मे लिखा है—

He was born at Terumalisai (Bhusurapuri) in Chingleput, District, Madras, about 1770 A. D. and lived for 48 years P. 624

विदूषक को चेटी से ज्ञात हुआ कि मलयजा नायिका प्रणयी के लिए भावाभिमुखी होकर प्रमदवन में आयेगी। विदूषक नायक को लेकर वहाँ पहुँचेगा। ऐसा हुआ भी। छिप कर नायक और विदूषक ने सुन लिया कि नायिका देवराज से मिलने के लिए उत्कण्ठित है। नायिका ने कहा—

विधुकर विशेषैर्मुह्याम्येवं कियन्ति दिनान्यहं
किमिति कठिनो वामः कामोऽपि जीवयतेऽद्य माम्।
सखि कलयसे किं त्वं वा वामभूमिमिमां दशां
किमिह बहुना सर्वज्ञश्चेत् स एव हि भावयेत्॥ २·११

नायिका ने अपनी माता के आदेशानुसार वसन्तदेवता के प्रीत्यर्थ प्रियाल को कुसुमित करने के लिए वीणागान किया। नायक सुन कर विमुग्ध हो गया। गीत है—

भद्दपियालतरो तुह पुप्फे हि विण ण भाइ महु समओ।
ण क्खु सोहइ मज्जाणं पुणो कामो ण कामदेग्रस्स॥ २·११
ठाऊण सव्वभेदं वालच्छअसाम सौभंग।
उक्किट्ठिदो तुहकिदे तवस्सिणी एत्थ महुअरिआ॥ २·२२

गीत के पश्चात् प्रियाल तो मंजरित हुआ। इधर नायक की मनोमंजरी खिल उठी। 'वह नायिका के समक्ष प्रकट हो गया। उसने नायिका से अपनी मानसी स्थिति बताई—

शृणु त्वं सर्वाङ्गप्रकृतिरमणीये मम मनो
रसज्ञं त्वद्दास्ये कथमपरतः स्निह्यतितमाम्।
यदि त्वाशंका ते मम विरहसर्वश्रमसखी
प्रमाणैः प्रष्टव्या ननु कुसुमशय्या भगवती॥

इस प्रारम्भिक प्रणयरोचन के पश्चात् उन्हें विलग होना पड़ा।

नायिका ने नायक के लिए जो चिट्ठी भेजी, वह महादेवी की चेटी वल्लरिका के माध्यम से प्रवर्तित हुई। वल्लरिका ने उसे महादेवी को देखने को दे दिया। फिर तो आग लगी। महादेवी को उस पत्र से ज्ञात हुआ कि आज चन्द्रोदय से पहले केरलिका और मंजरिका के साथ मलयजा नायक से लतागृह में मिलेगी। महादेवी ने योजना बनाई—मैं मंजरिका का वेष धारण करूँगी और वल्लरिका मलयजा की चेटी बने। यथासमय दोनों लतागृह में पहुँची। वहीं मलयजा आई और उसके साथ केरलिका और मंजरिका वेषधारिणी महादेवी थी। महादेवी ने मलयजा को देखा तो उसके सौन्दर्य से चमत्कृत हो गईं। मलयजा के नायक के पास आने पर लजाने पर उसने कहा—मलयजे, लजाओ मत। चिरकांक्षित नायक का समादर करो। नायक ने भी अपने मन में चिर सँजोये भावों को नायिका के समक्ष पूरी तत्परता से उँडेल दिया और व्यक्त किया कि मैं तेरा दास हूँ और कहा—

तरुणि तव चन्द्रवक्त्रं तरुणहस्तिस्तनेन कुम्भधरः।
रोमावलिपुष्करतो नाभीसरसो न सलिलमादत्ते॥३.११

महादेवी अपने को बहुत देर तक छिपाये न रख सकी। जब नायक ने उसे पहचाना कि यह मंजरिका नहीं, महादेवी है तो वह भय से काँपने लगा और उसके पैरों पर गिर पड़ा। विदूषक डर के मारे पेड़ की आड़ में छिप गया। महादेवी नाटक करके चलती बनी। राजा और विदूषक इस विषम स्थिति से पार पाने के लिये जामदग्न्य-क्षेत्र की चर्चा करने लगे।

वहाँ जामदग्न्य आये। उन्होंने ध्यान लगा कर जान लिया था कि नायक कैसी विषम स्थिति में पड़ा है। उन्होंने कहा कि मुझे ज्ञात हुआ है कि दुष्ट यवन तेलङ्गाना पर आक्रमण पर आक्रमण कर रहे हैं। राजा ने बताया कि इधर हम मृगया-विनोद के लिए आये और यवनों ने आक्रमण कर दिया है। जामदग्न्य ने सपत्नियों के सरम्भ से उत्पन्न नायक के मानसिक क्षोभ को दूर करने के लिए महादेवी से सम्पर्क साध कर उन्हें समझा-बुझाकर ठीक करने की बात बताई।

जामदग्न्य ने मलयाधिपति से कहा कि मलयजा के पति महाराज देवराज होंगे। वे नगर के प्रमदवन में आये हुए हैं। जामदग्न्य के समझाने से महादेवी मान गई।

विवाहोचित नेपथ्य धारण करके मलयजा अपनी सखियों सहित कल्याण-मण्डप में आई, जहाँ नायक अपनी पटरानी, मार्गव और मलयजा के माता-पिता के साथ बैठे थे। वहाँ यथाविधि विवाह हो गया।

तभी देवराज का अनुचर समाचारिक पत्र लेकर आया। उस पत्र में लिखा था कि शत्रु मार भगाये गये। राज्य में सर्वथा कुशल है। आप आयें।

रंगपीठ-व्यवस्था

द्वितीय अंक में रंगपीठ के दो भाग बन गये हैं। एक में विदूषक और नायक है और दूसरे में नायिका, उसकी सखी तथा चेटी, जिनके कार्यकलापों और भावानुबन्धों की प्रतिक्रिया नायक और विदूषक के संवादों में मिलती है।

नाट्यकला की दृष्टि से रंगपीठ पर नायिका का वीणागायन द्वितीय अंक में सुसमञ्जसित है।

नायक की काव्यमयी प्रतिभा को चारित्रिक विशेषता के रूप में दरसाने का प्रयास कवि ने प्रायशः किया है।

छायातत्त्व

मंजरिका का वेष धारण करके लतागृह में महादेवी का नायक के पास पहुँचना छायातत्त्वानुसारी है। इसका सर्वोपरि उपयोग है तृतीय अंक में महादेवी के दो व्यक्तित्वों को क्रमशः स्वगत और प्रकाश-विधि से अपने वक्तव्यों को प्रकट करके प्रेक्षकों का अपूर्वानुरंजन करने में। राजा उसको नायिका की सखी समझ कर कहता है—

तत्र भवती किमुच्यते वर्णनैर्नपुण्यमिति। नन्वत्रभवत्याः (मलयजायाः) सौन्दर्याम्बुधेर्विप्रुषापि मूकोऽवलम्बते वागीशताम्

एकोक्ति

चतुर्थ अंक के आरम्भ में मार्गव की एकोक्ति अर्थोपक्षेपक रूप में प्रयुक्त है। इस एकोक्ति के पश्चात् वे रंगपीठ से चले जाते हैं। इनकी एकोक्ति को इसके पूर्व आने वाले मिश्र विष्कम्भक के साथ रखकर अंकारम्भ इसके पश्चात् माना जा सकता है।

अठारहवीं शती का अन्य नाट्यसाहित्य

हास्यार्णव प्रहसन

हास्यार्णव-प्रहसन के प्रणेता महामहोपाध्याय जगदीश्वर भट्टाचार्य ने इसकी रचना १७०१ ई० में की।[1] इस प्रहसन के दो अंकों में राजा अनयसिन्धु, मन्त्री कुमति वर्मा, नायिकायें बन्धुरा और मृगाङ्कलेखा, आचार्य विश्वभण्ड और शिष्य कलहाङ्कुर—सभी के सभी चरित्रहीन और स्त्रीकामी हैं। धूर्तता के बल पर काम-सिद्धि इनका परम प्रयोजन है।

रसिकतिलक-भाण

रसतिलकभाण के रचयिता मुद्दुराम के पिता रघुनाथाध्वरी और माता जानकी थीं। वे तंजौर के निवासी थे। महाराज शाहजी (१६८४-१७११ ई०) के द्वारा वे सम्मानित थे।

रसिकतिलक भाण का अभिनय कमलापुरी (तंजौर) में त्यागराज के वसन्तोत्सव के अवसर पर हुआ था। इसमें विट रसिकशेखर है और नायिका कनकमजरी है।[2]

वेङ्कटेश्वर की कृतियां

वेङ्कटेश्वर तंजौर के राजा शाहजी (१६८४-१७११ ई०) के द्वारा सम्मानित थे। इनके द्वारा तीन प्रहसनों का प्रणयन हुआ—१. भानुप्रबन्ध २. वेङ्कटेश और ३. लम्बोदर। भानुप्रबन्ध प्रहसन का नायक वक्रनासयमी तथा नायिका गृध्री हैं।[3] राजा के द्वारा अपने दूषण अर्थात् गृध्री से कामुकता का सम्बन्ध स्थापित करने के लिए दण्डित होकर वक्रनास राजपुरुषों के द्वारा अपनी पत्नी के पास पहुँचाया जाता है।

श्रीकृष्णलीला-नाटिका

वैद्यनाथ ने श्रीकृष्णलीला की रचना अठारहवी शती के प्रथम चरण में की।[4] कवि का जन्म तत्सत् कुल में वाराणसी में १७ वी शती के अन्तिम चरण में हुआ था। इसका प्रथम अभिनय लक्ष्मीयात्रोत्सव में महाजनक देव के आदेशानुसार हुआ। इसमें राधा और कृष्ण तथा विजयनन्दन और चन्द्रप्रभा का परिणय वर्णित है।

उपाहरण-नाटक

उपाहरण नाटक के लेखक श्री देवनाथ उपाध्याय मैथिल ब्राह्मण थे। उनकी

---

१. हास्यार्णव-प्रहसन का अनेकशः प्रकाशन हुआ है।

२. इस अप्रकाशित भाण की प्रति त्रिवेन्द्रम् विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में है।

३. भानुप्रबन्ध-प्रहसन का प्रकाशन मैसूर से १८९० ई० में हुआ है।

४. इसकी अप्रकाशित प्रति कलकत्ते के संस्कृत-कालेज के पुस्तकालय में है।

जगन्नाथ काकलवंश के विद्याचरण कुल में उत्पन्न हुए थे। इनके चाचा रघुनाथ न्याय-शास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित थे।

जगन्नाथ ने अनंगविजय के पहले शृङ्गारतरंगिणी नामक भाण की रचना की थी, जो अभी तक अप्राप्य है। उन्होंने शरभराज-विलास काव्य का प्रणयन १७२२ ई० में किया था।[1]

अनङ्गविजय का प्रथम अभिनय तंजौर में प्रसन्न वेङ्कट नायक के वसन्तमहोत्सव के उपलक्ष में हुआ था। प्रेक्षकों में अनेक देशों के सामाजिक थे। वे सभी अभिनव रूपक देखना चाहते थे।

प्रस्तावना से स्पष्ट है कि इसका लेखक स्वयं सूत्रधार है। वह बताता है कि रतिशेखर नामक नायक-विट की भूमिका में उसका भागिनेय कलकण्ठ रंगमंच पर आता है।

मधुरानिरुद्ध

मधुरानिरुद्ध के प्रणेता चन्द्रशेखर का प्रादुर्भाव उत्कल प्रदेश में हुआ।[2] इनके पिता गोपीनाथ थे। पिता और पुत्र दोनों यज्ञ-सम्पादन में अभिरुचि रखते थे। पिता ने सप्तसोम और वाजपेय यज्ञ किये थे और पुत्र ने चयन यज्ञ किया था, जिसके कारण वह चयनी उपाधि से समलङ्कृत होकर चयनी-चन्द्रशेखर कहलाता था। पिता और पुत्र दोनों राजगुरु थे।

चन्द्रशेखर के आश्रयदाता उड़ीसा में खुर्द के राजा गणपति वीरकेसरीदेव प्रथम थे।[3] इनके पिता रामचन्द्र थे। वीरकेसरीदेव का शासनकाल ७३६-१७७३ ई० तक था। कवि के अपने विषय में लिखे दो पद्यों को सूत्रधार ने प्रस्तावना में उद्धृत किया है, जो निम्नलिखित है—

श्रोतृस्वान्ताध्वनीनध्वनि-बहुलतमां पद्धतिं निर्निमीथा-
श्छन्दः सन्दर्भगर्भक्षमपदरचना-व्यत्यया निर्जनीथाः।
नालंकारान्न रीतीरपि न गुणगणं वोज्झितुं श्रद्दधीथाः
यद्याविर्भाविनी स्याः स्वयमिति कविते देवि विज्ञापयामि॥

अपि च

यद्यस्मद्वचसामवद्यगणनागोष्ठीमधिष्ठायका
निर्व्रीडाः कलयन्तु नाम न वयं तेनाद्य दूयामहे।

---

१. यह अप्रकाशित काव्य तंजौर के सरस्वती-भवन में है।

२. इस अप्रकाशित नाटक की प्रतियाँ भुवनेश्वर के राजकीय संग्रहालय में मिलती हैं।

३. विल्सन ने वीरसिंह को बुन्देलखण्ड का १७ वीं शती का राजा बताया है, जो सुप्रमाणित नहीं है।

वसति पर्वतपुर मे थी। इनके पिता रघुनाथ और माता गुणवती थी। उपाहरण मे सुप्रसिद्ध पौराणिक उषानिरुद्ध-परिणय की कथा है।[1] इसके छः अंकों मे मैथिली किरतनिया नाटकों की परम्परानुसार गीतों का बाहुल्य है।

वसुमंगल नाटक

वसुमगल नाटक के प्रणेता पेरुसूरि के पिता वेङ्कटेश्वर और माता वेङ्कटाम्बा थी। उनका निवास सम्भवतः काचीपुर मे था। पेरु के दो रूपको की चर्चा मिलती है। इनमें से वसुमंगल पाँच अंको का नाटक है।[2] इसका नायक उपरिचरवसु है, जिसका विवाह कोलाहल-पर्वत की कन्या गिरिका से होता है।

हास्यकौतूहल-प्रहसन

हास्यकौतूहल प्रहसन के लेखक विट्ठल कृष्ण विद्यावागीश बीकानेर के राजा सुजानसिंह के द्वारा सम्मानित थे। इसकी रचना अठारहवीं शती के प्रथम चरण मे हुई।[3]

आंजनेय-विजय

भाष्यकार नामक कवि ने आञ्जनेय-विजय नाटक मे हनुमान् के पराक्रम का विशेष वर्णन किया है।[4] उनके प्रथम गुरु मानु थे। वे वेणुपुर के राजा बसवभूपाल (१६९८-१७१५ ई०) के द्वारा सम्मानित थे। इस नाटक का प्रथम अभिनय राम के अवतारोत्सव मे किया गया था।

राधामाधव-नाटक

अठारहवीं शती के पूर्वार्ध मे राघवेन्द्र कवि ने सात अंकों मे राधामाधव नाटक का प्रणयन किया।[5] इसका हस्तलेख स० १७८४ वि० तदनुसार १७२७ ई० का है। इस नाटक मे यथानाम राधा और कृष्ण का क्रीडाविलास शृङ्गार-निर्भर है। इसका प्रथम अभिनय राधोल्लास-महोत्सव मे सम्पन्न हुआ था।

अनंग-विजय भाण

अनङ्ग-विजय भाण के लेखक काकलवंशी जगन्नाथ तंजौर-महाराज सरफोजी के मन्त्री श्रीनिवास के पुत्र थे।[6] सरफोजी का शासनकाल १७११-१७२८ ई० है। जगन्नाथ स्वय भी राजतन्त्र मे नियुक्त थे। सूत्रधार ने परिचय देते हुए इनका विशेषण दिया है—निरवधिराजतन्त्रव्यापृतनिजमतिकौशलस्य। सम्भवत अपने पिता के पश्चात् जगन्नाथ स्वयं राजमन्त्री पद पर विराजमान रहे हो।

---

१. इसका अभी तक प्रकाशन नहीं हुआ है।

२. अप्रकाशित वसुमगल की प्रति शासकीय ओरियण्टल मैनुस्क्रिप्ट-लाइब्रेरी, मद्रास में है।

३. इसकी अप्रकाशित प्रति अनूप-संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर मे है।

४. इस नाटक की हस्तलिखित प्रति प्राच्यविद्याशोध-संस्थान मैसूर मे है।

५. इस अप्रकाशित नाटक की प्रति भण्डारकर ओ० रि० इ० पूना मे है।

६ अनगविजय की हस्तलिखित प्रति तंजौर मे सरस्वती-भवन मे मिलती है।

जगन्नाथ काकलवंश के विद्याचरण कुल में उत्पन्न हुए थे। इनके चाचा रघुनाथ न्याय-शास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित थे।

जगन्नाथ ने अनगविजय के पहले शृङ्गारतरंगिणी नामक भाण की रचना की थी, जो अभी तक अप्राप्य है। उन्होंने शरभराज-विलास काव्य का प्रणयन १७२२ ई० में किया था।[1]

अनङ्गविजय का प्रथम अभिनय तंजौर में प्रसन्न वेङ्कट नायक के वसन्तमहोत्सव के उपलक्ष मे हुआ था। प्रेक्षको मे अनेक देशों के सामाजिक थे। वे सभी अभिनव रूपक देखना चाहते थे।

प्रस्तावना से स्पष्ट है कि इसका लेखक स्वयं सूत्रधार है। वह बताता है कि रतिशेखर नामक नायक-विट की भूमिका मे उसका भागिनेय कलकण्ठ रंगमंच पर आता है।

मधुरानिरुद्ध

मधुरानिरुद्ध के प्रणेता चन्द्रशेखर का प्रादुर्भाव उत्कल प्रदेश में हुआ।[2] इनके पिता गोपीनाथ थे। पिता और पुत्र दोनो यज्ञ-सम्पादन में अभिरुचि रखते थे। पिता ने सप्तसोम और वाजपेय यज्ञ किये थे और पुत्र ने चयन यज्ञ किया था, जिसके कारण वह चयनी उपाधि से समलङ्कृत होकर चयनी-चन्द्रशेखर कहलाता था। पिता और पुत्र दोनों राजगुरु थे।

चन्द्रशेखर के आश्रयदाता उड़ीसा मे खुर्द के राजा गणपति वीरकेसरीदेव प्रथम थे।[3] इनके पिता रामचन्द्र थे। वीरकेसरीदेव का शासनकाल ७३६-१७७३ ई० तक था। कवि के अपने विषय में लिखे दो पद्यों को सूत्रधार ने प्रस्तावना में उद्धृत किया है, जो निम्नलिखित हैं—

> श्रोतृस्वान्ताध्वनीनध्वनि-बहुलतमां पद्धतिं निर्मिमीथा-
> श्छन्दः सन्दर्भगर्भक्षमपदरचना-व्यत्ययानिर्जनीथाः।
> नालंकारान्न रीतीरपि न गुणगणं वोज्झितुं श्रद्दधीथाः
> यद्याविर्भाविनी स्याः स्वयमिति कविते देवि विज्ञापयामि॥

अपि च

> यद्यस्मद्वचसामवद्यगणनागोष्ठीमधिष्ठायका
> निर्व्रीडाः कलयन्तु नाम न वयं तेनाद्य दूयामहे।

---

१. यह अप्रकाशित काव्य तंजौर के सरस्वती-भवन मे है।

२. इस अप्रकाशित नाटक की प्रतियाँ भुवनेश्वर के राजकीय संग्रहालय में मिलती हैं।

३. विलसन ने वीरसिंह को बुन्देलखण्ड का १७ वीं शती का राजा बताया है, जो सुप्रमाणित नही है।

जानन्तोऽपि कवीनिमानभिदधुर्ये वाग्वधूवल्लभा-
स्तानालोच्य पर विपीदति मतिः कुर्मः किमत्रौषधम् ॥

सूत्रधार ने कविपरिचय देते हुए कहा है कि वह न्यायशास्त्र का परम पण्डित है।

मधुरानिरुद्ध की रचना संभवतः १७३६ ई० मे वीर केसरीदेव के राज्याभिषेक के अवसर पर हुई थी। इस नाटक का अभिनय शिव की यात्रा मे उपस्थित महानुभावो के प्रीत्यर्थ हुआ था।

मधुरानिरुद्ध की कथावस्तु हरिवंश, विष्णुपुराण और भागवत आदि से ली गई है। कवि ने अनेक स्थलो पर पूर्ववर्ती कथाओ से भिन्न कल्पित कथाश जोडे हैं। उषा और अनिरुद्ध की कथा इस युग मे सुप्रिय थी। रामपाणिवाद ने इसी शती में उषानिरुद्ध महाकाव्य प्राकृत मे लिखा था।

कवि ने इस नाटक को आठ अङ्को मे निष्पन्न किया है। इसकी कथावस्तु के स्वरूप से कलात्मक काट-छाँट की अभिव्यक्ति कम होती है। वस्तुत यह आख्यानात्मक प्ररोचना से निर्भर है।[1] अगणित घटनायें व्यर्थ ही समाविष्ट हैं। कवि को काव्यात्मक वर्णनो को पिरोने का भी चाव है।[2] लम्बे-लम्बे वर्णनों के कारण कथावस्तु की चारुता और नाटकीयता मानो पलायमान हो गई हैं। इसमे प्रवेशक और विष्कम्भक नही हैं।

नाटक की प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि कही-कही सूत्रधार को प्रेक्षको की भर्त्सना भी सुनने को मिलती थी। इस नाटक की प्रस्तावना मे लेखक की निन्दा जब सूत्रधार ने की तो प्रेक्षको ने कहा—इतो विरम्य गम्यताम्।

श्रृंगार-सर्वस्व

श्रृ गार-सर्वस्व यथानाम भाण कोटिक रूपक है।[3] इसके रचयिता अनन्त नारायण पाण्ड्य प्रदेश को समलकृत करते थे। वे केरल के जमोरिन मानविक्रम तथा त्रिचूर के रामवर्मा नामक राजाओ के द्वारा सम्मानित थे। जमोरिन राजाओ का भाण-प्रेम सुविदित है। मानविक्रम ने श्रृ गार-सर्वस्व की रचना के लिए इच्छा प्रकट की थी। उसी की अध्यक्षता मे इसका प्रथम अभिनय मामाङ्क-महोत्सव मे हुआ था। यह १७८२ ई० की घटना है।

इसमे नायिका सुन्दरी को वसन्त-तिलक नामक विट के प्रभाव से हटाकर नायक विट के अधिकार मे नायक के दो मित्र विटो ने प्रपन्न करा लिया है।

श्रृंगार-विलास भाण

श्रृ गार-विलास भाण के प्रणेता साम्बशिव मद्रास मे गोपालसमुद्र-ग्राम के

१ यह वस्तुत. आकाशभाषित है।

२. कवि ने आकाशमार्ग से भारत-यात्रा-वर्णन विस्तारपूर्वक किया है।

३. इस अप्रकाशित नाटक की प्रति डा० ओ० मे० लाइब्रेरी, मद्रास मे मिलती है।